इकाई 1 देश और लोग (पूर्वी एशिया)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 पूर्वी एशिया स्थान और काल के संदर्भ में

    1.2.1 व्यापक क्षेत्रीय संदर्भ में पूर्वी एशिया की स्थिति

    1.2.2 क्षेत्र की विशिष्टता

    1.2.3 प्रदेश और पर्यावरण

1.3 लोग और पारिस्थितिकी

1.4 आदतें, समाज और संस्कृति

1.5 पूर्वी एशिया और उसके पड़ोसी क्षेत्र

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

यह इकाई चीन और जापान के इतिहास के पाठ्यक्रम की प्रस्तावना है। लेकिन, इस इकाई में आपको समूचे पूर्वी एशियाई क्षेत्र के कुछ पहलुओं की भी जानकारी दी गयी है। इस इकाई को पढ़ने के बाद—

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- आपको दक्षिण-पूर्वी एशिया की भौगोलिक स्थिति की जानकारी होगी,
- आप इस क्षेत्र के प्रदेश, लोग और पारिस्थितिकी आदि से संबंधित विशेषताओं के बारे में जानेंगे, और
- आप अंतर्क्षेत्रीय संबंधों के स्वरूपों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

पूर्वी एशिया के क्षेत्र, इसके लोगों और इसके सामाजिक पर्यावरण या परिवेश की विशेषताओं को लेकर विद्वानों के बीच काफी विवाद रहा है। इस संबंध में भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए गए हैं। फिर भी, विभिन्न विचारों या मतों के बावजूद, इनमें कुछ समान कारकों को देखा जा सकता है। इन कारकों से हमें संरचनात्मक भिन्नता वाले एक अलग क्षेत्र के अस्तित्व को समझने में मदद मिलती है। इन कारकों से हमें इस क्षेत्र के देशों के संबंधों को भी समझने में मदद मिलती है। इस इकाई में ऐसे ही कुछ पहलुओं पर चर्चा की गई है, जैसे व्यापक क्षेत्रीय संदर्भ में पूर्वी एशिया की स्थिति, क्षेत्र की विभिन्न विशेषताएं, जैसे—आदतें, आबादी, पारिस्थितिकी और क्षेत्र के विभिन्न देशों के बीच आपसी क्रिया।

1.2 पूर्वी एशिया स्थान और काल के संदर्भ में

एक क्षेत्र के रूप में पूर्वी एशिया को उप-महाद्वीप के आकार का बताया जा सकता है। इसकी संस्कृति का स्रोत समान है। यह सांस्कृतिक पहलू ही इस क्षेत्र के देशों को बांधने वाली शक्ति है, जिनके सामाजिक इतिहास, चरित्र और चिंतन का मिश्रण अपने आप में अनूठा है। जब हम पूर्वी एशिया को एक उप-महाद्वीप के नजरिए से देखते हैं तो, चीन और जापान अध्ययन का केन्द्र बन जाते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में उनकी भूमिका प्रधान है। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि कोरिया या अन्य देशों की कोई भूमिका ही नहीं है।

पूर्वी एशिया को उसकी समग्रता में समझने के लिए हमें काल और स्थान के संदर्भों में इसके विकास पर ध्यान देना होगा। इस अभ्यास से हमें इस सवाल का जवाब देने में मदद मिलेगी कि क्या इस क्षेत्र की अपनी कोई संस्कृति है या उस पर बाहरी प्रभाव है।

सभ्यताओं के विकास की प्रक्रिया में हम कई दौर देख सकते हैं। कुछ प्राचीन नदी घाटी की सभ्यताएं विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से उभरीं और उन्होंने अपनी विशिष्ट संस्कृति बना ली। धीरे-धीरे मनुष्यों ने एक नैतिकता, एक संस्कृति और एक सामाजिक व्यवस्था का विकास होते देखा जो एक अनूठे सांस्कृतिक सांचे के अनुरूप था। इस संस्कृति ने उनकी पहचान को व्यक्त किया।

वर्तमान युग के पहले हजार वर्षों में विकसित सभ्यता के इन केन्द्रों ने अपनी संस्कृति को उन क्षेत्रों तक फैला दिया था जिन्हें आज हम दक्षिणी चीन, कोरिया और जापान के नाम से जानते हैं।

हम यह भी देखते हैं कि भारत-गंगा क्षेत्र की संस्कृति पूर्वी एशिया में दो भागों में होकर फैली—

i) केन्द्रीय एशिया के मार्ग से चीन और फिर कोरिया और जापान तक

ii) समुद्री मार्गों से दक्षिणी पूर्वी एशिया के अन्य देशों—जैसे, चीन और जापान तक।

इन विकासों के जरिए लोग सामाजिक तौर पर अपनी पहचान बना सके और विश्व में अपने संबंधों को निर्धारित कर सकें। भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमाओं ने भी विभाजन करने और अंतरों को स्पष्ट करने का काम किया।

1.2.1 व्यापक क्षेत्रीय संदर्भ में पूर्वी एशिया की स्थिति

एशिया का पूर्वी क्षेत्र आर्कटिक चक्र पर बेरिंग जलडमरूमध्य से सुदूर दक्षिण में मलय द्वीप समूह तक फैला हुआ है। महाद्वीपीय आकार के इस क्षेत्र की कोई विशेष भौगोलिक एकता बताना बहुत कठिन है। इस क्षेत्र को तीन बड़े वर्गों में बाँटा जा सकता है—

— पूर्वी-प्रायद्वीपीय क्षेत्र

— दक्षिण-पूर्व का क्षेत्र, और

— एक केंद्रीय मुख्य भूमि क्षेत्र

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इनमें से पूर्वी प्रायद्वीपीय क्षेत्र में, तट से लगी पर्वत शृंखलाएँ दक्षिण में बेरिंग जलडमरूमध्य से ओखोत्स्क सागर के दक्षिण-पश्चिमी सिरे तक फैली हैं। ये पर्वत शृंखलाएं अपने पीछे की भूमि को अतिक्रमण से बचाने का काम करती हैं और समुद्री प्रभाव को एक संकरी तटीय पट्टी तक ही रोके रखती हैं। इस क्षेत्र में निम्न भूमि के लम्बे-चौड़े फैलाव नहीं हैं और इसकी जो प्राकृतिक विशेषताएं हैं लगभग सभी लोगों के लिए भयंकर कठिनाइयों का कारण हैं। जाड़ों का समय लंबा और मौसम खराब होता है। फसलें उगाने का मौसम छोटा होता है। और जाड़ों में भूमि पर काफी मोटी बर्फ जम जाती है। इन तमाम प्राकृतिक विशेषताओं के कारण इस क्षेत्र की अपनी अलग पहचान है।

व्यापक क्षेत्रीय संदर्भ में, पूर्वी एशिया में दक्षिण-पूर्वी एशिया भी आ जाता है। भौगोलिक संपर्कों, भाषाई संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों के नजरिए से यह क्षेत्र एशिया महाद्वीप के एक बृहत्तर भाग के रूप में सामने आता है। जहां तक नस्ल का संबंध है, पूर्वी एशिया मंगोलाई मनुष्यों का आवास है, और सांस्कृतिक दृष्टि से इसका संबंध उस सभ्यता से है जिसकी जड़ें प्राचीन चीन में हैं। नस्ल, रंग, धर्म और सभ्यता के कारण पूर्वी एशिया का यह क्षेत्र, विशेषतौर पर दक्षिण पूर्वी एशिया और मध्य एशिया के संदर्भ में, अपना प्रभाव बाहरी दुनिया तक फैलाने में सफल रहा है।

1.2.2 क्षेत्र की विशिष्टता

पूर्वी एशिया के केन्द्रीय क्षेत्र की संरचना उत्तर और दक्षिण में पड़ने वाले प्रदेशों से बिल्कुल अलग किस्म की है। इसमें लम्बी-चौड़ी भूमि का विस्तार आता है जिस पर कोई 175 कि.मी. अंदर तक समुद्र तट आता है और जिसकी पूरी लंबाई मध्य एशिया से लगी है। उत्तर में सुदूर ताईहांग शान तक चली गई खाई, गान पर्वतमाला और ह्वांगहो के ठीक उत्तर में पड़ने वाली उच्च भूमि तटीय क्षेत्र को उत्तरी मध्य एशिया से अलग करती है। तिब्बती सीमा की पर्वत शृंखलाएँ दक्षिण में मध्य एशिया के ऊंचे देश के साथ इसकी सीमा बनाती हैं। महाद्वीप के सीमा प्रदेश पर हाल की भौगोलिक उथल-पुथल उत्तरी क्षेत्र को पूर्व में जापान सागर

से अलग करती है। केन्द्रीय या मध्यवर्ती मुख्य भूमि का क्षेत्र ऐसा अकेला क्षेत्र है जिसमें आमूर, ह्वांग हो और यांगसी जैसी बड़ी नदी व्यवस्थाओं का विकास हुआ है। ये नदी घाटियां पीछे तक इस बाहरी क्षेत्र में होती हुई मध्य एशिया तक फैली हैं।

और विशिष्ट अर्थों में, पूर्वी एशिया का क्षेत्र अपने में एशिया के पूर्वी छोरों और उससे मिले हुए पूर्वी साइबेरिया, चीन, मंगोलिया, उत्तरी और दक्षिणी कोरिया और जापान जैसे कई देशों को समेटे हुए है। इसमें दक्षिण पूर्वी एशिया, फिलीपीन, इंडोनेशिया, मलय प्रायद्वीप और भारतीय उप-महाद्वीप को भी लिया जा सकता है। बहरहाल, यहाँ हम मुख्यतौर पर केवल चीन और जापान जैसे देशों पर ही गौर करेंगे।

1.2.3 प्रदेश और पर्यावरण

वैसे तो पूर्वी एशिया का यह बाहरी क्षेत्र उत्तर, उत्तर-पूर्व से दक्षिण-दक्षिण पूर्व तक पैंतीस अक्षांश तक फैला है, फिर भी आकार की दृष्टि से यह अपने आप में एक पूर्ण क्षेत्र है। आमूर और ह्वांग हो की घाटियाँ मध्य एशिया के किनारे पर पड़ने वाले हिस्सों के उत्तरी भाग के लिए मार्ग बनाती हैं और जेहोल के उच्च या पर्वतीय देश से होकर पश्चिम से पूर्व तक दर्रे हैं। लेकिन तिब्बत का ऊँचा महाद्वीपीय पठार बहुत दुर्गम है, इसे पार करने के लिए घूम कर ह्वांग हो के सहारे या अनेक नदी घाटियों के दक्षिण में पड़ने वाले पठार से होकर जाना पड़ता है।

पूर्व-पश्चिम की बनावट में उत्तर-दक्षिण से कहीं कम स्पष्टता होने के कारण इस क्षेत्र में उत्तर से दक्षिण की ओर जाना पूर्व से पश्चिम की ओर जाने की अपेक्षा कहीं आसान है। उदाहरण के तौर पर, दुजगारी नदी मध्य मंचूरिया से आमूर नदी के निम्नवर्ती प्रसार तक उत्तर की ओर बहती है, जबकि शाहाईक्वान में दक्षिण की ओर उत्तरी चीन के मैदानी भाग में जाने का प्रवेश मार्ग है जो दक्षिण-पूर्व की ओर यांगसी के मैदान से जाकर मिल जाता है और भी पश्चिम की ओर जाने पर, ह्वाईयांग और ताइपे शान के दोनों ओर मार्ग हैं जो दूंग तिंग और पोयांग की खाड़ियों की ओर जाते हैं।

पूर्व पश्चिम की बड़ी नदी व्यवस्था और उत्तर-पश्चिम के प्राकृतिक मार्गों के कुछ क्षेत्रों में, संपर्क अपेक्षाकृत अधिक आसान हो गया है। इन क्षेत्रों में से, जिस क्षेत्र में ह्वांग हो बहकर उत्तरी चीन के मैदानी भाग और निम्नवर्ती यांगसी के मैदानी भाग में पहुंचती है, वह क्षेत्र संचार की दृष्टि से सबसे विकसित है। आकार की दृष्टि से मध्य-पूर्व एशिया के इस बाहरी प्रदेश में महाद्वीप के किनारों पर मिलने वाली विशेषताएं भी पाई जाती हैं और अंदरूनी हिस्सों में मिलने वाली विशेषताएं भी। मध्यवर्ती हिस्से और तटवर्ती हिस्सों के बीच आपसी क्रिया पूर्वी एशिया की अपनी अलग विशेषता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भौगोलिक दृष्टि से, जापान इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कटा रहा। महाद्वीप में चलने वाली हवाएं और हवा पानी की बनावट जापान की जलवायु को शीतोष्ण बनाती हैं। जापानी द्वीप एक चाप में फैले हुए हैं जो होकैडो के उत्तर में ठंडे और शीतोष्ण क्षेत्रों से लेकर अर्ध उष्णकटिबंधी जलवायु वाले दक्षिणी रिक्या द्वीपों तक जाता है। पूर्वी और पश्चिमी तट पर बहने वाली एक गर्म लहर एशियाई महाद्वीपीय व्यवस्था के प्रभाव को कम कर देती है। लेकिन होकैडो और होंशू के पश्चिमी भाग में भयंकर हिमपात होता है। होकैडो, होंशू, शिकोकू तथा को क्यूशू के चार मुख्य द्वीपों में से लगभग 75 प्रतिशत पर्वतीय हैं। अंतिम बात, जापान तूफान के मार्ग में पड़ता है और पूर्वी तट पर एक गहरी समुद्र खाई होने के कारण वहाँ अनेक भूचाल आते रहते हैं। उसमें सैकड़ों ज्वालामुखी है और ऐतिहासिक फ्यूजी पर्वत तो सबसे अधिक सक्रिय है।

इस पहाड़ों वाले देश में बड़े मैदानी भाग बहुत ही कम हैं। इनमें सबसे बड़ा मैदानी भाग कांटो आज के टोक्यो के आसपास है। ओसाका शहर के आसपास का मैदानी भाग कानसाई कहलाता है। नदियाँ छोटी और तेज़ बहाव वाली हैं और बाढ़ यहां की पुरानी समस्या है। जापान की खेती योग्य अधिकांश भूमि संकरी नदी घाटियों और कछारों वाली भूमि है। पहाड़ियाँ इन्हें एक-दूसरे से अलग करती है, इसलिए भूमि पर संचार कठिन है। यह देश अधिकांश तौर पर वनस्पति और वनों से भरा है।

किसी भी स्थान का पर्यावरण वहाँ की सामाजिक व्यवस्था बनाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्यावरण का अध्ययन उसे और चीजों से काटकर नहीं किया जा सकता। यह ध्यान रखना होगा कि पर्यावरण का अध्ययन करने के लिए हमें जलवायु, जल सर्वेक्षण, मिट्टी की स्थिति और संस्कृति जैसे तथ्यों पर ध्यान देना होता है। उदाहरण के लिए, जलवायु बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि किसी स्थान की भौगोलिक विशेषताएँ जलवायु बनाने में और देश के लिए इसका महत्त्व निर्धारित करने में मदद करती हैं।

हर सर्दी के मौसम में, प्रत्याशित नियमितता के साथ, साइबेरिया के अधिक दबाव वाले केन्द्र से ठंडी हवाएं दक्षिण-पूर्व की ओर चलकर पूरे बाहरी क्षेत्र में फैल जाती हैं, और कम तेजी के साथ दक्षिण में निकल

जाती हैं। अधिकांश ठंडी हवाएं उत्तर-पश्चिम से चलती हैं। ठंडी हवा दक्षिणी क्षेत्र तक भी जाती हैं, लेकिन इसमें वह तेजी नहीं होती। मिट्टी अधिकांश तौर पर लाल होती है।

पूर्वी एशिया की सांस्कृतिक विशिष्टता में जलवायु का बहुत बड़ा योगदान है। भारत की जलवायु की तरह, पूर्वी एशिया की जलवायु भी अधिकांश तौर पर एशिया के बड़े भू-भाग से निर्धारित होती है। जाड़ों में, गर्म जलधाराओं के प्रभाव से बहुत दूर पड़ने वाले मध्य एशिया में हवा बहुत ठंडी हो जाती है और बाहर की ओर बहती है जिससे महाद्वीप के दक्षिणी और पूर्वी किनारों का मौसम ठंडा और सूखा हो जाता है। गर्मियों में इसका उल्टा होता है। मध्य एशिया की हवा गर्म होकर ऊपर उठती है, और इसका स्थान लेने के लिए नम समुद्री हवा दौड़ पड़ती है और महाद्वीप के किनारे के हिस्सों पर भारी वर्षा कर जाती है। यूरोप से सुदूर दक्षिण में, इन अक्षांशों पर होने वाली भारी वर्षा और तेज धूप के कारण गहन खेती और कई स्थानों पर प्रति वर्ष दो फसलें तक संभव हो जाती हैं।

इस विशिष्ट जलवायु ने पूर्वी एशिया को ऐसी कृषि व्यवस्था दी है जो यूरोपीय क्षेत्र की कृषि व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न है। चावल और सोयाबीन पूर्वी एशिया की प्रमुख फसलें हैं। मुर्गी और भैंस इस क्षेत्र के प्रमुख जानवर हैं। पूर्वी एशिया में बड़ी-बड़ी कृषि परियोजनाओं में पालतू जानवर आदमियों की तुलना में कम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चीन और जापान का मुख्य आनाज चावल है। बहरहाल, जापान में मछली एक अहम भोज्य पदार्थ है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से कौन-से वक्तव्य सही (√) हैं और कौन से गलत (×)? निशान लगायें।

   i) भारत गंगा क्षेत्र की संस्कृति पूर्व एशिया तक नहीं फैली।

   ii) व्यापक क्षेत्रीय संदर्भ में, पूर्वी एशिया में दक्षिण-पूर्वी एशिया भी आ जाता है।

   iii) मध्यवर्ती मुख्य भूमि क्षेत्र में बड़ी नदी व्यवस्थाओं का विकास हुआ।

2) व्यापक क्षेत्रीय संदर्भ में आप पूर्व एशिया को कहां रखते हैं? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....
....
....
....
....
....
....
....
....

1.3 लोग और पारिस्थितिकी

मनुष्य जाति की नस्लों की उत्पत्ति अब भी एक अनजानी कहानी है। होमो सेपियन या आधुनिक मनुष्य का एक पूर्वज पूर्व एशिया का साइनथ्रोपस या पीकिंग मानव है। ऐसे सात-व्यक्तियों के नर कंकाल 1927 में पीकिंग के दक्षिण पश्चिम में कोई तीस मील की दूरी पर एक गुफा में मिले थे। संभवतः कोई 400,000 वर्ष ई. पू. रहे इस पीकिंग मानव की कुछ शारीरिक विशेषताएँ थीं, जिनमें प्रमुख थें बेलचे के आकार के दांत, जो और किसी आधुनिक नस्ल की अपेक्षा मंगोलाई मनुष्य में अधिक पाए जाते हैं। यह पीकिंग मानव औजार बनाता था, शिकार करता था, आग का उपयोग करता था और संभवतः आदमखोर था।

जहाँ तक इतिहास की जानकारी है, पूर्वी एशिया के पूरे क्षेत्र में, बिल्कुल शुरु के दौर में भी मंगोलाई नस्ल के लोग फैले हुए थे, इसमें जापान भी शामिल है। मंगोलाई मनुष्यों की चमड़ी का रंग उत्तर में हल्के पीले रंग का तथा दक्षिण में (जैसे इंडोनेशिया में) गहरे कत्थई रंग का भी है। चमड़ी के रंग में यह विभिन्नता

उस क्षेत्र विशेष के पर्यावरण के कारण होती है। मंगोलाई नस्ल के लोगों की और विशेषताएं हैं "सीधे काले बाल, अपेक्षाकृत सपाट चेहरे और काली आंखें। पुरातत्वविज्ञान की खोजों से पता चलता है कि मंगोलाई नस्ल के लोग पूर्वी एशिया के उत्तरी और मध्यवर्ती भागों में दक्षिण की ओर और तटीय द्वीपों से बाहर की ओर फैल गये।

जैसा कि आप जानते हैं कि पारिस्थितिकी का विज्ञान लोगों और पर्यावरण के साथ लोगों के संबंध का अध्ययन करता है। पूर्वी एशिया के पूरे क्षेत्र में इस पर्यावरण में घनी वनस्पति है। पर्यावरण क्योंकि तापमान और वातावरण पर निर्भर करता है, इसलिए इन पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। प्राकृतिक वनस्पति के विशिष्ट क्षेत्रों में उन क्षेत्रों में पूरे वर्ष होने वाली वर्षा और तापमान के स्वरूपों में पाए जाने वाले अंतरों का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। जैसे-जैसे हम दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, अधिकतम तापमान और वर्षा और मिट्टी की स्थिति की श्रेणियों के कारण ऐसे विशाल भू-भाग सामने आते हैं जहाँ प्राकृतिक वनस्पति में बहुत समानता पायी जाती है। इनसे लगा हुआ वह प्राकृतिक क्षेत्र है जिसका देश के सांस्कृतिक इतिहास में बहुत अधिक महत्त्व है—घास और वनों वाली लोस पहाड़ियों और उत्तरी चीन का मैदानी भाग, जहाँ आज भी केवल कहीं-कहीं खड़े पेड़ों और झाड़ियों से जमीन के नीचे पानी होने का पता चलता है।

पीकिंग मानव के प्लाइस्टोसीन (अभिनूतन) काल में, ठंडे और गर्म युगों के सिलसिले के दौरान, साइबेरिया और मध्य एशिया के ठंडे हवा के ऊंचे दबाव वाले क्षेत्र ने तापमान को भी गिराया और जाड़ों में सूखे की अवधि को भी बढ़ाया। विभिन्न अक्षांशों और उन्नतांशों पर, जलवायु में होने वाले इन बदलावों ने वनस्पति को बहुत अधिक प्रभावित किया है, और कुछ नयी किस्म की वनस्पतियों का जन्म भी हुआ है। इसमें ज्वार की कुछ किस्में शामिल हैं, जैसे मोटा अनाज, और जौ और जई आदि। पूर्वी एशिया में बहुत पहले उगाए जाने वाले और पौधे हैं सोयाबीन, चीनी गन्ना, शहतूत, तिलहन और रोगन देने वाले पेड़।

पूर्वी एशिया के भीतर मनुष्यों का विभाजन नस्ल के आधार पर न होकर भाषा के आधार पर अधिक है। पूर्वी एशिया में सबसे बड़ा भाषायी विभाजन चीनी तिब्बती परिवार है। इस भाषा-परिवार की तुलना अधिकांश यूरोप में फैले बड़े इंडो-यूरोपीय परिवार से की जा सकती है। चीनी तिब्बती भाषायी परिवार का पूर्वी एशिया के मध्य भाग में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसमें पूरा मुख्य चीन, तिब्बत, थाइलैंड, लाओस, बर्मा और वियतनाम आ जाते हैं। चीनी-तिब्बती भाषायी परिवार में, सबसे बड़ा उप-विभाजन चीनी है। वे और हिस्सों में चले गये हैं और साथ के समूहों की संस्कृति और भाषा के साथ घुल-मिल गये। पूर्वी एशिया का एक और बड़ा भाषायी परिवार है—आस्ट्रोनीशियाई, जिसमें मलेशिया, इंडोनेशिया, फिलीपीन्स की भाषा और ताइवान के आदिवासियों की बोलियाँ आ जाती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.4 आदतें, समाज और संस्कृति

एक समुदाय के रूप में, पूर्वी एशिया के लोगों की अपनी कुछ आदतें हैं। उनके पास सुरुचिपूर्ण साज-सज्जा की अनूठी शैली है, जिसकी अपनी अलग पहचान है। उनकी प्रथाएं सुसंस्कृत हैं और उनके खान-पान की आदतें ऐसी हैं कि उन्हें चापस्टिक और चीनी मिट्टी और रोगन वाली तश्तरियों का प्रयोग करना होता है। उन्होंने चित्रकला और साहित्य का भी विकास किया। लेकिन एक और कारक है जिसने चीनियों को किसी और समुदाय की अपेक्षा शायद कहीं अधिक एकता के सूत्र में बांधा है, यह कारक है लिखने की पद्धति क्योंकि इसके कारण, भाषा और बोलियों के अंतर के बावजूद आपसी समझ संभव होती है। दूसरी ओर, हम देखते हैं कि जापानी भाषा बहु-आक्षरिक या कई सिलेबल वाली है, और कोरियाई भाषा के समान है।

यहाँ जीवन का केन्द्र परिवार रहा है जो कट्टर पितृसत्तात्मक था, लेकिन आज भी यहां परिवार में समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा मिलती है। एक इकाई के रूप में, परिवार आज भी व्यक्तिवादी है। इसमें अब भी एक श्रेणीबद्धता है, जिसमें हर सदस्य का स्थान है, और उसे उसी के अनुरूप रहना होता है। वे पूर्वजों की पूजा करते हैं और अपने से बड़ों में श्रद्धा रखते हैं। यहाँ की परिवार-व्यवस्था भी तानाशाही वाली रही। इस विशेष तानाशाही व्यवस्था ने राजनीतिक और पारिवारिक दोनों क्षेत्रों में सामाजिक व्यवस्था के लिए आधार बनाने का काम किया। उदाहरण के लिए, चीन में, सम्राट और उनके अधिकारियों की भूमिका को परिवार के पिता के समान माना जाता था। जिला मजिस्ट्रेट को लोगों का "पिता और माता" कहा जाता था।

चीन और जापान दोनों में स्पष्ट आर्थिक, समाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास हुए, इन पर अलग से आगामी इकाइयों में चर्चा की गयी है।

1.5 पूर्वी एशिया और उसके पड़ोसी क्षेत्र

पूर्वी एशिया के क्षेत्र का दूसरे क्षेत्रों के साथ, एशियाई भू-खंड के पार रेशम के मार्ग से होकर और हिंद महासागर से होकर समुद्री रेशम-मार्ग के पार, ऐतिहासिक संपर्क रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से, दोनों ही यात्राएं लंबी और कठिन थीं। इस क्षेत्र के भीतर, चीनी सभ्यता और संस्कृति पड़ोस के क्षेत्रों तक फैली है, कोरिया से होकर जापान में, और दक्षिण में भारत-चीन प्रायद्वीप और इंडोनेशिया में। इस तरह पूर्वी एशिया के पड़ोसी क्षेत्रों में सांस्कृतिक समानताएं बनीं।

शासी, शेसी और होनान वाले भू-भाग चीनी बस्ती और संस्कृति का सबसे पुराना क्षेत्र हैं। इसी क्षेत्र के पूर्वी बाह्यांचल पर पूर्वी एशिया के सबसे पहले शहरों और राज्यों की बुनियाद पड़ी, यह काम बहुत शुरुआत के दौर में हुआ और एक लंबे अरसे तक यह चीनी एकता राज्य की विशेषता का प्रतीक रही। इसकी प्राचीन राजधानियां, चांगा और लोयांग, भी यहीं बनीं। यह पश्चिमी, दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी एशिया के सांस्कृतिक प्रभावों का संगम और एक ऐसा केन्द्र रहा जहां से चीनी लोग, उनकी प्रथाएं और उनकी संस्कृति पड़ोस के क्षेत्रों में फैली।

चीन दक्षिण-पूर्वी एशियाई क्षेत्र (जो कि आधुनिक थाईलैंड के नजदीक है) के संपर्क में आता है। थाई क्षेत्र दक्षिण-पूर्वी, दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी यूनान से क्वीचो तक फैला है, और एक स्पष्ट सीमा-रेखा इसे काटती हुई चीनी संस्कृति के क्षेत्र को दक्षिण-पूर्वी एशिया के संस्कृति क्षेत्र से अलग करती है। यह बौद्ध धर्म की दो शाखाओं—महायान और हीनयान—का संगम है। महायान महाद्वीपीय एशिया और मध्य चीन के रास्ते आया, और हीनयान भूमि और सागर मार्ग से हिमालय के दक्षिण और भारत से पूर्व की ओर पहुँचा। यहाँ तक कि भारतीय प्रशांत प्रायद्वीप भी बंगाल की खाड़ी और तोकिंग की खाड़ी के बीच एशिया महाद्वीप के विस्तृत भू-भाग से निकलता है। यह एक भौगोलिक इकाई है जो पश्चिमी सीमा पर बर्मा के पहाड़ों से लेकर अन्नाम के पार के प्रशांत तट तक, और विशाल उत्तरी नदियों की गहरी घाटियों के दक्षिणी सिरे से लेकर दक्षिण में सिंगापुर तक फैली है। पहाड़ों और नदियों वाला पूरा दक्षिण-पूर्वी एशियाई प्रायद्वीप दक्षिण की ओर है, और नदियां भी उसी दिशा में बहती हैं, और बड़े-बड़े कस्बों वाले उपजाऊ डेल्टाई मैदान आदि के सारे शहर इसके दक्षिण तट पर स्थित हैं। भौगोलिक दृष्टि से देखा जाए तो, तोकिंग का डेल्टाई मैदान बिल्कुल साफ तौर पर महाद्वीपीय पूर्वी एशिया की ओर ले जाता है। ये क्षेत्र पूर्वी एशिया के चारों तरफ हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

समय बीतने के साथ, पूर्वी एशिया टूटने लगा और इसके कुछ भाग पड़ोसी राज्यों और क्षेत्र का हिस्सा बन गये। मध्य एशिया की सीमा पर पड़ने वाले क्षेत्रों के पश्चिम और दक्षिण की ओर के प्रदेशों के साथ लंबे सांस्कृतिक संपर्क थे। ये सीमांत क्षेत्र अब जाकर पूरी तौर पर चीनी रंग में ढल रहे हैं। अब तक वे पूर्वी एशिया के क्षेत्र रहे, लेकिन सांस्कृतिक दृष्टि से नहीं, केवल राजनीतिक अर्थ में।

पूर्वी एशिया और इसके पड़ोसी राज्यों के बीच आर्थिक संबंध की प्रक्रिया में बढ़ोत्तरी और विकास देखने को मिला है। क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करने के प्रयास हुए हैं और इसने दोनों के बीच एक प्रतीकात्मक संबध का काम किया है, जहाँ एक क्षेत्र अपने अस्तित्व के लिए दूसरे क्षेत्र का पोषण कर रहा है।

चीन समग्र पूर्वी एशियाई सभ्यता का केन्द्रीय बिन्दु है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण, पहले के समय में मध्य राज्य हमेशा छोटे और कमजोर राज्यों के केन्द्र में रहा, जिनकी अधीनता उनके द्वारा दिए जाने वाले नज़राने में व्यक्त थी। निश्चय ही इस संबंध में कोई साम्राज्यवादी प्रवृत्तियां शामिल नहीं थीं और यह संबंध 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक बना रहा, फिर यूरोपीयों और अमेरिका ने इसे तोड़ दिया। दूसरी ओर, जापान कटा हुआ रहा। बहुत बाद में जाकर चीनी प्रभाव जापान में पहुंचा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जाकर जापान ने अपने अधिकार को व्यक्त किया और इस क्षेत्र में एक प्रधान राजनीतिक भूमिका अदा की। इस पर हम आगामी खंडों में चर्चा करेंगे।

पूर्वी एशियाई सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण ने पड़ोसी क्षेत्रों के साथ घनिष्ठ संबंधों के विकास की प्रक्रिया में एक निर्णायक भूमिका निभाई। यह चीनी विशेषता ही थी जिसने दूसरे देशों के साथ मजबूत संबंध बनाने में मदद की।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में से कौन-से वक्तव्य सही (√) हैं और कौन से गलत (x)? निशान लगायें।

   i) पूर्वी एशिया में मनुष्यों का विभाजन मुख्य तौर पर भाषा के आधार पर है।

   ii) परिवार-व्यवस्था तानाशाही नहीं थी।

iii) पूर्वी एशिया और इसके पड़ोसी क्षेत्रों के बीच कोई आर्थिक संबंध नहीं रहा।

iv) चीन पूर्वी एशियाई सभ्यता का केन्द्रीय बिन्दु रहा है।

परिवार-व्यवस्था की विशेषताएं बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने पूर्वी एशिया के प्रदेश, देशों और लोगों के विषय में चर्चा की। इस इकाई में पूर्वी एशिया और उसके पड़ोसी क्षेत्र की रूपरेखा, संस्कृति, लोगों, पारिस्थितिकी या पर्यावरण और संबंधों के स्वरूपों की जानकारी दी गयी। इस प्रक्रिया में हमने कुछ विशेषताओं के बारे में जाना जिन्होंने इस सांस्कृतिक क्षेत्र के विकास को प्रभावित किया, और जो इसे समझने के लिए आवश्यक हैं। इनमें शामिल थीं :

- पूरे क्षेत्र की स्थिति को समझना और इसके भौगोलिक परिवेश को निश्चित करना,
- क्षेत्र की पारिस्थितिकी और पर्यावरण,
- लोगों की शारीरिक विशेषताएँ,
- सामाजिक संरचना, आदतें और संस्कृति, और
- विभिन्न देशों के बीच संबंधों के स्वरूप।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.7 शब्दावली

मुख्यभूमि : किसी महाद्वीप की मुख्य भूमि या उसका सबसे बड़ा भाग, जो अपेक्षाकृत छोटे द्वीप या प्रायद्वीप से भिन्न होता है।

निम्न भूमि : वह भूमि जो आस-पास की भूमि के धरातल से नीची होती है।

उच्च भूमि : वह भूमि जो आस-पास की भूमि के धरातल से ऊँची होती है और जिसमें कई पहाड़ियाँ और पहाड़ होते हैं, समुद्र तल से बहुत ऊँचाई पर स्थित भूमि।

लोस : एक प्रकार की दुम्मट (मिट्टी) जो उत्तरी अमेरिका, एशिया और यूरोप में बहुतायत में पायी जाती है।

महायान : बौद्ध धर्म की एक शाखा जिसका विकास मुख्य तौर पर चीन, कोरिया और जापान में हुआ, यह आदर्शवाद, निस्वार्थ प्रेम, दूसरों के दुखों के निवारण आदि पर जोर देती है।

हीनयान : बौद्ध धर्म की दूसरी शाखा जो महायान से कई मायनों में भिन्न थी।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) × ii) √ iii) √ iv) ×

2) अपना उत्तर उपभाग 1.2.1 के आधार पर लिखें।

बोध प्रश्न 2

1) i) √ ii) × iii) × iv) √

2) देखिये भाग 1.4

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 2 समाज एवं राजनीति : चीन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 विकसित कृषि समाज
2.2.1 सम्भ्रांत वर्ग
2.2.2 कृषक
2.2.3 व्यापारी वर्ग
2.3 कन्फ्यूशियसवादी राज्य
2.3.1 सम्राट
2.3.2 नौकरशाही
2.4 19वीं सदी के प्रारम्भ में पतन एवं संकट
2.4.1 चिंग के अधीन राज्य एवं समाज
2.4.2 जनसंख्या का दबाव
2.4.3 प्रशासनिक पतन
2.4.4 आर्थिक संकट
2.4.5 सैन्य कमजोरियां
2.4.6 19वीं सदी के मध्य का संकट
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातें जान पाऐंगे :

- परम्परागत चीनी समाज के मूलभूत चरित्र और इसके मुख्य सामाजिक विभाजन क्या थे
- आधुनिक काल से पूर्व चीनी राज्य तथा उसकी प्रमुख राजनीतिक संस्थाओं की प्रकृति क्या थी और
- पश्चिमी साम्राज्यवाद के आगमन के समय चीन में विद्यमान सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति क्या थी।

2.1 प्रस्तावना

पारंपरिक चीन की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था जटिल थी। 20वीं सदी के मध्य में इसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। कुछ विकासात्मक परिवर्तनों के साथ, दो हजार वर्षों तक, एक विशाल क्षेत्र, जनसंख्या और व्यापक अनेकताओं को एक साथ रखते हुए यह अपने मूल रूप में चिरस्थायी बनी रही। इस दृष्टि से सच में यह मानव सभ्यता की एक अद्भुत देन थी। 19वीं सदी में चीन के अन्दर जो क्रान्तिकारी तरंगें पैदा हुई उन के सहित चीन की पश्चिम के प्रति प्रतिक्रिया की प्रकृति को समझने के लिये, उसके सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन की परम्परागत व्यवस्था की मजबूती को जानना अति महत्वपूर्ण है। 18वीं सदी एवं 19वीं सदी के प्रारम्भ में जिन कारणों ने इस व्यवस्था को अन्दर से कमजोर किया उनका विश्लेषण करना भी आवश्यक है। इस इकाई में इन पक्षों का विवरण किया गया है।

2.2 विकसित कृषि समाज

चीन सदैव से एक कृषि प्रधान समाज रहा है। उसकी जनसंख्या का अधिकतर भाग गाँव में रहता था और कृषि उनकी आजीविका का मुख्य स्रोत था। समाज में मूलभूत विभाजन एक ओर बड़ी संख्या में मेहनतकश

किसानों तथा दूसरी ओर जमींदारों के बीच था। जमींदार स्वयं कृषि नहीं करते थे बल्कि उस आमदनी के आधार पर जीवन व्यतीत करते थे जो उनको किसानों के खेतों पर परिश्रम करने से प्राप्त होती थी। लेकिन इसका अर्थ नहीं है कि चीन का समाज एक सामान्य कृषि समाज था। प्राचीन समय से चीन की सामाजिक व्यवस्था काफी जटिल एवं विकसित थी। उदाहरण के लिए, एक हजार ई.पू. के प्रारम्भ से ही हम चीन में काफी बड़ी तादाद में सीमा की किलेबंदियों, प्रमुख मार्गों , बड़े बाँध और सिंचाई योजनाओं आदि के निर्माण को देखते हैं। ऐसे कुछ निश्चित कारण थे जिन्होंने प्रारम्भिक प्राचीन काल से ही एक शक्तिशाली राज्य संगठन के विकास में योगदान किया। चीनी सभ्यता का विकास सदियों तक उन परिस्थितियों में हुआ जिन्होंने लोगों को व्यापक स्तर पर सामूहिक राजनीतिक एवं आर्थिक गतिविधियों को करने के लिए बाध्य किया। उदाहरण के लिये, चीन में अपने खानाबदोश पड़ोसियों के आक्रमणों से स्वयं को सुरक्षित रखने की आवश्यकता पड़ती और इसी के साथ बाढ़ो के विप्लव से सुरक्षित रखने पर उचित सिंचाई आदि को सुनिश्चित करने की भी आवश्यकता रहती थी।

विशेषकर 10वीं सदी से व्यापारिक कृषि एवं अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार की प्रचुर वृद्धि ने भी चीनी समाज एवं राज्य के चरित्र को व्यापक रूप से प्रभावित किया। अब शासक वर्ग अपनी सम्पत्ति को मात्र कृषि से ही नहीं बल्कि व्यापार से भी प्राप्त करने लगा। मुद्रा—अर्थव्यवस्था का विकास; सक्रिय नगरीय केन्द्रों में वृद्धि; साक्षरता का प्रसार (विशेष रूप से समाज के उच्च वर्गों में); समुद्र पार के विस्थापन के साथ-साथ अन्तर्क्षेत्रीय विस्थापन में वृद्धि आदि सभी ने संयुक्त रूप से चीनी समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। परिणाम स्वरूप यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति तक चीन विश्व के सबसे विकसित समाजों में से एक था।

2.2.1 सम्भ्रांत वर्ग

पारंपरिक चीन में तीन मुख्य सामाजिक वर्गों में जो प्रभुत्वशाली वर्ग था उसको "सम्भ्रांत वर्ग" कहा जाता है।

सम्भ्रांत वर्ग जमींदारों का वर्ग था और वह स्वयं अपने खेत पर कार्य नहीं करता था। वे अपनी आमदनी को मुख्य रूप से भूमि के लगान से प्राप्त करते थे, यद्यपि सम्पूर्ण आमदनी को नहीं। जो किसान उनकी भूमि पर कार्य करते वे उनको अक्सर अपनी फसल का आधा भू-राजस्व के रूप में अदा करते थे। लेकिन इस वर्ग को केवल भू-स्वामी के रूप में परिभाषित करना गलत होगा। ऐसा इसलिये है क्योंकि समय के साथ-साथ सम्भ्रांत वर्ग के बहुत से सदस्यों ने अनेकों व्यवसायों की शुरुआत की। उन्होंने अपनी शैक्षिक उपलब्धियों, सामाजिक सम्मान और जीवन शैली के द्वारा स्वयं को इस ढंग से भिन्न बनाया कि वे स्पष्ट रूप से आम आदमी से अलग रूप में देखे जाने लगे। सम्भ्रांत परिवारों के बेटे व्यापक रूप में कन्फ्यूशियस दर्शन में गहन शिक्षा की प्रक्रिया से होकर गुजरते थे। उनकी सफलता को उन मान्यता प्राप्त डिग्रियों के आधार पर आंका जाता था जिनको वे राज्य द्वारा आयोजित अनेक स्तरों की परीक्षाओं के द्वारा प्राप्त करते थे। परीक्षाओं में सबसे अधिक सफलता प्राप्त करने वाले प्रत्याशियों को शाही सरकार के पदाधिकारियों के रूप में नियुक्त किया जाता था। इसको परम्परागत चीनी समाज में सर्वोच्च उपलब्धि माना जाता था। सम्भ्रांत वर्ग के परिवार में एक या एक से अधिक सदस्यों के द्वारा उच्च सार्वजनिक पद प्राप्त कर लिये जाने पर वे इस पद का उपयोग अपनी भू-सम्पत्ति को बढ़ाने एवं सुरक्षित करने के लिये भी करते और अन्य स्रोतों से भी धन प्राप्त करके अपने सामाजिक सम्मान के स्तर को बढ़ाते।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चाहे वे सम्राज्यवादी सरकार में कार्यरत थे या फिर अपने ग्रामीण भू-सम्पत्ति के क्षेत्र में, परन्तु सम्भ्रांत वर्ग के सदस्यों के महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक कार्य थे। गैर-सरकारी सम्भ्रांत वर्ग के सदस्य स्थानीय प्रभावशाली सदस्यों के रूप में जिला स्तर पर कार्य करते थे, शाही सरकार की स्थिरता तथा प्रभावशीलता के लिये उनका सहयोग अति आवश्यक था। उदाहरण के लिये वे :

- लोक हित तथा सार्वजनिक कार्यों के निर्माण एवं अनुरक्षण करते,
- अनौपचारिक तौर पर स्थानीय लोगों के झगड़ों का फैसला करते और स्थानीय लोगों तथा प्रशासन के बीच की कड़ी के रूप में कार्य करते।
- प्रजारक्षक दलों तथा दूसरे प्रकार के आत्म-रक्षा संगठनों को (जैसे पुलिस) अपने-अपने क्षेत्रों में संगठित करते, और
- संकट की घड़ी में व्यवस्था बनाये रखने का कार्य करते। सामान्यतः जब कभी भी साम्राज्यवादी सरकार की शक्ति एवं प्रभावशीलता का ह्रास हुआ तब-तब उनके कार्यक्षेत्र एवं उत्तरदायित्वों में वृद्धि हुई। सम्राज्यिक व्यवस्था के अन्तिम वर्षों में इसको स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि जब कभी सम्राटों और शासक वंशों का उदय एवं पतन हुआ, सम्भ्रांत वर्ग की शासकों के अनुरूप अपने को ढालने की इच्छाशक्ति, एक अनोखी निरन्तरता को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिये 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस वर्ग के वास्तविक लचीलेपन को देखा गया। यह वह समय था जबकि साम्राज्यवाद तथा आधुनिक उद्योग एवं व्यापार की वृद्धि ने परम्परागत कृषि अर्थव्यवस्था में गहन रूप से पैठ की। इससे भी अधिक :

- 1905 में परीक्षा व्यवस्था को समाप्त कर दिये जाने से सम्भ्रांत वर्ग की प्रगति का एक मुख्य केन्द्र बन्द हो गया, और
- 1911 की क्रान्ति ने सम्राज्यिक शासन के सम्पूर्ण ढांचे को धराशायी कर दिया जिसके साथ सम्भ्रांत वर्ग गहन रूप से जुड़ा हुआ था।

एक वर्ग के रूप में सम्भ्रांत वर्ग तुरन्त समाप्त न हुआ, बल्कि लगातार अपने को नई परिस्थितियों के अनुरूप ढालते हुए विद्यमान रहा यद्यपि इसका स्वरूप विकृत होता गया था। परम्परागत समाज तथा राजनीतिक व्यवस्था का पूर्ण स्थायित्व एवं लचीलापन अखण्ड रूप से इस वर्ग के कार्यों और चरित्र से जुड़ा था।

2.2.2 कृषक

चीनी समाज का बहुसंख्यक वर्ग कृषक था। किसानों की स्थिति एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र और एक काल से दूसरे समय में भिन्न-भिन्न थी। परन्तु कुल मिलाकर वे गरीब थे तथा उनका गहन रूप से शोषण किया गया था। तीसरी से छठी शताब्दी तक विस्थापन के बड़े दौर के बाद चीन के केन्द्रीय एवं दक्षिण क्षेत्र पूर्णतः बस गये और उपलब्ध भूमि की मात्रा में कोई विशेष वृद्धि न हो सकी। इस कारणवश कृषि भूमि पर आबादी का काफी दबाव बढ़ा। सिद्धान्त में, चीनी किसान भू-दास न थे, लेकिन वास्तविकता में उनकी हालत भू-दासों से अच्छी न थी। दरिद्रता एवं असुरक्षा के कारण वे जमींदारों के काश्तकार हो गये तथा वे अपनी फसल का आधा भू-लगान के रूप में जमींदारों को अदा करते थे। किसान जमीदारों के द्वारा की जाने वाली जबरन मांगों को पूरा करने तथा दूसरी ओर राज्य को अदा करने वाले भारी करों (बेगार भी शामिल था) के बीच फंस गये । करों का बोझा इतना दमनात्मक था कि वे अपना स्वतंत्र कृषक स्तर खो बैठे तथा हजारों किसान अपने गाँवों से भागने लगे और वे शक्तिशाली जमींदारों के मात्र काश्तकार बन गये। ये जमींदार इन काश्तकारों की राज्य के अधिकारियों द्वारा की जाने वाली जबरदस्त वसूली से सुरक्षा करते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आये दिन बाढ़, सूखा और अन्य प्राकृतिक आपदाओं ने किसानों की दरिद्रता को और बढ़ाया ये आपदायें जल्दी-जल्दी आती थीं और इनके परिणाम उस समय और भयंकर होते जिस समय शाही सरकार कमजोर होती थी और वह सामान्य कृषि गतिविधियों के लिये बांधों झीलों और दूसरे आवश्यक सार्वजनिक कार्यों को अनुरक्षण नहीं दे पाती थी। जब कभी भी केन्द्रीय प्रभुत्व कमजोर हो जाता, तब स्थानीय अधिकारियों या सम्भ्रांत वर्ग के सदस्यों के द्वारा बलपूर्वक किसानों से की जाने वाली अवैध वसूलियों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता था। जब भी चीन के इतिहास में इस प्रकार का समय आता, तब हम देखते हैं कि गुप्त संस्थाओं की प्रचुरता हो जाती और डकैतियों की घटनाओं में वृद्धि होने लगती। कुल मिलाकर गुप्त संस्थाओं, डकैतियों और अन्य प्रकार की अराजकता का कारण किसानों एवं ग्रामीण समाज के अन्य गरीब तबकों के बीच गहराता असन्तोष एवं अभाव का फूट पड़ना था। अपनी बढ़ती कठिनाइयों के कारण किसान अक्सर ऐसी संस्थाओं की रचना करते थे जिनको गुप्त रखना पड़ता था क्योंकि राज्य के द्वारा उनकी जोरदार तलाश की जाती थी। यह विशेषकर उन किसानों के बारे में सत्य था जो, आर्थिक तथा राजनीतिक मजबूरियों के कारण, अपने घर बार छोड़ने के लिये बाध्य हुए और आजीविका की खोज में प्रवासी हो गये। स्वाभाविक ही था कि जब कभी कठिन समय आता तब ये संस्थायें किसी न किसी प्रकार की डकैती का सहारा लेती और सामान्यतः स्थानीय धनी लोग इनका निशाना होते थे।

किसानों के बीच वास्तविक जन असन्तोष एवं हताशा के समय, अक्सर ये संस्थायें किसान विद्रोहों का केन्द्र बिन्दु बन जाती थीं और कभी-कभी ये उन व्यापक स्तर के विद्रोहों का भी केन्द्र बन जाती जो अधिकारीगणों तथा शासक वंश के विरुद्ध होते थे। समय-समय पर, काफी बड़ी सेनाओं का गठन किया जाता और ये सेनायें स्थानीय या प्रांतीय सरकारों के केन्द्रों में लूट-खसोट करती या स्वयं राजधानी की ओर अग्रसर होने का प्रयास करतीं। जब वे शाही मुख्यालयों में उथल-पुथल मचाने में सफलता प्राप्त कर लेतीं जैसा कि चीन के इतिहास में कई बार हो चुका है, इसका निरपवाद अर्थ था शासक वंश का धराशाही होना। इस प्रकार जहाँ किसान एक ओर शोषित एवं पीड़ित वर्ग था, वहीं उसने कई बार नए शासक परिवार को चीन के सिंहासन पर बैठा कर राजनीतिक मामलों में निर्णायक भूमिका अदा की।

2.2.3 व्यापारी वर्ग

कन्फ्यूशियस दर्शन की योजनाओं के अनुसार व्यापारी सामाजिक व्यवस्था के सबसे निचले स्तर पर थे, यहाँ तक कि कृषकों से भी छोटे समझे जाते थे। वाणिज्य कृषि की भांति नहीं था तथा वाणिज्य को आर्थिक गतिविधि की प्राथमिक इकाई नहीं समझा जाता था। लेकिन व्यापार में इस औपचारिक निम्न स्तर को व्यवहार में नहीं अपनाया गया था तथा व्यापारियों के परिवारों के समृद्ध होने पर प्रतिबंध न था। वे अपने सामाजिक स्तर को भी ऊँचा उठा सकते थे। बहुत से व्यापारियों ने अथाह सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी। सम्पन्न व्यापारियों ने निरपवाद रूप से अपने सामाजिक स्तर को बढ़ाने के लिये कोशिश की। यह कार्य उन्होंने या तो सम्भ्रांत परिवारों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध कायम करके किया या फिर अपने पुत्रों के लिये कोई सरकारी पद प्राप्त करके। सरकारी पदों को सामान्य परीक्षा के तरीके से प्राप्त करने के साथ-साथ सरकारी पदों एवं उपाधियों की प्रत्यक्ष खरीदारी ने यह सुनिश्चित कर दिया कि व्यापारिक परिवारों की काफी बड़ी संख्या या कम से कम एक व्यापारिक परिवार का एक सदस्य सरकारी पदों पर आसीन हो सकता था। यह भी एक सामान्य प्रथा थी कि धनी व्यापारी अपने लाभ का कुछ भाग भूमि खरीदने में निवेश कर देते थे। ऐसा वे आर्थिक लाभ की अपेक्षा सामाजिक सम्मान के लिये करते। इससे यह हुआ कि उच्च व्यापारी वर्ग तथा सम्भ्रांत वर्ग और सरकारी पदाधिकारियों में घनिष्ठ सम्बन्ध कायम हो गया। शाही शासन के बाद व्यापार के तेजी से विकास एवं कुछ प्रकार की व्यापारिक गतिविधियों में सम्भ्रांत वर्ग के सदस्यों के शामिल हो जाने से उन दोनों वर्गों के बीच की दूरी पहले से काफी कम हो गई।

लेकिन व्यापार पर राज्य के नियन्त्रण के कारणवश व्यापारिक वर्ग के स्वतंत्र आर्थिक एवं राजनीतिक विकास में रुकावट आयी। चीन में राज्य ने यह भली-भांति समझ लिया था कि व्यापार राजस्व का एक शक्तिशाली स्रोत था और इसलिये उसने इस पर कड़ा नियन्त्रण स्थापित किया। व्यापारिक गतिविधियों पर कर लगाने के साथ-साथ राज्य ने आवश्यक उपभोग की वस्तुओं जैसे कि नमक एवं लोहे पर दूसरी सदी ई.पू. के प्रारम्भ से लाभकारी एकाधिकार स्थापित करना शुरू कर दिया था। कुल मिलाकर चीनी व्यापारी वर्ग की विशेषता यह थी कि उसने इन नियन्त्रणों को चुनौती नहीं दी तथा व्यापार राज्य के लिये दुधारु गाय की भांति बना रहा।

बल्कि इसके विपरीत बड़े-बड़े व्यापारी राज्य के साथ सहभागी का कार्य करते थे और व्यापार में राज्य के दलाल के रूप में कार्य करते थे। व्यापारियों की श्रेणियाँ एवं संगठन पारस्परिक सहायता संस्थाओं के रूप में कार्य करते पर कभी भी वे स्वतंत्र आर्थिक एवं राजनीति शक्ति तथा संघर्ष के केन्द्र न बन पाए, जैसा कि उन्होंने यूरोप में किया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में कौन सा सही (√) या गलत (x) है? निशान लगाइये।

   i) चीन का समाज एक साधारण कृषि समाज था।

   ii) जमींदार अपने खेतों पर स्वयं खेती करते थे।

   iii) सम्भ्रांत वर्ग स्थानीय लोगों तथा प्रशासन के बीच मध्यस्थता का कार्य करता था।

   iv) सामाजिक पदानुक्रम में किसानों की अपेक्षा व्यापारी का नीचा स्थान था।

2) किसानों की दशा का विवरण 100 शब्दों में कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) उच्च सामाजिक स्तर को प्राप्त करने के लिये व्यापारियों द्वारा अपनाये गये तरीकों की एक सूची बनाइये।

....

....

....

....

....

2.3 कन्फ्यूशियसवादी राज्य

अब हम चीन की परम्परागत राजनीतिक व्यवस्था का विवेचन करेंगे। यह कहना उचित ही होगा कि परम्परागत चीन में राज्य पूर्व-आधुनिक विश्व में एक निर्णायक स्थान रखता था। किस प्रकार से परम्परागत चीनी राज्य को अनोखा माना जा सकता है?

सिद्धान्त में जिन सीमाओं से चीन का निर्माण हुआ अर्थात् जोंक्यो (मध्यवर्ती राज्य) उनका कभी भी स्पष्ट रूप से निर्धारण नहीं किया गया। कन्फ्यूशियसवादी दर्शन के अनुसार, सम्राट को "सम्पूर्ण विश्व की जनता" का शासक समझा जाता था। उसके शासन के अधीन केवल वे ही प्रांत नहीं होते थे जो सीधे शाही प्रशासन के अन्तर्गत आते थे। वे क्षेत्र भी शामिल माने जाते थे जो मात्र चीनी सम्राट की अधीनस्थता को स्वीकार कर लेते थे लेकिन ये क्षेत्र प्रत्येक प्रकार से अपना शासन स्वयं ही चलाते थे। इस तरह से तिब्बत एवं मंगोलिया जैसे बाह्य क्षेत्र चिंग वंश के अधीन थे। एक अधिकारी साम्राज्यिक प्रतिनिधि के रूप में इन राज्यों में रहता था। लेकिन कुछ क्षेत्रों में यह प्रतिनिधि भी उपस्थित नहीं होता था और उसका प्रभुत्व एक प्रतीक मात्र ही था।

DIKSHANT IAS

इन सबके परिणाम स्वरूप चीनी साम्राज्य के विदेशी मामलों तथा आन्तरिक मामलों का अन्तर काफी अस्पष्ट रहा। गैर-चीनी जनता तथा राज्यों के साथ सामान्य कूटनीतिक एवं व्यापारिक संबंध कुछ अपवादों को छोड़कर "नजराना व्यवस्था" के द्वारा निर्धारित या शासित होते थे। विदेशी प्रतिनिधियों या व्यापारिक प्रतिनिधि मंडलों के आगमन को चीनी सम्राट को नजराना पेश करने वाले प्रतिनिधि मंडल समझ लिया जाता था और उनके साथ इसी प्रकार का व्यवहार किया जाता। उनका इस्तेमाल चीनी सम्राट की आन्तरिक स्थिति तथा सम्मान को मजबूत करने के लिये किया जाता। चीनी सम्राट एक विशाल एकीकृत जनता का सम्राट था जिसमे चीनी तथा गैर चीनी जनता सम्मिलित थी। वे चीनी जनता को "सभ्य" (जैसा कि चीनी समझते थे) तथा गैर-चीनी जनता को "बर्बर" मानते।

Call us @7428092240

जब कभी भी साम्राज्यिक सरकार एवं दूसरे राज्यों या जनता के बीच संघर्ष हो जाता, तब इसको "नजराना व्यवस्था" के अन्तर्गत सरलता से समायोजित नहीं किया जा सकता था।

लेकिन शाही सरकार इसको केवल अस्थायी भटकाव मानती थी। युद्ध का किसी न किसी बिन्दु पर अन्त हो ही जाता। यदि इन युद्धों का अन्त गतिरोध में या शाही सेनाओं की विजय में होता, तब युद्ध सामान्यतः शुरू होने से पूर्व की स्थिति को बनाये रखा जाता यदि इनका अन्त विदेशी शक्तियों की विजय के रूप में होता तब भी चीनी व्यवस्था टूटती नहीं थी। यही 13वीं शताब्दी में मंगोल विजय तथा 17वीं शताब्दी में मंचू विजय के साथ हुआ और विजेताओं ने स्वयं ही चीनी सम्राट के गौरवशाली पद को साधारणतः प्राप्त कर लिया। यह वास्तविकता थी कि विभिन्न जातीय उत्पत्तियों तथा विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि से आये शासकों ने चीनी साम्राज्य में उच्च पदों को प्राप्त किया लेकिन उन्होंने शाही व्यवस्था को धराशायी करने में कोई भूमिका नहीं निभायी। जब तक इन शासकों ने राज्य के कार्यों में कन्फ्यूशियसवादी सिद्धान्तों का अनुसरण किया तब तक जीवन सामान्य रूप से जारी रहा। इस दृष्टिकोण से हम परम्परागत चीनी राज्य को चीनी जनता का राष्ट्रीय राज्य नहीं मान सकते।

2.3.1 सम्राट

उपरोक्त उपभाग में आपको बताया गया है कि चीनी सम्राट एक कन्फ्यूशियसवादी राजा था। कन्फ्यूशियसवाद के अनुसार सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था तथा दूसरी ओर प्राकृतिक व्यवस्था दोनों एक दूसरे से अखण्ड

रूप से जुड़े हैं। सम्राट का मुख्य कार्य यह था कि वह इस विश्वव्यापी व्यवस्था को बनाये रखे। इस तरह से, सम्राट को न केवल साम्राज्य के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में बड़े उपद्रवों के लिये बल्कि बाढ़, सूखा, भूकम्प आदि जैसे प्राकृतिक उपद्रवों एवं आपदाओं के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जाता था। इस प्रकार के "भयंकर अव्यवस्थित" समयों मे कन्फ्यूशियस परम्पराओं के अनुसार सम्राट के विरुद्ध विद्रोहों को वास्तव में वैध ठहराया गया। एक सफलतापूर्ण विद्रोह को इस बात का प्रमाण माना जाता था कि स्वर्ग ने शासन करने के अपने आदेश को वापस ले लिया। सम्भवतः चीन के सम्राट की इस प्रकार की व्याख्या की गई है, वह जापान के सम्राट से भिन्न था, वह प्रतीक मात्र न था, बल्कि भूमि का वास्तविक शासक था। वह :

- भूमि का मुख्य कार्यकारी और सम्पूर्ण प्रशासन की धुरी था,
- अपने अधिकारियों की नियुक्ति करता था, उनका हस्तांतरण करता, उनको दण्ड देता तथा उनकी सेवायें समाप्त कर सकता था।
- रिपोर्टों एवं निर्देशों के द्वारा अपने अधिकारियों की गतिविधियों का निरीक्षण एवं मार्ग निर्देशन करता था।
- साम्राज्य के किसी भी भाग में किसी भी मामले में जब कभी आवश्यक होता व्यक्तिगत रूप से हस्तक्षेप कर सकता था।

इन सबका करना या नहीं करना सम्राट की अपनी योग्यताओं एवं अभिलाषाओं पर निर्भर करता था। फिर भी उससे कुछ न कुछ करने की आशा की जाती थी। सम्राट एक मात्र विधि निर्माता भी था। साम्राज्य का कानून सम्राट एवं उससे परवर्ती शासकों द्वारा दिये गये निर्णयों और निर्देशों के संग्रह मात्र से कुछ अधिक न था। वह सेनाओं का सर्वोच्च कमाण्डर होता था।

सम्राट ही वास्तविक शासक होते थे और वे प्रतीक मात्र नहीं थे। यही कारण था कि जिस समय 19वीं सदी में चीन ने एक बड़े संकट एवं अपमान का सामना किया, तब सारा आरोप स्वयं सम्राट के ऊपर लगाया गया न कि उसके पदाधिकारियों पर। 19वीं सदी के मध्य एवं उत्तरार्द्ध के बड़े कृषक विद्रोहों और उदित होते उग्र राष्ट्रवादी आंदोलनों में एक सामान्य बात यह थी कि उन सभी ने शाही परिवार के शासन को उखाड़ फेंकने का आह्वान किया। ठीक उसी समय, सम्राट स्वयं को परम्परागत कन्फ्यूशियस राजनीतिक व्यवस्था का संरक्षक समझते थे, जिसके कारण चीन को संकट एवं पतन से बाहर निकालने के लिये उन्होंने आवश्यक क्रान्तिकारी परिवर्तनों को करने में संकोच किया। फिर भी उन्होंने जो कुछ सुधार किये वे काफी कम एवं देर से किये गये थे। इन सभी का परिणाम यह हुआ कि 19वीं सदी के अन्तिम तथा 20वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में चीन की शाही संस्थाओं में और पतन हुआ। उस समय की घटनाओं ने इस प्रक्रिया को तेज किया तथा 1911 की क्रान्ति ने नाटकीय तरीके से इसको धाराशायी कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.3.2 नौकरशाही

सम्राट की संस्था के अतिरिक्त चीनी राजनीतिक व्यवस्था का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्तम्भ नौकरशाही था। चीन का एकीकरण सम्राट चिन-शी-हुआंग-ती के द्वारा 221 ई.पू. में किया गया । तभी से साम्राज्य के दिन-प्रतिदिन प्रशासन का संचालन नौकरशाही के द्वारा किया जाता था। यह नौकरशाही आधुनिक विश्व से पूर्व किसी भी नौकरशाही की अपेक्षा अपनी संरचना एवं कार्यों में अधिक सुस्पष्ट, अधिक विकसित और अधिक तर्कसंगत थी। यह माना ही नहीं जा सकता कि चीन जैसा विशाल देश इतनी सदियों तक इस तरह की नौकरशाही के बिना एकीकृत रह सकता था और वह सरकार की एक स्थायी व्यवस्था को बनाये रख पाता।

शाही दरबार के अधिकारियों से लेकर जिला स्तर के अधिकारियों तक सम्पूर्ण नौकरशाही का निर्माण एक विशेष प्रकार की कोर से किया जाता था। यह सुस्पष्ट नियमों, अधिनियमों के द्वारा शासित होती थी। ये नियम एवं अधिनियम अधिकारियों की भर्ती, उनकी तरक्की, हस्तांतरण, सेवा से निरस्त करने एवं दण्ड देने से सरोकार रखते थे और इनका संबंध इससे भी था कि उनको अपने कर्तव्यों को किस ढंग से पूरा करना था। एक तरह से ये नियम एवं अधिनियम कठोर एवं प्रतिबंधित प्रकृति के थे और इनके द्वारा यह सुनिश्चित किया गया था कि अधिकारी गण सम्राट की आज्ञा पालन करें तथा उसके सहायक के तौर पर कार्य करें। लेकिन दूसरी ओर नौकरशाही को कुछ स्वायत्तता भी प्रदान की गई थी। इसी कारणवश विभिन्न सम्राटों की स्वेच्छात्मक सनक पर इसने रोक लगाने का भी कार्य किया। एक अधिकारी के विषय में यह समझा जा सकता था कि यदि वह नियमों के अनुरूप कार्य करता और अपने कार्यालय के कार्यों को सुचारु रूप से करता तब सम्राट या उसके अन्य सर्वोच्च अधिकारियों के द्वारा व्यर्थ में उस अधिकारी को सताया नहीं जायेगा।

चीनी नौकरशाही की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी भर्ती करने की व्यवस्था थी। चीनी साम्राज्य के पहले एक हजार वर्षों में नौकरशाह बनने के कई रास्ते थे। इनमें सरकारी पदों को खरीदना या परिवार के दूसरे सदस्य से उत्तराधिकार में प्राप्त करना भी शामिल था। लेकिन इन सबके बावजूद भी 11वीं सदी ई. से नौकरशाही में भर्ती होने का प्राथमिक साधन परीक्षाओं की केन्द्रीकृत व्यवस्था थी। तीन वर्षों के दौरान एक बार सम्पूर्ण साम्राज्य में परीक्षा का आयोजन किया जाता था। इस परीक्षा में सैद्धान्तिक रूप से सभी पुरुष शामिल हो सकते थे चाहे उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि कोई भी रही हो। इस परीक्षा के द्वारा परीक्षार्थी की कन्फ्यूशियस संबंधी ज्ञान की परीक्षा ली जाती थी । परीक्षार्थी की पहचान को पूर्ण रूपेण गुप्त रखा जाता था जिससे कि परीक्षक को परीक्षार्थी की कोई व्यक्तिगत जानकारी न हो पाती और उनका निर्वाचन निष्पक्ष तौर होता था। जो लोग परीक्षा में सफलता पूर्वक उत्तीर्ण होते थे वे व्यक्तिगत तौर पर अभिजात वर्ग में शामिल हो जाते। यदि कोई प्रत्याशी जिला स्तर की परीक्षा को उत्तीर्ण करके प्रांतीय स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता तब उसकी नियुक्ति साम्राज्यिक सरकार के अधिकारी के रूप में हो सकती थी।

परीक्षा के द्वारा भर्ती करने से नौकरशाही का काफी महत्त्व हो गया था। इससे यह सुनिश्चित था साम्राज्य के अधिकारी गण कुल मिलाकर पूर्ण रूपेण बुद्धिमान तथा विद्वान लोग थे। कन्फ्यूशियस विचारों में लम्बी शिक्षा तथा प्रशिक्षण के कारण कन्फ्यूशियस नीति विषयक तथा राजनीतिक मूल्यों के प्रति उनकी निष्ठा सुनिश्चित हो जाती। पक्षपात की तुलना में उनकी भर्ती गुणों के आधार पर की जाती थी और यह एक वास्तविकता भी थी। इसी कारणवश उनको उच्च स्तर का आत्म-सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यदि उनकी नियुक्ति गुण-दोष के आधार पर न होती तब सम्भवतः उनको यह सम्मान प्राप्त न होता। परन्तु कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी अधिकारी ईमानदार थे या वे अपने कार्यालयों में दबाव एवं सिफारिशों के आधार पर कार्य नहीं करते थे। किन्तु यह कहा जा सकता है कि निश्चय ही चीनी अधिकारियों की कुछ प्रतिष्ठा एवं स्तर बना रहा यद्यपि यदाकदा उनको अपने से उच्च अधिकारियों तथा सम्राट के पक्ष में कार्य करना होता था।

इन सब के बावजूद 19वीं सदी ई. में चीन की नौकरशाही को उस समय अभूतपूर्व चुनौतियों का सामना करना पड़ा जबकि आधुनिक औद्योगिक पश्चिमी संस्कृति ने चीन के अन्दर प्रवेश कर स्थिति को और जटिल बना दिया। इस परिस्थिति का सामना करने की अपेक्षा चीनी नौकरशाही अपनी विद्वता तथा आत्म-सम्मान के जाल में फंस कर रह गई। ऐसे कई बुद्धिमान अधिकारी थे जिन्होंने देश के सम्मुख आयी इन चुनौतियों को ठीक प्रकार से समझा और इन चुनौतियों का सामना करने के लिये साहसिक कदम उठाने एवं सुधार की वकालत की। किन्तु इस प्रकार के अधिकारियों की संख्या काफी कम थी। अधिकतर अधिकारीगण पुरानी परम्परा के ही समर्थक थे और उनके कार्य करने के तौर तरीके इस प्रकार के थे कि नवीन परिवर्तनों के दबावों के अनुरूप कार्य करने में वे स्वयं को असक्षम पा रहे थे। 1898 में जिस सुधार आंदोलन का नेतृत्व कांग-यू-वी तथा छोटे अधिकारियों ने किया था उसकी पराजय के बाद चीन को अन्तिम रूप से संकट से निकालने का कार्य परम्परागत समाज के इस महत्त्वपूर्ण वर्ग के हाथ से निकल कर नवीन उदित होते वर्गों एवं शक्तियों के हाथों में चला गया। इन नवीन वर्गों एवं शक्तियों का पुरानी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के साथ संबंध या निष्ठा बहुत कम थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) हम यह क्यों कहते हैं कि चीन का सम्राट एक प्रतीक मात्र शासक न था ? उत्तर लगभग पांच पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

2) चीन में नौकरशाही को भर्ती किए जाने वाले तौर-तरीकों की विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

2.4 19वीं सदी के प्रारम्भ में पतन एवं संकट

अक्सर यह कहा जाता है कि चीन पर पश्चिमी साम्राज्यवाद का जो प्रभाव पड़ा उसी के कारण चीन की परम्परागत सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का पतन हुआ। लेकिन अधिकतर इतिहासकार इस पर सहमत होंगे कि चीन में 19वीं शताब्दी ई. में जो कुछ घटित हुआ उसकी इतनी सरल व्याख्या नहीं की जा सकती। 19वीं सदी ई. के मध्य जिस समय पश्चिमी नौ सैनिक शक्तियों ने अपनी बन्दूकों को चीन की ओर किया उस समय चीन की परम्परागत व्यवस्था के अन्दर पहले से ही संकट एवं पतन के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। इस भाग में आपका परिचय उन कारणों से कराया जायेगा जिन्होंने चीन के साम्राज्य को विशेषतौर पर पश्चिमी साम्राज्वाद के प्रबल आक्रमण के दबाव के सम्मुख असहाय बना दिया।

2.4.1 चिंग के अधीन राज्य एवं समाज

19वीं सदी के प्रारंभ में चीन का विशाल क्षेत्र चीन के दक्षिण समुद्री तट पर स्थित द्वीपों से उत्तर में मंचूरिया तक पूरब में चीनी समुद्र से पश्चिम में सिकयांग तक फैला हुआ था और इस विशाल भू क्षेत्र पर डेढ़ शताब्दी तक चिंग नाम के शासक घराने का शासन था। ये चिंग शासक मांचू थे इसलिये वे जातीय एवं सांस्कृतिक तौर पर चीनियों से भिन्न थे। चीन में जितने भी वंशों ने शासन किया था उन सब में मांचुओं का शासन कई तरह से सफल था। मांचू वंश ने चीन पर विजय उस समय प्राप्त की जब 1680 के दशक में प्रारम्भिक युद्धों का अन्त हो गया और इसके बाद चीन में अपेक्षाकृत शांति एवं स्थायित्व बना रहा। इन वर्षों में मांचू शासकों को न तो सेनापतियों की अभिलाषाओं का शिकार होना पड़ा और न ही अधिकारियों या कृषक विद्रोहों की ओर से कोई गम्भीर चुनौती दी गई। तिब्बत एवं मंगोलिया को अधीन कर लिया गया और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह था कि विशेष प्रकार के राजनीतिक ढांचे तथा चिंग सम्राट के साथ धर्म संबंधों के द्वारा इन दोनों क्षेत्रों को चीनी साम्राज्य में और मजबूती के साथ एकीकृत कर दिया गया। चिंग शासकों के लिये यह एक विशेष प्रकार की सफलता थी क्योंकि पहले इनको "समस्या वाले क्षेत्र" कहा जाता था पर चिंग शासकों के समय में ये क्षेत्र अपेक्षाकृत शांतिमय बने रहे। यद्यपि 18वीं सदी ई. में तिब्बत में चिंग शासकों के विरुद्ध कुछ विद्रोह अवश्य हुए। इन विद्रोहों को सैनिक अभियानों की मदद से शीघ्र ही दबा दिया गया। ये सैनिक अभियान आर्थिक दृष्टि से काफी खर्चीले थे किन्तु सम्पूर्ण साम्राज्य में इसके कारण दंगे नहीं हो पाये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चिंग शासन के प्रारम्भिक डेढ़ सौ वर्षों में चीन के अन्दर मात्र तीन सम्राटों ने शासन किया। ये तीनों सम्राट ओजस्वी और मेहनतकश राजा थे। वे अपने साम्राज्य के मामलों में पर्याप्त रुचि लेते थे। इनके गुणों के कारण प्रशासन की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और उसमें निरन्तरता बनी रही तथा वह सक्षम भी बना रहा। सम्राटों के द्वारा प्रांत में अधिकारियों को पूर्ण रूपेण चुस्त रखा जाता और राजा उनसे रिपोर्ट मांगता तथा छोटे-छोटे मामलों तक के लिए वह अधिकारियों को निर्देश भेजता। अधिकारियों की गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिये सम्राटों ने जासूसी एवं सूचनाओं के लिये एक तन्त्र को संगठित किया। कागज़ाती कार्यवाहियां सम्राट को स्वयं ही करनी पड़ती थी जिनसे उनका कार्य काफी कठिन हो गया। इसलिये चिंग शासकों ने कागज़ाती कार्यों को निपटाने के लिये उच्च पदाधिकारियों की एक "उच्च समिति" का गठन किया। यह समिति इन कागजों की जांच पड़ताल के बाद उनको सम्राट को हस्तांतरित कर देती थी।

परन्तु चिंग शासकों की प्रारंभिक सफलता में बाद के पतन एवं कमजोरी के बीज भी समाये हुए थे। शांति एवं स्थायित्व की लम्बी अवधि के कारण तेजी से जनसंख्या में भयावह वृद्धि हुई और जिसके गम्भीर आर्थिक परिणाम हुए। बाह्य एवं आंतरिक चुनौतियों के अभाव में आत्म-सन्तोष का वातावरण बन गया और सैनिक संगठन की प्रभावशीलता में भी कमी आयी। प्रथम तीन चिंग सम्राटों के अधीन प्रशासनिक शक्तियों में लगातार केन्द्रीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के भी विपरीत परिणाम हुए। इस प्रक्रिया के कारण प्रशासन का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया और बाद में सम्राटों के द्वारा उसका संचालन क्षमता पूर्वक करना काफी कठिन हो गया। जिससे सम्पूर्ण प्रशासन में निष्क्रियता व्याप्त हो गई और वह बिल्कुल ठप्प पड़ गया गया । दूसरी ओर, सरकार के कार्यों के क्षेत्र में वृद्धि एवं जटिलता पैदा हो जाने के कारण प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या में वृद्धि करने की आवश्यकता हुई किन्तु चिंग शासक नौकरशाही की संख्या एवं आकार में वृद्धि करने

के विपरीत थे। इसके कारण प्रशासन की दक्षता और सीमित हो गई। इसके कारण शिक्षित कुलीन वर्ग के सदस्यों के लिये सरकारी सेवाओं में प्रवेश करना और कठिन हो गया जिससे कि इस महत्त्वपूर्ण वर्ग के बीच बेरोजगारी, हताशा तथा असन्तोष फैला। इस सबके कारण 19वीं सदी ई. के पूर्वार्द्ध में गम्भीर सामाजिक एवं राजनीतिक संकट उत्पन्न हुआ।

2.4.2 जनसंख्या का दबाव

17वीं तथा 19वीं सदियों के बीच चीन की जनसंख्या 15 करोड़ से बढ़कर 30 करोड़ हो गई। लगभग 80 प्रतिशत लोगों के जीवन यापन का कृषि ही मुख्य स्रोत था। खेती करने योग्य नयी भूमि न होने के कारण बढ़ती जनसंख्या का दबाव भूमि पर बहुत अधिक हो गया।

चीन में भूमि सम्पत्ति का बंटवारा परिवार के पुत्रों के बीच एक समान किया जाता था जिसके कारण वहाँ पर भूमि छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित होती चली गई। इसके कारण कृषक परिवारों में दरिद्रता बढ़ती चली गई। इस प्रवृत्ति के ठीक विपरीत इस काल में भूमि के केन्द्रीयकरण एवं भू-स्वामित्व की प्रवृत्तियां भी प्रकट होने लगीं। कृषक अपने इन छोटे-छोटे खेतों को रख पाने में असक्षम होने के कारण, अपने से सम्पन्न किसानों को इन खेतों को बेचने के लिये मजबूर होते चले गये। वे किराये पर खेत लेकर खेती करने वाले किसान बन गये और जमींदारों के द्वारा इस तरह के कृषकों का भयंकर शोषण किया जाने लगा। कुछ किसान भूपति कुलीन वर्ग पर इसलिये निर्भर हो गये क्योंकि ये किसान उन भारी करों को अदा कर पाने में असक्षम थे जिनको राज्य के द्वारा इन पर थोपा गया था। चीन के दक्षिण एवं मध्य के उपजाऊ क्षेत्रों में मुख्य रूप से काश्तकारी एवं अनुपस्थित जमींदारी प्रचलित थी। परन्तु उत्तरी चीन के उस क्षेत्र में भी जहाँ पर अधिकतर किसानों को भूमि पर मालिकाना अधिकार प्राप्त थे, किसानों पर गरीबी, कर्ज और राज्य के द्वारा वसूल किये जाने वाले करों का भार था।

इन उपरोक्त कारणों से दो तरह का विस्थापन हुआ :

1) दक्षिणी चीन के उन क्षेत्रों से जनसंख्या का समुद्र पार के देशों को विस्थापन, विशेषकर जहाँ पर घनी आबादी थी।

2) बहुत से किसान उन पहाड़ी क्षेत्रों में जा कर बस गये जिनकी भूमि अपेक्षाकृत कम उपजाऊ थी और जो अपेक्षाकृत आबादी हीन थे। ये दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम चीन में स्थित थे। ऐसा इन किसानों ने इस आशा के साथ किया कि वहाँ पर वे जमींदारों एवं राज्य अधिकारियों के दमन से मुक्त होंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दीन होते किसानों तथा ग्रामीण कारीगरों के साथ बढ़ती जनसंख्या के कारण, चीन की सरकार उनको *"लियू मिन"* (घुमक्कड़ लोग) कहने लगी। ये निश्चित रूप से दलित, बेघर एवं दरिद्र लोग थे। इनकी संख्या विशाल थी और ये वे लोग थे जिनको उनके अपने परम्परागत घरों तथा व्यवसायों से उखाड़ दिया गया था। इन्हीं लोगों ने डकैती, तस्करी तथा अन्य प्रकार की गैर-कानूनी गतिविधियों के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

2.4.3 प्रशासनिक पतन

चिंग वंश के अधीन साम्राज्य के विकास एवं प्रसार के साथ ही प्रशासन के कार्यों में भी वृद्धि हुई। लेकिन इन कार्यों का समाधान करने के लिये औपचारिक प्रशासनिक तन्त्र का उचित विकास न हो सका। इस सन्दर्भ में जनसंख्या में तेजी के साथ हुई वृद्धि के दृष्टांत को उद्धृत किया जा सकता है। लेकिन आबादी में हुई वृद्धि के अनुरूप नागरिक सेवाओं के आकार में अर्थात् सम्पूर्ण प्रशासनिक ढांचे में वृद्धि नहीं की गई। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अधिकारियों की संख्या लगभग वही थी जो 17वीं शताब्दी में थी। ऐसा इसलिये था क्योंकि जहाँ एक ओर आर्थिक दबाव थे वहीं दूसरी ओर मांचू सम्राट इस बात से चिंतित थे कि प्रशासन पर उनका नियंत्रण कमजोर होने लगा था।

इस स्थिति का एक परिणाम यह हुआ कि चिंग सरकार के अधिकारियों को बहुत अधिक कार्य करना होता था और भारी भरकम उत्तरदायित्वों की तुलना में उनको काफी कम वेतन मिलता। यह विशेष रूप से उन अधिकारियों के विषय में सत्य था जो जिलाधीश जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। उन्होंने देखा कि उनके पास जो कार्य थे उनको उनके लिये शारीरिक रूप से पूरा करना असम्भव था और इसी कारणवश इन कार्यों के अधिकतर भाग को सहायक कर्मचारियों, सलाहकारों, क्लर्कों, संचालन कर्ताओं, लेखपालों आदि के द्वारा सम्पन्न किया जाता था।

इस तरह से प्रशासन में घूस एवं भ्रष्टाचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व ढंग से वृद्धि हुई। इसके फलस्वरूप उन

किसानों का आर्थिक बोझा बढ़ा जिनको अपने करों की अदायगी के समय या अन्य न्यायिक प्रक्रियाओं में सम्मिलित होने के समय इस भ्रष्ट होते प्रशासन के सम्पर्क में आना होता।

कार्य के लगातार बढ़ने विशेषकर कागज कार्य के बढ़ जाने का तात्पर्य था कि अधिकतर अधिकारियों को नियमानुसार ही कार्य करना होता। बहुत से अधिकारियों ने उन कार्यों की ओर कम ध्यान देना शुरू कर दिया जो उनके कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते थे। उन्होंने ऐसा इस आशा के साथ किया कि इस तरह की समस्याओं का स्वयं ही समाधान हो जायेगा या इस तरह की समस्याओं को उग्र रूप धारण करने से पहले ही अन्य क्षेत्रों को हस्तांतरित कर दिया जायेगा। उस समय ऐसे बहुत कम अधिकारी थे जिन्होंने अपनी इच्छानुसार खतरा उठाते हुए भी इन समस्याओं की ओर अपने उच्च अधिकारियों और स्वयं सम्राट का ध्यान आकृष्ट किया।

इन प्रतिष्ठित नागरिक सेवाओं में सीमित होते अवसरों का तात्पर्य था कि कुलीन वर्ग तथा शिक्षित लोग बेरोजगार रहने लगे या फिर वे कम वेतन पर ग्रामीण अध्यापक या कर्मचारी या अधिकारियों के ऊपर निर्भर रहने वाले कार्यों को करने लगे। इसके कारण जनसंख्या के इस वर्ग में हताशा एवं निराशा बढ़ी। ठीक इसी समय, उन लोगों पर भी दबाव बढ़ रहा था जो प्रशासनिक सेवाओं में कार्यरत थे, जहाँ एक ओर उनको स्वयं को सम्पन्न करना पड़ता वहीं दूसरी ओर उनको अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों तथा दूसरों की सहायता अन्य दूसरे तरीकों से करनी होती। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि कन्फ्यूशियस विचारधारा के कारण सरकारी अधिकारियों में नैतिक उत्साह पहले काफी रहता था किन्तु 19वीं शताब्दी में अधिकारियों के इस उत्साह में निश्चित रूप से कमी आने लगी थी। अधिकारीगण अपने कर्तव्यों की अवहेलना करने लगे, स्थानीय प्रबुद्ध वर्ग के द्वारा जो अन्याय पूर्ण कार्य किये जाते, उनको ये अनदेखा करते और ऐसा धन जो लोकहित एवं अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिये होता उससे ये अधिकारीगण अपने जेबें भरने लगे। इस प्रतिमान में अपवाद भी थे किन्तु वे बहुत ही कम थे।

2.4.4 आर्थिक संकट

प्रशासन में भ्रष्टाचार व्याप्त होने के कारण शाही खजाने में पहुँचने वाले राजस्व में कमी आयी। यह अनुमान किया गया है कि लोगों को अदा किये गये राजस्व का एक तिहाई से लेकर पांचवा भाग तक ही केन्द्रीय सरकार के कोष में पहुँच पाता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भूमि कर ही राजस्व का मुख्य स्रोत था और उसका मूल्य माल के रूप में तय किया जाता था किन्तु किसानों के द्वारा उसका भुगतान नकद में किया जाता था। राजस्व की इस प्रणाली में अधिकारियों के द्वारा सभी स्तरों पर हेरा-फेरी की जाती थी। सरकार ने 18वीं सदी में कुछ निश्चित चावल की मात्रा का मूल्य चांदी में तय किया, लेकिन किसान इसकी अदायगी केवल तांबे में ही करने में सक्षम थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तांबे की मात्रा चांदी के बराबर तय करनी पड़ती थी। स्थानीय प्रशासनिक अधिकारीगण चांदी-तांबे के विनिमय की दरों को इस ढंग से निर्धारित करते जिससे कि वे किसानों से अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त कर सकें। लेकिन जब उसको सरकार को हस्तांतरित किया जाता तब वे सरकारी विनिमय दर का अनुसरण करते तथा यह दर काफी कम थी। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे यह दुराचार बढ़ता गया और इसके कारण सरकार के राजस्व में काफी गिरावट आयी। इसी बीच करों में अपार वृद्धि के कारण किसानों में असन्तोष भी बढ़ा।

19वीं सदी में समस्या और भी जटिल हो गई जबकि सिक्कों को निर्मित करने के लिये चांदी एवं तांबे में कमी आयी। जहाँ एक ओर स्थानीय खानों से इन धातुओं का उत्पादन कम होने से यह घटित हुई वहीं दूसरी ओर यह समस्या इसलिये गम्भीर हो गई क्योंकि 1820 के दशक से अफीम के अवैध व्यापार को वित्तीय सहायता देने के लिये चांदी का उपयोग किया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ निम्न स्तर की मुद्रा का प्रसार हो गया और इसका चांदी तथा तांबे की मुद्रा के बीच होने वाली विनिमय दर पर प्रतिकूल असर पड़ा।

केन्द्रीय सरकार के कमजोर एवं अस्थिर आधार का तात्पर्य था कि 19वीं सदी के मध्य में युद्ध एवं गदर का जो संकट पैदा हुआ उसका सामना करने के लिये सरकार स्वयं किसी बड़े कार्यक्रम का प्रारम्भ न कर सकी। सरकार पर विजेताओं के द्वारा भारी हर्जानों को थोपा गया। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अफीम युद्धों एवं अन्य सैनिक अभियानों के बाद पश्चिमी शक्तियों ने चीनी साम्राज्य के आर्थिक आधार को और कमजोर किया।

2.4.5 सैन्य कमजोरियां

एक शताब्दी से अधिक शांति कायम रहने तथा बड़े सैनिक अभियानों तथा चुनौतियों के अभाव के कारण चिंग साम्राज्य की सैनिक शक्ति काफी क्षीण हो गई थी। सेना की अनेकों इकाईयाँ थीं जो देश भर में फैली हुई थीं, ये सैनिक निष्क्रय जीवन व्यतीत कर रहे थे जिसके कारण उनमें पतन एवं हताशा घर कर गई। सेना की ये इकाईया किसी भी प्रकार का संघर्ष करने को तैयार न थीं। अफीम युद्धों के प्रारम्भ होने से काफ़ी पहले 1813 में स्वेचवान में श्वेत कमल (White Lotus) विद्रोह हुआ और सेना इस विद्रोह पर नियन्त्रण करने में असफल रही। अन्त में "ग्रीन स्टैन्डर्ड " (Green Standard) की सेनाओं तथा स्थानीय लड़ाकुओं ने ही इस विद्रोह का दमन करने में सफलता प्राप्त की। जिस समय 1820 तथा 1830 के दशकों में अवैध अफीम व्यापार का प्रसार प्रारम्भ हुआ उस समय सबसे पहले मांचू सेना के सैनिकों को अफ़ीम के सेवन की आदत ने गम्भीर रूप से प्रभावित किया।

चिंग शासकों ने इस भय से कि सेना उनके शासन को चुनौती दे सकती थी, सैनिक शक्ति का निर्माण नहीं किया। इस तरह से चिंग शासकों ने सैनिक संगठन की ताकत को कम कर दिया। उन्होंने सेना के एक ऐसे बेढंगे तंत्र की स्थापना की जिसके अन्तर्गत विरोधाभासों से पूर्ण प्रभुत्व वाली कई शक्तियाँ कायम थीं। विभिन्न सैनिक कमाण्डों को एक दूसरे से अलग रखा गया था। ऐसा इसलिए किया गया था जिससे कि इन सैनिक इकाईयों के बीच केन्द्रीय शाही प्रभुत्व के विरुद्ध एकता न बन सके। इससे सैन्य तन्त्र में नौकरशाही की लालफीताशाही कायम हो गई और उसकी लड़ाकू क्षमता में काफी गिरावट आयी। इस सन्दर्भ में समुद्री डाकुओं के गिरोहों का उदाहरण दिया जा सकता है। 19वीं सदी के प्रारम्भ में चिंग शासक इस समस्या को रोकने में असफल रहे थे। इसी कारणवश ये समुद्री डाकुओं के गिरोह एक स्थल से दूसरे स्थल में उन्मुक्त रूप से भ्रमण करते रहते थे। सरकार की नौसेना उन नियमों को मानने के लिये बाध्य थी जिनके अनुसार नौसेना की एक कमाण्ड दूसरी कमाण्ड के क्षेत्र में नहीं जा सकती थी।

समुद्री डाकुओं के अतिरिक्त समुद्र की ओर से किसी और खतरे के अभाव में चिंग नौसेना का तन्त्र काफी प्रभावहीन एवं कमजोर हो गया था। समुद्र के तटों पर विशाल किलेबन्दी और उनके पुराने हथियारों सहित तथा अव्यवस्थित तरीके से नौ सेना का गठन तथा पश्चिमी शक्तियो के हलके युद्ध पोतों, उनकी चुस्ती एवं बमबारी करने की पर्याप्त योग्यता के साथ इस चीनी नौ सेना की कोई तुलना नहीं की जा सकती। अन्ततः जब चिंग शासकों ने "ठोस जहाजों एवं प्रभावकारी बन्दूकों" की आवश्यकता को महसूस किया तब तक बहुत देर हो चुकी थी और इस समय तक 19वीं सदी के मध्य में पश्चिमी देशों के हाथों वे पराजित हो चुके थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.4.6 19वीं सदी के मध्य का संकट

19वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में यह स्पष्ट हो चुका था कि चीनी साम्राज्य एक संकट का सामना कर रहा था। यह संकट था पश्चिमी शक्तियों द्वारा चीन की स्वायत्तता को चुनौती, और इसका सामना करने में चीनी-सरकार की असमर्थता। सरकार की कमजोरियों के कारण ही 1850 एवं 1860 के दशकों में किसान विद्रोहों की भी जबर्दस्त लहर आयी।

यद्यपि इस स्थिति में यह संकट परम्परागत "वंशानुगत संकट" की प्रकृति का ही अधिक था। इस तरह के संकट चीन में पहले भी कई बार आ चुके थे । इस समय के निपुण राजनीतिज्ञों का भी यह मत था कि अधिक से अधिक चिंग वंश चीन में धाराशायी हो जायेगा। परन्तु उन्होंने यह नहीं सोचा कि सदियों से चली आ रही यह सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था धाराशायी होने वाली थी । उनके इस विश्वास की उस समय पुष्टि होने लगी जिस समय 1860 तथा 1870 के दशकों में विशाल कृषक विद्रोहों का दमन करने के बाद ऐसा प्रतीत होने लगा कि चतुर राजनीतिक एवं कूटनीतिक चालों के द्वारा पश्चिमी शक्तियों के खतरे को रोकते हुए चिंग वंश की महत्त्वपूर्ण सफलता के साथ वापसी हुई। लेकिन देश के अन्दर जो नवीन शक्तियाँ उभर रही थीं उन्होंने न केवल शासक वंश की शक्ति को कमजोर किया अपितु परम्परागत व्यवस्था भी स्वयं कमजोर पड़ने लगी। ये वे शक्तियां थी जिन्होंने चीन को क्रान्तिकारी परिवर्तन की राह पर अग्रसर किया। इन शक्तियों की गतिविधियों का विवरण आगामी इकाईयों में किया जायेगा।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित में कौन सा कथन सही या गलत है? (√) एवं (x) निशान लगाइये।

   i) 17वीं सदी से 19वीं सदी तक चीन की जनसंख्या मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं हुई।

   ii) चिंग वंश के अधीन चीन में शक्तिशाली नौसेना का विकास हुआ।

iii) 19वीं सदी के मध्य में महान संकट के बाद चिंग वंश पुनः सत्ता में लौट आया।

iv) चीनी सरकार का आर्थिक आधार काफी मजबूत था।

2) लगभग पांच पंक्तियों में चीन के आर्थिक संकट की मुख्य विशेषताओं को समझाइये।

....

....

....

....

....

3) चीन में प्रशासनिक पतन के लिये कौन-कौन से कारण उत्तरदायी थे। लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.5 सारांश

परम्परागत चीनी समाज की सर्वश्रेष्ठ विशेषता उसका जटिल कृषि समाज होना था। समाज में जमींदार अभिजात वर्ग का वर्चस्व था और कृषक एवं व्यापारी अन्य वर्ग थे। इस जटिल कृषि समाज के आधार पर चीन में उच्च विकसित, केन्द्रीकृत राज्य तंत्र, का सुदृढ़ आन्तरिक संगठन था तथा इसकी गतिविधियों में विविधता थी। 19वीं सदी के आते-आते चीनी साम्राज्य के पास विशाल क्षेत्र और 30 करोड़ की जनसंख्या हो चुकी थी और इसका संचालन एक प्रशासनिक तन्त्र के द्वारा किया जाता था। इस साम्राज्य ने पूर्वी एशिया में किन्हीं गम्भीर चुनौतियों का सामना नहीं किया। लेकिन इस समय में सामाजिक एवं राजनीतिक संकट के ऐसे सुनिश्चित बीजों का रोपण हो चुका था जिसने साम्राज्य को और कमजोर किया। चीनी साम्राज्य को 19वीं सदी के मध्य तथा उत्तरार्द्ध में पुनः गम्भीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा और अन्ततः इसका पतन हो गया।

2.6 शब्दावली

कन्फ्यूशियसवाद : छठी सदी ई.पू. में कन्फ्यूशियस के उपदेशों का चीन के सामाजिक जीवन एवं संगठन, दर्शन तथा वातावरण, साम्राज्यिक राज्य के चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ा। कन्फ्यूशियस दर्शन का मूल सार विशेषकर राज्य के विषय में वह अवधारणा थी जिसके अनुसार सम्राट एवं अधिकारियों का शासन कानूनों की शक्ति की अपेक्षा "गुणों के आदर्शों" पर आधारित होनी चाहिए।

मांचू : चीन के सुदूर उत्तर-पूर्व में एक मंचूरिया प्रांत है जिसके निवासियों को मांचू कहा जाता था। चीन का अन्तिम शासक वंश चिंग (1644 ई. से 1911 ई. तक) मांचू थे।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) × ii) × iii) √ iv) √

2) देखें उपभाग 2.2.2

3) देखें उपभाग 2.2.3

बोध प्रश्न 2

1) आपको अपने उत्तर में सम्राट की विभिन्न क्षमताओं जैसे सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी, विधि निर्माता तथा सेवाओं का सर्वोच्च कमाण्डर का जिक्र करना चाहिए। देखें उपभाग 2.3.1

2) आपको अपने उत्तर में नौकरशाही की भर्ती के लिये परीक्षा प्रणाली के बारे में लिखना चाहिये। देखें उपभाग 2.3.2 .

बोध प्रश्न 3

1) i) √ ii) × iii) √ iv) ×

2) देखें उपभाग 2.4.4

3) देखें उपभाग 2.4.3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 3 समाज और राजनीति : जापान

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 तोकुगावा के आधिपत्य की स्थापना की पृष्ठभूमि
3.3 तोकुगावा राज्य
  3.3.1 राजनीतिक नियंत्रण का रचनातंत्र
  3.3.2 दाइम्यो
  3.3.3 तोकुगावा राज्य की प्रकृति
3.4 तोकुगावा का सामाजिक ढांचा
  3.4.1 सम्राट और अभिजाततंत्र
  3.4.2 सामुराई
  3.4.3 किसान, दस्तकार और व्यापारी
3.5 तोकुगावा काल : एक मूल्यांकन
3.6 सारांश
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- आपको पूर्व-आधुनिक काल के जापान की संरचना और इसके मुख्य सामाजिक विभाजनों की जानकारी होगी,
- आप राजनीतिक अधिकार की प्रकृति और इस अधिकार का इस्तेमाल करने वाली राजनीतिक संस्थाओं के बारे में समझ सकेंगे,
- आपको इस समाज में स्थिरता और बदलाव के लिये काम करने वाली शक्तियों की जानकारी होगी, और
- आप इस क्षेत्र में पश्चिमी शक्तियों के आने के समय इस समाज की मजबूती और कमजोरी की समीक्षा कर पायेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पूर्व-आधुनिक काल के जापान का इतिहास राजनीतिक स्थिरता के एक लंबे दौर का गवाह रहा। इस काल में 1603 से 1868 तक तोकुगावा परिवार के हाथ में सत्ता रही। इस दौर में जापान के विदेशों के साथ बहुत सीमित संबंध रहे, जिससे एक अनूठी जीवंत संस्कृति की रचना हुई। आर्थिक बदलाव और मुद्रा अर्थव्यवस्था ने सामाजिक संबंधों का पोषण किया और स्थापित सत्यों और मान्य सिद्धान्तों को नकारने वाले नये चिंतन के प्रति योगदान दिया। तोकुगावा काल की "महान शांति" ने आधुनिक जापानी संस्कृति को जन्म लेते देखा और इसी आधार पर आधुनिक जापान तेज़ी के साथ औद्योगीकरण और विकास कर सका। इस दौर में तनाव और कलह भी रहे, जैसे किसान विद्रोह और बाद के शहरी दंगे। इनसे इस बात का भी पता चलता है कि समाज स्थिर रहने के बजाय किस तरह बदल रहा था। आधुनिक जापान के निर्माण और विकास को समझने के लिये तोकुगावा समाज की सीमाओं और गतिशीलता दोनों को समझना आवश्यक है। इस इकाई में उस प्रक्रिया पर विचार किया जायेगा जिससे होकर तोकुगावा राजनीतिक ढांचे का सृजन और इसके समाज का निर्माण हुआ।

नक्शा-2 : जापान के पुराने प्रांत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

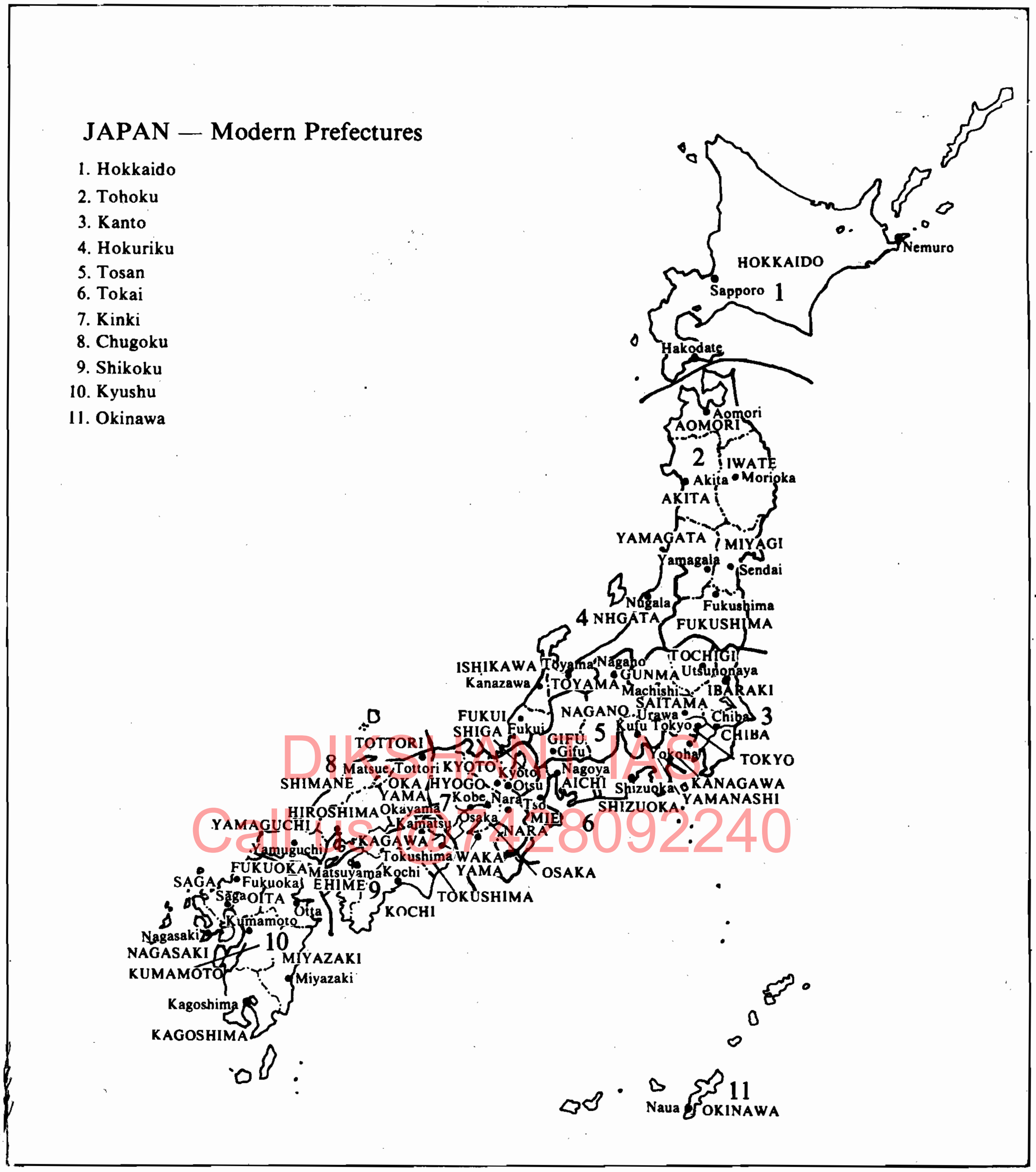

नक्शा-3 : आधुनिक जापान के प्रांत

DIKSHANT IAS
Call Us @ 7428092240

3.2 तोकुगावा के आधिपत्य की स्थापना की पृष्ठभूमि

जापान को अक्सर एक शुरुआती सभ्यता कहा गया है, लेकिन यह धारणा सही नहीं है क्योंकि इसमें जापान में विकसित संस्कृति की मजबूती को नज़र अंदाज़ किया गया और कम करके आंका गया है। चीन के सांस्कृतिक प्रभाव में रहते हुए, जापान भौगोलिक रूप से कटा रहा। महाद्वीप से जापान के द्वीपों को अलग करने वाले इस सागर को पार करना कठिन था। इसका मतलब यह होता है कि चीनी प्रभाव जापान में कोरिया के रास्ते आया। इसका यह भी मतलब हुआ कि संपर्क सीमित और छिटपुट था। इस तरह, जापान के लिए चीन एक आदर्श था और वह वास्तविक चीनी रीतियों के बारे में सोचे बिना चीन से जो भी हासिल हुआ उसे स्वीकार और आत्मसात कर सकता था। नये चिंतन के प्रति अपने आपको तैयार रखने की इस योग्यता के कारण जापानी लोग बाद के उन वर्षों में एक लाभकारी स्थिति में रहे जब उनका सामना आधुनिक यूरोपीय शक्तियों से पड़ा।

चीनी प्रभाव के साथ केवल बौद्ध धर्म ही नहीं आया, बल्कि एक लिपि व्यवस्था भी आयी और एक एकीकृत राज्य का राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचा भी आया। पितृसत्तात्मक इकाईयों में विकसित होने वाले और एक राजतंत्रीय राज्य का विकास करने वाले जापानी समाज ने राज्यतंत्र की नयी शक्तियों को समर्थन देने और निर्धारित करने के लिये इन संस्थाओं का उपयोग करने की जम कर कोशिश की।

ताहिना संहिता के नाम से एक कानूनी संहिता 701 ई. में बन कर तैयार हुई जिसमें देश का शासन चलाने के लिये कुछ दंड और प्रशासन संबंधी कानून रखे गये। देश को प्रांतों में बांटा गया और प्रत्येक प्रांत का शासन चलाने के लिये एक गवर्नर रखा गया। लेकिन, चीन के विपरीत, यहां धार्मिक रीतियों को परिषद् और तमाम पदों से ऊपर रखा गया।

इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना भूमि के निजी अधिकार का उन्मूलन व "महान परिवर्तन" या *ताईका* थी। इन सुधारों की प्रेरणा तो चीनियों से मिली, लेकिन इनमें संशोधन करके इन्हें जापानी स्थितियों के अनुकूल बना लिया गया था। ये सुधार कुछ हद तक सजावटी थे और राज्य निर्माण की वास्तविक शक्तियाँ विवादास्पद थीं। प्राचीन या क्लासिकल जापान का प्रतीक *हाईयान* (शांति और चैन) का वह दौर था जिसमें आज के क्योतो में राजधानी की स्थापना की गयी। उस समय हाईयान क्यो के नाम से जानी जाने वाली राजधानी की स्थापना चीनी तांग वंश की राजधानी चांग-आन के नमूने पर की गयी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह काल फ्यूजीवारा परिवार के सत्ता में आने के लिये उल्लेखनीय है। जापानी इतिहास की एक उल्लेखनीय और बार-बार पायी जाने वाली विशेषता है वैधता और सत्ता के बीच अलगाव। सम्राट वैध शासक बना रहा, लेकिन वास्तविक सत्ता फ्यूजीवारा-परिवार के हाथ में रही, इनमें सबसे शक्तिशाली था फ्यूजीवारा-नो-मिचिंगा (966-1028 ई.)।

हाईयान सभ्यता एक अभिजात्य संस्कृति थी जिसका निर्माण और निर्वाह कुछ हजार दरबारियों ने किया। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के दौरान इस संस्कृति ने एक अत्यधिक परिष्कृत और सुसंस्कृत सौंदर्यवादी दर्शन को जन्म दिया। लेकिन भौतिक जीवन अत्यधिक साधारण और संयमी था। उनका भोजन चावल, समुद्री शैवाल, मूली, फल और मेवा था। सब्जियाँ बहुत थोड़ी और मांस-मछली बहुत कम मात्रा में खाई जाती थी। चाय नवीं शताब्दी में चीन से आयी थी और उसका इस्तेमाल केवल दवाई के रूप मे किया जाता था। उनके यातायात का प्रमुख साधन बैलगाड़ी थी।

अभिजात वर्ग के हाथों से धीरे-धीरे सत्ता और राजस्व निकल कर सैनिक शासकों के उभरते हुए वर्ग के हाथों में आ गये। सैनिक भूस्वामी वर्ग ने नागरिक और सैनिक दोनों तरह के कार्यों पर अपने विशेषाधिकारों और अधिकारों को मजबूत कर लिया और शाही दरबार के पास केवल सत्ता की पदवी रहने दी। 1190 आते-आते, असली सत्ता शाही राजधानी क्योतो से निकल कर कामाकूरा पहुँच गयी। कामाकूरा बाकुफू का अर्थ होता है "तंबू सरकार" जिसका इस्तेमाल शुरू में रणक्षेत्र में सेना के मुख्यालय के लिये होता था। कामाकुरा बाकुफू ने सामंतवादी शासन के एक दौर की शुरुआत की और सामुराइ या योद्धा वर्ग को आगे किया।

कामाकुरा बाकुफू ने अपने क्षेत्रों के नियंत्रण के लिये जागीरदारों से काम लिया और प्रांतों का प्रशासन चलाने के लिये "शोगुन" या गवर्नर नियुक्त किये। सामुराइ शब्द का अर्थ होता है सेवा करना, और यह इस बात का संकेत देता है कि एक योद्धा के रूप में उसका कर्तव्य है अपने स्वामी की सेवा करना।

कामाकुरा के बाद अशीकागा (1333-1573) का दौर आया जिसमें सामंतवादी संस्थाओं का विकास हुआ। सेना ने जिस शाही दरबार को बेकार कर दिया था उसे शक्तिहीन और लगभग अस्तित्वहीन कर दिया गया। कई सम्राट तो इतने गरीब रहे कि उनकी उचित अंत्येष्टि या राजतिलक भी नहीं हो सका।

पंद्रहवीं शताब्दी के अंत से युद्ध अक्सर होते रहते थे और देश के युद्ध में लगे होने के इस अनिश्चित दौर (सैंगोकू) में कई किसानों ने अपनी रक्षा के लिये "इक्की" गिरोहों का गठन कर लिया ये गिरोह पैसा वसूलने और महाजनों पर हमला करने का काम करते थे। वे सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया का एक हिस्सा थे। अमिदा बौद्ध के इक्की पंथ जैसे धार्मिक पंथों ने भी इवीज़न और कागा (आज के फुकाई और इशीकावा) में अपना अधिकार बना लिया। दामियो के युद्ध नेताओं ने अपनी राजनीतिक और आर्थिक शक्ति को मजबूत करने का प्रयास किया।

युद्धों के बावजूद अर्थव्यवस्था का विकास हुआ और संस्थाओं में एक हद तक परिष्कार हुआ। सोलहवीं शताब्दी के मध्य दौर में जो राजनीतिक अराजकता फैली हुई थी उसमें सामंतवादी स्वामियों ने अपना अधिक ध्यान अपनी जायदाद को मजबूत करने और विरोधी गठबंधनों को रोकने में लगाया। एक दूसरे से जूझने वाले गिरोहों की इस अव्यवस्थित स्थिति में तीन विभूतियाँ उभर कर आयीं जिन्होंने जापान को एकता के सूत्र में बाँधा—ओदा नोबुनागा (1543-82) तोयोतोमी हीदेयोशी (1537-98) और तोलीगावा एयासु (1543-1616) इन तीन बिल्कुल भिन्न चरित्र वाले व्यक्तियों ने एक दूसरे का अनुसरण किया और जापान को केवल राजनीतिक दृष्टि से ही एक नहीं किया बल्कि उसे आर्थिक और सामाजिक रूप से भी सुदृढ़ किया।

इन तीनों ने जिस एकता के लिये काम किया वह एक बुनियादी राजनीतिक इकाई के रूप में सामंती जागीर की सफलता का प्रतीक है। इस प्रक्रिया में ऊपर चर्चित इक्की या बौद्ध मठों जैसे दूसरे गुटों के लिये अपने आपको बनाये रखना और अपनी राजनीतिक शक्ति को संस्था का रूप देना असंभव हो गया।

ओदा नोबुनागा मध्य जापान के ओवारी के एक छोटे परिवार का था। चतुर गठबंधनों और सफल लड़ाइयों के जरिये उसने अपनी स्थिति मजबूत की और अपनी शक्ति को बढ़ाया। अक्टूबर 1571 में नोबुनागा ने हाइज़ने के बौद्ध मठ को नष्ट कर दिया यह बहुत बड़ा मठ था जिसमें बड़ी-बड़ी रियासतें और योद्धा थे। इसके नष्ट होने और तीन हजार से भी अधिक भिक्षुओं की हत्या होने से उनका राजनीतिक अधिकार हासिल करने की कोशिश का भी अंत हो गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ठीक इसी ढंग से नोबुनागा ने बौद्ध धर्म के जोदो शेशू पंथ के हथियारबंद सदस्यों से भी लड़ाई लड़ी। "इक्की इक्की" कहलाने वाले ये बौद्ध ओसाका के इशियामा होंगांजी मंदिर के आसपास जमा थे। उसकी शक्ति की सर्वोच्चता का प्रतीक आजुची के भव्य मंदिर का निर्माण था। लेकिन उसके शत्रु फिर भी बने रहे और उसके ही एक सेनापति अकेची मिश्तशीदे ने उसकी हत्या कर दी।

अपनी मृत्यु के समय नोबुनागा का एक तिहाई जापान पर कब्जा था और उसने उभर रहे राजनीतिक ढांचे की आधारभूमि तैयार की। 1571 में उसने भूमि कर निर्धारण की एक नयी प्रणाली की शुरुआत की और 1576 में उसने किसानों को निरस्त्र करना शुरू कर दिया। लगातार कई सालों की लड़ाई के परिणामस्वरूप आम लोग हथियार रखने लगे थे। शांति सुनिश्चित करने के उद्देश्य से न केवल किसानों को निरस्त्र किया ताकि वे खेती के अपने प्रारंभिक धंधे में लौट आयें बल्कि वह सामुराइ (योद्धाओं) को दुर्ग वाले उन कसबों में लेकर आया जो बाद में उभरते शहरों के केन्द्र बने। इस कदम से भूमि संपन्न सैनिक अभिजात वर्ग की स्वाधीन शक्ति को कम करने में मदद मिली। नोबुनागा ने नाप-तौल की प्रणाली को भी एकरूपता देने की कोशिश की।

नोबुनागा के एक सफल सेनापति तोयोतोमी हिदेयोशी ने शिबाता कत्सुई जैसे दूसरे प्रतिद्वंद्वियों को हराया और 1585 में सम्राट से *कंपाकू* या रीजेंट की उपाधि ले ली। अलगे कुछ साल उसने दूसरे प्रतिद्वंद्वियों को ठिकाने लगाया और 1590 आते आते वह अपने प्रमुख प्रतिद्वंद्वियों को हरा चुका था।

हिदेयोशी बहुत नीचे से उठ कर देश का सबसे शक्तिशाली राजनीतिज्ञ बना। उसकी नीतियों ने नोबुनागा की बनायी लीक को विकसित किया। 1588 में उसने किसान को सिपाही से अलग करने के लिये एक क्रूर मुहिम चलायी। 1590 में एक भूमि सर्वेक्षण किया गया जिसमें स्वतंत्र खेतिहर के नाम भूमि को दर्ज किया गया। यह निश्चित किया गया कि कर निर्धारण का आधार उत्पादन होगा लेकिन उसे पूरे गाँव पर इकाई के रूप में लगाया जायेगा। सारे मालिकाना अधिकार दाइम्यो या सामंतों के पास थे। हिदेयोशी ने 1592 में कोरिया पर आक्रमण का एक असफल प्रयास किया। इसकी असफलता का कारण कोरिया और चीन के

छापामारों का विरोध था। असफलता का आंशिक कारण यह भी था कि हिदेयोशी नौसेना की ताकत के महत्त्व को नहीं समझ पाया। फिर भी, जापान के लिये एक महत्त्वपूर्ण लाभ कोरियाई दस्तकारों, विशेषतौर पर कुम्हारों का आना रहा जो क्यूशू के क्षेत्रों में बस गये।

हिदेयोशी एक शक्तिशाली व्यक्ति था और सत्ता हथियाने और उसके इस्तेमाल करने के मामले में निपुण था। बहरहाल, वह दिखावा करने वाला और अशिष्ट था और अपने जीवन के अंतिम वर्षों में मानसिक रूप से अस्थिर रहा। हिदेयोशी के मरने के समय तोकुगावा इयेसा सबसे मजबूत दाइम्यो था जिसके पास किसी भी दाइम्यो से दो गुना संपत्ति (23 लाख कोकू) थी।

तोकुगावा इयेसा नोबुनागा के समय से ही पूर्वी जापान में शक्तिशाली रहा और हिदयोशी के साथ उसके संबंध बनते-बिगड़ते रहे थे, लेकिन दोनों ही इस बात को महसूस करते थे कि टकराव उनके हित में नहीं होगा। दूसरे दाइम्यो की मदद से उसने सेकीगाहा के मैदान में अपने विरोधियों को हराकर 20 अक्टूबर 1600 को अपना आधिपत्य स्थापित किया। 1603 में तोकुगावा इयेसा को "शोगुन" या गवर्नर बना दिया गया और उसका अधिकार पक्का हो गया।

इयेसा समर्थ शासक था और उसने अपने पूर्ववर्तियों द्वारा बनाये गये आधार पर भूमि पर तोकुगावा गवर्नरी का एक विशाल महल खड़ा किया। उसने अपने राजनीतिक कौशल का परिचय एक ऐसी पूर्ण व्यवस्था बनाने में दिया जिसमें यह सुनिश्चित हो गया कि कोई भी प्रतिद्वंद्वी शक्ति तोकुगावा की सर्वोच्चता को चुनौती नहीं दे सकती।

3.3 तोकुगावा राज्य

इस भाग में राजनीतिक नियंत्रण के रचनातंत्र का अध्ययन किया जायेगा। यहाँ राजनीतिक नियंत्रण की एक पद्धति के रूप में दाइम्यो के कार्यकलाप और संस्था की भी परख की जायेगी।

3.3.1 राजनीतिक नियंत्रण का रचनातंत्र

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तोकुगावा इयेसा ने जो व्यवस्था लागू की उसे *'बाकु-हान'* व्यवस्था कहा जाता है। इसका संबंध *"बाकुफू"* या केन्द्रीय सरकार और *"हान"* या सामंती जागीर से है। इस राजनीतिक ढांचे में एक ऐसी व्यवस्था को कायम किया गया जो तोकुगावा की केन्द्रीय सरकार और अर्ध-स्वायत्तशासी सामंती जागीरों के बीच संतुलन पर निर्भर थी।

सिद्धांत रूप में इयेसा को **"सेई-ताई-शोगुन"** (बर्बर दमनकारी सेनापति) की उपाधि दी गयी थी। यह एक सैनिक उपाधि थी जिसकी शुरुआत कामाकुरा गवर्नरी के समय से हुई । वास्तव में क्योटो में रहने वाले सम्राट को सत्ता और अधिकारों से बिल्कुल वंचित रखा गया था। शासक की पदवी के साथ कोई अधिकारी नहीं जुड़ा था, बल्कि इससे सम्राट की शक्ति को प्रतीक के रूप में बनाये रखा गया था। यह उपाधि आने वाले सभी तोकुगावा शासकों के पास रही और इसके साथ जापान को शांत रखने का कर्तव्य जुड़ा था। व्यापक अर्थों में इस प्रक्रिया में विदेशियों के साथ संपर्क पर प्रतिबंध शामिल था। यह सामाजिक व्यवस्था के आधार में भी उपस्थित था जिसमें सिद्धांत रूप में सामाजिक गतिशीलता पर प्रतिबंध था और सुपरिचित **"शी-नो-को-शो"** (सामुराइ, किसानों, दस्तकारों और व्यापारियों की) व्यवस्था में सामाजिक संबंधों को निष्क्रिय किया हुआ था।

तोकुगावा की व्यवस्था के मुख्य सिद्धान्तों को 1615 में दो निर्देश सूचियों में व्यक्त किया गया था :

1) पहली सूची में 17 धाराएं थीं, इसमें यह स्पष्ट निर्देश था कि सम्राट और उसका दरबार अपने आपको शैक्षिक और सांस्कृतिक मामलों तक सीमित रखेंगे। गवर्नर ने वरिष्ठ दरबारी अधिकारियों को नियुक्त करने के अपने अधिकार को पक्का किया।

2) दूसरी सूची में 13 धाराएँ थीं, इसमें सामंतों की शक्तियों या अधिकारों पर कड़े प्रतिबंध लगाये गये। वे सैनिक गवर्नर की सहमति के बिना न तो विवाह संबंध बना सकते थे न ही किलेबंदी कर सकते थे, या उनकी मरम्मत कर सकते थे। उन्हें दूसरी जागीरों के भगोड़ों को शरण देने की भी मनाही थी।

इन निर्देशों से साफ पता चलता है कि तोकुगावा गवर्नरी नियंत्रण की एक समान व्यवस्था बना रही थी।

नक्शा-4 : दाइम्यो क्षेत्र

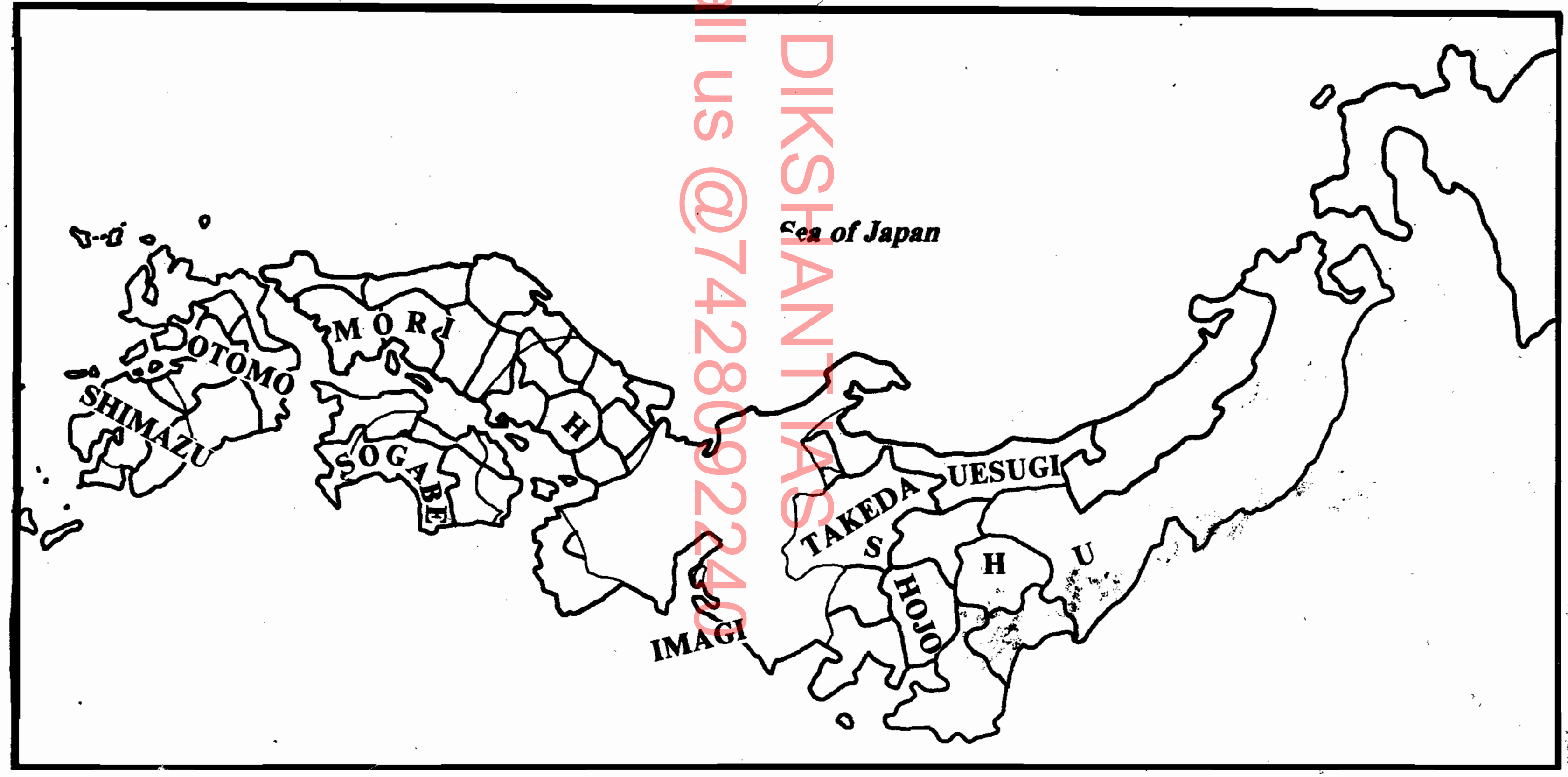

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.3.2 दाइम्यो

दाइम्यो या सामंत सरदारों को जे. डब्ल्यू. हाल ने "प्रारम्भिक आधुनिक दाइम्यो" के वर्ग में रखा है क्योंकि इन सामंतों के पास विस्तृत सरकारी ढांचे थे जिन्हें कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों ने औचित्य प्रदान किया हुआ था और जिनका पोषण बाकुफू की शांति और स्थिरता की गारंटी या सुनिश्चितता ने किया था।

राजनीतिक नियंत्रण का सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका था "दाइम्यो" को दो प्रमुख श्रेणियों में बांटना :

- एक, *फुदाई*—जो लोग तोकुगावा के संबंधी थे या लगातार उसके प्रति वफादार रहे, और
- दो, *"तोज़ामा"* या बाहरी "दाइम्यो"—वे लोग जो युद्ध में पराजित रहे।

फुदाई दाइम्यो को महत्त्वपूर्ण ठिकाने वाली ज़मीनें दी गयीं और तोकुगावा परिवार की ज़मीनों के साथ मिलकर ये *तोज़ामा* दाइम्यो की ज़मीनों से ज्यादा थीं। दूसरी ओर, *तोज़ामा* को उनके प्रांत बदलने का आदेश दिया गया, उनकी कई जागीरों को जब्त कर लिया गया और सबसे बड़ी बात यह कि उन्हें तोकुगावा सरकार में किसी भी पद से बाहर रखा गया।

दाइम्यो तोकुगावा के प्रति वफादारी के लिये शपथबद्ध थे, लेकिन 1600-1650 के बीच के प्रारम्भिक सालों में कई जमींदारियां हस्तांतरित की गयीं और इस बात पर जोर दिया गया कि ये जमीनें गवर्नर की खुशी से उनके पास थीं। इस तरह, सेवाओं के लिये पुरस्कृत किये जाने पर 172 नये दाइम्यो बनाये गये और 281 बार दाइम्यो का तबादला किया गया। इस तबादले की नीति ने दाइम्यो और प्रांत की जनता के बीच के संबंधों को कमजोर किया। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान दो सौ से भी अधिक दाइम्यो की कुछ या सारी जमीन उनके अपराधों के कारण उनसे ले ली गयी।

तोकुगावा की ताकत का केन्द्र इसके 60,000 हथियारबंद मातहतों की हथियारबंद शक्ति थी। उन्हें ध्वजाधारी और नौकर की श्रेणियों में रखा गया था। ये प्रत्यक्ष नौकर थे और सैनिक सेवा के लिये भी उत्तरदायी थे। लेकिन इस ताकत को बढ़ा-चढ़ा कर बताने की आवश्यकता नहीं क्योंकि और तमाम दाइम्यो ने 200,000 से भी अधिक सामुराइ नियुक्त कर रखे थे। इसलिये तोकुगावा की व्यवस्था अपनी स्थिरता के लिये इस बात पर निर्भर थी कि वह यह सुनिश्चित करे कि इसके शासन के विरुद्ध कोई बड़ा विरोधी गुट न बन पाये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रतिबंधों और संतुलनों की इस व्यवस्था में एक प्रशासनिक तंत्र शामिल था जिसमें उन लोगों को बाहर रखा गया था जिनके पास ताकत की वैधता थी। इसमें बंधकों की व्यवस्था भी शामिल थी जिन्हें वैकल्पिक सेवा या **"संकिन कोताई"** के नाम से जाना जाता था।

इस प्रशासनिक तंत्र को विकसित होने में समय लगा। पहले पचास वर्षों में सैनिक गवर्नरों ने सत्ता का इस्तेमाल खुद किया, लेकिन धीरे-धीरे 1666 से यह सत्ता प्रशासनिक प्रमुखों के पास चली गयी—पहले महाप्रबन्धक के पास, और फिर मुख्य पार्षदों के पास। ये अधिकारी मध्यम और छोटी जागीरदारी के शासकों में से थे जबकि बड़े जागीरदारों को पदों से बाहर रखा गया। जो घराने तोकुगावा घराने को वारिस दे सकते थे उन्हें भी पदों से बाहर रखा गया। अधिकारियों की नियुक्ति एक ही समय पर होती थी और उन्हें बारी-बारी से भी काम दिये जाते थे। सभी नीतिगत मामलों में सलाह ली जाती थी और उनके लिये संयुक्त सहमति आवश्यक होती थी।

तोकुगावा घराने का अपनी जमीनों पर सीधा अधिकार था जो दस लाख कोकू से अधिक थी, और उसका कब्जा औसाका और नागासाकी जैसे बड़े शहरों पर और तांबे और चांदी की खानों पर भी था। उन्होंने निरीक्षकों (मेत्सुके) को नियुक्त किया हुआ था जो दाइम्यो पर गुप्त रूप से नजर रखते थे और उनकी गतिविधियों की खबर देते थे।

वैकल्पिक सेवा व्यवस्था को 1635 में इमित्सु ने औपचारिक रूप दिया, जो तीसरा सैनिक गवर्नर था। इस व्यवस्था के तहत दाइम्यो के लिये कुछ अवधि तक राजधानी इदो (आज का टोक्यो) में रहना आवश्यक था। जब दाइम्यो राजधानी से दूर या बाहर रहते थे उस दौरान उन्हें अपने परिवार को बंधक के रूप में छोड़ना होता था जिससे सैनिक गवर्नर के प्रति उनकी वफादारी सुनिश्चित हो । जब दाइम्यो इदो की यात्रा करते थे तो उन्हें 150 से 300 के बीच सेवकों का एक दल साथ रखना होता था और उन्हें पहले से निर्धारित मार्ग से जाना होता था। इन यात्राओं और इदो में उनके ठिकानों पर होने वाले खर्चों से उनका धन चुक जाता था और उनकी शक्ति पर यह प्रतिबंध का काम भी करता था।

प्रशासन की तोकुगावा व्यवस्था एक स्तर पर तो एक राष्ट्रीय सरकार थी और दूसरे स्तर पर एक बड़ी दाइम्यो सरकार। सबसे ऊपर गवर्नर दोनों ही कामों का निरीक्षण रखता था। सिद्धांत रूप में तो यह व्यवस्था सीधी दिखायी देती है, लेकिन व्यवहार में यह इतनी सरल नहीं थी। कभी-कभी बारी-बारी से काम बदल कर देने जैसे सैद्धान्तिक प्रतिबंधों को नहीं माना जाता था, और तामुना ओकित्स्वगु (1719-88) या मात्सनदाइरा सदानोबा (1758-1829) जैसे व्यक्ति बहुत शक्ति और प्रभाव बनाने में सफल रहे।

3.3.3 तोकुगावा राज्य की प्रकृति

राजनीतिक ढांचा एक केन्द्रीकृत राज्य था जिसमें दाइम्यो पर तोकुगावा को बहुत अधिकार प्राप्त थे। दाइम्यो तो अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशासनिक कामों पर अपना अधिकार रखते थे लेकिन अन्ततः वे सैनिक गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थे और उनका पद उसकी समझ या इच्छा पर निर्भर था। तोकुगावा की सत्ता के तहत इस राजनीतिक एकीकरण की अपनी व्यावहारिक सीमाएं थीं।

गवर्नर ने कभी अपनी शक्ति का इस्तेमाल अठारहवीं शताब्दी और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सामंती जागीरों को जब्त करने या उन्हें फिर से वितरित करने में नहीं किया, और जब कभी इसकी कोशिशें हुई तो उनका प्रतिरोध हुआ। फिर भी, तोकुगावा के प्रशासनिक ढांचे का विदेशी-संबंध, तट रक्षा और प्रमुख शहरी केन्द्रों और सोने-चाँदी के स्रोतों पर नियंत्रण रहा। इस व्यवस्था ने शांति और स्थिरता के ढाई सौ वर्ष दिये।

बोध प्रश्न 1

1) निम्न वक्तव्य सही (√) है या गलत (×)? निशान लगाइये।

   i) जापानी इतिहास का पूर्व-आधुनिक काल, जिसके दौरान तोकुगावा परिवार सत्ता में रहा, राजनीतिक स्थिरता का दौर था।

   ii) जापान चीन के सांस्कृतिक प्रभाव में था।

   iii) कामाकुरा घराने के बाद फ्यूजीवारा परिवार आया।

   iv) तोकुगावा के प्रशासनिक ढांचे का विदेशी संबंधों, तट रक्षा आदि जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियंत्रण था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) लगभग 15 पंक्तियों में "दाइम्यो" की और उनके कार्यों की व्याख्या करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) लगभग पांच पंक्तियों में तोकुगावा राज्य की प्रकृति के विषय में बतायें।

....
....

....

....

....

3.4 तोकुगावा का सामाजिक ढांचा

तोकुगावा समाज स्तर के समूहों में बंटा हुआ था, और इन समूहों में एक स्थिति से दूसरी में जाना सिद्धान्त रूप से असंभव था। फिर भी, व्यवहार में, आर्थिक विकास के कारण लोग अपना सामाजिक स्तर बदल लेते थे।

3.4.1 सम्राट और अभिजात तंत्र

क्योटो स्थित सम्राट के पास कोई अधिकार तंत्र नहीं था। वह एक छोटी और अलग-थलग दरबारी संस्कृति का केन्द्र था। सम्राट के पास अधिकार तो थे नहीं, इनकी भरपाई उसकी व्यापक वंशावली में होती थी। 137 अभिजात्य परिवार थे जिनमें से अधिकांश पांच मध्यकालीन वंशावलियों का होने का दावा करते थे। उनकी एक बड़ी संख्या फ्यूजीवारा परिवार का वंशज होने का दावा करती थी। फ्यूजीवारा परिवार प्राचीन जापान में शक्तिशाली रहा था।

इन अभिजात्यों की आमदनी तोकुगावा के छोटे मातहतों के समान थी और उन्हें अपनी इस कम आमदनी को पूरा करने के लिये पढ़ाने का काम करना पड़ता था। वे अक्सर कलाओं में कुशल होते थे। कई अभिजात्य लोग बौद्ध पुरोहित बन गये और उन्होंने बौद्ध व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी । तोकुगावा घराना सम्राट और दरबार से अलग ही रहा, हालांकि इयेसा ने अपनी बेटी की शादी तत्कालीन सम्राट गो-मिजुनू से की थी।

3.4.2 सामुराइ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सामाजिक श्रेणीबद्धता की सबसे ऊंची पायदान पर योद्धा वर्ग के लोग थे और इस काल में उनकी संख्या ढाई करोड़ की कुल आबादी में 20 लाख थी। यह शासक वर्ग के लिये बड़ी संख्या थी। उनका काम था अपने स्वामियों की सेवा करना। और वफादारी को उनका सबसे बड़ा गुण माना जाता था।

आंतरिक तौर पर सामुराइ दो बुनियादी समूहों में बटे थे—*"शी"* और *"सोत्सू"*। *"शी"* या उच्चतर सामुराइ ऊंचे शासक अधिकारी और वास्तविक अभिजात वर्ग के लोग थे, जबकि *"सोत्सू"* या ग्रामीण मातहत (या मातहत) निचले पदों पर काम करते थे। इन दोनों वर्गों के बीच शादी बहुत कठिन बात थी।

सामुराइ की आमदनी 200 कोकू से 10,000 कोकू तक हो सकती थी, और इस दौर की वित्तीय समस्याओं के कारण उनकी वास्तविक आमदनी घट रही थी और उनमें से कुछ ने अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के उद्देश्य से व्यापारी परिवारों में शादियां कर लीं।

शांति और स्थिरता के इस काल में *"बाशिदो"* (योद्धा का मार्ग) के नाम से जानी जाने वाली आचार संहिता का विकास किया गया। इसका सार यह था कि एक सामुराइ को हर समय अपने स्वामी के लिये अपनी जान देने को तैयार रहना चाहिये। 1663 तक यह स्थिति थी कि कई सामुराइ अपने स्वामी की मृत्यु के बाद आत्महत्या (जुंशी) कर लेते थे। बाद में इस प्रथा को रोका गया। पैसों और काम की कमी से परेशान कई सामुराइ अक्सर बैर निकालने पर तुल जाते थे, जो लोकप्रिय नाटक का विषय बन गया। जिन सामुराईयों का कोई स्वामी नहीं था उन्हें "रोनिन" (स्वामीविहीन सामुराइ) कहा जाता था। ये बेरोजगार आदमी समाज के लिए एक समस्या बन गये और 1651 में उनमें से कुछ ने तो विद्रोह भी कर दिया।

सामुराइ की आमदनी का स्रोत ज़मीन थी लेकिन ज़मीन पर उनका कोई कब्जा नहीं था। वास्तव में उन्हें दाइम्यो या सैनिक गवर्नर की ओर से वजीफा मिलता था और जब उनके पास कोई पद होता था तो उन्हें उस पद से जुड़ा वजीफा भी मिलता था। इसके बदले में उनसे आशा की जाती थी कि वे अपनी हैसियत के हिसाब से एक नौकर दल बनाकर रखेंगे। अत्यधिक साक्षरता होने और भौतिक साहित्यिक कलाओं को बढ़ावा मिलने के कारण, वे सरकारी अधिकारी हो गये।

3.4.3 किसान, दस्तकार और व्यापारी

आबादी का एक बड़ा हिस्सा खेती में लगा था और इससे मिलने वाले राजस्व से *"बाकुफू"* का पोषण होता था। गांवों में एक हद तक स्वशासन था जिससे उनमें सहकारी काम को सुदृढ़ता मिलती थी। उनका जीवन कठिन था और वे ज्वार-बाजरा और कूटू और सब्जियों और *"मीसो"* (सोयाबीन से बना मिश्रण) खा कर गुजारा करते थे। प्राकृतिक विपदाओं और अकाल में उनकी जानें चली जाती थीं।

शांति और स्थिरता के कारण अर्थव्यवस्था का व्यापारीकरण बढ़ा और किसानों की हालत में सुधार हुआ। कइयों ने बाजार के लिये उत्पादन शुरू कर दिया, और करों के न बढ़ने के कारण वे अपनी कमाई को *"साके"* (चावल की शराब), सोया की चटनी बनाने या रेशम का उत्पादन करने में लगा सकते थे। वे महाजनों के रूप में भी उभरे। जमीन तो नहीं बेची जा सकती थी, फिर भी काश्तकारी में बढ़ोतरी हुई और शहरी क्षेत्रों की ओर जाने की स्थिति भी बढ़ी।

शहरी केन्द्रों का बढ़ना तोकुगावा की अर्थव्यवस्था के गतिशील होने का संकेत देता है। 18वीं शताब्दी का अंत होते-होते राजधानी इदो की आबादी लगभग दस लाख हो गयी थी। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, दस्तकार और दूकानदार यहाँ आकर और ओसाका, क्योतो जैसे दूसरे शहरों या कनाज़वा सेंदाई कगोशिनों जैसे दुर्ग कसबों में जाकर बस गये जिनकी आबादी 50,000 से भी ऊपर थीं। तोकाइद्स (पूर्वी समुद्री सड़क), नाकासेंदो (पर्वत के मध्य की सड़क), सान्योदो (पर्वतों की धूप वाली तरफ की सड़क) और सनिंदो (पर्वत की छांव वाली तरफ की सड़क) जैसी सड़कों के बनने से व्यापार में बेहतरी आयी।

उभरने वाली शहरी संस्कृति बुनियादी तौर पर व्यापारियों के नेतृत्व वाला आंदोलन था। व्यापारियों (*शोनिन*) को वैसे तो दूसरों पर निर्भर करने वाले या परजीवियों के रूप में नीची निगाह से देखा जाता था, लेकिन वे ही जापान के पहले उद्यमी थे। वे कठिन परिश्रम करते थे और उन्होंने एक जीवंत सामाजिक व्यवस्था को विकसित करने में योगदान दिया। उदाहरण के तौर पर, 1627 में, एक मित्सुई तोशित्सूगा ने इचीगाया के नाम से इदो में एक वस्त्र की दुकान खोली जो बढ़ते-बढ़ते आज मित्सुकाशी के नाम से मित्सुई कंपनी की है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तोकुगावा घराने ने कुछ व्यापारियों को संरक्षण दिया जिन्हें चावल की खरीद-फरोख्त, मुद्रा विनिमय और इससे संबंधित गतिविधियों पर एकाधिकार दे दिया गया। ओसाका व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र था और इन व्यापारियों ने बड़े-बड़े मकान बना लिये और पैसा इकट्ठा कर लिया। धीरे-धीरे वास्तविक गतिशीलता छोटे कसबों और बाद में गांवों की ओर बढ़ी जिनके पास एकाधिकार वाला विशेष अधिकार नहीं रहा।

तोकुगावा के दर्शन का आधार यह विचार था कि पैसा खेती से आता है, और उसमें आमदनी के इस नये स्रोत को नहीं पकड़ा। बल्कि कई मौकों पर तो व्यापारियों के लिए आदेश पत्र जारी किए गए कि वे अपने धन का प्रदर्शन न करें, या उनसे जबरन ऋण लेने के लिए आदेशपत्र जारी किए गए। व्यापारी वर्ग भिन्नता से मुक्त नहीं था लेकिन *बाकुफू* के तहत इसे जो विशेष अधिकार मिले हुए थे उससे इनमें आपस में ही वर्गीकरण हो गया था। उनकी जिम्मेदारी थी संस्थाएं बनाना और कौशल हासिल करना जिससे जापान के लिये अपने आपको एक आधुनिक राष्ट्र बनाना संभव हुआ।

3.5 तोकुगावा काल : एक मूल्यांकन

ढाई सौ साल तक जापान तोकुगावा परिवार के अधीन विदेशी संपर्क में रहकर भी सीमित विकास करता रहा। पश्चिमी शक्तियों को बाहर ही रखा गया और केवल उच्च लोगों को सीमित संपर्क की छूट थी। कोरिया और चीन के साथ राजनीतिक संबंध बना कर रखे गये और इन देशों के साथ थोड़ा-थोड़ा व्यापार भी चलता रहा। आंतरिक तौर पर, जापान 344 हान या जागीरदारियों में बंटा था जिनके पास कुछ अंश तक स्वायत्तता थी। मुद्राओं की संख्या अविश्वसनीय तौर पर बड़ी थी और बोलियां भी एक दूसरे से बहुत भिन्न थीं। सामाजिक वर्ग निर्धारित थे और उनके बीच स्वतंत्र गतिशीलता पर प्रतिबंध था। यह कई तरीकों से दीवारों से घिरा संसार था। ये प्रतिबंध आंशिक तौर पर उल्लेखनीय रूप से लंबे तोकुगावा शासन के लिये जिम्मेदार थे।

लेकिन, यह गलत ही होगा कि केवल निरंतरता को देखा जाये और बदलाव और विकास के चिन्हों को अनदेखा कर दिया जाये। शांति के कारण व्यापार और वाणिज्य का जापान के अन्दर प्रसार हो सका और इससे राष्ट्रीय बाजार बनने में मदद मिली जिसने *"हान"* के बीच के संपर्क सूत्रों को बढ़ा दिया। व्यवहार में

"हान" के बीच गतिशीलता बार-बार दिखायी देती है, और विचारों और व्यक्तियों दोनों ने ही *"हान"* की सीमाओं को पार किया। समाज में होने वाले इन बदलावों और नयी स्थितियों के प्रति अपने को अनुकूल बनाने की राजनीतिक ढांचे की असमर्थता ने ऐसे विचारों और दर्शनों को जन्म दिया जिन्होंने तोकुगावा घराने के प्रभुत्व की जड़ें काटने की बुनियाद रखी।

इस काल का कोई समग्र मूल्यांकन कर पाना कठिन काम है। फिर भी हमें इस सवाल पर विचार करना होगा कि यह व्यवस्था कड़ी निगरानी और भारी दमन के कारण इतने दिन चल गयी या सरकारी हस्तक्षेप की कमी के कारण। उदाहरण के तौर पर, अलग रहना इसलिये कारगर नहीं हुआ कि तोकुगावा ने अपने आपको दुनिया से काटकर रखा, बल्कि इसलिये कि दुनिया खुद जापान की तरफ से उदासीन रही। इसी तरह कसबे और गांव भी *बाकुफू* के अधिक हस्तक्षेप के बिना अपनी व्यवस्था चलाते रहे।

फिर भी, इस काल में आधुनिक जापान के विकास की बुनियाद रखी गयी क्योंकि कौशलों और संस्थाओं ने लोगों में यह सामर्थ्य बढ़ायी कि वे नये विचारों को स्वीकार करें और उन्हें मिलने वाले अवसरों का उपयोग कर सकें।

बोध प्रश्न 1

1) लगभग 15 पंक्तियों में जापानी इतिहास में सामुराइ की भूमिका और स्थिति के विषय में बतायें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) तोकुगावा काल में मुख्य व्यवसाय क्या थे? लगभग 10 पंक्तियों में जवाब दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

:) व्यापारिक गतिविधियों के संदर्भ में व्यापारियों की भूमिका क्या थी? लगभग 5 पंक्तियों में बतायें।

....

....

....

....

....

3.6 सारांश

इस इकाई में आपका परिचय उस घटनाक्रम से कराया गया है जिसके द्वारा जापान में तोकुगावा शासन स्थापित हुआ। इस प्रक्रिया में तोकुगावा हिदेयोशी और इयासू ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। तोकुगावा राज्य ने राजनीतिक नियंत्रण को बकू-हान व्यवस्था पर आधारित किया। सामंतों की शक्ति पर काबू पाने के लिये निर्देश सूचियों पर आधारित एक कुशल व्यवस्था को लागू किया गया।

तोकुगावा राज्य की सामाजिक संरचना कुलीन, सामुराइ, किसान, दस्तकार तथा व्यापारी वर्गों पर आधारित थी। व्यापार और शहरीकरण में काफी वृद्धि हुई। विदेशों से संपर्क लगभग नहीं के बराबर था। लेकिन तोकुगावा शासन काल की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसने आधुनिक जापान के लिये आधारशिला तैयार की।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) √ ii) √ iii) × iv) √

2) अपना उत्तर उपभाग 3.3.2 के आधार पर लिखें।

3) देखें उपभाग 3.3.3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) देखें उपभाग 3.4.2

2) देखें भाग 3.4

3) देखें उपभाग 3.4.3

इकाई 4 पारंपरिक अर्थव्यवस्था : चीन और जापान

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 चीन की परम्परागत अर्थव्यवस्था के घटक
4.3 कृषि
4.4 हस्तशिल्प उद्योग
4.5 यातायात के साधन
4.6 व्यापार और वाणिज्य
4.7 पूंजीवादी विकास में बाधाएं
4.8 जापानी अर्थव्यवस्था
  4.8.1 चीनी प्रभाव
  4.8.2 शोइन और योद्धाओं का उद्‌भव
  4.8.3 देश युद्ध के दौर में
4.9 तोकूगावा काल की अर्थव्यवस्था
4.10 सारांश
4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप जान सकेंगे कि

- परम्परागत चीनी अर्थव्यवस्था के घटक क्या थे,
- मिंग और चिंग काल के दौरान चीन की आर्थिक व सामाजिक स्थिति क्या थी,
- परम्परागत जापान में आर्थिक विकास की प्रक्रिया क्या थी,
- परम्परागत जापान की अर्थव्यवस्था के मुख्य घटक क्या थे,
- आर्थिक विकास का जापानी समाज पर क्या प्रभाव पड़ा, और
- कलाओं और संस्थाओं के विकास के परिणामस्वरूप जापान का आधुनिकीकरण किस प्रकार सम्भव हुआ।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको परम्परागत चीन और जापान की आर्थिक स्थितियों से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। परम्परागत चीन से अभिप्राय उस काल से है जो कि हमारे अध्ययन काल से पूर्व का काल है। प्रारम्भिक काल की आर्थिक स्थिति के बारे में संक्षिप्त चर्चा करने के उपरान्त इस इकाई में उन विभिन्न घटकों की चर्चा की गई है जिन्होंने मिंग-चिंग काल की अर्थव्यवस्था को दिशा प्रदान की। इसके साथ ही यह भी चर्चा की गई है कि उस काल के समाज का इस आर्थिक विकास के प्रति क्या दृष्टिकोण था। इसी प्रकार जापान के सन्दर्भ में न केवल प्रारम्भिक अर्थव्यवस्था के रूपों का वर्णन किया गया है वरन तोकुगावा काल की अर्थव्यवस्था और समाज की स्थिति का भी वर्णन किया गया है।

सर्वप्रथम हम चीन की अर्थव्यवस्था की चर्चा करेंगे।

4.2 चीन की परम्परागत अर्थव्यवस्था के घटक

एक अविकसित अर्थव्यवस्था में अक्सर परम्परागत और आधुनिक घटकों में अंतर करना एक कठिन कार्य है। परम्परागत आर्थिक क्रियाओं का सामान्यतः उन क्षेत्रों या विशेषताओं से मतलब लगाया जाता है जो कि देशी तौर पर विकसित हुई हैं। चीन की परम्परागत अर्थव्यवस्था का विकास एक धीमी और सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत हुआ। इसमें संस्थाओं, उत्पादन तकनीकों और वितरण आदि का विकास एक लम्बी अवधि के दौरान हुआ। इन संगठनात्मक गतिविधियों में यकायक या लगातार कोई परिवर्तन नहीं हुए। परन्तु चीनी रहन-सहन के तौर तरीके, जीवन के प्रति दृष्टिकोण और कार्य करने के तरीकों ने समय-समय पर इनको प्रभावित अवश्य किया।

दूसरी तरफ हम यह पाते हैं कि चीन में आधुनिक आर्थिक प्रवृत्तियां बाहर से ही आईं । यह नए तौर तरीकों के साथ विकास की ओर बढ़ता हुआ कदम था। धीरे-धीरे प्रवृत्तियाँ चीन की आर्थिक विकास की प्रक्रिया में समा गई। यहाँ यह जिक्र करना आवश्यक हो जाता है कि चीन प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से एक अत्यंत ही धनी देश है। वहां के अत्यधिक भू-विस्तार, उपजाऊ मैदान, वन सम्पदा, खनिजों और कोयले के विशाल भंडार और जल साधनों आदि ने आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। परन्तु चीन में आर्थिक विकास विभिन्न अवस्थाओं से गुजरा जिसमें उन्नति और अवनति की दशाएं शामिल थीं। चीन की परम्परागत अर्थव्यवस्था के प्रमुख घटक कृषि, हस्तशिल्प, व्यापार और देशी परिवहन व सेवाएं आदि थे जिनकी चर्चा हम आगामी खण्डों में करेंगे।

4.3 कृषि

जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं (इकाई-2) चीन मुख्यतः एक कृषि समाज देश रहा है। वहाँ निरंतर कृषि का विकास हुआ जिससे कृषि ढांचे और सम्बन्धों में भी परिवर्तन होते रहे। कृषि में उत्पादन सम्बंध विभिन्न अवस्थाओं से गुजरे जैसे शिकारी समुदायों से दास समुदायों में और अन्ततः सामंतवादी ढांचे में। इन सभी अवस्थाओं ने कृषि सम्बंधों पर अपनी छाप अवश्य छोड़ी। भू-स्वामित्व के सन्दर्भ में दो नमूने (पैटर्न) उभर कर आए—व्यक्तिगत और सामूहिक। भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व के द्वारा जमींदारी प्रथा का उद्भव हुआ। सामूहिक स्वामित्व के नमूने के अन्तर्गत शाही, सरकारी, सैनिक और मठों की भूमि शामिल थी। भू-स्वामित्व के ये सभी नमूने वास्तव में सामन्तवादी ढांचे के अन्तर्गत क्रियाशील और विकसित हुए। राज्य और जमींदार दोनों ही के द्वारा विभिन्न प्रकार के कर थोपे जाते थे और सरकारी नियम जमींदारों के हित में थे। उदाहरण के लिए मठाधीश जमींदारों को न तो कोर्ट कर ही देना होता था और न ही श्रम सेवाएं। यह स्थिति तब थी जबकि उनके पास अत्यधिक भूमि, सम्पत्ति और साधन मौजूद थे। बहरहाल हम यहां पर विभिन्न चरणों के कृषि संबंधों में व्याप्त पेचीदगियों में नहीं जा रहे हैं। इतना अवश्य है कि किसी भी अवस्था में कृषि-संबंध चाहे कैसे भी रहे हों कृषि तकनीक में कोई न कोई सुधार अवश्य हुआ। विशेषतौर से 8वीं से 13वीं शताब्दी में कृषि क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनके बारे में हमें अनेक स्रोतों से जानकारी हासिल होती है। उदाहरण के लिए :

- उत्तरी वी (Wei) काल में चुस्जुशीह ने एक पुस्तक, द *मैन्युअल आफ इम्पौरटेन्ट आर्ट्स फौर द पिपल,* लिखी थी। इसमें कृषि सम्बन्धी अनेक क्रियाओं का जिक्र था जैसे कि बुआई, कृषि औजार, पशुपालन, स्थानीय दशाओं में खेती और अधिक उपज प्राप्त करने के तरीके आदि। उसने लिखा : "अच्छा यह है कि छोटे क्षेत्र से अच्छी उपज ली जाए बजाए इसके कि बड़े क्षेत्र से बुरी उपज।"
- लू यू (733-804 ई.) ने अपनी पुस्तक द *बुक आफ टी* में चाय की खेती और चाय बनाने के तरीकों की चर्चा की।
- 1149 ई. में चान फू ने अपनी पुस्तक *एग्रीकल्चर* में धान की खेती की तकनीक की चर्चा की।
- वर्ष 1273 में युआन सरकार ने खेती सम्बन्धी आज्ञाप्तियां जारी की जिनमें रेशम के कीड़ों की विधि समझाई गई थी।
- इसी प्रकार वांग चैन ने अपनी पुस्तक में कृषि औज़ारों और क्रियाओं को चित्रों द्वारा समझाया (1295-1300 ई.)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि के तरीकों के विकास के अतिरिक्त कृषि औज़ारों में भी सुधार हुए। उदाहरण के लिए लोहे की ढलाई के लिये जलशक्ति का प्रयोग होने से लोहे के कृषि औज़ारों के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई।

इसी प्रकार सुई-तांग काल में एक नए प्रकार का हल बनाया गया जिसके ग्यारह हिस्से थे और उनको अलग-अलग प्रकार की गहराई प्राप्त करने के लिए ऊपर नीचे किया जा सकता था।

प्रारम्भिक मिंग शासन के दौरान अधिकाधिक भूमि को जुताई के काबिल बनाने के प्रयास किए गए। उदाहरण के लिए राजा चू यूआन चांग ने आदेश जारी किए थे कि सीमा पर तैनात सिपाही अपना 70 प्रतिशत ध्यान कृषि में और 30 प्रतिशत सुरक्षा की ओर लगाएं। जबकि भीतरी प्रदेश में तैनात सिपाही यही कार्य 80:20 के अनुपात में करें। परन्तु मिंग सरकार ने भी किसानों पर करों में वृद्धि ही की।

मिंग शासन में जमींदारी प्रथा (मेनोरियल) ने ही महत्ता ग्रहण की। इसकी आधारभूत विशिष्टता यह थी कि किसान जमींदार से जोतने के लिये जमीन लेता था और बदले में उसे कुछ निश्चित राशि और सेवाएं देनी होती थीं। उदाहरण के लिए उसे अनेक दिनों तक जमींदार के खेत जोतने होते थे। लगभग 15वीं शताब्दी तक यही व्यवस्था प्रभावशाली रूप में लागू रही। लेकिन मिंग वंश के पतन में किसान विद्रोहों का काफी हाथ था। इनमें से कुछ मुख्य विद्रोह थे :

- 1420 में शातुंग में एक किसान औरत तांग साई के नेतृत्व में हुआ विद्रोह,
- 1448 में चीजीयांग प्रांत मं येहत्सुंग लिन के नेतृत्व में हुआ विद्रोह,
- 1448 में फ्युजियान प्रान्त में तेंग माओ ची ने स्वयं को किसानों का राजा घोषित कर सशस्त्र विद्रोह किया।
- 1627 से प्रारम्भ शांशी प्रांत में हुआ किसान विद्रोह आदि।

वास्तव में सामंतवादी शोषण, आकाल और बाढ़, सभी का कृषि पर प्रभाव पड़ता रहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चिंग काल में जुताई की भूमि में धीरे-धीरे वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए 1661 में 82,350,000 एकड़ जमीन जोती जा रही थी। 1812 तक यह बढ़कर 116,500,000 एकड़ हो गई। कृषि विकास धान और नकदी फसलों के चारों ओर केन्द्रित रहा। इस काल में भी भूमि कर सबसे बड़ा कर बना रहा।

इस समय कृषि मजदूरों का भी बाजार विकसित हुआ। कृषक मजदूरों की एक बड़ी संख्या मजदूरी लेकर जमींदारों के लिए साल भर के लिए, दिहाड़ी पर या एक दौर तक कार्य करती थी। यद्यपि ऐसा कुछ ही क्षेत्रों में हुआ परन्तु इससे कई मजदूर सामंती चंगुल से मुक्त हो अपने श्रम को खुले तौर पर बेचने लगे।

भू-स्वामित्व के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कदम नए प्रकार के जमींदारी वर्ग का उद्भव था जिसमें कि सरकारी कर्मचारी, कुलीन और व्यापारी शामिल थे।

चिंग काल में भी अनेक किसान विद्रोह हुए। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण 1796-1804 के दौरान का ग्रेट व्हाइट लोटस विद्रोह था। परन्तु केवल 1850 के दशक में जाकर ही ताइपिंग विद्रोह में एक नवीन कृषि ढांचे के निर्माण का प्रयास किया गया (इकाई 13 देखें)।

बोध प्रश्न 1

1) लगभग पाँच पंक्तियों में कृषि के क्षेत्र में हुई तकनीकी विकास की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्न में से कौन से वक्तव्य सही या गलत हैं? √ या × का चिन्ह लगाएं :

i) मठाधीश जमींदारों को भारी कर देना पड़ता था।

ii) लू यू ने रेशम के कीड़ों के उत्पादन पर पुस्तक लिखी।

iii) चान फू की पुस्तक धान की खेती से सम्बन्धित थी।

iv) तांग साई एक औरत किसान नेता थी।

v) चीन में सामंतवाद का बोलबाला था।

3) मिंग काल के कुछ किसान विद्रोह बताइए।

....

....

....

....

....

....

4.4 हस्तशिल्प उद्योग

चीनी हस्तशिल्प, विशेषतौर से शांग काल (1523-1027 ई. पू.) से, उच्च कोटि के रहे हैं। उदाहरण के लिए खुदाइयों में सुन्दर बर्तन और तांबे की वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार की वस्तुएं निर्मित होती रहीं। हस्तशिल्प के महत्वपूर्ण क्षेत्र थे :

- बर्तन बनाना
- पोर्सिलीन (चिन्नी मिट्टी) और लैक्युवेअर (लाख के रोगन युक्त) बर्तन
- तांबे के बर्तन, शस्त्र और औजार, आदि
- कताई और बुनाई
- कागज बनाना

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी प्रकार नमक बनाना, लोहा ढालना आदि भी विशिष्ट शिल्प के रूप में विकसित हुए।

परम्परागत हस्तशिल्प उद्योग का विकास कृषि के एक उपरोजगार के रूप में हुआ। क्योंकि कृषि कार्य की प्रकृति मौसम पर आधारित थी इसलिए किसानों को हस्तशिल्प में भी व्यस्त रहने का पर्याप्त समय मिलता था। धीरे-धीरे स्वतंत्र हस्तशिल्पियों का भी ग्रामीण और शहरी दोनों ही इलाकों में उद्भव हुआ। परन्तु उत्पादन विधियाँ मुख्यतः परम्परागत ही रही जिनमें कि साधारण औज़ारों का ही प्रयोग होता था। पर अब दस्तकार ऐसा उत्तम समान भी बनाने लगे थे जिनके लिए दूर-दूर तक बाजार उपलब्ध थे। उदाहरण के लिए चीन में बनी ज़री (Brocade) की मांग रोम तक में थी।

विभिन्न समय पर कुछ नवीन उपलब्धियाँ भी हुई। जैसे तीन राज्यों के काल में करघे को चलाने में सुविधा हुई जबकि उसके पैडल 60 से घटाकर 12 किए गए। इसी प्रकार तांग काल में जो कागज बनता था वह अपनी समतलता और उत्तमता के लिए कई देशों में प्रसिद्ध था। सुंग और युआन काल मे उच्च कोटि के पोर्सलीन का सामान बनता था। कुछ मशहूर भट्टे हीनान काईफैंग जैसे स्थानों पर केन्द्रित थे। इस क्षेत्र में मिंग-चिंग काल में नीला फूलदान बहुरंगी फूलदान सर्वाधिक प्रसिद्ध उत्पाद थे।

तांग काल में नमक उद्योग का विकास हुआ था। चिंग काल तक हज़ारों मजदूर नमक उद्योग से जुड़े हुए थे। लोहा पिघलाने और ढालने के क्षेत्र में भी अनेक उपलब्धियां हुई और मिंग काल में इस्पात बनाने के नवीन तरीके अपनाए गए। लोहा ढालने और पिघलाने के लिए ईंधन के तौर पर कोयले का प्रयोग किया जाने लगा था। जस्ता (Zinc) पिघलाने की प्रक्रिया अत्यंत ही कठिन मानी जाती है परन्तु चीन में यह 15वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों से ही प्रचलन में थी और बाद में यूरोप तक में अपनाई गई।

नक्काशी युक्त लकड़ी के ठप्पों से छपाई का कार्य तांग काल से प्रारंभ हो चुका था। मिंग चिंग काल में तांबे और टिन आदि के टाइप से छपाई की जाने लगी। छपाई की सामान्य प्लेट के अतिरिक्त अब बहु-छपाई प्लेट का भी प्रयोग होने लगा।

कताई और बुनाई एक सहायक पेशे के रूप में मौजूद था परन्तु मिंग काल से ये एक स्वतंत्र उद्योग के रूप

में उभर कर आने लगे। उदाहरण के लिए मिंग काल में अनेक बुनकर धनी व्यापारियों के करघों पर मजदूरी पर कार्य करते थे। वानली के काल के बारे में एक रपट में कहा गया था कि :

> हुंगचाओ में जिन दस्तकारों के अपने मालिक थे उन्हें प्रतिदिन मजदूरी मिलती थी। जिनके नियमित मालिक नहीं थे वे पुल पर सुबह खड़े होकर इंतजार करते थे कि उनके नाम बुलाए जाएं।

यह इस तथ्य का द्योतक है कि मजदूरी का बाजार बन चुका था। अनेक धनी बुनकरों ने अपने करघों की संख्या बढ़ा दी थी जिससे और बुनकरों को दिहाड़ी देकर अपना उत्पादन बढ़ा सकें। कपड़े के व्यापारी उत्पादन हेतु कच्चा माल, दस्तकारों और छपाई करने वालों को वितरित करने लगे थे। इस प्रकार श्रम विभाजन के द्वारा उत्पादन पूर्ण किया जाता था। इस प्रकार एक तरफ तो धनी बुनकर कार्यशालाओं के स्वामी बनने लगे थे और दूसरी तरफ व्यापारी ठेके पर कपड़े का उत्पादन करवाने लगे थे। परन्तु ऐसा केवल दक्षिणी-पूर्वी चीन में ही हो रहा था। तब भी यह चीन में एक प्रकार के पूंजीवाद के प्रारम्भ का द्योतक है।

इसी के साथ एक नए प्रकार का वर्ग संघर्ष भी उभर रहा था। करघों पर सरकारी टैक्स बढ़ाए जाने के विरुद्ध आवाजें उठने लगीं थीं। उदाहरण के लिए सुचाओ में सोलहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में अनेक मजदूरों ने कर निदेशक द्वारा करघों पर कर बढ़ाए जाने के विरोध में हड़ताल की।

खान उद्योग में भी इसी प्रकार की घटनाएं देखने को मिलीं। 1603 में शीशान के खान मजदूरों ने खान निदेशक के बुरे बर्ताव के विरुद्ध पीकिंग में जाकर प्रदर्शन किया। 1606 में यूनान के कराधिकारी का दफ्तर खान मजदूरों ने जला दिया। बदले में कराधिकारी यांगजुंग ने एक हजार मजदूरों को मार डाला । इससे मजदूर और उत्तेजित हो उठे और उन्होंने यांग के दो सौ समर्थकों को मार डाला। ये घटनाएं इस बात की द्योतक हैं कि मजदूरों में जागृति फैल रही थी।

यद्यपि चीनी उद्योगों का विकास आधुनिक तौर तरीकों पर नहीं हुआ (जैसा कि यूरोप में हुआ था) परन्तु हस्तशिल्प उद्योग और कार्यशालाएं चीन की परम्परागत उद्योगों की उच्चतम अवस्था को इंगित करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.5 यातायात के साधन

किसी भी देश के आर्थिक विकास में यातायात के साधन महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। परम्परागत चीन में यातायात के प्रमुख स्रोत नदियां और नहर थीं। चीन में चिन-हान काल से ही जल संरक्षण परियोजनाओं का विकास संचालन कृषि और पशुपालन के सन्दर्भ में हुआ था। इस काल में खोदी गई कुछ महत्त्वपूर्ण नहरें थीं :

- लियु-चू नहर
- त्साओ-यू नहर जो कि शू-पो की देख रेख में बनाई गई थी। शू-पो जल संरक्षण क्षेत्र का विशेषज्ञ था।
- 69 ई. में वौंग-चिन की देख रेख में ह्वांगी नदी को नियन्त्रित किया गया था।

इन सभी परियोजनाओं में अनेक मजदूर कार्यरत रहे। इनकी पूर्ति से अनाज के परिवहन में सुधार हुआ।

तीन राज्यों के काल में एक अज्ञात लेखक ने अपनी पुस्तक में 137 जलमार्गों का उल्लेख किया था। छठी शताब्दी में ली-ताओ-युआन ने 1252 और जलमार्गों को अपनी पुस्तक में अंकित किया। छठी और बारहवीं शताब्दी के मध्य सरकारी पहल पर अनेक नहरें खोदी गईं। यह इस उद्देश्य से किया गया कि उत्तरी चीन की प्रमुख नदियों को जोड़ा जा सके। इस क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि ग्रैंड कैनाल का बनाया जाना थी। 600 मील लम्बी यह नहर हैंकचाओ से शातुंग प्रांत तक जाती थी। यातायात में सुधार के साथ-साथ नहरों के निर्माण ने सिंचाई में भी मदद की। और इनका निरंतर विकास होता रहा।

सोलहवीं शताब्दी में पान-ची-शुंग ने ह्वांगी और हुयाई नदियों पर अपने निरीक्षण में जल संरक्षण का कार्य करवाया। इस क्षेत्र में उसने दो पुस्तकें भी लिखीं :

- *दो नदियों पर मेरे विनम्र विचार,* और
- *नदी नियंत्रण की रूपरेखा* ।

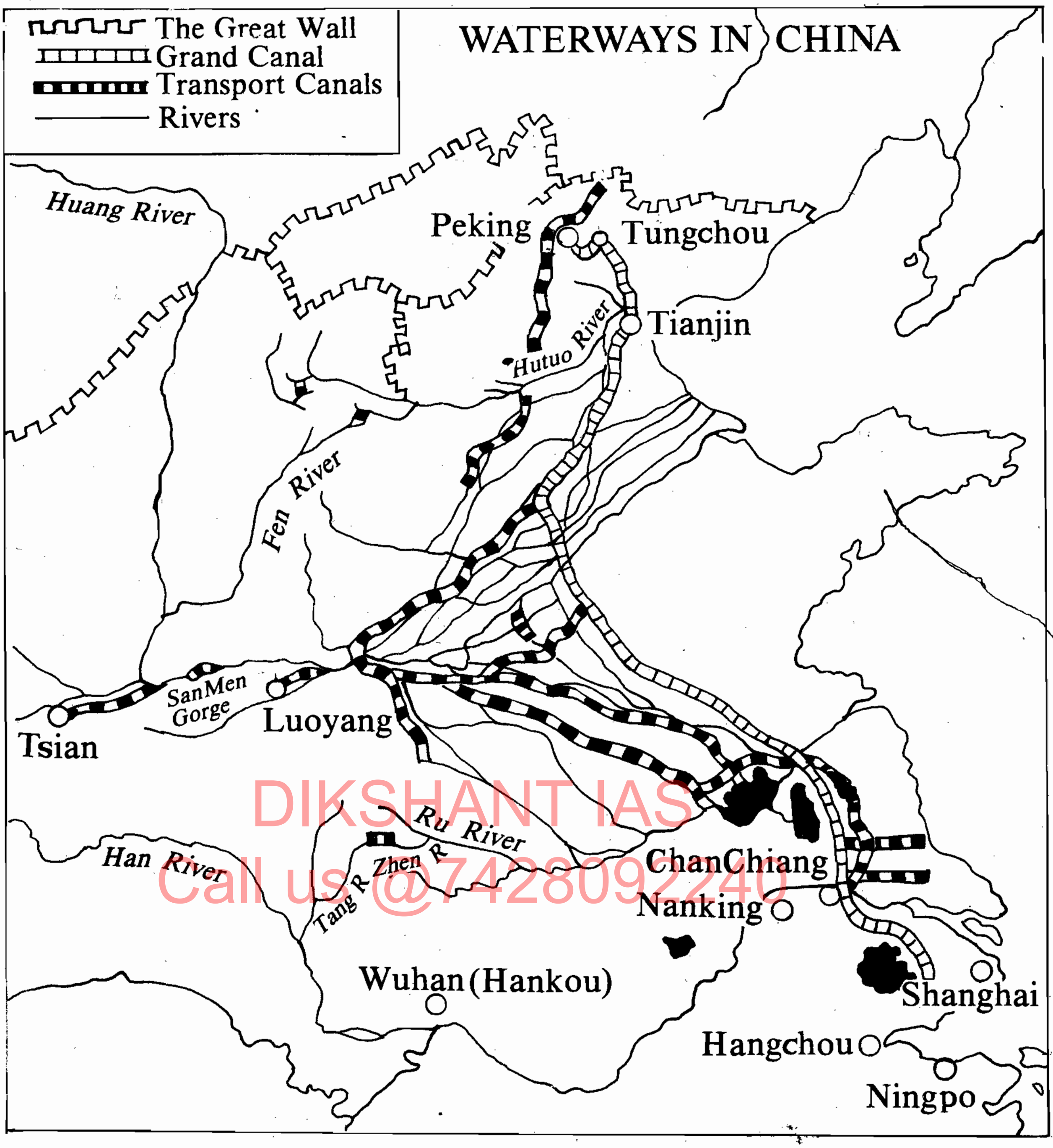

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नक्शा-5 : चीन के जल मार्ग

मिंग-चिंग काल में नदी यातायात सुधारने के व्यापक प्रयास किए गये परन्तु इसके प्रशासन में व्यापक भ्रष्टाचार भी फैला। 1811 में यह माना गया कि जल नियन्त्रण के बजट में से आधी से अधिक धनराशि भ्रष्टाचार में लुप्त हो जाती थी। वास्तव में जल नियंत्रक के पद पर सबसे अधिक रिश्वत मिलती थी और इस विभाग में कदम-कदम पर भ्रष्टाचार था।

जहाँ तक स्थल मार्गों का सवाल है, तांग और सुंग सरकारों ने न केवल पुराने मार्गों को बनाए रखा वरन् उनमें सुधार भी किए। मिंग-चिंग काल में भी स्थिति यही रही और रास्तों को डाकुओं से मुक्त कराने का भी प्रयास किया गया।

समुद्र यातायात भी प्राचीन काल से चला आ रहा था और उन्नीसवीं शताब्दी तक तटीय गांवों और बड़े बन्दरगाहों की स्थापना हो चुकी थी।

इस प्रकार यातायात के साधनों में सुधार होने से एक राष्ट्रव्यापी बाजार की स्थापना हुई और व्यापार को प्रोत्साहन मिला।

4.6 व्यापार और वाणिज्य

प्राचीन चीन में—विशेष तौर से चाओ काल में—व्यापार पर मुख्यतः कुलीनों या राज्याधिकारियों का ही नियंत्रण था। परन्तु वैरिंग स्टेटस के काल तक व्यापारी एक पृथक सामाजिक वर्ग के रूप में स्थापित होने लगे थे। इस काल के एक व्यापारी, पाई-कई, के बारे में जो उद्धरण मिलता है उसके अनुसार वह अच्छी फसल के काल में अनाज खरीदता और रेशम व लैक्युवेयर (लाख के पालिश के बर्तन) बेचता था। दूसरी तरफ बुरी फसल के काल में वह अनाज बेचता और कपड़ा खरीदता था। इस प्रकार उसने अत्यधिक मुनाफा कमाया।

प्राचीन रेशम मार्ग काफी प्रसिद्ध था और इस मार्ग के रास्ते चीनी व्यापारी प्रथम शताब्दी से मध्य एशिया और पाश्चात्य जगत से व्यापार कर रहे थे। तांग काल आते-आते चीन में बने सामान की अरब के बाजारों, जापान और अन्य देशों में खासी मांग थी। व्यापार की सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ इस समय रेशम के वस्त्र और चीनी मिट्टी के बर्तन थे। इस काल में व्यापार के लिए *"फी चीएन"* का उद्भव हुआ। फी चीएन का अर्थ उड़ने वाला धन है और यह एक प्रकार का बिल आफ एक्सचेंज (हुण्डी) था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सुंग, चीन और युआन काल में चीन में कागज़ी मुद्रा का प्रयोग होने लगा था।

व्यापार के विस्तार से शहरीकरण और बाजारों के विस्तार को बढ़ावा मिला। उदाहरण के लिए हानचाओ में व्यापारिक गतिविधियां रात में भी चलती थी और शहर में 20 से अधिक लाइसैन्सशुदा दुकानें (Pawn Shops) थीं। युआन शासन के दौरान मार्कोपोलो ने दाद की व्याख्या एक ऐसे शहर के रूप में की है जहाँ रेशम से भरे 1000 ठेले रोज भेजे जाते थे।

कभी-कभी व्यापारी करों में वृद्धि पर विरोध भी प्रकट करते थे। उदाहरण के लिए 1599 में शातुंग प्रांत में लिनचिंग शहर के व्यापारियों ने कर निर्देशक के विरुद्ध हड़ताल कर दी और उसका दफ्तर जला डाला। व्यापारियों ने स्वयं को स्थानीय संघों (*तुग-शीयांग हुई*) में गठित किया परन्तु 19वीं शताब्दी तक भी वे अपने हितों की सुरक्षा और शक्ति का प्रदर्शन जम कर नहीं कर पाए।

सामाजिक वर्गीकरण की दृष्टि से व्यापारियों को हीन दृष्टि से देखा जाता था और सरकार द्वारा उन पर कई प्रकार के नियंत्रण लगाए जाते थे : उदाहरण के लिए :

- नमक बनाने और बेचने के लिये लाइसैंस लेना पड़ता था,
- चावल में व्यापार राज्य द्वारा लागू की गई अनाज शुल्क व्यवस्था द्वारा नियन्त्रित था, और
- शाही कारखानों में निर्मित रेशम और मिट्टी के बर्तनों के व्यापार पर भी राज्य का सीधा नियंत्रण था।

वास्तव में विदेशी व्यापार, कोहौंग व्यापार व्यवस्था और व्यापार पर सरकारी नियंत्रणों की चर्चा हम इकाई 6 में करेंगे।

4.7 पूंजीवादी विकास में बाधाएं

उत्तरकालीन मिंग और चिंग काल में प्रारम्भिक पूंजीवाद विकास के लक्षण उभर कर सामने आने लगे थे। परन्तु पूंजीवाद के सामान्य विकास को कई कारणों से धक्का लगा। यहाँ हम संक्षिप्त में उनमें से कुछ की चर्चा करेंगे।

1) एक लम्बी अवधि तक चीन की अर्थव्यवस्था सामन्तवादी ढांचे में अपनी मांगों को स्वयं ही पूर्ण करती रही थी। परन्तु इसका उत्पादन प्रक्रियाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए हम देख ही चुके हैं कि किस प्रकार जमींदार किसानों का शोषण करते थे। इसके परिणामस्वरूप उत्पादकता में किसी भी प्रकार की वृद्धि केवल जमींदार के लिए ही लाभकारी थी और किसानों को इसमें कोई हिस्सा नहीं मिलता था। किसानों द्वारा किया गया उत्पादन, चाहे वे अनाज हो या हस्तशिल्प की वस्तुएं, केवल दैनिक परम्परागत घरेलू मांगों की पूर्ति तक ही सीमित था। इस प्रकार परम्परागत घरेलू ढांचे पर बल बाजार सम्बन्धों और व्यापार के दायरे को संकुचित करता रहा। इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक पूंजीवाद के विस्तार में बाधाएं आयीं।

2) चीन में शिल्पसंघ कड़े नियमों में कार्य करते थे जो कि शिल्पकारों पर नियंत्रण रखने के लिये सामन्तवादी सरकार द्वारा लगाए जाते थे। कच्चे माल के वितरण और बने हुए उत्पादों के श्रेणीकरण से संबधित नियम बाजार में प्रतिस्पर्धा को रोकते थे जिससे पूंजीवादी विकास पर अंकुश लगता था।

3) हस्तशिल्प, कपड़े और खान उद्योग के प्रति जो दृष्टिकोण सामन्तवादी सरकार ने अपनाये उससे भी उत्पादन के पूंजीवादी स्वरूपों के विकास में रुकावट आयी। उदाहरण के लिये चिंग सरकार ने चाय, नमक और शराब पर भारी कर लगाए, उत्पादों को अक्सर कम दामों पर खरीदा और व्यापारियों और वस्तुओं के स्वतंत्र आवागमन पर रोक लगाई। कई बार खानों में काम को मनमाने ढंग से बंद कर दिया जाता था जबकि इस उद्योग में मुनाफा ही हो रहा था। वास्तव में ऐसा सरकार इस भय से करती थी कि कहीं अधिक समय साथ रहने के कारण खान मजदूर सरकार के लिए समस्या उत्पन्न न कर दें।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

4) जैसा कि हम इकाई-2 में जिक्र कर चुके हैं व्यापारी प्रतिष्ठा की दृष्टि से चीनी समाज में सबसे हीन माने जाते थे। सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उन्होंने बड़े पैमाने पर जमीन खरीदने में धन लगाया जिससे उन्हें भूपति का दर्जा मिल सके। इस प्रकार एक बड़ी धन राशि जो कि व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र के विकास में भूमिका निभा सकती थी, दूसरी दिशा में लुप्त हो गई।

5) भूमि खरीदना और महाजनी में धन लगाना लाभकारी व्यवसाय समझे जाते थे। इस प्रकार धन के औद्योगिक पूंजी में परिवर्तित होने में रुकावटें आयीं।

6) मिंग-चिंग काल में व्यापार पर लगाए गए प्रतिबन्धों के कारण कई व्यापार योग्य वस्तुओं के उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यद्यपि सामंतवादी व्यवस्था में दरारें उत्पन्न होने लगी थी परन्तु वह सामन्तवाद का प्रभाव ही था जिसके कारण चीन में पूंजीवाद के विकास के रास्ते में अवरोध उत्पन्न हुए।

बोध प्रश्न 2

1) किस उद्योग में स्वतंत्र श्रम बाजार का उद्भव हुआ? उस उद्योग की मुख्य विशेषताएं बताएं। लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) लगभग 10 पंक्तियों में नहर-व्यवस्था की महत्ता बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) चीन में पूंजीवाद के विकास में जो गतिरोध उत्पन्न हुए उनकी चर्चा लगभग 15 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4.8 जापानी अर्थव्यस्था

जापानी द्वीप समूह में मानव लगभग 10,000 ई.पू. से बसने लगे थे। परन्तु इनके बारे में अधिक जानकारी नहीं है। जापान के प्रारम्भिक मानव मुख्यतः शिकार और भोजन इकट्ठा करके अपना निर्वाह करते थे। कृषि अवस्था काफी बाद में जाकर ही सम्मुख आई। जोमोन काल (यह नाम उस काल के विशेष बर्तनों के कारण दिया गया है) के अंतिम वर्षों में धान की खेती क्युश क्षेत्र में एशिया की मुख्य भूमि से आई। प्रारम्भ में धान तालाबों के किनारे या सूखी क्यारियों में बोया जाता था।

यायोई काल में धान की खेती का विस्तार हुआ। इस काल की कलाकृतियों में धान कूटने और गोदामों में रखने के चित्र अंकित मिलते हैं। इस काल से धान की खेती ने न केवल एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक भूमिका

अदा की वरन् उसने सहकारिता के व्यवहार को भी सशक्त किया। जल संसाधनों और श्रम को परस्पर बाँटने की आवश्यकता ने ग्रामीण समुदायों को जन्म दिया। क्योंकि जापान में समतल मैदानों की कमी थी इसलिए उठे हुए खेत (जैसे कि पहाड़ों पर देखने को मिलते हैं) बनाए गए और चावल जापानियों के भोजन का प्रमुख अंग बना।

आरम्भिक जापानी समाज पितृसत्तात्मक गोत्रों में बँटा था। प्रत्येक गोत्र व्यावसायिक गुटों पर निर्भर था जो कि वंशानुगत शिल्पसंघों का रूप लेने लगे थे। जापानी में इन्हें *बी* या *तोमो* कहा जाता था। इनमें शस्त्र बनाने वाले, कुम्हार, जुलाहे, लकड़हारे और मछेरे आदि शामिल थे। अतः जापानी सभ्यता के उद्‌भव काल में ही कई ऐसी आर्थिक क्रियायें जो कि आगे तक बनी रहीं शामिल थीं।

4.8.1 चीनी प्रभाव

चीन में जो सुधार हुए थे आठवीं शताब्दी में उन्हें जापान में एक मॉडेल मानकर लागू किया गया। इससे पितृसत्तात्मक गोत्र समाज में एक अभिजात वर्ग में परिवर्तित हो गए। परन्तु जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति का दूरगामी प्रभाव पड़ा। जमीन पर स्वामित्व का अधिकार अब केवल शाही सत्ता के पास था। इस वजह से जमीन और जनसंख्या का सर्वेक्षण प्रारम्भ हुआ। इस सर्वेक्षण में कठिनाइयां भी सामने आई जैसे भूमि का समतल न होना और कई क्षेत्रों में भूस्वामित्व की धारणाओं का स्पष्ट न होना आदि। जो नई व्यवस्था लागू की गई उसे *कू-बन-दीन* कहा गया। इसमें प्रत्येक पुरुष को 2000 वर्ग मीटर जमीन और प्रत्येक स्त्री को इसका लगभग 2/3 खेती के लिये दिया गया। इस पर लगाए गए कर धान, श्रम या अन्य उत्पादों के रूप में दिए जाते थे।

इस प्रकार चीन के प्रशासनिक 'मॉडेल' को एक ऐसे समाज में डाला गया जिसमें बहुत कम व्यापार मौजूद था और कृषि भी अपरिष्कृत अवस्था में ही थी।

शाही सत्ता ने निरंतर राजस्व में वृद्धि का प्रयास किया और इसके लिए किसानों को और अधिक भूमि जोतने के लिए प्रेरित किया। 722 ई० में एक आदेश दिया गया कि $2\frac{1}{2}$ लाख हैक्टेयर भूमि को खेती योग्य बनाया जाए। यह संख्या वास्तव में उस समय लगभग पूर्ण जुताई की जा रही भूमि के बराबर थी। कुछ क्षेत्रों में कर में छूट दी गई और लोहे के औजार भी उपलब्ध कराए गए। इस समय फावड़ा और कुदाल मुख्य औजार थे। टोडाजी जैसे बड़े मदिरों ने भी कार्य में सहयोग किया। सिंचाई के साधनों का भी विकास किया गया। परन्तु अनेक कारणों वश *कू-बन-दीन* व्यवस्था सफल न हो पाई और सामन्तवादी व्यवस्था का विकास हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

समस्याओं के बावजूद अर्थव्यवस्था का विकास होता रहा। 708 में तांबे की जानकारी के उपरान्त मुद्रा के रूप में उसका प्रयोग प्रारम्भ हुआ और एक मुद्रणालय भी स्थापित किया गया। अब चावल और वेतन भी मुद्रा के द्वारा मापे जाने लगे। 760 के बाद से सोने के सिक्कों का प्रचलन हुआ और तांबे, चांदी और सोने के सिक्कों के मध्य विनिमय दर भी तय की गई।

हीयेन काल में (784-1185 श. प्र.) में कृषि-भूमि का विस्तार हुआ। परन्तु जमींदारियों से अब लगान शाही सत्ता द्वारा इकट्ठा नहीं किया जाता था। उसका स्थान अब उन लोगों ने ले लिया था जो कि जमींदारियों (*शोइन*) पर नियंत्रण स्थापित किये हुए थे। राजकीय दरबार की शक्तियों का प्रयोग अब सैनिक परिवार और मंदिर करने लगे थे। इस प्रकार 902 तक *कू-बन-दीन* व्यवस्था के आधीन भूमि का वितरण बन्द कर दिया गया और *शोइन* यानी जमींदारियों की संख्या बढ़ने लगी।

हीयेन काल के दस्तकार कुलीनों के लिए सामग्री बनाते रहे। और वे सरकारी कार्यशालाओं में कार्यरत थे। उदाहरण के लिये कागज निर्माण का विस्तार हुआ और अप्रैल और जुलाई के मध्य औसतन एक मजदूर प्रतिदिन 196 शीट बनाता था। इसी प्रकार सुनार चांदी ढालने और पोलिश का कार्य करते थे। दसवीं शताब्दी तक व्यवसायिक शिल्पकारों का उद्‌भव हो चुका था। उनको निश्चित तनख्वाह मिलती थी और उन्हें उसके बदले कितना उत्पादन करना होता था यह भी तय कर दिया जाता था। यह व्यवस्था एक लम्बे काल तक प्रचलित रही।

4.8.2 शोइन और योद्धाओं का उद्‌भव

शोइन या जमींदारियां ऐसे क्षेत्र थे जिनके मालिकों ने सरकार की भूमिका और वित्तीय अधिकार हासिल कर लिए थे। कुछ शोइन बौद्ध मन्दिरों को दिए गए थे और कुछ पर स्वयं सम्राट का नियंत्रण था। ग्यारहवीं शताब्दी तक राज दरबार अपने अधिकार की सभी भूमि खो चुका था। तेरहवीं शताब्दी आते-आते सारा

जापान लगभग 5000 *शोइन* में बंटा हुआ था। कई मालिकों के बहुसंख्यक जोत भी थे। इस व्यवस्था ने सरकारी ढाँचे का रूप ले लिया जो कि *तैईहो* के नियम के विपरीत था। अब जमींदारों और किसानों के मध्य सम्बन्ध उनके आपसी समझौते पर निर्भर थे। किसान को अब जो भी प्राप्त होता था उसे वह तनख्वाह न समझकर ऐसी राशि मानता था जो जमींदारों को व्यक्तिगत लाभ कराने के बदले में उसे मिलती थी। इस प्रकार इन दोनों के मध्य सम्बन्धों ने व्यक्तिगत स्वरूप ले लिया।

कामाकूरा बाकुफू ने अपनी शक्ति व्यक्तिगत वफ़ादारी के ढांचे पर आधारित की। इसके साथ उसने प्रांतों में, जहां विभिन्न व्यवस्थाएं प्रचलित थीं, एक भूमि व्यवस्था और प्रशासन लागू करने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए इसके अंतर्गत बेकार पड़ी भूमि को जोत के अधीन लाने के लिए अधिकारी नियुक्त किए गए जो करों के एकत्रित करने की देखभाल भी करते थे। कामाकूरा बाकुफू के किसानों की दिशा सुधारने करने के लिए नए कानून लागू किये गये जो कि जोयी कानून कहलाते थे।

इन कानूनों के द्वारा निष्पक्ष रूप से झगड़ों को सुलझाने के जो प्रयास किये गए उनसे किसानों को कुछ राहत मिली। किसी न किसी रूप में ये कानून 19वीं शताब्दी तक लागू रहे।

परन्तु किसान की जिन्दगी एक पुराने ढर्रे पर ही चलती रही। करों की दर उपज का 2/3 भाग होने के कारण ऊंची बनी रही। चावल ऊंची कीमत के कारण साधारण किसान की पहुंच से बाहर था। किसान के पास कोई पारिवारिक नाम नहीं था। उसे *हयाकुशो* कहा जाता था जिसका मतलब सैकड़ों नामों से पुकारा जाने वाला व्यक्ति होता है। किसानों का मुख्य आहार गेहूं या बाजरा था। 14वीं शताब्दी से *सोबा* (काला गेहूं) भी उसके आहार में शामिल हो गया । इस समय नावें भी पुराने ढंग की थी और यात्रा खतरों से परिपूर्ण थी।

894 में चीन के साथ व्यापार पर जो प्रतिबन्ध लगाए गए थे वे इस काल में उठा लिए गए और तटीय व्यापार पुनः प्रारम्भ हुआ। परन्तु जापानियों के पास ऐसे जहाज नहीं थे जो समुद्री यात्रा कर सके अतः चीनी जहाजों में ही सामान लाया जाता था। वास्तव में कामाकूरा काल में जापान चीन से रेशम, जरी, इत्र, तांबे के सिक्के और चाय जैसे वस्तुएं मंगवाता था और बदले में सोना, तलवारें, पारा, तारकोल, रंगीन बर्तन और परदे चीन भेजे जाते थे। जापान से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की इस लिस्ट से पता चलता है कि इस काल में जापानी हस्तशिल्प की वस्तुएं, विशेष तौर से वहां बनी तलवारें, उच्च श्रेणी की थीं। तलवारों का उपयोग केवल योद्धाओं के लिये ही नहीं था। शिन्तो धर्म के अनुष्ठानों में भी उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। 10वीं शताब्दी के अन्त तक प्रसिद्ध तलवार बनाने वाले तलवार की धार पर अपना नाम भी गोदने लगे थे। इसके अतिरिक्त कई अन्य प्रकार के विशिष्ट अस्त्र भी बनाए जाते थे। जैसे पतले लोहे की प्लेटों को रंगीन डोरी से बांधकर एक शस्त्र बनाया जाता था। लाख और रोगन का प्रयोग अब केवल छोटी छोटी वस्तुओं के बनाए जाने में ही न होकर बड़े-बड़े भवनों और स्मारकों में होने लगा। 10वीं शताब्दी में इसमें एक नवीन तकनीक अपनाई गई जिसमें सोने और चांदी का पाउडर गीले रोगन पर छिड़का जाता था। उसके बाद रोगन की एक और परत चढ़ाई जाती थी और डिजाइन उभर कर आ जाता था। इस प्रकार की क्षमताओं के विकास के कारण जापानी उत्पाद चीन में और अधिक आकर्षण का केन्द्र बने। अन्ततः तांबे के सिक्कों का आयात यह संकेत करता है कि आन्तरिक व्यापार में भी वृद्धि हो रही थी और मुद्रा के अधिक इस्तेमाल की आवश्यकता थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जीवन इस समय सादा और कठोर था और यह बात योद्धा और शासक वर्गों पर भी लागू होती है। यद्यपि इनके घर अधिक वैभवशाली नहीं थे परन्तु उनका निर्माण इस प्रकार किया जाता था उनके द्वारा रखे गए भाड़े के योद्धा वहां रह सकें और तीरंदाजी व घुड़सवारी आदि कर सकें। घरों में आग तारकोल से जलाई जाती थी और प्रकाश के लिए लैम्पों का प्रयोग होता था। टाटामी चटाई जिसका कि जापान में आजकल सर्वत्र प्रयोग होता है 15वीं शताब्दी में ही प्रचलन में आई। जापानियों ने गरम या भाप से स्नान की प्रथा का विकास किया था। इस प्रकार के स्नानागार या तो धनिकों के घरों में थे या बड़े-बड़े मन्दिरों में।

4.8.3 देश युद्ध के दौर में

कामाकूरा बाकुफू 1333 वर्ष में नष्ट हो गई। इसके पश्चात् 1568 तक अरहीकाशा शासन रहा और उसकी समाप्ति ओडा नोबोनागा के क्योतो में प्रवेश से हुई। 1467 से 1568 के मध्य का काल *सोगोकु* के नाम से जाना जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है देश युद्ध के दौर में। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अस्थिर स्थितियों और लगातार युद्ध के बावजूद इस काल में कृषि उत्पादन में सुधार हुआ।

कृषि उत्पादन तकनीकों में तीव्रता आई और खाद के प्रयोग में बढ़ोत्तरी हुई। कृषि औजारों में सुधार हुआ

तथा कानसाई और कानतो क्षेत्रों के मध्य दो फसली खेती होने लगी। कुछ नई फसलों का भी उत्पादन प्रारम्भ हुआ। उदाहरण के लिए हिन्द-चीन के इलाके से जौ की फसल जापान लाई गई। जैन मठों ने अपनी भूमि पर चाय उगानी प्रारम्भ कर दी थी क्योंकि वे अनुष्ठान के रूप में चाय समारोह करते थे। साधारण लोगों के कपड़े बनाने में सन (Hemp) के धागों का प्रयोग होता था जबकि कुलीन रेशम के वस्त्र पहनते थे।

सोने, चांदी और काँसे को पहले ही खदानों से निकाला जा रहा था परन्तु अब चीन और कोरिया से निपुण धातु गलाने वाले कारीगर बुलाए गए। उनकी निपुणता के कारण जापानी वस्तुओं की गुणवत्ता में वृद्धि हुई। इसी प्रकार आगे चलकर मिंग कालीन चीन से जुलाहे और कोरिया से कुम्हार लाए गए।

आन्तरिक व्यापार में वृद्धि के कारण बाजारों का विस्तार हुआ। ये बाजार बड़े मन्दिरों के बाहर या *दाम्यो* के किलों के बाहर निश्चित दिनों पर (जैसे महीने के चौथे, चौदहवें या चौबीसवें दिन) लगते थे। इसी के साथ थोक व्यापार का भी विकास हुआ। थोक व्यापारी *बान्या* कहलाते थे और ये महाजनी और सट्टे का काम भी करते थे। इस काल में व्यापारियों ने शिल्पसंघ *(ज़ा)* भी बनाने प्रारंभ कर दिये थे। इन शिल्पसंघों को कुछ करों से छूट प्राप्त थी और ये अपने तंत्र भी स्थापित करने लगे थे। अक्सर कोई मन्दिर या कुलीन उनके संरक्षक के रूप में रहता था।

आवागमन में अभी भी कठिनाइयां थीं परन्तु नदी और तटीय यातायात में सुधार अवश्य हुआ। परिणामस्वरूप तट पर ओटसू, स्वाउगा, हकाता जैसे शहरों का विकास हुआ। 10वीं शताब्दी में जापान की आबादी 10 लाख के करीब थी और 17वीं शताब्दी तक ये बढ़कर 18 लाख हो गई थी। यद्यपि ये आंकड़े अन्तरिम ही हैं परन्तु ये विकास की दिशा के सूचक हैं।

13वीं शताब्दी में मंगोलों ने जापान पर आक्रमण का प्रयास किया था जिसके कारण चीन से व्यापार को धक्का लगा था। 1542 में वह पुनः प्रारम्भ किया गया। लेकिन चीन के मिंग शासकों से परेशानियों के कारण 1548 में व्यापार पुनः रोक दिया गया। वास्तव में मिंग शासक यह चाहते थे कि जापानी अपने तट पर सक्रिय समुद्री डाकुओं का सफाया करे और जहाजों की संख्या पर भी अंकुश लगाए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1585 में पुर्तगालियों ने मकाओ में एक अड्डा खोला और यहाँ से उन्होंने जापान से व्यापार प्रारम्भ किया। शुरू में व्यापार की कड़ी इसाई मिशनरियों से जुड़ी थी और जो लाभ होता था उससे मिशनरियों का खर्चा चलता था। पुर्तगाली व्यापारी जापान में चीनी रेशम और बन्दूकें लाते थे। परन्तु मिशनरी गतिविधियों से जापान में कठिनाइयां उत्पन्न होने लगीं। इसी के साथ अंग्रेजी और डच व्यापारियों से भी प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई। 27 जनवरी 1614 के दिन तोकुगावा कियोम ने जापान में इसाई धर्म पर प्रतिबन्ध लगा दिया और 1616 में विदेशी व्यापार केवल नागासाकी और हीरोटो शहरों तक सीमित कर दिया गया। 1635 में नोगास्बा के पास एक कृत्रिम द्वीप, देशिमा, बनाया गया और डच लोगों को वहां बसने की आज्ञा दे दी गई। 1640 तक आते-आते जापान ने पाश्चात्य जगत से अपने सम्बन्ध तोड़ लिए और लगभग दो शताब्दियों तक अलगाव की नीति अपनाई।

बोध प्रश्न 3

1) लगभग 10 पंक्तियों में जापानी अर्थव्यवस्था पर चीन के प्रभाव की चर्चा करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्न में से कौन से वक्तव्य सही या गलत हैं ? (√) या (x) का चिन्ह लगाएं।

i) प्रारम्भिक जापानी समाज मातृसत्तात्मक था।

ii) सम्राट का *शोइन* भूमि पर कोई नियंत्रण नहीं था।

iii) 894 में चीन के साथ व्यापार रोक दिया गया।

iv) आन्तरिक व्यापार से बाजारों का विस्तार हुआ।

v) पुर्तगालियों ने अपना अड्डा इदो में बनाया।

4.9 तोकुगोवा काल की अर्थव्यवस्था

तोकुगावा काल की ओर संक्रमण के दौरान पिछले काल से कुछ निरन्तरताएं बनी रही जबकि कुछ क्षेत्रों में नए मोड़ भी आए। केन्द्रित नौकरशाही के आधीन एक लम्बे काल तक जो राजनीतिक स्थायित्व बना रहा उससे आर्थिक विकास ही नहीं हुआ वरन सामाजिक परिवर्तन भी हुए। अलगाव की नीति अपनाने के कारण आर्थिक जीवन में विदेशी व्यापार की भूमिका प्रायः नगण्य ही रही। परन्तु एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में, जिसमें कि अधीनस्थ समुराइयों को शहरों में रहना पड़ता था और दाम्यो को इदो में बन्धक छोड़ने पड़ते थे, शहरीकरण का विकास हुआ। जबकि पहले जापान में मुख्यतः कृषि समाज ही था। शहरी केन्द्रों के विकास के कारण व्यापार और हस्तशिल्प में वृद्धि हुई। मुद्रा की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण सामाजिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आए। उदाहरण के लिए वंशानुगत प्रतिष्ठा धन-दौलत के सम्मुख मान खोने लगी। वास्तव में ये परिवर्तन तोकुगावा काल की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों में होने वाले उभार और गतिशीलता के द्योतक थे।

यदि हम पहले के काल की तुलना करें तो तोकुगावा काल में हुआ शहरीकरण एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति थी। 18वीं शताब्दी में राजधानी इदों की आबादी एक लाख से ऊपर थी और व्यापारिक केन्द्र ओसाका की 50,000 दाम्यो द्वारा वैकल्पिक उपस्थिति की प्रथा के कारण राजमार्गों पर 200 से अधिक छोटे शहर बस गए। इस काल में लगभग 10 क्षेत्रीय नगर ऐसे थे जिनकी आबादी 40 से 50 हजार के बीच थी। शोधकों की ऐसी धारणा है कि इस काल में जापान की लगभग 15 प्रतिशत आबादी (यानि लगभग 4 लाख लोग) शहरों में रहती थी। यद्यपि सामुराइ शासक वर्ग से जुड़े थे परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति गिरती जा रही थी। वास्तव में उनको जो भत्ते प्राप्त होते थे उनकी क्रय शक्ति कम हो रही थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शहरों में आबादी के केन्द्रित होने के परिणामस्वरूप वाणिज्य और व्यापार में वृद्धि हुई। यद्यपि व्यापारियों का सामाजिक स्तर हीन था तथापि वे अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस के व्यापारी अधिकांशतः विदेशी व्यापार से अपनी शक्ति का प्रसार कर रहे थे परन्तु जापानी व्यापारियों की शक्ति विशुद्धतः आन्तरिक व्यापार पर निर्भर थी। इसके अतिरिक्त उनकी आर्थिक स्थिति भी तोकुगावा शासकों द्वारा दिये गये विशेषाधिकारों पर निर्भर थी।

प्रारम्भिक व्यापारिक घरानों जैसे, कि कोनिकेया जेनीतन आदि, ने अपनी सम्पत्ति वित्तीय एजेण्टों का कार्य और गोदामों को चलाकर प्राप्त की थी। इन गोदामों में वे दाम्यो का चावल रखते और बेचते थे। जैसे-जैसे दाम्यो की आर्थिक कठिनाइयां बढ़ीं व्यापारियों की महाजनी गतिविधियाँ महत्त्वपूर्ण होती चली गईं। यह प्रायः उन व्यापारियों द्वारा किया जा रहा था जो पहले धनी किसान थे और साके (चावल की शराब) बनाते थे। 1670 में तोकुगावा ने इन व्यापारियों को बैंकिंग, साहुकारिता और वित्तीय कार्यों पर एकाधिकार प्रदान किया। इनका भविष्य वास्तव में पूरी तरह बाकुफू से जुड़ा हुआ था और इसलिए वे 1868 के पुनर्स्थापन के बाद अपनी स्थिति खो बैठे। उदाहरण के लिए सानकिन-कोताई व्यवस्था का अन्त इसके बाद का सबसे पहला निर्देशक बना कि वे अपना प्रभुत्व खोने लगे थे।

17वीं शताब्दी के अन्त और 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विभिन्न क्षेत्रों के परस्पर व्यापार में उन्नति हुई और इससे परिवहन व्यवस्था में भी सुधार हुए। उत्पादकता में वृद्धि ने क्षेत्रीय विशिष्टीकरण को बढ़ावा दिया। मितसुई जैसे व्यापारिक घरानों ने क्षेत्रों की कुल कपड़े की उत्पादकता को ठेके पर लेना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा वे उत्पादकों को पेशगी पूंजी देकर करते थे और उपभोक्ताओं को सीधा बेचने के लिए उन्होंने दुकानें खोलीं। 1680 और 1720 के मध्य इस प्रकार के व्यापारियों ने क्षेत्रीय व्यापार के विकास में विशेष सहायता दी।

1800 वर्ष आते-आते स्थानीय व्यापार का अत्यधिक विस्तार हुआ और धनी किसानों से बने व्यापारियों ने

इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे कई दाम्यो, जो कि आर्थिक संकट की स्थिति में थे, ऐसे उद्यमियों की सहायता लेने लगे। उदाहरण के लिए 1861 में तोतोरी हान के एक ग्रामीण व्यापारी को रेशम और रेशम के कीड़ों को बाजार में बेचने का प्रभारी बनाया गया। उसको दो तलवारें टांगने का भी विशेषाधिकार दिया गया जिसकी आज्ञा केवल सामुराइ को ही थी।

बाकुफू व्यापारियों पर नियंत्रण रखती थी परन्तु इसमें उसे सदैव सफलता नहीं मिलती थी। लेकिन बाकुफू ने राज्य और उद्योगों के मध्य संबंध स्थापित करने की जो प्रभावशाली भूमिका अदा की उसने आगे चलकर जापान के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। 18वीं शताब्दी तक व्यापारीकरण व्यापक रूप ले चुका था और बाकुफू को 1/3 कृषि कर मुद्रा के रूप में मिलने लगा था।

मुद्रा नीति के अनुसार केवल तोकुगावा बाकुफू ही सिक्के ढाल सकती थी। परन्तु दाम्यो को स्थानीय इस्तेमाल के लिए कागजी मुद्रा छापने का अधिकार प्राप्त था। सिक्कों की कीमत उनके धातु मूल्य पर आधारित न होकर उनको दिये गए मूल्य पर तय होती थी।

इस काल में ग्रामीण आबादी में अधिकांश भूमिहीन मजदूर और गरीब किसान थे। शहरों के विकास के कारण वहाँ मजदूरों की कमी महसूस की गई। इससे अनेक गरीब ग्रामीण शहरों में जा कर बसने लगे। कृषि तकनीक और औजारों में सुधार, तथा व्यापारिक गतिविधियों के विकास से अनेक क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था में गतिशीलता आई। परन्तु इससे जो लाभ हुआ उसका फल सबको बराबर न मिलने से सामाजिक सन्तुलन भी बिगड़ा। जमींदारों ने उत्पादकता में हुए लाभ को तेल बनाने, साके बनाने, कपड़ा बनाने और साहूकारी जैसे उद्योगों में लगाया। ग्रामीण समाज में हो रहे परिवर्तनों और 1780 व 1830 के दशकों में फैले आकालों के कारण किसान विद्रोहों ने तीव्रता पकड़ी। 17वीं शताब्दी तो लगभग शांतिपूर्ण ही बीती थी पर 1750 के बाद से लगभग 6 विद्रोह प्रति वर्ष की औसत रही। अक्सर ये विद्रोह हिंसात्मक होते थे और न केवल सरकार वरन् ग्रामीण धनिकों के विरुद्ध भी होते थे। कई विद्रोह सदाचारी रूप लेने लगे थे। यानि कि एक ऐसी न्यायसंगत व्यवस्था की मांग करने लगे थे जो उनकी समझ से बीते हुए काल में मौजूद थी।

गावों में गरीबी के कारणों को लेकर विद्वानों में परस्पर मतभेद हैं। उदाहरण के लिए एन्दो सीइची के अनुसार यदि तोकुगावा अपनी आर्थिक समस्याओं को किसानों पर लाद देते तो किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। जे. डब्ल्यू हाल यह मनाते हैं कि यह विकास और वैभव का काल था और गांवों में गरीबी वितरण में असमानता और क्षेत्रीय असंतुलनों के कारण थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अर्थव्यवस्था में विकास के कारण आबादी का जो कूच शहरों की ओर हुआ उससे सामाजिक परिवर्तन भी आए जैसे कई सामुराइ जो अपने निश्चित भत्तों के कारण क्रय शक्ति खा रहे थे, निरंतर गरीबी की ओर बढ़ने लगे। इससे बचने के लिए उन्होंने धनी व्यापारियों से विवाह-सम्बन्ध बनाने प्रारम्भ कर दिए। इसी प्रकार अधिक विकसित क्षेत्रों में वर्गीकरण बढ़ता गया जिससे विद्रोह तक हुए। लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि इस काल में कुछ अधिक आधुनिक संस्थाएं बनीं और नए तौर तरीकों का उद्‌भव हुआ। इसी सब के कारण आगे जाकर जापान का विकास सम्भव हुआ।

बोध प्रश्न 4

1) तोकुगावा काल में शहरीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या 10 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्न में से कौन से वक्तव्य सही या गलत हैं। √ या × का चिन्ह लगाएं :

i) 1670 में व्यापारियों को बैंकिंग का एकाधिकार दिया गया।

ii) बाकूफू व्यापारियों पर कोई नियंत्रण नहीं रखती थी।

iii) स्थानीय इस्तेमाल के लिए दाम्यो कागजी मुद्रा छाप सकते थे।

iv) शहरों के विकास से वहां मजदूरों की कमी महसूस हुई।

v) धनी किसानों में से बने व्यापारियों ने व्यापार में कोई भूमिका अदा नहीं की।

4.10 सारांश

इस इकाई में हमने इस बात की विवेचना की कि किस प्रकार चीन और जापान में आर्थिक विकास ने दिशाएं लीं। एक लम्बी अवधि के दौरान, कृषि, व्यापार और हस्तशिल्प आदि ने इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को संवारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। अलग-अलग समय पर अनेक नवीनताएं भी आईं। चीन में कृषि और हस्तशिल्प के क्षेत्र में अनेक किताबें भी लिखी गईं। परन्तु वहां कई महत्त्वपूर्ण किसान विद्रोह भी हुए और अक्सर खान मजदूर और व्यापारियों ने भी सरकारी नियंत्रणों के विरुद्ध आवाज उठाई। यद्यपि दोनों ही देशों में पूंजीवाद विकास के चिह्न प्रस्फुटित हुए, विभिन्न कारणों की वजह से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास में बाधाएं आईं।

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में कृषि क्षेत्र में हुए सुधार जैसे नए प्रकार के हल का आना, कृषि-सुधार सम्बन्धी पुस्तकों का छपना आदि सम्मिलित होना चाहिए। देखें भाग 4.3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) i) × ii) √ iii) √ iv) √ v) √

3) तांग साई व ये-त्सुंग लीयु आदि के नेतृत्व में हुए विद्रोहों की चर्चा कीजिए। देखें भाग 4.3

बोध प्रश्न 2

1) यह कताई व बुनाई के क्षेत्र में हुआ। अपने उत्तर को भाग 4.5 पर आधारित करें।

2) देखें भाग 4.5

3) देखें भाग 4.7

बोध प्रश्न 3

1) देखें उपभाग 4.8.1

2) i) × ii) × iii) √ iv) √ v) ×

बोध प्रश्न 4

1) देखें भाग 4.9

2) i) √ ii) × iii) √ iv) √ v) ×

इकाई 5 धर्म एवं संस्कृति : चीन और जापान

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 प्राचीन चीन में धर्म
5.3 विभिन्न विचारधाराएँ
    5.3.1 कन्फ्यूशियसवाद
    5.3.2 ताओवाद तथा अन्य सम्प्रदाय
    5.3.3 बौद्ध मत
5.4 मध्यकाल
    5.4.1 नव-कन्फ्यूशियस मत
    5.4.2 मंगोलों के अधीन धर्म
5.5 मिंग-चिंग काल
5.6 धर्म एवं विद्रोह
5.7 जापान का प्राचीन धर्म एवं संस्कृति
    5.7.1 स्वदेशी आधार
    5.7.2 बौद्ध धर्म
    5.7.3 कुलीन संस्कृति
5.8 मध्यकालीन धर्म एवं संस्कृति
    5.8.1 धर्मों का विकास
    5.8.2 योद्धा संस्कृति का निर्माण
5.9 तोकुगावा काल में धर्म एवं संस्कृति
    5.9.1 विचारों के प्रतिमान
    5.9.2 शहरी संस्कृति का उदय
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको :

- प्राचीन चीन एवं जापान के प्रमुख धर्मों तथा धार्मिक विचारों की जानकारी हो सकेगी ;
- मध्यकाल एवं प्रारंभिक आधुनिक काल के चीन तथा जापान के धर्मों तथा संस्कृतियों का ज्ञान हो सकेगा ; और
- उन सामाजिक वर्गों का ज्ञान हो सकेगा, जिन्होंने दार्शनिक व्यवस्थाओं का निर्माण किया।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपका परिचय चीन तथा जापान में आधुनिक काल तक हुए धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों से कराने का प्रयास किया गया है। इन दोनों ही देशों के सामाजिक विकास में धर्म एवं संस्कृति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में चीन में कई धर्मों तथा मिश्रित संस्कृति का अस्तित्व है। प्रारंभिक समय से आज तक चीन के अस्तित्व को कई मौलिक कारकों ने प्रभावित किया है। हम यह परीक्षण करेंगे कि क्या चीन ने संस्कृति एवं धर्म के माध्यम से अपनी पहचान को बनाए रखा या फिर इसमें विदेशी प्रभाव, युद्ध या

विजय से सुधार हुआ। इस इकाई का प्रारंभ प्राचीन काल के धर्म एवं संस्कृति के संक्षिप्त विवरण से हुआ है। इस इकाई में ताओवाद तथा कन्फ्यूशियसवाद जैसी बहुत-सी विचार-धाराओं का विवरण किया गया है। इससे आगे मध्यकाल में बौद्ध धर्म के प्रभाव, कुलीन संस्कृति के विकास, कला, साहित्य एवं बौद्धिक विकास का विवरण किया गया है। यह इकाई प्रारंभिक आधुनिक काल के दौरान नव-कन्फ्यूशियसवाद के उद्भव एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों पर पड़े इसके प्रभाव पर भी प्रकाश डालती है।

जापान के धर्म तथा संस्कृति की एक विशिष्ट विशेषता यह थी कि शिंतो, बौद्ध तथा कन्फ्यूशियस धर्मों का सौहार्दपूर्ण अस्तित्व बना रहा तथा इनके बीच अपेक्षाकृत कम तनाव था। लेकिन धार्मिक व्यवस्था तथा संस्कृति के संवाहक के रूप में बौद्ध धर्म के महत्त्व को कम करके नहीं देखा जा सकता।

जापानी संस्कृति जिन सौंदर्य सिद्धान्तों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है उनके द्वारा प्रकृति एवं सम्मोहन पर बल देते हुए निरंतरता को बनाए रखा गया है। ये सिद्धांत साहित्य, कला, बागवानी के साथ-साथ हस्तकला से आंतरिक तौर पर जुड़े हैं और ये सिद्धांत अपने धार्मिक दार्शनिकीय विचारों के द्वारा उत्पन्न हुए हैं।

इस इकाई के द्वारा इन विचारों की वृद्धि, सम्पन्नता तथा इनके द्वारा जीवन के विभिन्न आयामों पर डाले गये प्रभाव पर विचार किया गया है। इससे जापानी संस्कृति के प्रभाव को जानने में मदद मिलती है। तथा विश्व संस्कृति में जापानी संस्कृति के योगदान के बारे में पता चलता है। इस इकाई से हमें यह भी पता चलता है कि जापानी संस्कृति अपने पड़ोसी चीन की नकल मात्र ही नहीं थी।

जहां एक ओर जापान की प्राचीन, मध्यकालीन तथा पूर्व आधुनिक काल की संस्कृति का विवरण किया गया है, वहीं पर इस इकाई में जापान की शहरी संस्कृति के विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। हम सबसे पहले चीन के प्राचीन धर्म पर प्रकाश डालेंगे।

5.2 प्राचीन चीन में धर्म

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्राचीन समय के चीनी धर्म की प्रकृति एवं वस्तुनिष्ठता के विषय में भिन्न प्रकार के विचार तथा मत हैं। कुछ ने प्रारम्भिक धर्म को अद्वैतवाद कहकर वर्णित किया और आगे चलकर यह बहुदेववाद में परिवर्तित हो गया। कुछ दूसरे विद्वानों का कहना है कि यह एक ऐसा प्राचीन धर्म था, जिसके अंतर्गत पूर्वजों, प्रकृति स्वर्ग एवं पृथ्वी की आराधना को शामिल कर लिया गया था।

जिन ऐतिहासिक कहानियों एवं परंपराओं में कबीलाई समूहों का उल्लेख किया गया है उन्होंने देवताओं, ईश्वर के पुत्रों या कबीलाई सरकारों के स्तरों को खूब बढ़ाया। इस श्रेणी में वे सरदार आते थे, जिन्होंने अपने-अपने कबीलों के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। इस संदर्भ में जितया कबीलों के सरदार ताइताइ का उल्लेख किया जा सकता है। ताइताइ ने फेंशुई नदी पर एक जलाशय का निर्माण किया था। इसी कारणवश उसको फेंशुई का देवता माना जाने लगा और उसको लोगों के द्वारा बलि अर्पित की जाने लगी। इस तरह के अन्य कई उदाहरणों का उल्लेख किया जा सकता है। गोंगोंग कबीले के यू, चाऊ कबीले के चि आदि का इस संदर्भ में उल्लेख हुआ है। यहां पर महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऐसी पौराणिक कथाओं में सरदारों की आध्यात्मिक शक्ति को इस कारणवश निरोपित किया गया क्योंकि उन्होंने जल एकत्रण, बाढ़ नियंत्रण या फिर कृषि एवं पशु-पालन जैसे कार्यों में योगदान किया।

चीन के सबसे प्रारंभिक लिखित इतिहास में तांग (16वीं सदी ई. पूर्व से 11वीं सदी ई.पू. तक) तथा चाऊ (11वीं सदी ई.पू. से 8 सदी ई.पू.) वंशों का विवरण किया गया है। इन दोनों वंशों के शासनकाल में दासप्रथा वाले समाज विद्यमान थे और हम इस काल के धर्म एवं धर्म परंपराओं का अनुमान लगा सकते हैं।

(1) तांग : तांग राजा अपनी वंशावली का प्रारंभ उस राजा से मानते थे जो ईश्वर का पुत्र था और उसके आदेशों पर ही ईस वंश का निर्माण किया गया। इस तरह सबसे प्रारंभिक पूर्वज सर्वशक्तिमान ईश्वर को ही माना गया। यह राजतंत्र की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त था। इससे यह विश्वास किया गया कि राजा का जन्म जनता पर शासन करने के लिये हुआ था और मृत्यु के बाद वे मृत लोगों पर शासन करते। मातृ सत्ता को काफी महत्त्व दिया जाता था क्योंकि माताओं तथा दादी माताओं को विशेष बाले अर्पित करने के उदाहरण हमें मिलते हैं। सभी प्रकार के आडंबर विद्यमान थे और तांग कुलीनों का विचार था कि सभी वस्तुओं पर ईश्वर का नियंत्रण था। दैवी इच्छा को देववाणियों के द्वारा खोजा जा सकता था। देववाणियों के हड्डियों पर उल्लिखित बहुत से ऐसे अभिलेख पाए गए हैं जो अच्छाई या बुराई के विषय में देवताओं की इच्छानुरूप हैं।

(2) चाऊ (Chou) : जैसा कि पहले उल्लिखित किया गया है, चाऊ एक प्राचीन कबीला था और उनके पूर्वज चि की पूजा कृषि के देवता के रूप में की जाती थी। उनके राजा वू ने वंशीय शासन की आधारशिला रखी और चाऊ राज्य चीन के व्यापक भूभाग पर भली-भांति से संगठित था। चाऊ ने भी शासन करने का अधिकार स्वर्ग से प्राप्त किया था और अपने पूर्वज देवता की पहचान सर्वशक्तिमान ईश्वर के साथ की। यह तथ्य बड़ा ही रुचिकर है कि चाऊ शासकों ने तांग को ईश्वर के बड़े पुत्र के रूप में उद्धृत किया जिसने सर्वोच्च ईश्वर की आशाओं को पूरा नहीं किया। इसी कारण सर्वोच्च देवता ने शासन अपने छोटे पुत्र चाऊ को सौंप दिया। दैवी इच्छा को धारण करते हुए चाऊ को मानव विश्व पर शासन करने का आदेश प्राप्त हो गया। यद्यपि यह स्वर्गीय आदेश कोई स्थायी आदेश न था। यह तभी तक लागू था जब तक वह स्वर्ग के द्वारा नियमानुसार निर्धारित कार्य करता था। वास्तव में शासन करने के स्वर्ग से प्राप्त इस आदेश (*ताइन*) ने चीन की राजनीति में व्यापक भूमिका अदा की। शासन के साथ-साथ जनता ने इस आदेश को अपने-अपने हितों के अनुरूप व्याख्या की। इस संदर्भ में आगामी काल में होने वाले उन किसान विद्रोहों को उद्धृत किया जा सकता है जिन्होंने अपने वैचारिक सार को इस उक्ति से प्राप्त किया कि *ताइन* को वापस ले लिया गया था। इन दोनों वंशों के शासन काल में राजनीतिक प्रभुत्व को धर्म के माध्यम से वैधता प्रदान की गई। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि चाऊ का सर्वोच्च देव तांग के देव की अपेक्षा कम निरंकुश था। इस धर्म के गर्भ से राजनीतिक तथा सामाजिक आधार एवं व्यवहार से ऐसे कुछ निश्चित मानक उत्पन्न हुए कि जिन्होंने आगे चलकर एक सुनिश्चित स्वरूप को ग्रहण कर लिया।

इस काल के दौरान कई क्लासिकल रचनाओं को लिखा गया। इन पुस्तकों को बांस की पट्टियों या रेशम पर लिखा गया। इन क्लासिकल ग्रंथों का चीन के समाज एवं संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इन रचनाओं में निम्नलिखित पांच ग्रंथ काफी प्रसिद्ध हैं :

शिह चिंग : (काव्य पुस्तक) इसमें 74 लघु गीत, 31 बृहद् गीत तथा 31 बलि गीत समाहित हैं। इनको चाऊ शासन के दौरान लिखा गया था। ये विशेष प्रकार की घटनाओं से जुड़े हैं तथा ईश्वर को समर्पित हैं।

शू-चिंग : (इतिहास की पुस्तक) यह पुस्तक राजनीतिक तथ्यों का संग्रह है।

आई चिंग : (परिवर्तनों की पुस्तक) यह पुस्तक भविष्यवाणियों से संबंधित है।

DIKSHANT IAS

लि चि : (अनुष्ठान पुस्तक) इस पुस्तक में अनुष्ठानों की सूची है।

Call us @7428092240

चुन चिन : इस पुस्तक में बसंत और शरद ऋतुओं का विवरण है और इसके अंदर ऐतिहासिक तिथिक्रम का महत्त्व है।

आगे चलकर ये सभी रचनाएं कन्फ्यूशियस ग्रंथों के रूप में प्रसिद्ध हुई। स्वयं कन्फ्यूशियस इन ग्रंथों के पुनर्लेखन, संपादन या संशोधन से जुड़ा था। आगामी भागों में हम कन्फ्यूशियस के विषय में विवेचन करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन काल के चीन में धर्म की प्रकृति एवं उद्देश्यों के विषय में 15 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....

2) पाँच ग्रंथों के विषय में एक संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5.3 विभिन्न विचारधाराएँ

प्राचीन काल में चीन के दार्शनिक विचारों ने व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने की अपेक्षा समाज की जरूरतों को अधिक पूरा किया। इस समय में उत्पन्न हुए अधिकतर विचारक नवोदित नौकरशाही तथा जटिल राजनीतिक व्यवस्था की उत्पत्ति थे और वे मुख्यतः राजनीतिकों के समूह से आते थे। आगे चलकर इन राजनीतिक विचारकों ने अपने आधार को स्थापित कर अपने समर्थकों के गुट बना लिए और वे उपदेशक हो गए। धीरे-धीरे उनके शिष्यों ने विभिन्न विचारधाराओं को स्थापित किया। इन विचारधाराओं में से हम मुख्यतौर पर कन्फ्यूशियसवाद, ताओवाद तथा कुछ अन्य मतों पर विचार करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.3.1 कन्फ्यूशियसवाद

कन्फ्यूशियसवाद मुख्यतः पश्चिमी नाम है, लेकिन चीनी किंग शियाओ या "कन्फ्यूशियस उपदेश" के बारे में बात करते हैं। चीनियों के द्वारा इसे सामान्य तौर पर जू शियाओ या "विद्वानों के उपदेश" कहा जाता है। कन्फ्यूशियस कब अस्तित्व में आया—इसको लेकर विवाद है। किन्तु चीनी उसके जन्म का समय 551 ई. पू. को मानते हैं तथा वह 479 ई. पू. तक जीवित रहा। उसने एक छोटे अधिकारी के रूप में कई कार्यों को किया। जैसे कि उसने गोदाम प्रबन्धन, अध्यापन, अपराध के लिये दंड देने वाले तथा सामाजिक कानून-व्यवस्था को बनाए रखने के अधिकारी के रूप में कार्य किया। जैसा कि पहले भी कहा गया कि वह कई साहित्यिक रचनाओं के साथ भी संबंधित था। उसके उपदेशों को कन्फ्यूशियस विद्वता के नाम से जाना जाता था और आगे चलकर उसके यही उपदेश कन्फ्यूशियस सम्प्रदाय में परिवर्तित हो गए। उसको इस संप्रदाय का सबसे पड़ा प्रवर्तक माना गया किन्तु अन्य कई उपदेशकों एवं विद्वानों ने भी इसको विकसित करने में विशेष भूमिका अदा की। ताओवाद तथा बौद्ध धर्म से अलग हटकर कन्फ्यूशियस मत को धार्मिक अनुष्ठानों का मुख्य संवाहक माना गया और इसका उद्‌भव चाओ वंश के शासन काल में या इससे कुछ पहले हुआ। कन्फ्यूशियस ने अपने विचारों का प्रचार करने के लिए व्यापक यात्रा की और अपने शिष्य बनाए। उसकी मृत्यु के बाद उसके शिष्यों ने उसके उपदेशों को *दि ऐनालेक्टस* नाम की पुस्तक में संकलित किया।

उससे उपदेशों का मुख्य लक्ष्य अपने शिष्यों को राजनीति में प्रवेश प्राप्त करने हेतु आवश्यक निपुणता प्रदान करना था। कन्फ्यूशियस के उपदेश कुलीनों की अधिकारिक शिक्षाओं के विरोधी थी। उदाहरण के तौर पर उसका यह मानना था कि प्रकृति से सभी मनुष्य समान थे, किन्तु उसका यह मानना उस काल में प्रचलित दास प्रथा के विपरीत जाता था। उसका यह भी कहना था कि अच्छे एवं योग्य लोगों को ही अधिकारिक पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए और उसका यह तर्क उत्तराधिकार के नियमों के विपरीत था।

चीन के साम्यवादी इतिहासकारों ने चीन के सांस्कृतिक इतिहास में कन्फ्यूशियस के योगदान को महत्त्वपूर्ण तो माना, परन्तु इसको उन्होंने क्रांतिकारी की अपेक्षा सुधारवादी समझा। इस कथन के समर्थन में "इन इतिहासकारों ने निम्नलिखित तर्कों को दिया :

- उसके विचार अपनी ही तार्किक परिणति तक नहीं पहुँचते ;
- एक शिक्षक के रूप में उसने लोगों को शिक्षित करना चाहा, किन्तु उसकी शिक्षा कुलीनों तक ही पहुंच सकी ;
- उसने कुलीन वर्ग के पदानुक्रम का समर्थन किया और अधिकारिक उत्तराधिकारी व्यवस्था का विरोध नहीं किया ;
- समस्याओं का समाधान करने के लिए उसने नवीन विचारों का प्रयोग करने की अपेक्षा पुरानी मान्यताओं के आधार पर ही पुराने विचारों को ही पुनर्गठित किया।

यद्यपि उसको "राजनीतिक अनुदारवादी कहकर उद्धृत किया गया है, लेकिन उन्होंने यह स्वीकार किया है कि "उसने इतिहास के प्रवाह के विरुद्ध कार्य किया।"

हमें यहां पर यह याद रखना चाहिए कि कन्फ्यूशियसवाद कभी भी अतिवादी नहीं हुआ। बल्कि इसने समझौतावादी प्रतिमानों को स्थापित किया अर्थात् इसने मध्य मार्ग का अनुसरण किया। इस तरह कन्फ्यूशियसवाद ने उदित होते राज्य, शासक गुटों तथा नौकरशाही के साथ-साथ उनकी राजनीतिक आवश्यकताओं के आधार पर एक दर्शन को उपलब्ध कराया।

इस तरह से कन्फ्यूशियसवाद शासक गुटों के बीच लोकप्रिय हो गया। समय के चलते यह राज्य सम्प्रदाय बन गया। कन्फ्यूशियसवाद एक परिवर्तनीय दर्शन था। समय-समय पर इसमें परिवर्तन होते रहे। राज्य द्वारा लागू किए गए कन्फ्यूशियसवादी सिद्धांत के अनुसार, सम्राट राष्ट्र का राजनीतिक अध्यक्ष होने के साथ-साथ धार्मिक मुखिया भी था। उनका विश्वास था कि सम्राट संपूर्ण विश्व का भाग होने के कारण न केवल मानव जाति पर शासन करने के लिये आया बल्कि उसको धार्मिक कार्यों को भी पूरा करना था। वह *ताइन* (स्वर्ग) का पुत्र था और वह स्वर्ग तथा पृथ्वी का सहायक था। सदियों तक कन्फ्यूशियसवादी विद्वानों के बीच *ताइन* के अस्तित्व को लेकर मतभेद बने रहे, लेकिन उनमें से अधिकतर का यह विश्वास था कि सर्वशक्तिमान मनुष्य में अच्छाई का पक्ष लेता है, इसलिए सभी को धार्मिक संस्कारों को पूरा करना चाहिए। प्रदेशों में सरकारी पदों पर आसीन अधिकारियों को धार्मिक संस्कारों को पूरा करने का कार्य सौंपा गया। स्थानीय पर्वतों तथा जल-स्रोतों की आत्मा को बलि प्रदान करने की उनसे आशा की जाती थी। वे कन्फ्यूशियस मंदिरों तथा नगर देवता के मंदिरों में आयोजित होने वाले धार्मिक उत्सवों में भी भाग लेते थे। पूर्वजों का सम्मान करना कन्फ्यूशियस मत की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता थी । अतीत के जीवन के लिये तथा मृत के लिए होने वाले अनुष्ठानों में ऐसी अवधारणाओं ने स्थान ग्रहण किया जो कन्फ्यूशियस परंपराओं तथा विचारों से भिन्न थीं। इसके विकास में बौद्ध मत तथा ताओ मत का अधिक गहरा प्रभाव पड़ा था। लोकप्रिय अंधविश्वास तथा सर्वात्मवाद ने व्यापक योगदान किया। अन्य किसी कारण की अपेक्षा संभवतः यह कन्फ्यूशियस मत का ही प्रभाव था कि चीन में मृत महाकार का संभवतः इतना अधिक प्रचार था। दर्शन के तौर पर कन्फ्यूशियस मत की जड़ें चीन में काफी गहरी थीं और इसको जीवन-शैली के रूप में ग्रहण किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.3.2 ताओवाद तथा अन्य सम्प्रदाय

जिस अन्य विचारधारा ने प्राचीन काल में दार्शनिक विश्वास को प्रभावित किया, वह ताओ मत था। जिन दार्शनिकों ने ताओवाद का प्रचार किया उनका बढ़ते युद्ध एवं निरंकुशता से मोहभंग हो गया था। इस तरह से यह मत निरंकुश शासकों के विरुद्ध था। यह ऐसी प्रवृत्तियों का समर्थक था जो प्रकृति के संतुलन को बनाए रखना चाहती थी। उन्होंने अपने समय के सामंती समाज पर आक्रमण किया। अपने पिछड़ेपन के कारण ताओ मत ने इस विश्वास के साथ सभी प्रकार के ज्ञान पर हमला किया कि ज्ञान मानव समाज को भ्रष्ट बना सकता है। वास्तव में आगे चलकर इसने सभी प्रकार के सामाजिक उत्थान का विरोध किया। उदाहरण के लिए इस मत के विचारक उस किसान की अधिक प्रशंसा करेंगे जिसको रहट का ज्ञान है किन्तु वह पानी को अपनी पीठ पर ले जाता है। ताओ मत के मुख्य स्रोत लाओ-रन्जू तथा ताओ-तेशिंग ग्रंथ थे, लेकिन इन ग्रंथों के लेखकों के नाम ज्ञात नहीं हैं। ताओ मत का संस्थापक संभवतः ली एर था।

ताओवाद चीन में मुख्य धर्म तो न बन सका, फिर भी इसने मानव तथा प्रकृति के बीच के जिस संबंध पर बल दिया उसने समाज में सौंदर्यबोध को प्रभावित किया। तांग शासनकाल में ताओ मत का समर्थन राज्य ने किया और जिसके निम्नलिखित परिणाम हुए :

- ली एर की स्मृति में बहुत से मंदिरों का निर्माण किया गया तथा ली एर को संपूर्ण स्वर्गों के सर्वोच्च सम्राट की उपाधि प्रदान की गई।

- शाही महलों में ताओ मत के पुजारियों की काफी संख्या थी; और
- साम्राज्यिकी परीक्षा के लिए ताओ मत के विचारों को भी पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया।

इन सबके बावजूद भी ताओ मत कन्फ्यूशियसवाद या बौद्ध धर्म की तरह लोकप्रिय न हो सका।

अन्य प्रभावशाली सम्प्रदाय मोहवाद था और इसका नाम इसके संस्थापक मो-त्सू के नाम पर रखा गया था। इस मत ने संस्कारों पर कोई बल न दिया और सर्वव्यापी प्रेम का प्रचार किया। इसका मानना था कि आदमी को दूसरे लोगों का, अपने परिवार और देश का सम्मान करना चाहिए। मो-त्सू का यह विश्वास था कि अच्छाई का परिणाम अच्छा ही होता है और बुराई के लिए स्वर्ग एवं देवताओं के द्वारा दंड दिया जाता है। ऐसा लोगों के व्यवहार को ध्यान में रखकर किया गया। यदि शासक स्वर्ग की इच्छा की स्तुति करते हैं तब "भूख से मरने वालों के पास भोजन होगा, ठंड से ठिठुर रहे लोगों के पास कपड़ा होगा तथा मेहनतकश लोग आराम कर सकेंगे।"

मो-त्सू ने कुलीन वर्ग की पैतृक सम्पत्ति का विरोध किया। उसने सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिये योग्यता के आधार का भी समर्थन किया।

372-289 ई.पू. के बीच मैनसियस एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारक था और उसने दयालुता की कन्फ्यूशियसवादी अवधारणा को और आगे बढ़ाया। उसके विचार में प्रकृति से हर कोई अच्छा था और इस तरह जन्म के समय की अच्छाई को और अधिक विकसित किया जा सकता था। अन्य विचारकों की भांति ही मैनसियस ने भी अपने आर्थिक एवं राजनीतिक विचारों को एक साथ जोड़ा। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरणों को प्रस्तुत किया जा सकता है :

- उसका कहना था कि जन समर्थन ही शासक का प्रमुख आधार था और जिसे जन समर्थन प्राप्त नहीं हो वह राजा न होकर एक दुराचारी होगा।
- दुराचारी शासक को अपराधी ठहराया जाना चाहिए और जो राजा राज्य को हानि पहुंचाता हो, उसे हटा देना चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आर्थिक क्षेत्र में उसने परिवार की आत्म-निर्भरता और अचल सम्पत्ति पर बल दिया। आठ सदस्यों वाले परिवार के पास 100 एम. एम. भूमि हो, वह खाने के लिए पर्याप्त भोजन उगाए, परन्तु पशुओं में वृद्धि करे तथा रेशम का उत्पादन करने के लिए शहतूत के पेड़ों का उत्पादन करे।

यहां पर उन सभी विचारकों के विषय मे लिख पाना संभव न होगा, जिन्होंने चीनी मानस पर कोई न कोई प्रभाव डाला हो। लेकिन प्राचीन काल के विचारकों ने विचारों की दुनियां में व्यापक योगदान किया और ये विचार सदियों तक प्रचारित होते रहे।

5.3.3 बौद्ध मत

बौद्ध मत के उल्लेखों को प्रथम सदी ई. में हान वंश के शासन से लिया जा सकता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भारतीय भिक्षुओं को हान के संवाहक द्वारा दिए गए निमंत्रण के फलस्वरूप कायम मतंग तथा धर्मराण्य हान के दरबार में गए। यद्यपि इस यात्रा की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया है, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि यात्रियों एवं सौदागरों के द्वारा रेशम के व्यापारिक मार्ग से बौद्ध धर्म को चीन लाया गया।

कुछ समय बाद बौद्ध मत की शिक्षाएं लोकप्रिय हो गई और उनको शाही संरक्षण भी प्राप्त हो गया। इस संदर्भ में राजकुमार शिओ जिलयांग तथा सम्राट बू बी का उदाहरण दिया जा सकता है क्योंकि उन दोनों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था। चीन में अनेक बौद्ध मठों की स्थापना हुई और बहुत से लोग भिक्षु बन गए। आम जनता के असन्तोष को दूसरी शिक्षा में समायोजित करने के लिये शासक वर्गों के लिये बौद्ध धर्म कन्फ्यूशियस व्यवस्था की अपेक्षा अधिक सरल साबित हुआ। बौद्ध धर्म की पुनर्जन्म तथा मुक्ति की शिक्षाओं के कारण लोग दूसरे जीवन में खुशहाली की कामना करने लगे। जहां ताओ मत ने व्यक्तिगत पलायन प्रस्तुत किया, वहीं बौद्ध धर्म ने मुक्ति को। ताओवादी तथा बौद्ध मत के विचारों की तुलना करने के लिये वाद-विवाद हुए। अधिकतर भिक्षु ऊपरी वर्गों से आते थे। कुछ भिक्षुओं को उनके बाल्यकाल से बौद्ध मठों में लाया गया।

भिक्षुओं के लिए चीन में कठोर नियम थे किन्तु कुछ वर्षों के बाद भिक्षु भी जमींदार हो गए। मठों के

भू-स्वामी होने के कारण उनके पास विशाल विशेषाधिकार एवं सम्पत्ति थी। वे राज्य के करों तथा श्रम सेवाओं से मुक्त थे। ये मठ कुछ न कुछ सामाजिक कार्यों को भी सम्पन्न करते थे और इनका इस्तेमाल सरायों, सार्वजनिक स्नानगृहों, बैंकिंग संस्थाओं के रूप में भी किया जाता था।

बौद्ध धर्म का मुख्यतम योगदान साहित्य एवं स्थापत्य कला के क्षेत्र में था। चीन के बौद्ध धर्म के नियमों को *सान त्सांग* कहा जाता है और फिर उनको चिंग अर्थात सूत्रों में विभाजित किया गया। भारतीय भाषाओं के कई बौद्ध ग्रंथों का रूपांतरण चीनी भाषा में किया गया। चीनी यात्री बौद्ध धर्म के ग्रंथों की खोज में लगातार भारत की यात्रा पर आते रहे जिसके कारण दूसरे देशों के विषय में भौगोलिक विशेषताओं, वहां के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का ज्ञान हुआ।

बहुत से बौद्ध मठों के अतिरिक्त कई बौद्ध स्तूपों तथा मंदिरों का निर्माण हुआ। ऐसी कई अनोखी मूर्ति कला एवं चित्र कला हैं जिनको बौद्ध धर्म ने प्रभावित किया (चित्र देखें)। वास्तव में बौद्ध धर्म ने विशेष रूप से तांग शासन काल में मूर्ति कला, स्थापत्य कला तथा चित्र कला के क्षेत्रों में अति महत्त्वपूर्ण योगदान किया। तुन हांग में स्थित हजारों बुद्ध गुफाएं मिट्टी की मूर्तियों, दीवार चित्रों तथा मूर्ति कला का अद्भुत नमूना प्रस्तुत करती हैं।

यहां पर हमें यह याद रखना चाहिए कि कन्फ्यूशियस, ताओ तथा बौद्ध धर्म प्रमुख धर्म बने रहे, किन्तु तांग शासन के समय में चीन में अन्य धर्मों को भी लागू किया गया और जिनके निम्न उदाहरण हैं :

- उत्तरी चीन में ईरान से पारसी मत पहुँचा,
- ईरान में उत्पन्न मैनिशई मत सातवीं सदी के अंतिम वर्षों में चीन में फैला और बाद में उसके अनुसरण कर्ताओं को प्रकाश का उपासक कहा गया।
- ईसाई धर्म का एक सम्प्रदाय नैस्टोरियनवाद भी चीन पहुंचा,
- अरब सौदागरों के माध्यम से चीन में इस्लाम धर्म भी फैला।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राजनीति तथा जनता के दैनिक जीवन पर विभिन्न धर्मों का जो प्रभाव पड़ रहा था उसको भी चुनौती देने के प्रयास चीन के अंदर किए गए। उदाहरण के तौर पर फू यी (559-639 ई.) ने बौद्ध धर्म की वैधता पर प्रश्न किया और उसका कहना था कि वह सम्राट की शक्तियों का दुरुपयोग कर रहा था। उसने महसूस किया कि भिक्षु एवं भिक्षुणियां ऐसे कीड़े थे जो कर अदा करने से मुक्त थे। उसका कहना था कि उनको उत्पादन कार्यों में वापस भेजा जाए। इसी के साथ-साथ यह भी देखा जाना चाहिए कि जनता पर नियंत्रण करने के लिये शासक वर्गों ने विभिन्न धर्मों का सफलतापूर्वक उपयोग भी किया।

बोध प्रश्न 2

1) प्राचीन काल में जिन विचारधाराओं का उदय हुआ उनका 10 पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) बौद्ध धर्म पर 10 पंक्तियों में एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....
....
....

....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत, सही (√) तथा गलत (x) के चिन्ह लगाइए :

i) कन्फ्यूशियस मूल रूप में एक चीनी नाम है।

ii) कन्फ्यूशियस मत एक पश्चिमी नाम नहीं है।

iii) कन्फ्यूशियस मत मुख्यतः एक पश्चिमी नाम है।

iv) कन्फ्यूशियस मत एक पूर्णतः जापानी नाम है।

5.4 मध्य काल

उत्तर-तांग काल में तीनों प्रमुख धर्मों, अर्थात् कन्फ्यूशियस, बौद्ध एवं ताओ धर्म चीनी समाज एवं राजनीति को निरंतर प्रभावित करते रहे। यद्यपि इन मतों में समय-समय पर उतार-चढ़ाव आते रहे क्योंकि विभिन्न शासक वंश अपने-अपने हितों के अनुरूप धर्म का समर्थन करते थे। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि विभिन्न धर्मों का प्रयोग अपने हितों के लिये केवल शासक वर्गों के द्वारा किया गया। समाज के शोषित वर्गों, विशेषकर किसानों के द्वारा भी विभिन्न धार्मिक नियमों की व्याख्या अपने-अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप की गई और जब कभी भी उन्होंने अपने शोषकों के विरुद्ध विद्रोह किया, तब धार्मिक विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त करने की कोशिश भी की गई। मिंग तथा चिंग शासन के समय की यह एक स्थायी विशेषता थी। ठीक इसी समय विद्यमान धर्मों को एक नई दिशा देने के भी प्रयास हुए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.4.1 नव-कन्फ्यूशियस मत

11वीं सदी ई. में नव-कन्फ्यूशियस मत के नाम से एक अन्य विचारधारा का उदय हुआ। यद्यपि यह मूल रूप में कन्फ्यूशियसवादी मूल्यों एवं विचारों का पुनः उत्थान था लेकिन इसके अंदर बौद्ध एवं ताओ मतों के विचारों का भी समावेश था। चाऊ तुम ने (1016-1073 ई.) ऐसे "निरंकुश" विचार का निर्माण किया जिसका मूल तत्व सार्वभौमिकतावाद था। सामाजिक संबंधों में उसका विचार आदर्शवादी लक्ष्य के इर्द-गिर्द था किन्तु उसने सामंती व्यवस्था को "निरंकुश" की अभिव्यक्ति के रूप में समझा।

जिन अन्य विद्वानों ने नव-कन्फ्यूशियसवाद को दिशा प्रदान की, उनमें चेंग बंधु—चेंग हाओ तथा चेंग यी के विचार भी शामिल थे। उन्होंने उस "तर्क" की अवधारणा को विकसित किया जो सृष्टि का मूल तत्व थी। सामाजिक स्थितियों के आधार पर लोगों में अंतर करते हुए उन्होंने उनसे अपील की कि वे स्वयं को चीजों के परिवर्तित होने वाले सुनिश्चित विचार से अलग रखें। कई कन्फ्यूशियस ग्रंथों को इस समय में "पुनः" लिखा गया या फिर सम्पादित किया गया। शासक वर्गों ने अपने नियंत्रण को और मज़बूत करने के लिए पुनः नव-कन्फ्यूशियस विचारधारा का उपयोग किया।

5.4.2 मंगोलों के अधीन धर्म

13वीं सदी के दौरान चीन पर मंगोल आक्रमणों का गहरा प्रभाव हुआ। यहां पर हम मंगोल शासन के राजनीतिक परिणामों का उल्लेख नहीं करेंगे। मंगोल शासन को युआन नाम से जाना गया और उसने धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया। लेकिन मैत्री सम्प्रदाय तथा लोट्स सोसाइटी को युआन विरोधी गतिविधियों के कारण दमन का सामना करना पड़ा। इस शासन ने लामावादी बौद्ध मत को संरक्षण प्रदान किया और नव-कन्फ्यूशियस मत भी इस समय में लोकप्रिय बना रहा।

इस काल की उल्लेखनीय घटना इसाई मिशनरियों का आगमन थी क्योंकि उन्होंने शासक घराने को कैथोलिक

धर्म में परिवर्तित कर लिया था। लेकिन गुजूकखां के द्वारा फादर गिऔवानि (1245 ई. में) को बताया गया कि पोप तथा अन्य सभी ईसाई शासकों के द्वारा उसे सम्मान दिया जाए। वास्तव में इस समय पश्चिमी लोगों के साथ लगातार गतिविधियां चलती रहीं । लेकिन वास्तव में इस्लाम धर्म ने इस समय में शाही संरक्षण के अधीन अपना कुछ प्रभाव चीन में बढ़ाया। बहुत से विस्थापित लोग अपने साथ फारसी भाषा तथा अरब संस्कृति को चीन लाए और इसका स्वागत चीनियों के द्वारा विशेष तौर पर खगोल एवं दवाई के क्षेत्र में किया गया।

5.5 मिंग-चिंग काल

मिंग शासन के दौरान कन्फ्यूशियसवाद एक प्रमुख दर्शन बना रहा, जबकि बौद्ध मत तथा ताओ मत का पतन हुआ। कन्फ्यूशियसवाद का शिक्षा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। साम्राज्यिक कॉलेज में पढ़ाये जाने वाले उन पाँच प्राचीन ग्रन्थों तथा चार पुस्तकों का उदाहरण दिया जा सकता है, जो कन्फ्यूशियस मत से संबंधित थीं।

सम्राटों ने बहुत से विद्वानों को रखा। इस काल की कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक रचनाएं निम्न प्रकार से थीं :

दि रोमान्स ऑफ थ्री किंगडम्स : यह ऐतिहासिक कथा-वस्तु तथा चरित्रों पर आधारित उपन्यास है।

आऊट लॉज ऑफ दि मार्श : यह किसान विद्रोहों का विवरण है।

जर्नी टू दि वैस्ट : इसमें मौंकी शासक सुन वूकोंग, बौद्ध मत के भिक्षुओं, देवताओं एवं दानवों के माध्यम से उस समय की सामाजिक वास्तविकताओं का मिश्रण किया गया है।

मिंग शासन से चिंग शासन में हुए रूपांतरण के समय में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि ऐसे विचारकों का उदय हुआ जिन्होंने बहुत-सी समकालीन समस्याओं के उत्तर खोजने के प्रयास किए। इन विद्वानों में फ्रांग यीचीह, वांग फूचिह कू यानवू, हुआंग त्सुंग ही, तांग चेन तथा यान युआन प्रमुख थे। इनमें से अधिकतर ने सामंती शोषण का विरोध किया। वांग का कहना था कि "देश के शासक द्वारा भूमि का अधिग्रहण नहीं करना चाहिए।" कू यानवू का विश्वास था कि "ज्ञान को उपयोग के लिए प्राप्त किया जाये", हुआंग ने सामंती कानूनों की यह कहकर आलोचना की कि "ये कानून एक परिवार के कानून थे", यान का विश्वास था कि "संपूर्ण भूमि का उपयोग विश्व में संपूर्ण जनता के द्वारा किया जायेगा" वह नव-कन्फ्यूशियसवाद के विचारों का कटु आलोचक था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चिंग शासकों ने नव-कन्फ्यूशियसवादी विचारों में अपना विश्वास घोषित किया। इसका उपयोग जनता पर अपना प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करने एवं बनाए रखने के लिए किया गया। उदाहरण के लिये, सम्राट कांग सी ने 1684 ई. में चूफू की यात्रा करके कन्फ्यूशियस के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। यद्यपि विचारों एवं विद्वानों का प्रयोग शासक वर्गों के नियंत्रण को बनाए रखने के लिये किया गया। लेकिन कुछ ऐसे भी विद्वान थे जिन्होंने भ्रष्ट व्यवस्था की आलोचना को जारी रखा। वू चिंगजू जैसे लेखकों ने नागरिक सेवा परीक्षा पर व्यंग्य लिखे। इन सबके बावजूद भी कन्फ्यूशियस विचारधारा की प्रमुखता बनी रही और आगामी इकाइयों 13, 28 में हम यह विवेचन करेंगे कि इसको कैसे चुनौती दी गई। इसी तरह से चीन में 19वीं सदी में ईसाई धर्म के उद्भव और उसके प्रभाव की विवेचना आगामी इकाइयों (इकाई 6, 13 और 14) में की जायेगी।

5.6 धर्म एवं विद्रोह

इससे पहले के भाग में हमने धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्रों में घटित विशेष घटनाओं की विवेचना की । हमने यह भी उल्लेख किया कि बहुत से सम्राटों तथा शासक वर्गों ने जनता पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिये कैसे धर्म का उपयोग किया। लेकिन वे सदैव अपनी इच्छा के अनुरूप ऐसा न कर पाए। विभिन्न क्षेत्रों एवं समय-समय पर सामंती शोषण के विरुद्ध कृषकों के विद्रोह हुए। अधिकतर किसान संघर्षों में किसानों एवं उनके नेतृत्व ने अपने शोषकों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए धार्मिक विचारों से प्रेरणा प्राप्त की। हमें संपूर्ण चीनी इतिहास में यह प्रवृत्ति 19वीं सदी के अंत तक निरंतर दिखाई देती है।

प्रथम प्रमाणित कृषक विद्रोह चेन शेंग वू गोंग के नेतृत्व में तीसरी सदी ई.पू. के प्रारंभ में चिन शासन के

दौरान हुआ। इसके बाद येलो टर्बन अपराइजिंग (Yellow Turban Uprising) जैसे कई कृषक विद्रोहों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। इस विद्रोह के दौरान चांग जियाओ ने *ताइपिंग ताओ* (न्याय का सिद्धांत) जैसे गुप्त धार्मिक सम्प्रदाय की स्थापना की। अपने विचारों का प्रचार करने के लिए उसने जनता के बीच भ्रमण किया और हाऊ दरबार को चुनौती दी। लंबी लड़ाई के बाद हान की सेनाओं ने उसकी कृषक सेना को पराजित कर दिया। लेकिन हम यहां पर उन कुछ कृषक विद्रोहों का ही उल्लेख करेंगे, जिनमें धर्म ने किसानों को लामबंद करने में व्यापक भूमिका अदा की।

i) सोंग शासन के दौरान एक महत्त्वपूर्ण कृषक विद्रोह का नेतृत्व फौंग (1120 ई.) के द्वारा किया गया। किसानों को संगठित करने के लिए उसे मैनसियसवाद से प्रेरणा प्राप्त हुई।

ii) झोंग शियांग ने सोंग शासन के विरुद्ध सन् 1130 ई. में एक दूसरे कृषक विद्रोह का नेतृत्व किया। कृषकों में जागृति पैदा करने के लिए उसने भी धर्म का प्रयोग किया।

iii) सन् 1351 ई. में रेड स्कावर्ज (Red Scarves) नामक दूसरा किसान विद्रोह हुआ। इस किसान विद्रोह में व्हाइट लोट्स सोसाइटी ने, जो एक धार्मिक सम्प्रदाय था, महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

iv) महिला किसान नेता तांग सैयर बौद्ध धर्म तथा ताओ धर्म के विचारों से प्रभावित थी। उसने शांतुंग में किसान विद्रोह का नेतृत्व किया। (यही विद्रोह प्रारंभिक मिंग काल में 1420 ई. में हुआ) उसको गिरफ्तार करने के लिए कई भिक्षुणियों को गिरफ्तार किया किन्तु फिर भी उसको गिरफ्तार न किया जा सका।

v) चिंग शासन के दौरान गुप्त धार्मिक सम्प्रदाय एवं संगठनों ने किसान आंदोलनों का नेतृत्व किया। इस संदर्भ में लिन शूंगवेन को उद्धृत किया जा सकता है। लिन हेविन एंड अर्थ सोसाइटी (Heaven And Earth Society) का नेता था और उसने 1786 ई. में एक सशक्त कृषक विद्रोह का नेतृत्व किया। इसी तरह से हेविनली रीजन (Heavenly Reason) सम्प्रदाय के अधिकतर सदस्य गरीब कृषक थे। इस सम्प्रदाय ने 1813-14 ई. में चिंग शासन को चुनौती दी। आगे चलकर ताइपिंग विद्रोह ने भी ईसाई धर्म से प्रेरणा प्राप्त की थी। इसका विवरण इकाई 13 में किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस तरह के सभी कृषक विद्रोहों को सूचीबद्ध करना कठिन है। लेकिन यहां पर विशेष महत्त्व इस बात पर दिया गया है कि जहां पर एक ओर शोषित-पीढ़ित जनता पर अपना नियंत्रण बनाये रखने के लिए शासक वर्गों ने धार्मिक अवधारणाओं का प्रयोग किया, वहीं दूसरी और गरीब जनता ने अपने शोषकों का विरोध करने के लिए धर्म से प्रेरणा प्राप्त की।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थानों को उनके बीच दिए गए उपयुक्त शब्द से भरिए :

i) .... के द्वारा 'निरंकुश' का प्रचार सृष्टि के सार्वभौमिक तत्व के रूप में किया गया।

(क) चाऊ ताई (ख) चाऊ ची

(ग) चाऊ तुम (घ) चुंग हाऊ

ii) मिंग शासन के दौरान..................... प्रमुख दर्शन बना रहा।

(क) बौद्ध धर्म (ख) कन्फ्यूशियसवाद (ग) ताऊचीज़्मवाद

iii) प्रसिद्ध साहित्यिक रचना..................... ऐतिहासिक कथावस्तु तथा चरित्रों पर आधारित थी।

(क) आउट लॉज आफ दि मार्श

(ख) जर्नी टू दि वैस्ट

(ग) दि लास्ट इम्परर

(घ) दि रोमान्स आफ थ्री किंग्डम्स

2) नव-कन्फ्यूशियसवाद पर 10 पंक्तियों में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) मंगोल शासन के दौरान धर्म की क्या भूमिका थी? 10 पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

5.7 जापान का प्राचीन धर्म एवं संस्कृति

Call us @7428092240

चीन का विवरण करने के बाद अब हम जापान पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। यह वह समय था जबकि चीनी विचारों तथा संस्थाओं का प्रसार हुआ। जापान में सामाजिक संस्थाओं के विकास को हियान काल से देखा जा सकता है जब एक नई सभ्यता के ढांचे की नींव रखी गई। इस काल में जापान में महाद्वीपीय संस्कृति ने प्रवेश किया और वह विद्यमान विचारों के साथ समाहित हो गई। यह अंतःक्रिया शांतिपूर्वक सम्पन्न हुई और राजकुमार शोतोकू तैशी के द्वारा निर्मित 17 धाराओं वाले संविधान में इसको सूचीबद्ध कर दिया गया। शोतोकू तैशी उस गुट का प्रतिनिधित्व करता था जिसने नए बौद्ध धर्म के विचारों को अपनाने की वकालत की। इन विचारों की उत्पत्ति भारत में हुई थी और ये चीन एवं कोरिया के माध्यम से जापान पहुंचे। बौद्ध धर्म ने सुसंस्कृत धार्मिक तथा दार्शनिक व्यवस्था को उपलब्ध कराया। ऐसा नवोदित राज्य की जरूरतों के अनुरूप था।

5.7.1 स्वदेशी आधार

बौद्ध धर्म से पूर्व का जापान पैतृक गुटों में संगठित था और उनको *उजि* कहा जाता था। उनके धार्मिक विचारों को *शिन्तो* अर्थात् "देवताओं का मार्ग" के नाम से 7वीं सदी ई. में संकलित किया गया। इन विचारों के द्वारा उन "सर्वोच्च मानवों" या देवताओं पर बल दिया गया जिनको *कामी* कहा जाता था और वे पर्वतों, झीलों तथा वृक्षों पर निवास करते थे। शासकों ने आध्यात्मिक तथा धर्म-निरपेक्ष दोनों प्रकार की शक्तियों का दावा किया। जापान में बहुत से देवताओं का प्रचलन था, लेकिन इजे में स्थित मंदिर मुख्य शाही मंदिर बन गया था। यामातो राज्य के शासकों ने स्वयं को सुन देवी का वंशज बताया। अमातेरसू नो तथा अन्य को देवियों के रूप में वर्णित किया गया। आगे चलकर इस तरह की मिथ्याओं का प्रयोग शाही परिवार के वंशजीय संबंधों को सुन देवी के साथ बिना किसी विघ्न के जोड़ा गया। तोकुगावा वंश के सर्वनाश का समर्थन करने में चुनिन्दा लोग काफी शक्तिशाली थे। इसी आधार पर द्वितीय विश्वयुद्ध से ठीक पहले के वर्षों में चीन के अंदर जापान के साम्राज्यवादी प्रसार को उचित ठहराया गया।

5.7.2 बौद्ध धर्म

जापान में बौद्ध धर्म के प्रारंभ की तिथि को परंपरागत तौर पर सन् 552 ई. माना गया है, परन्तु यात्रियों के द्वारा इसको इससे भी पूर्व चीन एवं कोरिया से जापान लाया गया। बौद्ध धर्म के विचारों को शासक वर्गों ने काफी पसंद किया। उन्हीं के कारण गहरी बौद्धिक गतिविधियों का उदय हुआ और शाही संरक्षण में कई प्रकार की विचार-धाराओं का प्रसार हुआ। शिन्तों जैसे स्वदेशी धर्म के साथ बौद्ध धर्म का कम टकराव हुआ। बौद्ध धर्म के नरा सम्प्रदाय के काल की मुख्य विशेषता यह थी कि उसके अनुयायी बहुत बुद्धिमान एवं कुलीन थे। कल्पनातीत प्रश्नों पर की गई विद्वतापूर्ण टीकाएं छोटे कुलीन तथा शिक्षित वर्ग को बहुत आकर्षित करती थी। सैचो तथा कुकोय जैसे दो भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म की भूमिका को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

सैचो ने अपने उपदेशों का आधार लोट्स सूत्र को बनाया और एक ऐसी धार्मिक व्यवस्था का निर्माण किया जिसके अंतर्गत अपार श्रद्धा रखनी होती और प्रगाढ़ चिंतनशीलता का अनुसरण करना होता था। ऐसा करने से ज्ञान की प्राप्ति हो सकती थी। इस सम्प्रदाय ने महावै रोकाना सूत्र का उपयोग किया इस सम्प्रदाय का कहना था कि विभिन्न प्रकार की शिक्षाएं ज्ञान के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करती थी और महावैरोकाना सूत्र "ज्ञान की अंतिम तथा सर्वोच्च स्थिति" थे। इसको शिंगो की गुप्त शिक्षाओं या उपदेशों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। प्रारंभ में अध्ययन पर बल दिया जाता था किन्तु अब यह अनुष्ठानों में परिवर्तित हो गया था और यह उपदेशकों से शिष्यों को प्राप्त हो गया।

ये दोनों सम्प्रदाय (तेन्दाय, शिंगो) 9वीं तथा 10वीं सदियों के दौरान खूब फले-फूले और हैयन कुलीन वर्ग में इसको काफी समर्थन मिला। किसी एक व्यक्ति के जीवन में सर्वव्यापी मुक्ति एवं ज्ञान के ये विचार जनता के लिये कोई धर्म न बन सके। कुलीन वर्ग ने एक साथ कई तरह के सिद्धांतों का अनुसरण किया और इस प्रकार से इन धार्मिक विचारों ने एक उचित धर्म-निरपेक्ष वातावरण तैयार करने में मदद की।

5.7.3 कुलीन संस्कृति

कुलीन संस्कृति का मार्गदर्शक सिद्धांत शैली एवं स्वरूप में निहित था। प्रारंभ में इसका निर्माण चीन से सीखे हुए सिद्धांतों के आधार पर किया गया। इसी के साथ-साथ इसका निर्माण बौद्ध धर्म के विचारों के द्वारा भी हुआ और जापानी संस्कृति हेइन काल में अपनी पूर्णता पर पहुंच गई। सौंदर्य एवं आकर्षण इसकी मुख्य विशेषताएं हैं तथा धर्म-निरपेक्ष उद्देश्यों को जारी रखना उनके मुख्य लक्ष्य थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 759 ई. में जिस प्रथम काव्य संकलन का प्रकाशन हुआ उनको मैन्योशू कहा जाता है और ये कविताएं इस संस्कृति की सरलता एवं ताजगी का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें प्राकृतिक सौंदर्य का बोध भी होता है। कविता एक महत्त्वपूर्ण कार्य हो गया तथा इनके माध्यम से परंपराओं को सुनिश्चित किया जाने लगा और वे शब्दों के प्रयोग को सुनिश्चित करती। इनका प्रयोग अपनी हृदय की गहराई को अभिव्यक्त करने के लिए भी किया जाता।

अन्य दूसरे प्रकार की रचनाएं भी की गई और 11वीं सदी ई. में सर्वश्रेष्ठ रचना मुरशाकी शिकिबू द्वारा रचित टेल ऑफ दी जेन्जी थी। वह एक दरबारी थी और प्रथम बड़ी लेखिका भी। यह एक महत्त्वपूर्ण बात थी कि उस काल में एक लेखिका ने ऐसी रचना की। पुरुषों ने चीनी भाषा को सीखा और उनसे ये आशा की गई कि वे चीनी भाषा में लिखें। उस समय चीनी भाषा को ज्ञान की भाषा समझा जाता था और जबकि महिलाएं जापानी भाषा में लिखती थीं तथा वे अधिक अच्छा लेखन कर सकीं। इसका लाभ यह हुआ कि लेखिकाओं द्वारा अच्छा साहित्य लिखा गया।

बौद्ध धर्म के मठों द्वारा कला तथा स्थापत्य कला को दिया गया संरक्षण अति महत्त्वपूर्ण था तथा इससे संबंधित कुछ दृष्टांत अभी भी उपलब्ध हैं। टेल ऑफ दी गेंजी जैसी पुस्तकों का चित्रण दीवारों पर किया गया है।

"अच्छे लोगों" *(योकी हितो)* की कुलीन संस्कृति ने सौंदर्य बोध की तलाश पर काफी बल दिया। सौंदर्य बोध आदर्शों की उच्च स्तरों के साथ पहचान की गई। महाद्वीपीय विचारों को शीघ्रता के साथ ग्रहण तथा कीकृत करने और सुसंस्कृत संस्कृति की सुंदरता की श्रेष्ठ भावना के साथ रचना ने बाद की जापानी संस्कृति मूल तत्व का निर्माण किया।

5.8 मध्यकालीन धर्म एवं संस्कृति

कामाको बाकूफू के साथ जिस योद्धा (*बुशि*) संस्कृति का उद्भव हुआ उसके मूल्य कुलीन हेइन दरबारी संस्कृति से बहुत भिन्न प्रकार के थे। धर्म में जो बदलाव आए उसके फलस्वरूप सामान्य जनों के दैनिक जीवन में उसका हस्तक्षेप बहुत अधिक हो गया। इस काल के मूल्यों में निहित थे वीरता, आत्म-अनुशासन, कर्तव्य परायणता तथा सादे जीवन के विचार। टेल ऑफ दी गेंजी (हेइके की कहानिया) हेइन दरबार का सूक्ष्मदर्शी चित्रण करती हैं और दि हेइके मोनोगातरी जैसी 13वीं सदी की युद्ध कहानियां मध्यकाल के मूल्यों एवं हितों की अच्छी प्रतीक हैं। धर्म के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म के प्राचीन अनुष्ठानों एवं जटिल धार्मिक सिद्धान्तों का स्थान सरल सिद्धान्तों एवं कम से कम अनुष्ठानों ने ले लिया। मध्यकाल ने सभी प्रकार से अंगीकार करने योग्य दार्शनिक व्यवस्थाओं को बनाने के प्रयासों को नकार दिया। इसके स्थान पर बहुवादी तथा विरोधाभासपूर्ण विचारों को स्वीकार किया गया और उन्हीं का अनुसरण ये परिवर्तन लोकप्रिय धर्म के उदय एवं वृद्धि के लिये अति महत्वपूर्ण थे और समाज के द्वारा व्यापक स्तर पर उनके प्रभावों को महसूस किया गया।

5.8.1 धर्मों का विकास

इस समय का सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक परिवर्तन *ज़ेन* बौद्ध धर्म का लागू किया जाना एवं विकास था। योद्धा वर्ग को *ज़ेन* धर्म के विचार बड़े ही आकर्षित लगे और उन्होंने इसे संरक्षण प्रदान किया, जिसके कारण इन विचारों का प्रसार एवं वृद्धि हुई।

ज़ेन के प्रचार में दोगेन और इजाय (1141-1215 ई.) जैसे भिक्षुओं ने महत्वपूर्ण योगदान किया। इन भिक्षुओ ने जापान में शिक्षा प्राप्त की थी और फिर वे चीन गए तथा वहां पर उनको *चैन* (ध्याना) ने प्रभावित किया। उनकी शिक्षाओं के मूल तत्व ग्रंथों की अपेक्षा गुरु के द्वारा विचार ग्रहण करने पर अधिक बल देते थे। उनका तर्क था कि अनुष्ठान या अच्छे कार्य की अपेक्षा मुक्ति प्राप्त करने की उचित विधि आत्म अनुशासन एवं चिंतन थी। वे अपने विचारों के अनुरूप उन प्रारंभिक बौद्ध सम्प्रदायों की तुलना में साधारण एवं सदाचारी जीवन व्यतीत करते थे, जिनके मठ सुसम्पन्न और यहां तक कि आडंबरपूर्ण स्थलों में बदल गए थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ज़ेन बौद्ध मत ने इस विचार का प्रचार किया कि आत्म-अनुशासन के द्वारा प्राणी अपने अंतःकरण को समझ सकता था। सामाजिक पद महत्वपूर्ण नहीं होते। सभी ज्ञान को प्राप्त कर सकते थे। दोगेन ने चिंतन-मनन के महत्त्व को बताया और ईजाय ने अपने शिष्यों की पुरानी सोच को तोड़ने के लिए विरोधाभासी भाषा का प्रयोग किया।

अमिदा बौद्ध मत भी एक महत्वपूर्ण धार्मिक मत था और उसको भी जनता में व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। इस मत का कथन था कि जो कोई भी सच्चाई में गंभीरता के साथ विश्वास करेगा उसका पुनर्जन्म पश्चिमी स्वर्ग या *जोदो* में होगा। गेशिल (942-1017 ई.) तथा बाद में शिरान (1173-1262 ई.) जैसे प्रचारकों ने यात्राएं कीं। उन्होने *जोदो* मंदिरों को स्थापित किया तथा समर्थकों को विजयी किया। शिरान ने पूर्णतः विश्वास पर बल दिया और उसका कहना था कि ग्रंथों का अध्ययन ज्ञान प्राप्ति के मार्ग को अवरुद्ध करता है तथा अहम् तुष्टि साधन मात्र है।

इन धार्मिक मतों के विपरीत भिक्षु निचिरेन (1222-1282 ई.) ने लोटस सूत्र में सर्वव्यापी संदेश को खोजने का प्रयास किया और उसने राज्य के साथ घनिष्ठ संबंध की वकालत की। वह जापान को बौद्ध धर्म की भूमिका बनाना चाहता था और इस कारण से उसने अन्य सम्प्रदायों का तिरस्कार किया। उसका मानना था कि उसकी प्रार्थनाओं के कारण जापान मंगोलों के आक्रमणों से बच गया। उसके इस दावे के कारणवश उसके समर्थकों की संख्या में और वृद्धि हुई।

इस समय में जनता के बीच बौद्ध धर्म के प्रसार का कारण शिरान द्वारा दिया गया यह तर्क था कि भिक्षुओं को आडंबरपूर्ण जीवन का परित्याग करना चाहिए। अब पुरोहित विवाह कर सकते थे और वे अपने उत्तराधिकारियों को भी नियुक्त कर सकते थे। इस परंपरा के कारण बौद्ध सम्प्रदायों का विकास स्थायी संस्थात्मक ढांचे के रूप में हुआ, इनमें से कई गुट अपनी सेनाओं के प्रयोग द्वारा राजनीति में व्यस्त थे और अपने आंतरिक मामलों का प्रबंधन करते थे। मठों का स्थानीय लोगों के द्वारा समर्थन किए जाने के कारण— वे ऐसे सशक्त केन्द्र बन गए जो युद्धों में संलग्न रहते। इस संदर्भ में क्योतो का दृष्टांत दिया जा सकता है क्योंकि वहां पर लोटस मंदिरों के द्वारा 20 विशाल किलों का निर्माण किया गया था। इसी तरह से ओसाका में इस्तीयामा हो गंजी एक बड़ी सशस्त्र इक्को केन्द्र था।

शिंतो सहित अनेक प्रकार की धार्मिक परंपराओं में खूब वृद्धि हुई। एक शिंतो विद्वान किलाबाटेक शिकाफूस (1293-1353 ई.) ने शाही परिवार के विषय में एक सशक्त ग्रंथ की रचना की और इस ग्रंथ में जापान के भाग्य को सुनिश्चित करने के लिए तर्क दिए गए।

इस समय मे अनेक प्रकार की विचारधाराओं का उदय हुआ। धर्म को केवल इस विचार के द्वारा एकीकृत किया गया कि उनके दार्शनिक विचारों के लिए निष्पादन केन्द्र था। चाहे कोई धर्म-निरपेक्ष हो या धार्मिक, वह केवल अपने स्वयं के प्रयासों के द्वारा ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता था। पद एवं स्थापित परंपरा हेइन कुलीन संस्कृति के केन्द्र बिन्दु थे लेकिन अब इनका स्थान कार्य की प्रतिष्ठा एवं इच्छा ने ले लिया था।

5.8.2 योद्धा संस्कृति का निर्माण

योद्धाओं की बुशि दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों की इस नई लहर के द्वारा प्रेरित किया गया था जिसकी अभिव्यक्ति सांस्कृतिक कल्पना के द्वारा की गई और इस सांस्कृतिक कल्पना ने आदमी, प्रकृति तथा समाज की मूल एकता को स्पष्ट तौर पर व्यक्त किया। इस एकीकृत तथा आत्मनिर्भर संपूर्णता की कल्पना को बुशि के द्वारा बनाए रखा गया, लेकिन इसका निर्माण उस प्रभाव के कारण हुआ था जो चीन तथा अभिजात वर्ग *(कुगे)* के प्रारंभिक सौंदर्य बोध से आया था।

इस युग की स्थापत्य कला ने इस एकता को प्रतीकात्मक बनाया। योद्धाओं के घरों का निर्माण इस ढंग से किया गया कि उनमें धार्मिक चिंतन, चाय उत्सव तथा काव्य सम्मेलनों जैसी गतिविधियों को भली भांति से सम्पन्न किया जा सकता था।

इस युग के साहित्य में युद्ध कथाओं की प्रमुखता है और उनको सामान्यतः भ्रमणकारी भिक्षुओं के द्वारा रचा गया। *तैहेइकी* या "महान शाति का तिथिक्रम" में 1318-1367 ई. के बीच के संघर्ष का विवरण है और यह उस युग की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी गई है। बहुत से ग्रंथों ने जीवन की क्षण-भंगुरता जैसे बुद्ध के विचारों को अभिव्यक्त किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नाटक के क्षेत्र में औपचारिक नौ नाटकों ने अपनी चरम पराकाष्ठा को प्राप्त किया। प्रारंभिक परंपराओं को जोड़ते हुए कनामी (1333-1384 ई.) तथा जीमी (1368-1444 ई.) ने एक शक्तिशाली नाटकीय माध्यम में *नो* को संकलित किया। यद्यपि ये नाटक उच्च शैली के रूप हैं लेकिन इनके अंदर अंतःकरण की भावनाओं—प्रेम एवं घृणा—स्वयं की परीक्षा करने वाले बुद्ध के विचारों का विशुद्ध विवरण किया गया है। संगीत निष्पादन का अभिन्न अंग था और उसका उपयोग भी प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

चित्रकला को सुंग तथा युआन के ज़ेन कलाकारों के द्वारा प्रभावित किया गया। ये काली स्याही से बनी चित्र कलाएं *(सुमी)* साधारण एवं प्रत्यक्ष थीं। ये प्रत्यक्ष वस्तु के व्यापक प्रतिनिधि न होकर उसकी एक भावनात्मक प्रतिक्रिया मात्र थी। इन सबसे महान परंपरा की स्थापना कानो मसानोकू (1434-1530 ई.) के द्वारा की गई। इस कानो परंपरा का विकास सजावटी तत्वों के रूप में हुआ और इसने स्पष्ट रंगों का प्रयोग किया।

चाय उत्सव योद्धा वर्ग के कठोर जीवन तथा वैचारिक प्रवृत्तियों के प्रतीक थे। चाय का प्रारंभ चीन से हुआ था और वह कलात्मक तथा वैचारिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बन गई। चाय के कमरे की लंबाई-चौड़ाई का आधार भारतीय बौद्ध उपदेशक उइम्बकीति का नमूना था। ये कमरे छोटे होते थे और वहां पर मेहमान चाय पीने के लिए एकत्रित होते। इनको सेन ना रिकया (1522-91 ई.) जैसे उपदेशकों के द्वारा व्यवहार में लाए जाने से ये बौद्ध विचारों के उत्सव बन गए। इनका निर्माण पूर्ण कलात्मक ढंग से किया जाता था। चाय के कमरे के बाहर चाय के बाग आकर्षक कलात्मक उपलब्धियों के प्रतीक थे।

योद्धाओं की संस्कृति को मठों एवं धनी व्यापारियों के द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया। इसने लोकप्रिय संस्कृति के साथ आंतरिक संबंधों को विकसित किया एवं जारी रखा और उस समय राजनीतिक अव्यवस्था के फेल हो जाने के बावजूद भी कलात्मक गतिविधियों की एक व्यापक भिन्नता को जारी रखा। मध्यकालीन विश्व ने कुलीनों के सीमित स्थलों को छोड़ा लेकिन जनता के बीच प्रेरणा के व्यापक तथा रचनात्मक स्रोत को पाया गया।

बोध प्रश्न 4

1) सही या गलत कथन पता लगाकर सही (√) या गलत (x) का चिन्ह लगाइए :

   i) बौद्ध धर्म से पूर्व के जापान को पैतृक गुटों में संगठित किया गया था और उनको उजी

कहा जाता था।

ii) प्राचीन जापान में अभिजातीय संस्कृति के दिशा-निर्देशक सिद्धांत स्वरूपविहीन एवं तत्वहीन थे।

iii) मध्यकाल में जापान की संस्कृति तथा धर्म के मुख्य मूल्य वीरता, आत्म-अनुशासन, कर्तव्य के प्रति समर्पण तथा साधारण जीवन थे।

iv) मध्यकाल की एक अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक घटना सूफीवाद का लागू होना था।

2) प्राचीन जापान में विद्यमान अभिजात संस्कृति के विषय में 10 पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) जापानी संस्कृति के मध्यकाल के दौरान हुए धार्मिक परिवर्तनों पर 10 पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4) योद्धा संस्कृति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

....

....

....

....

....

5.9 तोकूगावा काल में धर्म एवं संस्कृति

तोकूगावा काल के दौरान सापेक्ष राजनीतिक स्थायित्व के कारण सामाजिक संबंधों में कुछ स्थायित्व आया जिससे नई व्यवस्था के लिए शासक वर्ग एक विचारधारा को प्रतिपादित कर सका। जिस कन्फ्यूशियसवाद का प्रचार यू *हसी* के द्वारा किया गया उसे नव-कन्फ्यूशियसवाद कहा गया—जापान में उसका प्रचलन 12वीं सदी

. से ही था और और अब वह एक प्रमुख वैचारिक व्यवस्था हो गया था। सर्वव्यापी मतों की व्यवस्था का निर्माण योद्धा वर्ग के महत्त्व के समरूप ही था और पदानुक्रम वाले समाज में इसका उद्भव एक सांस्कृतिक प्रबुद्ध वर्ग के रूप में हुआ था।

शांति एवं संपन्नता के कारण रचनात्मक एवं लोक संस्कृति का उद्भव संभव हो सका। आर्थिक सम्पन्नता तथा राजनीतिक प्रतिबद्धताओं ने योद्धा वर्ग को नगरों में रहने के लिये बाध्य किया और इसके कारण नगरीकरण बढ़ा। *शोनिन* या कस्बों की लोक संस्कृति उदित होते व्यापारिक वर्ग की उपज थी।

एक व्यवस्थित सामाजिक पदानुक्रम की आंगिक अवधारणा को परिवर्तन की उदीयमान शक्तियों के द्वारा दबाया गया। इसके बदले वृद्धि और विकास ने स्थापित मानकों तथा पदानुक्रमों को समाप्त करने में सहायता की और उन आंदोलनों को उदित किया जिन्होंने सम्राट की केन्द्रीय स्थिति को पुनः लागू करने का प्रयास किया। जिस समय तोकूगावा ने पश्चिमी शक्तियों के दबाव का सामना किया तब इन आंतरिक आंदोलनों ने अंतिम तौर पर तोकूगावा को पराजित करने में सफलता प्राप्त की।

5.9.1 विचारों के प्रतिमान

यू हूसी का नव-कन्फ्यूशियसवाद महायान बौद्ध मत के साथ कन्फ्यूशियस अवधारणाओं का मिश्रित रूप था और इसने जापान में पांच मानवीय संबंधों (पिता-पुत्र, शासक-शासित, पति-पत्नी, बड़े-छोटे भाइयों और मित्रों के बीच) के महत्त्व पर बल दिया। ये लादे गए अनुबंध काफी आकर्षक प्रतीत हुए तथा इनमें वफादारी को विशेष महत्त्व दिया गया।

बाकाफू ने कन्फ्यूशियस विचारकों को अपने सलाहकारों के तौर पर नियुक्त किया। इन सलाहकारों में सबसे प्रसिद्ध हयाशी राजेन (1583-1619 ई.) था तथा उसने 1633 ई. में इदो में एक अकादमी की स्थापना की। कन्फ्यूशियसवादी विचारों तथा शिन्तो सम्प्रदाय दोनों को इस तौर पर समान समझा गया कि वे शासक के प्रति वफादारी की मांग करते थे। इन विद्वानों ने जिन विचारों का प्रचार किया वे शासक वर्ग की विचारधारा बन गए। योद्धाओं को उचित ग्रंथों का अध्ययन करने तथा सैनिक एवं नागरिक कलाओं *(बंबू)* को सीखने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सैनिक कलाएं बुशी की शिक्षा के पाठ्यक्रम का एक भाग थीं। लेकिन तोकूगावा यामा सोको (1622-1685 ई.) के तथा दूसरे शासकों के महान शांति युग में योद्धाओं के लिए एक ऐसे दर्शन को प्रतिपादित किया गया जिसे *बूशिदो* (युद्ध का तरीका) का नाम दिया गया। कोई युद्ध न होने के कारण सामुराइयों को सदैव अपने स्वामी की सेवा में संलग्न रहना पड़ता।

बुशी ने दूसरे समूहों पर अपनी श्रेष्ठता को साबित करने के लिए नव-कन्फ्यूशियस मत के विचारों का प्रयोग किया लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति को नकार दिया गया क्योंकि जनता के बीच साक्षरता में वृद्धि हो रही थी। इशिदा बैगन ने (1685-1744 ई.) व्यापारियों को आत्म-परिष्कार के विचारों की शिक्षा दी जबकि निनोमिया (1787-1856 ई.) ने, जिसे "कृषक साधु" के नाम से जाना जाता था, शिक्षाओं में जीवन के प्रति कृतज्ञता के विचार का प्रसार किया।

प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किए जाने से स्थापित धर्मों पर प्रश्न किए गए। राष्ट्रीय ज्ञान प्राप्त करने के विद्यालय (कोकूगाका) में मैनीयोशू के काव्य सग्रह तथा दी टेल ऑफ दी गेंजी को वैचारिक अध्ययनों के लिए प्रारंभ किया गया। मोतूरी नोरिंगा (1738-1801 ई.) जैसे विद्वानों ने प्राचीन ग्रंथों की टीकाएँ लिखने में जीवन व्यतीत किया और जापान की सत्य आत्मा की ओर वापस लौटने का आह्वान किया। यह प्रवृत्ति साम्राज्यिक वंश को पुनः स्थापित करने में सहायक रही। मितो स्कूल ने 1657 ई. में वफादारी की परंपरा के इस दायरे के अंतर्गत जापान के इतिहास के लेखन का प्रारंभ किया और उसको 397 जिल्दों में संग्रहित किया गया।

विचारों के विषय में प्रश्न करना तथा भिन्नता की वृद्धि की अभिव्यक्ति सामुराइ शासन के पक्के समर्थक विद्वान ओगयू सोराय (1666-1728 ई.) की रचनाओं में भी हुई। उसने चू हूसी पर अधिक निर्भरता का विरोध किया और विश्व परिवर्तन के साथ चलने की बात की। उसने कन्फ्यूशियस की मूल रचनाओं का अध्ययन करने पर बल दिया। स्थापित विचारों पर प्रश्नों को उठाने की इस प्रवृत्ति के कारणवश इस समय के बौद्धिक जीवन में विरोधाभासपूर्ण विचारों का प्रारंभ हुआ। बुशी तथा नगरवासियों में नए-नए विचार उत्पन्न होने लगे और वे मेजी जापान की नई व्यवस्था को बनाने में प्रभावकारी साबित हुए।

जापान पर डच विद्वानों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। जिस समय जापान ने पश्चिम के साथ अपने संबंधों को समाप्त कर दिया था, तब डच विद्वानों के एक छोटे समूह को मुख्य प्रायद्वीप नागासाकी के समीप देशिमा

में रहने की आज्ञा दे दी गई थी। ये डच विद्वान जापानी भाषा को भी जानते थे, जिसके कारण वे पश्चिम के ज्ञान को विशेष तौर से औषधि, छपाई एवं बंदूक बनाने की विधि के विषय में सीख सके। इन में से सुगिता गेनपेलेन जैसे विद्वान थे और तोकूगावा शासन की समाप्ति के समय इन विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को उपलब्ध कराया। इन डचों को जापान में "लाल बाल वाले असभ्य" कहा जाता था।

यह गहन बौद्धिक गतिविधि व्यापक रूप से फैली साक्षरता के कारण ही संभव हो पाई थी। स्कूलों को *तेराकोया* के नाम से पुकारा जाता था और इनका संचालन बौद्ध मंदिरों के द्वारा किया जाता। इन्होंने साधारण जनों को शिक्षा उपलब्ध कराई। कुछ जागीरें या हान अपने स्वयं के स्कूलों का संचालन करती थीं। 1865 में 73 प्रतिशत दाइम्यो के अपने स्कूल थे। विद्यालयों का संचालन कन्फ्यूशियस विद्वानों के द्वारा किया जाता था और वे ज्ञान प्राप्त करने के केन्द्र बन गए। कुछ विद्वानों ने 40 प्रतिशत पुरुष साक्षरता तथा 10 प्रतिशत नारी साक्षरता की बात की। यद्यपि इन आंकड़ों को लेकर वाद-विवाद हो सकता है किन्तु निश्चय ही साक्षरता का प्रसार हुआ।

5.9.2 शहरी संस्कृति का उदय

नोबूगा, हिलदेयाशी तथा तोकूगावा इयेसू के शासन काल में जो शांति जापान में स्थापित हुई थी उसके फलस्वरूप एक ऐसी संस्कृति का प्रारंभ हुआ जिसको *मोमोयामा* संस्कृति के नाम से जाना गया और यह काफी असभ्य एवं आडंबरपूर्ण संस्कृति थी। बड़े-बड़े किले शासकों की शक्ति की अभिव्यक्ति थे और तोकूगावा के प्रारंभिक शासकों के निक्को स्थित मसासोबा उच्च अलंकृत स्थापत्य कला शैली की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। इन किलों पर खर्चीली किस्म की चित्रकारी की गई है। शासकों द्वारा चाय स्वामियों तथा कुशल कारीगरों को संरक्षण प्रदान किया गया।

तोकूगावा सामुराइ के अधीन रचनात्मक गतिविधियाँ 17वीं सदी के मध्य तक चलती रहीं। लेकिन संस्कृति के व्यापकतम तत्वों की रचना एवं उनको नगरों के व्यापारियों तथा कारीगरों के द्वारा प्रेरित किया गया। इसका संक्षिप्त स्वरूप *उकियोई* या "गतिशील विश्व" था। इस सामाजिक व्यवस्था में पद की अपेक्षा धन की प्रमुखता थी और इस व्यवस्था में लेखन, चित्रकारी तथा नाटक के नए-नए स्वरूपों ने अपनी पूर्णता को प्राप्त किया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

धारा सैकाका (1624-1693 ई.) कवि तथा उपन्यासकार ने विश्व के विषय में प्रभावपूर्ण ढंग से लिखा। उसके द्वारा रचित कहानियां प्रतिदिन की समस्याओं के इर्द-गिर्द घूमती रहती थीं और उसने जीवन का विवरण भी आनंद, कांड, दुर्भाग्य तथा प्रेम की समस्याओं के रूप में किया। उसके लेखों तथा कहानियों को काफी व्यापक तौर पर पढ़ा जाता था। इन उपन्यासों को लकड़ी के छपे हुए खंडों के साथ चित्रित किया गया तथा यह ऐसी कला थी जो छपाई के दौरान विकसित हुई। इन उपन्यासों में सामान्यतः महिला चरित्रों, प्रसिद्ध स्थानों तथा रोज़मर्रा के जीवन के साथ प्रसिद्ध नायकों को शामिल किया गया।

काबूकी एक अन्य प्रसिद्ध नाटककार था और वह अपने पात्रों का चुनाव ऐतिहासिक कहानियों से करता और कभी-कभी प्रेम प्रसंगों को भी अपने नाटकों में स्थान देता। उसके नाटक जापान में बड़े लोकप्रिय हुए। इन नाटकों को अपने जीवंत संवादों एवं नाटकीय प्रस्तुतीकरण के कारण व्यापक रूप से पसंद किया गया।

काव्य में मतस्नो बासनो (1644-1694 ई.) ने 17 पदों की काव्य शैली में पूर्णता को प्राप्त किया। संक्षेप में, सुझाव देते हुए, उसने प्रारंभिक सांस्कृतिक परंपराओं की व्यापकता तथा कोमल संवेदनशीलता को एक साथ अपने काव्य में स्थान दिया। यह एक ऐसे साहित्य के स्वरूप थे जो उस समय की संस्कृति से जुड़े थे। *गेसाकू* या कहानियों को मनोरंजन के लिये लिखा गया। इस शब्द का प्रयोग शैलियों के क्षेत्रों या लेखन के स्वरूप को पूरा करने के लिया किया गया।

कलात्मक उत्पादन को साहित्य तथा लकड़ी के छपे खंडों के साथ संबंधित नहीं किया गया लेकिन इसके अंतर्गत गतिविधियों का व्यापक क्षेत्र आता था। कानो परंपरा समृद्ध होती रही और अलंकृत पदों का उत्पादन ओगाता कोरीन के द्वारा किया गया और इस का श्रेष्ठ उदाहरण इस काल के सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों से दिया जा सकता है। इस समय मिट्टी के सर्वश्रेष्ठ बर्तनों का उत्पादन हुआ। ओगाता कोरिन का भाई ओगाता कंजन (1663-1743 ई.) प्रसिद्ध कुम्भकार था। जापान के चीनी मिट्टी बर्तनों का यूरोप को अधिक निर्यात 16वीं सदी ई. के अंत में शुरू हुआ और वहां पर इसका काफी प्रभाव था। योकर वेयर की काफी मांग बढ़ने लगी थी। चाय पार्टियां, बगीचे के दृश्यों को सजाना तथा फूलों को व्यवस्थित करना जैसी महत्त्वपूर्ण गतिविधियां भी बढ़ने लगीं।

इस तरह की सांस्कृतिक गतिविधियों का होना आर्थिक सम्पन्नता के कारण संभव हो पाया। साक्षरता के कारण इस तरह की संस्कृति को ग्रहण करने वालों की संख्या में वृद्धि हुई और छपाई का भी विकास हुआ। जापान ने 16वीं सदी के अंत में चलित टाइपिंग की जानकारी प्राप्त कर ली थी लेकिन भाषा के सौंदर्यबौध की मांग के कारण खंड छपाई की विधि आ गई थी। काफी सामग्री को प्रकाशित किया गया और पढ़ने वालों की भी काफी संख्या थी। इसलिए किसी ने बिना किसी ध्यान के चीनी पात्रों को अपनाया तब दूसरों ने शब्द उच्चारण पर ध्यान दिया और कुछ ने सरल जापानी भाषा में लिखा।

1700 ई. के आसपास यह शहरी संस्कृति अपनी चरम पराकाष्ठा पर थी और इसको *जेनरोकू* काल कहा गया। इसके बाद साहित्यिक रचनाओं के स्तर में गिरावट आई लेकिन फिर भी कुछ ऐसे लेखक एवं कलाकार थे जिन्होंने नई दिशाओं को खोजने का प्रयास किया। इसी बीच कोमोडोर मैम्यू पैरी ने जापान को पश्चिम के लिए खोल दिया। इस तरह 17वीं सदी की बौद्धिक व्यवस्था में एक प्रकार की रुकावट पैदा हो गई और इस तरह से बुद्धिजीवी लोग नई दिशाओं एवं नवीन रचनाओं के निर्माण की ओर अग्रसर हुए।

बोध प्रश्न 5

1) तोकूगावा काल में उदित विचारों के प्रतिमानों की लगभग 15 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) जापान में शहरी संस्कृति के उदय पर लगभग 15 पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए।

i) चू ह्सी ने जिस नए मत का प्रतिपादन किया उसे नव-कन्फ्यूशियसवाद कहा गया।

ii) तोकूगावा शासन के समय में *मोमागामा* संस्कृति, शालीन, रचनात्मक एवं विचारपूर्ण थी।

iii) काबूकी एक प्रसिद्ध धार्मिक विद्वान था।

iv) शहरी संस्कृति के दौरान जो वातावरण संबंधी परिवर्तन हुआ, उसको *जेनरोकू* कहा गया।

5.10 सारांश

इस इकाई में आप देख चुके हैं कि कैसे बहुत से धर्मों का उदय हुआ और कैसे उनका चीन तथा जापान में विकास हुआ। चीन में कन्फ्यूशियसवाद एक प्रमुख विचारधारा बना रहा। सभी वंशों के शासक वर्गों ने अपने नियंत्रण को जनता पर बनाए रखने के लिए धर्म का प्रयोग किया। कन्फ्यूशियस मत, बौद्ध मत तथा ताओ मत सभी का एक प्रकार का प्रयोग हुआ। दूसरी ओर हम पाते हैं कि समाज के शोषित वर्गों ने कई अवसरों पर अपने शोषकों का विरोध करने के लिए बहुत से धार्मिक विचारों एवं सम्प्रदायों से प्रेरणा प्राप्त की। इसी के साथ एक विशाल साहित्य का निर्माण हुआ, जिसने चीन की सांस्कृतिक धरोहर में वृद्धि की।

जापान में बौद्ध धर्म तथा शिन्तो धर्म प्रमुख धर्म बने रहे। यहां पर भी एक अभिजातीय संस्कृति का तथा बहुत-सी विचारधाराओं का विकास हुआ। दोनों ही देशों में धर्म ने उनकी कला, निर्माण कला, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन पर अपना प्रभाव छोड़ा।

DIKSHANT IAS

5.11 शब्दावली

Call us @7428092240

एकेश्वरवाद : एक ही ईश्वर का अस्तित्व।

बहुदेवतावाद : कई देवताओं का अस्तित्व।

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन कालीन चीन में विद्यमान धर्म के विषय में कई प्रकार की विचारधाराएँ हैं। कुछ ने इसको एकेश्वरवाद कहा और कुछ ने इसको बहुदेवतावाद। कुछ का तर्क था कि वह विश्वास पर आधारित था। तांग ने अपने वंशजों का संबंध ईश्वर के पुत्र प्रथम राजा से बताया। उनके पूर्वजों की पहचान ईश्वर के साथ की गई। देखें भाग 5.2

2) पांचों ग्रंथों के नाम बताइये। आपका उत्तर भाग 5.2 पर आधारित होना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखें उपभाग 5.3.1 एवं 5.3.2

2) बौद्ध धर्म का सबसे प्राचीन उद्धरण हान काल की प्रथम सदी ई. से प्राप्त होता है। वर्षों बाद बौद्ध धर्म के उपदेश लोकप्रिय हो गए और उनको शाही संरक्षण प्राप्त हुआ। देखें उपभाग 5.3.3

3) i) × ii) × iii) √ iv) ×

बोध प्रश्न 3

1) i) चाऊ तुम

ii) कन्फ्यूशियसवाद

iii) दि रोमान्श ऑफ थ्री किंग्डम्स

2) 11वीं सदी ई. में एक नए पंथ का उदय हुआ। इसका पुनरुत्थान कन्फ्यूशियसवादी मूल्यों तथा व्यवस्थाओं के रूप में हुआ। बहुत से नए विद्वानों ने इस नए दर्शन को और विकसित किया। देखें उप-भाग 5.4.1

3) मंगोल शासकों ने धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया। इस युग में ईसाई धर्म के आगमन से एक नए प्रकार का वातावरण बना। विदेशियों से लगातार संपर्क बना रहता था। देखें उप-भाग 5.4.2

बोध प्रश्न 4

1) i) √ ii) × iii) √ iv) ×

2) अभिजात संस्कृति का मुख्य केन्द्र उसकी शैली एवं स्वरूप पर था। इस विचार को चीन से लिया गया। मनोहरता एवं सरलता उसकी विशेषता थी। देखें उप-भाग 5.7.3

3) इस काल में सबसे महत्त्वपूर्ण धर्म का उद्भव *ज़ेन* बौद्ध मत का उद्भव था। इस दर्शन की ओर मुख्य तौर पर योद्धा वर्ग आकर्षित हुआ। देखें उप-भाग 5.8.1

4) योद्धाओं की जिन दार्शनिकीय एवं धार्मिक विचारों ने सबसे अधिक प्रेरित किया उनकी अभिव्यक्ति सांस्कृतिक कल्पना में हुई। इन विचारों का मूल मानव, प्रकृति तथा समाज की मूलभूत एकता में निहित था। देखें उप-भाग 5.8.2

बोध प्रश्न 5

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) तोकूगावा काल में विचारधारा के बहुत से प्रतिमानों का उद्भव हुआ। इस समय में नव-कन्फ्यूशियसवाद ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। देखें उप-भाग 5.9.1

2) तोकूगावा काल के दौरान स्थापत्य कला, चित्रकला तथा संस्कृति में सृजनात्मकता प्रमुख केन्द्र थी। उस समय यह अपने उत्कर्ष पर थी। नाटकीय संस्कृति के भी कई रूपों का विकास हुआ। देखें उप-भाग 5.9.2

3) i) √ ii) × iii) × iv) √

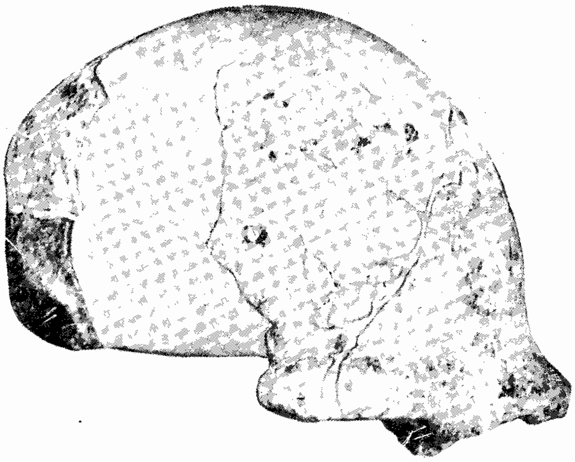

2. पीकिंग आदमी की अर्धप्रतिमा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3. उत्तर-पश्चिम चीन में रेगिस्तानी भू-दृश्य

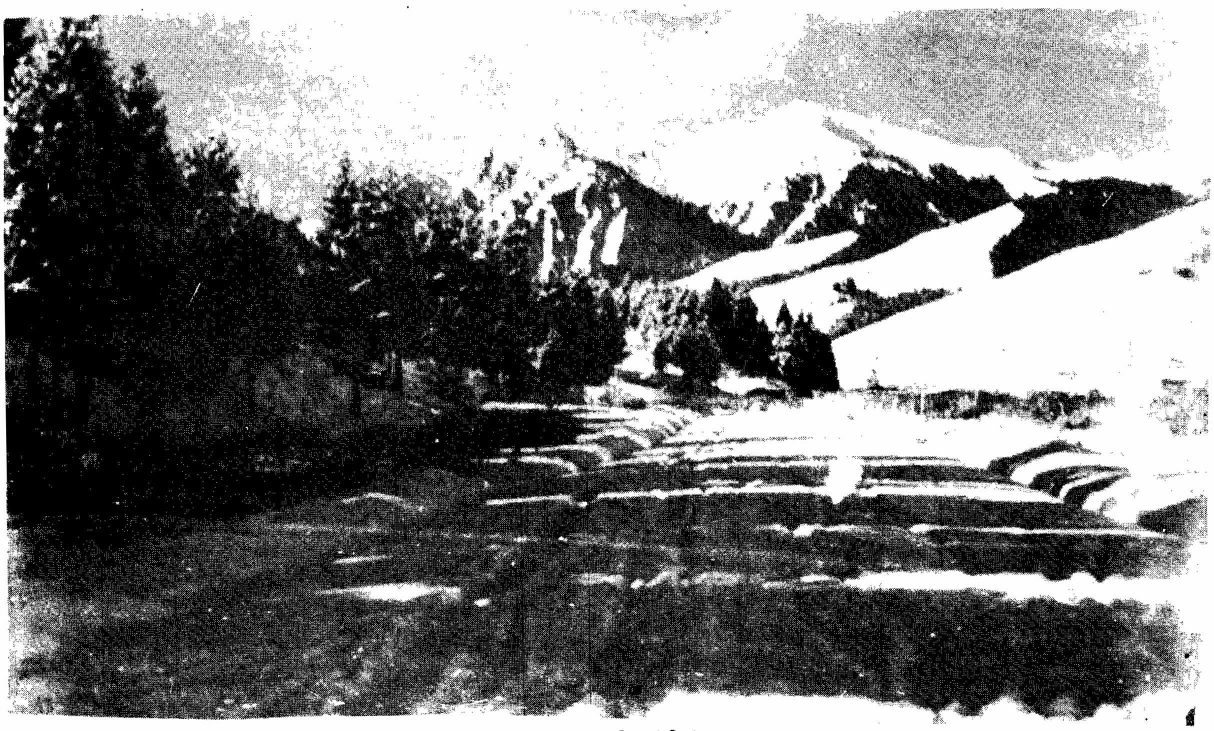

4. तिआनशान पर्वत (चीन)

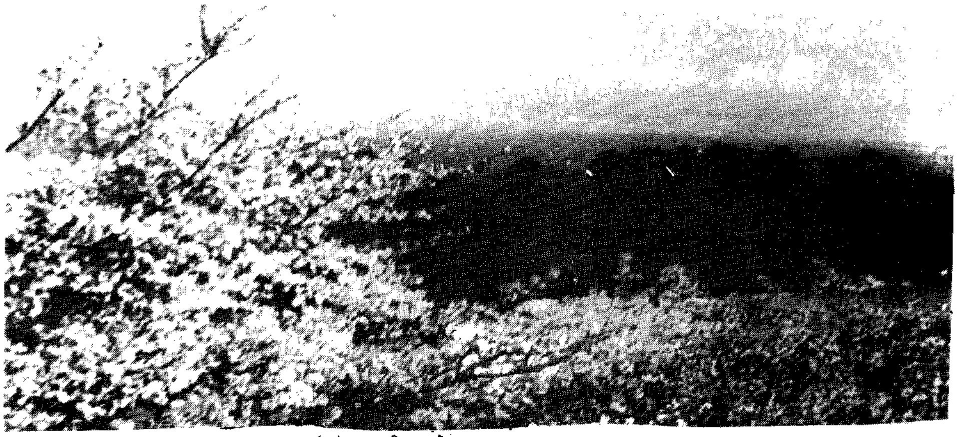

5. (अ) फूजी पर्वत का दृश्य (जापान)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

(ब) होकुसाई द्वारा बनाया गया फूजी पर्वत का रंग-चित्र जो कि "लाल फूजी" के नाम से प्रसिद्ध है।

6. सेशू द्वारा बनाया गया रंग-चित्र जिसमें जापान में शीत ऋतु का चित्रण है।

7. चीन की ग्रेट वॉल के चित्र

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8. भ्रष्ट चीनी अधिकारी का पुतला

9. चीनी बुद्धिजीवी का पुतला

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10. मीनामोतो तोरीतोमा—पहला शोगुन तथा कामाकुरा बाकुफू का संस्थापक (जापान)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11. ओडा नोबूनागा

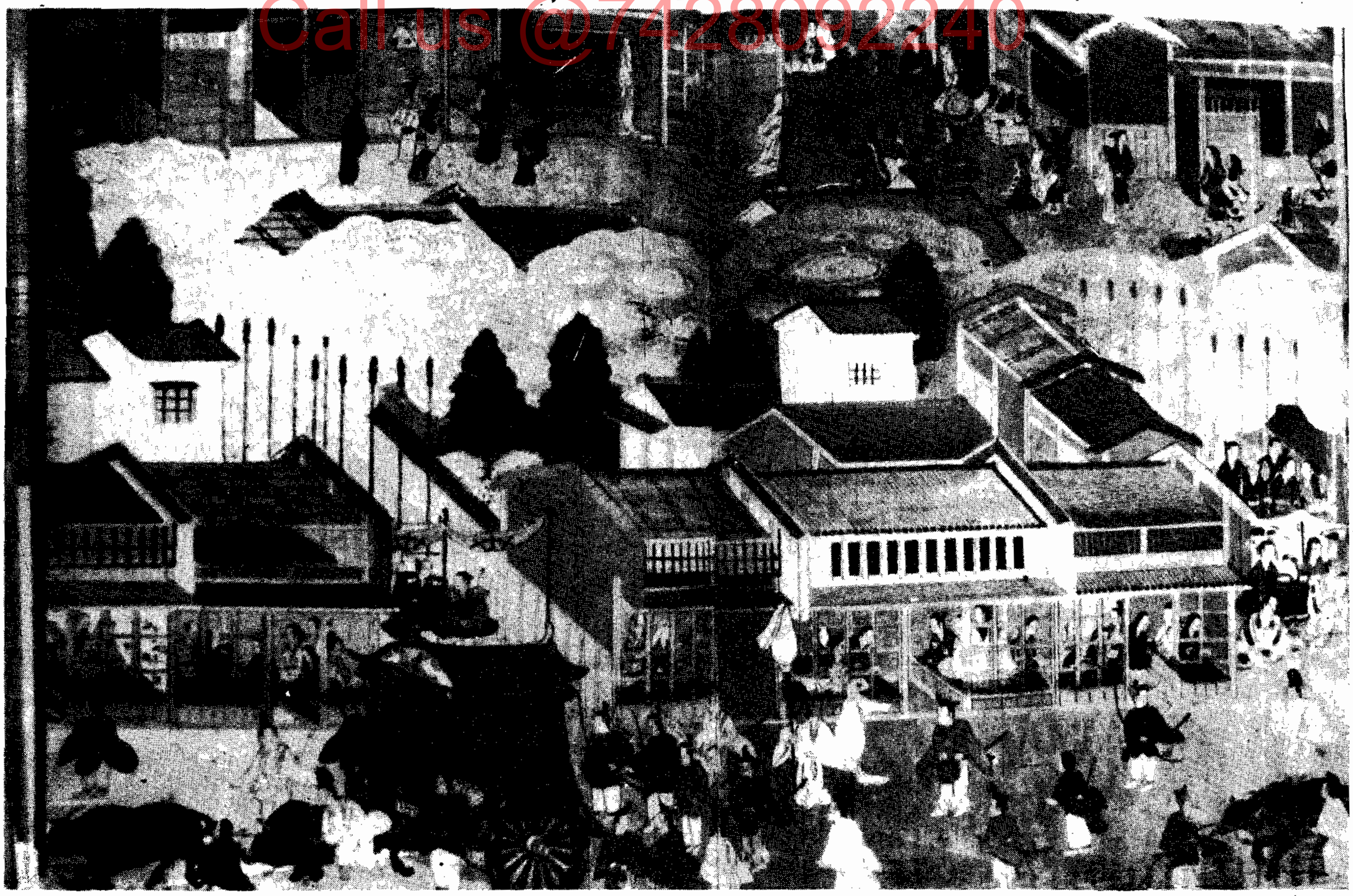

12. क्योटो में जीवन (फूजीवारा मित्सूताका द्वारा बनाया गया एक अठारहवीं शताब्दी का रंग-चित्र)

13. एक रंग-चित्र जिसमे जापान के न्यायालय का चित्रण है

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

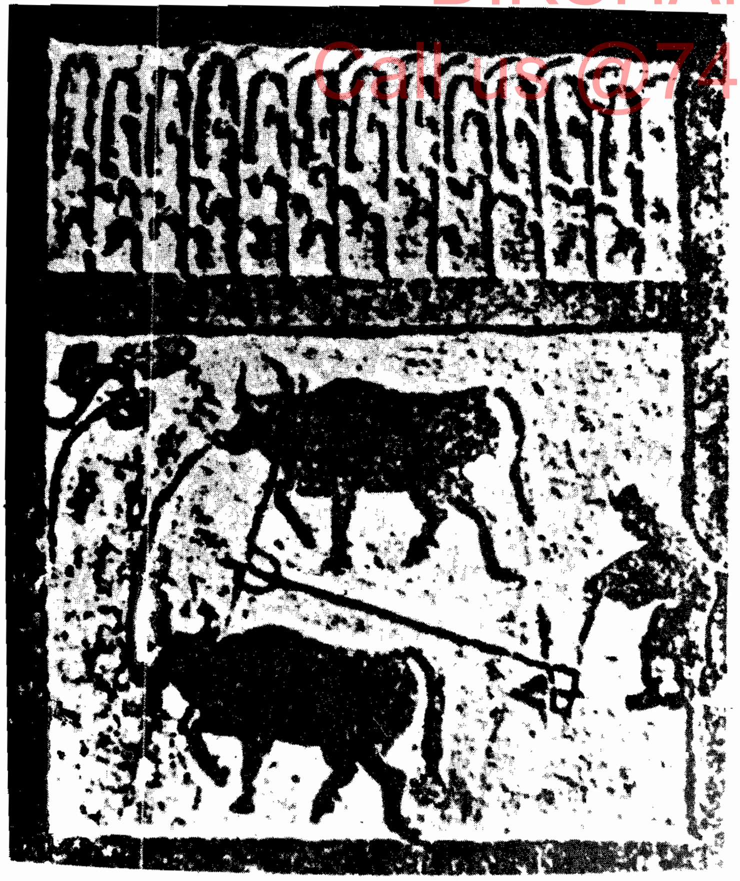

14. चीन में हान काल के पत्थर पर बनाए गए भित्तिचित्र : बैल द्वारा खीचे गए हल से भूमि का जोतना

15. अनाज रखने का बर्तन (हान काल चीन)

अ) चावल की भूसी निकालना

16. कागज बनाना (हान काल चीन)

17. चीन में ताग काल की चिकनी मिट्टी की चित्रित लघु मूर्ति

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ब) अनाज को भूसी से अलग करना

स) अनाज को पीसना

18. गाइड टू फार्मिंग किताब (चीन) में से लिए गए दृश्य

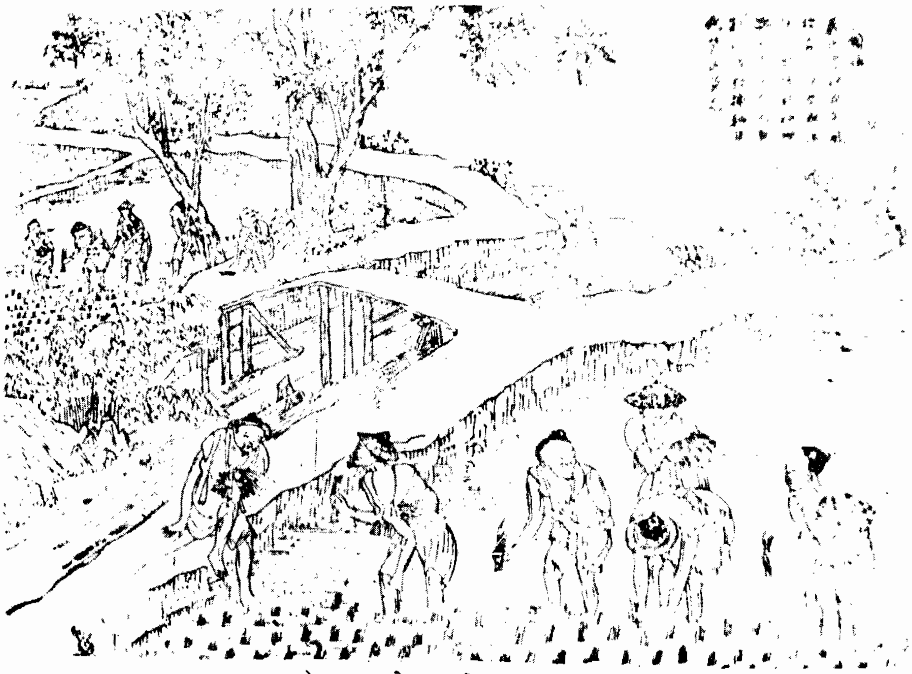

ब) चावल के अंकुरों का प्रतिरोपण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अ) खेतों की सिंचाई

स) फसल काटना

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

द) रेशम के कीड़े पालना

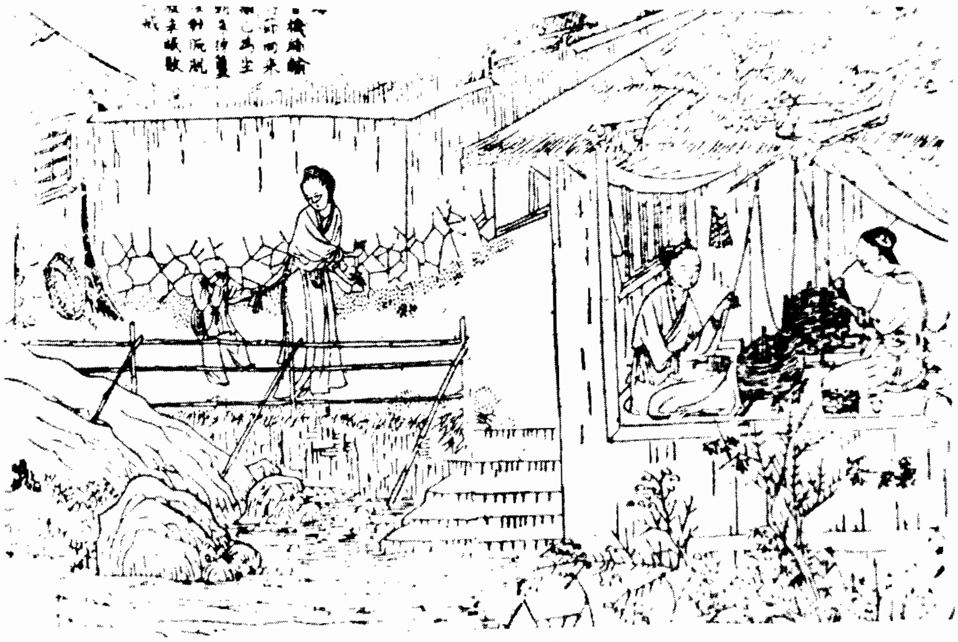

य) रेशम को चरखी पर लपेटना

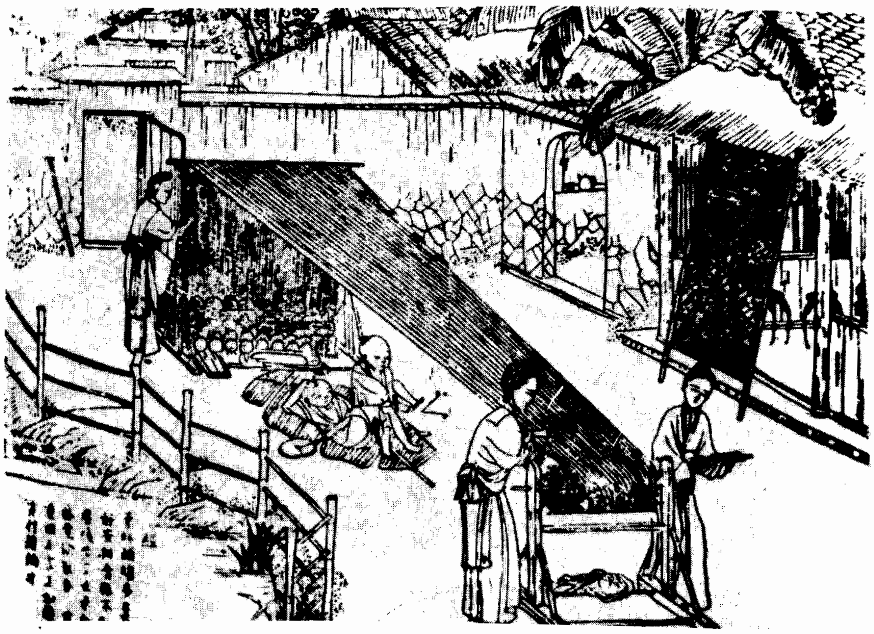

फ) रेशम को लपेटना

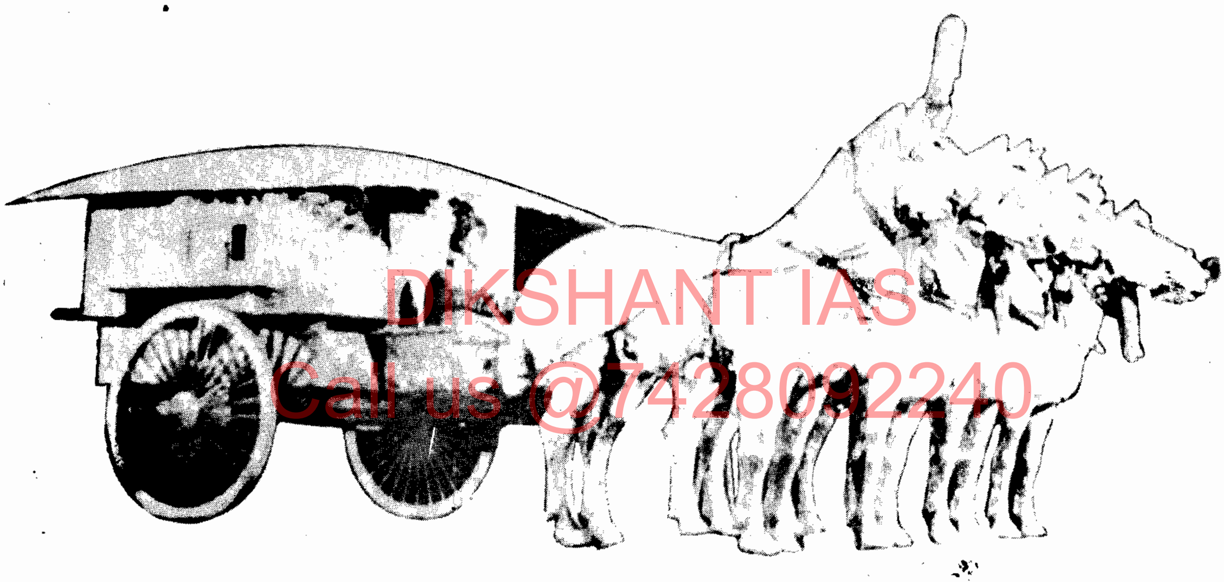

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19. चिन वंश का कांस्य रथ (चीन)

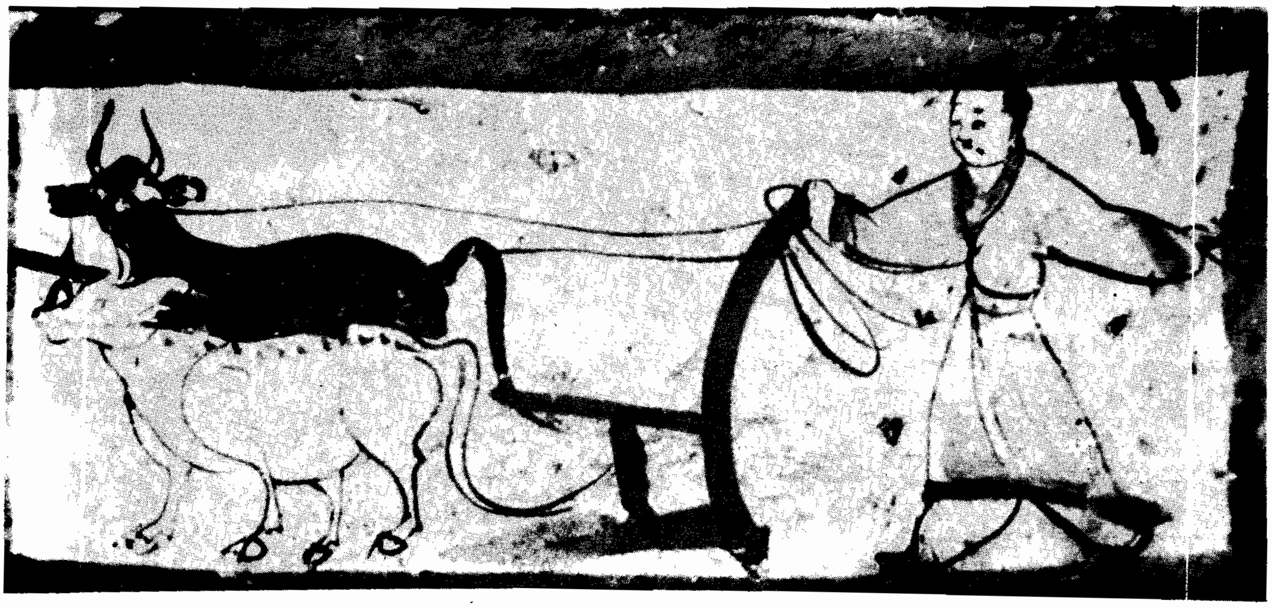

20. भूमि को जोतना (वी-जिन कालीन चीन)

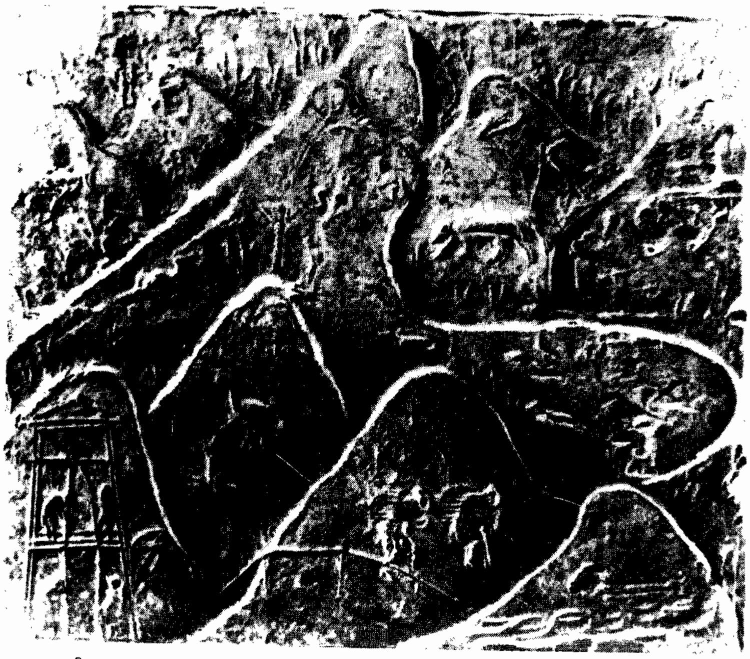

21. ईट पर बना नमक के खेत का एक रंग-चित्र (हान कालीन चीन)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

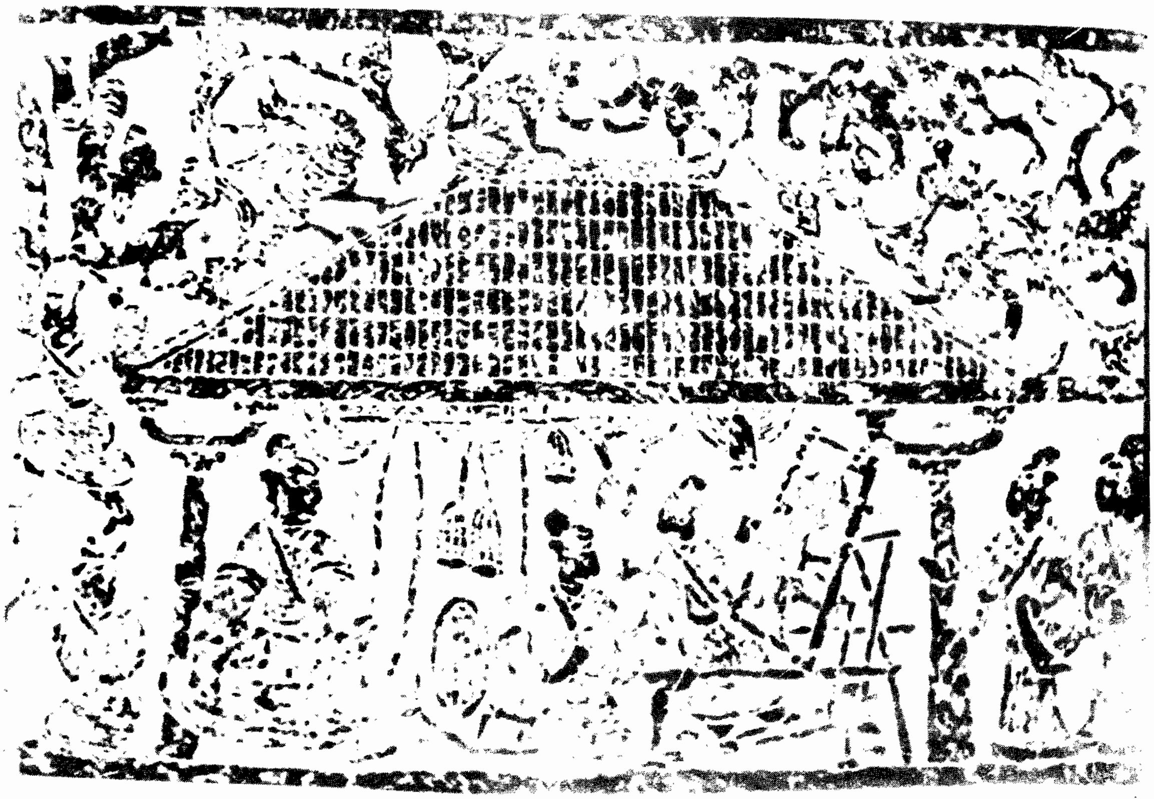

22. पत्थर पर बना भित्तिचित्र जिस पर बुनाई के दृश्य का चित्रण है (हान कालीन चीन)

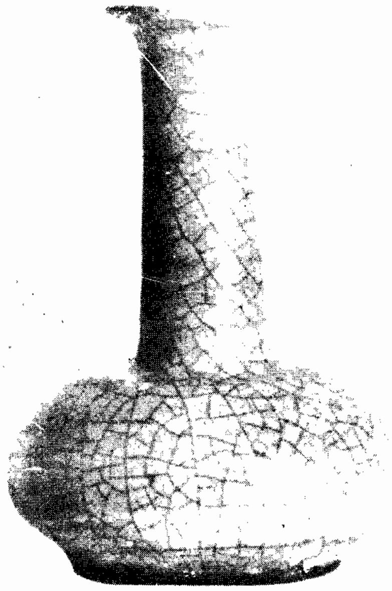

स) चमकने वाले चीनी मिट्टी के बर्तन ([illegible] कालीन)

अ) कलश (चिन कालीन)

य) चीनी मिट्टी का कलश (मिंग कालीन)

द) घड़ा जिस के सिरे पर काही रंग का अमरपक्षी बना है ([illegible] कालीन)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24. रेशम मार्ग : चाओ काल का भित्तिचित्र जिसमे व्यापारियों के विश्राम करने तथा घोड़ों तथा ऊटों को पिलाने का चित्रण है।

25. अ) चीन में सुग काल का समय बताने वाला यत्र।

यह यंत्र पानी की शक्ति से चलाया जाता

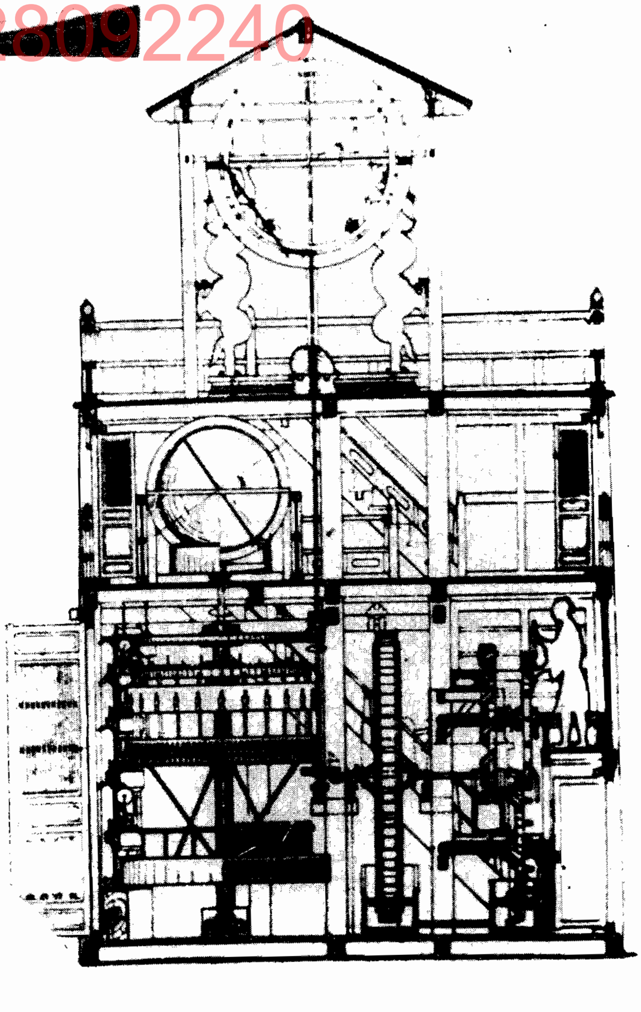

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

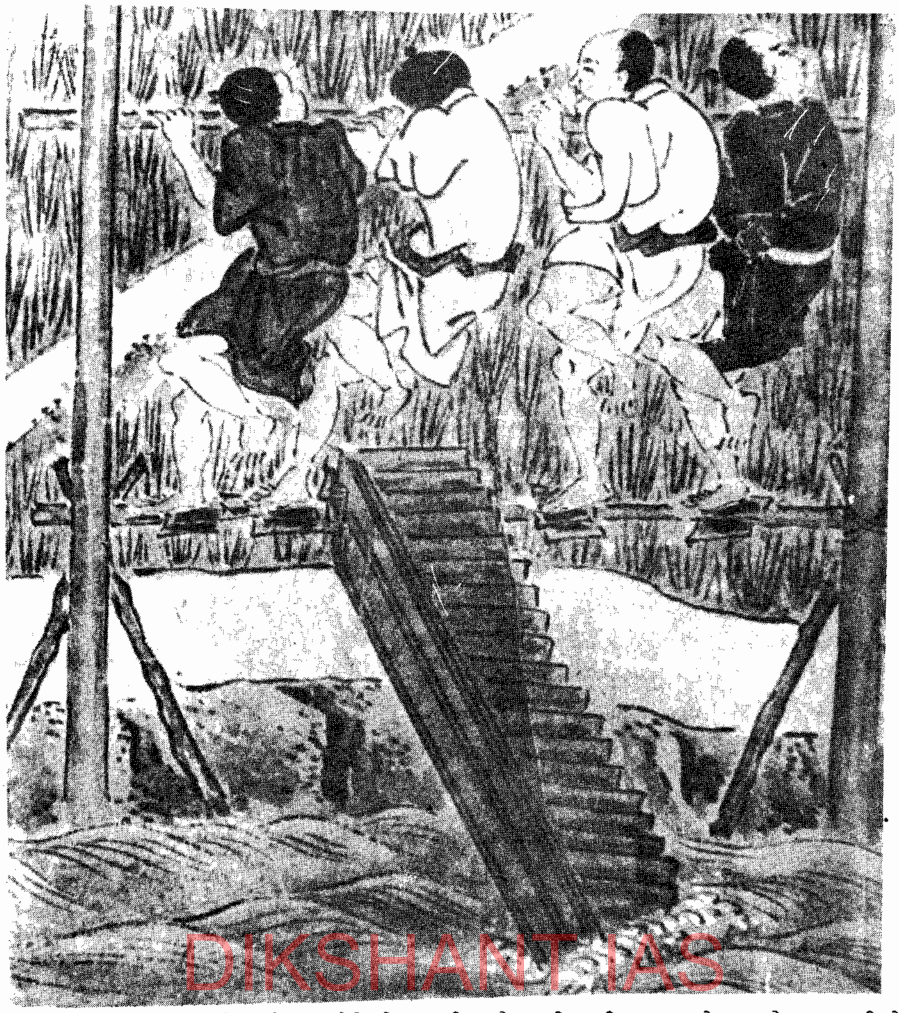

DIKSHANT IAS

26. धान को सींचने के लिए किसान पैरों से चलाई जाने वाली मशीन का प्रयोग करते हुए पानी के स्तर को बढ़ाते हैं (मूरोमाची काल, जापान)

Call us @7428092240

27. किसानों द्वारा खेत तैयार किए जाना (मूरोमाची काल)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

28 धान का प्रतिरोपण करती औरतें (मूरोमाची काल)

29. चावल की भूसी को निकालती औरतें (मूरोमाची काल)

30. सबसे अधिक सम्मानित कारीगर (जापान)—तलवार बनाने वाला

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

31. शोगुनेट की खान में सोने की सफाई (तोकुगावा जापान)

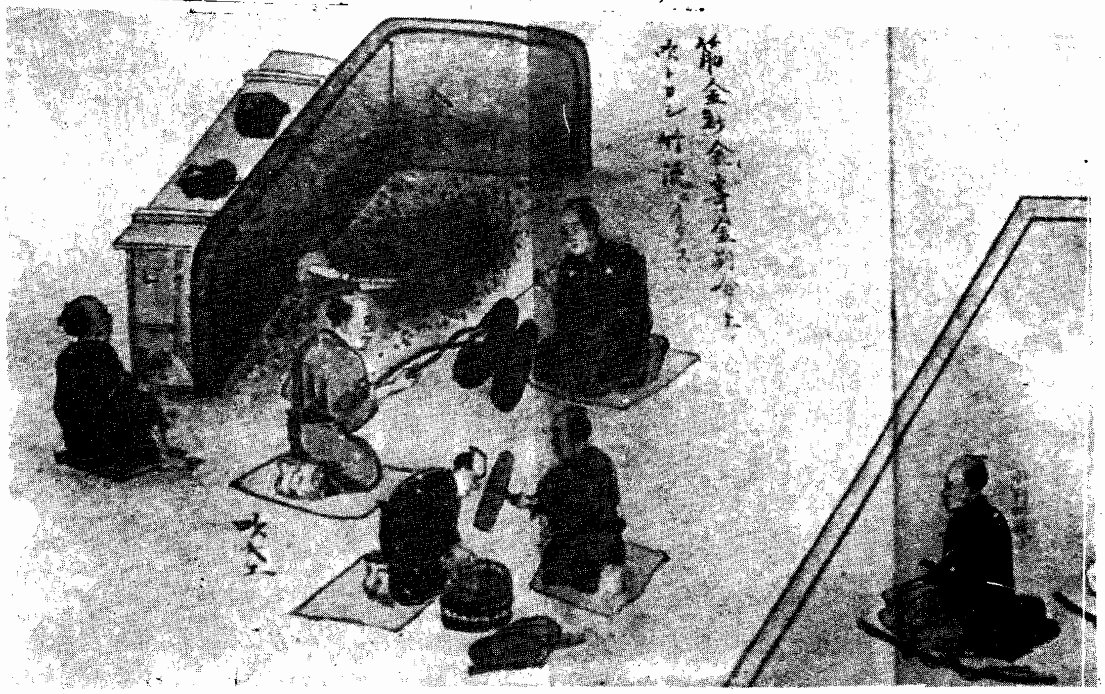

32. सोने के सिल बनते हुए (तोकुगावा जापान)

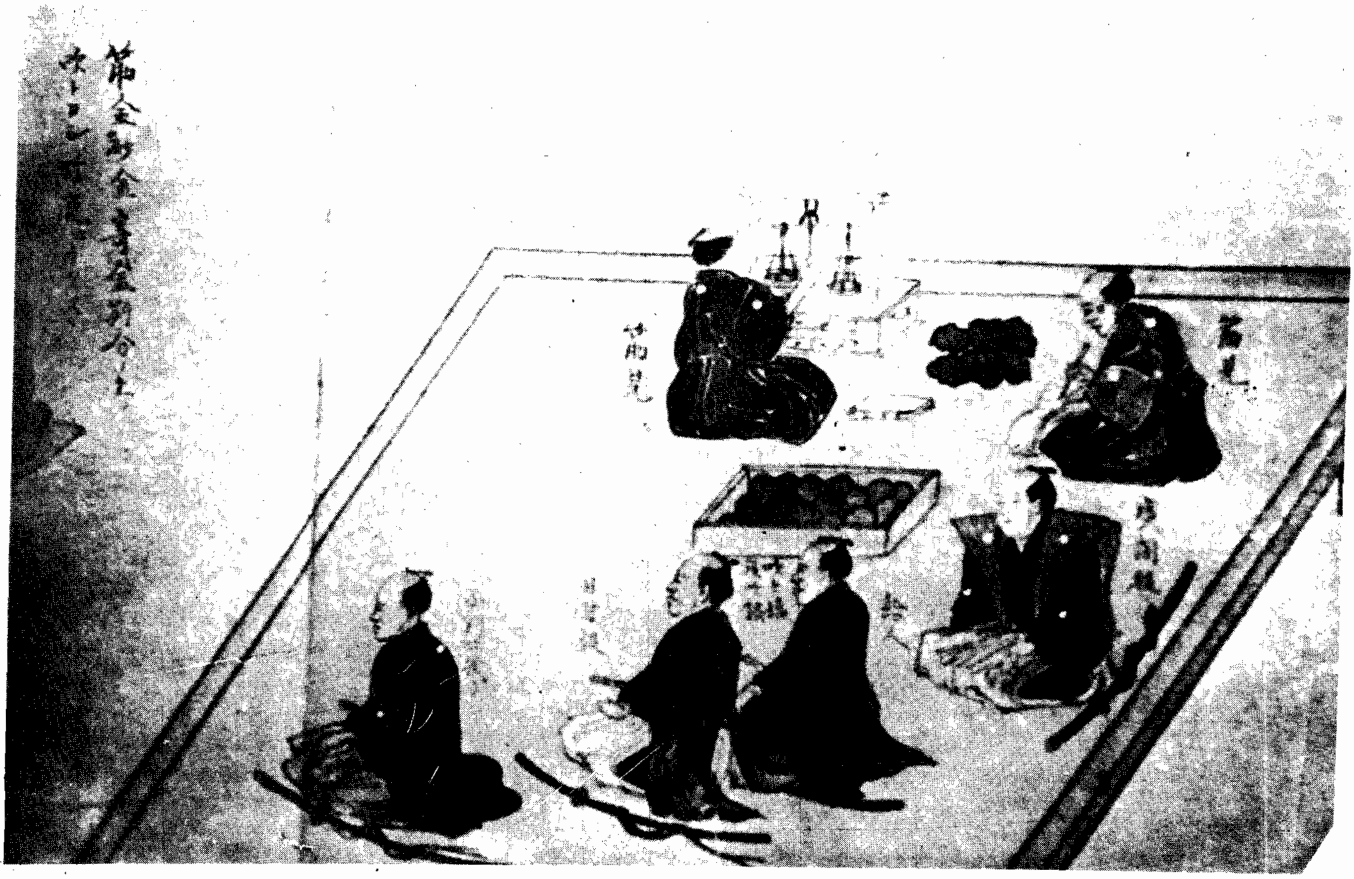

33. ओ-बान तथा को-बान के नाम से जाने जाने वाले सोने के मुहर लगाए गए तथा वज़न किए गए सिक्के

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

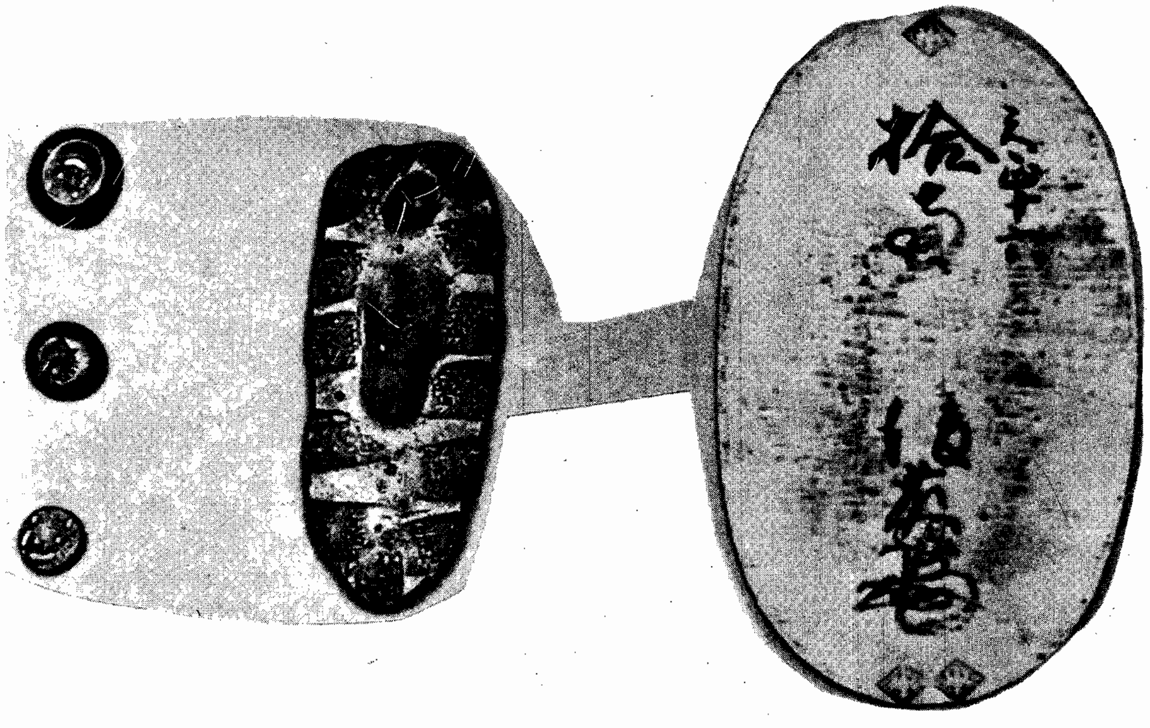

34. सोने तथा चांदी के सिक्के (जापान)

41. हीरा सूत्र (ताग काल), एक पृष्ठ तथा चित्र

佛說是經已長老須菩提及諸比丘比丘尼優
婆塞優婆夷一切世間天人阿修羅聞佛所說
皆大歡喜信受奉行

金剛般若波羅蜜經

真言

那謨婆伽跋帝 鉢囉若 鉢羅蜜多曳
唵 伊利底 伊室利 輸盧馱 毗舍耶 毗舍耶
莎婆訶

咸通九年四月十五日王玠為 二親敬造普施

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

37. इडो में इचीगोया ड्राई (सूखे) सामान का भण्डार, 1673 (जापान)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

38. ताग काल की बौद्ध प्रतिमाएँ (चीन)

DIKSHANT IAS

39. तांग काल के स्त्री बोधिसत्व

Call us @7428092240

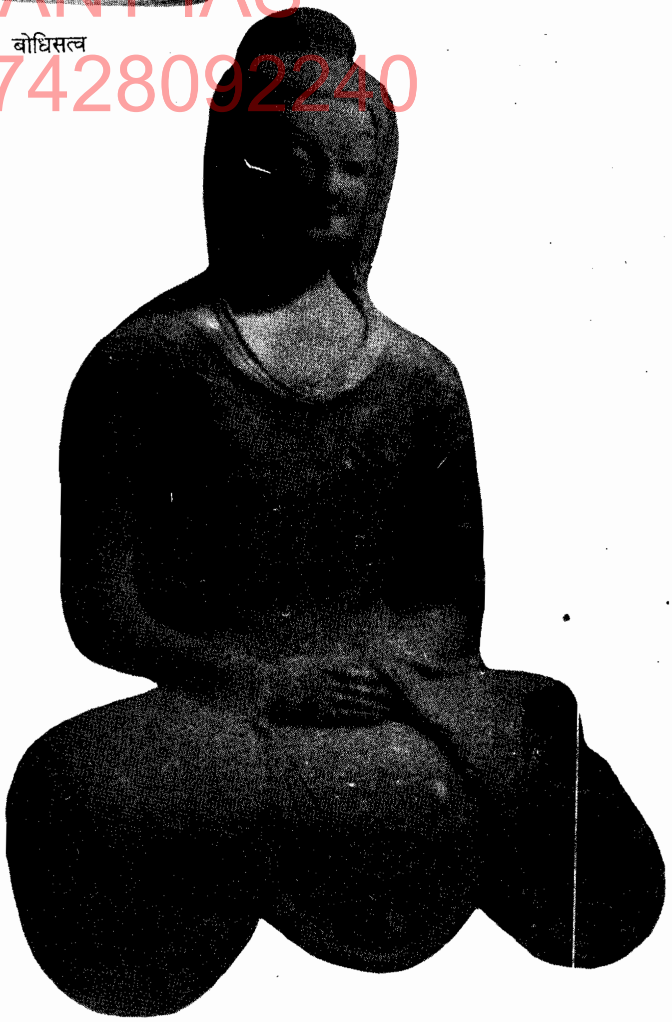

40. चीन में उत्तरी वी वंश काल की बौद्ध प्रतिमाएँ

35. बंदूक बनाने वालों की दुकान (क्योटो जापान)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

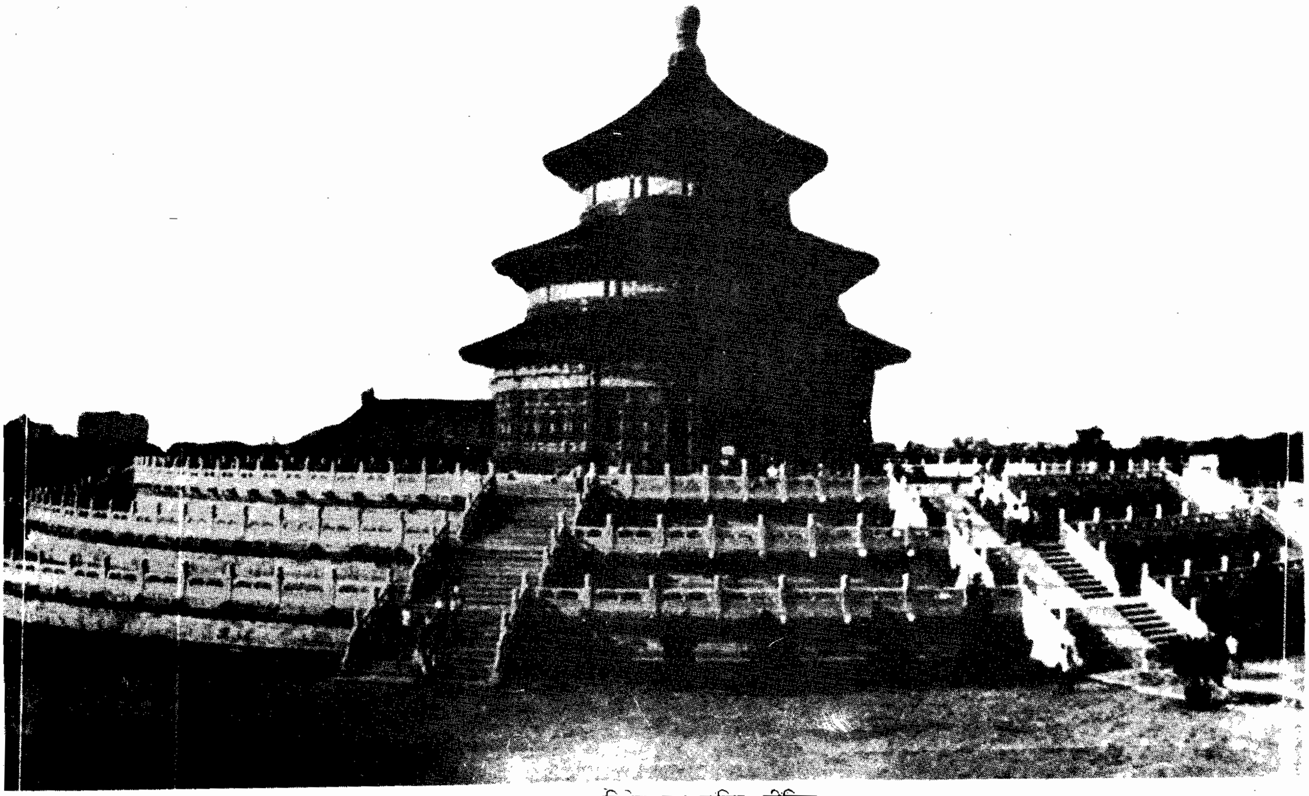

42. तियेन का मंदिर, पीकिंग

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

43. ताओ वाद के प्रचारक

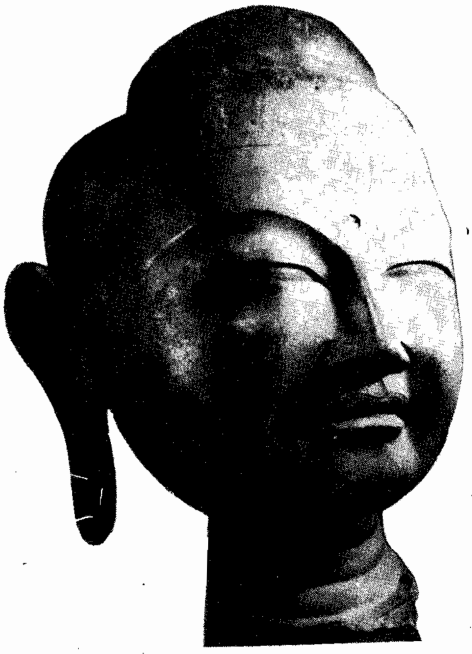

44. यक्षी नयोराई का सिर (नारा कालीन जापान)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

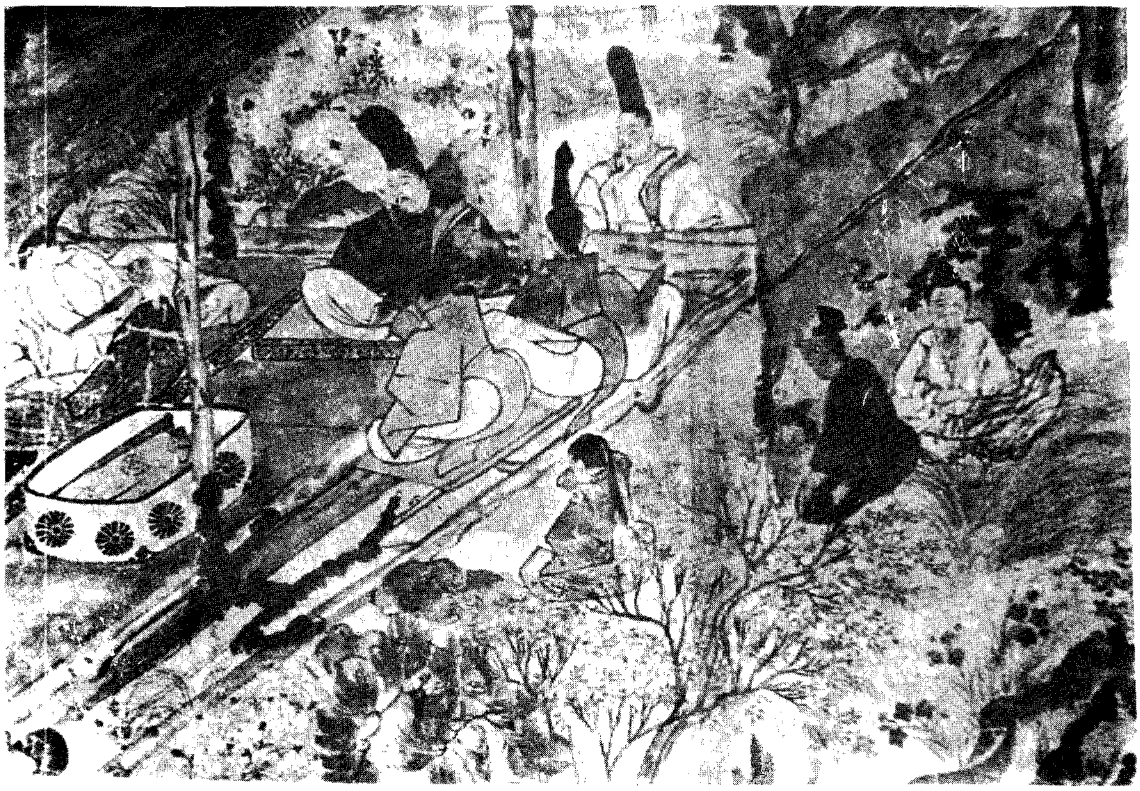

47. तेरहवीं शताब्दी की सूची जिसमें विद्वान सूगूवारा (845-903 ई.) के जीवन का चित्रण है (जापान)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

48. ताको मानदारा—बौद्ध देवताओं (जापान) की एक सुस्पष्ट श्रेणीबद्ध सारणी

49. जानवरों के व्यंग्यचित्र की सूची जिसमें इंसानों पर व्यंग्य किया गया है (जापान)

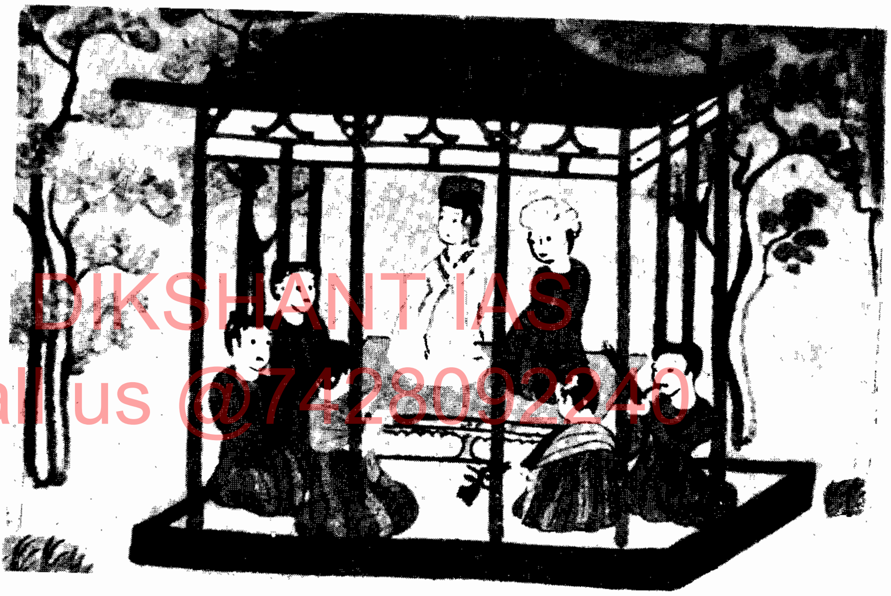

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अ) अपनी पत्नी के साथ बैठे गौतम

ब) बीमार आदमी को देखते हुए गौतम

स) एक प्रवीण तीरन्दाज के रूप में गौतम

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

द) गौतम एक कुश्ती का अभ्यास करते हुए नौजवान के रूप मे

51. क्योटो (जापान) में सत्रहवीं शताब्दी की एक खिलौनों की दुकान

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

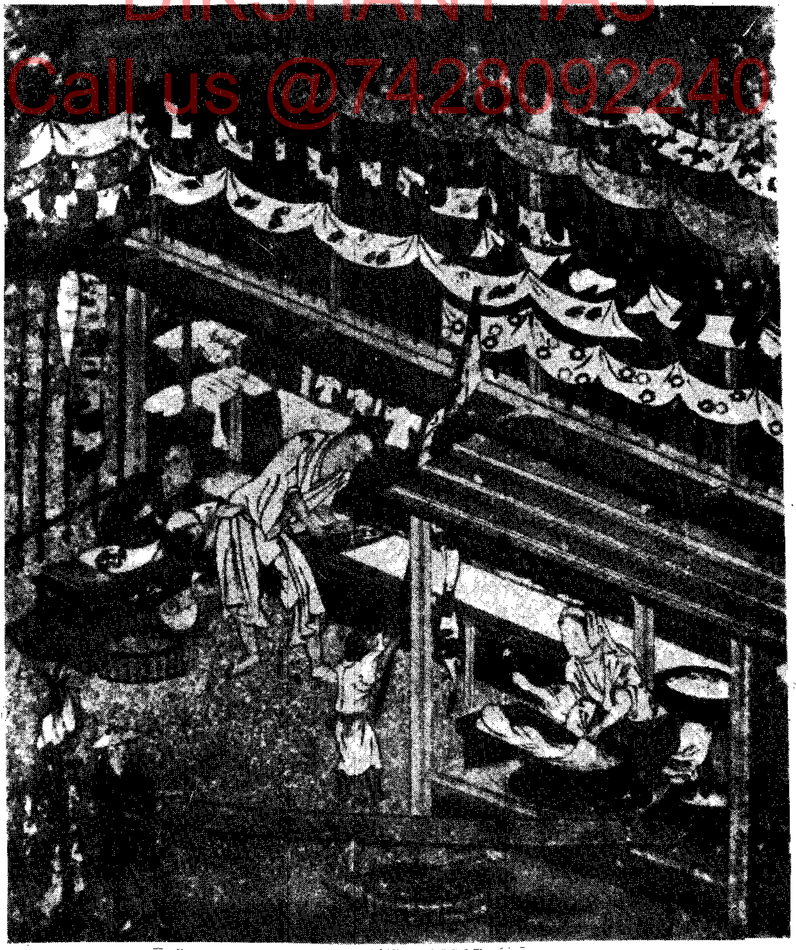

सत्रहवीं शताब्दी में जापान में व्यवसायों का चित्रण करते दो

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

53. जापान में चाय शिष्टाचार

54. जापान में शहरी संस्कृति : एक काबूकी नाटक

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

55. क्योटो मे सड़क का एक दृश्य

इकाई 6 चीन में अफ़ीम युद्ध

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 पृष्ठभूमि
   6.2.1 पारंपरिक चीन के विदेशों से संबंध की कुछ विशेषताएं
   6.2.2 चीन और पश्चिमी देशों के बीच शुरुआती संपर्क और कैंटन व्यवस्था
   6.2.3 अफीम का व्यापार
6.3 पहला अफीम युद्ध और नानकिंग की संधि
6.4 पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति पर चीन की प्रतिक्रिया
   6.4.1 ढुलमुल सरकारी नीति
   6.4.2 चीनी जनता का प्रतिरोध
6.5 दूसरा अफीम युद्ध और त्येनसिन की संधि
6.6 अफीम युद्धों की परस्पर विरोधी विवेचनाएं
6.7 सारांश
6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई का उद्देश्य चीन में अफीम युद्धों की नाटकीय घटनाओं (1840-42 और 1858-60) के बारे में आपको जानकारी देना और इन घटनाओं को 19वीं शताब्दी में चीन तथा पश्चिमी देशों के बीच विकसित होने वाले संबंधों के संदर्भ में रखकर देखना है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अफीम युद्धों की पृष्ठभूमि और उनकी मुख्य घटनाओं के बारे में जान सकेंगे,
- इस दौर में चीन में पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति पर चीन की प्रतिक्रिया को समझ सकेंगे, और
- इन युद्धों की प्रकृति और प्रभाव का, तथा आधुनिक चीन के इतिहास में इनके महत्व का आकलन कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

अफीम युद्ध चीन और आधुनिक पश्चिमी देशों के बीच पहले बड़े सशस्त्र टकराव के प्रतीक हैं। लेकिन, इससे भी अधिक वे चीनी इतिहास का एक महत्वपूर्ण मोड़ थे। यह इसलिए, क्योंकि इन युद्धों ने चीनी साम्राज्य की सैनिक, प्रौद्योगिक और राजनीतिक कमज़ोरियों की कलई खोल कर रख दी। इन युद्धों के कारण चीन के पश्चिमी देशों के साथ संबंधों में ऐसे विकास आए कि पश्चिमी देशों ने अपनी श्रेष्ठ सैनिक शक्ति का इस्तेमाल करके चीनी साम्राज्य से एक के बाद एक कई रियायतें ले लीं और चीन में अपने हितों को सुदृढ़ कर उन्हें बढ़ा भी लिया। इसके अलावा, उन्होंने चीनी साम्राज्य के टूटने की प्रक्रिया को और भी तेज कर दिया। उन्होंने सुधार, आधुनिकीकरण और राष्ट्रवाद की ताकतों को बढ़ावा दिया, जिन्होंने एक नए चीन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में, सभी विद्वान समान रूप से आधुनिक चीनी इतिहास की शुरुआत को अफीम युद्धों के दौर से मानते हैं। इन सभी कारणों से, चीनी इतिहास के किसी भी विद्यार्थी के लिए अफीम युद्धों के बारे में जानना महत्वपूर्ण हो जाता है। आगामी अनुच्छेदों में इन युद्धों से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है।

6.2 पृष्ठभूमि

अफीम युद्धों को ठीक से समझने के लिए हमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालनी होगी।

6.2.1 पारंपरिक चीन के विदेशों से संबंध की कुछ विशेषताएं

चीनी साम्राज्य के बाहरी संबंधों और पारंपरिक चीन के विश्व के प्रति दृष्टिकोण के बारे में इस पाठ्यक्रम के खंड 1 की इकाई 2 में पहले ही समझाया जा चुका है। फिर भी, अफीम युद्धों के संदर्भ को समझने के लिए इनमें से कुछ के बारे में एक बार फिर चर्चा कर लेना महत्वपूर्ण है।

पारंपरिक चीन की विदेश संबंधों की व्यवस्था को दो महत्वपूर्ण कारकों ने आकार दिया। इनमें से एक था – पूर्वी एशिया में चीनी साम्राज्य की महत्वपूर्ण स्थिति – इसका विशाल आकार, संपदा, ताकत, ऊंचा सांस्कृतिक स्तर तथा अधिकांश भौतिक मूल्यों में बुनियादी आत्म-निर्भरता। दूसरा कारक था चीन की उत्तरी और पश्चिमी सीमाओं पर हर समय खानाबदोश और अर्ध-खानाबदोश लोगों की ओर से सैनिक खतरे का बना रहना। इन दोनों कारकों ने मिलकर पारंपरिक चीन के विदेशों से संबंधों और विश्व के प्रति उसके दृष्टिकोण की कुछ परस्पर विरोधी दिखने वाली विशेषताओं को जन्म दिया। एक ओर, इसने आत्म-संतोष, आत्म-विश्वास तथा अभिमान को जन्म दिया, जिसके कारण चीनी दूसरी कौमों और राज्यों के प्रति अशिष्टतापूर्ण रवैया रखते थे (जिसे आधुनिक विद्वान कभी-कभी "साइनोसेंट्रिज्म" – चीनी केंद्रीयता कह देते हैं)। दूसरी ओर, इसने विदेशी कौमों और देशों के साथ चीनी साम्राज्य के वास्तविक व्यवहारों में एक हठी व्यावहारिकता और यथार्थवाद को, और असुरक्षा के एक निश्चित बोध को जन्म दिया। इसलिए पारंपरिक चीन के विदेशी संबंधों की व्यवस्था एक अत्यंत जटिल और विषम तंत्र था, जिसमें सांस्कृतिक, सैनिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अपने 2000 वर्षों से भी अधिक के इतिहास में चीनी साम्राज्य के दूसरे देशों के साथ संबंधों में कई उतार-चढ़ाव आए। शांतिपूर्ण आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संबंधों के लंबे दौर रहे, जिनमें चीनी साम्राज्य को क्षेत्र में अपनी सर्वोच्चता के खिलाफ किसी बड़े बाहरी खतरे या चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा। वहीं सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली पड़ोसी कौमों की ओर से बार-बार हमले हुए, जिनके परिणामस्वरूप उन्होंने कभी-कभी पूरे चीन या उसके कुछ हिस्से पर कब्जा कर लिया। फिर भी, कुछ शताब्दियों के विकास के बाद, दूसरे राज्यों और कौमों के साथ नियमित शांतिपूर्ण संपर्क के अत्यधिक स्पष्ट और व्यवस्थित तरीके वजूद में आए।

आज हम "घरेलू या अंदरूनी मामलों" और "बाहरी अथवा विदेशी मामलों" को जिस तरह से अलग-अलग रखकर समझते हैं, पारंपरिक चीनी सिद्धांत में इस तरह का कोई स्पष्ट अंतर नहीं था। चीन का सम्राट "स्वर्ग के तले सभी प्राणियों" का शासक माना जाता था। इसलिए, चीनी साम्राज्य की बाहरी सीमाएं स्पष्ट रूप से अंकित नहीं थीं। फिर भी, इतिहास में भी यह मान्यता थी कि साम्राज्य के सीमांचलों पर तथा कथित "बर्बर" लोग रहते थे, जिनके सांस्कृतिक अथवा सामाजिक तौर-तरीके चीनियों से भिन्न थे, और उनके अपने शासक तथा शासन-तंत्र थे। इस "बर्बर" शब्द के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। विशेष तौर पर आधुनिक पश्चिम देशों के विद्वानों और अधिकारियों ने इस शब्द की विवेचना गैर-चीनी कौमों के प्रति झूठी निंदा और बैर के एक रूप की तरह की है, और इसे गलत समझा है। फिर भी, चीनी अर्थ में "बर्बर" को इस तरह समझना अधिक उपयुक्त होगा कि ये वे लोग थे जो बस चीनियों से भिन्न थे, जो चीनियों के तौर-तरीकों को पूरी तौर पर नहीं मानते थे।

चीनी लोग इन विदेशी कौमों के साथ व्यवहार रखने के तरीके निकालने की आवश्यकता को मानते तो थे, लेकिन चीनी साम्राज्य के साथ संबंध बनाने की पहल इन कौमों की ओर से ही हुई, स्वयं चीनी साम्राज्य की ओर से नहीं। इसका अपवाद चीनी इतिहास के वे थोड़े से दौर (जैसे हान और तांग वंशों के दौर) थे जब चीन के शासकों ने प्रसार और विजय के महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों को शुरू किया। आम तौर पर, कई विदेशी कौमें और कई राज्यों के राजदूत:

- व्यापार के उद्देश्य से,
- सांस्कृतिक अथवा धार्मिक उद्देश्यों से; अथवा

- चीनी सम्राट की ओर से राजनीतिक मान्यता अथवा वैधता पाने के उद्देश्य से चीन में आए।

सीमा व्यापार करने वालों और तीर्थ यात्रियों जैसे लोगों के मामलों को आम तौर पर उन क्षेत्रों के स्थानीय अधिकारी देखते थे जिन क्षेत्रों में ये लोग जाते थे। सम्राट के दरबार में आने वाले सरकारी राजदूतों के मामले को अनुष्ठान परिषद देखती थी, जिसका काम प्रोटोकोल संबंधी मामलों को देखना था। लेकिन, यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों तक चीन में विदेशी संबंधों के लिए कोई केंद्रीय विभाग या मंत्रालय नहीं था।

यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि चीनी साम्राज्य का संपर्क और आदान-प्रदान जिन कौमों और राज्यों से होता था, उनसे व्यवहार के लिए वह व्यापक किस्म के नियमों तथा रीतियों से काम लेता था, फिर भी, मुख्य तौर पर 19वीं शताब्दी तथा उसके बाद के पश्चिमी पर्यवेक्षकों और विद्वानों के कारण, विदेशी संबंधों की पारंपरिक चीनी व्यवस्था को एक रूढ़ व्यवस्था के रूप में चित्रित किया गया है जिसकी पहचान मुख्य तौर पर दो विशेषताओं से होती है – नज़राना देना, और "कोटो" या सिजदा करना। चीनी लोग नज़राना उन उपहारों को कहते थे जो सरकारी विदेशी प्रतिनिधि सम्राट को देते थे, और "कोटो" वह आनुष्ठानिक सिजदा था जिसे सम्राट के सामने करने की उनसे अपेक्षा की जाती थी। यह सही है कि नज़राना और सिजदा दोनों की व्यवस्था चीनी सम्राट की सर्वोच्चता पर ज़ोर देने के लिए की गई थी, और यह सर्वोच्चता, अधिकांश पश्चिमी ताकतों और उनके राजदूतों को मान्य नहीं थी। लेकिन, चीनी इस बात पर अड़ते नहीं थे कि चीन में आने वाले सभी विदेशी नज़राना दें और सिजदा करें ही, वे तो केवल उन राजदूतों की ओर से ऐसी औपचारिकताओं पर ज़ोर देते थे जो यह चाहते थे कि स्वयं सम्राट उनका स्वागत करें। उन्होंने उन तमाम लोगों के लिए इसे शर्त नहीं बनाया था, जो व्यापार अथवा अन्य कामों में हिस्सा लेना चाहते थे। कैंटन में व्यापार करने वाले अरबों के साथ, और 17वीं शताब्दी से पीकिंग में रह रहे रूसियों के साथ, होने वाला व्यवहार इस तरह के मामलों में चीनियों की लोचदार नीति के उदाहरण हैं। ब्रिटेन और दूसरी पश्चिमी ताकतों ने जो 19वीं शताब्दी के मध्य में चीन से लड़ाई की और इसे विदेशों के साथ अपने व्यवहार को बदलने के लिए बाध्य किया, उसका कारण नज़राना या सिजदा इतना नहीं थे, जितना दूसरे आवश्यक आर्थिक और राजनीतिक मामले।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.2.2 चीन और पश्चिमी देशों के बीच शुरुआती संपर्क और कैंटन व्यवस्था

सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में पुर्तगालियों के दक्षिणी चीनी समुद्री तट पर पहुँचने के बाद से ही चीन और यूरोप के बीच समुद्री व्यापार का प्रचलन हो गया था। पूरी एक शताब्दी के बाद, पुर्तगालियों के साथ ब्रिटिश और डच भी मिल गए, जो बड़ी समुद्री शक्तियों के रूप में उभर रहे थे। चीन के साथ ब्रिटिश या अंग्रेजों का व्यापार ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार था।

17वीं शताब्दी के मध्य से 18वीं शताब्दी के मध्य के दौर में इस समुद्री व्यापार में कई उतार-चढ़ाव आए। पहले तो, इसका कारण चीन के ही अंदर होने वाली अंदरूनी राजनीतिक घटनाएं थीं। 1644 में, तीन शताब्दियों से शासन कर रहे मिंग वंश का तख्ता पलट दिया गया और उत्तर-पूर्वी सीमाओं के पार से आने वाली एक गैर-चीनी कौम मांचू ने उत्तरी चीन पर अधिकार जमा लिया। मांचुओं ने सफलतापूर्वक अपने चिंग वंश की स्थापना की और पेकिंग को अपनी राजधानी बना लिया। यह सब उन्होंने बहुत तेजी के साथ किया। लेकिन पूरे चीन पर अपना पूर्ण अधिपत्य जमाने में उन्हें लगभग दो दशकों तक खूनी गृह युद्ध से निपटना पड़ा। इन नए शासकों का विरोध मुख्य तौर पर दक्षिणी और मध्य चीन के तटीय प्रांतों और ताइवान द्वीप की ओर से हो रहा था। इसलिए इस दौर में तटीय व्यापार का गड़बड़ा जाना स्वाभाविक ही था। दरअसल, मांचुओं ने 1661-1669 के बीच आठ साल के दौर में दक्षिणी-मध्य तट की 25 किलोमीटर चौड़ी पट्टे पर रहने वाली पूरी की पूरी आबादी को वहाँ से बेदखल कर देने का असाधारण कदम उठाया। इन उपायों को हटा लिए जाने और चिंग वंश का विरोध समाप्त हो जाने के बाद भी चिंग शासकों ने समुद्री गतिविधियों पर, और विशेष तौर पर विदेशियों के साथ स्थानीय चीनवासियों के किसी भी व्यवहार पर, संदेह करना नहीं छोड़ा। वे समुद्र को डाकुओं और तस्करों की खोह भी मानते थे और उनका ऐसा सोचना गलत भी नहीं था। समुद्र की ओर से संदेह डर के बावजूद, मांचुओं ने मज़बूत नौसेना न तो बनाई और न ही बरकरार रखी। उन्होंने उपद्रवियों को समुद्र से दूर रखने तथा तटीय

क्षेत्रों में व्यवस्था बनाए रखने के लिए मुख्य तौर पर तटीय किलेबंदियों और दूसरे सुरक्षात्मक उपायों पर निर्भर किया।

लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं कि चिंग शासक यूरोपियों के साथ नियंत्रित व्यापार और दूसरे संबंधों के पक्ष में नहीं थे। विदेशियों के साथ व्यापार के लिए चार बंदरगाहों – कैंटन, अमोई, निंगपो और कुआन-युन को मुक्त रखा गया था। कांग-शाई सम्राट के राज्यकाल में यूरोपियों और विशेष तौर पर जेसुइटों, का स्वागत किया गया। लेकिन फिर 1718 में रोम के पोप के साथ एक कड़वे मतभेद के बाद यूरोपियों के प्रति चिंग सरकार के रवैये में नाटकीय बदलाव आ गया। उन्हें कैंटन के बंदरगाह से भी निकाल दिया गया, जहाँ वे एक बहुत बड़ी तादाद में रह रहे थे। उन्हें व्यापार करते रहने की अनुमति तो दी गई, लेकिन उसके बाद उन्हें केवल मकाओ द्वीप में ही रहने की छूट दी गई। कमोडोर ऐनसन और जेम्स फ्लिंट जैसे कुछ अंग्रेज़ व्यापारियों और साहसिक यात्रियों ने बल प्रयोग के माध्यम से इन प्रतिबंधों को चुनौती देने की कोशिश की, लेकिन उससे कोई बात नहीं बनी। विदेशियों की ओर से इस तरह की शरारत के खिलाफ चिंग सरकार ने तीखी प्रतिक्रिया की। और 1757 में एक कैंटन बंदरगाह को छोड़कर बाकी सारे बंदरगाहों को विदेशियों के लिए बंद कर दिया। इस तरह "कैंटन व्यवस्था" की स्थापना हुई, जो अफीम युद्धों तक चीन और पश्चिमी देशों के बीच व्यापारिक संबंध का एकमात्र मान्य स्वरूप बनी रही।

कैंटन व्यवस्था से आशय उन तमाम व्यापारिक प्रबंधों से है जो 1757 और 1842 के बीच पश्चिमी देशों के लिए उपलब्ध थे। विदेशी व्यापारियों ने कैंटन में व्यापारिक प्रतिष्ठान बनाकर रखे, जिन्हें गोदामों के तौर पर भी इस्तेमान किया जाता था (इन्हें "फैक्ट्री" या कारखाना कहा जाता था) वे लोग साल के अधिकांश समय मकाओ में रहते थे, लेकिन हर साल जब उनके देश से उनके जहाज़ आते तो ये व्यापारी पर्ल नदी के मुहाने से जहाज़ से कैंटन चले जाते थे, जहाँ वे अगस्त से मार्च तक के व्यापार के समय तक रहते थे। उन्हें अपने साथ अपने परिवारों को लाने की अनुमति नहीं थी, और वे व्यापार के ठिकाने के अंदर ही आ जा सकते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कैंटन में, पश्चिमी व्यापारियों के सभी व्यापारिक लेन-देन "को-हांग" के माध्यम से होते थे। "को-हांग" जाने-माने स्थानीय सौदागरों की एक समिति थी, जिसके व्यापार पर एकाधिकार को चिंग सरकार की मान्यता मिली हुई थी। इस सरकारी मान्यता के बदले में, हांग सौदागर व्यापार के तमाम प्रबंधों को देखते थे, विदेशी व्यापारियों को आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराते थे और उनके अच्छे व्यवहार की जमानत देते थे। वे मिलकर शाही सरकार के अधिकारियों के प्रति जिम्मेदार थे, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण थे लियांगक्वांग (जिसमें कैंटन आता था) का वाइसराय और समुद्री सीमा-शुल्क का अधीक्षक (जिसे "होप्पो" कहा जाता था); इनका काम कैंटन के व्यापार से राजस्व इकट्ठा करके उसे पीकिंग स्थित शाही सरकार के पास जमा कराना था।

पश्चिमी व्यापारियों को किसी भी कारण से सीधे शाही अधिकारियों से सपंर्क करने की छूट नहीं थी, लेकिन वे अपनी तमाम शिकायतों, निवेदनों आदि को हांग सौदागरों के ज़रिए संबंधित अधिकारी तक पहुँचा सकते थे। हांग सौदागरों के आलावा अगर वे और किसी चीनी के साथ सीधे कोई आदान-प्रदान करते थे, तो वे लोग थे जो उन्हें आवश्यक सेवाएं प्रदान करते थे – जैसे उनके घरेलू नौकर, भाषाविद् (दुभाषिए और रक्षक), और सबसे महत्त्वपूर्ण "कम्प्रेडर" लोग, जो चीनी ही होते थे और जिनका काम विदेशी कंपनियों के लिए व्यापार का स्थानीय पहलू संभालना था।

कैंटन व्यवस्था के प्रतिबंधी स्वरूप के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है :

- विदेशी व्यापारियों की गतिविधियों और आने-जाने की स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों के बारे में,
- विदेशी मूल्य पर लगाए गए करों और शुल्कों की कठोरता के बारे में,
- भ्रष्टाचार की सीमा के बारे में, आदि-आदि।

लेकिन इन शिकायतों को उनके उचित परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि कैंटन विदेशी व्यापार के लिए मुक्त रखा जाने वाला एकमात्र बंदरगाह था, फिर भी यह एक सुविकसित बंदरगाह था जिसमें व्यापार के संचालन के लिए आवश्यक तमाम तामझाम और सुविधाएं उपलब्ध थीं, और अंदरूनी हिस्सों के साथ आपूर्ति या वितरण और संचार के अच्छे माध्यम भी थे। विदेशी व्यापार के लिए जब दूसरे बंदरगाह खुले हुए थे (1757 से पहले), उस समय भी विदेशी व्यापारियों को ये बंदरगाह उपयक्तता की दृष्टि से कैंटन के आसपास

अफीम युद्धों के समय कैंटन

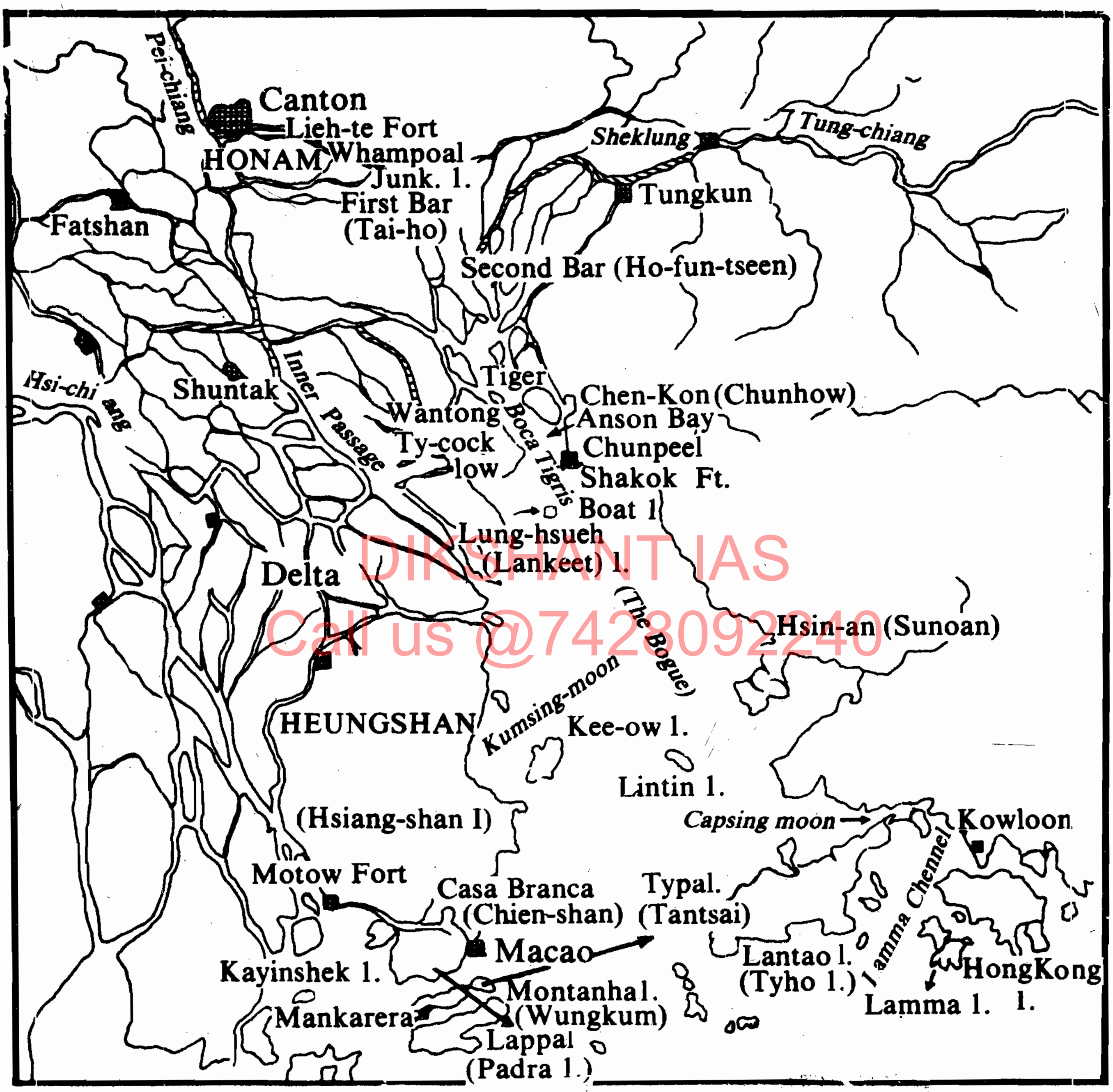

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कहीं भी टिकते नहीं दिखे थे, और उन्होंने अपनी सारी गतिविधियों को कैंटन के आसपास ही केंद्रित कर रखा था। इसके आलावा, चीनियों की ओर से व्यापार यद्यपि एक एकाधिकार वाला व्यापार था, यह भी नहीं भूलना चाहिए कि अंग्रेज़ों की ओर से भी, चीनी व्यापार में एक ही कंपनी का एकाधिकार था। चीन में ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार 1834 में जाकर ही समाप्त हुआ। इसी तरह, यूरोपियों के आने-जाने पर, चीनी अधिकारियों के साथ सीधे संपर्क करने की उनकी क्षमता आदि पर जो प्रतिबंध लगे थे, उन्हें हो सकता है लज्जाजनक माना जाता रहा हो, लेकिन वे व्यापार के संचालन में कोई उल्लेखनीय बाधा नहीं डाल पाए। चीनियों ने व्यापार पर जो विभिन्न शुल्क और उगाही लगाई, उनसे भी विदेशी कंपनियों को भारी मुनाफा कमाने से नहीं रोका जा सका और वे साल दर साल कैंटन में वापस आते रहे।

लेकिन फिर भी, एक बात थी जो सचमुच विदेशी व्यापारियों के लिए परेशानी का कारण थी : ऐसे बहुत कम सामान थे जिनकी मांग चीनियों में हो और जिन्हें वे दे सकें। पश्चिमी लोग तो चीन से भारी मात्रा में चाय, रेशम और दूसरी वस्तुएँ खरीदते थे, तथा उन्हें इनकी कीमत सोने तथा चांदी में चुकानी पड़ती थी। यह अनुमान लगाया जाता है कि ईस्ट इंडिया कंपनी के चीन जाने वाले जहाज़ों में 90 प्रतिशत अथवा उससे भी अधिक मुख्य तौर पर सोना होता था। लेकिन, 1820 के दशक के मध्य में इस स्थिति में नाटकीय बदलाव आने लगा, जब पश्चिमी व्यापारियों को एक ऐसी चीज़ हाथ लग गई, जिसकी मांग चीनियों में तेज़ी के साथ बढ़ती गई। वह चीज़ थी अफीम।

6.2.3 अफीम का व्यापार

पोस्त के फूल के मिलने वाले नशीले पदार्थ अफीम को सातवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में या आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में अरबों और तुर्कों ने चीन में प्रचलित किया था, तभी से चीनी इस नशीले पदार्थ को जानने लगे थे। प्रारंभ में तो इसका इस्तेमाल मुख्य तौर पर एक दवा या दर्द-शामक के रूप में होता था, लेकिन सत्रहवीं शताब्दी से चीनियों में नशे के लिए अफीम के धूम्रपान की आदत फैलने लगी। इस तरह से अफीम का सेवन करने से इसका सेवन करने वालों की शारीरिक और मानसिक स्थिति तेज़ी से बिगड़ने लगती थी। अफीम का धूम्रपान एक बुरी लत थी, यह व्यक्ति को तेज़ी से अपनी गिरफ्त में लेती थी ओर जिनको यह लत लग जाती थी, उन्हें अगर कुछ ही समय के लिए भी अफीम से वंचित रखा जाता था तो उन्हें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

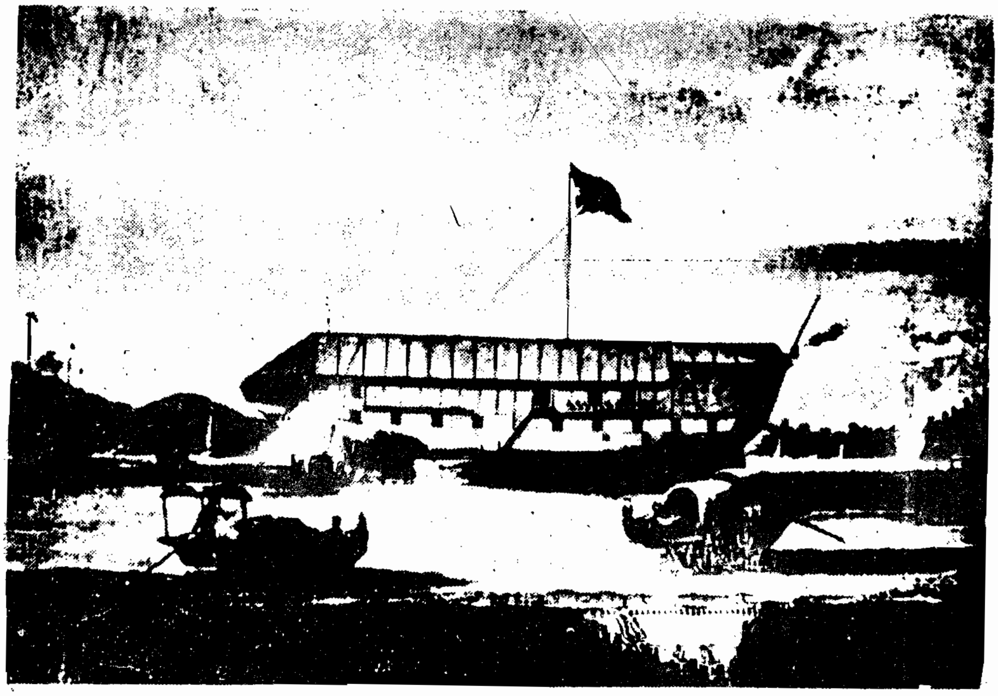

1. अफीम की तस्करी करने वाला जहाज

वास्तविक इलाज की आवश्यकता पड़ जाती थी। उनका जी मिचलाता था, बेचैनी महसूस होती थी, दर्द होता था, मांसपेशियों में अड़चन होती थी, ठंड महसूस होती थी, तड़क होती थी, नींद नहीं आती थी, आदि। लोगों में अफीम की आदत फैलने के साथ, शाही सरकार को इस ओर ध्यान देना ही पड़ा। 1729 में, इसके आयात और खेती पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया।

इन प्रतिबंधों के बावजूद, चीन में अफीम का आयात 18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और विशेष तौर पर 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में तेज़ी से बढ़ा। 1729 में तो अफीम का सालाना आयात 200 पेटियाँ था, जबकि 1767 में यह 1000 पेटियां हो गया। 1800 और 1820 के बीच यह संख्या 4,500 पेटियों तक पहुँच गई। 1838-39 में, चीन और ब्रिटेन में वैमनस्य बनने से ठीक पहले, यह संख्या 40,000 पेटियों तक आ गई। यह आकलन किया गया है कि इस दौर में चीन में अफीम का नशा करने वालों की संख्या कोई एक करोड़ थी, जिसमें 10 से 20 प्रतिशत तक केंद्रीय सरकार के अधिकारी थे, 20 से 30 प्रतिशत स्थानीय सरकारी अधिकारी थे, और मांचू के सैनिक बलों की एक बड़ी संख्या शामिल थी।

चीन में अफीम का आयात करने वालों में सबसे आगे अंग्रेज़ थे। लेकिन अंगेज़ों का अफीम व्यापार बड़े घुमावदार तरीके से चलता था। अफीम भारत में उगाई जाती थी और खेती से लेकर तैयार करने तक की पूरी प्रक्रिया अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार थी। फिर भी, अफीम के आयात पर चीन में सरकारी प्रतिबंध लगा होने के कारण, ईस्ट इंडिया कंपनी चीन में अफीम के आयात से सीधे-सीधे नहीं जुड़ना चाहती थी, क्योंकि उसे डर था कि इससे उसके चीन के साथ कुल व्यापार को धक्का पहुँचेगा। इसलिए भारत से चीन में अफीम पहुँचाने का काम निजी व्यापारियों से लिया जाता था, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के लाइसैंस के अधीन यह काम करते थे। चीनी और विदेशी तस्करों के एक संगठित जाल और उनके सहयोगियों का यह काम था कि वे चीन में अफीम के वितरण को सुनिश्चित करें। निजी व्यापारी अपने अफीम की खेप को "आदाता" (या पाने वाले जहाज़ों) में जमा कर देते थे जो चीनी तट पर लिनटिन द्वीप के आसपास लंगर डाले खड़े रहते थे। वहाँ से चीनी अफीम व्यापारी अफीम को छोटी-छोटी हथियारबंद और तेज़ गति वाली नावों में ले जाते थे जो चीन के सरकारी गश्ती दलों को झांसा देने में निपुण थीं। इन नावों से अफीम की खेप को उन अफीम व्यापारियों तक पहुँचा दिया जाता था जो चीनी तट के विभिन्न स्थलों पर इसकी प्रतीक्षा में रहते थे, वहाँ से अफीम को अंदरूनी हिस्सों में वितरित कर दिया जाता था (देखिए मानचित्र)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसमें कोई संदेह नहीं कि चीन में स्थानीय लोगों के सहयोग के बिना अफीम का व्यापार इतना फल-फूल नहीं सकता था। एक ओर चीन के नौसैनिक बलों और सीमा शुल्क सेवा की अक्षमता ने तस्करों के काम को सुगम कर दिया और इस बात को संभव कर दिया कि वे बिना किसी दंड के अफीम के व्यापार पर लगे प्रतिबंधों का उल्लंघन कर सकें। लेकिन दूसरी ओर, सक्रिय सहयोग भी था। नाविकों और कुलियों से लेकर सम्पन्न बैंकों तथा अफीम खानों के मालिकों तक लोगों का एक पूरा जाल था, जिन्होंने इस धंधे से खूब कमाई की और इसके चलते रहने में उनका निहित स्वार्थ था। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण विभिन्न स्तरों के उन अधिकारियों का सहयोग था, जो इस सबसे आंखें मूंदे हुए और, और भी सीधे-सीधे तरीकों से इस धंधे में सहयोग करते थे, जिसके बदले में उन्हें मुनाफे का एक हिस्सा मिलता था।

अफीम का नशा करने वालों की सेहत पर इसके हानिकारक प्रभावों के आलावा, अफीम के व्यापार के गंभीर आर्थिक परिणाम भी हुए। सबसे भयानक तौर पर प्रभावित क्षेत्रों में घरेलू या स्वदेशी व्यापार में एक समग्र मंदी आई। इसका कारण यह था कि मजदूरों और दूसरों की छोटी आमदनियों का एक बड़ा हिस्सा दूसरी आवश्यक वस्तुओं की खरीद के बजाय अफीम की खरीद में चला जाता था। लेकिन इससे भी बड़ा एक और आर्थिक संकट इस धंधे के कारण चांदी के बाहर जाने से भी बना। विदेशी व्यापार के और सामानों में से अलग, अफीम की कीमत चांदी में चुकाई जाती थी। अफीम का आयात तेज़ी से बढ़ने के साथ, चांदी की आवाजाही के संदर्भ में पलड़ा चीन के खिलाफ झुका। चीन में चांदी के अल्प भंडार होने से एक गंभीर आर्थिक संकट की स्थिति बनी। चांदी और तांबे के बीच विनिमय की दर गड़बड़ा गई, और इससे शाही खजाने में करों को जमा करने की प्रक्रिया पर प्रतिकूल असर पड़ा।

इस तरह, 1830 का दशक आते-आते शाही सरकार अफीम व्यापार के बेरोकटोक विकसित होने और इसके हानिकारक परिणामों को लेकर गंभीरता से चिंतित हो उठी। सम्राट और उनके उच्च-स्तरीय अधिकारियों के बीच इस बात को लेकर गंभीर विचार-विमर्श हुआ कि

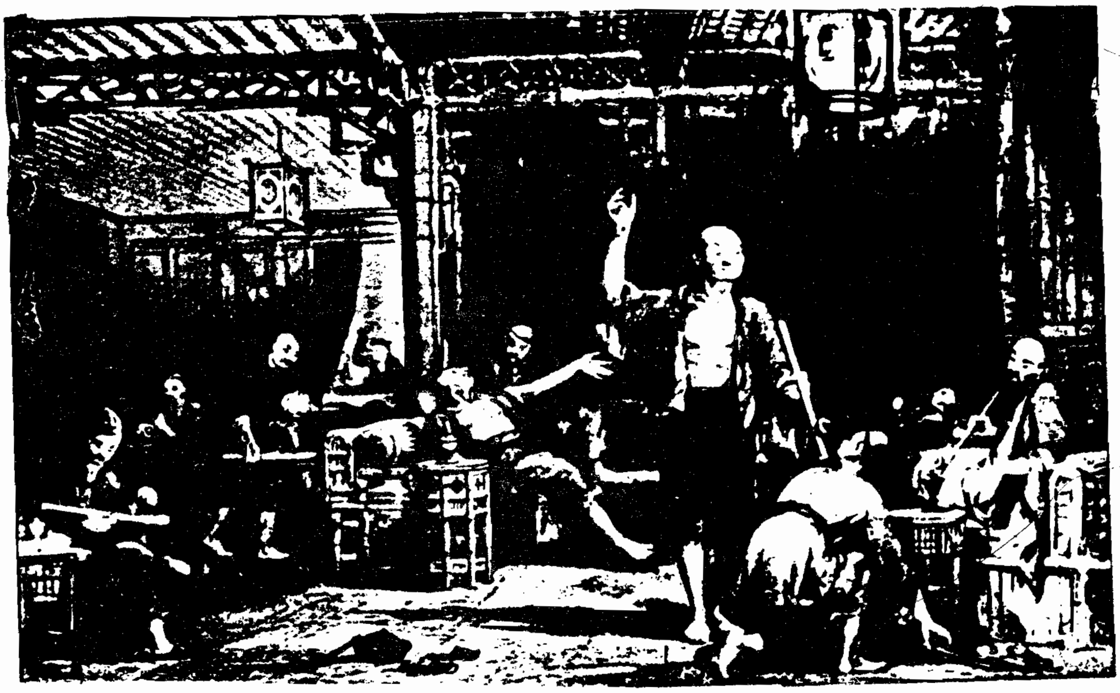

2. अफीम खाने वालों का अड्डा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3. वामपोआ बन्दरगाह (कैंटन 1835)

इस बढ़ते संकट से कैसे निपटा जाए। इसके परिणामस्वरूप 1838-39 की महान "अफीम बहस" हुई, जिसमें सम्राट ने तमाम महा-राज्यपालों और दूसरे उच्च-स्तरीय अधिकारियों से सलाह मांगी। अफीम व्यापार पर कुछ अंश तक नियंत्रण पाने की गरज से इसे वैध ठहराने के विचार पर भी इस बहस में कुछ देर को गौर किया गया, लेकिन अंत में राय यही बनी कि अफीम पर लगे प्रतिबंध का कड़ाई से पालन किया जाए। जाने-माने अधिकारी लिन ज़िशु को शाही आयुक्त की हैसियत से एक विशेष जनादेश के साथ कैंटन भेजा गया कि वह अफीम के व्यापार को रोके। इस तरह चिंग सरकार और पश्चिमी ताकतों के बीच एक सीधे टकराव की आधार भूमि तैयार हो गई।

बोध प्रश्न 1

1) आप कैंटन व्यवस्था से क्या समझते हैं? पांच पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....

2) अफीम व्यापार के आर्थिक परिणाम चीन के लिए क्या रहे? लगभग पांच पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-सा वक्तव्य सही (√) है, और कौन-सा गलत (×)?

   i) पारंपरिक चीनी राजनीति सिद्धांत में "घरेलू मामलों" और "बाहरी संबंधों" के बीच अंतर था।

   ii) पश्चिमी व्यापारी शाही अधिकारियों से सीधे संपर्क कर सकते थे।

   iii) अंग्रेज़ों की ओर से, चीन के साथ व्यापार ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार था।

   iv) ईस्ट इंडिया कंपनी ने अफीम व्यापार को अप्रत्यक्ष तौर पर समर्थन दिया।

   v) अफीम व्यापार स्थानीय सहयोग के बिना फला-फूला।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.3 पहला अफीम युद्ध और नानकिंग की संधि

पहला अफीम युद्ध शुरू होने से पहले ही, कैंटन व्यवस्था कई कारणों से गड़बड़ा चुकी थी :

- पहला कारण था इस व्यवस्था के बंधनों से बाहर अफीम की तस्करी का खूब बढ़ना,
- दूसरा कारण था 1834 में चीन के साथ अंग्रेजों के व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार की समाप्ति, और
- इससे पैदा होने वाली यह समस्या कि चिंग सरकार इस नई स्थिति से कैसे निपटें।

जब चिंग सरकार को यह सूचना दी गई कि ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार समाप्त होने जा रहा है तो उसने यह अनुरोध किया कि अंग्रेज़ व्यापारियों की गतिविधियों की देखरेख के लिए एक नए अंग्रेज प्रबंधक (एक प्रकार के प्रधान सौदागर) की नियुक्ति की जाए। फिर भी, लार्ड नैपियर से शुरू होने वाले ऐसे तमाम व्यापार अधीक्षक जिन्हें अंग्रेज़ी सरकार ने नियुक्त करके चीन भेजा, वे व्यापारी नहीं बल्कि अंग्रेज़ी सरकार के ऐसे प्रतिनिधि थे, जो केवल सौदागर के रूप में व्यवहार के कायल नहीं थे। इस तरह, 1834-1839 का दौर अंग्रेज़ अधिकारियों और चिंग अधिकारियों के बीच लगातार टकराव का दौर रहा, क्योंकि अंग्रेज़ अधिकारियों की यह मांग थी कि वे चिंग अधिकारियों के साथ सीधे संपर्क करेंगे। कुछ ने बहुत झगड़ालू ढंग से ऐसा किया (जैसे नेपियर) और कुछ ने शांतिपूर्ण ढंग से) जैसे जे. एफ. डेविस और कैप्टन सी इलियट) वैसे तो इस तनाव के कारण सीधे-सीधे वैमनस्य की स्थिति नहीं बनी, फिर भी इसके अपने परिणाम रहे :

- पहले, इसके कारण दोनों पक्षों में क्षोभ और संदेह बना, उन गर्मपंथियों की स्थिति मज़बूत हुई जो एक-दूसरे के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की वकालत करते थे, ऐसे लोग चिंग अधिकारियों में भी थे और अंग्रेज़ व्यापारियों और अधिकारियों में भी।
- दूसरे, अनेक मौकों पर, ब्रिटिश युद्धपोत चीनी जलसीमा में भेजे गए। उन्होंने चिंग अधिकारियों की लड़ने की तैयारी और निगरानी क्षमता की परख की।

इस तरह, मार्च 1839 में अफीम विरोधी नियमों का बलपूर्वक लागू करने के लिए कमिश्नर लिन के कैंटन आने के समय तक वहाँ का वातावरण इतना उत्तेजनापूर्ण हो चुका था, जितना कि एक लंबे अरसे से नहीं रहा था।

कमिश्नर लिन के आने पर, लिन ज़िस्कू ने अफीम व्यापार में लगे अंग्रेज़ व्यापारियों और उनके चीनी सहयोगियों के खिलाफ एक साथ कार्यवाही करने का प्रयास किया। उसने कैप्टेन इलियट ने नेतृत्व में विदेशी व्यापारियों को एक अंतिम चेतावनी दी कि उनके जितनी अफीम हो उसे सौंप दे और एक अनुबंध-पत्र पर हस्ताक्षर करें कि उसके बाद फिर कभी अफीम का व्यापार नहीं करेंगे। जब निश्चित समय तक अंग्रेजों ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी तो, लिन ने आदेश दिया कि विदेशियों के लिए काम कर रहे सभी चीनियों को हटा लिया जाए, और कैंटन में सक्रिय अंग्रेज़ व्यापारियों को घेर लिया जाए। इस कदम से अंग्रेजों की हालत निराशाजनक हो गई और उन्होंने अफीम की लगभग 20,000 पेटियाँ सौंप दीं। लिन ने आगे की कार्यवाही के तौर पर जब्त शुदा अफीम को सार्वजनिक तौर पर जलाने और उसकी राख को समुद्र में फेंकने का काम किया। फिर भी, अफीम सौंपे दिए जाने के बावजूद, अनुबंध-पत्र पर हस्ताक्षर करने जैसे दूसरे मुद्दों को लेकर संघर्ष जारी रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि मकाओ के अंग्रेज़ व्यापारियों पर दबाव बढ़ा और गत्यावरोध पैदा हुआ। 1840 के प्रारंभ में, प्रधानमंत्री पामरस्टन के नेतृत्व वाली अंग्रेज सरकार ने एडमिरल इलियट के नेतृत्व में एक अभियान बल चीन भेजने का फैसला किया। यह बल जून 1840 में चीनी जल सीमा में पहुँचा, जहाँ से वैमनस्य या शत्रुता की शुरुआत हुई। यहाँ हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि वैसे तो युद्ध का कारण अफीम ही दिखाई देता है, लेकिन इसके अलावा कुछ और कारण भी थे। उदाहरण के लिए, आपराधिक अधिकार क्षेत्र को लेकर हमेशा टकराव बना रहा कि किसी चीनी के खिलाफ कोई अपराध करने वाले पश्चिमवासी पर कौन मुकदमा चलाएगा और कौन उसे सजा देगा? चीनी अधिकारी या स्वयं पश्चिम के लोग?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4. लिन के निरीक्षण में अफीम जलाने की चित्रकार की कल्पना

अफीम युद्ध इस मायने में एक विचित्र युद्ध था कि इसमें दो विरोधी शक्तियाँ कभी लगातार एक-दसरे के साथ युद्धरत नहीं रहीं। इसके विपरीत, इसमें नवम्बर 1839 से अगस्त तक कुछ नौसैनिक झड़पें हुई, जिनके बीच-बीच में बातचीत और असफल संधियाँ तथा समझौते होते रहे। कुछ व्यापार भी इसे पूरे दौर में चलता रहा, और दोनों पक्षों के प्रमुख व्यक्तियों के बीच संपर्क के माध्यम कभी पूरी तौर पर नहीं टूटे।

युद्ध छिटपुट होने के पीछे एक कारण यह था कि कैंटन के आसपास जो कार्यवाही का मुख्य स्थल था, वहाँ तक संदेश और सामान पहुँचने में बहुत अधिक समय लग जाता था। उदाहरण के लिए, इंग्लैण्ड से चीन तक की समुद्री यात्रा में महीनों लग जाते थे। एक और कारण था दोनों पक्षों के नेतृत्व देने वाले अधिकारियों की बार-बार बदली होना, क्योंकि चिंग सरकार और पामरस्टन सरकार दोनों ही उन अधिकारियों को बदल देती थीं जिनसे वे संतुष्ट नहीं होती थीं: चीन की तरफ से, कठोर लिन ज़िशु की जगह की चिंग को नियुक्त कर दिया गया। अंग्रेज़ों की तरफ, एक मिरल इलियट को अंग्रेज़ी सेनाओं के कमांडर के पद से हटाकर उसकी ज़गह उसके चेचरे भाई व्यापार अधीक्षक चार्ल्स इलियट को ले आया गया। बाद में अगस्त 1841 में कैप्टन इलियट की जगह भी सर हेनरी पॉटिंगर को नियुक्त कर दिया गया।

युद्ध के दौरान हुई हरेक घटना की ब्यौरेवार चर्चा करना संभव नहीं है। फिर भी, संक्षेप में, पहले अफीम युद्ध की मुख्य घटनाएं निम्नलिखित थीं:

1) अंग्रेज़ी अभियान बल का उत्तर में बेई हो की जल सीमा में पहुँचना और पीकिंग के शाही दरबार तथा राजधानी के लिए खतरा पैदा करना। इसके परिणामस्वरूप लिन को हटा दिया गया और उसकी जगह की शान को नियुक्त किया गया, जिसने अंग्रेज़ी बलों को इस बात के लिए मनाया कि वे दक्षिण लौट जाएं।

2) चुआन पी अधिवेशन का जनवरी, 1841 में होना। इसमें कुछ मांगे रखीं गई जैसे हांगकांग का सत्तांतरण,60 लाख डालर हर्जाना, समान शर्तों पर कैंटन का व्यापार, की चिंग और अंग्रेज़ों द्वारा समान आधार पर अधिकारियों में परस्पर कार्यवाही, जिसे दोनों सरकारों ने त्याग दिया।

3) अंग्रेज़ी सेनाओं द्वारा कैंटन की फरवरी से मई 1841 तक घेराबंदी, जिसके परिणामस्वरूप कैंटन के सौदागरों और अधिकारियों ने उसके लिए "फिरौती" 60 लाख डालर दिए।

4) अगस्त 1841 से अगस्त 1842 तक का अंतिम दौर, जब अंग्रेज़ी सेनाएं उत्तर में यांगसी नदी तक बढ़ गईं और उन्होंने रास्ते में पड़ने वाले कई बंदरगाहों पर कब्जा कर लिया। इसके परिणामस्वरूप बातचीत का दौर चला और नानकिंग की संधि पर हस्ताक्षर हुए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

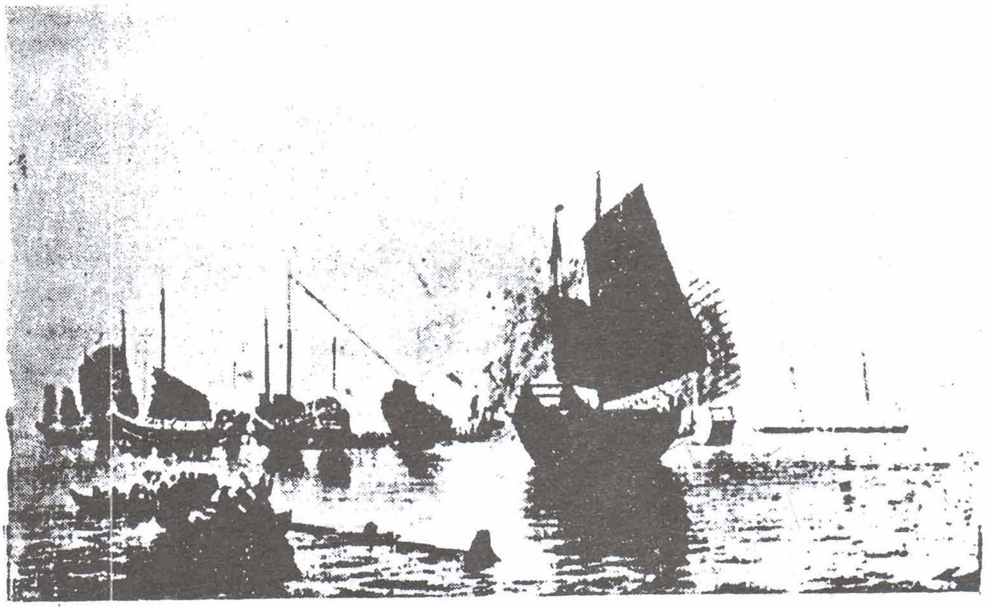

5 चिंग की नौसेना और अंग्रेज़ी युद्ध पोतों के बीच युद्ध (कैंटन 1841)

अगस्त 29, 1842 में सम्पन्न हुई नानकिंग संधि के मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे:

1) अंग्रेज़ों को 2 करोड़ 10 लाख चांदी के डालरों का हर्जाना,
2) व्यापार की एकाधिकारवादी को-हांग व्यवस्था की समाप्ति,
3) कैंटन के आलावा, अमोई, फूचो, निंगपो और शंघाई बंदरगाहों को अंग्रेज़ व्यापारियों और उनके परिवारों के लिए व्यापार तथा आवास के वास्ते खोलना,
4) हांगकांग का सत्तांतरण,
5) सरकारी पत्राचार में समानता, और
6) एक निश्चित चुंगी दर।

इस अंतिम प्रावधान पर वास्तव में बेग की पूरक संधि में फैसला किया गया था। बेग संधि पर अक्तूबर 18, 1843 में हस्ताक्षर किए गए, जिसमें आयात शुल्क 5 प्रतिशत और निर्यात शुल्क 1.5 और 10.75 प्रतिशत के बीच निर्धारित किया गया। इस संधि में अंग्रेज़ों को यह अधिकार दिया गया कि उनके अपराधों के लिए उनपर कानूनों के मुताबिक और उनके अपने वाणिज्य दूत द्वारा ही मुकदमा चलाया जाएगा। इसमें यह प्रावधान भी रखा गया कि भविष्य में चीनी सरकार दूसरी ताकतों को और जो भी रियायतें देगी, वे रियायतें अंग्रेज़ों को भी प्राप्त होंगी।

इस शर्मनाक हार के ठीक बाद ही, चिंग सरकार पर अमेरिकी और फ्रांसीसी भी ऐसी ही संधि के लिए दबाव डालने लगे। चिंग सरकार को लगा कि वह ऐसी मांगों को मानने से इंकार नहीं कर सकेगी तो उसने अमेरिका के साथ जुलाई 3, 1844 को वांघसिया संधि की और फ्रांस के साथ अक्तूबर 24, 1844 को कंपोआ संधि की (संधियों और उनके आशयों के बारे में और अधिक जानकारी के लिए इस पाठ्यक्रम की इकाई 7 देखिए)।

इस पूरे युद्ध और परिणामस्वरूप होने वाली संधियों की सबसे बड़ी विडंबना यह रही कि युद्ध के सबसे नज़दीकी कारण, अफीम का कोई ऐसा उल्लेख ही नहीं हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) लगभग दस पंक्तियों में पहले अफीम युद्ध के कारणों के बारे में बताइए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) नानकिंग की संधि में क्या-क्या प्रावधान थे?

....
....
....
....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-से वक्तव्य सही (√) हैं और कौन-से गलत (×)?

i) चीन ज़िंग ने अंग्रेज़ों के प्रति कठोर रवैया अपनाया।

ii) पहला अफीम युद्ध छिटपुट किस्म का था।

iii) बेग की संधि के बाद अपराधियों पर चीनी अदालतों में मुकदमा चलाने का प्रावधान रखा गया।

iv) अमेरिकी और फ्रांसिसियों को चिंग सरकार के व्यापार में कोई रियायतें नहीं मिलीं।

6.4 पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति पर चीन की प्रतिक्रिया

पहले अफीम युद्ध के शुरू होने और चीन की पराजय ने चीन और पश्चिमी देशों के संबंधों की पूरी दिशा को ही बदल दिया। यह बदलाव दो स्तरों पर दिखाई दिया:

i) सरकारी नीति के स्तर पर; और

ii) पश्चिम के लोगों के प्रति आम लोगों के दृष्टिकोण के स्तर पर।

सरकारी स्तर पर, पश्चिम के लोग और उनसे व्यवहार की जो समस्या पहले स्थानीय अधिकारियों की एक गैर-महत्त्वपूर्ण समस्या होती थी, वह चिंग सरकार के लिए सिरदर्द बन गई। आम लोगों के स्तर पर, इसने एक नई प्रवृत्ति या धारा को जन्म दिया जो आने वाले दशकों में बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई। यह पश्चिमी घुसपैठियों में प्रति आम लोगों के बैरभाव की धारा थी, जिसने 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों के बाद से एक नए चीनी राष्ट्रवाद के उदय की भूमि का काम किया।

6.4.1 ढुलमुल सरकारी नीति

अफीम युद्ध ने उच्च चिंग अधिकारियों के बीच पाए जाने वाले तथाकथित गरमपंथियों (या कट्टरपंथियों) और समझौतावादियों के बीच की खाई को उजागर कर दिया। कमिश्नर लिन ज़िशु सबसे पहला कट्टरपंथी था। वह पश्चिम के लोगों के साथ चिंग साम्राज्य के कायदे-कानूनों के मुताबिक सख्ती से व्यवहार करने में विश्वास करता था। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसकी असफलता ने दूसरे गुट, यानी समझौतावादियों को ऊपर उठने का अवसर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

''बर्बरों''के साथ निपटने के जो तरीके चीन में अरसे से परख हुए थे, उनका अनुसरण करते हुए, की शान, यी शान, की यिंग और मू झांग जैसे समझौतावादी अधिकारी पश्चिमी लोगों के साथ खुले तार पर टकराव का रवैया अपनाने के पक्ष में नहीं थे। इसका यह अर्थ नहीं था कि वे आवश्यक तौर पर पश्चिमी लोगों और उनके ध्येयों से सहानुभूति रखते थे। लेकिन, पश्चिम की सैनिक श्रेष्ठता को मानते हुए, उन्हें यह अहसास था कि चिंग सरकार उन्हें सीधे-सीधे ललकारने का खतरा मोल नहीं ले सकती। उनकी नीति का आधार यह तर्क था कि पश्चिमी लोग जो कुछ मांगते हैं, अगर उनमें से कुछ चीज़ें उन्हें शालीनता के साथ दे दी जाएं तो वे आगे कोई परेशानी नहीं खड़ी करेंगे, और चिंग सरकार और भी पराजयों और नुकसानों से बच जाएगी। बहरहाल, समझौतावादियों के सोचने के तरीके में दो घातक खामियां थीं:

i) पहले, उन्होंने चीन में पश्चिमी ताकतों की मांगों और उद्देश्यों का सही आकलन नहीं किया। ये कैंटन व्यवस्था के विरुद्ध कुछ शिकायतों को दूर करने या अफीम व्यापार के वैध घोषित करने तक ही सीमित नहीं थे। घटनाओं ने यह साबित कर दिया कि पश्चिमी ताकतों की और भी बड़ी महत्त्वाकांक्षा यह थी कि वे अपने व्यापार और अन्य हितों के लिए चीन के मार्गों को अपने लिए और भी अच्छी तरह से खोल दें। चिंग सरकार ने जितनी अपनी कमज़ोरी दिखाई और उनकी तुष्टि की, उतना ही ये शक्तियाँ और अधिक रियायतों की मांगों में और भी साहसिक होती गईं।

ii) समझौतावादियों के सोचने के तरीके की एक और खामी यह थी कि उन्होंने पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति के प्रति आम लोगों के बढ़ते क्षोभ पर ध्यान नहीं दिया। अग्रणी समझौतावादियों में बड़ी संख्या क्योंकि मांचू अधिकारियों की थी, और अग्रणी कट्टरपंथियों में बड़ी संख्या चीनी अधिकारियों की थी, इसलिए इससे मांचुओं और चीनियों के बीच की खाई और चौड़ी हो गई। मांचू शासकों को अंत में ऐसे गद्दारों के रूप में देखा जाने लगा जो देश को विदेशियों के हाथों बेच दे रहे थे। इस तरह, समझौतावादियों की नीति मांचू चिंग वंश के अधिकार की रक्षा करने की होते हुए भी, अंत में जाकर इसके चीनियों के बीच इसके समर्थन और वैधता की जड़ खोदने में ही योगदान दिया।

सन् 1849 से दूसरे अफीम युद्ध होने तक के समय को व्यापक तौर पर कट्टरपंथियों के उदय का दौर कहा जा सकता है। संयोग से यह उस समय हुआ जब 1850 में एक नए विदेश-विरोधी सम्राट ने अपने पूर्ववर्ती के मरने के बाद गद्दी संभाली। कट्टरपंथियों के प्रतिनिधि दक्षिण में शू-गआंग-जिन और ये गिग-झेन और पीकिंग के शाही दरबार में की जुन-काओ और सू-शुन जैसे अधिकारी थे। दो अफीम युद्धों के दौर में कट्टरपंथी गुट की एक बड़ी जीत थी कैंटन शहर में घुसने के अंग्रेज़ों के प्रयास का इसके द्वारा सफल प्रतिरोध किया जाना। फिर भी पश्चिमी देशों की अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा और सैनिक श्रेष्ठता के कारण, और चीनी साम्राज्य के अंदर उथल-पुथल होने के कारण (विशेष तौर पर 1850 के बाद दक्षिण चीन में महान ताईपिंग विद्रोह फैलने के कारण, जिसके बारे में आप खंड 4 में पढ़ेंगे), कट्टरपंथी नीति अधिक समय तक सफल नहीं रह सकी।

6.4.2 चीनी जनता का प्रतिरोध

पहले अफीम युद्ध और सुदृढ़ हो चुकी पश्चिमी ताकतों की कैंटन के आसपास उपस्थिति ने एक महत्त्वपूर्ण नई घटना को जन्म दिया — आम चीनी लोगों का विदेशियों के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध। इस समय तक, पश्चिमी लोगों के साथ सीधे-सीधे जुड़े चीनी समाज के अधिकांश तबके उनके विरुद्ध नहीं थे। वास्तव में अनेक स्थानीय व्यापारियों, नाविकों, कुलियों, तस्करों आदि के लिए पश्चिमी लोगों के साथ व्यापार करने का अर्थ था और अधिक मुनाफा।

बहरहाल, 1841 से शुरू होकर जब अंग्रेज़ी सेनाओं ने कैंटन की घेराबंदी कर ली और वे स्थानीय गांवों में घूमने लगे, तब मुख्य तौर पर किसानों और स्थानीय कुलीन वर्गों के लोगों के आधार पर उनके विरुद्ध शत्रुता का भाव बनने लगा। इसने अनियमित लड़ाकू इकाइयों का रूप ले लिया, जिन्होंने विदेशी सैनिकों की लूटपाट से अपने क्षेत्रों की रक्षा करने का काम संभाल लिया। सरकारी चिंग सैनिकों की काहिली या सुस्ती ओर उनके मनोबल के गिरे होने की तुलना में, इन लोकप्रिय लड़ाकुओं में ऊंचा मनोबल और लड़ने की भावना दिखाई दी। अंग्रेज़ी सेनाओं के साथ सबसे प्रसिद्ध मुठभेड़ कैंटन के पास सान्युआजली गाँव में मई 1841 में हुई। केवल लाठियों और भालों से लैस होकर, कुछ हज़ार किसान लड़ाकुओं ने एक अंग्रेज़ी अभियान बल को सान्युआनली में मार भगाया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

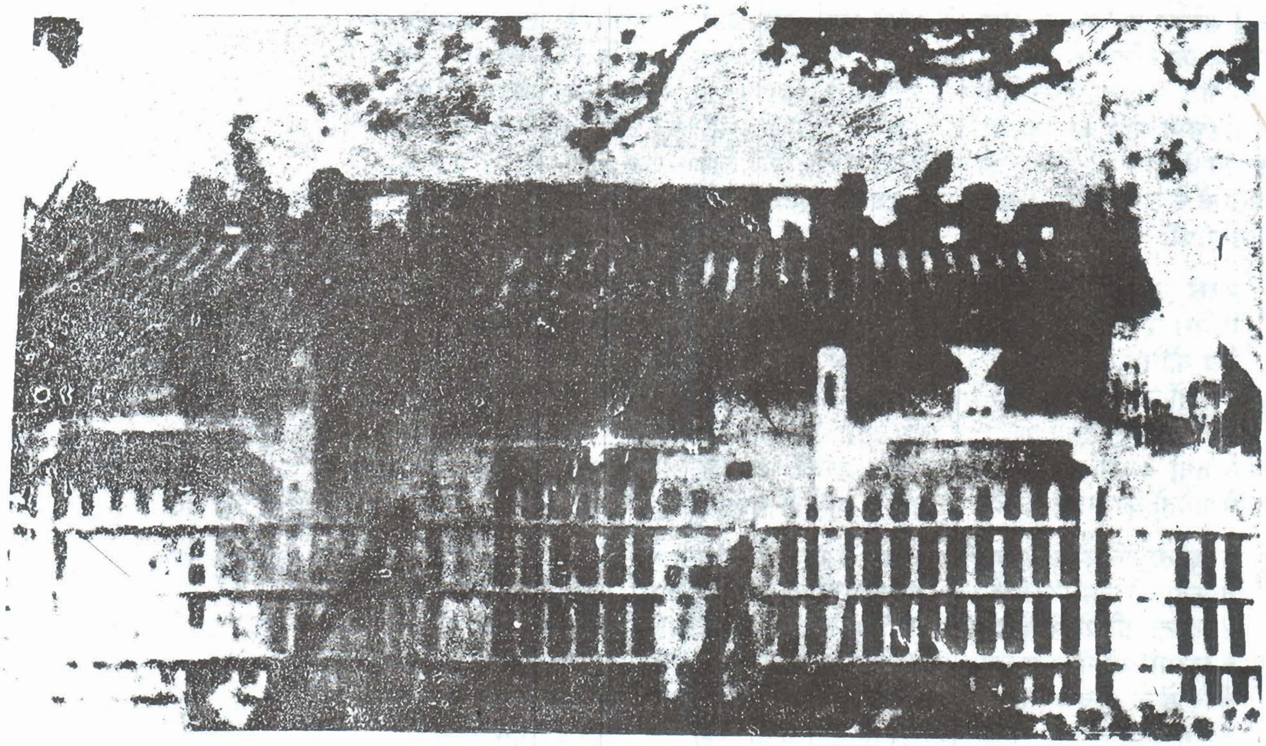

6 सान्युआनली में एक धार्मिक स्थल जहाँ ग्रामीण जनता ने अंग्रेज़ों से टक्कर लेने की शपथ ली

स्थानीय लड़ाकुओं के कारनामे 1848 में फिर सामने आए जब देहाती और शहरी लड़ाकुओं की मिली-जुली कार्यवाही ने अंग्रेज़ी सैनिकों को कैंटन शहर में घुसने से रोक दिया। इस बार, लड़ाकुओं की कार्यवाही को कैंटन के कट्टरपंथी राज्यपाल, ये मिंग झेन, के नेतृत्व में स्थानीय अधिकारियों का, और उन भूतपूर्व को-हांग सौदागरों का समर्थन भी मिला, जिनकी विशेषाधिकार वाली स्थिति 1842 में नानकिंग संधि पर हस्ताक्षर होने के बाद छिन गई थी।

इस आम लोगों के प्रतिरोध को अंत में विदेशियों को चीन की धरती से निकाल बाहर करने में सफलता तो नहीं मिली, फिर भी इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। विदेशी ताकतों की चीन में उपस्थिति के प्रति आम लोगों का विरोध और चिंग सैनिकों की कायरता के प्रति उनका क्षोभ ही इस दौर में आकार ले रहे चिंग वंश को उखाड़ फैंकने के लिए महान क्रांतिकारी आंदोलन का आधार बना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7 अंग्रेज़ों के विरुद्ध सान्युआनली की जनता का घोषणा पत्र

8 अंग्रेज़ आक्रमणकारियों को दर्शाता हुआ एक कार्टून

6.5 दूसरा अफीम युद्ध और त्येनसिन की संधि

अंग्रेज़ों की दृष्टि में, चीनियों और उनके बीच बहुत से विवादास्पद या टकराव वाले मुद्दे नानकिंग की संधि के बाद भी अनसुलझे रह गए। मसलन, उन्हें लगा कि :

- अफीम के व्यापार को अभी तक वैध घोषित नहीं किया गया था,
- कैंटन शहर अभी तक उनके लिए मुक्त नहीं था, और
- उनके पास पीकिंग सरकार के साथ समान शर्तों पर सीधे व्यवहार करने का अधिकार नहीं था।

इनके साथ-साथ, असंतोष का एक और गहरा कारण था उनकी आशा के मुताबिक चीन के साथ व्यापार का प्रसार न हो पाना। अंग्रेज़ों का विश्वास था कि इसका समाधान उत्तर में और चीन के अंदरुनी क्षेत्रों में व्यापार के और बंदरगाह खोलकर किया जा सकता था।

इन सभी कारणों ने मिलकर अंग्रेज़ों और उनके सहयोगी फ्रांसीसियों को 1858 में चीन के साथ शत्रुता को फिर से नया कर लेने के लिए उकसाया, भारत में 1857 की महान क्रांति को दबाने के बाद अंग्रेज़ों के लिए चीन के वास्ते अपनी कुछ सेना बचा रखना संभव था, और उन्हें एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना भी नहीं था। उन्हें यह भी पता था कि देश के विभिन्न हिस्सों में बड़े-बड़े विद्रोहों से निपटते-निपटते चिंग साम्राज्य कितना कमज़ोर हो गया था।

सन् 1858 में, आंग्ल-फ्रांसीसी सेनाओं ने कैंटन पर हमला करके उसे जीत लिया। इसके बाद, वे उत्तर की ओर बढ़े, और उन्होंने पहली बार स्वयं पीकिंग पर हमला बोला। खूबसूरत शाही ग्रीष्म महल समेत, राजधानी तहस-नहस हो गई और सम्राट को भागना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि चिंग सरकार को शर्मनाक आत्म-समर्पण करना पड़ा और त्येनसिन की संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि से पश्चिमी ताकतों को अनेक नए लाभ मिले। ग्यारह और बंदरगाह खुल गए और पश्चिमी जहाज़ों को अंदरुनी जलमार्गों पर आने-जाने की आज़ादी मिल गई। देश के अंदर ही वितरित होने वाले सामान पर पश्चिमी व्यापारियों को "लिकिन" कर से छूट मिल गई। पश्चिमी लोगों को देश में कहीं भी बसने और ज़मीन लेने का अधिकार मिल गया। उन्हें पीकिंग में राजनयिक मिशन खोलने की अनुमति मिल गई। उन्हें युद्ध के हर्जाने के रूप में भारी रकमें मिलीं। और, एक और महत्त्वपूर्ण बात यह कि, अफीम पर लगे सभी प्रतिबंधों को अंत में हटा लिया गया। अफीम युद्ध की समाप्ति ने चीन को पश्चिमी विस्तारवादियों के लिए खोलने का एक और अध्याय खोला, लेकिन यह अंतिम अध्याय नहीं था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.6 अफीम युद्धों की परस्पर विरोधी विवेचनाएं

यह स्वाभाविक ही है कि उस समय के चीनियों के लिए ये अफीम युद्ध एक हानिकारक नशीले पदार्थ अफीम के व्यापार का अधिकार जताने के उद्देश्य से पश्चिमी ताकतों द्वारा किया गया एक अनाहूत हमला था। दूसरी ओर, अंग्रेज़ और उनके पश्चिमी सहयोगियों ने इन युद्धों को मुक्त व्यापार" के हितों, और समानता के आधार पर राष्ट्रों के बीच आदान-प्रदान के हितों में लड़ी गई लड़ाइयों के रूप में पेश किया। यह विवाद आज भी विद्वानों का पीछा कर रहा है, यद्यपि अब इसकी कुछ शक्ल बदल गई है।

आज, बहुत कम विद्वान इस बात से इंकार करते हैं कि अफीम 1839 में बनने वाली शत्रुता का निकटतम कारण था। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जिस ढंग से चिंग सरकार ने अफीम के व्यापार पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया, अगर उसने ऐसा न किया होता तो पामरस्टन की अंग्रेज़ी सरकार ने अपना अभियान बल उस समय न भेजा होता। उस अर्थ में, पहला अफीम युद्ध सचमुच एक अफीम युद्ध था।

फिर भी, विद्वानों के बीच आज मुख्य तौर पर दो मसलों पर मतभेद है :

1) दोनों पक्षों के बीच युद्ध किसी समय पर तब भी अनिवार्य होता या नहीं, जब अफीम एक कारण के रूप में मौजूद न होता।
2) क्या युद्ध की जिम्मेदारी पश्चिमी ताकतों पर जाती है, जिन्होंने एक बाहरी देश के विरुद्ध उसी के क्षेत्र पर लड़ाई शुरू की, या यह जिम्मेदारी चीनी साम्राज्य पर जाती है, जिसने विश्व के प्रति अपने पारंपरिक दृष्टिकोण के चिपके रहकर राष्ट्रों के मुक्त व्यापार में

शामिल होने और समान शर्तों पर राजनयिक आदान-प्रदान करने जैसे तथाकथित जन्मजात अधिकार जैसी बातों को मान्यता देने से इंकार कर दिया।

अफीम युद्धों को लेकर चलने वाली निरंतर बहस से उठे ये और दूसरे सवाल इस अर्थ में उपयोगी हैं कि इनसे आधुनिक चीनी इतिहास के विद्यार्थी को उस दौर की नाटकीय घटनाओं के पीछे काम करने वाली गहनतर शक्तियों के बारे में जांच-पड़ताल करने में मदद मिलती है। इनसे उस समय की घटनाओं की प्रासंगिता को आज जो कुछ हो रहा है, उसके साथ रखकर समझने में भी मदद मिलती है, क्योंकि आज भी राष्ट्रीय संप्रभुता के हितों और देशों तथा राज्यों की स्वाधीनता जैसी चीज़ों को ''मुक्त व्यापार'' ''जनतंत्र'' ''मानवाधिकार'' और अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धातों जैसे तथाकथित ''सार्वभौमिक'' सिद्धातों के दावे के मुकाबले में रखा जाता है।

फिर भी, यह इतिहास के विद्वानों की परिपक्वता नहीं होगी कि वे अफीम युद्धों को पेश करते समय केवल इस बात को साबित करने में लग जाएं कि यह अफीम युद्ध था, या यह अफीम युद्ध नहीं था, और कौन-सा पक्ष इसमें गलत था आदि-आदि। अफीम युद्ध के कारणों और घटनाओं का अध्ययन उनकी संपूर्णता में ही, और तमाम सक्रिय जटिल घटनाओं को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए किया जाना चाहिए।

फिर भी, यहाँ यह बात उल्लेख करने योग्य है कि पश्चिमी ताकतों के हाथों पराजय ने कुछ प्रबुद्ध अधिकारियों के दूसरे देशों के साथ चीन के संबंधों के मसले की पड़ताल करने को बाध्य कर दिया। उदाहरण के लिए, लिन ज़िशू ने विदेशों, और वहाँ चीन के प्रति दृष्टिकोण के बारे में जानकारी इकट्ठी की, उसने विदेशी किताबों और अखबारों का अनुवाद भी करवाया। ''ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग पर ज़ोर देने'' की परंपरा का पालन करते हुए वे युआन ने ''विदेशी को हराने के लिए विदेशी से सीखने'' के विचार का प्रचार किया। उत्तरी सीमाओं की रक्षा के लिए भी आवाज़ें उठीं और रूस को एक भावी खतरा बताया गया।

अफीम युद्धों ने चीनी साहित्य पर भी अपनी छाप छोड़ी। अनेक देशभक्ति पूर्ण कृतियों में पश्चिमी शक्तियों के आगे समर्पण के लिए चिंग सरकार की निंदा की गई, और उनका प्रतिरोध करने के लिए जनता के संघर्ष की प्रशंसा की गई। उदाहरण के लिए, वे युआन ने अपनी प्रसिद्ध कविता ''वर्ल्ड सीज़'' (विश्व सागर) में चिंग के समर्पण की निंदा की और झांग बेंपिंग ने अपनी कविता ''सानयुआनली'' में किसानों के व्यावहारिक संघर्ष का गुणगान किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) समझौतावादी अधिकारियों के सोचने के तरीके में क्या खामियाँ थीं? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) विदेशियों के विरुद्ध आम चीनी लोगों के प्रतिरोध से आप क्या समझते हैं? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए?

....

....

....

....

....

3) अफीम युद्धों की विभिन्न विवेचनाओं का उल्लेख कीजिए। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6.7 सारांश

पहला अफीम युद्ध (1839-1842) और दूसरा अफीम युद्ध (1858-1860) चीन और पश्चिमी ताकतों के बीच पहले बड़े टकराव का प्रतीक हैं। ऐसे अनेक और टकराव भी हुए, लेकिन ये दो युद्ध एक-दूसरे से जुड़े हैं। पहले इसलिए क्योंकि दोनों युद्धों में अफीम का व्यापार एक प्रमुख कारण था (यद्यपि यह एकमात्र कारण नहीं था), और दूसरे इसलिए क्योंकि पहले युद्ध में अनसुलझे रह गए कुछ मुद्दे सीधे-सीधे दूसरे अफीम युद्ध जाकर जुड़ गए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दोनों ही युद्धों में चीनी साम्राज्य की सैनिक दृष्टि से श्रेष्ठतर पश्चिमी ताकतों के हाथों करारी हार हुई। इस सैनिक और प्रौद्योगिक खाई को चीनी साम्राज्य कभी नहीं पाट पाया, और इस कारण 1911 में अंतिम रूप से ध्वस्त हो जाने तक यह पश्चिमी ताकतों के दबाव में बना रहा।

अफीम युद्धों का एक तुरंतगामी और सीधा परिणाम था संधियों के आधार पर पश्चिमी ताकतों के साथ चीन संबंधों का पुनर्गठन। लेकिन इन युद्धों के दूरगामी परिणाम भी हुए। जैसे चीनी साम्राज्य का कमज़ोर होना, चीन की पारंपरिक अर्थव्यवस्था का गड़बड़ाना, और चीन के पुनरुद्धार के लिए विभिन्न आंदोलनों का उठ खड़ा होना– जिनमें चीन की कुछ पारंपरिक संस्थाओं को सुधारने संबंधी आंदोलन से लेकर पूरी पारंपरिक व्यवस्था को मिटा कर उसकी जगह एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य की स्थापना करने संबंधी आंदोलन तक शामिल थे।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) कैंटन व्यवस्था से आशय उन तमाम व्यापारिक प्रबंधों से है जो 1757 और 1842 के बीच पश्चिमी देशों के लिए चीन में उपलब्ध थे। विस्तृत विवरण के लिए देखिए उपभाग 6.2.2

2) पहले ईस्ट इंडिया कंपनी चांदी और सोने के बदले चीनी सामान खरीदती थी। अफीम के अवैध व्यापार से यह संतुलन ईस्ट इंडिया कंपनी के पक्ष में चला गया, क्योंकि अब चीन से सोना-चांदी बाहर जाने लगा।

3) i) × ii) × iii) √ iv) √ v) ×

बोध प्रश्न 2

1) अपना उत्तर भाग 6.3 के आधार पर लिखिए।
2) भाग 6.3 में उल्लिखित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
3) i) √ ii) √ iii) × iv) ×

बोध प्रश्न 3

1) अपना उत्तर उपभाग 6.4.1 के आधार पर लिखिए और उसमें उल्लिखित दो बड़ी खामियों का उल्लेख कीजिए।
2) यह एक नई घटना थी कि किसानों ने पश्चिमी ताकतों के विरुद्ध हथियार उठाए, जबकि सरकारी चिंग सेनाएं हार रही थीं। इसके परिणास्वरूप विदेशी ताकतों की चीन में उपस्थिति के विरुद्ध वहाँ के आम लोगों में आक्रोश और चिंग सेनाओं के प्रति क्षोभ उभरा। देखिए उपभाग 6.4.2
3) अपना उत्तर भाग 6.6 के आधार पर लिखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 7 असमान संधि प्रणाली–चीन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 सहयोग का दौर 1860-1870
- 7.2.1 संधिगत बंदरगाह
- 7.2.2 विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय
- 7.2.3 चीन में आधुनिक कूटनीति की शुरुआत

7.3 बढ़ते विदेशी अतिक्रमण : मनमुटाव और टकराव, 1870-1900
- 7.3.1 मिशनरी गतिविधि और आम लोगों का शत्रुताभाव
- 7.3.2 चीन की सीमारेखा पर विदेशी दबाव

7.4 रियायतों के लिए भगदड़
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इन बातों की जानकारी मिलेगी :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- चीन और पश्चिमी ताकतों तथा जापान के बीच 19वीं शताब्दी में होने वाली "आसमान संधियां",
- सन् 1911 में चिंग वंश की समाप्ति तक चीन में साम्राज्यवादी विस्तार के बदलते स्वरूप, और
- इस दौर में विदेशी ताकतों के साथ चीन और विभिन्न चीनी संस्थाओं के संबंधों की प्रकृति।

7.1 प्रस्तावना

सन् 1842 में नानकिंग संधि पर हस्ताक्षर होने के समय से पूरी एक शताब्दी तक, चीन की पश्चिमी ताकतों और जापान के साथ कई संधियाँ हुई। इन्हें "आसमान संधियों" के नाम से जाना गया, क्योंकि बड़ी ताकतों ने अपनी श्रेष्ठता का इस्तेमाल करके एक कमज़ोर और टूटते चीन पर इन संधियों को थोपा था।

भारत जैसे देश के विपरीत, चीन किसी एक ताकत या ताकत-समूह का कभी पूरी तौर पर उपनिवेश नहीं बना। चीन को विदेशी व्यापार और विस्तार के लिए जबरदस्ती खोल तो दिया गया, और उसे विदेशी ताकतों को एक के बाद एक रियायतें देने को बाध्य भी होना पड़ा, लेकिन उसकी संप्रभुता पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। विदेशी ताकतों की मांगों का प्रतिरोध करने की शक्ति न होने पर भी, इन मांगों को संधियों का रूप दिया गया, जिन्हें दो प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों ने तैयार किया और उनपर आपसी सहमति बनाई। जैसे उपनिवेशवाद के साथ भारत के लंबे संबंध का प्रतीक अंग्रेज़ी राज है, ठीक वैसे ही उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के हाथों चीन के एक शताब्दी तक अपमान का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक ये असमान संधियां रहीं। 1947 से पहले जिस तरह से भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य अंग्रेज़ी राज को उखाड़ फेंकना था, उसी तरह 1940 के दशक तक चीनी राष्ट्रवाद का मुख्य ध्यान असमान संधियों के विरुद्ध संघर्ष करना था। इस इकाई में विभिन्न असमान संधियों पर, जिन स्थितियों में उन्हें थोपा गया, उन स्थितियों पर और चीन पर पड़ने वाले उनके प्रभाव पर, चर्चा की गई है।

7.2 सहयोग का दौर, 1860-1870

1850 के दशक के अंतिम वर्षों में ऐसा दिखाई पड़ा मानों पश्चिमी ताकतें चिंग वंश को समाप्त करने के लिए सक्रिय रूप से काम कर रही थीं। दूसरे अफीम युद्ध के दौरान शाही ग्रीष्म महल को जला दिये जाने और त्येनसिन तथा राजधानी पीकिंग पर पश्चिमी ताकतों के हमले की घटनाएं चिंग वंश के लिए एक गहरा आघात थीं। उतना ही महत्त्वपूर्ण था महान ताईपिंग विद्रोह (देखिए इकाई 13, खंड 4) के प्रति पश्चिमी ताकतों का दृष्टिकोण। ताईपिंग विद्रोह उस समय मध्य और दक्षिणी चीन के अधिकाशं भागों में भड़का हुआ था। औपचारिक तौर पर इस गृह युद्ध में पश्चिमी ताकतों की नीति तटस्थता की थी। लेकिन व्यवहार में, उनकी सहानुभूति और समर्थन विद्रोहियों के साथ ही था।

लेकिन, 1860 के बाद यह प्रवृत्ति समाप्त हो गई। त्येनसिन की संधि में चिंग सरकार से भारी रियायतें हासिल कर लेने के बाद (देखिए इकाई 6), पश्चिमी ताकतों को इस बात का अहसास हो गया कि उनके हितों का सबसे बढ़िया साधन तब हो सकता था जबकि वह वंश बना रहे जिसने ये रियायतें उन्हें दीं। इस तरह पश्चिमी नीति रात ही रात में विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति को बदलकर ताईपिंग विद्रोह को दबाने का प्रयास कर रही चिंग सरकार पर दबाव डालना भी छोड़ दिया और उसकी जगह उन्होंने पहले ही हासिल कर रखी रियायतों का बढ़िया से बढ़िया उपयोग करना शुरू कर दिया। विदेशी ताकतों ने चीन के आधुनिक बनने के प्रयासों में भी सहयोग देना शुरू कर दिया। चिंग सरकार का समर्थन करने की इस नई नीति का एक संभावित कारण था उस समय चीन में स्थित सबसे मज़बूत विदेशी ताकत, अंग्रेज़ों की 1857 में भारत में उनके औपनिवेशिक राज को धक्का लगाने के बाद, समुद्र पार अपनी राजनीतिक और सैनिक गतिविधियाँ बढ़ाने की इच्छा का न होना।

पश्चिमी ताकतों और उनके पीकिंग स्थित राजनयिकों की यह समझौतावादी मानसिकता चीन के शासकों में एक नई मानसिकता के मुकाबले थी। 1860 में पश्चिमी ताकतों के साथ बातचीत, और 1864 में सम्पन्न होने वाले ताईपिंग के दमन ने कुछ उच्च-स्तरीय अधिकारियों को महत्त्वपूर्ण बना दिया जो इतने प्रचंड तौर पर विदेश-विरोधी नहीं थे, और जिनका यह विश्वास था कि चीन को शांति के एक दौर की आवश्यकता थी, जिसमें वह अपनी खोई स्थिति को फिर से हासिल कर और अपने आपको मज़बूत कर सके। इन अधिकारियों में ताइपिंग दमन अभियान के प्रसिद्ध नेता, जेंग गुओफान और ली हांग झांग, और मांचू राजकुमार गांग शामिल थे। ये प्रमुख राजनेता पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी और पश्चिमी कूटनीति से भी कुछ बातें सीखने में विश्वास रखते थे, और सिद्धांत रूप में उन्हें कुछ क्षेत्रों में पश्चिमी ताकतों के साथ एक सीमित सहयोग से कोई चिढ़ नहीं थीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दोनों पक्षों में हृदय परिवर्तन के इस बदलाव का परिणाम तथाकथित "सहकारी नीति" के रूप में सामने आया, जिससे चीन-पश्चिम संबंधों में यथा स्थिति को पूरे दस वर्षों तक बिना किसी विघ्न के बनाए रखना सुनिश्चित हो गया। इसी दौर में चीन और पश्चिमी ताकतों के बीच आदान-प्रदान को संस्था का रूप देने का काम हुआ।

7.2.1 संधिगत बंदरगाह

पहले अफीम युद्ध का एक प्रमुख परिणाम था मूल कैंटन समेत पाँच बंदहगाहों का विदेशी व्यापार और आवास के लिए खोला जाना। इन बंदरगाहों को बाद में "संधिगत बंदरगाह" के नाम से जाना गया। दूसरे अफीम युद्ध की समाप्ति करने वाली त्येनसिन संधि से संधिगत बंदरगाहों की संख्या बढ़कर सोलह हो गई, और 1876 में चीन तथा ब्रिटेन के बीच ज़िफू समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद इनमें पाँच बंदरगाहों को और शामिल कर लिया गया। इस तरह, चीन के समुद्र तट का पूरा हिस्सा और उसके प्रमुख जलमार्ग, यांगज़ी नदी सब पर विदेशी व्यापार के ये केंद्र बन गए।

ये संधिगत बंदरगाह, और विशेष तौर पर उनमें बनने वाले वे "रियायती क्षेत्र" जिनमें विदेशी साथ-साथ रहते थे, 19वीं शताब्दी के मध्य से 20वीं शताब्दी के मध्य तक चीन के विदेशों के साथ संबंधों की एक विशिष्ट विशेषता बन गए। क्षेत्र के हिसाब से देखा जाए ता वे बहुत अधिक नहीं थे। लेकिन, आर्थिक, राजनीतिक और न्यायिक दृष्टि से वे चीन की प्रभुसत्ता पर एक काफी बड़ा अतिक्रमण थे।

विदेशिया को मिले रियायती क्षेत्रों में विदेशी अपने आप पर और उस क्षेत्र में रहने वाली चीनी जनता पर शासन करते थे। कई संधिगत बंदगाहों में, रियायती क्षेत्रों के नाम उस क्षेत्र में हावी विदेशी ताकत की राष्ट्रीयता के नाम पर पड़े हुए थे (जैसे, रियायती क्षेत्र, फ्रांसीसी

रियायती क्षेत्र आदि)। फिर भी, सबसे बड़े संधिगत बंदरगाह – शंघाई – में अंग्रेज़ी और अमेरिकी रियायती क्षेत्रों ने 1883 में विलय होकर प्रसिद्ध "अंतर्राष्ट्रीय रियायती क्षेत्र" बनाया।

सामान्य रूप से "विदेशी रियायती क्षेत्रों" का शासन एक नगर परिषद् चलाती थी, जिसका चुनाव एक निश्चित मूल्य से ऊपर की सम्पत्ति रखने वाले विदेशी करते थे। इस परिषद की वाणिज्य दूतों को सहमति लेनी होती थी, जो संधिगत बंदरगाहों में विदेशी ताकतों के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि थे। नगर परिषद् अपने रियायती क्षेत्रों में रख-रखाव के लिए कर लगाती थी, उसका अपना पुलिस बल था, और सामान्य तौर पर वह चीनी सरकार के किसी हस्तक्षेप के बिना अपने पुलिस संबंधी मामलों को खुद संचालित करती थी। विदेशी रियायती क्षेत्रों में रहने वाले चीनी स्पष्ट तौर पर दूसरे दर्जे के नागरिक होते थे, जिनपर भारी कर लगाये जाते थे लेकिन उन्हें कोई अधिकार नहीं दिए जाते थे। कुछ जगहों पर तो उन्हें कुछ सड़कों, पार्कों आदि के इस्तेमाल पर भी पाबंदी थी, जो केवल विदेशियों के लिए आरक्षित थे।

विदेशी रियायती क्षेत्रों में वाणिज्यदूतीय अदालतें थीं,। ये विदेशी अदालतें थीं जिनमें विदेशी अपराधियों पर उनके ही कानूनों के मुताबिक अतिरिक्त क्षेत्रीयता के सिद्धांत के अनुसार मुकद्मा चलाया जाता था (देखिए इकाई 6) यहाँ तक कि विदेशी रियायती क्षेत्रों के चीनी बाशिंदों पर भी चीनी अदालतों में मुकद्मा नहीं चलाया जाता था, बल्कि उन्हें चीनी और विदेशी न्यायाधीशों वाली मिश्रित अदालतों में हाज़िर होना होता था। कहना आवश्यक नहीं होगा कि जब कभी मुकदमा चीनी और विदेशी के बीच होता था, चीनी भारी नुकसान में रहता था – ऐसा केवल विदेशी न्यायाधीशों के पक्षपात के कारण नहीं होता था, बल्कि इसलिए भी होता था कि चीनी लोग आम तौर पर विदेशी कानूनी कार्यवाही को समझ नहीं पाते थे।

समय बीतने के साथ, विदेशी रियायती क्षेत्रों ने अपनी अलग संस्कृति और जीवन शैली का विकास कर लिया, जो पूरी तौर पर चीन की संस्कृति और जीवन शैली से कटी हुई थी। सामान्य स्तर पर, ये रियायती क्षेत्र 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के चीन की गरीबी और उथल-पुथल के बीच धन के ऐसे विदेशी अंतःक्षेत्र थे, जिन्हें अपेक्षाकृत स्थिरता और विशेष अधिकार प्राप्त थे। उनके पीछे पास ही लंगर डाली विदेशी ताकतों की तोप नौकाएं थीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9. हाँग व्यापारी का आलीशान बंगला

7.2.2 विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय

संधिगत बंदरगाहों की एक सबसे प्रमुख विशेषता, और आधुनिक चीन के विदेशी ताकतों के साथ संबंध की सबसे अनूठी संस्था थी विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय।

सन् 1854 में, जब शंघाई पर विद्रोहियों ने कब्ज़ा कर लिया और चीनी सीमा-शुल्क अधीक्षक को उसके पद से निकाल बाहर किया गया तो शंघाई में नियुक्त विदेशी वाणिज्य दूतों ने इकट्ठा होकर एक अस्थायी उपाय के तौर पर बकाया सीमा-शुल्क जमा करने का काम अपने जिम्मे ले लिया। लेकिन, शांति कायम हो जाने के बाद भी यह प्रथा चलती रही और इसे एक स्थायी संस्था का रूप दे दिया गया। पश्चिमी ताकतों को लगा कि यह उनके हित में होगा क्योंकि इससे यह सुनिश्चित होगा कि दूसरे अफीम युद्ध के बाद उन्होंने जो कम शुल्कों को हासिल किया था, उसका सम्मान किया जाएगा और स्थानीय चीनी अधिकारी अनुचित उगाही नहीं करेंगे, चिंग सरकार ने भी इसे जारी रखना पसंद किया, क्योंकि इससे यह सुनिश्चित होता था कि राजस्व की एक बड़ी राशि लगातार सीधे उसके खजाने में आएगी। इसलिए इस व्यवस्था को नियमित कर दिया गया। विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय का मुख्यालय 1865 में शंघाई से पीकिंग चला गया। प्रत्येक संधिगत बंदरगाह में, एक विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षक होता था, जिसके अधीन विदेशी और चीनी कर्मचारियों का एक बड़ा और सुप्रशिक्षित दल होता था। इसका मुख्य काम सीमा-शुल्क की वसूली और उसे जमा करना ही था। लेकिन धीरे-धीरे इसने अपना काम बढ़ाकर उसमें बंदरगाहों और नदियों के रख-रखाव, और भौगोलिक सर्वेक्षण आदि का काम भी शामिल कर लिया। चिंग सरकार को वैसे विदेशी निरीक्षणालय की गतिविधि से आर्थिक लाभ तो होता था, फिर भी यह आर्थिक और प्रशासनिक मामलों में चीन की प्रभुसत्ता के और भी भंग होने का प्रतीक था।

विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय की एक दिलचस्प विशेषता यह थी कि इसके तमाम कर्मचारी, विदेशी भी, औपचारिक रूप से चीनी सरकार के नौकर थे, अपने देशों के प्रतिनिधि नहीं थे। यहाँ तक कि 40 वर्षों तक इस सेवा का निर्देशन करने वाले जबरदस्त प्रभाव वाले अंग्रेज सर रॉबर्ट हार्ट ने अपने आपको हमेशा चिंग सरकार का एक वफादार कर्मचारी माना। जे.के. फेयरबैंक जैसे कुछ आधुनिक विद्वानों ने इस घटना का विवरण देने के लिए "सइनार्की" (चीनी राजकता) शब्द गढ़ा है। उन्होंने इसे एक प्रकार के साम्राज्यवादी कब्जे के रूप में नहीं, बल्कि चीनी साम्राज्य और विदेशी व्यक्तियों के बीच एक प्रकार से सहयोग के रूप में देखा है, जिसकी जड़ें पारंपरिक चीनी ढंग की सरकार में गहरे जमी थीं। फिर भी, यह याद रखना होगा कि 19वीं शताब्दी में चीन और विदेशी साम्राज्यवाद के बीच संबंध का अपना अनूठा और अभूतपर्वक चरित्र था। चीनी साम्राज्यवाद इस दौर में पतन पर था, और विदेशी ताकतें न केवल सैनिक, बल्कि आर्थिक और प्रौद्योगिक दृष्टि से भी हावी थीं। उभरते चीनी राष्ट्रवादियों के लिए, बड़ी गिनती में विदेशियों के द्वारा अर्थव्यवस्था और अन्य मामलों को संचालित करना उतनी ही शर्मनाक बात थी, जितनी विदेशी ताकतों का उनकी नदियों और तट-रेखा पर गश्त लगाना। विशेष तौर पर चिंग सरकार के सीमा-शुल्क राजस्व पर और भी निर्भर हो जाने के कारण, और हर्जाने तथा कर्ज़ों के ज़रिए चीनी धन के विभिन्न विदेशी ताकतों के पास गिरवी रख जाने के कारण, सीमा-शुल्क राजस्व पर विदेशियों का नियंत्रण बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया। इससे यह सुनिश्चित हो गया कि चीन संधि की शर्तों को पलट नहीं सकता, और उसके धन का एक बढ़ता हिस्सा विदेशों को चला जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.2.3 चीन में आधुनिक कूटनीति की शुरुआत

दूसरे अफीम युद्ध में चीन की जो जबरदस्त पराजय हुई, उससे कुछ प्रमुख चीनी राजनेताओं को यह विश्वास हो गया कि विदेशी ताकतों से निपटने के लिए चीनी संस्थाओं और कार्यप्रणाली को पुनर्गठित करना होगा। उन्होंने पश्चिम के बारे में और अधिक जानने की आवश्यकता को, विशेष तौर पर आधुनिक अंतराष्ट्रीय कानून के सिद्धांत और व्यवहार को समझने तथा उसमें माहिर होने की आवश्यकता को महसूस किया। मांचू राजकुमार गांग इस प्रवृत्ति के पीछे काम करने वाला प्रमुख व्यक्ति था, महापार्षद बेनाशियांग ली हांगझांग और दूसरे उच्च-स्तरीय अधिकारियों ने भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ये राजनेता अंतर्राष्ट्रीय कानून को एक ऐसे हथियार के रूप में देखने लगे, जिसका इस्तेमाल चीन की प्रभुसत्ता पर दूसरी ताकतों के और आगे मनमाने अतिक्रमण होने रोकने के लिए किया जा सकता था। उन्होंने महसूस किया कि विद्यमान (असमान) संधियों को एक ऐसी सीमा के रूप में बनाए रखा जाये जिसके आगे कोई रियायतें नहीं दी जाएं। उनके प्रयासों को

प्रमुख पश्चिमी ताकतों और उस समय पीकिंग में स्थित उनके प्रतिनिधियों में व्याप्त सहयोग की मनोस्थिति से प्रोत्साहन मिला।

इस तरह, राजकुमार गांग और वेनशियांग की सिफारिश पर, अदालत मार्च 1861 में एक किस्म का दफ्तर खोलने को सहमत हो गई, जिसे जोंगनी यामेन कहा गया। कई उच्च-स्तरीय राजनेताओं की अध्यक्षता वाले इस दफ्तर का काम उन विभिन्न विभागों को निर्देशन देना था जिन्हें बड़ी पश्चिमी ताकतों से निपटने और तट रक्षा का काम सौंपा गया था। विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय भी 1860 तक इस दफ्तर से सम्बद्ध रहा, यह वह प्रमुख संस्था थी जिसका संबंध विदेश नीति को अमल में लाने के काम से था।

जोंगली यामेन के आलावा, उत्तरी और दक्षिणी बंदरगाहों के लिए दो व्यापार अधीक्षकों को रखने की व्यवस्था भी त्येनसेन और शंघाई में कायम की गई। जब चुस्त ली हांगझांग 1870 में त्येनसिन में व्यापार अधीक्षक बना, तब वह विदेशी ताकतों से संबंधित इतने अधिक मामलों में उलझा था कि अंत में उसने विदेशी मामलों के संचालन में जोंगनी यामेन को पीछे छोड़ दिया।

''ज़ोंगली यामेन'' से ही जुड़ा इस दौर का एक और प्रवर्तन था 1862 में ''तोंगवेन गुआन'' (Tong Wen Guan) की स्थापना। शुरू में इसकी स्थापना चुनिंदा चीनी और मांचू विद्यार्थियों को पश्चिमी भाषाओं का प्रशिक्षण देने के इरादे से की गई थी, लेकिन अंत में इसमें आधुनिक भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, शरीर विज्ञान आदि को भी शामिल कर लिया गया। इसने पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय कानून, दर्शन, राजनीतिक अर्थव्यवस्था और विज्ञान के अनुवाद भी प्रकाशित करना शुरू कर दिया। इस विद्यालय के प्रधान और अन्य अध्यापक विदेशी प्रोफेसर और विद्वान थे।

त्येनसिन की संधि (1860) में इस दस वर्ष की अवधि के बाद संधि के संशोधन का प्रावधान था। 1860 के दशक के अंतिम वर्ष आते-आते ''जोंगली यामेन'' जो की एक दफ्तर था अपने आपको अंतर्राष्ट्रीय कानून और पश्चिमी ढंग की कूटनीति में इतना दक्ष महसूस करने लगा कि उसने संधि में संशोधन के लिए इस आशा से सक्रिय दबाव डाला कि इसका परिणाम पहले की अपेक्षा चीन के लिए कहीं अधिक अनुकूल होगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, उसने पीकिंग में हमदर्द अमेरिकी प्रतिनिधि, ऐंसन बर्लिंगम का यह प्रस्ताव मान लिया कि चिंग सरकार की ओर से पश्चिमी देशों की एक सोद्देश्य यात्रा की जाए जिसमें उनसे यह आग्रह किया जाए कि वे संधि पर फिर से बातचीत करें। कुल मिलाकर, बर्लिंगम मिशन का हर जगह स्वागत किया गया। इससे जोंगली यामेन और चिंग सरकार की आशाएं बढ़ीं। लेकिन ये आशाएं जल्दी ही चकनाचूर हो गईं। 1870 में, अंग्रेजी सरकार ने संधियों के संशोधन के लिए आयोजित चिंग सरकार की सहमति वाले एलकॉक अधिवेशन को रद्द कर दिया। इस कार्यवाही से चिंग सरकार और पश्चिमी ताकतों के बीच सहयोग के दौर का अंत हो गया, और एक ताज़ा संघर्ष और टकराव के दौर की शुरुआत हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) वे कौन-सी संस्थाएं थीं, जिन्होंने 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में विदेशियों के साथ चीन के व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय के कार्यों की लगभग पांच पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में कौन-से सही (√) हैं और कौन-से गलत (×)?

i) प्रमुख चीनी राजनेता चीन की प्रभुसत्ता का अतिक्रमण रोकने की अंतर्राष्ट्रीय कानून से अपेक्षा करते थे।

ii) अंग्रेज़ों ने चीनियों का संधियों के संशोधन का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

iii) सबसे बड़ा संधिगत बंदरगाह शंघाई था।

iv) त्येनसिन की संधि में 10 वर्षों की अवधि के बाद इसके संशोधन का कोई प्रावधान नहीं था।

7.3 बढ़ते विदेशी अतिक्रमण : मनमुटाव और टकराव, 1870-1900

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पच्चीस वर्षों में बड़ी ताकतों के साथ चीन के संबंधों में भारी गिरावट आई। इस दौर में, इन ताकतों ने चीन के विरुद्ध अपने आक्रामक रवैये को फिर से अपना लिया, जिसके परिणामस्वरूप 1900 में बॉक्सर विद्रोह के बाद पीकिंग पर मिला-जुला सैनिक हमला हुआ (देखिए इकाई 14, खंड 4) और चीन विदेशी प्रभाव तथा प्रभुत्व वाले विभिन्न क्षेत्रों में बंट गया। इन घटनाओं का आवेश केवल चीन के भीतर ही नहीं था। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में ज़ार की अधीनता वाले रूस और ब्रिटेन में भी एक जबरदस्त विस्तारवादी लहर थी, और यही स्थिति तीसरे गणराज्य के फ्रांस की भी थी। गृह युद्ध की व्यस्तता से मुक्त हुआ अमेरिका पूर्व की ओर दिलचस्पी से देखने लगा। 1870 में अपने एकीकरण के बाद जर्मनी और मेइजी पुनरुत्थान के बाद का जापान भी जबरदस्त ताकतों के रूप में उभरे। उन्होंने समुद्र पार के बाज़ारों या व्यापार और क्षेत्रों पर भी लोभी निगाह रखी। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इन तमाम ताकतों की विस्तारवादी इच्छाओं का जमाव चीन पर हुआ जो अभी तक किसी एक ताकत के उपनिवेशवादी फंदे में नहीं फंसा था, और जिसके लिए अपने आपको संकट तथा पतन की प्रक्रिया से निकालना असंभव दिख रहा था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.3.1 मिशनरी गतिविधि और आम लोगों का शत्रुताभाव

यह एक विडंबना है कि इस दौर में चीन और पश्चिमी ताकतों के आपसी संबंधों में कटुता पैदा करने वाला कारक पश्चिमी ताकतों की खुले आम होने वाली आर्थिक या सैनिक गतिविधियां नहीं, बल्कि विभिन्न मिशनरी व्यक्तियों और संगठनों की गतिविधियां थीं। इस दौर की शुरुआत और समाप्ति वास्तव में मिशनरियों और उनकी गतिविधियों को लेकर होने वाली झड़पों के साथ हुई।

पहले अफीम युद्ध के बाद, फ्रांस के साथ हुई वांपोआ की संधि द्वारा चीन में मिशनरी गतिविधियों को अनुमति मिली, और 1860 की त्येनसिन संधि से मिशनरियों को इस बात की अनुमति मिली कि वे चीन में कहीं भी रह सकते हैं। पश्चिमी राजनयिक और पश्चिमी सौदागर तो कुछ चुनिंदा बंदरगाहों के अंतःक्षेत्रों में या राजधानी पीकिंग में इकट्ठे रहते थे, लेकिन मिशनरी हर जगह फैल गए। यह बात कैथोलिक मिशनरियों के मामले में विशेष तौर पर सही थी। वे अधिकांश तौर पर छोटे कस्बों और गांवों में रहे, जहां वे स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप करते थे। वे स्वतंत्र रूप से सम्पत्ति हासिल करते थे और उन्हें 18वीं शताब्दी में जेसुईट मिशनरियों से जब्त की गई ज़मीनों पर फिर से अधिकार जमाने की अनुमति थी। उन्होंने स्थानीय निवासियों का धर्म परिवर्तन किया और उसके बाद उन्होंने धर्म बदलुओं के आपराधिक मामलों में अपने नियम लागू करने का भी प्रयास किया। उन्होंने स्कूल और अनाथालय भी खोले, जिन्हें स्थानीय लोग भारी शंका की दृष्टि से देखते थे, वे अक्सर यह सोचते थे कि मिशनरी उनके बच्चों का अपहरण कर रहे थे। स्थानीय लोग और अधिकारी मिशनरियों की इस बात से भी नाखुश थे कि वे हर बात पर

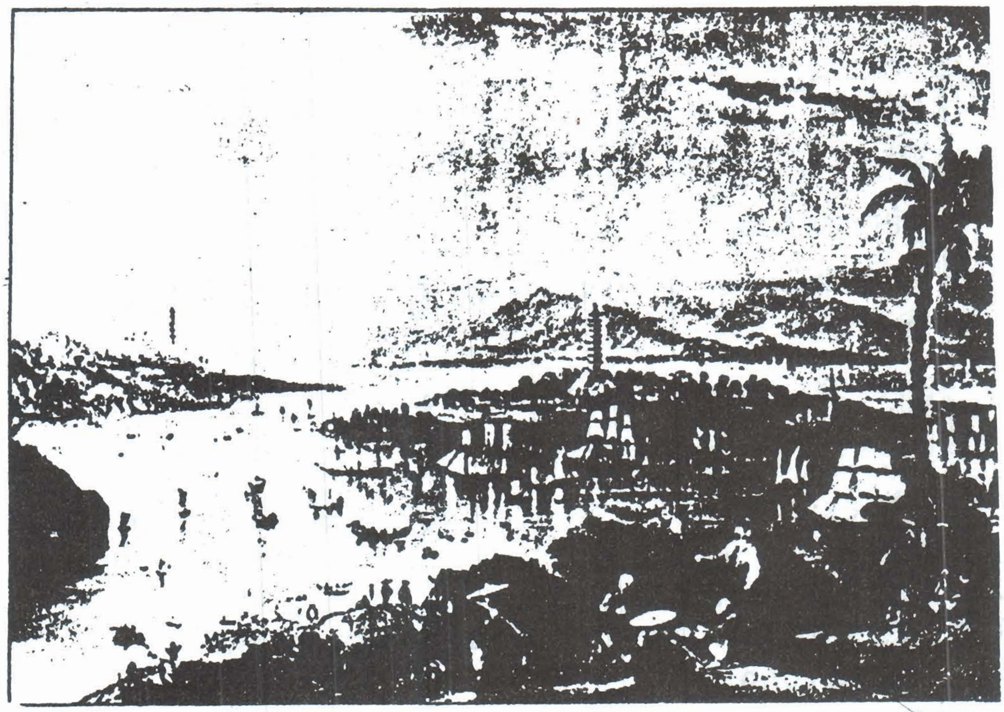

10. वांगपोआ का एक दृश्य

संरक्षण और समर्थन के लिए अपने देशों से आग्रह करते थे। चीन के किसी भी हिस्से में मिशनरियों और स्थानीय लोगों के बीच झगड़े की हालत में, विदेशी ताकतों की तोपनौकाओं का शक्ति प्रदर्शन के तौर पर नदियों में गश्त लगाना और भी आम हो गया। इस तरह, दो अफीम युद्धों के बीच में दौर में विदेशियों के प्रति आम लोगों में पाया जाने वाला जो शत्रुताभाव कैंटन के आसपास के क्षेत्र तक सीमित था, वह तेज़ी के साथ पूरे चीन में फैल गया। 1860 के दशक में ऐसे अनेक झगड़े हुए, जिनमें मार-पीट और हत्याएं हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसके परिणामस्वरूप 1870 में त्येनसिन का नरसंहार हुआ, जहां एक अनाथालय को लेकर हुए झगड़े में 21 विदेशी और लगभग 30 चीनी ईसाई मरे। एलकॉक अधिवेशन के रद्द होने के साथ यह घटना चीन-पश्चिमी संबंधों में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। चीन को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी, उसे हर्जाने के तौर पर कोई पांच लाख ताएल भी देने पड़े।

त्येनसिन का नरसंहार मिशनरियों के मुद्दे पर होने वाला ऐसा अंतिम टकराव नहीं था। इस तरह के दंगे और झगड़े बार-बार हुए। उनमें से कुछ तो विशेष तौर पर गंभीर थे, जैसे 1886 में पश्चिमी चीन के सिचवान प्रांत में होने वाले दंगे, और 1891 में यांगसी नदी की घाटी पर होने वाले दंगे। यांगसी नदी की घाटी पर होने वाले दंगे के कारण तो मिली-जुली पश्चिमी ताकतें चीन का अतिक्रमण करते-करते रह गईं। क्योंकि चिंग सरकार के पूर्ण आत्म-समर्पण से यह स्थिति टल गई। चीनियों ने इस समर्पण को पसंद नहीं किया, उनमें चिंग विरोधी भावना और भी प्रबल हो गई, और वे इस बात को मज़बूती से मानने लगे कि चिंग शासक "गद्दार" थे जिनकी विदेशियों से सांठगांठ थी। इस तरह विदेश-विरोधी लहरें चिंग वंश को उखाड़ फेंकने के लिए होने वाले आंदोलनों से मिल गई। इन लहरों के इस तरह मिलने के कारण ही उत्तरी चीन में 1898-1900 का बॉक्सर विद्रोह हुआ। सत्ता छिनने के डर से, चिंग सरकार ने अपनी नीतियां ही बदल दीं और वह विदेशियों के खिलाफ विद्रोहियों का साथ देने लगी। फिर भी, विदेशी ताकतों की मिली-जुली सेनाओं ने जब उत्तरी चीन पर हमला बोला और एक बार फिर पीकिंग के एक बड़े हिस्से पर कब्ज़ा करके उसे नष्ट कर दिया, तो चिंग सरकार ने फिर आत्म-समर्पण कर दिया। बॉक्सर विद्रोह में हुई भारी पराजय को यह दस साल और झेल गई, लेकिन अब उसकी स्थिति पहले जैसी नहीं रह गई थी। साम्राज्यवादी ताकतों ने चीन में अपनी पैठ और भी गहरी कर ली। 1901 में मित्र ताकतों ने चीन पर जो बॉक्सर संधि थोपी उसकी अत्यधिक कठोर शर्तों ने चीन की आर्थिक वित्तीय और राजीतिक स्वाधीनता में और भी दरारें बना दीं।

7.3.2 चीन की सीमारेखा पर विदेशी दबाव

सन् 1870 के बाद, बड़ी ताकतें भी चीनी साम्राज्य की कीमत पर, क्षेत्रीय विस्तार में फिर से दिलचस्पी लेने लगीं। शुरुआत में, उनकी विस्तारवादी गतिविधियों का लक्ष्य चीन का मुख्य भाग नहीं था। वे चीन की सीमारेखा पर पड़ने वाले क्षेत्रों पर कब्ज़ा करना चाहते थे, जिनपर

चिंग सरकार का प्रभावी कब्जा नहीं था (जैसे पश्चिम में सिक्यांग), या जिन्हें बहुत पहले से चीन का करद (केवल कर देने वाला) राज्य माना जाता था (जैसे वियतनाम और कोरिया) फिर भी, सीमारेखा पर पड़ने वाले इन क्षेत्रों को दी गई हर चुनौती का प्रभाव चीन की सुरक्षा और प्रतिष्ठा पर पड़ता था और उससे चीन की बढ़ती कमज़ोरी की और भी पोल खुलती थी।

इस दिशा में पहला कदम रूस ने उठाया। रूस ने 1871 में सिक्यांग के एक विद्रोह का लाभ उठाते हुए वहां के इसी क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। दस साल तक चले लंबे संघर्ष के बाद ही चिंग सरकार सेंट पीटर्सबर्ग की संधि के ज़रिए 1881 में इस क्षेत्र का अधिकांश कब्जा वापस ले पाई।

ठीक उसी दौर में, जापान ने चीनी तट पर के रयूक्यू द्वीपों और ताइवान के द्वीपों पर कब्जा करने का प्रयास शुरू किया। जापान ने 1874 में कुछ समय के लिए ताइवान पर कब्जा कर लिया। अंत में, 1875 में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसमें रयूक्यू द्वीपों पर जापान की प्रभुसत्ता को चुपचाप स्वीकार कर लिया गया। इस संधि में चीन जापान को 20 लाख डालर का हर्जाना देने को राज़ी हो गया।

इली और फारमूसा में रूस और जापान का कब्जा हो जाने के बाद चीन सीधे-सीधे लड़ाई में नहीं कूदा। लेकिन दस साल बाद, चीन ने वियतनाम (अन्नाम) को लेकर फ्रांस से लड़ाई की। वियतनाम एक अरसे से चीन का करद राज्य था। 1884-85 की चीनी-फ्रांसीसी लड़ाई चीन के लिए विनाशकारी रही। चीन को इसमें कोई हर्जाना तो नहीं देना पड़ा, लेकिन उन्हें औपचारिक तौर पर वियतनाम पर अपने सारे अधिकार छोड़ने पड़े। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह तथ्य था कि यह हार अपनी सैनिक क्षमता को आधुनिक तौर पर मज़बूत बनाने के चीन के दस साल के प्रयासों की स्पष्ट असफलता का प्रतीक थी। इस सीमित आधुनिकीकरण की असफलता ने कुछ चीनियों को आने वाले सालों में अधिक स्पष्ट सुधारों की वकालत करने को प्रेरित किया, जबकि 1911 की क्रांति के नेता, सन यात सेन जैसे अन्य लोगों का यह विश्वास था कि चीन को और शर्मनाक स्थितियों से बचाने के लिए चिंग सरकार को उखाड़ फेंकना ही आवश्यक था।

वियतनाम में अपनी जीत के बाद फ्रांस ने 1893 में लाओस को जीत लिया। ब्रिटेन ने भी कुछ क्षेत्र हथिया लिए, जिससे चीनी साम्राज्य की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया। उसने 1886 में बर्मा को अपने में मिला लिया। 1890 में सिक्किम को ब्रिटेन का संरक्षित राज्य बना लिया, और बाद में तिब्बत में भी पैठ कर ली। रूस ने चीन की उत्तरी सीमा पर साइबेरिया को तेज़ी से अपना उपनिवेश बनाने का काम शुरू कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस बीच चीन का एक पुराना करद राज्य और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक रूप में उससे अत्यधिक प्रभावित कोरिया कुछ ताकतों का ध्यान केंद्र बन गया। अंत में, 1885 में एक चीनी-जापानी समझौते के ज़रिए जापान ने कोरिया के मामलों में हस्तक्षेप करने के अपने अधिकार को स्थापित करने का सफल प्रयास किया। चीन के पास कुछ अधिकार बने रहे, लेकिन अधिक समय तक नहीं। 1895 में, जब कोरिया के राजा के खिलाफ एक विद्रोह के दौरान चीनी और जापानी दोनों सेनाओं ने हस्तक्षेप किया तो जापानियों ने चीनी सेनाओं की वापसी की मांग की। इसके परिणामस्वरूप एक लड़ाई हुई, जिसमें चीनियों की बुरी तरह से हार हुई और उनकी आधी आधुनिकीकृत नौसेना नष्ट हो गई। उसके बाद होने वाली शिमोनोसेकी संधि में चीन को बहुत ही शर्मनाक शर्तों को मानना पड़ा, जिनमें कोरिया, ताइवान और पेस्काडर्स द्वीपों में चीन के तमाम अधिकारों का पूर्ण त्याग शामिल था। इससे भी महत्वपूर्ण था लियाओदोंग प्रायद्वीप का समर्पण, जो मंचूरिया का हिस्सा था। अंत में, जापान को रूस, जर्मनी और फ्रांस के दबाव में लियाओदोंग को लौटाना पड़ा। इन ताकतों का यह दबाव डालना जापान के साथ उनकी अपनी शत्रुता से प्रेरित था। जो भी हो, इन तीन ताकतों के हस्तक्षेप की भारी कीमत चीन को इन ताकतों को और रियायतें देकर चुकानी पड़ीं। इसके कारण तमाम बड़ी ताकतों में "रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की वास्तविक स्थिति बनी, जिसके चलते साम्राज्यवादी ताकतों के हाथों चीन को और भी अपमान तथा शोषण के दिन देखने पड़े।

7.4 रियायतों के लिए भगदड़

शुरुआत में चीन में पश्चिमी ताकतों का आर्थिक हित व्यापार था, और अफीम युद्धों के बाद भी व्यापार ही उनका प्रमुख हित बना रहा। संधिगत बंदरगाहों में विदेशी ताकतों ने जो

रियायतें हासिल कीं उनका उद्देश्य चीन में अपने पांव जमाना इतना नहीं था, जितना कि विदेशी व्यापार की प्रगति को सुगम बनाना। फिर भी, इस व्यापार के विकास के साथ-साथ विदेशियों की अन्य आर्थिक गतिविधियों का भी विकास हुआ। शुरुआत में, बैंकिंग और शिपिंग जैसी ये आर्थिक गतिविधियां व्यापार से करीबी तौर पर जुड़ी थीं। पहला विदेशी बैंक ब्रिटिश-चार्टर्ड बैंकिंग कारपोरेशन था, जिसकी स्थापना 1845 में हांगकांग में और 1848 में शंघाई में हुई। पहली विदेशी शिपिंग कंपनी शंघाई स्टीम नेवीगेशन कंपनी थी, जिसकी स्थापना 1862 में अमेरिकियों ने की।

बहरहाल, 1860 के बाद विदेशी कंपनियों ने निर्माण के काम में भी हिस्सा लिया। 1894 तक विदेशी उद्योग उपक्रमों की संख्या 87 से भी अधिक हो गई थी, जिनमें कुल एक करोड़ तीस लाख तैल की पूंजी लगी थी और 34,000 व्यक्ति काम कर रहे थे। शुरुआत में, ये कंपनियां मुख्य तौर पर जहाज़ निर्माण और उनकी मरम्मत तथा निर्यात के लिए सामान तैयार करने में लगी थीं। लेकिन जल्दी ही उन्होंने चीन के अंदर ही बिक्री के लिए सामान के उत्पादन का काम भी शुरू कर दिया। चीन में बिक्री के लिए स्थानीय तौर पर सामान बनाना विदेशी कंपनियों के लिए सीमा शुल्क बचाने और सामान ढोने का खर्च कम करने का एक तरीका था। भारी पूंजी, विशेष अधिकार और प्रौद्योगिक श्रेष्ठता हासिल होने के कारण, इन विदेशी कंपनियों को चीनी निर्माताओं की ओर से बहुत कम प्रतिस्पर्धा का सामना करना होता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पच्चीस वर्षों में साम्राज्यवाद के बढ़ने के साथ, साम्राज्यवादियों की उनकी पूंजी के नए निकासों की इच्छा में भी खूब बढ़ोत्तरी हुई। उन्हें चीन निवेश के लिए एक विशाल और अछूता क्षेत्र दिखाई दिया। विदेशी उद्योगपतियों और बैंकरों में हाइड्रोलिक निर्माण, किलेबंदियां बनाने, और हथियारों के जहाज़ों का प्रबंध करने, रेलगाड़ी की पटरियां बिछाने और खानें खोलने आदि के लिए चीनी सरकार से ठेके हासिल करने के लिए जबरदस्त होड़ होने लगी। चीनी सरकार और दूसरे देशों के अपने प्रतिस्पर्धियों से मज़बूत स्थिति में होने के लिए, एक देश की कंपनियों ने सिंडीकेट बनाने शुरू कर दिए, जिनका काम किसी परियोजना से संबंधित तमाम मामलों को संभालना था — अर्थात् इस परियोजना के लिए वित्त की व्यवस्था करने से लेकर, तकनीकी विशेषज्ञता और कर्मचारियों का, और तमाम आवश्यक उपकरणों का भी प्रबंध करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चीनी अर्थव्यवस्था में साम्राज्यवाद की घुसपैठ में 1894-95 के चीन-जापान युद्ध के बाद नाटकीय वृद्धि हुई। चीनी सरकार की कमज़ोरी का इस्तेमाल करके अधिक से अधिक रियायतें हासिल कर लेने के लिए किया गया। जापान के उदाहरण का अनुसरण करते हुए युद्ध के बाद चीन की ओर से प्रकट रूप में हस्तक्षेप करने वाली तीन ताकतों — रूस, फ्रांस और जर्मनी — ने भी विशेष विशेषाधिकारों और रियायतों की मांग की। उन्होंने "अधिकार" के तौर पर यह मांग की कि उन्हें चीन के उन हिस्सों में रेलगाड़ी की पटरियां बिछाने, कारखाने तथा खानें खोलने की अनुमति दी जाए जहां उनके अनुसार उन्हें विशेष प्रभाव का अधिकार था। जापान की तरह, रूस ने मंचूरिया में रियायतों की मांग और प्राप्ति की। फ्रांस की दिलचस्पी यूनान, गुआंगशी और गुआंगडांग के दक्षिण प्रांतों में थी, जबकि जर्मनी पूर्वी तटीय क्षेत्र शानडांग में दिलचस्पी रखता था। ब्रिटेन ने भी पीछे न रहते हुए, हांगकांग और यांगसी नदी घाटी से लगे हुए क्षेत्रों, वाईहाईवाई के बंदरगाह में रियायतें मांगीं और हासिल कीं। सामान्य बात की जाए तो बड़ी ताकतों ने इन रियायतों को हासिल करने और अपने प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने के लिए जिस तरीके का इस्तेमाल किया, वह था क्षेत्रों को एक लंबे समय (जैसे 99 साल) के लिए "पट्टों" पर लेना, जिस दौरान चीनी सरकार का उन क्षेत्रों पर कोई अधिकार नहीं रहना था, जबकि इस अवधि में संबंधित विदेशी ताकत का उस क्षेत्र पर पूरा कब्जा रहता। इसमें उन क्षेत्रों में अपने पुलिस बल तैनात करने का अधिकर भी शामिल था या, संबंधित विदेशी ताकत चीनी सरकार से यह वचन ले लेती कि वह और किसी देश को उन क्षेत्रों में अधिकार नहीं देगी।

"रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की रफ्तार इतनी तेज थी कि शताब्दी का अंत होते-होते चीन एक ऐसे बड़े तरबूज की तरह हो गया था, जिसे दूसरों के मज़े के लिए फांक-फांक कर दिया गया था। इनमें से हरेक फांक का वास्तविक स्वामी एक विदेशी ताकत थी। इस बात का निर्णय यह विदेशी ताकत करती थी कि उसके अपने भाग में किस रेलपथ का विकास करना चाहिए, और इसके पीछे उसके अपने लाभ के अलावा और कोई लेना-देना नहीं होता था। ये ताकतें फिर — चीनी सरकार का कोई हवाला दिए बिना — आपस में ही ये समझौते कर लेती थीं कि वे एक-दूसरे के प्रभाव-क्षेत्रों का सम्मान करेंगी। अमेरिकियों को तो कोई रियायत नहीं मिली हुई थी, लेकिन उन्होंने भी जब तमाम ताकतों के साथ यह समझौता

किया कि वह उनके प्रभाव-क्षेत्रों में व्यापार, संधिगत बंदरगाहों और सीमा-शुल्क सेवा के समान अवसर का सम्मान करेंगे तो उन्होंने भी इस समझौते में चीनी सरकार को शामिल करने की कोई चिंता नहीं की। न ही उन्होंने चीन में इन देशों के अपने प्रभाव-क्षेत्र या रियायतें होने पर कोई सवाल उठाया। यह 1900 की तथाकथित मुक्त नीति थी।

"रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी विदेशी ताकतों द्वारा चीनी सरकार को दिए गए ऋण। 40 करोड़ फ्रांक के ऐसे ऋण के लिए पहला समझौता फ्रांको-रशियन बैंकिंग कारपोरेशन ने हासिल किया, ताकि चीनी सरकार उसके ऊपर जापान द्वारा 1894-95 के युद्ध के बाद थोपे गए हर्जाने को लौटा सके। दूसरी ताकतों ने भी और ऋण देकर इस उदाहरण का तुरंत अनुसरण किया। 1896 में ब्रिटिश और जर्मन बैंकों ने चीनी सरकार के द्वारा जापान को दिए जाने वाले हर्जाने की दूसरी किस्त चुकाने के लिए एक और ऋण का अनुबंध लिया। इस ऋण की शर्तें चीनियों के लिए और भी प्रतिकूल थीं। इस ऋण की न केवल ब्याज दर ही अधिक थी, बल्कि इसमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि चीन को 36 साल पूरे होने से पहले पूरा ऋण अदा नहीं करने दिया जाएगा और विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय के प्रशासन में कोई बदलाव भी नहीं करने दिया जाएगा क्योंकि राजस्व का एक हिस्सा ऋण की जमानत के तौर पर रखा गया था।

इन ऋणों के जरिए चीन पर साम्राज्यवादियों का वित्तीय और आर्थिक शिकंजा इतना कस गया कि चीन उससे फिर निकल नहीं सका। शताब्दी के अंत तक, सीमा-शुल्क से मिलने वाला वह सारा राजस्व, वह सारा धन, जिसका इस्तेमाल कभी चीन की प्रतिरक्षण शक्ति और दूसरे क्षेत्रों को आधुनिक बनाने के लिए किया गया था, अब उसका इस्तेमाल बस ऋणों की अदायगी के लिए हो पाता था। इसके अलावा, ऐसा हरेक ऋण देने वाले के लिए अत्यंत लाभकारी होने के बावजूद चीनी सरकार पर एक अहसान माना जाता था, जिसके बदले में विदेशी ताकत और अधिक रियायतों और दूसरे विशेषाधिकारों की अधिकारी होती थी। इस तरह, आर्थिक शोषण का एक अत्यधिक जटिल जाल या तंत्र बना लिया गया था।

विदेशी साम्राज्यवादियों के हाथों चीन को किस हद तक अपमान और अधीनता का शिकार होना पड़ा था, इसका अंदाज़ा केवल चीनी सरकार और विदेशी सरकारों के बीच हुई औपचारिक संधियों से नहीं लगाया जा सकता। चीन ने विभिन्न विदेशी बैंकों, सिंडीकेटों आदि के साथ जो आर्थिक अनुबंध तथा समझौते किए, उन्होंने भी चीन की प्रभुसत्ता और स्वाधीनता की जड़ें कम नहीं खोदीं। विदेशी अनुबंध करने वाले पक्ष शक्तिशाली आर्थिक समूह थे, जिन्हें अपने देश की सरकारों का पूरा समर्थन मिला हुआ था। चीन साम्राज्यवादियों के साथ पूरे स्तर के युद्ध में अपने आपको घसीटे बिना इन समझौतों से मुकरने का खतरा नहीं उठा सकता था। इस तरह, 1911 में चिंग सरकार का तख्ता उखड़ जाने के बाद भी, उसके बाद की सरकारों ने कई सालों तक विदेशी ताकतों के साथ कई संधियों या आर्थिक समझौतों को रद्द नहीं किया, और ये विदेशी ताकतें और तीन दशकों तक आर्थिक तथा राजनीतिक स्तर पर चीन पर हावी रहीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) लगभग दस पंक्तियों में उन स्थितियों का विवरण दीजिए, जिनके कारण "रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की स्थिति बनी।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) लगभग दस पंक्तियों में 1884-85 के चीन-फ्रांस युद्ध के परिणामों के बारे में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित में से कौन-से सही (√) हैं, और कौन-से गलत (×)? निशान लगाइए :

i) त्येनसिन की संधि में मिशनरियों को चीन में कहीं भी रहने और अपनी गतिविधियां करने की अनुमति दी गई।

ii) 1990 की मुक्त नीति समझौते में चीनी सरकार को भी शामिल किया गया।

iii) पहली विदेशी कंपनी 1862 में जापान ने शंघाई में स्थापित की।

iv) 1860 से 1911 तक चीन की आर्थिक, राजनीतिक और क्षेत्रीय स्वाधीनता की जड़ें साम्राज्यवादियों ने खोदीं।

7.5 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चीन ऐसा उपनिवेश कभी नहीं बना जिसपर किसी एक ताकत का सीधे-सीधे शासन हो। इसे एक "अर्ध-उपनिवेश" या "अति-उपनिवेश" (कई ताकतों का उपनिवेश) बताया गया है। इससे साम्राज्यवादियों के हाथों चीन की अधीनता बिल्कुल अनूठी रही।

सन् 1860 से 1911 की क्रांति तक के पचास वर्षों में चीन की आर्थिक, राजनीतिक और क्षेत्रीय स्वाधीनता को साम्राज्यवादियों ने लगातार तोड़ा। विदेशी अतिक्रमों के साथ संधियां हुईं जिनमें चीनी सरकार एक के बाद एक रियायत देती चली गई। अनेक अनुबंध और आर्थिक समझौते भी विभिन्न विदेशी कंपनियों और बैंकों के साथ हुए। लेकिन, इन संधियों और समझौतों का आर्थिक पक्ष इतना महत्वपूर्ण नहीं था, जितनी कि चीनी साम्राज्य की वास्तविक सैनिक और आर्थिक कमज़ोरी। इसी कमज़ोरी के कारण चीन इन संधियों और समझौतों से बिल्कुल बंध गया। कई दशकों की क्रांतिकारी उथल-पुथल के दौरान फिर से सैनिक और राजनीतिक शक्ति हासिल कर लेने के बाद ही कहीं चीन विदेशी ताकतों की अधीनता से मुक्त हो सका।

7.6 शब्दावली

विदेशी रियायती क्षेत्र: संधिगत बंदरगाहों के वे क्षेत्र, जिनमें विदेशी रहते थे।

चीनी राजकता: चीनियों और विदेशियों द्वारा संयुक्त प्रशासन।

मिशनरी: विदेशों में ईसाई धर्म का प्रचार करने और लोगों को ईसाई बनाने के उद्देश्य से भेजे गए ईसाई पुरोहित।

तैल: चीनी मुद्रा।

करद राज्य: चीन को कर देने वाले राज्य।

सिंडीकेट: किसी एक देश के बैंकों अथवा उद्योग संस्थानों का समूह, जिसका काम चीन में ली गई परियोजनाओं में सहयोग करना था।

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिएं:
क) संधिगत बंदरगाह और विदेशी रियायतें, ख) विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय, ग) वाणिज्यदूतीय अदालतें, घ) ज़ोंगली यामेन। देखिए उपभाग 7.2.1. और 7.2.2

2) आपके उत्तर में सीमा-शुल्क का जमा करना शामिल होना चाहिए।

3) i) √ ii) √ iii) √ iv) ×

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहिए :
   - सहयोग की नीति का असफल रहना
   - विदेशी ताकतों द्वारा क्षेत्रीय अतिक्रमण, मिशनरियों के मुद्दे पर बड़ी ताकतों और चीन में बढ़ते टकराव
   - साम्राज्यवादियों में उनकी पूंजी के लिए निकासों और नए बाज़ारों को लेकर प्रतिद्वंदिता। देखिए 7.3

2) अपने उत्तर के लिए उपभाग 7.3.2. को आधार बनाइए।

3) i) √ ii) × iii) × iv) √

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 8 जापान और पश्चिम (मेजी पुनः स्थापन तक)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 प्रारंभिक संपर्क
   8.2.1 आइबेरियाई अंतराल
   8.2.2 सकोकु
   8.2.3 डच वातायन
8.3 जापान के तट पर काले जहाज़
8.4 बाहरी दबाव और आंतरिक बहस
   8.4.1 पेरी का अगमन
   8.4.2 परिणाम
8.5 जापान में आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- पश्चिमी देशों के साथ जापान के प्रारंभिक संपर्कों के बारे में जान सकेंगे :
- यह सीख सकेंगे कि जापान ने पृथकता की नीति क्यों अपनाई;
- यह समझ सकेंगे कि जापान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के पश्चिमी ताकतों के प्रयासों के पीछे क्या कारण थे;
- जापान में विदेशियों के साथ संबंधों को लेकर होने वाली बहसों के बारे में जान सकेंगे;
- यह समझ सकेंगे कि जापान को किन दबावों और परिस्थितियों में आकर अपनी पृथकता की नीति को छोड़ना पड़ा; और
- यह समझ सकेंगे कि जापान एक उपनिवेश क्यों नहीं बना।

8.1 प्रस्तावना

जापान का विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के साथ आपसी व्यवहार का लंबा ऐतिहासिक अनुभव रहा है। इससे यहाँ नई विचारधाराओं को हासिल करने की परंपरा बनी है, और इस परंपरा का अपने उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने की रीति बनी है। इस इकाई का उद्देश्य मेजी पुनः स्थापना तक पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जापान के संबंध का पता लगाना है।

पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जापान का पहला अनुभव 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ, और इस संपर्क से पश्चिम के बारे में जानकारी की परंपरा बनी जिसका प्रभावी इस्तेमाल 19वीं शताब्दी के मध्य में किया गया।

जापान का इस तरह का दूसरा अनुभव 19वीं शताब्दी के मध्य में उस समय हुआ जब पश्चिमी साम्राज्यवाद अपने चढ़ाव पर था। इस सपंर्क के परिणास्वरूप जापान ने एक पूर्व-आधुनिक समाज से एक आधुनिक समाज के रूप में विकास किया, और इस प्रक्रिया में वह किसी पश्चिमी ताकत का उपनिवेश भी नहीं बना। राष्ट्रीय पुरुत्थान और राष्ट्रीय स्वाधीनता का संरक्षण पश्चिमी देशों के साम्राज्यवादी अतिक्रमण से सफलतापूर्वक निपटने का परिणाम था। इस इकाई में इस बात पर विचार किया गया है कि जापान के आंतरिक

स्वरूप में बदलाव की मुख्य धाराएं क्या थीं और उनकी पश्चिमी देशों के अतिक्रमण के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही।

8.2 प्रारंभिक संपर्क

सन् 1542 में एक चीनी नौका पर यात्रा कर रहे तीन पुर्तगालियों को तूफान के कारण जापान के तानेगाशिमा द्वीप में उतरना पड़ा। कहा जाता है कि यूरोपियों और जापानियों के बीच सबसे पहला संपर्क यही था। इस थोड़े समय के संपर्क के बाद पुर्तगाली व्यापारियों और मिशनरियों का आना अधिक हो गया। यूरोप के साथ जापान के सपंर्क से जापान में केवल बंदूकों और तंबाकू जैसे नए सामान ही नहीं आए बल्कि जापानियों को कई नए विचारों और ईसाई धर्म के संपर्क में आने का भी अवसर मिला। जापान के शासकों ने सक्रिय होकर इन संपर्कों को बढ़ावा दिया और नए विचारों को ग्रहण करते हुए उन्होंने मिशनरियों को उनके धर्म का प्रचार करने की छूट दे दी।

लेकिन, तोकुगावा काल के शुरुआत के वर्षों में यूरोपियों और जापानियों के बीच समस्याएं उठ खड़ी हुईं, जिनका आंशिक कारण था ईसाई धर्म को एक विनाशकारी प्रभाव के रूप में देखा जाना। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशियों के जापान में घुसने पर रोक लगा दी गई। इस तरह, यूरोपियों के साथ जापान का पहला संपर्क लगभग एक सौ वर्षों तक ही सीमित रहा। फिर भी इस छोटे से अंतराल की विरासत ने जापान के आंतरिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। "डच स्कालर" कहे जाने वाले कुछ विद्वानों ने एक ऐसे ज्ञान का विकास किया जिससे चीनी ग्रंथों के वर्चस्व पर सवालिया निशान लगा गया। इन विद्वानों को "डच स्कालर" इसलिए कहा गया क्योंकि इन्होंने डच भाषा का अध्ययन किया और उस भाषा के माध्यम से पश्चिमी विज्ञान और सभ्यता के बारे में सीखा। उनका प्रभाव यद्यपि बहुत कम और केवल तोकुगावा काल के अधिकांश समय तक ही सीमित रहा, फिर भी उन्होंने तोकुगावा शासन के अंतिम वर्षों में उस समय महत्त्व हासिल कर लिया जब पश्चिमी राष्ट्र एक बार फिर जापानी तट पर प्रकट हुए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.2.1 आइबेरियाई अंतराल

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में पुर्तगाली जापान में आए। उस समय जापान एकीकरण की प्रक्रिया से गुज़र रहा था। इस अर्थ में उस समय के जापान को राष्ट्र कहना अब भी उपयुक्त नहीं है। उस समय जापान पर कुछ शक्तिशाली क्षेत्रीय सामंत राज कर रहे थे, जिन्हें दाइम्यो करते थे। ये दाइम्यो अपनी सत्ता को सामुराई के माध्यम से चलाते थे। ओवारी प्रांत के सामंतों के बेटे ओदा नाबुनागा (1534-1582) ने अपने कौशल और शक्ति के बल पर जापान के एक बड़े हिस्से पर अपना अधिकार कर लिया था, और 1568 में जब उसने शाही राजधानी क्योतो में प्रवेश किया था, उस समय जापान का मध्य युग समाप्त हो गया था, यह कहा जा सकता है। एकीकरण की प्रक्रिया को उसके सेनापति हिदेयोशी ने आगे बढ़ाया, जिसने नोबुनागा की मृत्यु के बाद सत्ता हड़प ली थी। हिदेयोगी के बाद, सत्ता पर चतुर और चालाक तोकुगावा ईयेसु ने कब्जा कर लिया। ईयेसु को एक ऐसी शासन व्यवस्था कायम करने में सफलता मिली, जिसने जापान को लगभग ढ़ाई सौ वर्षों तक एक स्थायी राज दिया। जापान का पश्चिमी देशों के साथ प्रारंभिक संपर्क इस संदर्भ में हुआ।

यहाँ यह बता देना ठीक होगा कि यूरोपीय राष्ट्रों के साथ तो जापान का संपर्क बहुत कम समय के लिए और सीमित रहा, लेकिन अपने पूर्वी एशियाई पड़ोसियों के साथ इसके सपंर्कों का अनुभव लंबा रहा। जापानी सभ्यता के निर्माण के वर्षों में कोरिया और चीन का प्रभाव जापान को आधुनिक ढंग की संस्थाएं और दर्शन देने और ढालने में निर्णायक रहा (देखिए खंड 1) 14वीं शताब्दी में जापानी व्यापार, वाणिज्य और समुद्री लूटमार तक में सक्रिय रहे, और जापानी बस्तियाँ स्याम जैसे सुदूर क्षेत्रों में भी थीं।

यूरोपीय विस्तारवाद का इतिहास लंबा और जटिल है, लेकिन यहाँ हमारे लिये बस इतना जानना पर्याप्त होगा कि पोप द्वारा जारी एक विधेयक ने दुनिया को स्पेन और पुर्तगाल में बाँट दिया था पुर्तगाल को तो पूर्वी गोलार्ध में ईसाई धर्म फैलाने का अधिकार दे दिया गया और स्पेन को पश्चिमी गोलार्ध में। पुर्तगाल 1540 में इगनेशियस लोयोला ने जिस सोसायटी ऑफ जेसुइट्स की स्थापना की वह सबसे प्रभावशाली पंथ था। परिणामस्वरूप, जेसुइटों ने ईसाई धर्म को फैलाने में प्रमुख भूमिका निभाई और उन्होंने 1580 में फिलिप द्वितीय के नेतृत्व में

11. सेंट फ्रांसिस जेवियर (एक जापानी चित्रकार की कृति)

स्पेन और पुर्तगाल के एक हो जाने के बाद भी जापान पर अपना निर्द्वंद्व अधिकार बनाए रखा। इस एकाधिकार को फ्रांसिस्कन, डोमीनिकन और आगस्टीनियन पंथों ने पसंद नहीं किया। 1608 में जाकर ही जापान में काम कर रहे ईसाई पंथों के बीच प्रतिद्वंद्विता और प्रतिस्पर्धा को और बढ़ावा मिला। इस प्रतिद्वंद्विता का प्रभावी इस्तेमाल शासकों ने अपने हितों के पोषण के लिए किया।

यह जान लेना आवश्यक है कि पुर्तगाली मिशनों के साथ कई मिशन आए तो, फिर भी वे सभी पुर्तगाली नहीं थे। उदाहरण के लिए, फ्रांसिस जेवियर (1506-1552) नवारे का था जो उस समय फ्रांस का हिस्सा था, और विल एडम्स (1564-1620) ईयेसु के साथ काम करने वाला अंग्रेज़ एक डच जहाज इरेस्मस पर काम करता था।

जापान और यूरोपीय राष्ट्रों का संपर्क ऐसे दौर में हुआ, जब वाणिज्य और व्यापार की प्रतिद्वंद्विता गंभीर थी, और इसके आलावा जापान में ईसाई धर्म का जो संस्करण आया वह अत्यंत आक्रामक और कठोर किस्म का था। 1549 में फ्रांसिस जेवियर कागोशिमा में आया और उसने सतसुमा के तत्कालीन दाइम्यो की सहमति से ईसाई धर्म का प्रचार करना शुरू कर दिया। इसके विपरीत, जापान का धार्मिक वातावरण सहिष्णुता और शिंतों तथा बौद्ध धर्म व्यवस्थाओं के साथ-साथ रहने का वातावरण था व बौद्ध धर्म भारत से चीन और कोरिया के रास्ते आया था और यहाँ पहुंचते-पहुंचते उसमें परिवर्तन और रूपांतर भी हुए। जब ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ तो उसे भी उसी रुचि और सहिष्णुता के साथ देखा गया। उसे इस रूप में नहीं देखा गया कि वह जापान के सामाजिक ढांचे या राजनीतिक सत्ता के लिए खतरा बनेगा। लेकिन यहाँ हमें याद रखना होगा कि जापान में ईसाई धर्म अकेला नहीं आया, क्योंकि इसके साथ व्यापार और वाणिज्य भी आए।

ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों और उनके द्वारा खड़ी की गई समस्याओं का गहरा संबंध व्यापार की इच्छा से है, और कभी-कभी एक को दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता है। नोबुनागा से लेकर ईयेसु तक तमाम शासक ईसाई विचारों के प्रति उदार रहे और उन्होंने मिशनरियों के साथ अच्छा व्यवहार किया। कई दाइम्यों ने ईसाई धर्म अपना लिया। इसका एक बड़ा कारण व्यापार को आकर्षित करना था। जेसुइटों के प्रति नोबुनागा के सहानुभूतिपूर्ण रवैये का निर्धारण और उसके द्वारा बौद्ध और अन्य पंथों के दमन द्वारा भी हुआ। बौद्ध मठ ऐसे शक्तिशाली केंद्र हो गए थे जो अपनी निजी सेनाओं और बड़े भू-सम्पत्ति के बल पर राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल कर रहे थे। नोबुनागा के संरक्षण के कारण जेसुइटों को लोगों को ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने में मदद मिली और 1582 तक ईसाई धर्म अपनाने वालों की संख्या 150,000 हो गई थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अगले शासक हिदेयोशी ने 1587 में ईसाई धर्म पर पाबंदी लगा दी और अनेक पुरोहितों तथा ईसाई धर्म अपनाने वाले जापानियों को प्राणदंड दे दिया। हिदेयोशी ने शायद ईसाई धर्म के राजनीतिक खतरों के डर से ऐसा किया। स्पेनी साधुओं और व्यापारियों ने भी पुर्तगालियों के विरुद्ध षड़यंत्र किया और अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास किया। ईसाई धर्म अपनाने वालों को मारा तो गया, लेकिन यह यूरोप में धर्म को लेकर हुए दमन के मुकाबले में कुछ भी नहीं था। पाबंदी के बावजूद हिदेयोशी की रुचि यूरोपीय व्यापारियों को पूर्वी जापान में लाने में थी। यूरोपीय केवल पश्चिमी देशों के सामान का व्यापार लेकर नहीं आए। पुर्तगालियों ने चीन और जापान के बीच व्यापार में बिचौलियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे चीनी कपड़े, चीनी मिट्टी के बर्तन, दवाइयाँ, मसाले और सोना भी लेकर आए।

जब ईयेसु सत्ता में आया तो उसने भी व्यापारियों को इस बात के लिए प्रभावित करने का प्रयास किया कि वे इदो के निकट बंदरगाहों में आएं। उसका फिलीपीन में स्पेनियों के साथ संपर्क था, मिशनरियों को सहन तो किया जाता था, लेकिन उनके पंथों की प्रतिद्वंद्विता को लेकर संदेह बढ़ रहा था और यह डर भी कि वे अपने शासकों के हितों की पूर्ति कर रहे थे। यह समझ भी थी कि मिशनरियों के बिना भी व्यापार किया जा सकता था, और मिशनरियों पर पाबंदी लगाने वाले फरमान 1606, 1607 और 1611 में जारी भी किए गए। लेकिन किसी विदेशी पुरोहित को प्राण दंड देने की पहली घटना 1617 में, ईयेसु की मृत्यु के बाद ही हुई।

ईयेसु की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी हिदेतादा ने ईसाइयों को प्रताड़ित करना शुरू किया। इसके पीछे यह शंका काम कर रही थी कि उनकी गतिविधियों से राजनीतिक स्थिरता को खतरा पैदा हो जाएगा। यूरोपीय लोग व्यापार के विशेषाधिकारों के लिए उग्र प्रतिस्पर्धा कर रहे थे, और एक-दूसरे के विरुद्ध अफवाहें और शंकाएं फैलाने से भी नहीं चूकते थे। 1622 में अधिकारियों को यह आशंका हुई कि स्पेनी रोमन कैथोलिक चर्च जापान पर आक्रमण की योजना बना रहा था ईसाई धर्म अपनाने वाले जापानियों की संख्या तो ज्ञात नहीं है, लेकिन ऐसा अनुमान है कि यह 3,00,000 तक पहुँच गई थी। बढ़ती शंका के कारण दमन भी बढ़ा और 1626 के बाद ईसाई धर्म भूमिगत हो गया।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

आखिरी आघात 1637 में शिमाबारा विद्रोह होने के बाद लगा। इस क्षेत्र में ईसाई धर्म अपनाने वाले बड़ी तादाद में थे और गवर्नरी अधिकारी के लिए इस चुनौती को चौकन्ना होकर देखा गया। विद्रोही किसानों ने ईसाई नारे लगाए और हाथों में यीशु और मरियम लिखे झंडे थे। तोकुगावा गवर्नरी ने इसे एक राजनीतिक खतरे के रूप में देखा और इस विद्रोह को कुचल दिया। विद्रोह के बाद जो स्थिति बनी उसमें बौद्ध पुरोहित को "लोगों के मन-मस्तिष्क को शांत करने" को भेजा गया। अगले वर्ष, 1638 में, पुर्तगालियों को निकाल बाहर किया गया।

ईसाई धर्म के प्रति विरोध की भावना राजनीतिक अव्यवस्था के डर के कारण बनी। तोकुगावा गवर्नरी ने ईसाई मिशनरियों द्वारा दाम्यो को नैतिक और भौतिक समर्थन देकर प्रोत्साहित किए जाने के खतरे को देखा, जिससे राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता के लिए खतरा पैदा होता।

एक सिद्धांत के रूप में ईसाई धर्म को प्रचलित धर्मों या पंथों के साथ मिल जाना भी कठिन लगा। शुरुआत में तो मिशनरी बौद्ध धर्म के ही एक और पंथ के रूप में आए थे। उदाहरण के लिए, जेसुइटों ने बुद्ध वैरोकन के लिए "दाइनीची" शब्द का इस विश्वास के साथ इस्तेमाल किया कि इसका अर्थ सर्वोच्च देव होता था। धीरे-धीरे बेशक ईसाई धर्म की समझ बढ़ी, लेकिन इसमें बौद्ध धर्म और अन्य स्थानीय धर्मों के प्रति जो असहिष्णुता थी, उससे इसके लिए यहाँ के लोगों मे स्वीकार्य होना कठिन हो गया।

पुर्तगालियों और स्पेनियों के साथ व्यापार बढ़ाने की गरज से डच भी शामिल हो गए। डचों द्वारा नियुक्त विल एडम्स ईयेसु का कृपा पात्र बन गया, और इस स्थिति का इस्तेमाल उसने कैथोलिक ताकतों के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट राज्यों की शंका को आगे रखने के लिए किया। अंग्रेज़ भी दूसरी ताकतों के साथ प्रतिद्वंद्विता में थे। ईसाई धर्म में व्याप्त समस्याओं और इन प्रतिद्वंद्विताओं के कारण तोकुगावा ने ईसाई धर्म को धीरे-धीरे सीमित कर दिया और अंत में निषिद्ध कर दिया। 1629 में सभी स्पेनियों को देश निकाले का आदेश दे दिया गया और कई को प्राणदंड दिया गया। 1637 में होने वाले शियाबारा के किसान विद्रोह ने, जिसमें अनेक ईसाई थे, ईसाई-विरोधी नीतियों की भयंकरता को बढ़ा दिया। अंग्रेज़ी व्यापार केंद्र 1623 से पहले-पहले बंद हो गया था, और 1640 आते-आते कुछ ही व्यापारी रह गए थे। बेशक चीनी व्यापारी तो थे ही।

8.2.2 सकोकू

तोकुगावा ने पृथकता की जिस नीति का पालन किया, उसे ''सकोकु'' या बंद देश के नाम से जाना जाता है और इस बात को समझाने के लिए कई स्पष्टीकरण दिए गए हैं कि तोकुगावा ने विदेशियों के प्रवेश पर पाबंदी क्यों लगाई और जापानियों को जापान छोड़ने से क्यों रोका। उन्होंने जहाज़ों का आकार भी सीमित कर दिया कि उनमें यात्राएं न की जा सकें। आम तौर पर यह तर्क दिया जाता है कि तोकुगावा को ये कदम इसलिए उठाने पड़े क्योंकि वे रोमन कैथोलिक पंथ को समाप्त करना चाहते थे जो सामाजिक तौर पर एक अव्यवस्थित करने वाला और राजनीतिक तौर पर खतरनाक सिद्धांत था। कैथोलिक लोगों की निष्ठा पोप के प्रति थी और उससे शोगुन (गवर्नर) की सत्ता को खतरा हो सकता था। एक दूसरा स्पष्टीकरण यह दिया जाता है कि तोकुगावा व्यापार पर एकाधिकार करना चाहते थे और यूरोपीय व्यापारी अपने व्यापार को नागासाकी के बंदरगाहों से हटाकर तोकुगावा की राजधानी इदो के आसपास ले जाने के लिए राजी नहीं थे।

फिर भी, इन स्पष्टीकरणों में इस तथ्य को अनदेखा कर दिया गया है कि तोकुगावा के उनके एशियाई पड़ोसियों चीन और कोरिया के साथ राजनीतिक और व्यापारियों संबंध बने रहे। विदेशी व्यापार का इंतजाम दाइम्यो के हाथों में था और यह गवर्नर का एकाधिकार नहीं था। इस तरह त्सुशिमा के दाइम्यो ने कोरिया के वाइग्वान स्थान में एक स्थायी कारखाना 1611 से मेजी काल तक चलाया। रोनाल्ड टोबी जैसे विद्वानों का तर्क है कि तोकुगावा की पृथकता की नीति एक व्यापकतर विदेशी नीति का एक अंग थी जिसमें तोकुगावा शासन की वैधता और प्रभुसत्ता को मज़बूत और पुष्ट करने तथा उसकी सुरक्षा को अधिक से अधिक सुनिश्चित रखने का उद्देश्य सामने था। तोकुगावा अपनी स्थिति को व्यक्त करने लगे और उसी के साथ-साथ उन्होंने चीन केंद्रित विश्व व्यवस्था से भी नाता तोड़ लिया। उन्होंने चीन के साथ संबंधों को सामान्य करने के पहले के प्रयासों को छोड़ दिया और 1635 आते-आते गवर्नर ''जापान के महान युवराज'' की उपाधि का इस्तेमाल करने लगा था। यूरोपीय ताकतों का निष्कासन एक व्यापकतर विदेशी नीति का केवल एक पहलू था। वास्तव में ''सकोकू'' शब्द का इस्तेमाल 1630 के दशक में कभी नहीं हुआ। इसका सबसे पहले इस्तेमान 1858 में ही हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.2.3 डच वातायन

डच व्यापारियों को नागासाकी के तट पर एक कृत्रिम द्वीप दोशिमा से अपना व्यापार जारी रखने की अनुमति मिल गई थी। इस छोटे से व्यापार केंद्र ने जापानियों के लिए पश्चिमी दुनिया की ओर एक वातायन (खिड़की) का काम किया। व्यापार इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितने कि वहाँ आने वाले विचार जिन्होंने ''रंगकुश'' या डच विद्वानों को प्रेरित किया। इन अध्ययनों को आठवें गवर्नर योशिमुने की ओर से सरकारी प्रोत्सान मिला, और अराई हाकुसेकी (1657-1725), सुगिता गेनयाकु (1732-1818) और हिरागा गेनाई (1726-1779) जैसे जाने-माने विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण काम किए, जिससे वैज्ञानिक विचारों को प्रसार मिला। इन विद्वानों ने बहुत कठिनाई और मेहनत से डच भाषा सीखी क्योंकि देशिमा में डचों के साथ संपर्क न के बराबर था और उन्हें अपने शब्दकोश स्वयं बनाने पड़े। उनमें से कई तो डाक्टर थे, जिन्होंने शरीर विज्ञान और चीर-फाड़ के बारे में यूरोपीय कृतियों से सीखा। खगोलशास्त्र, भूगोल और सैन्य विज्ञान भी ऐसे कुछ विषय थे, जिनपर उन्होंने अपना ध्यान लगाया। उन्होंने केवल अमूर्त सिद्धातों को ही नहीं, बल्कि ऐसे ज्ञान को हासिल करने का प्रयास किया, जो व्यावाहारिक हो।

इन विद्वानों की मुख्य विशेषता यह थी कि वे लोगों की ज़िंदगियों को सुधारने के इच्छुक न होकर राष्ट्रीय शक्ति के प्रति अधिक चिंतित थे। डच अध्ययनों ने पश्चिमी ज्ञान को मिटाकर गवर्नर और दाइम्यो को व्यावहारिक मदद दी। जापान के पश्चिम देशों के साथ प्रारंभिक संपर्क के साथ आग्नेयास्त्र (हथियार) आए थे, बंदूकों ने 1575 की नागाशीनो की लड़ाई में निर्णायक भूमिका निभाई थी, जो पहले पुर्तगालियों के आने के केवल बत्तीस वर्ष बाद हुई थी। बाद में हिदेयोशी ने कोरिया पर आक्रमण के समय आग्नेयास्त्रों का सफल इस्तेमाल किया। डच विद्वान यूरोप के इस संपर्क की अकेली देन नहीं थे। ईसाई धर्म सरकारी तौर पर प्रतिबंधित होते हुए भी छोटे-छोटे समूहों ने इस धर्म को मानना जारी रखा। गुप्त ईसाई कहे जाने वाले इन लोगों ने अपनी प्रार्थना जारी रखने के अनेक तरीके निकाल लिए।

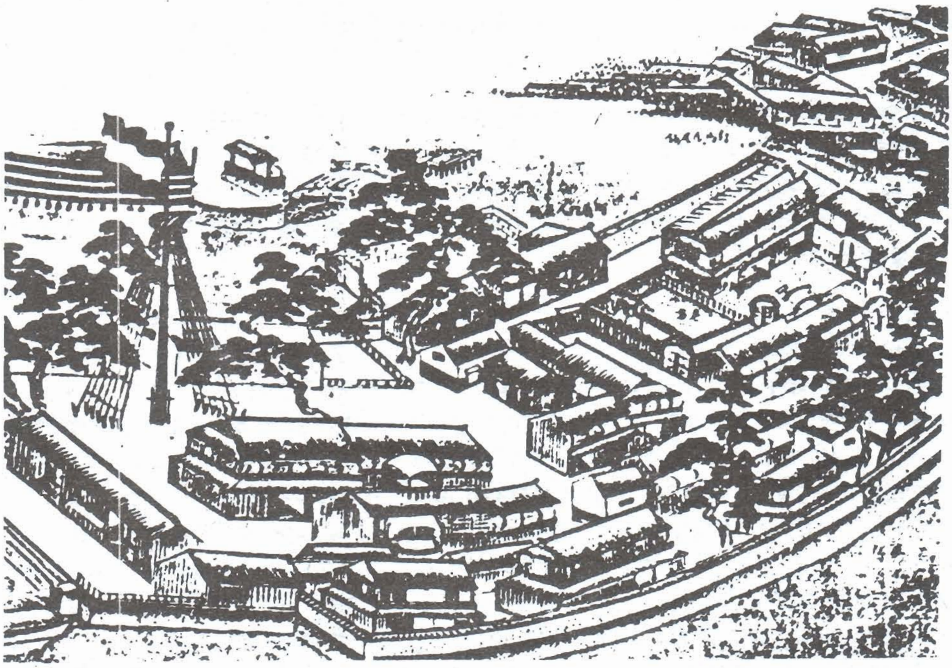

12. एक डच बस्ती (नागासाकी)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.3 जापान के तट पर काले जहाज़

तोकुगावा समाज, अपनी गतिशीलता के बावजूद, यूरोप में होने वाले विकासों से कटा हुआ था और जब विदेशी जहाज़ आने लगे तथा जापानी बंदरगाहों पर पहुंचने की मांग करने लगे तो इसके लिए गंभीर समस्या उठ खड़ी हुई। 17वीं शताब्दी के दौरान जापान की सैनिक क्षमताएं पुर्तगालियों या अंग्रेज़ों की सैनिक क्षमताओं से बहुत भिन्न नहीं थी, लेकिन 19वीं शताब्दी तक यूरोपीय राष्ट्रों ने जापान में अकल्पनीय तरीकों से विकास कर लिया था। एक बड़ी उपनिवेशीय ताकत के रूप में इंग्लैंड के उदय और अफ्रीका तथा एशिया तक इसकी ताकत के प्रसार के बारे में तोकुगावा को बहुत कम जानकारी थी और उन्हें पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा पैदा किए गए खतरे से सफलतापूर्वक निपटाने में अपनी असमर्थता की भी जानकारी नहीं थीं।

उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी देशों के सपंर्क ने तोकुगावा के लिए नई समस्याएं खड़ी कर दी थीं, और उसके पास इन समस्याओं से निपटने के साधन नहीं थे। साम्राज्यवादी घुसपैठ बाकुफु के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण बन गई क्योंकि उसने कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर बाकुहन व्यवस्था पर प्रहार किया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि बाकुफु पृथकता की नीति तो लागू कर सकती थी, लेकिन यह किसी बदलाव की शुरुआत नहीं कर सकती थी। जापान में किसकी सत्ता चलेगी यह सवाल वहाँ की आंतरिक समस्याओं के कारण खड़ा हुआ था, लेकिन पश्चिमी घुसपैठ से तनाव और भी बढ़ गया तथा इन मुद्दों का समाधान आवश्यक हो गया। यूरोपीय ताकतों के आने से बाकुफु से असंतुष्ट गुटों को तोकुगावा शासन के विरुद्ध एकजुट होने का मौका मिल गया।

जापान के पश्चिमी देशों के साथ संपर्क का रास्ता अमेरिका ने खोला, जब कमोडोर मैथ्यू पेरी 1853 में आया और अगले ही वर्ष उसे संधि का वचन मिल गया। 1858 में, अमेरिका की ओर से वकालत करने वाले टाउनसेंड हैरिस ने एक संधि की, जिससे व्यापार और वाणिज्य के लिए जापान के द्वार खुल गए। इससे पहले शुरू हुई एक प्रक्रिया का समापन हो गया। रूसी और ब्रिटिश 17वीं शताब्दी से जापान के तट पर दबाव बना रहे थे। रूसियों ने ओखोत्स्क (okhotske) सागर में अपने आपको स्थापित कर लिया था और यहाँ से उन्होंने अभियान

यात्राएं कीं। 1739 में एक रूसी खोजकर्ता स्पानबर्ग ने जापान के लिए एक रास्ता खोजा। उसके बाद जापान के द्वार खोलने और संबंदा स्थापित करने के गंभीर प्रयास हुए। 1792 में लेफ्टिनेंट लक्ष्मण होकैहो में गया लेकिन वह कोई रियायतें नहीं ले सका। अगला दूत नागासाकी गया। नागासाकी ऐसा अकेला बंदरगाह था, जहां विदेशियों को आने की छूट थी, लेकिन जापानियों की विदेशी व्यापार में दिलचस्पी नहीं थीं। 1806 और 1807 में रूसियों ने सखालिन और कुरील द्वीपों में जापानी बंदरगाहों पर छापे मारे, जिसके कारण दोनों देशों के बीच तनाव और टकराव के हालात बन गए।

ब्रिटिश अथवा अंग्रेज़ 17वीं शताब्दी से ही इस क्षेत्र की टोह लेने का प्रयास कर रहे थे। कप्तान कुक 1793 में अपनी मृत्यु के समय जापान जाने की ही योजना बना रहा था। 1793 में मैकार्टनी के नेतृत्व में चीन जाने वाला दल भी जापान नहीं जा पाया, जबकि इसकी योजना थी। 1797 में एक अंग्रेज़ी जहाज़ होकैडो गया और 1808 में जंगी जहाज़ फेटन ने नागासाकी में प्रवेश किया।

व्हेल के शिकार और चीन के साथ व्यापार में रुचि होने के कारण अमेरिका जापानी बंदरगाहों को विदेशी व्यापार के लिए खोलने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू कर रहा था। व्हेल का शिकार करने वाले जहाज़ों ने नागासाकी और ऐसे दूसरे बंदरगाहों पर डेरा डाला था, जो डचों के लिए अनुबंधित थे, जिनके अपने जहाज़ नैपोलियन की जंग में खो चुके थे। लेकिन तूफानों के समय रसद और शरण लेने की आवश्यकता के कारण इन जहाज़ों के लिए एक स्थायी व्यवस्था करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गया। 1840 के दशक तक अमेरिका में पश्चिम की ओर प्रसार या विस्तार के साथ-साथ स्पष्ट नियति के विचार भी आए। चीन में अमेरिकी व्यापारियों के पहुँच बनाने के प्रयास असफल साबित हुए और सरकार जापान में दिलचस्पी लेने लगी। 1835 से राजनयिक इंतजाम बनाने के प्रयास किए गए। 1846 में कमोडोर बिडिल इदो आया, लेकिन उसे घुसने की अनुमति नहीं मिली। उसके बाद कमांडर ग्लिन 1849 में नागासाकी गया, लेकिन उसने व्यापार जारी रखने के लिए कोई इंतजाम नहीं किया।

DIKSHANT IAS

बोध प्रश्न 1

1) जापान ने पृथकता की नीति क्यों अपनाई? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

Call us @7428092240

....

....

....

....

....

2) उन्नीसवी शताब्दी में पश्चिमी देशों के साथ संपर्क के कारण तोकुगावा को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा? लगभग पाँच पंक्तियाँ में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) अमेरिका ने जापान के द्वार खोलने के लिए क्या-क्या प्रयास किए?

....

....

....

....

....

8.4 बाहरी दबाव और आंतरिक बहस

पश्चिमी ताकतों के साथ राजनयिक और वाणिज्यिक संबंधों को सम्पन्न करने के लिए जापान

पर बनने वाले दबाव ने बाकुफू को एक कठिन स्थिति में डाल दिया। प्रारंभिक प्रतिक्रिया यह रही कि कठोरता से पृथकता की नीति का पालन किया जाए। 1806 में स्थानीय अधिकारियों को एक आदेश जारी किया गया कि वे विदेशियों को बाहर रखे। बाद में इसे कठोर कर दिया गया और अधिकारियों से कहा गया कि तट के पास आने वाले किसी भी जहाज़ को नष्ट कर दें, बर्बरों को बाहर रखा जाए और जापान की अखंडता को बरकार रखा जाए। लेकिन यह कहना ही होगा कि इस समस्या की प्रतिक्रिया जटिल थी। एक ओर जापानी पश्चिमी राष्ट्रों को बाहर रखने में स्पष्ट तौर पर असमर्थ थे, और दूसरी ओर अधिकांश गुट इस बात पर अड़े थे कि सकोकू बंद देश की नीति में कोई ढील नहीं होनी चाहिए।

आने वाले वर्षों में इन दो धाराओं में टकराव देखने में आया। एक के अनुसार जापान को बंद देश रहना चाहिए और दूसरी के अनुसार विदेशियों को स्थान दिया जाना चाहिए, अर्थात् उसे खुला या मुक्त देश (काईकोकू) होना चाहिए था। ये दोनों स्थितियां जापान में वैध शासक के रूप में बाकुफू को समर्थन देने या वास्तविक वैध शासक के रूप में शाही घराने की शक्ति को फिर से ज़ोर देने के सवाल से जुड़ी थी । जो लोग बकुहन व्यवस्था से असंतुष्ट थे उन्होंने सोन्नो-जोई, अर्थात् "सम्राट का सम्मान करो और बर्बरों को निष्कासित करो" की नीति के लिए आग्रह किया। इस नीति की बौद्धिक जड़ें उन दार्शनिक सिद्धातों में थीं, जिनमें यह तर्क दिया गया था कि जापान की विलक्षणता इसलिए बनी क्योंकि उसका सम्राट सूर्य देवी का सीधा वंशज था। यह विलक्षणता और जापान की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था में सम्राट की स्थिति को उन विद्वानों ने और मज़बूत किया, जो जापान की मिथकीय बुनियाद पड़ने के समय से ही जापान का इतिहास लिख रहे थे। इन सिद्वातों की उन गुटों में सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया हुई, जिन्हें बकुहन व्यवस्था के अंदर काम करना और भी कठिन लग रहा था।

आईजावा सीशीसई (1782-1863) और फ़्यूजिता तोको (1806-1855) जैसे बुद्धिजीवियों ने विदेशियों को जापान में प्रवेश की अनुमति देने के विरोध में तर्क तैयार किया। फिर भी, उन्होंने पश्चिमी तरीकों का इस्तेमाल करके जापान की शक्ति को बढ़ाने का प्रयास किया। पश्चिमी देशों के तकनीकी निर्माणों का इस्तेमाल जापान की अखंडता की रक्षा करने और उसे बरकरार रखने के लिए किया गया। बाकुफु के अंदर से भी सुधार के लिए आवाज़ें उठीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कई वर्षों के दौर मे बाकुफु की आर्थिक हालत बिगड़ी थी और बीच-बीच में होने वाले सुधार प्रभावी नहीं रहे थे। 1841-1843 से बाकुफु में ज्येष्ठों के सबसे बड़े पद के अध्यक्ष मिज़िनो तादाकुनी ने "टेम्पो सुधार" लागू किए थे। उसे उसके पद से हटा दिया गया और उसका उत्तराधिकारी आबे मसाहीरो 1857 में अपनी मृत्यु के समय तक बाकुफु की नीति को निर्धारित करने वाला प्रमुख व्यक्ति रहा। आबे इस पक्ष में था कि जिन दाइम्यो को सरकारी परिषदों से बाहर रखा गया था उन्हें भी इसमें शामिल किया जाए। यहाँ तक कि मीतो का दइम्यो, और तोकुगावा परिवार का एक प्रभावशाली सदस्य, तोकुगावा नारी आकी थी प्रमुख दाइम्यो के व्यापक आधार वाले समर्थन के पक्ष में था।

कौन-सी नीति का पालन किया जाए, इस पर बाकुफु में आम सहमति नहीं थी, बल्कि अनेक मतभेद थे। डच विद्वानों की विशेषता का इस्तेमाल करते हुए बाकुफु ने पश्चिमी किताबों का अध्ययन करने के लिए एक विद्यालय की स्थापना की और 1857 तक वह विद्यालय बर्बर पुस्तक अनुसंधान संस्थान बन गया। चीन में, और एशिया के दूसरे हिस्सों में, पश्चिमी राष्ट्रों की गतिविधियों की जानकारी रखने वाले कई डच विद्वान सुधार के उपायों के पक्ष में थे। उनमें विदेशी खतरे से निपटे के लिए तोकुगावा की सैनिक क्षमताओं को सुधारना विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण था। उहाहरण के लिए, 1784 में ही हयाशी शीहेई (1738-1793) ने "एक समुद्रवर्ती राष्ट्र की सैनिक समस्याओं की चर्चा" का प्रकाशन किया था, जिसमें व्यापक सैनिक सुधारों की वकालत की गई थी।

तोप विद्या और दूसरे पश्चिमी विषयों का अध्ययन करने वाले एक प्रभावशाली विद्वान, सकुमा शोज़ान (1798-1866) ने "पूर्वी नैतिकता और पश्चिमी विज्ञान" का नारा बनाकर दिया। इसमें यह नहीं समझा गया कि विचार कुछ निश्चित सांस्कृतिक स्थितियों से बनते हैं, और पश्चिमी तकनीकों या तरीकों का प्रभाव निश्चित रूप से जापानी मूल्यों पर पड़ेगा। इस नारे में जापानी कमज़ोरी को तो माना गया था, लेकिन इस तरह के विचार उस समय तक भी राजनीतिक दृष्टि से प्रभावहीन थे। यह विचार हर ओर व्याप्त था कि विदेशियों को बाहर रखा जाना चाहिए; कि व्यापार हानिकारक होगा और संकट से निपटने के लिए राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव आवश्यक था।

8.4.1 पेरी का आगमन

सन् 1853 में कमोडोर मैथ्यू पेरी चीन और ओकीनावा होता हुआ जापान आया। वह भाप से चलने वाले दो जंगी जहाज़ों और दो अन्य जहाज़ों का अपना बेड़ा लेकर जुलाई 1853 में इदो की खाड़ी में दाखिल हुआ। पेरी अमेरिका के राष्ट्रपति का एक पत्र साथ लाया था। पेरी ने जिस उद्दंडता का व्यवहार किया, उससे तोकुगावा बाकुफु की पश्चिमी राष्ट्रों की ताकत से प्रभावी ढंग से निपटने की अक्षमता व्यक्त होती है। जापानी बंदरगाहों को खोला जाए या नहीं, यह सवाल माहन दाइम्यो और शाही दरबार के सामने रखा गया। यह एक अभूतपूर्व कार्यवाही थी, लेकिन तोकुगावा इनके समर्थन के बिना कोई नीति लागू करने की स्थिति में नहीं थे। 1853 से 1868 तक का समय जब तोकुगावा बाकुफु की जगह मेजी सरकार ने ले ली थी, गंभीर बहसों और तेज बदलावों का समय रहा। विभिन्न गुटों की स्थिति लगातार बदल रही थी और खुले (या मुक्त) देश या बंद देश के समर्थकों को निश्चित गुटों में देखने के बजाय उन्हे विदेशी खतरे से निपटने के लिए प्रयुक्त नीतियों के प्रतीक के रूप में देखना बेहतर है।

सन् 1854 में, पेरी और भी अधिक ताकत के साथ आया और बातचीतों के बाद मार्च 31, 1854 को कानागावा की संधि हुई। इस संधि ने शिमोदा और हकोदाते के बंदरगाहों को खोल दिया वहाँ अमेरिकी जहाज़ अपने जहाज़ों के लिए ईंधन और सामान ले सकते थे। इस संधि में एक राष्ट्रीय प्रावधान जिसके तहत किसी और देश को मिलने वाले लाभ अपने आप उसे मिल जाने थे। अमेरिका को शिमोदा में एक वाणिज्यदूतीय प्रतिनिधि रखने की भी छूट मिल गई। यह संधि एक छोटा कदम था, क्योंकि खोले जाने वाले बंदरगाह छोटे और दूर स्थित थे। लेकिन यह बाकुफु की पहले की पृथकता की नीति से हटकर था।

पेरी ने जब अपनी संधि की तो रूसी भी उस समय सक्रिय थे। पुतियातिन संधि करने और होकैडो के उत्तर में सीमा निशिचित करने की कोशिश कर रहा था, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। अक्तूबर में बाकुफु ने अंग्रज़ों के साथ और फिर रूस के साथ भी एक ऐसी ही संधि की जिसमें नागासाकी को भी खोल दिया गया। 1855 में डचों ने भी जापानियों के साथ एक संधि की।

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

अमेरिका ने अपने वाणिज्यदूत की हैसियत से टाउनसैंड हैरिस को 1856 में शिमोदा में रहने के लिए भेजा। यहाँ उसे बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन उसने धैर्य और युक्ति के साथ बाकुफु को समझा ही लिया कि अमेरिका के साथ संधि करके वे फायदे में ही रहेंगे, नहीं तो उन्हें दूसरी पश्चिमी ताकतों के साथ और भी दूभर संधियां करनी पड़ेंगी। जुलाई 29, 1858 को हुई हैरिस संधि ने कानागावा और नागासाकी के बंदरगाहों को, और चरणों में नीगाता और हयोगो को, खोल दिया। विदेशियों को ओसाका और इदो में रहने की छूट मिल गई और उन्हें क्षेत्र से बाहर के विशेषाधिकार भी मिले। अंत में, दोनों देशों के प्रतिनिधियों की अदला-बदली का प्रावधान संधि में था। दूसरे राष्ट्रों के साथ भी ऐसी संधियाँ हुईं। बंदरगाहों को खोलने के आलावा, जापानियों ने एक बड़ी रियायत यह दी कि उन्होंने आयात और सीमा-शुल्क की दरों को बहुत नीचा रखा।

8.4.2 परिणाम

विदेशी ताकतों को रियायतें देने की बकुफु की नीति से आंतरिक विरोध बढ़ रहा था। आबे मसाहीरो ने संधि के लिए सम्राट की अनुमति ले ली थी और महान दाइम्यो को बकुफु की परिषदों में शामिल कर लिया था, लेकिन जो लोग बहुत पहले से सरकार पर नियंत्रण रखते आए थे उन्होंने उसका विरोध किया। ज्येष्ठों की परिषद का अगला अध्यक्ष, होता मामायोशी, बाहरी दाइम्यो को साथ लेने के पक्ष में नहीं था, वह विदेशी ताकतों को व्यापार के अधिकार देने की नीति का समर्थक था।

होता ने न केवल एक संपूर्ण वाणिज्यिक संधि के लिए दाइम्यो का समर्थन हासिल करने की कोशिश की, बल्कि वह सम्राट से अग्रिम सहमति प्राप्त करने के लिए क्योतो भी गया। लेकिन 1858 में दरबार ने कुछ दाइम्यों के विरोध के कारण कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया। 1858 में ली नाओसुके "ताइरो" बन गया, जो बकुफु सरकार के अंदर सबसे ऊंचा पद था और उसने गवर्नरी के अधिकारों को फिर से इस्तेमाल करने की कोशिश की। उसने शाही दरबार की अनुमति के बिना ही वाणिज्यिक संधि पर हस्ताक्षर कर दिए और इस विवाद का भी निपटारा कर दिया कि गवर्नरी का वारिस कौन होगा। गवर्नर के कोई संतान नहीं थी और वह कमजोर था, जिसके परिणामस्वरूप मीतो का दाइम्यो अपने बेटे काईकी को वारिस

13. कमोडोर पेरी के अधिकारी गण

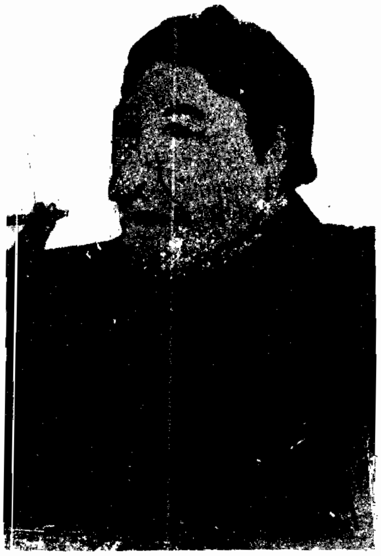

i) कैप्टन एडम्स

ii) कैप्टन एबट

iii) पेरी का पुत्र

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iv) पेरी

v) विलियम

vi) पोर्टमैन

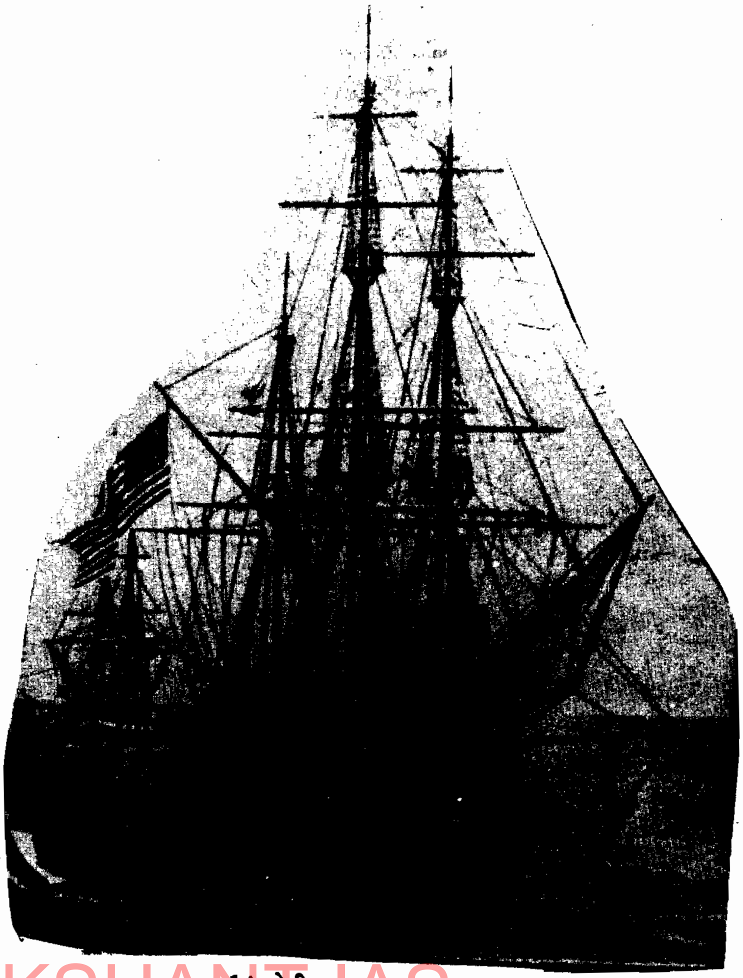

14. पेरी का जहाज़ी बेड़ा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

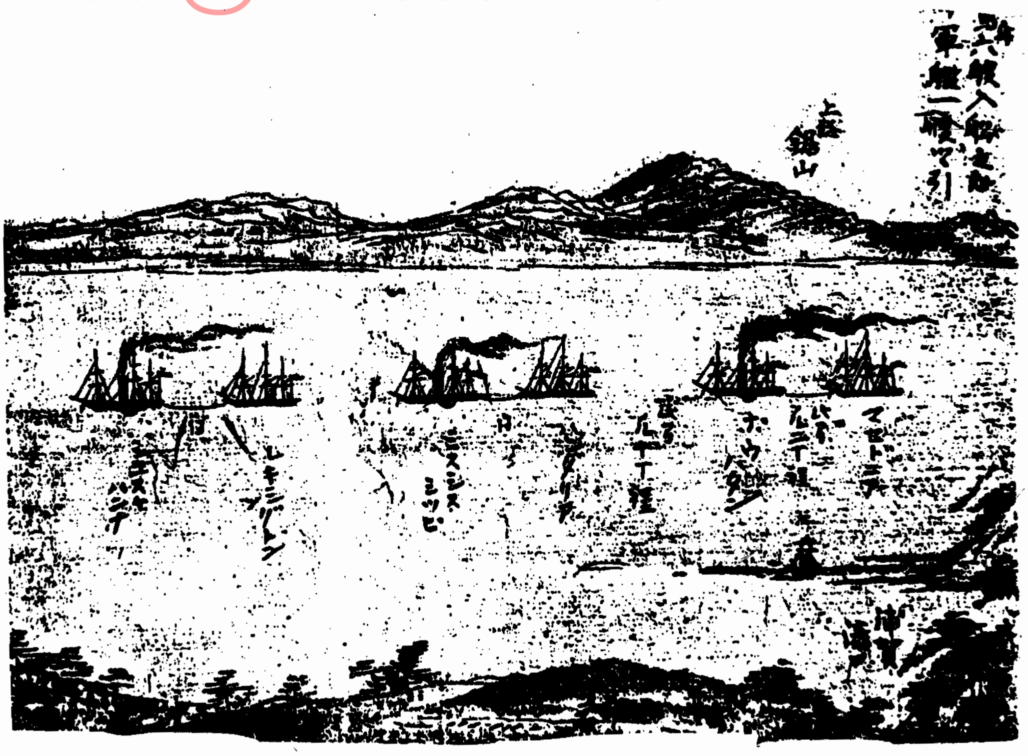

15. पेरी के जहाज़ों का एक जापानी चित्र

बनाना चाहता था, और काइको क्योंकि हितोत्सुबाशी परिवार का दत्तक था, इसलिए उसका दावा जायज़ था। उसके दावे का समर्थन शाही दरबार ने किया और यह एक नई बात थी क्योंकि पहले कभी दरबार ने बकुफु के मामलों में अपने को नहीं डाला था। ली नाओसुके ने वाकायामा के दाइम्यो को वारिस नियुक्त करवा लिया ताकि बकुफु का अधिकार व्यक्त हो।

यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि दत्तक बनाना या गोद लेना जापान में आम रीति थी और रक्त संबंधों की अधिक अहमियत नहीं थी। इस तरीके से सामाजिक स्थिति को बेहतर किया जा सकता था। इस तरह एक "निचली स्थिति" की स्त्री को कोई "ऊंची स्थिति" वाला दत्तक बना सकता था और फिर उसका विवाह समान ऊंची स्थिति वाले के साथ हो सकता था। व्यापारिक घराने अपने बेटों के अक्षम होने की स्थिति में अक्सर सक्षम क्लर्कों को आधिकारिक वारिस के रूप में दत्तक बना लेते थे।

नाओसुके के कामों की सम्राट के समर्थकों में प्रतिक्रिया हुई, लेकिन वह इससे कड़ाई से निपटा। आनसेई अभियान में नाओसुके ने हितोत्सुबाशी पार्टी में शामिल लोगों को सज़ा दी, और इससे मार्च 1860 में उसकी हत्या कर दी गई। नाओसुके की मृत्यु बकुफु के लिए आघात थी, लेकिन उससे भी अधिक हानिकारक थी दरबार और दाइम्यो की बढ़ती ताकत। शाही दरबार के आसपास बकुफु का विरोध होने लगा, इसका नेतृत्व सत्सुमा और चोशु के बाहरी हान ने किया। कई सामुराई क्योतो के आसपास इकट्ठे हो गए, और इन स्वामीहीन सामुराइयों या रोनिन ने शाही दरबार के आसपास एक लड़ाकू गुट बना लिया।

आनसेई अभियान को एक ऐसा राजनीतिक ढांचा तैयार करने की कोशिश में तो सफलता मिली, जिसमें बकुफु को प्रबल राजनीतिक शक्ति होना था, लेकिन जिसमें असंतुष्ट तत्वों और शाही दरबार को भी शामिल किया जाना था। निष्ठावान तत्व इससे बेशक गुस्सा हुए और ऐसा माहौल बन गया जिसमें बदले और लड़ाई की बात आम हो गई। नाओसुके के वारिस ने इदो और क्योतो के बीच संबंध सुधारने की कोशिश की। गवर्नर इमोची और शाही राजकुमारी काजुनोमिया का विवाह दरबार और बकुफु की इस निकटता की अभिव्यक्ति थी। बकुफु ने 1862 में यूरोप में एक मिशन भी भेजा, जिसने अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों को इस बात के लिए मना लिया कि वे ह्योगो और नीगाता में व्यापार शुरू करने को स्थगित कर दें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

फिर भी, बकुफु को शासक के रूप में मान्यता तो प्राप्त थी। लेकिन उसकी स्थिति कमज़ोर थी। इसलिए चोशू के हान ने अपनी मांगें मनवाने के लिए पहल कर दी। नाओसुके के उत्तराधिकारी आंदो नोबुयूकी को निष्ठावान तत्वों ने तो मार ही डाला और उसकी कोशिशें वहीं समाप्त हो गई। 1862 का वर्ष एक निर्णायक मोड़ था, क्योंकि यहां से बकुफु का वर्चस्व जाता रहा और वह वर्चस्व के लिए होड़ करने वाली एक शक्ति बन गया। धीरे-धीरे इसकी पहल चोशु के हाथ में आ गई जिसने अपनी शक्ति और स्थिति को जताना और मांगें रखना शुरू कर दिया। क्योतो पर चोशु का नियंत्रण हो गया और गवर्नर को वहां आने को मना लिया गया और उसने जून 25, 1863 से विदेशियों के निष्कासन का आदेश जारी कर दिया। आदेश का पालन चोशु ने करवाया, उसके अमेरिका, फ्रांस और हालैंड के जहाज़ों पर बम गिरवाए। अमेरिका और फ्रांस ने बदले की कार्यवाही की।

बकुफु के दूसरे मुख्य प्रतिद्वंद्वी सत्सुमा ने विद्रोह कर दिया और आइज़ु के हान की मदद से चोशु के हाथों से क्योतो और शाही दरबार का नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। चोशु ने बदले की कार्यवाही की, लेकिन वह क्योतो को वापस लेने में कामयाब नहीं हुआ। इसके अलावा, विदेशी जहाज़ों पर इसके हमलों के कारण अमेरिकी, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी और डच सेनाओं के एक मिले-जुले बेड़े ने चोशु पर आक्रमण कर दिया और 30 लाख डालर हर्जाने की मांग की। इस ऊंची मांग का इस्तेमाल और अधिक विशेषाधिकार हासिल करने के लिए किया गया, और जून 1866 में शुल्क दरें 20 प्रतिशत से 5 प्रतिशत पर आ गईं।

इससे पहले सत्सुमा में सितम्बर 14, 1862 को एक अंग्रेज़ नागरिक रिचर्डसन को मार डाला गया। इस घटना को नामामुगी प्रकरण के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह घटना नामामुगी गांव के पास घटी थी और बकुफु को 100,000 पौंड का हर्जाना देना पड़ा था। ब्रिटेन की धमकियों के बाद सत्सुमा को भी 25,000 पौंड देने पड़े।

सन् 1864 में बकुफु चोशु को नियंत्रण में करने में लगा था, लेकिन अगस्त 15, 1866 में इसने जो दूसरा अभियान शुरू किया वह नाकामयाब रहा। इस प्रसंग में विदेशी आक्रमण और भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू कर रहे थे। 1853 से लगभग 1865 तक जापानी क्षेत्रों में साम्राज्यवाद की लगातार घुसपैठ हो रही थी और वह जापान की सामाजिक प्रक्रिया

में शामिल हो रहा था। लेकिन 1865 के बाद इस प्रवृत्ति ने खतरनाक रूप धारण कर लिया और साम्राज्यवाद जापानी प्रभुसत्ता के लिए एक भयंकर खतरा बन गया। जापान के उत्तर में रूसी विस्तार पहले ही एक समस्या बना हुआ था, और 1865 के बाद बकुफु में यह चिंता बनने लगी कि रूसी साखालिन और काराफुतो में अपने दावों का विस्तार कर रहे थे।

देश के अंदर बढ़ती हुई फूट की स्थिति में पश्चिमी ताकतों ने 1866 का शुल्क दर समझौता किया। इसका निर्देशन मुख्य रूप से ब्रिटिश मंत्री सर हैरी पार्क्स ने किया था, और कॉनरैड टॉटमैन के शब्दों में यह "एक ठोस बुनियाद थी जिसपर जापान में एक व्यापक और स्थायी शाही वाणिज्यिक स्थापना को खड़ा करना था।"

8.5 जापान में आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता

अब तक तो यह जापान और विदेशियों का मसला था, लेकिन जल्दी ही आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता ने जापानी मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। इस स्थिति में फ्रांसीसी बकुफु की ओर आकर्षित हुए और अंग्रेज़ों ने सत्सुमा और चोशु का समर्थन किया। फ्रांसीसियों ने दूसरी पश्चिमी ताकतों के साथ मिलकर काम करने के बजाय एक स्वाधीन फ्रांसीसी नीति का पालन करना शुरू किया। योकोसुका में एक बड़ा जहाज़ कारखाना बनाने के लिए ऋण देने का निर्णय लिया गया और एक मिली-जुली, फ्रांसीसी-बकुफु कंपनी बनाने का भी विचार किया गया।

इसी तरह, अंग्रेज़ भी धीरे-धीरे हान को समर्थन देने की ओर बढ़ रहे थे। 1866 में ब्रिटिश लिगेशन के एक अधिकारी अर्नेस्ट सैटो ने कई लेखों का जापानी में अनुवाद किया। ये लेख उसने विदेशियों से यह आग्रह करते हुए लिखे थे कि वे जापान को दाइम्यो के संग्रह के रूप में नहीं, बल्कि एक अलग सत्ता के रूप में लें। जापान धीरे-धीरे आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता में उलझ गया और साम्राज्यवादी घुसपैठ का खतरा तेजी से भयंकर रूप धारण करने लगा। बकुफु और फ्रांस तथा ब्रिटेन और सत्सुमा-चोशु के एक-दूसरे से जुड़ने के गंभीर आंतरिक परिणाम हुए। एक ओर दाइम्यो बकुफु के खिलाफ मज़बूत हो गए, लेकिन आपसी संदेह भी बढ़ा और मेल-मिलाप के प्रयास कठिन हो गए। अंत में, पश्चिमी सैनिक प्रौद्योगिकी और प्रशिक्षण पर बकुफु और दाइम्यो दोनों की निर्भरता बढ़ गई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चोशु के खिलाफ लड़ाई से विदेशी ताकतें अपने आपको व्यापार में और अधिक शामिल करने में सफल रहीं, इनमें विभिन्न गुटों को बंदूकें देने का मामला विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। कभी-कभी तो भय निराधार होता था, लेकिन ऐसी कई अफवाहें थीं कि दाइम्यो को आर्थिक और सैनिक सहायता मिल रही थी। बकुफु के एक अधिकारी कत्सु कैशु ने इंग्लैंड को एक "भूखा चीता" बताया और यह चेतावनी दी कि बाकुफु को फ्रांस से भी पैसा उधार नहीं लेना चाहिए, क्योंकि फ्रांस एक "भूखा भेड़िया" था।

विदेशियों की जापान के अंदर यात्रा और मिशनरी गतिविधियां भी समस्या खड़ी कर रहे थे। 1867 तक केवल राजनयिक ही नहीं, बल्कि तकनीशियन और मिशनरी भी जापानी क्षेत्रों में आवाजाही करने लगे थे। ह्योगो और ओसाका के खुलने के बाद यह आवाजाही बढ़ गई और बकुफु ने निर्देश जारी कर विदेशियों को नारा में आने, यात्रा करने और "इदो और ओसाका में थियेटर और रेस्तरां" में प्रवेश की अनुमति दे दी। इससे हिंसा की घटनाएं हुई क्योंकि जनता अभी भी विदेशियों के जापान में घुसने को स्वीकार नहीं कर पाई थीं। विदेशियों पर आक्रमण की घटनाएं बढ़ गईं और इससे हर्जाने की मांगें भी और बढ़ गईं।

जापान के खोले जाने का यह मतलब नहीं था कि ईसाई धर्म को भी आने की अनुमति होगी। इसलिए धर्म पाबंदी जारी रही। फिर भी, विदेशियों की रिहायश बढ़ने के साथ ईसाई धर्म के पालन की संधिगत बंदरगाहों में अनुमति दे दी गई। मिशनरी आने लगे और पाबंदी के बावजूद उन्होंने अपने धर्म के प्रसार के लिए कदम उठाए। फ्रांसीसी मिशनरियों ने 1865 में नागासाकी में एक चर्च शुरू किया था और उन्होंने जापानियों को उसमे आने की अनुमति दे दी और ये जापानी खुले आम इस धर्म को मानने लगे। एक जापानी अधिकारी ने फ्रांसीसी प्रतिनिधि लियों रोशे से लिखकर शिकायत की कि मिशनरी गाँवों में प्रचार कर रहे थे, लोगों के घरों में रह रहे थे, सोना-चांदी इकट्ठा कर रहे थे और उनकी गतिविधियाँ अव्यवस्था फैलाने वाली थीं, इसलिए इन्हें रोका जाना चाहिए। इन समस्याओं से न केवल बाकुफु और विदेशियों के बीच, बल्कि स्थानीय लोगों और विदेशियों तथा बाकुफु के बीच भी तनाव की स्थितियाँ बनी और पहले से ही जटिल समस्या और भी खराब हो गई।

सन् 1857 तक विदेशी ताकतें आंतरिक प्रतिद्वंद्विताओं में गहरे तौर पर शामिल हो चुकी थीं और इससे जापान के लिए एक खतरनाक स्थिति हो गई जिसमें इस बात की बहुत संभावना थी कि वह उपनिवेशवाद का शिकार हो जाता। संधियों और विदेशी व्यापार के प्रवेश का आर्थिक असर अव्यवस्थित करने वाला रहा था। सूती कपड़े जैसे सस्ते बने सामान से प्राचीन काल से चला आ रहा स्वदेशी उद्योग बिगड़ रहा था। विशेष तौर पर जापान में अनुकूल सोना-चांदी विनिमय का इस्तेमाल विदेशी व्यापारियों ने जिस तरह किया, उसके असर विनाशकारी हुए। जापान में सोना-चांदी विनिमय 15:1 था। व्यापारी अपने साथ चांदी लाते थे और सस्ते में सोना खरीद लेते थे जिसे निर्यात करके वे भारी मुनाफा कमाते थे। मसाले के भारी निर्यात और चांदी की अत्यधिक भरमार से जापानी अर्थव्यवस्था लड़खड़ा गई और इससे जनता को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा। अनेक किसान विद्रोह और शहरी अशांति की स्थितियाँ उस तनाव को दिखाती हैं, जिससे होकर जापानी अर्थव्यवस्था और समाज गुज़र रहा था।

जापान किसी विदेशी ताकत का उपनिवेश क्यों नहीं बना? इसे कई तरीकों से समझाया गया है। इसकी कई व्याख्याएं दी गई हैं। इन व्याख्याओं में चीन में साम्राज्यवादी देशों के हितों और जापान की अपेक्षाकृत उपेक्षा पर ज़ोर दिया गया है क्योंकि जापान ने एक बड़ी मंदी देने की सभावना नहीं बनाई। फिर भी, जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में संकेत दिया गया है, साम्राज्यवादी ताकतें सक्रिय रूप से जापान के मामलों में हस्तक्षेप कर रही थीं, और यह केवल गृह युद्ध के थोड़े समय के लिए होने के कारण हुआ कि वे स्थानीय राजनीति में अपनी जड़ें गहरे नहीं जमा पाईं। लियो रोशे को फ्रंसीसी सरकार ने वापस बुला लिया, इसलिए वह बाकुफु की ओर से कार्यवाही नहीं कर सका। अमेरिका अपने गृह युद्ध में उलझा हुआ था और ब्रिटेन जीतने वालों को समर्थन दे रहा था। इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं था कि इससे परिणाम में कोई बदलाव हो।

नारों के अलावा, जापानी गुट इस बारे में व्यापक तौर पर स्पष्ट थे कि पृथकता अब एक वास्तविक विकल्प नहीं रह गया था और उन्हें पश्चिमी देशों से निपटना था और ऐसा केवल राष्ट्रीय मज़बूती के आधार पर ही हो सकता था। जापानी समाज साम्राज्यवादी प्रभुत्व से लोहा लेने के लिए नीतियाँ और रणनीतियाँ बनाने की स्थिति में था और इस मज़बूती का स्रोत जापान के लंबे और जटिल इतिहास में कम से कम 16वीं शताब्दी से ढूंढा जाना चाहिए। जापान का पश्चिमी दबावों से सफलतापूर्वक निपटना सांस लेने की जगह बनाने का मामला नहीं था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) जापान में पश्चिमी लोगों के साथ संबंध को लेकर चलने वाली बहस के बारे में लगभग दस पक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) कमोडोर पेरी की जापानी यात्रा का जापान के आंतरिक मामलों पर क्या प्रभाव पड़ा? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-सा सही (√) है, कौन-सा गलत (×)? निशान लगाइए:
   i) सोन्नो-जोई की नीति का अर्थ था ''बर्बरों का स्वागत करो और सम्राट को निकाल बाहर करो।''
   ii) शोजान ने पूर्वी नैतिकता और पश्चिमी विज्ञान का नारा दिया।
   iii) इंग्लैंड और अमेरिका, जापान को अपना उपनिवेश बना सके।
   iv) अंग्रेजों और फ्रांसिसियों के हितों का टकराव जापान में हुआ।

8.6 सारांश

इस इकाई में पश्चिम के साथ जिन परस्पर संबंधों की पड़ताल की गई है, उसे दो कालों में बांटा जा सकता है :

पहला, 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध वाला काल, जब पुर्तगाली व्यापारी और मिशनरी जापान आए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरा, 19वीं शताब्दी का काल, जब पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों ने जापान को साम्राज्यवादी व्यवस्था में घसीटना चाहा।

दोनों ही मामलों में जापान ने नए विचारों को ग्रहण करने और अपने लाभ के लिए उनसे सीखने की दिशा में एक खुलेपन और तेजी का परिचय दिया। जापान ने अपने सामाजिक ढांचे के अंदर बदलावों के प्रति एक रूढ़िवादी और बंद दृष्टिकोण का भी परिचय दिया। उसे काले जहाज़ों (जैसे कि कमोडोर पेरी और पुर्तगाली जहाज जाने जाते थे) को तो छूट देनी पड़ी, परन्तु जहाँ तक हो सका, उसने विदेशियों को प्रवेश से रोका और उनपर पाबंदी लगाई।

8.7 शब्दावली

दाइम्यो : सामंती राज्यों के शासक जिन्हें तीन गुटों में बांटा गया था इनमें से बाहरी दाइम्यो ताकुगावा के पहले के शुत्रु थे जिन्हें सत्ता से बिल्कुल बाहर रखा गया था (जैसे सत्सुमा, चोशु) अपने इलाकों में उनके पास बहुत अधिक स्वायत्ता थी।

हान : दाइम्यो का क्षेत्र।

काइकोकू : विदेशियों के लिए देश को खोलने की नीति।

सकोकू : पृथकता की नीति जिसका तोकुगावा ने पालन किया।

सोन्नो-जोई : एक कहावत जिसका अर्थ होता है ''सम्राट का सम्मान करो और बर्बरों को निकाल बाहर करो।''

8.8 बोध प्रश्नों का उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर उपभाग 8.2.2 के आधार पर लिखिए।

2) अपना उत्तर भाग 8.3 के आधार पर लिखिए।
3) भाग 8.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) अपना उत्तर भाग 8.4 के आधार पर लिखिए।
2) उपभाग 8.4.2 देखिए।
3) i) × ii) √ iii) × iv) √

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bai Shouyi (ed) : **An Outline History of China,** Peking 1982.

Danis Twitchett and John K Fairbank (ed) : **The Cambridge History of China**, Volume 10, London 1978.

Immanuel C.Y. Hsu : **The Rise of Modern China,** Oxford 1985.

Jean Chesneaux etal : **China from the Opium Wars to the 1911 Revolution,** Delhi 1978.

Tan Chung : **Trinity to Dragon,** Delhi 1985.

E.H. Norman : **Japan's Emergence as a Modern State,** Indian reprint, Delhi 1977.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

NO TES

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 9 सामंतवाद का पतन और मेजी पुर्नस्थापना

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 तोकुगावा का पतन
9.2.1 सामंतवाद
9.2.2 आर्थिक बदलाव
9.2.3 तनाव और द्वंद्व
9.2.4 शिक्षा, विद्वान और विचार
9.3 बाहरी संकट का दौर
9.3.1 1853-1858 का दौर
9.3.2 1860-1864 का दौर
9.3.3. 1865-1868 का दौर
9.4 मेजी पुर्नस्थापना
9.4.1 बहस
9.4.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण
9.4.3 युद्धोत्तर बहस
9.5 सारांश
9.6 शब्दावली
9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- तोकुगावा के ढांचे में बनने वाले तनावों और इन समस्याओं से निपटने में शासकों की असमर्थता की व्याख्या कर सकेंगे।
- आर्थिक विकास से बनने वाली नयी सामाजिक शक्तियों बारे में जान सकेंगे,
- उन बौद्धिक धाराओं को समझ सकेंगे जिन्होंने सामाजिक व्यवस्था के वैचारिक आधारों की जड़ें खोदीं,
- पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतो की घुसपैठ और इससे जापान में बनने वाले संकट के बारे में जान सकेंगे, और
- मेजी पुर्नस्थापना की प्रकृति और इसके अर्थ पर विचार-विमर्श कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में **तोकुगावा** काल से मेजी काल की ओर संक्रमण पर चर्चा की गयी है। इस संक्रमण में जापान का उदय एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य के रूप में होता है और यह एक जटिल और विवादास्पद प्रक्रिया थी।

तोकुगावा बकुफु एक लंबी और क्रमिक प्रक्रिया थी। विद्वानों ने कई प्रकार से इसकी छानबीन की है। फिर भी उनकी एक प्रमुख चिंता यह रही है कि जापान की शक्ति के स्रोतों की व्याख्या की जाये, क्योंकि एशिया के देशों में जापान ही एक ऐसा देश था जो एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य की ओर सफलतापूर्वक संक्रमण कर सका। इस चिंता ने विद्वानों को **तोकुगावा** समाज को एक ऐसे समाज के रूप में उधृत किया जो पश्चिमी यूरोप जैसे अनुभवों से ही होकर गुजरा। यह दृष्टिकोण पहले के उन दृष्टिकोणों से बहुत भिन्न है जिसमें **तोकुगावा** काल को एक ऐसे सामंतवादी और परंपरावादी काल के रूप में खारिज कर दिया गया था जिसके दौरान अधिकांश लोग, जो खेतिहर थे, केवल जैसे-तैजे अपना भरण-पोषण ही पर पाते थे। इस तरह के दृष्टिकोण के बनने का आंशिक कारण यह था कि आधुनिकीकरण के पहले प्रवाह में प्रत्येक जापानी वस्तु को पुरानी पड़ चुकी परंपरा से जोड़ कर देखा जाता था और इस कारण से उसे त्याज्य समझा जाता था। आज विद्वानों ने **तोकुगावा** काल की एक कहीं अधिक जटिल तस्वीर बनायी है और इससे जो कुछ स्पष्ट

होता है वह यह है कि समस्याओं के बावजूद यह काल गतिशील वृद्धि और विकास का काल था। यह विकास जिस तरह का था और जैसे हुआ, उसने किसान विद्रोहों जैसे तनावों और मुसीबतों को जन्म दिया। लेकिन **तोकुगावा** के पतन के दौर में भी कुछ क्षेत्रों में रचनात्मक वृद्धि हुई। असल में इस लंबे अनुभव के बूते पर ही मेजी राज्य थोड़े ही समय में एक आधुनिक राज्य का ढांचा, बना सका, देश का उद्योगीकरण कर सका और उपनिवेशवाद के खतरे से प्रभावी ढंग से निपटा जा सका। इस अनुभव ने ही मेजी के विकास के ढंग को प्रभावित करते हुए उसके तानाशाही और विस्तारवादी चरित्र पर जोर दिया।

इस इकाई में हम **तोकुगावा** की व्यवस्था और उसके पतन के कारणों की चर्चा, पश्चिमी साम्राज्यवादियों की घुसपैठ के संदर्भ में करेंगे।

9.2 तोकुगावा का पतन

तोकुगावा व्यवस्था और उसके काम करने के ढंग के बारे में हम खंड 1 की इकाई 3 में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। यहां इतना दोहरा लेना उपयोगी रहेगा कि **तोकुगावा** व्यवस्था जापान देश के एकीकरण की एक लंबी प्रक्रिया के अंत में उभरी और 17वीं शताब्दी में **तोकुगावा** अपने प्रतिद्वंद्वियों को खत्म करके एक ऐसी शासन प्रणाली नियमित कर चुका था जो 1868 तक चली। ढाई सौ वर्ष से भी अधिक समय तक चलने वाली इस व्यवस्था की अपनी क्षमताएं और खामियां थी। इसकी क्षमताओं को कम करके नहीं आंका जा सकता, लेकिन यहां हम मुख्य तौर पर इसकी खामियों की ही चर्चा करेंगे।

9.2.1 सामंतवाद

सामंतवाद के मसले को भी सावधानीपूर्वक समझना आवश्यक है। **तोकुगावा** का राजनीतिक और सामाजिक ढांचा प्राचीन अर्थों में सामंतवादी नहीं था बल्कि यह एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के उदय का प्रतीक था जो सत्रहवीं शताब्दी के यूरोपीय तानाशाही राजतंत्रों के कहीं अधिक निकट था। **शोगुन** (सैनिक गवर्नर) और **दाइम्यो** (सामंतों) के बीच संबंध बुनियादी तौर पर असमान थे और तमाम महत्वपूर्ण मामलों में गवर्नर का अधिकार सर्वोच्च होता था। इस तरह **दाइम्यो** को हर दो वर्षों में एक निश्चित समय के लिए राजधानी इदो में रहना होता था और अपनी अनुपस्थिति के समय अपने परिवारों को बंधकों के रूप में छोड़कर जाना होता था। बड़े पैमाने के किसान विद्रोह जैसे संकट के काल में **हान** (सामंती जागीर) की स्वायत्तता के बावजूद शोगुन सीधे-सीधे हस्तक्षेप करता था। **तोकुगावा** ने भी **कुर्की** के जरिये या किसी **दाइम्यो** की बिना वारिस छोड़े मृत्यु की स्थिति में दाइम्यों को फिर से जमाने की व्यवस्था रखी थी जिससे वे **शोगुन** के असीमित अधिकारों को चुनौती नहीं दे सकते थे। **बकु-हान** व्यवस्था कई प्रतिबंधों और संतुलनों के साथ काम करती थी जिससे किसी भी विरोधी गुट की एकता को बनने न दिया जाये, और सर्वोच्च अधिकार इदो में **शोगुनों** के पास रहता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शासक **सैमुराई** कुलीनों के चरित्र में भी बहुत बदलाव आया था। हिदेयोशी ने **सैमुराई** को भूमि से अलग करने की जिस नीति की शुरुआत की थी उसके फलस्वरूप वे महली कसबों में जमा हो गये थे। **सैमुराई** की आमदनी का आंशिक स्रोत भूमि थी और आंशिक स्रोत वह वजीफा था जो उसे किसी काम के एवज में मिलता था। **सैमुराई** वर्ग का विभाजन स्तर के अंतरों के आधार पर था जिससे उनके काम की प्रकृति भी संकुचित होती थी और उनमें से कई बेकार भी थे। इस तरह नौकरीशुदा **सैमुराई** ने धीरे-धीरे एक नौकरशाही का रूप ले लिया जिसमें योग्यता और काम उन्हें जांचने का अभिन्न मापदंड बन गए। बाद में यह नौकरशाही विरासत उस तरीके के लिये काफी हद तक जिम्मेदार बनी जिसके जरिये मेजी सरकार ने आधुनिक संस्थाओं का विकास करने और नयी नीतियां लागू करने के अपने उद्देश्यों को प्राप्त किया।

9.2.2 आर्थिक बदलाव

तोकुगावा व्यवस्था के पतन की जड़े उस अंतर्विरोध में थी जो 17वीं शताब्दी में इसके बनने के समय इसके ढांचे में निहित था। यह अंतर्विरोध एक सरल कृषि अर्थव्यवस्था पर आधारित श्रेणीबद्धता के स्तरों में विभाजित समाज की कल्पना करने वाले आदर्श और एक कहीं अधिक जटिल वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था की वास्तविकता और एक कहीं अधिक जटिल सामाजिक व्यवस्था के बीच था। शांतिपूर्ण विकास के एक लंबे दौर ने जो बदलाव किये उन्होंने ऐसी सामाजिक और बौद्धिक शक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने **तोकुगावा** शासन के आधार पर सवाल उठाया और उसकी जड़ें खोदीं। इस व्यवस्था के सरल विचारों के आधार की ओर लौट कर इसे सुधारने के **बकुफु** के प्रयास अधिकाधिक नाकाम रहे। **तोकुगावा** के एक अधिकारी, मत्सुदाइरा सदानोबू ने 1790 में जो **कानसाई** सुधार लागू किये वे **तोकुगावा** द्वारा अपने ढहते शासन को

मजबूत करने और अपने अधिकार को फिर से व्यक्त करने के अंतिम बड़े प्रयास थे। उनकी असफलता पतन की शुरुआत थी जिसे जापान को मुक्त करने के उद्देश्य से आने वाली पश्चिमी ताकतों ने और निश्चित कर दिया। देश के अंदर की मुसीबतों ने विदेशी दबाव की उपस्थिति में और भी भीष्म रूप ले लिया और इसका परिणाम यह हुआ कि **तोकुगावा** का पतन हो गया और मेजी सरकार का उदय हुआ।

तोकुगावा अर्थव्यवस्था वैसे तो 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में भी प्रमुख रूप से खेतिहर थी, फिर भी इस समय तक इसमें बदलाव आ चुका था। 1800 में आबादी तीन करोड़ और 3 करोड़ 30 लाख के बीच कहीं थी और इसमें धीरे-धीरे वृद्धि हो रही थी। इस आबादी का 85 प्रतिशत हिस्सा गांवों में रहता था, लेकिन इदो, ओसाका और क्योटो जैसे शहरों की आबादी 20 लाख से भी ऊपर थी जबकि महली कसबों में 10,000 से 100,000 के बीच लोग रहते थे। इस तरह जापान एक साधारण खेतिहर समाज भर नहीं था। शहरीकरण से व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा मिला था। इन कार्यों को करने के लिये कुछ संस्थाएं भी बन गयी। **तोकुगावा** जापान की वाणिज्यि राजधानी ओसाका और शहर के व्यापारी संघों (दस विनिमय केन्द्र या **ज्यूनिन योगी**) को गवर्नरी का संरक्षण प्राप्त था। इन विशेषाधिकारों के बूते पर यहां चावल पर कर लगाने, पैसा भुनाने और ऋण देने के काम होते थे। अर्थव्यवस्था के वाणिज्यिक हो जाने से **तोकुगावा** पर दबाव पड़ा लेकिन बढ़ते जा रहे वित्तीय घाटों के लिये उनके नुस्खे का आधार कन्फ्यूशियस की सूक्ति ही बनी रहीं कि फजूलखर्ची वाली जीवन शैली और उपभोग पर रोक लगाओ। चावल का उत्पादन धीरे-धीरे बढ़ा और क्योंकि चावल परंपरा से कर का आधार था इसलिए करों में होने वाली कोई भी वृद्धि किसानों के लिए दूसरी अधिक मुनाफे वाली फसले उगाने का कारण बनती थी।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का चरित्र तेजी से बदल रहा था और 19वीं शताब्दी आते-आते क्षेत्रीय विशेषज्ञता कई किस्म की आर्थिक गतिविधियों को जन्म दे चुकी थी। मध्य और दक्षिण होंशु में वाणिज्यिक गतिविधि का बहुत अधिक प्रसार हो गया था और कई गांव कपास, तिलहन आदि उगाने के विशेषज्ञ हो गये थे। इदो के आसपास के क्षेत्र में कोई एक चौथाई ग्रामीण आबादी अब तक वाणिज्यि और दस्तकारी के क्षेत्र में रोजगार पा चुकी थी। शहर कपड़ा रोगन और बर्तनों के उत्पादन केन्द्र थे। लेकिन इनके ग्रामीण क्षेत्रों में जाने के साथ शहर वाणिज्यिक और प्रशासनिक केन्द्र बन गये और उनमें ग्रामीण क्षेत्रों से अनाधिकृत लोगों का आना जारी रहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संपदा के नये स्रोतों को सफलतापूर्वक संभालने में तोकुगावा बकुफु की असमर्थता के कारण एक अत्यधिक स्थिर कर आधार और अर्थव्यवस्था के वाणिज्यिक हो जाने का परिणाम यह हुआ कि **शोगुन** और **दाइम्यो** दोनों के लिए वित्तीय समस्यायें खड़ी हो गयीं और उनके **सैमुराई** सेवकों के लिए भी। उदाहरण के लिए 1830 में सत्सुमा के राज्य पर इसके वार्षिक राजस्व का तैंतीस‘गुना ऋण था और 1840 तक चोशु पर उसके वार्षिक राजस्व का तेईस गुना ऋण हो चुका था। इस वित्तीय गिरावट का असर **सैमुराई** पर पड़ा जिनकी आमदनी 17वीं शताब्दी में भी बहुत कम थी और जिनके सामने बढ़ती कीमतों और अपनी मांगों को पूरा करने की समस्या थी।

बकुफु ने इन समस्याओं से निपटने के लिए कई कदम उठाये थे लेकिन उनके सुधार के प्रयास समस्या की प्रकृति को समझ नहीं पाये। 1705 में बकुफु ने अमीर और शक्तिशाली योद्धाओं जैसे सौदागरों की संपदा को जब्त कर लिया था। लेकिन इससे कोई लाभ नहीं हुआ। 1720 के दशक में **तोकुगावा योशिमुने** (1684-1757) ने वित्तीय और प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारने के लिए कदम उठाये जिसमें उसने सौदागरों को लाइसैंस (व्यापार की औपचारिक अनुमति) दे दिये, लेकिन उसने उपभोग और धन वितरण को कम करने के परंपरागत नुस्खे का भी इस्तेमाल किया। परंपरा से हट कर उपाय बकुफु के अधिकारी तामुना ओकित्सुगु (1719-1788) ने किये। उसने वाणिज्य को बढ़ावा देने और उस पर कर लगाकर सरकारी राजस्व बढ़ाने के प्रयास किये, लेकिन ये प्रयास सफल नहीं हुए और उसे उसके पद से हटा दिया गया। उसके उत्तराधिकारी मत्सुदाइरा सदानोबु (1758-1829) ने योशिमुने द्वारा उठाये गये कदमों को दोहराने का प्रयास किया और 1841 में मिजुनो तादाकुनी ने तो सरकारी अनुमोदन वाले व्यापार अधिकारों को भी समाप्त कर दिया। इन उपायों ने पहले की गंभीर स्थिति को बस जटिल करने और गड़बड़ाने का ही काम किया और उन्हें वापस लेना पड़ा।

एक ओर तो प्रभावी और उपयुक्त नीतियों को लागू करने की बकुफु की असमर्थता थी और दूसरी ओर उत्पादकों और स्थानीय सौदागरों के बीच अनुधिकृत व्यापार में बढ़ोतरी हो रही थी। राज्य अपनी स्वयं की वित्तीय कठिनाइयों से उबरने के लिए इस व्यापार को स्वीकार करने या उसमें सक्रिय सहयोग करने को भी बाध्य थे। उदाहरण के लिए चोशु में 1840 में कुल गैर खेतिहर आमदनी शुद्ध खेतिहर आमदनी के बराबर

ही थी। लेकिन खेतिहर आमदनी पर तो 39 प्रतिशत कर लगाया गया था। 1840 तक होंशू और शिकोकू के वाणिज्य क्षेत्रों में ग्रामीण लोग एक नकदी अर्थव्यवस्था से दृढ़ता से जुड़ चुके थे।

9.2.3 तनाव और द्वंद्व

नकदी अर्थव्यवस्था का विकास होने और उसके परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधों में होने वाले बदलावों ने तनावों और द्वंद्वों को जन्म दिया। **सैमुराई** के भीतर विभाजनों के कारण सामान्य हितों की स्थिति नहीं बन सकी। सौदागर भी एक जुट नहीं थे बल्कि उनमें भी हितों को लेकर विभाजन था। बुकुफु के कृपापात्र **ओसा** के सौदागर **तोकुगावा** के ढांचे से निकट से संबद्ध थे और जब इसका पतन हुआ तो वे भी समाप्त हो गये। बस एक मित्सुई घराना बचा और वह भी अपने संस्थापक की दूरदर्शिता के कारण।

ग्रामीण सौदागरों ने एक गतिशील भूमिका निभानी शुरू कर दी थी, उन्हें विशेषाधिकारों के मुनाफे नहीं दिए गए और बदलाव की आवश्यकता के प्रति उनकी प्रतिक्रिया अनुकूल रही। शहरों की तरह ग्रामीण क्षेत्रों में भी आर्थिक बदलावों ने सामाजिक संरचना को गड़बड़ा दिया और अव्यवस्था की स्थितियां बारंबार और अधिकाधिक हिंसक होने लगी। 1780 और 1830 के दशकों में अकाल, कीमतों में वृद्धि या अत्यधिक कर लगाने से किसानों में विरोध भड़का। किसान वर्ग पर **तोकुगावा** शांति को ताकत के साथ लागू किया गया और 1637 में शिमाबारा के विद्रोह को अत्यंत कड़ाई के साथ दबाया जा चुका था। बीच के वर्षों में इन विरोधों ने सामूहिक निवेदनों से बढ़ कर हिंसक कार्यवाहियों का रूप ले लिया। ये विरोध कई गांवों में फैल गए और इनमें हजारों ने भाग लिया।

विद्वानों की गणना के अनुसार 17वीं शताब्दी में किसान विद्रोहों का औसत एक या दो प्रति वर्ष था जबकि 1790 के बाद उनका औसत प्रति वर्ष छः से ऊपर पहुंच गया था। शुरुआत की किसानी कार्यवाहियां ग्रामीण एकजुटता के रूप में और व्यापक तौर पर शांतिपूर्ण थी और उनका संबंध करों में कटौती करवाने से था। लेकिन बाद के वर्षों की किसानी कार्यवाहियां अक्सर गांव के सयानों की सलाह के खिलाफ हुईं। ये कार्यवाहियां हिंसक थी और अक्सर इनमें संपत्ति को नष्ट किया गया। कई बार तो किसानी विरोधों का चरित्र सहस्राब्दिक रहा। इस तरह उदाहरण के लिए शहरी केन्द्रों में भी विरोध **तोकुगावा** के अंतिम वर्षों में बढ़ गए। इनमें से सबसे प्रतिनिधि विरोधों को **योनाओशी** (विश्व नवीनीकरण) कहा गया। इन विरोधों की प्रेरणा लोक परंपराओं से ली गयी और इनका उद्देश्य सदाचारिता की फिर से स्थापना करना था। ग्रामीण अशांति आर्थिक बदलावों की भी देन थी और बढ़ती शिक्षा और जागरूकता की देन भी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.2.4 शिक्षा विद्वान और विचार

पूर्व आधुनिक काल के आंकड़े बहुत विश्वसनीय तो नहीं हैं लेकिन यह कहा जा सकता है कि अधिकांश पूर्व-औद्योगिक समाजों की तुलना में जापान में शिक्षा का स्तर ऊंचा था। तैराकोया या मंदिर स्कूलों से लेकर **दाइम्यो** और **बकुफु** के प्रायोजन वाले स्कूलों और निजी विद्यापीठों तक विभिन्न स्कूलों ने जनता का एक पढ़ा-लिखा वर्ग बनाया। शहरों में साक्षरता का प्रसार प्रकाशन उद्योग की विकसित स्थिति और कसबाइयों की शिक्षा और सांस्कृतिक जीवंतता का प्रमाण है।

तोकुगावा समाज के आदर्शों और मूल्यों पर सवाल उठाने ने भी तेजी पकड़ी और इसे अनेक स्रोतों से प्रेरणा मिली। चीनी ज्ञान की श्रेष्ठता पर जो सवाल उठे उससे विद्वानों को जापानी संस्कृति और सभ्यता के आधार की खोज उस अतीत में करनी पड़ी जब वह चीनी मूल्यों से बची हुई फल-फूल रही थी। मोतूरी नोरीनागा ने मुरासाकी शिकिबू के क्लासिकी हेई उपन्यास, "**मेजी** की कथा" के अध्ययन के माध्यम से जापानी संस्कृति के असली केन्द्र का पता लगाने की कोशिश की। उसके अनुसार जापानी संस्कृति का केंद्र किसी दैवीय रूप से अवतरित सम्राट में, **शिंतो कामी** या देवताओं में और तार्किकता पर भावना की प्रमुखता में था। राष्ट्रीय ज्ञान पंथ की श्रेणी में रखे गये इन विचारों ने जापानी संस्कृति और राजनीति के केन्द्र के रूप में साम्राज्यिक संस्था पर जोर दिया। इस तरह सूर्य देवी का प्रत्यक्ष वंशज जापान की भूमि दैवीय थी और वहां का सम्राट एक जीता-जागता देवता था और इसलिए जापान की तुलना किसी और देश से नहीं की जा सकती। मोतूरी नोरीनागा के विचारों को हिराता अत्सुताने (1776-1843) ने आगे बढ़ाया। हिराता चीनी ज्ञान का घोर आलोचक था।

इन विचारों के समानांतर मितो संप्रदाय के गिर्द होने वाला ऐतिहासिक विद्वता का विकास था। मितों की **हान तोकुगावा** की एक सहवर्ती शाखा थी और तोकुगावा घराने को उत्तराधिकारी दे सकती थी। **हान** ने जापान के एक इतिहास (दाई निहोनशी) को प्रयोजित किया और इस इतिहास में भी सम्राट की भूमिका पर जोर दिया गया

तोकुगावा बकुफु ने जापान को अंतर्राष्ट्रीय संपर्क से वास्तव में काट दिया था लेकिन उन्होंने डच लोगों को

दोशिमा में एक छोटे व्यापारिक केंद्र को लिये रहने की अनुमति दे दी। दोशिमा नागासाकी से हट कर एक मानव-निर्मित द्वीप था। डचों के यहां रुकने से यह द्वीप पश्चिमी ज्ञान का वातायान बन गया। जापानियों में उच्च विद्वानों (रंगाकुशा) का एक गुट उभरा। इन जापानियों को डच विद्वान इसलिए कहा गया क्योंकि उन्होंने डच भाषा का अध्ययन किया और उसके माध्यम से चिकित्सा; धातु विज्ञान, किलेबंदी और दूसरे व्यावहारिक विषयों पर कई पुस्तकों का अनुवाद किया। इन विद्वानों ने एक महत्वपूर्ण और आलोचनात्मक धारा बनायी जिसने **तोकुगावा** काल के समापन वर्षों में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन करने वाले सुगिता गेनवाकु (1733-1817) ने चिकित्सा शास्त्र पर पश्चिमी पुस्तकों के अपने ऊपर प्रभाव के बारे में लिखा। 1771 में उसने एक मनुष्य के शरीर की चीरफाड़ में हिस्सा लिया। यह चीरफाड़ निषेध के कारण गोपनीय ढंग से की गयी थी। इस चीरफाड़ में उसने पाया कि शरीर विज्ञान पर डच पुस्तकें अपने विवरण में पूरी तौर पर सही थीं और वह "पश्चिम के ज्ञान और पूर्व के ज्ञान के बीच के इस बड़े अंतर" से बहुत प्रभावित हुआ। होंडा तोशियाकी (1744-1821) जैसे अन्य विद्वानों ने आर्थिक विकास और विदेशी विस्तार की वकालत की और काइहो सेर्यो (1755-1817) ने सरकार से व्यापार और वाणिज्य में लगने का आग्रह किया। ये विचार उन्होंने पश्चिमी कृतियों को पढ़ कर और पश्चिमी समाजों का अध्ययन कर पाये थे।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित नए विचारों का एक नया अंग यह जागरूकता थी कि राज्य को चाहिए कि वह एक नए और दृढ़तर जापान की रचना के लिए प्रशासनिक, उद्यमी और सैनिक कौशलों को मिला दे। साम्राज्यिक (शाही) संस्था के केन्द्रीय महत्व को भी बताया गया। ये धारायें **बकुफु** की राजनीतिक आलोचना बढ़ाने पर एक साथ आ गयीं। **बकुफु** अब उन पश्चिमी ताकतों से निपटने में और भी असमर्थ था जो यह मांग कर रही थीं कि जापान अपने द्वार खोल दे और व्यापार और राजनीतिक संबंधों के लिए स्वतंत्र संपर्क की छूट दे।

डच विद्वानों के ज्ञान का उपयोग महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने बदलती स्थिति का विश्लेषण करने में किया। वातानाबे कजान (1793-1841) ऐसे एक प्रयास का प्रतीक है। तावारा के राज्य का एक सेवक वातानावे, एक योग्य और बुद्धिमान व्यक्ति था जिसने यह देखा कि पश्चिमी राष्ट्रों की शक्ति चीजों के अध्ययन विज्ञान-बोध, और घटनाओं की अग्रगामी गति में" निहित थी। पश्चिमी समाजों में विज्ञान "ज्ञान की अन्य तीन शाखाओं-धर्म और नीति, शासन और चिकित्सा-की सहायता के लिए और उस आधार का विस्तार करने के लिए था जिसका आधार वे विभिन्न कलाएं और तकनीकें हैं जो उन पर आश्रित हैं"। कजान को तो गिरफ्तार कर लिया गया और उसने बाद में आत्महत्या भी कर ली, लेकिन दूसरे लोग उसी तरह का काम करते रहे। ओगाता कोआन (1810-1863) ने 1838 में ओसाका में एक स्कूल खोला जिसमें डच ज्ञान की दीक्षा दी जाती थी। इस स्कूल के कई विद्यार्थियों ने आने वाले समय में मेजी पुर्नस्थापना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आईजावा सेशीसाई का **शिनरोन** या प्रबन्ध 1825 में प्रकाश में आया। उत्तर में रूसियों की बढ़त के प्रति सजग आईजावा (1781-1863) ने देखा कि पश्चिमी खतरे से निपटने के लिए जो रणनीति कारगर हो सकती थी उसके लिए सैनिक शक्ति की और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की भी आवश्यकता थी। पश्चिमी ताकतें ईसाई धर्म और अनिवार्य सैन्य भर्ती का इस्तेमाल करती थीं, इसलिए जापान के लिए अपने हथियारों को आधुनिक बनाना और अपने **कोकुताई** या राष्ट्रीय मर्म को फिर से जगाना अत्यंत आवश्यक था। उसने लिखा: "सूर्य हमारी दैवीय भूमि पर उगता है, और आदिम ऊर्जा का मूल यही है। महान सूर्य के वारिस अनादिकाल से शाही सिंहासन पर आसीन हैं"। इस तरह आईजावा विभिन्न परंपराओं का सहारा लेकर एक नया कार्यक्रम देख रहा था जिससे पश्चिमी खतरे से बनी चुनौतियों का सामना किया जा सके। वह पश्चिमी ज्ञान का इस्तेमाल जापान और जापानी मूल्यों की श्रेष्ठता को फिर से व्यक्त करने के लिए कर रहा था।

जापानी संस्कृति की शुद्धता को फिर से व्यक्त करने और कभी-कभी इन देशज अवधारणाओं को सुदृढ़ करने के लिए पश्चिमी प्रौद्योगिकी को शामिल करने का प्रयास करने वाली साम्राज्यिक (शाही) संस्था से प्रेरित राजभक्ति के आदर्शों को आगे दूसरी बौद्धिक धाराओं ने भी मजबूत किया। चीनी दार्शनिक वांग यांग मिंग, या ओयोमे, के संप्रदाय में यह तर्क दिया गया था कि पारंपरिक तर्क कार्यवाही के लिए निर्देश के रूप में सहायक नहीं थे, इसलिए व्यक्ति के लिए आवश्यक था कि वह अपने अंदर इनकी तलाश करे और उसी के अनुसार आचरण करे। इन अवधारणाओं से प्रेरणा लेकर एक निचले स्तर के अधिकारी, ओशियो हेडाचीरो, ने अपनी नौकरी छोड़ दी और 1837 में एक विद्रोह का नेतृत्व किया।

....

....

....

....

....

....

....

....

बौद्धिक बदलाव लाने में रंगाकुशा (डच विद्वानों) ने क्या भूमिका निभायी? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन से सही (√) हैं और कौन से गलत (×) निशान लगायें।
   i) **शोगुन** को महत्वपूर्ण मामलों पर कोई अधिकार नहीं था।
   ii) विदेशी दबावों ने जापान के आंतरिक संकट को और गंभीर कर दिया।
   iii) वित्तीय घाटों से उबरने के **तोकुगावा** के तरीके कन्फ्यूशियस की सूक्ति पर आधारित थे।
   iv) बकुफु के सुधार कारगर रहे।
   v) किसानी विरोध हिंसक हो रहे थे।

9.3 बाहरी संकट का दौर

तोकुगावा के बकुफु की शक्ति और वैधता को अंदर ही अंदर क्षति पहुंचाने वाली दीर्घकालिक आंतरिक शक्तियों को उभरते बाहरी संकट ने और भी मजबूत कर दिया था। (जैसा आपने इकाई 8 में देखा) जापान बाहरी शक्तियों के आकर्षण का केंद्र बन रहा था। साइबेरिया के पार विस्तार करते हुए रूस ने जापान के उत्तरी भागों को टटोलना शुरू कर दिया था। अमेरिका ऐसे बंदरगाहों की तलाश में था जहां वह चीन जाने वाले अपने तेज गति के (क्लिपर) जहाजों के लिए ईंधन और अन्य सामग्री ले सके। इंग्लैंड और फ्रांस भी इस क्षेत्र में प्रमुख खिलाड़ी थे और सभी जापान से संपर्क में रुचि रखते थे।

विदेशी दबाव के प्रति जापान की प्रतिक्रिया और विदेश नीति के प्रति उसके रवैये को पुराने समय से ही दो विचारों में बांटा गया है :

1) **जोई**, अर्थात् विदेशियों को निकाल बाहर करो। इसे एक विवेकहीन प्रतिक्रिया के रूप में देखा जाता है जिसकी वकालत अनाड़ी देशभक्त करते थे। **जोई** एक सीमित युद्ध के तर्क की वकालत करता है जिसमें बर्बरों को खदेड़ कर देश में फिर से जीवन का संचार किया जाये। यह इतना आदर्शवादी

विचार भी नहीं था क्योंकि दुनिया में उस समय तक पूर्ण युद्ध के विचार पर चिंतन नहीं किया गया था।

2) **काईकोकू,** अर्थात् खुला देश का विचार। इस विचार को कई तरीकों से पेश किया गया। लेकिन सभी का तर्क यह था कि जापान पश्चिमी ताकतों के खतरे से निपटने की स्थिति में कतई नहीं था। इसलिए उसे अपनी अखंडता की रक्षा के लिए समय की आवश्यकता थी।

बकुफु के समापन वर्षों के इतिहास को दो स्थिर स्थितियों के आपस में टकराने के काल के रूप में न लेकर अगर इन्हें उस रूप में लिया जाये जिसके जरिये विचारक और नीति निर्माता कुछ सामाजिक विचारों को साकार करने का प्रयास कर रहे थे तो यह कहीं अधिक लाभकर होगा। **सकोकू,** अर्थात् बंद देश के विचार का आधार **तोकुगावा** की महान शांति, एक हस्तक्षेप न करने वाला सम्राट और सीमित विदेशी संपर्क थे। इस विचार की जगह 1853 और 1868 के बीच धीरे-धीरे **काईकोकू** अर्थात् खुला देश, के विचार ने ले ली जिसका आधार एक सक्रिय सम्राट और समान सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों से एकताबद्ध राष्ट्र और सैनिक दृष्टि से मजबूत व्यवस्था बनाने के लिए पश्चिम के ज्ञान का उपयोग था। एक विचार से दूसरे विचार की ओर इस विचलन को उन बौद्धिक और आर्थिक बदलावों का समर्थन प्राप्त था जिसने विदेशी संबंधों के मसले में जनता की भागीदारी के स्तर को बढ़ाया।

सन् 1853 और उसके बाद के उस काल को जब कमोडोर पेरी ने जापान की धरती पर कदम रखा तीन उप-कालों में बांटा जा सकता है:

9.3.1 1853-1858 का दौर

इस दौर में बकुफु ने बंदरगाहों को खोलने की विदेशी मांगों को कम से कम करने का प्रयास किया। बकुफु अधिकारी, आबे मसाहीरो, ने तर्क दिया कि पेरी की संधि की मांगों को अस्वीकार करने से युद्ध का खतरा बनेगा, जबकि इसे स्वीकार करने से उन्हें इतनी मोहलत मिल जायेगी कि वे अपने आपको मजबूत कर लें। बकुफु की दृष्टि में असल खतरा व्यापार को लेकर नहीं था बल्कि सामाजिक अव्यवस्था का डर था। विदेशी घुसपैठ राजधानी इदो को, और विशेषतौर पर क्योटो की शाही राजधानी को खतरे में डालने वाली थी। जैसा कि एक बकुफु अधिकारी ने लिखा, यह तर्क देते हुए कि विदेशियों को "शाही महल, पवित्र स्थलों और निजी जागीरों" से दूर रखने के लिए योकोहामा को खोल दिया जाना चाहिए जिससे कम से कम रियायतें देकर स्वाभाविक व्यवस्था की रक्षा की जा सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बकुफु के मुख्य अधिकारी, होता मासायोशी ने **काईकोकू** अर्थात् खुले देश के विचार को आगे रखा। उसने तर्क किया कि नयी स्थितियों में दूसरे देशों के साथ व्यापार और मैत्री संबंध महत्वपूर्ण थे, और आवश्यक भी। जापान के लिए आवश्यक था कि वह अपनी पृथकता की नीति पर फिर से विचार करे क्योंकि "सैनिक शक्ति हमेशा राष्ट्रीय संपदा से आती है और देश को संपन्न करने के साधन मुख्य तौर पर व्यापार और वाणिज्य में मिलते हैं"। यह शासन तंत्र के लिए एक नया तर्क था, क्योंकि अभी तक तो परंपरा से चले आ रहे ज्ञान ने केवल कृषि को ही संपदा का मूल माना था और सौदागरों पर नाक-भौं सिकोड़ी थी।

होता एक नयी पेशकश कर रहा था। लेकिन वह अभी भी विदेशियों को दूर रखने के पुराने स्वप्न से बंधा था। उसकी पेशकश यह थी कि जापानी बाहर निकल कर इस संपदा को हासिल करें लेकिन इस तरह के तर्कों में अभी भी विदेशियों के लिए जापान में आवास के अधिकार के लिए कोई जगह नहीं थी।

बकुफु ने 1858 में संधियां कीं जिनमें योकोहामा में व्यापार की अनुमति दी गई और 1859 से इदो में विदेशियों को आवास की अनुमति दी गयी। इन कार्यवाहियों से विरोधी आंदोलनों को बढ़ावा मिला और "सम्राट का आदर करो, बर्बरों को निकाल बाहर करो" (सोन्नो जोई) आंदोलन ने, विशेष तौर पर उस समय जोर पकड़ लिया जब एक राजभक्त ने एक बकुफु अधिकारी ली नाओसूके की हत्या कर दी।

9.3.2 1860-64 का दौर

सन् 1860 के दौरान और 1863 में सम्राट को फिर से स्थापित करने का एक असफल प्रयास हुआ। इस तेजी से बदलते राजनीतिक भागीदारी के आधार को व्यापक करने के और भी प्रयास हुए। जिन दाइम्यो को सत्ता से और निर्णय लेने वाली परिषदों से बाहर रखा गया था, उन्होंने **बकुफु** की कमजोरी का उपयोग कर अपनी भूमिका और शक्ति को बढ़ाने की कोशिश की। इस तरह की एक कोशिश दरबार और **शोगुन** (कोबुगत्ताई) की दोस्ती थी। इसका उद्देश्य सामंतों और **सैमुराई** के उच्च स्तरीय सदस्यों को एक साथ

लाकर राष्ट्रीय एकता के लिए साथ-साथ काम करना था। यह प्रयास भी असफल ही रहा, लेकिन गृह युद्ध का खतरा टल गया। फिलहाल यह प्रश्न राजनीतिक पात्रों के दिमाग में हर समय बना हुआ था कि विदेशी आंतरिक फूट का लाभ उठायेंगे। 1860 के दशक में भी विदेशियों को क्योटो की शाही राजधानी के आसपास के क्षेत्र **(किनाई)** से बाहर ही रखा गया और इसकी प्रतिरक्षा के लिए कदम उठाये गये।

सन् 1864 में **बकुफु** ने **किनाई** में विदेशियों के प्रवेश देने के बजाय उन्हें हरजाना देने को ही सहमति प्रदान की और 1865 में दरबार ने संधियों का अनुमोदन तो कर दिया, लेकिन ह्योगो में विदेशियों को प्रवेश की अनुमति देने से इंकार कर दिया, जबकि संधि में इस पर सहमति हुई थी। **बकुफु** को इस प्रावधान के एवज में एक विनाशकारी शुल्क दर स्वीकार करनी पड़ी।

चोशु और सत्सुमा के **हान** पर हुई बमबारी (देखिये खंड 2 इकाई 8) ने एक स्पष्ट सबक दिया जिसमें विदेशियों को जबरन निकालने और उन्हें सीमित रियायतें देने, इन दोनों ही नीतियों की निरर्थकता सामने आ गई। 1865 तक यह स्पष्ट हो चुका था कि **सकोकू** या बंद देश चल नहीं सकता।

9.3.3 1865-1868 का दौर

यह काल एक खुले देश की नीति की विजय और नयी व्यवस्था को स्वीकारने के लिए उल्लेखनीय है। बकुफु ने 1867 में लंदन और पेरिस में सरकारी दूत भेजे, और उससे भी पहले एक अधिकारी इकेदा नागासाकी ने यूरोप का दौरा करने के बाद लिखा कि "राष्ट्रीय स्वाधीनता की नींव रखने के लिए यह मूल बात है कि जापान के भीतर राष्ट्रीय एकता हासिल की जाये"। उसने सलाह दी कि यह आवश्यक था कि जापानी संधियां करें और यात्रा करें, जानकारी एकत्र करें और पश्चिमी देशों का अध्ययन करें। इस बदली स्थिति में, "शोगुन" योशिनोबू यह लिख सका: "अगर हम, ऐसे समय में, केवल पुरानी पड़ चुकी रीतियों से चिपटे रहते हैं, और सभी देशों में आम अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से बच कर रहते हैं तो, हमारा व्यवहार स्वाभाविक व्यवस्था के प्रतिकूल होगा"। ऐसे वक्तव्य इससे पहले के समय में नहीं दिये जा सकते थे। उनमें जापानियों के बौद्धिक बदलाव का स्पष्ट संकेत मिलता है। बेशक उनके विचार परिस्थितियों के दबाव में आकर बदले थे, लेकिन जो चुनाव उन्होंने किया वह एक नयी स्थिति के प्रति उनकी रचनात्मक प्रतिक्रिया का एक अंग था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तोकुगावा "बकुफु" के अंतिम दशक में एक नये तरह के संबंध उभरते दिखायी दिये। सत्सुमा और चोशु इंग्लैंड के और निकट आ गये थे और "बकुफु" की फ्रांस के साथ दोस्ती और बढ़ गयी थी। यह अपने आप में संभावी तौर पर एक खतरनाक स्वरूप था क्योंकि ये साम्राज्यवादी ताकतें अपने कृपापात्र मित्रों का समर्थन करके गृह युद्ध की स्थिति पैदा कर सकती थीं। इस खतरे को भांप लिया गया और स्थिति बिगड़ने नहीं पायी क्योंकि सम्राट की बहाली से एक केंद्रीकृत नौकरशाही राज्य सामने आया।

9.4 मेजी पुर्नस्थापना

सन् 1868 में "बकुफु से सम्राट के हाथों में सत्ता की वापसी मेजी पुर्नस्थापना की विशेष घटना थी। सम्राट को मेजी या प्रबुद्ध सरकार का मरणोपरांत नाम दिया गया और इसका इस्तेमाल 1868 से 1912 तक के उसके दौर के लिए किया जाता रहा। 1868 में सत्ता का बकुफु से सम्राट को वापिस मिलना मेजी पुर्नस्थापना की ओर संकेत देता है। सम्राट को मृत्योपरांत मेजी या प्रबुद्ध सरकार का नाम दिया गया तथा इसे 1868 से 1912 तक के समय के लिए उपयोग किया जाता है। शाही आदेशपत्र के द्वारा जनवरी, 1868 में **तोकुगावा कीकी** का पदत्याग घोषित किया गया। यह **तोकुगावा** के लंबे शासन की औपचारिक समाप्ति की ओर संकेत करता है। अप्रैल में राजदरबार ने शपथ धोषणा पत्र जारी किया जिसमें नई सरकार की नीतियां निहित थीं। अक्टूबर 1868 में सम्राट मुत्सूहितो ने चीनी "चरित्रों" का चयन किया जिनका अर्थ "प्रबुद्ध" शासन या मेजी था तथा जिस नाम से उसका शासनकाल जाना जाता है।

पुर्नस्थापना या इशिन के नाम से यह घटना जानी जाती है। इसमें कुलीन वर्ग (अभिजात-वर्ग) के कुछ तबके तथा विशेष तौर पर सत्सुमा, चोशु, हिज्म तथा तोसा के **हान** ने भाग लिया उन **सैमुराई** तथा ग्रामीण समृद्ध तबकों ने भी इसको समर्थन दिया जिन्हें **तोकुगावा** तंत्र के प्रतिबंध खलते थे। ये गुट बकुफु की सत्ता में भागीदारी चाहते थे। जब विदेशी दबाव के फलस्वरूप बकुफु अपने को कायम रखने में असफल रहा तो इन गुटों ने राजनीति में हस्तक्षेप करके उसे प्रभावित करना चाहा। विदेशियों की संधि-बंदरगाहों को खोलने की मांग तथा बकुफु की दुविधा ने इन गुटों को शाही दरबार को समर्थन देने के लिए तथा **तोकुगावा** द्वारा सम्राट को सत्ता वापिस करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस मांग का राजभक्तों ने भी समर्थन किया जो कि

सचमुच एक सक्रिय शाही दरबार चाहते थे। सत्सुमा तथा चोशु **हान,** जो कि अपने-अपने गुटों का नेतृत्व कर रही थीं, के बीच शुरू में कटु संबंध रहे परंतु बाद में इन दोनों ने मिलकर **तोकुगावा बकुफु** का तखता पलट दिया।

1854 में कंगादा की संधि पर हस्ताक्षर हुए तथा 1859 तक जापान के विदेशी संबंध असमान संधियों के आधार पर निर्धारित हो गए, जैसा कि चीन में भी हुआ। संधि बंदरगाहों को खोलने के दबाव (**अलामाशी, हाबोबाती, योहोहामा, बीगाता, कोबे**) ने ऐसे संकट को जन्म दिया जिसमें तोकुगावा के आलोचक एकजुट हो गए। उदाहरण के तौर पर **तोकुगावा** गुट के रूढ़िवादी जो कि संधियों से सहमत नहीं थे क्योतो के अभिजात वर्ग के साथ मिल गए तथा उन्होंने बकुफु को सुधारने की चेष्टा की। सत्सुमा तथा चोशु ने प्रमुख भूमिका निभाई क्योंकि वे "बाहर के सामन्त" थे (उन्हें 1600 में तोकुगावा हरा चुका था) तथा सत्ता में उनकी भागीदारी नहीं थी। उनके हान तोकुगावा क्षेत्रों से बहुत दूर थे तथा उनका इलाका सुसंहत था। इन **हान** में आंतरिक सुधार की कोशिश भी संभव हो सकी तथा वे उन ताकतों को भी जुटा पाए जो तोकुगावा का विरोध कर सकती थीं।

9.4.1 बहस

सन् 1868 की घटनाएं पुर्नस्थापना की ओर इशारा करती हैं या क्रांति की ओर? ये वे सवाल हैं जिनको लेकर विद्वानों में अभी भी बहस चल रही है। उदाहरण के लिए तेत्सुओ नाजीता लिखता है कि "जापानी सम्राट के पास सत्ता का कोई विशिष्ट ढांचा नहीं था जिसकी" बहाली होती, और इशिन (पुर्नस्थापना या बहाली) के बाद उसके साथ जो भी भव्य छवियां जुड़ीं वे हाल के इतिहास की विरासत नहीं, आधुनिक राज्य की वैचारिक संरचना का परिणाम थीं।" 1867 और 1868 की घटनाएं महाप्रलय किस्म की घटनाएं नहीं थीं, और अगर केवल इसी दौर पर विचार किया जाए तो **तोकुगावा** से मेजी पुर्नस्थापना की ओर संक्रमण आसान और बहुत कम द्वंद्व वाला दिखायी देता है। लेकिन अगर इस पर 19वीं शताब्दी की शुरुआत से विचार किया जाये तो यह देखा ज़ा सकता है कि जो बदलाव लाये गये थे उन्होंने जापान को बहुत बदल डाला और एक नये राष्ट्र राज्य की रचना की। इस संक्रमण की प्रकृति के दृष्टिकोण को लेखकों और लेखकों के समय की चिंताओं ने प्रभावित किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक जाने-माने मेजी बुद्धिजीवी, तोकुतोमी सोहो, ने यह तर्क दिया था कि आधुनिक जापान की रचना में मदद मेजी नेताओं ने नहीं, बल्कि परिस्थितियों ने दी। इसकी दृष्टि में सामंतवादी जापान पहले ही उन ग्रामीण नेताओं के उदय के साथ कमजोर हो रहा था, जिनकी शक्ति का आधार एक उत्पादक और संपन्न अर्थव्यवस्था थी, लेकिन जिन्हें राजनीतिक सत्ता से वंचित रखा गया था। दूसरे बुद्धिजीवियों का तर्क था कि शाही राजभक्ति की ताकतें पुनरुत्थान के लिए जिम्मेवार थीं, इनमें अंतिम तोकुगावा शोगुन, योशिनोबू, भी शामिल हैं, जिसने 1915 में अपने संस्मरण लिखे।

9.4.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मेजी पुनरुत्थान का एक अत्यंत प्रभावी विश्लेषण 1920 के दशक में मार्क्सवादियों ने किया। उस समय आंतरिक दमन और एक आक्रमक विदेश नीति के कारण उन्हें आधुनिक जापानी राज्य की प्रकृति की फिर से छानबीन करनी पड़ी। विविध प्रकार की विस्तृत और विद्वतापूर्ण कृतियाँ प्रकाश में आयीं, और उनके दृष्टिकोणों को दो व्यापक कोटियों या श्रेणियों में रखा गया।

मजदूर-किसान गुट **(रोनो-हा)** पुर्नस्थापना को बुनियादी तौर पर एक बुर्जआ क्रांति के रूप में देखता था, जिसने सामंतवाद का खात्मा करके पूंजीवादी विकास का आधार तैयार किया।

दूसरे गुट का नाम **(कोज़ा)** उनके द्वारा लिखी गई श्रृंखलाओं या भाषणों पर पड़ा। कोज़ा गुट का तर्क था कि मेजी पुर्नस्थापना एक सफल पूँजीवादी क्रांति नही थी, बल्कि एक ऐसी क्रांति थी जिसने एक तानाशाही राज को स्थान दिया। इसका आधार "सम्राट व्यवस्था" थी और इस व्यवस्था की शक्ति उन सामंती संबंधों पर आधारित थी जो गांवों में अभी भी बने हुए थे।

मार्क्सवादियों के तर्क उनके राजनीतिक कार्यक्रमों से निकट से संबद्ध थे। सामंतवाद खत्म हो जाने की स्थिति में तो सम्राट से लड़ना आवश्यक नहीं था जिसके कारण पार्टी पर पाबंदी लग जाती, लेकिन सामंतवाद के महत्वपूर्ण बने रहने की स्थिति में उन्हें सम्राट व्यवस्था का विरोध करना पड़ता और इससे भी पार्टी पर पाबंदी लगा दी जाती।

एक प्रभावशाली जापानी विचारक, किता इक्की; ने पुर्नस्थापना को एक पुर्नस्थापना क्रांति के रूप में देखा

जिसमें प्रगतिशील तत्वों और अतीत से चले आ रहे प्रतिबंधों दोनों को मान्यता मिली। उसने अपनी कृति में अपने दृष्टिकोण को बहुत जोरदार ढंग से रखा। उसकी कृति पर उसके छपने के लगभग तुरंत बाद ही पाबंदी लगा दी गयी।

9.4.3 युद्धोत्तर बहस

युद्धोत्तर जापान में यह बहस जारी रही है। इ.एच. नार्मन ने अपनी मार्गदर्शक कृति में एक विवेचना दी जिसने अनेक विद्वानों को प्रभावित किया। नार्मन की दृष्टि में पुर्नस्थापना की स्थिति ''निम्न **सैमुराई**'' और ''सौदागरों'' के गठबंधन का काम था इस गठबंधन ने मेजी राज्य को बनाने में निर्णायक भूमिका निभायी और यह विदेश विस्तार और आंतरिक केंद्रीकरण जैसी विशेषताओं के विकास के लिए भी जिम्मेदार रहा। फिर भी, दूसरे विद्वानों को विस्तृत अध्ययन के बल पर इस सिद्धांत को प्रमाणित करना कठिन लगा है।

अल्बर्त क्रेग ने तर्क दिया है कि ''निम्न **सैमुराई**'' विश्लेषण के आधार पर अर्थहीन है, क्योंकि 'उच्च **सैमुराई**'' का प्रतिशत बहुत ही कम था और किसी भी आंदोलन में निम्न **सैमुराई** की भागीदारी एक बड़ी तादाद में होती है । अल्बर्त क्रेग की ही तरह चोशू के हान का अध्ययन करने वाले टॉमस ह्यूमर ने निम्न **सैमुराई** को उनकी आमदनी के आधार पर परिभाषित किया है और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उनमें साधारण नागरिक किस्म के ग्रामीण प्रकाशक शामिल थे। शिबाहारा ताकऊजी की दृष्टि में सामंत-विरोधी भावनाओं ने पुनरुत्थान आंदोलन के पीछे की प्रेरक शक्ति के रूप में काम किया। लेकिन, कॉनरैड टॉटमैन का तर्क है कि साधारण नागरिकों ने सभी पक्षों में भागीदारी की और सामंत-विरोधी को बकुफु-विरोधी के बराबर रखना संभव नहीं है।

जन असंतोष की भूमिका का विश्लेषण करना कठिन है। यह सही है कि जन-आंदोलन हुए, लेकिन जैसा कि एक अध्ययन से पता चलता है, उनमें से कई आंदोलन **तोकुगावा** क्षेत्रों में हुए, जो बुकुफु विरोधी राज्यों या क्षेत्रों की तुलना में कहीं अधिक संपन्न थे। सौदागर राजभक्ति आंदोलन के समर्थक थे, यह निष्कर्षात्मक तर्क देने से पहले यह आवश्यक होगा कि सौदागरों की भूमिका का भी सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मारियस जानसेन ने विदेशी हस्तक्षेप से बनने वाले असली खतरे पर सवाल उठाया है; उसका तर्क है कि सरकारें या तो अपना प्रभाव बढ़ाने में रुचि नहीं रखती थीं, या फिर इस स्थिति में नहीं थीं; फिर भी वह यह तो मानता ही है कि जापान ने विदेशी खतरे की जो परिकल्पना की उसने लोगों को कार्यवाही करने को उधत करने में एक महत्वपूर्ण शक्ति का काम किया। विशेष तौर पर विदेशी ऋण के भय ने इस दौर में और मेजी युग में भी एक निर्णायक भूमिका निभायी।

बहसें जारी रहेंगी और आवश्यकता इस बात की है कि हम सावधानीपूर्वक और विस्तृत अध्ययन के जरिये असली प्रक्रिया की अपनी समझ को और भी साफ करें। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि बहस प्रमुख तौर पर तीन बिंदुओं के गिर्द घूमती है :

1) पहला यह कि मेजी इशिन का उदय पश्चिमी साम्राज्यवादी खतरे के विरुद्ध एक रक्षात्मक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ।

2) दूसरा, वास्तविक द्वंद्व सामंतवादी शक्तियों और उभरती पूंजीवादी शक्तियों के बीच था और जिस मेजी राज्य का उदय हुआ वह इन दो तत्वों का मिश्रण था।

3) तीसरा, बहस निम्न **सैमुराई** की प्रकृति और भूमिका को लेकर जारी है।

कॉनरैड टॉटमैन ने तर्क दिया है कि मेजी पुर्नस्थापना का प्रमुख कारण **तोकुगावा** के बकुफु का आंतरिक रूप से ध्वस्त होना था और ऐसा लंबे समय तक पतन की स्थिति बने रहने के कारण हुआ क्योंकि निरंतर शांति और आर्थिक विकास ने जिन नयी शक्तियों को जन्म दिया उनके प्रति **तोकुगावा** सही प्रतिक्रिया नहीं दे पाया। टॉटमैन की दृष्टि में 1860 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों के सोन्नाजोई और कोबुगत्ताई जैसे आंदोलन स्वैच्छिक थे; लेकिन उनका तर्क है कि ये आंदोलन देश को एकता के सूत्र में नहीं बांध पाये। उसके विश्लेषण में राष्ट्रीय राजनीतिक विचारों के महत्व पर जोर दिया गया है और इसीलिए वह क्षेत्रग्रस्त मामलों और मसलों को निर्णायक महत्व नहीं देता। राज्यों या क्षेत्रों का मसला महत्वपूर्ण तो था, लेकिन जिस किस्म का बदलाव लाया गया, उसमें वह कोई निर्णायक कारण नहीं था।

तोकुगावा कालीन जापान के फ्यूदाई दाइम्यो का अध्ययन करने वाले हैरल्ड बोलिटो का दृष्टिकोण इसके विपरीत है। उसका तर्क है कि **हान** की मजबूती और शक्ति को बढ़ाने वाले कमज़ोर **शोगुन** थे, केंद्रीय शक्ति का विकास नहीं हो पाया था। फिर क्षेत्रगत हित बकुफु के अंतिम वर्षों में निर्णायक शक्ति बन गये।

इन **हान** हितों को सम्राट के अधीन प्रतीकात्मक नेतृत्व मिल गया। सम्राट के नेतृत्व में **हानों** के इस गठबंधन के लिए बकुफु को चुनौती देना और अपनी राजनीतिक बदलाव की मांगों पर जोर देना संभव हो सका। कोबुगन्ताई आंदोलन इस गठबंधन द्वारा बकुफु को हटाने का मुख्य प्रयास था। सोन्नो-जोई आंदोलन एक राष्ट्रीय स्तर का (या राष्ट्रव्यापी) आंदोलन था जिसमें निम्न और मध्यम स्तर के **सैमुराई** ने एक साथ मिल कर बकुफु का विरोध किया।

जैसा कि पहले कहा गया है, टॉमस ह्यूबर ने चोशु के अपने अध्ययन में आंदोलन की वर्गीय प्रकृति पर ध्यान केंद्रित किया है जिसने मेजी पुर्नस्थापना की स्थिति लाने में मदद की। साम्राज्यवादी दबाव को महत्व देने के मामले में ह्यूबर की बोलितो से सहमति है, लेकिन वह बोलितों और टॉटमैन दोनों से असहमति व्यक्त करता है और यह तर्क देता है कि क्षेत्रगत चेतना और राष्ट्रीय चेतना दोनों ही बकुफु विरोधी आंदोलनों में निर्णायक नहीं थीं। चोशु में ईश्वर का प्रतिशोध नाम वाले ह्यूबर के इस आंदोलन के अध्ययन में यह बात सामने आती है कि वर्गीय चेतना और सामाजिक न्याय की इच्छा आंदोलन के पीछे की प्रमुख प्रेरक शक्ति थे। ढांचे को अंदर से सुधारने के बकुफु के प्रयासों का ह्यूबर ने जो अध्ययन प्रस्तुत किया वह कम आशाजनक है, उसकी दृष्टि में बकुफु बुनियादी तौर पर रूढ़िवादी था और उसमें बदलाव की क्षमता नहीं थी और इस ढांचे के भीतर सुधारवादियों की स्थिति बहुत गौण थी।

मेजी पुर्नस्थापना की घटनाओं की छानबीन जापान पर काम करने वाले विद्वानों ने की है, लेकिन दूसरे क्षेत्रों के बहुत कम विशेषज्ञों ने इस घटना को इस वृहत्तर ढांचे में रख कर देखने का प्रयास किया है कि समाजों ने किस तरह एक आधुनिक राज्य की ओर संक्रमण किया है। यह प्रक्रिया कठिन है और हमेशा सफल भी नहीं हुई है। मेक्सिको में 1910 में एक किसान क्रांति हुई जिसे दबा दिया गया, लेकिन वह कई दशक के पूंजीवादी विकास के बाद अभी भी एक अल्पविकसित देश बना हुआ है, दूसरी ओर तुर्की ने कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय बदलाव का काम हाथ में लिया, लेकिन वह भी विकास नहीं कर सका। ऐशिया में चीन ने 1911 में एक गणतांत्रिक क्रांति की और 1949 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता में आयी, लेकिन चीन भी उद्योगीकरण में सफल नहीं रहा है। इस तरह, जापान की मेजी पुर्नस्थापना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसने एक गैर-उद्योगीकृत समाज को एक आधुनिक राष्ट्र राज्य में बदल दिया। इस घटना पर एक वृहत्तर ऐतिहासिक प्रक्रिया के अंग के रूप में विचार किये जाने की आवश्यकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मेजी इशिन वह दौर था जब समाज को विप्लव में झोंक दिया गया था और विचार और संबंध अभी तक बाद के ''कुलीनतंत्रिक राज्य'' में घुलमिल नहीं पाये थे, और इसलिए उन हितों द्वारा कोई व्यवस्था थोपा जाना छानबीन के क्षेत्र को सीमित करता है और उस अनिवार्यता की ओर संकेत करता है जो जापान पर लिखी गयी ऐतिहासिक कृतियों में प्रकट होती है। तेस्तुओ नाजीता ने इस बदलाव को उस दृष्टि से देखा है जिस तरह ज्ञान और राजनीतिक अर्थव्यवस्था को समझा गया। **तोकुगावा** की चिंता के विषय थे ''समाज को व्यवस्थित करना और लोगों को बचाना (कैसे साइमिन)'' लेकिन मेजी के लिए मुख्य रुचि ''संपन्न देश, सशक्त सेना ''(फ्यूकोकू क्योहे) हो गयी। लोगों को ''बचाने'' से उन्हें ''संघटित करने का यह बदलाव मेजी इशिन के साथ आया। यह प्रक्रिया एक अरसे तक चली और उसके पहले बहसें और टकराव हुए। जापान का बदलाव एकमत और सौहार्द के जरिये नहीं आया। जब हम इन सवालों पर विचार करते हैं तो जे. डब्ल्यू. हाल के इस दृष्टिकोण को स्वीकार करना कठिन हो जाता है कि ''जापान ने ऐसी बहुत कम सामाजिक शत्रुता या राजनीतिक विचारधारा देखी जो कि फ्रांसीसी या रूसी क्रांतियों ने देखी .... मेजी न तो किसान क्रांति थी न बुर्जुआ वैसे गवर्नरी पर हमले का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों में किसान भी पाये गये थे और सौदागर भी।''

रूसी इतिहासकार ने लिखा है कि 1868-1873 के बीच 200 से अधिक किसान विद्रोह हुए; उसका तर्क है कि पुर्नस्थापना को एक ''असफल क्रांति'' के रूप में देखना कहीं बेहतर होगा। यह स्मरण रखना भी महत्वपूर्ण है कि जहाँ **तोकुगावा घराने** की हत्या नहीं की गयी और वह बरकरार रहा, वहीं तोबा और फ्यूशिमी बकुफु को नष्ट करने वाली लड़ाइयों में 120,000 सरकारी सैनिक शामिल थे, और 3,556 मारे गये और 3,804 घायल हुए, इसकी तुलना 1894-95 के चीन-जापान युद्ध में 5,417 हताहतों से कीजिए, तब आप यह समझ पायेंगे कि यह संघर्ष कितना बड़ा था।

मेजी पुर्नस्थापना की उथल-पुथल की छानबीन कई परिप्रेक्ष्यों में की गयी है। प्रभावशाली जापानी इतिहासकार, इरोकावा दाइकीपी ने ''सभ्यीकरण'' और ''पश्चिमीकरण'' के बीच टकराव पर जोर दिया है। उसका तर्क है कि महान नवीनीकरण (गोईशिन) कहलाने वाली मेजी पुर्नस्थापना में आम लोगों की आशाएं टूटीं और परंपरा से चली आ रही रीतियों में किये जाने वाले मनमाने बदलावों से उनका मोह भंग और गहरा हुआ; इस निराशा ने किसान विद्रोहों जैसे व्यवस्था-विरोधी संघर्षों को हवा दी, और वह मारूयामाक्यों और

तेनरिक्यो जैसे नये धर्मों की बढ़ी लोकप्रियता में भी प्रकट हुई। लोकतांत्रिक जन-संघर्षों पर इरोकावा के काम ने उसे जापानी इतिहास के एक प्रमुख विवेचक के रूप में स्थापित किया है।

आधुनिकता की मांगों और आम लोगों की जीवन-शैली के विनाश के बीच का तनाव पुर्नस्थापना के दौर में और उसके तुरंत बाद होने वाली हिंसक घटनाओं के पीछे की प्रेरक शक्ति थी।

निष्कर्ष के तौर पर इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि जहाँ मेजी पुर्नस्थापना ने जापान के लिए एक नये युग की शुरुआत की वहीं जापान के सफल बदलाव का कारण केवल उसे मिलने वाली मोहलत नहीं थी। पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों की रुचि निश्चित रूप से चीन के बड़े बाजार में थी और उन्हें जापान में कोई बड़ी संभावना नहीं दिखायी देती थी। इससे जापान को कई सुधार करने का अवसर मिला; लेकिन जापान इन सुधारों को सोच और लागू कर सका, और स्वयं को मिले अवसर का लाभ उठा सका, इसका कहीं बड़ा कारण उसकी आंतरिक मजबूती और स्वदेशी संस्थाएं थीं।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) मेजी पुर्नस्थापना पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

3) मेजी पुर्नस्थापना पर युद्धोत्तर बहस की पंद्रह पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

9.5 सारांश

तोकुगावा का पतन नयी सामाजिक शक्तियों के निर्माण और इन शक्तियों से बनने वाले तनावों के कारण हुआ। **सैमुराई,** सौदागरों और किसानों को बढ़ती समस्याएं पेश आयीं, जिनमें से कुछ का कारण बढ़ती हुई उत्पादकता और संपन्नता थी। बकुफु के पास रचनात्मक तौर पर नयी चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्य नहीं थी। अर्थव्यवस्था में लंबे समय के बदलावों के साथ-साथ वे नयी बौद्धिक प्रवृत्तियाँ भी थीं जिन्होंने **तोकुगावा** की रूढ़िवादिता की जड़ें खोदीं। **बकुफु** ने इनमें से कुछ चुनौतियों का सामना किया होगा या धीरे-धीरे बदलाव आता, लेकिन साम्राज्यवादी दबावों ने इन समस्याओं को और भी गंभीर कर दिया। 19वीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी साम्राज्यवाद अपने शिखर पर रहा, और रूस, इंग्लैंड और फ्रांस विशेष तौर पर इस क्षेत्र में सक्रिय रहे। जापान इस जबरदस्त मारकाट से इसलिए बच गया क्योंकि इन ताकतों की चीन में अधिक रुचि थी। फिर भी इस बात पर ज़ोर देना ही चाहिए कि जापान के बदलाव की प्रक्रिया साम्राज्यवादी खतरे की स्थिति में चली और उसकी प्रतिक्रिया भी विशेष तरीकों से इसी खतरे के अनुकूल और इसी की दिशा में बनी। उपनिवेश बन जाने का भय, सामाजिक गड़बड़ी का भय और विदेशी ऋणों के कारण गुलाम बन जाने का भय भी संकट के इस विकृत बोध की पुष्टि करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.6 शब्दावली

सोन्नो-जोई "सम्राट का आदर करो और बर्बरों को निकाल बाहर करो" प्रत्यक्ष शाही राज की पुर्नस्थापना के इच्छुक गुटों का नारा।

कोकुताई "राष्ट्रीय राज्यतंत्र": एक पुराना विचार जिसका कई अवसरों पर यह भी अर्थ रहा कि जापान अन्य देशों से हट कर था क्योंकि इसका मूल दैवीय था और उस पर सूर्य देवी के सीधे वंशजों का राज था।

फ्यूदाई तोकुगावा से संबद्ध आनुवांशिक जागीरदार मांतहत **दाइम्यो** गुटों में बंटे हुए थे और दूसरा प्रमुख गुट बाहरी सामंत या तोज़ामा का था जिन्होंने शुरुआत में **तोकुगावा** का विरोध किया था जैसे सत्सुमा, चोशू आदि।

सकोकू बंद देश, इसका संबंध तोकुगावा की पृथकता की नीति से है, वैसे इस शब्द का इस्तेमाल केवल 19वीं शताब्दी में हुआ।

तेराकोया बौद्ध मंदिर के स्कूल जिनका संचालन पुरोहितों के हाथों में था।

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपका उत्तर उपभाग 9.2.2 पर आधारित होना चाहिए।
2) आपका उत्तर उपभाग 9.2.2 पर आधारित होना चाहिए।

3) (1) × (2) √ (3) √ (4) × (5) √

बोध प्रश्न 2

1) काईकोकू का मतलब खुला देश। आपका उत्तर भाग 9.3 पर आधारित होना चाहिए।
2) उपभाग 9.4.2 देखिए।
3) उपभाग 9.4.3 देखिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 10 जापान में आधुनिकीकरण-I

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 शाही सरकार की स्थापना
- 10.2.1 विशेषाधिकारों की समाप्ति
- 10.2.2 राष्ट्रीय सेना
- 10.2.3 भूमि-कर और पेंशन

10.3 संविधान की ओर
- 10.3.1 मेजी का संविधान
- 10.3.2 बहस

10.4 मेजी राज्य के विरुद्ध विरोध और विद्रोह
- 10.4.1 विशेषाधिकारों की समाप्ति के विरुद्ध
- 10.4.2 स्वतंत्रता और जनाधिकार आंदोलन

10.5 मेजी की राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति
- 10.5.1 सम्राट
- 10.5.2 नौकरशाही

10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बादः

- आपको मेजी नेतृत्व द्वारा एक संवैधानिक सरकार की स्थापना के लिए उठाए गए कदमों के बारे में जानकारी होगी,
- आप एक संवैधानिक प्रतिनिधि सरकार की विपक्ष की मांगों के बारे में जानेंगे, और
- आप मेजी राज्य की प्रकृति और सम्राट व्यवस्था के अर्थ को समझ सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम पहले ही इकाई 9 में बता चुके हैं, जनवरी, 1868 में अंतिम शोगुन (गवर्नर) तोकुगावा केके ने सम्राट के पक्ष में अपना पद त्याग दिया था। सिद्धांत रूप में **शोगुन** ही सम्राट के नाम पर राज्य करते आए थे, लेकिन व्यवहार रूप में **शोगुन** ही असली शासक थे जबकि सम्राट क्योटो में रहने वाला और आर्थिक रूप से **शोगुन** पर आश्रित एक विस्मृत या उपेक्षित व्यक्ति था। यह शांतिपूर्ण कदम एक लंबी और जटिल प्रक्रिया की परिणति थी जिसके जरिए ढाई सौ वर्ष जापान पर राज्य करने वाली **तोकुगावा** गवर्नरी का अंत हो गया।

मेजी पुर्नस्थापना का नेतृत्व सत्सुमा और चोशू के **हान** ने किया था, जिसके नेताओं ने नयी सरकार पर अपना प्रभुत्व बनाया। मेजी अल्पतंत्र भी कहलाने वाले इस शासन ने व्यापक सुधारों की शुरुआत की ओर एक आधुनिक राष्ट्र राज्य के संस्थायी ढांचे को खड़ा किया। उन्हें विश्वास था कि पश्चिमी ताकतों को यह स्वीकार्य होगा। ये बदलाव तेजी से लाये गये और चालीस वर्षों के अंदर ही जापान दुनिया की एक ऐसी ताकत के रूप में उभर चुका था जिसके पास एक विकसित अर्थव्यवस्था और एक सशक्त सैनिक क्षमता थी। इस इकाई में, इस नये बने राजनीतिक ढांचे की प्रकृति, विशेषता और प्रक्रिया की छानबीन की जाएगी। यहां जिन राजनीतिक सुधारों की चर्चा की गयी है उनमें से कुछ पर खंड 4, इकाई 16 में भी विचार किया गया है, लेकिन यहाँ हम उन सिद्धांतों पर विचार कर रहे हैं जिन्होंने मेजी अल्पतंत्र और विपक्ष को भी प्रेरित किया।

10.2 शाही सरकार की स्थापना

मेजी सरकार ने पुराने शासन के ढांचे को गिराने के लिए तुरंत कदम उठाए। 3 जनवरी, 1869 को ही पुराने विभागों को समाप्त करके एक शाही युवराज के नेतृत्व में एक नयी परिषद का गठन कर लिया गया। ये बदलाव अंतिम नहीं थे और नये शासकों की शक्ति का विस्तार होने और उनका नियंत्रण बढ़ने के साथ ही कई नये बदलाव लाये गये। नये शासकों ने कुछ बड़े कदम उठाकर कुछ बाधाओं को पार किया।

10.2.1 विशेषाधिकारों की समाप्ति

सत्ता के नए आधार को मजबूत करने की दिशा में सबसे पहली बड़ी बाधा थी **दाइम्यो** और **सैमुराई** को प्राप्त अधिकारों और विशेषाधिकारों को समाप्त करना। **दाइम्यो** को कुछ हद तक स्वायत्तता भी प्राप्त थी। **दाइम्यो** के विशेषाधिकारों की समाप्ति को एक पुराने किस्म के सामंती ढांचे को गिराने और सम्राट की सत्ता की पुष्टि के रूप में देखा गया। विरोध के भय से नेता कुछ हिचकिचाये, लेकिन पहला कदम तब उठा जब **दाइम्यो** को यह आदेश जारी किया गया कि वे ''सार्वजनिक'' और ''निजी'' व्यापार को अलग-अलग करें और अधिकारियों का चुनाव जन्म के आधार पर नहीं, बल्कि प्रतिभा के आधार पर करें। इसके बाद प्रमुख हान (सत्सुमा, चोशू, तोसा और हिजन) ने अपने विशेषाधिकारों को छोड़ने की पेशकश की और यह आग्रह किया कि:

> ''राजसभा जैसा आवश्यक समझे आदेश जारी करें, जिससे बड़े राज्यों की भूमियों को बेच डाला जाए और उनमें बदलावों का निर्णय लिया जाए .... जिससे राज्य के, बड़े और छोटे दोनों तरह के मामले एक ही अधिकारी के हाथों में आ सकें।''

इससे अनुकूल अवसर बना, लेकिन इससे पहले कि सम्राट कोई निर्णय लेते, और भी अधिक बातचीतों और राजनीतिक प्रयासों का दौर चला, तब जाकर कहीं 29 अगस्त 1871 को सम्राट ने एक आदेश जारी किया:

> ''हम यह आवश्यक समझते हैं कि देश का शासन एक ही अधिकारी के हाथों में केंद्रित हो, जिससे सुधार सार रूप में ही नहीं यथार्थ रूप में भी लागू हो ....।''

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

असंबद्ध शब्दों वाला यह दस्तावेज जिसने एक वर्षों पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर दिया, अत्यधिक महत्वपूर्ण था। हान की समाप्ति ने समूचे जापान में एक (प्रांतीय) प्रशासकीय व्यवस्था का विस्तार करने और एक केंद्रित सत्ता की स्थापना करने का आधार बनाया, इस बार, इन कदमों की प्रेरणा पश्चिम से मिली, पहले की तरह चीन से नहीं।

10.2.2 राष्ट्रीय सेना

राष्ट्र राज्य बनाने की दिशा में दूसरा बड़ा कदम एक राष्ट्रीय सेना की स्थापना थी। परंपरा से, हथियार रखने का विशेषाधिकार केवल **सैमुराई** के पास था, यह उसी समय से था जब सोलहवीं शताब्दी में हिदेयोशी ने एक अभियान चलाकर किसानों के हथियार रखवा लिए और एक सापेक्ष शांति का दौर कायम किया था। तोकुगावा के अंतिम वर्षों में बकुफु और हान दोनों ने ही अपने सैनिक संगठन में सुधार किया। चोशू में साधारण नागरिकों की एक अनियमित सेना खड़ी की गयी और इसी धारा को आगे बढ़ाते हुए चोशू के ओमुरा मासुजिरों ने जुलाई 1869 में एक अनिवार्य भर्ती वाली सेना का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव का विरोध हुआ, क्योंकि यह वर्षों से चले आ रहे विशेषाधिकारों पर प्रहार था और, इसके अलावा, ओमुरा के प्रस्ताव में यह मांग थी कि रंगरूट अपने राज्यों से सभी तरह के संबंध तोड़ लें।

सैनिक बलों को सुधारने के प्रस्ताव का समर्थन एक प्रमुख मेजी नेता, यामागाता आरितोमो, ने किया। उसने पश्चिमी प्रशिक्षण और संगठन-पद्धतियों के महत्व को देखा और उसने यह भी देखा कि प्रशिक्षित रंगरूट अपने गांवों को लौटेंगे और एक आरक्षित बल बन जाएंगे। उसने लिखा कि अपने देश में स्थिरता और विदेशी हमलों से प्रतिरक्षा ''एक ही समस्या के पहलू थे।''

जनवरी, 10, 1873 को एक अनिवार्य भर्ती कानून लागू किया गया जिसमें बीस वर्ष की अवस्था के वयस्कों के लिए तीन वर्ष सक्रिय सैनिक सेवा और चार वर्षों की आरक्षित सेवा अनिवार्य कर दी गयी। देश को छह सैनिक जनपदों में बांटा गया जिनमें कुल 31,000 पुरुष थे। अनिवार्य भर्ती कानून ने एक विविध स्वरूप को एकरूपता और केंद्रीकरण प्रदान किया। 1853 से, राजनीतिक सत्ता केंद्रों की अनेकता के कारण अनेक स्वरूपों को आजमाया गया था। लेकिन मेजी के सत्ता में आने के बाद ही यह आवश्यक हुआ कि आंतरिक

अशांति को समाप्त करने और राष्ट्र को विदेशी हमले के खतरे के भय से बचाने के लिए एक कारगर सेना हो। हान अब (प्रशासकीय) प्रांत बन गये थे, वे भी आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे थे और इन समस्याओं के साथ आंतरिक अशांति के भय ने भी उन्हें एक केंद्रीकृत सैनिक ढांचे को स्वीकार करने को उद्धत किया। एक सैनिक मामलों के मंत्रालय (ह्योबूशो) की स्थापना 1869 में की गयी और इसे पूरी तौर पर नौकरशाही ढांचे का अंग बना लिया गया।

आज दृष्टिकोण यह है कि जापान पर 1870-71 की फ्रांस प्रशा जंग में प्रशा की जीत का प्रभाव पड़ा और उसने फ्रांसीसी आदर्श को छोड़कर प्रशायी व्यवस्था को अपनी सेना के गठन के मामले में अपना आदर्श बना लिया। लेकिन, वास्तव में उसने जंग के एक महीने बाद फ्रांसीसी आदर्श को अपना लिया। अनिवार्य भर्ती को संस्था का रूप इसलिए नहीं दिया गया था क्योंकि सैनिक बलों के लिए रंगरूटों की कमी थी, अगर 450,000 बेरोजगार सैमुराई में से आधों को भी भर्ती कर लिया जाता तो, जापान के पास उससे भी अधिक सैनिक होते जितने उसके पास 1880 के दशक में थे।

10.2.3 भूमि-कर और पेंशन

केंद्र-केंद्रित राजनीतिक व्यवस्था बनाने की दिशा में एक तीसरा बड़ा कदम था भूमि कर को संस्था का रूप देना। **तोकुगावा** काल में, कर चावल के रूप में दिया जाता था और कई स्थानीय प्रथाएं और रीतियां प्रचलन में थीं। इसके अलावा, भूमि को बेचा नहीं जा सकता था। इस जटिल समस्या पर बहस हुई और मार्च 1872 में भूमि बेचने पर लगी पाबंदी को समाप्त कर दिया गया और गहन बहसों के एक दौर के बाद नकदी के रूप में दिए जाने वाले कर को 1873 में स्थापित किया गया। कर का आधार भूमि के पूंजीगत मूल्य का चार प्रतिशत रखा गया। इस उपाय को किस ढंग से लागू किया गया और इसका क्या प्रभाव पड़ा, इसके विस्तृत विवरण में जाये बिना, यहां यह कहना पर्याप्त होगा कि सरकार के पास अब राजस्व का एक स्थिर स्रोत था।

चौथी बड़ी समस्या थी **सैमुराई** की पेंशन में संशोधन करना (उन्हें कम करना)। **तोकुगावा** काल में **सैमुराई** को, उनके पद के विशेषाधिकार के तौर पर वजीफे दिये गये थे। इन वजीफों पर वित्त मंत्रालय की भूमि कर से होने वाली कुल आमदनी का एक तिहाई खर्च हो जाता था। नयी सरकार इन कीमतों को कम नहीं कर सकती थी, क्योंकि इनमें वर्षों से काफी कटौती होती चली आयी थी और वह व्यापार पर करों के बोझ को बढ़ाना नहीं चाहती थी क्योंकि इसका प्रयास वृद्धि या विकास को बढ़ावा देना था। इसलिये, वह इस विशेषाधिकार को समाप्त करने की भी इच्छुक थी। फिर भी, इस तरह के किसी कदम के राजनीतिक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक था कि इसे संयम और सावधानी के साथ लागू किया जाता। कुछ संभावित प्रस्तावों को आजमाया गया लेकिन अंत में मार्च 1876 में वजीफों के संशोधन (उनमें कमी) को सभी **सैमुराई** के लिए अनिवार्य कर दिया गया। सबसे कम वजीफा धारकों को वार्षिक मूल्य की चौदह गुनी कीमत के सरकारी ऋण पत्र (बांड) दे दिये गये। इन ऋण पत्रों पर सात प्रतिशत ब्याज की दर रखी गई। इनसे बड़े वजीफा धारकों को उनके वार्षिक मूल्य की पाँच गुनी कीमत के ऋण पत्र दे दिये गये जिन पर 5 प्रतिशत ब्याज की दर थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सैमुराई के वजीफों में कटौती से सरकारी खर्च में 30 प्रतिशत की कमी आ गई और इसका लाभ आर्थिक विकास की प्रक्रिया में महसूस किया गया, लेकिन इसने सामाजिक और राजनीतिक समस्याएँ खड़ी कर दीं। सामाजिक विशेषाधिकारों का नुकसान होने से उनका गुस्सा भड़क उठा और नयी सरकार के विरुद्ध विद्रोहों को प्रोत्साहन मिला। इनमें सबसे गंभीर था 1877 का सत्सुमा विद्रोह जिसका नेतृत्व सत्सुमा के प्रभावशाली **हान** के मेजी नेता, साइगो ताकामोरी, ने किया।

ये सुधार जिन महत्वपूर्ण बदलावों को प्रतिबिंबित करते हैं और जिन्हें उन्होंने लागू किया, उन बदलावों ने शासन या राज के आधार और उसकी प्रकृति को बदल दिया। **दाइम्यो** और उच्च **सैमुराई** और कुछ दरबारी सामंतों को भी सत्ता से वंचित कर दिया गया, वैसे उनके पास आर्थिक अधिकार फिर भी रहे। निचले स्तरों पर कई **सैमुराई** किसानों में मिल गये, दूसरे जमींदार या सौदागर हो गये और कुछ नौकरशाही या सैनिक बलों में शामिल हो गये। सत्ता अब केंद्र में केंद्रित हो गयी और उस पर सम्राट की अध्यक्षता वाली राजनीतिक व्यवस्था का नियंत्रण हो गया, जिसके अधीन नौकरशाही और सशस्त्र बल थे। इस संदर्भ में एक ऐसी संवैधानिक सरकार बनाने के लिये बदलाव लाये गये जो पश्चिमी ताकतों को अधिक स्वीकार्य हों, क्योंकि सब बातों से ऊपर, जापान अपने ऊपर थोपी गयी असमान संधियों को निरस्त करने को इच्छुक था। इस उद्देश्य के लिये जापान को अपने आपको एक आधुनिक राष्ट्र का रूप देना आवश्यक था जिसका अर्थ उस समय ''पश्चिमीकृत राष्ट्र'' होता था।

बोध प्रश्न 1

1) जापान में राष्ट्रीय सेना का गठन कैसे और क्यों किया गया? लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-से सही (√) हैं और कौन से गलत (×) हैं? निशान लगाइये।
   i) जापान को प्रांतीय (प्रशासनिक) व्यवस्था कायम करने की प्रेरणा चीन से मिली।
   ii) भूमि की बिक्री पर लगी पाबंदी 1872 में समाप्त की गयी।
   iii) जापान ने अपनी सेना के लिये प्रशा को आदर्श बनाया।
   iv) सैमुराई के वजीफों में संशोधन से सरकारी खर्च कम हो गया।

10.3 संविधानवाद की ओर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

फरवरी 11, 1889 को प्रभावी होकर मई 3, 1947 तक चलने वाला मेजी संविधान वह बुनियादी दस्तावेज था जिसने अंतिम राजनीतिक ढांचे को रूप दिया, लेकिन राजनीतिक व्यवस्था को केवल इस दस्तावेज़ का अध्ययन करके नहीं समझा जा सकता। संविधान को रूप देने का काम उभरते राजनीतिक संगठनों के आवेदनों और प्रदर्शनों और शासक अल्पतंत्र के भीतर चलने वाली बहस और विचार-विमर्श के संदर्भ में हुआ। संविधान को कुछ अन्य निर्णायक राजनीतिक बदलाव लागू किये जाने के बाद ही प्रभावी किया गया। संविधान की प्रकृति और इसे रूप देने के लिये प्रयुक्त प्रक्रिया और विरोधी गुट के विचारों की छानबीन करने से मेजी कालीन जापान की सत्ता की प्रकृति और चरित्र का संकेत मिलता है। पहले हम मेजी-संविधान पर गौर करेंगे, फिर विरोधी गुट की मांगों पर, और अंत में मेजी कालीन राजनीतिक ढांचे की मुख्य विशेषताओं पर विचार करेंगे।

10.3.1 मेजी का संविधान

जापान में संविधानों का एक लंबा इतिहास रहा है, और सबसे पहला संविधान 17 अनुच्छेदों वाला संविधान है जिसे 604 ई. में शोतोकू ताइशी ने जारी किया। लेकिन आधुनिक ढंग के संविधान का श्रेय चीनी आदर्शों की अपेक्षा पश्चिमी कानूनी प्रभाव को अधिक जाता है। मेजी काल से पहले सामंतों की विचारक सभाएं रही थीं और एक सार्वजनिक प्राधिकरण या कोगी की परंपरा थी जिसे अनेक विद्वान वह आधार मानते हैं जिस पर आधुनिक संविधानवाद का सफल निर्माण हुआ। दूसरे शब्दों में, विचार-विमर्श के जरिए निर्णयों पर पहुंचने की परंपरा थी। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि **तोकुगावा** काल के दौरान **शोगुन** के अधिकार सामंती नहीं, बल्कि विशुद्ध तौर पर एकतंत्रीय या स्वेच्छाचारी किस्म के थे।

प्रारंभिक महीनों में मेजी के नेताओं ने एक वक्तव्य जारी किया। यह वक्तव्य असल में एकता के लिये की गयी एक अपील थी जिसने भावी बदलाव की नींव रखी। सम्राट ने 6 अप्रैल, 1868 को जो शपथ-घोषणा पत्र जारी किया उसमें पांच अनुच्छेद थे। इनमें से पहले अनुच्छेदों में यह वचन था—"व्यापक रूप से बुलायी गयी एक सभा की स्थापना की जाएगी और राज्य के सभी मामलों का निर्णय सार्वजनिक विचार-विमर्श से किया जाएगा" इसने एक संवैधानिक शासन व्यवस्था का आधार तैयार किया।

संविधान की प्रकृति के बारे में निर्णय लेते समय जो महत्वपूर्ण समस्याएं सामने आयीं उनका संबंध इनसे था:

- किस गति से इन उपायों को लागू किया जाएगा,
- सम्राट की शक्ति और अधिकार, और
- इन कानूनों को पारंपरिक जापानी रीतियों का अंग किस प्रकार बनाया जाएगा कि समाज में विघटन न हो।

मेजी नेता समाजवाद के खतरों को भी जानते थे और वे यह नहीं चाहते थे कि जापान को इन समस्याओं का सामना करना पड़े।

मेजी नेताओं में से यामागाता आरितोमो का यह तर्क था कि अगर अत्यधिक तेज गति को अपनाया गया तो इससे जनता कट जाएगी जिससे सामाजिक अस्थिरता पैदा होगी। दूसरी ओर, इतो हिरोबूमी का तर्क था कि जापान अब एक परस्पर निर्भर विश्व का हिस्सा था और जापान के भीतर **सैमुराई** को मिले विशेषाधिकार, वजीफे और अधिकार समाप्त किये जा चुके थे, इसलिये, इस बदले वातावरण में जनतांत्रिक विचारों की उपेक्षा करनां संभव नहीं था और यह आवश्यक था कि सत्ता में भागीदारी की जाये।

सबसे उदारवादी दृष्टिकोण ओकुमा शिगेनोबू का था जिसने एक अंग्रेजी ढंग की संसदीय व्यवस्था की वकालत की। ओकुमा हिजेन प्रांत से था और एक पार्षद् के रूप में, और 1873-1880 के बीच वित्त मंत्री के रूप में काम कर चुका था। मार्च 1881 का उसका स्मरण-पत्र एक क्रांतिकारी प्रस्ताव था जिसमें 1883 तक संसद की स्थापना और 1882 में चुनावों की वकालत की गयी थी। इसमें यह सुझाव भी था कि जिस दल को बहुमत मिले वह सरकार का गठन करे। उसने लिखा, "संवैधानिक सरकार दलीय सरकार होती है और दलों के बीच होने वाले संघर्ष सिद्धांतों के संघर्ष होते हैं।"

इससे लगभग विपरीत ध्रुव पर स्थित दृष्टिकोण **मेजी** नेताओं के केंद्रीय गुट के सदस्य और प्रभावशाली सामंत इवाकुरा तोमोमी का था। उसका और इनोवे कोवाशी का तर्क यह था कि इंग्लैंड की तरह जापान में राजनीतिक दलों की कोई परंपरा नहीं थी और वे यहां सफल नहीं होंगे। इसलिये, सम्राट को संसदीय बहुमत से स्वतंत्र मंत्रिमंडल को नियुक्त और भंग करना चाहिये। इस तरह के दृष्टिकोणों का प्रभावशाली अखबारों ने भी समर्थन किया। सरकार का एक करीबी अखबार तोक्यो निची निची शिनबूम सम्राट की दिव्यता का समर्थक था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राजभक्त परंपरा का यह तर्क रहा था कि जापान की रचना देवताओं ने की थी और सम्राट सूर्य देवी का सीधा वंशज था, जिसका पौत्र जापान का पहला सम्राट हुआ। शाही घराने की वंश परंपरा कहीं भी टूटी नहीं थी और इसने जापान के राजनीतिक ढांचे या **कोकुताई** को अनूठा बनाया था। **कोकुताई** का शाब्दिक अर्थ होता है राजनीतिक संकाय या संगठन, और यह शब्द सम्राट के कार्यों के गिर्द चलने वाली बहसों में एक महत्वपूर्ण शब्द बन गया था। **मेजी** काल के दौरान इस शब्द की मिथकीय परंपराओं के विरुद्ध तर्क देने के लिए भी, कई प्रकार से विवेचना हुई, लेकिन बाद में यह शब्द एक दैवीय सम्राट के विचार से विशेष रूप से जोड़ दिया गया।

आधुनिकीकरण के एक प्रबल पोषक और प्रभावशाली **मेजी-कालीन** बुद्धिजीवी फुकुजावा ने शाही घराने पर एक लेख लिखा जिसमें उसने यह तर्क दिया कि शाही परिवार को राजनीति से बाहर रहना चाहिए क्योंकि वह सभी का था। सम्राट एकता और निरंतरता का प्रतीक रहेगा, और सत्ता जिम्मेदार दलों के बीच घूमेगी।

इन बहसों से शासक तंत्र के भीतर विचारों की विविधता का और उस स्थिति का पता चलता है जिसमें ये नेता राष्ट्रीय नीति के अनिवार्य लक्ष्यों पर व्यापक रूप से सहमत होते हुए भी विभिन्न विचार या दृष्टिकोण रखते थे। संविधान का प्रारूप तैयार करने की प्रक्रिया इतो हिरोबूमी की अध्यक्षता वाले एक दल ने अत्यंत गोपनीयता में चलायी, जर्मनी के कानूनी विद्वान एच. रेसलर और ए. मोर्स उनके सलाहकार थे। लेकिन, इस प्रारूप के तैयार होने से पहले ही, एक शाही अध्यादेश ने 1884 में एक अभिजातवर्गीय व्यवस्था बना दी और 1885 में एक मंत्रिमंडलीय व्यवस्था कायम की जिसमें इतो हिरोबूमी पहले प्रधानमंत्री बने।

अक्तूबर 11, 1881 को एक शाही आदेश में एक संविधान का वचन दिया गया जिससे "हमारे शाही वारिसों को अपने दिशा निर्देश के लिये एक शासन मिल सके।" यह संविधान 1890 में प्रभावी होना था और इसका बुनियादी सिद्धांत यह था कि संसदीय जनतंत्र पर अंकुश रहना चाहिए नहीं तो वह सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को भंग कर देगा। विरोधी दल समस्याएं खड़ी न कर पायें, इसे और भी सुनिश्चित करने के लिये सार्वजनिक सभाओं और प्रकाशनों पर नियंत्रण की गरज से कानून लागू किये गये। अंत में,

1887 में शांति संरक्षण कानून बनाकर पुलिस को यह अधिकार दे दिया गया कि वह ऐसे किसी भी व्यक्ति को हटा दे "जो अशांति की योजना बनाता है या अशांति भड़काता है, या जिसे सार्वजनिक शांति को भंग करने वाली कोई भी योजना बनाने का दोषी पाया जाता है।"

संविधान का अंतिम प्रारूप अप्रैल, 1888 को पेश किया गया और 11, फरवरी, 1889 को सम्राट ने यह संविधान अपनी प्रजा को भेंट किया इस दिन को किगेनसेत्सु कहा जाता है, जब पहले सम्राट जिम्मू की कथित वार्षिकी मनायी जाती है।

10.3.2 बहस

इस बात को लेकर बहसें चलती हैं कि संविधान केवल एक दिखावा था या सामाजिक बदलाव लाने का सच्चा प्रयास। एक दृष्टिकोण के अनुसार **मेजी** अल्पतंत्र हान (सत्सुमा, चोशु आदि) के गुटो (हानबत्सु) का एक गठबंधन था, लेकिन इस दृष्टिकोण में **मेजी** सरकार के भीतर काम कर रही केंद्रीयकरणकारी शक्तियों को अनदेखा कर दिया जाता है। दूसरे विद्वानों ने तर्क दिया कि प्रशा की तरह जापान ने भी देरी से विकास होने के कारण सामाजिक राजतंत्र के विचार को चुना और वह आधुनिकीकरण के अपने कार्यक्रम को चलाने में समर्थ रहा। संविधान में एक ओर तो (अनुच्छेद 1) यह प्रावधान था कि "जापान के साम्राज्य पर अनंत काल से चले आ रहे सम्राटों के वंश का शासन होगा," और, दूसरी ओर (अनुच्छेद 4) यह भी प्रावधान था कि "सम्राट साम्राज्य का अध्यक्ष है, जिसमें प्रभुसत्ता के सारे अधिकार निहित हैं।" परमपावन अधिकारों वाले एक परंपरागत सम्राट को बनाये रखने का यह दोहरापन दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति तक तनाव का स्रोत बना रहा, फिर अमेरिका की कब्जा करने वाली सेनाओं ने एक नया संविधान थोप दिया।

मेजी राज्य के "निरंकुशतावादी" स्वरूप के प्रस्ताव यह तर्क देते हैं कि **सैमुराई** अपने आपको एक सामंतवादी व्यवस्था से मुक्त करने के लिए शाही संस्था का इस्तेमाल करने में समर्थ रहे। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि कोई भी अकेला वर्ग वर्चस्व की स्थिति में नहीं था। सामंती शक्ति का पतन हो रहा था, किसान विद्रोह कर रहे थे और बुर्जुआ का अभी उदय हो रहा था। ई.एच.नार्मन का तर्क था कि यही निरंकुशतावादी राज्य आधुनिकीकरण के भारी काम को अंजाम दे सकता था। इस तर्क से जुड़ा किसान विद्रोह का यह दृष्टिकोण है कि इन विद्रोहों से भय का ऐसा वातावरण बनेगा कि किसी भी जनक्रांति से सामाजिक व्यवस्था को खतरा हो जाएगा, और इसलिए, निरंकुशतावाद अनेक गुटों को स्वीकार्य था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) अल्पतंत्र के भीतर संविधान की प्रकृति को लेकर विभिन्न दृष्टिकोणों के विषय में बताइये। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दें।

2) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-से सही (√) हैं, और कौन-से गलत (×) हैं? निशान लगाइए।
   i) राजभक्त परंपरा सम्राट को सूर्य देवी का सीधा वंशज मानती थी।
   ii) फुकागावा युकिची यह नहीं चाहता था कि शाही परिवार राजनीति से बाहर रहे।
   iii) शपथ घोषणा-पत्र के पहले अनुच्छेद ने एक संवैधानिक सरकार की बुनियाद रखी।
   iv) संविधान का प्रारूप तैयार करने का काम खुले आम किया गया।

10.4 मेजी राज्य के विरुद्ध विरोध और विद्रोह

हम यह देख चुके हैं कि मेजी अल्पतंत्र ने एक नये राजनीतिक ढांचे की रचना के लिये किस तरह से अनेक सुधार लागू किये। इससे शासक अल्पतंत्र के भीतर ही व्यापक बहस हुई, लेकिन, इसने शासक तंत्र के बाहर भी फूट, विरोध और हो-हल्ले को जन्म दिया। इस भाग में हम इन बातों पर विचार करेंगे कि विरोध के स्वर कहाँ-कहाँ उठे, इन विरोधों की प्रकृति क्या थी और इन विरोधी गुटों ने किस विचारधारा को व्यक्त किया।

भूमि कर को लेकर होने वाले विरोधों पर इकाई 12 में विचार किया जाएगा, लेकिन यहां इतना कहा जा सकता है कि विरोधों के बावजूद उपायों को राजनीतिक सफलता मिली और उन्होंने **तोकुगावा** व्यवस्था में मौजूद मनमानेपन के तत्व को समाप्त कर दिया। सामान्य तौर पर इसका लाभ बड़े भू-स्वामियों या जमींदारों को मिला। अनेक परंपरागत अधिकारों की समाप्ति से जमींदार और काश्तकार के बीच झगड़े मुख्य तौर पर लगान के सवाल पर बढ़े। फिर भी, जिस वर्ग पर इसका सबसे प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, वे ही विरोध कर पाने में सबसे अशक्त थे जैसे, अपना निर्वाह भर करने वाले किसान।

10.4.1 विशेषाधिकारों की समाप्ति के विरुद्ध

अधिक हिंसक प्रतिक्रिया पारंपरिक कुलीनों के विशेषाधिकारों के ढांचे को समाप्त करने को लेकर हुई। 1874 और 1877 के बीच होने वाले शिजोकू विद्रोह नये शासन के लिए गंभीर चुनौतियां थीं। इन विद्रोहों का नेतृत्व उन युवा **सैमुराई** ने किया था जो **तोकुगावा** विरोधी आंदोलन में सक्रिय रहे थे और नयी **मेजी** सरकार में महत्वपूर्ण पदों पर थे। 1874 के सागा विद्रोह का नेतृत्व करने वाला एतो शिम्पे राज्य परिषद् का सदस्य था, शिम्पूरेन विद्रोह में भाग लेने वाला माएबारा इस्से सरकार में था, और अंतिम और सबसे गंभीर विद्रोह, 1877 के सत्सुमा विद्रोह, का नेतृत्व करने वाला साइगोताकामोरी **मेजी** नेताओं के केंद्रीय गुट का सदस्य था और महत्वपूर्ण पदों पर रह चुका था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कुलीनों को अपने पारंपरिक विशेषाधिकारों के छिन जाने का ज्ञान हुआ और वे अपने आपको व्यक्त करने के अवसर की तलाश में थे। वे इस सवाल पर एकजुट हो गये कि जापान को कोरिया पर आक्रमण करना चाहिये या नहीं। कोरिया ने जापान के साथ राजनयिक और व्यापारिक संबंध खोलने से इंकार कर दिया था और साइगो को आशा थी कि वह इसका इस्तेमाल एक **सैमुराई** सेना बनाने में कर सकेगा। इसाइगो ने इससे पहले विकास का एक नमूना प्रस्तावित किया था जिसमें उसने शिंतो को एक राज धर्म के रूप में अपनाने के पक्ष में तर्क दिया था, उसने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से मजबूत करने के लिये विशेष उपाय करने और निर्माण या उत्पादन क्षेत्र द्वारा शिजोकू के वजीफों को समर्थन देने की वकालत की थी।

मेजी नेताओं ने सिद्धांत रूप में कोरिया पर आक्रमण करने पर आपत्ति नहीं की, लेकिन वे इसके समय को लेकर विरोध में थे क्योंकि उनका मानना यह था कि जापान अभी भी काफी मजबूत नहीं था और इस तरह की जोखिम भरी कार्यवाही से चीनी या रूसी हस्तक्षेप को भी आमंत्रण मिलेगा। 1871-73 में युरोप और अमेरिका का भ्रमण करने वाले इवाकुरा अभियान दल (मिशन) को पश्चिम की सैनिक और आर्थिक मजबूती की खूब जानकारी थी। इन नेताओं का तर्क था कि जापान को अपने आधुनिकीकरण के लिए जिन कीमती संसाधनों की तुरंत आवश्यकता थी वह उन्हें किसी और काम में लगाने का बीड़ा नहीं उठा सकता था। इसमें कट्टरपंथियों को सफलता तो नहीं मिली, लेकिन इसके अप्रत्यक्ष प्रभाव हुए (इकाई 10 देखिए)

सत्सुमा ने निर्णायक भूमिका निभायी क्योंकि वहाँ **सैमुराई** की आबादी बहुत अधिक थी, क्योंकि ग्रामीण योद्धाओं या गोशी की भी गिनती वहाँ सैमुराई में की जाती थी। शेष जापान में सैमुराई, पूरे तोकुगावा काल में, महली कस्बों में रहते रहे थे और उनका भूमि से कोई सीधा संबंध नहीं था। इन बदलावों का सीधा प्रभाव गोशी के विशेषाधिकारों और आजीविका पर पड़ा, और उन्होंने सरकार विरोधी विद्रोहों को इच्छुक रंगरूट दिये।

इन विद्रोहों की असफलता अपनी सत्ता कायम करने और समर्थन का एक व्यापक ढांचा बनाने में सरकार की सफलता का प्रमाण है। इसका कारण विद्रोही नेताओं की अपने समर्थकों और हमदर्दों को प्रभावी ढंग से संघटित करने और इस्तेमाल करने में उनकी असफलता भी थी। लेकिन सत्सुमा विद्रोह का संगठन बेहतर था और वह अधिक बड़ा भी था जिसमें 22,000 समर्थक थे। सरकार ने 33,000 की एक सेना भेजी और फिर 30,000 की कुमुक भी भेजी। सरकारी सेनाओं की सफलता का कारण विद्रोहियों का संकीर्ण राजनीतिक आधार, उनकी युक्तिगत गलतियां भी थीं और एक अनिवार्य भर्ती पर आधारित सेना की श्रेष्ठता भी।

10.4.2 स्वतंत्रता और जनाधिकार आंदोलन

मेजी सरकार को अपनी नीतियों को लेकर अल्पतंत्र के भीतर से भी विरोध का सामना करना पड़ा। मेजी पुर्नस्थापना के एक प्रमुख हान-तोसा गुट- के इतागाकी ताइसूके और गोतो शेजीरो का गुट एक ऐसा ही गुट था जिसने जनतांत्रिक सरकार के पक्ष में वकालत की। उन्होंने जनाधिकार आंदोलन का नेतृत्व किया, जिसकी शुरुआत एक उच्चवर्गीय सरकार विरोधी आंदोलन के तौर पर हुई लेकिन धीरे-धीरे इस आंदोलन ने निम्न वर्गीय जनतांत्रिक आंदोलन का व्यापक रूप ले लिया। जनाधिकारों के समर्थक शुरुआत में **सैमुराई** और धनी किसान (गोनो) थे, जो **मेजी** पुर्नस्थापना में सक्रिय रहे थे, लेकिन धीरे-धीरे इनके समर्थकों में स्कूल-अध्यापक, पुरोहित, लघु सौदागर और छोटे जमींदार भी शामिल हो गये। आंदोलन के बदलते चरित्र में इसके संगठन में आये बदलाव का प्रतिबिम्ब दिखायी देता है।

जनाधिकार आंदोलन जापानी राजनीति की एक दृष्टि को भी आगे रखता है जो उस दृष्टि से भिन्न थी जिसका समर्थन मेजी नेता करते थे। इसलिए, कई समान विशेषताएं होते हुए भी, और आंदोलन के कुछ नेताओं द्वारा सरकार के साथ समझौता कर लेने पर भी, इस भिन्न आधार से एक स्पष्ट विभाजन का पता चलता है। इस आंदोलन ने राजनीतिक चेतना भी पैदा की और राजनीतिक संघों और राजनीतिक दलों की वृद्धि में भी योगदान दिया। अंतिम बात, मेजी पुर्नस्थापना के एक दशक के भीतर ही इस आंदोलन का विकास विरोध और एकजुटता की स्थानीय परंपराओं के विद्यमान होने की ओर संकेत करता है। पश्चिमी उदारवादी विचारों का तेजी से प्रसार केवल इसलिए संभव नहीं हुआ कि शिक्षा का स्तर काफी ऊंचा था, बल्कि इसलिये भी कि यहां एक ऐसी पृष्ठभूमि थी जिसके भीतर नये विचारों को मिला लेना संभव था।

सन् 1874-1878 के निर्माणकारी दौर में कुछ राजनीतिक संगठनों का गठन हुआ, जैसे 1874 में, देशभक्तों का जनता दल (आइकोकुतो), और महत्वाकांक्षा स्थापना समाज (रिशिशा)। इन गुटों की सदस्यता अधिकांश तौर पर तोसा में थी, जिसका नाम कोची (प्रशासक) प्रांत हो गया था, और इतागाकी ताइसूके, उएकी एमोरी, काताओका केनिजी जैसे इसके नेताओं ने एक जनप्रिय सभा और एक प्रतिनिधि सरकार की मांग की। उनका मानना था कि ये संस्थाएं उन समस्याओं का उपचार कर देंगी जो सत्ता के सकेंद्रण, अनिवार्य (सेना) भर्ती, भारी कर और विदेशी मामलों की कुव्यवस्था के कारण बनी थीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रिशिशा के घोषणा-पत्र में यह ऐलान था—

> "जापान में रहने वाले हम तीन करोड़ लोगों को समानरूप से कुछ निश्चित अधिकार दिये गये हैं, जिनमें जीवन और स्वतंत्रता का आनंद लेने और उनकी रक्षा करने, संपत्ति प्राप्त करने और उस पर स्वामित्व करने, और आजीविका पाने और सुख की तलाश करने के अधिकार हैं। प्रकृति ने ये अधिकार सभी व्यक्तियों को दिये हैं, और इसलिये, किसी व्यक्ति की सत्ता के हाथों इन्हें छीना नहीं जा सकता।"

फिर भी, सारे विद्वान इन वक्तव्यों को उनकी प्रकट सार्थकता में स्वीकार करने में एकमत नहीं हैं। राबर्ट स्कालापीनो इस भाषणबाजी को एक हथियार के रूप में देखता है जिसका इस्तेमाल करके भूतपूर्व सैमुराई वर्ग के कुछ सदस्य सत्ता हथियाने की कोशिश में थे, क्योंकि वे सैनिक शक्ति या बौद्धिक और सामाजिक प्रतिष्ठा पर अब और निर्भर नहीं कर सकते थे। इतागाकी ताइसूके के विचार जनता के बारें में उदारवादी तो बिल्कुल नहीं थे और वह **सैमुराई**, धनी किसानों और सौदागरों को अपना आधार बनाना चाहता था। उसका तर्क था कि राजनीतिक शक्ति धनी वर्ग के पास रहनी चाहिए।

सरकारी दमन के बावजूद 1878 से 1881 तक यह आंदोलन फैला क्योंकि इसे भूमि कर में संशोधन से प्रभावित आम लोगों (हेमिन) के असंतोष ने हवा दी। इस असंतोष के कारण विभिन्न संगठनों का, विशेषतौर पर ग्रामीण स्तर पर, गठन हुआ। इन संगठनों पर महत्वपूर्ण काम करने वाले इरोकावा दाइकीची के आंकलन के अनुसार ऐसे 150 से अधिक संगठनों का गठन हुआ। 1881 में जब फ्रीडम पार्टी या ज्युितो का गठन हुआ तब इसके 149 सदस्य थे, और उसी वर्ष नवम्बर में उसने प्रतिनिधि सरकार की मांग के लिये एक आवेदन अभियान में 135,000 से अधिक लोगों को लामबंद कर लिया था।

अल्पतंत्र शासन में शामिल व्यक्तियों ने 1881 में घोषणा की थी कि वे नौ वर्षों के अंदर राष्ट्रीय सभा का गठन कर देंगे। राष्ट्रीय सभा का आयोजन इससे पहले करने की वकालत करने वाले ओकुमा ने त्याग पत्र दे दिया और अपनी अलग पार्टी संवैधानिक सुधार पार्टी (रिक्केन काइशिंतो) का गठन कर लिया। इस पार्टी ने शहरी मध्यम वर्ग का समर्थन लिया जबकि ज्युितो को धनी किसानों का व्यापक समर्थन प्राप्त था, यद्यपि इसके अधिकांश नेता भूतपूर्व **सैमुराई** थे।

आंदोलन विशेषतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ रहा था और संवैधानिक सरकार की मांग करने वाले अधिवेशनों का आयोजन हुआ था। उदाहरण के लिए, मार्च 1880 में "राष्ट्रीय सभा स्थापना संगठन" का जो चौथा आम अधिवेशन हुआ उसमें 28 (प्रशासकीय) प्रांतों में फैले 96,900 सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले 114 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

यह गहन राजनीतिक गतिविधि भारी संख्या में निजी तौर पर लिखे गये संविधान के प्रारूपों में भी प्रतिबिम्बित होती थी। 1879 और 1881 के बीच व्यक्तियों ने निजी तौर पर चालीस से भी अधिक ऐसे प्रारूप लिखकर तैयार किये। यह राजनीतिक गतिविधि यह बताती है कि लोग सामंती प्रतिबंधों से निकल कर एक व्यापकतर चेतना का निर्माण करना चाहते थे। इत्सुकाइची के छोटे-से बाजारी कस्बे में स्थिति ज्ञानार्जन और वाद-विवाद संगठन जैसे ग्रामीण स्तर पर गठित संगठन पश्चिमी उदारवादी कृतियों को पढ़ते थे। समाज को बेहतर बनाने के तरीकों पर बहस करते थे और इन "अनजान कुली-कबाड़ियों" ने नागरिक अधिकार संहिता, वैधानिक व्यवस्था और राष्ट्रीय संविधान का प्रारूप तैयार करने पर चर्चा की। एक सदस्य चिबा ताकुसाबुरो ने संविधान का एक पूरा प्रारूप तैयार किया जिसे एक प्रबुद्ध दस्तावेज के रूप में अत्यधिक मान प्राप्त है।

सरकार अपने दमनकारी तंत्र को इस्तेमाल कर रही थी। 1875 और 1877 में अखबारों पर प्रतिबंध लगाने वाले और जन-सभाओं को सीमित करने संबंधी कानूनों के लागू होने से कई समर्थक चुप पड़ गये। 1875 और 1876 के कानूनों के तहत कोई साठ लोगों को गिरफ्तार किया गया, लेकिन 1880 तक यह संख्या तीन सौ से ऊपर पहुंच चुकी थी। 1880 के सार्वजनिक सभा अध्यादेश से पुलिस को राजनीतिक गुटों की गतिविधियों पर नियंत्रण करने के अधिकार मिल गये। इसके अलावा, सैनिकों, अध्यापकों और छात्रों के राजनीतिक सभाओं में भाग लेने पर पाबंदी थी। 1881 में 131 सार्वजनिक सभाओं को भंग किया गया, और 1882 में 282 को। अखबारों के साथ भी इसी कठोरता के साथ सलूक किया गया। टोक्यो स्थित एक अखबार, आजुमा, के संपादक को यह कहने के अपराध में दो वर्ष की जेल और 200 येन का जुर्माना हो गया कि "और सरकारी अधिकारियों की तरह सम्राट भी एक जन सेवक था।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1881 के बाद जनाधिकार आंदोलन में फूट पड़ने लगी और कुछ विद्वानों के अनुसार 1882-1885 के बीच होने वाली हिंसक घटनाएं एक अलग दौर बनाती हैं जिन्हें वे "उग्रवाद की घटनाएं" (गेक्का जिकेन) कहते हैं। फुकुशिमा, गुम्मा, कानागावा, इबाराकी और साइतामा में होने वाली इन घटनाओं का आयोजन अधिकांश तौर पर ज्युितो के नेताओं ने "स्वतंत्रता की सार्वजनिक शत्रु, दमनकारी सरकार को उखाड़ फेंकने के लिये" किया था। 1884 में कबासान की घटना में उन्होंने "नागरिकों के सुख और प्राकृतिक स्वतंत्रता की रक्षा करने" के लिए सरकार के मंत्रियों की हत्या करने की कोशिश की। कबासान की घटना आर्थिक कठिनाइयों से प्रेरित जनता का विद्रोह नहीं था, बल्कि राजद्रोह द्वारा सरकार बदलने का प्रयास था। लेकिन, 1884 के चिचिबू विद्रोह में जनता की आर्थिक तंगी प्रमुख कारक थी।

चिचिबू विद्रोह को दबाने के साथ इस आंदोलन का अंत हो गया। असल में, एक लंबे अरसे तक आंदोलन होने के बावजूद इस आंदोलन की उपलब्धि न के बराबर रही। **मेजी** अल्पतंत्र ने 1889 में एक संविधान लागू किया जिसमें राजनीतिक अधिकारों को सीमित कर दिया गया और 1918 में जाकर ही प्रधानमंत्री की नियुक्ति संसद से हुई। इस आंदोलन को सीमित करने के कारण थे आंतरिक गुटबाजी, कमजोर नेतृत्व और इसका शाही संस्था की केंद्रीय भूमिका को स्वीकार करना।

फिर भी, आंशिक रूप में आंदोलन को यह श्रेय तो जाता ही है कि उसने **मेजी** नेताओं को इस बात के लिये बाध्य किया कि वे सभा का संयोजन करें और एक संविधान लागू करें, और इसने राजनीतिक दलों की एक व्यवस्था के लिये आधार बनाने में मदद दी। राजनीतिक फूट की ये परंपराएं बाद में समाजवादी और ईसाई आंदोलनों ने जारी रखीं, वैसे जनाधिकार आंदोलन के नेताओं को सत्तावादी शासन की **मेजी** की राजनीतिक संस्कृति को प्रभावहीन करने में सफलता नहीं मिली थी।

10.5 मेजी की राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति

उपर्युक्त भागों में हम देख चुके हैं कि राजनीतिक व्यवस्था का विकास किस तरह हुआ और इसकी बुनियादी विशेषताएं क्या थीं। हमने विरोधी गुटों और उनकी एक भिन्न और अधिक जनतांत्रिक ढांचे की मांगों की भी छानबीन की है। इस भाग में हम राजनीतिक बदलावों की पृष्ठभूमि में काम करने वाले उन दिशा - निर्देशक सिद्धांतों की चर्चा करेंगे जिन्होने एक आधुनिक राष्ट्र राज्य का निर्माण किया। राजनीतिक क्षेत्र में

मेजी अल्पतंत्र के प्रमुख विकास को इस नारे में सटीक बांधा गया है: ''धनी देश, मजबूत सेना'' (फ्यूकोकू क्योहे)। यह नारा मेजी अल्पतंत्र के इस विचार को अभिव्यक्ति देता है कि पश्चिम के साम्राज्यवादी खतरे के चलते जापान को अपने अस्तित्व और अपनी राष्ट्रीय अखंडता को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक था कि वह एक धनी और समृद्ध राष्ट्र की रचना करे और इसकी रक्षा के लिए एक मजबूत प्रतिरक्षा सेना खड़ी करे। मेजी नेताओं के प्रयास उन्हीं लक्ष्यों द्वारा निर्देशित थे और उन्हें प्राप्त करने के लिये इन आधारों पर सत्ता के केंद्रीकरण और फूट के दमन की प्रक्रिया चलायी कि इनसे राष्ट्रीय ऊर्जा की हानि होती थी, सामाजिक अव्यवस्था फैलती थी और विदेशी प्रभुत्व का खतरा बढ़ता था।

10.5.1 सम्राट

राजनीतिक व्यवस्था की प्रमुख विभूति सम्राट था, जो व्यक्तिगत सत्ता का उपयोग न करने के बावजूद सत्ता का स्रोत बन गया। यही कारण है कि कई जापानी इतिहासकार एक सम्राट व्यवस्था की बात करते हैं या मेजी काल को ''सम्राट व्यवस्था तानाशाही'' (तेन्नासेई जेत्ताइशुगी) बताते हैं। यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि जापानी में सम्राट के लिये जो शब्द तेन्नो प्रयुक्त होता है उसमें अंग्रजी के शब्द-एम्परर-की तुलना में धार्मिक महत्व का कहीं अधिक बोध है। सम्राट पूरे तोकुगावा काल में सापेक्ष गुमनामी में रहा था। वह वित्त के लिये बकुफु पर आश्रित था। फिर भी, जापानी संस्कृति में उसे केंद्रीय विभूति और सद्गुण का स्रोत माना जाता था। मेजी नेताओं ने दैवीय सम्राट की छवि बनाने और उसे ''राष्ट्र की धुरी'' (इतो हिरोबूमी) के रूप में पेश करने का काम किया।

सम्राट ने 1878-1885 के दौरान देश के छह बड़े चक्कर लगाये इनोवे काओरु के शब्दों में, इन शाही प्रयासों को इस तरह तैयार किया गया था कि इनसे ''न केवल जनता को सम्राट के महान सद्गुण की जानकारी मिले बल्कि सशरीर शाही राज के प्रत्यक्ष प्रदर्शन का अवसर मिले, जिससे शाही सरकार के विषय में भ्रांतियां दूर होती हैं।''(1878 में इनोवे काओरु)

मेजी नेता बहुत सचेत होकर सम्राट का उपयोग राजनीतिक उद्देश्यों के लिये कर रहे थे, जबकि साथ ही शासन में सम्राट की भागीदारी को भी बहुत कम कर दिया गया और वह उस जमाने के अभिव्यक्तिपूर्ण जुमले में ''बादलों से ऊपर'' रहता था। सम्राट को एक अलग और दूरस्थ शासक के रूप में पेश किया गया जो राजनीति से ऊपर था। मोरी आरीनोरी के शब्दों में वह ''बेजोड़ पूंजी, निष्ठा और देशभक्ति बनाने के उद्यम में सबसे बड़ा संभावी खजाना बन गया।''

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

गोतो यासुशि सम्राट व्यवस्था के विकास को तीन कालों में बांटता है—

- पहला, 1868 से 1884, जिसमें व्यवस्था की बुनियादी विशेषताओं का निर्माण हुआ,
- दूसरा, 1885 से 1895, जिसमें व्यवस्था को लागू किया गया, और
- तीसरा, 1895 से 1905, जिसमें पुर्नसंरचना का काम हुआ।

यह व्यवस्था नौकरशाही और सेना के दो स्तंभों पर टिकी थी।

10.5.2 नौकरशाही

नौकरशाही ढांचे को बनाने में समय लगा, लेकिन 1872 तक नौकरशाहों की 15 श्रेणियों वाली एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था बन चुकी थी। इनको तीन बड़ी श्रेणियों में बांटा जा सकता था, जिनमें से पहली दो श्रेणियों के नौकरशाहों की नियुक्ति सीधे सम्राट के द्वारा होती थी और उनके साथ कानून के हाथों भी अलग व्यवहार होता था। इसके अलावा, भर्ती की नीति ऐसी थी कि विभिन्न सामाजिक वर्गों के लोग पहुंच कर सकते थे और बहुत कम प्रतिशत सामंत और **सैमुराई नौ**करशाही में शामिल होते थे। इन अधिकारियों के अधिकार और विशेषाधिकार उनके जन्म के आधार पर नहीं थे, बल्कि इसलिए थे कि वे सम्राट के कर्मचारी थे, इसी तरह, सेना सीधे सम्राट के प्रति उत्तरदायी थी और बाद में उसने इस अधिकार का उपयोग मंत्रिमंडलों को गिराने और अपने विचार लागू करने में किया। (विस्तृत विवरण के लिये देखिये इकाई 23)।

मेजी सरकार ने राजनीतिक संस्थाएं तो बनायीं, लेकिन राजनीतिक गतिविधि को वैधानिक अधिकार का दर्जा नहीं दिया। वह राजनीति को एक ऐसी वस्तु मानती थी जिससे लोगों में फूट पड़ती थी और जो स्वार्थी गुट हितों की प्रतीक थी। वह सम्राट को निष्पक्ष ढंग से राष्ट्र की इच्छा और हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली विभूति के रूप में पेश करती थी। इसे लागू करने के लिये गुटों को राजनीतिक गतिविधि में भागीदारी से बाहर रखा गया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नाबालिगों, स्त्रियों, अध्यापकों और सैनिकों के राजनीतिक सभाओं में जाने पर पाबंदी थी। सैनिकों और नौसैनिकों को जो राजाज्ञा मिलती थी, उसमें यह

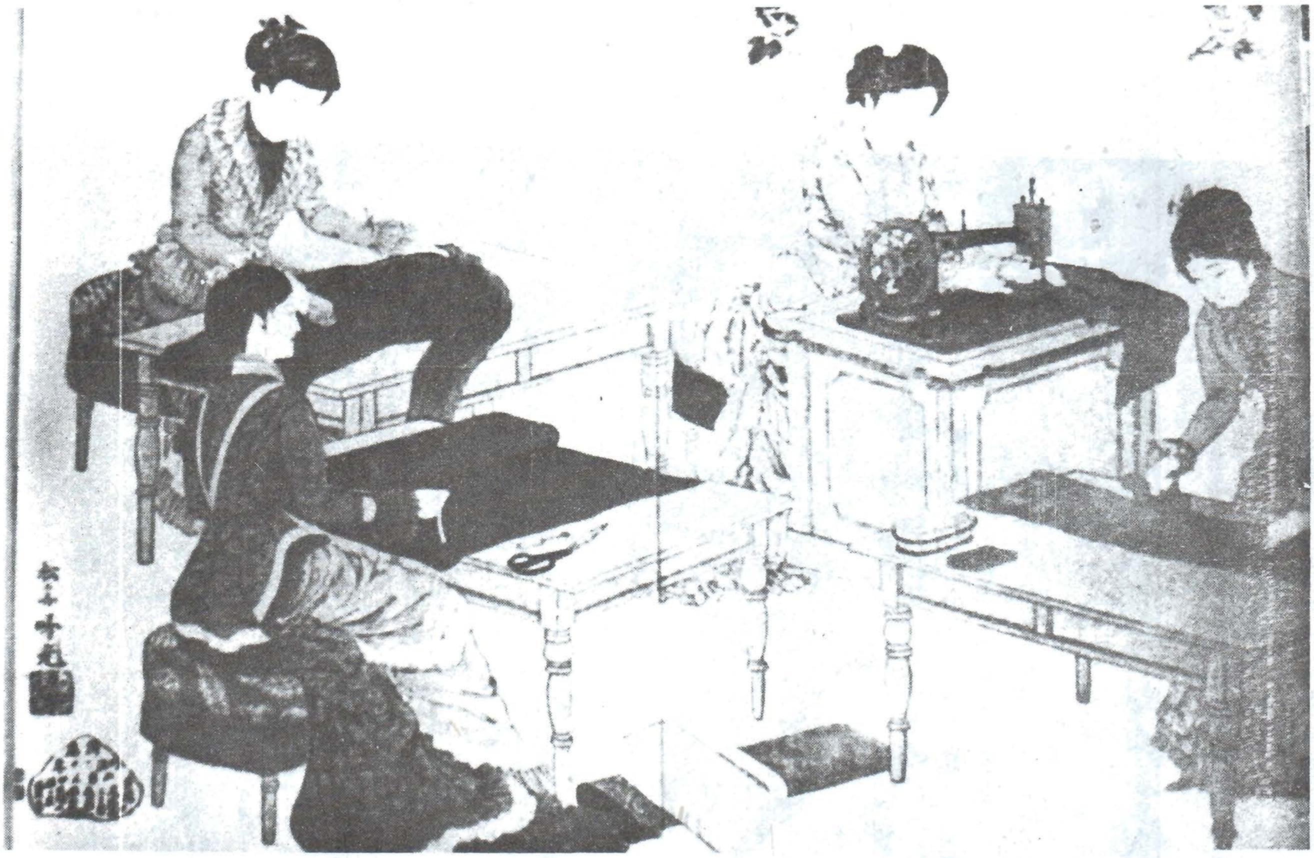

1. मेजी काल के दौरान वेशभूषा की पाश्चात्य शैली जापान के आधुनिकीकरण में एक उद्योग बन गया

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2. यह चित्र केन्द्रीय सत्ता के सुधार के पश्चात् आर्थिक क्षेत्र में जापान के अत्यधिक विकास को परिलक्षित करता है; राजा एवं रानी का आगमन जापानियों में गर्व की अनुभूति का प्रेरक है

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3. रेशम बुनाई फैक्ट्री. भवन निर्माण पाश्चात्य औद्योगिक वास्तुकला को दर्शाता है

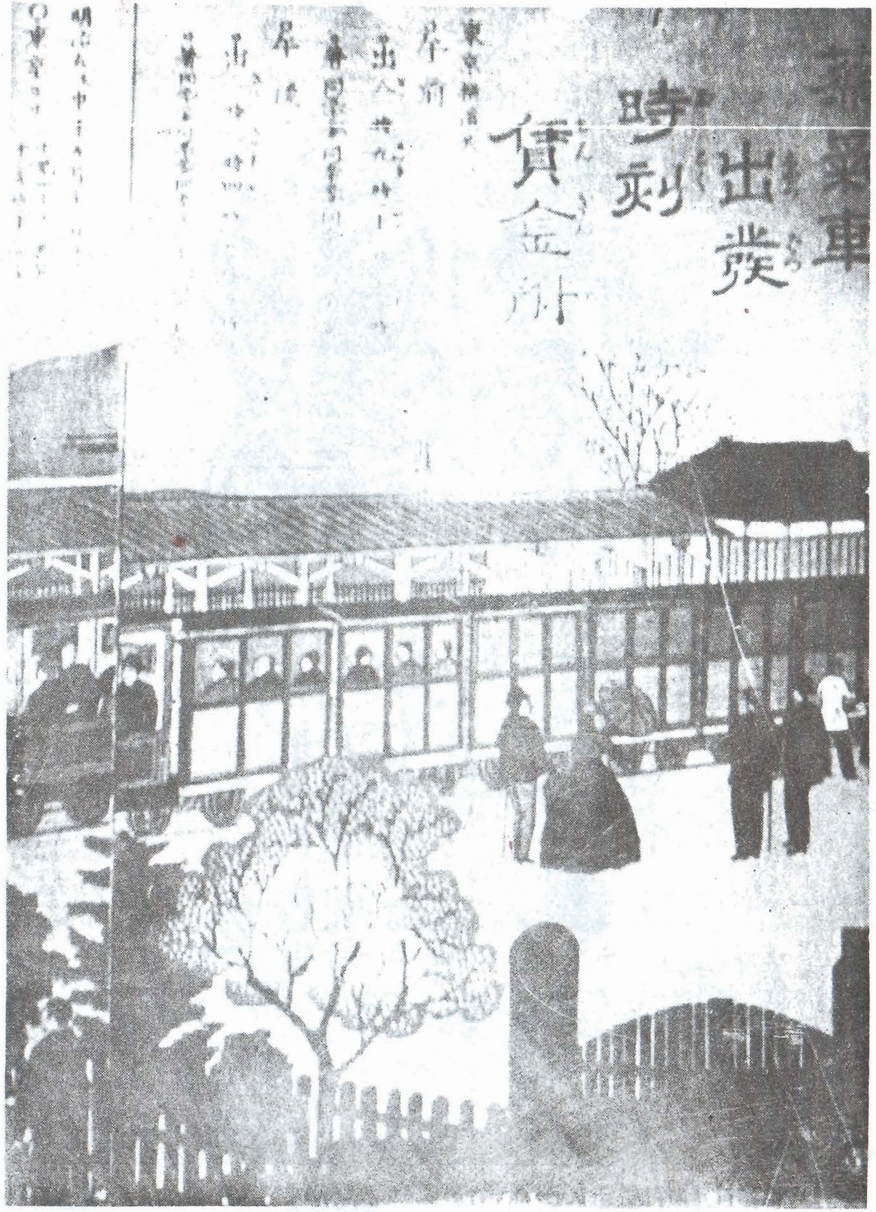

4. प्रथम रेल संचार व्यवस्था : टोकियो से योकोहामा

5. टेलीग्राफ संचार व्यवस्था : रेलवे स्टेशन से जुड़े हुए तार

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

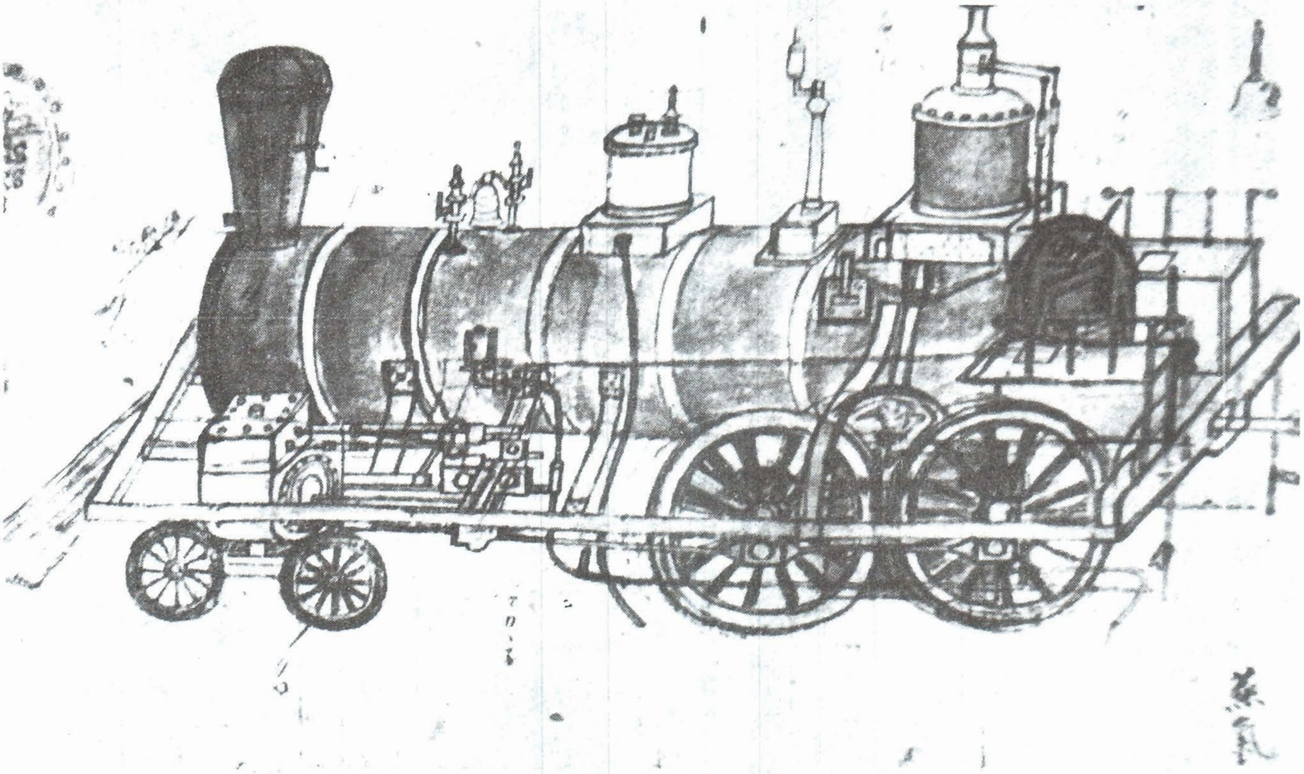

6. भाप के इंजन का प्रयोग विकास के क्षेत्र में एक प्रभावशाली कदम था

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8. किसान दैम्यो को कर देते हुए

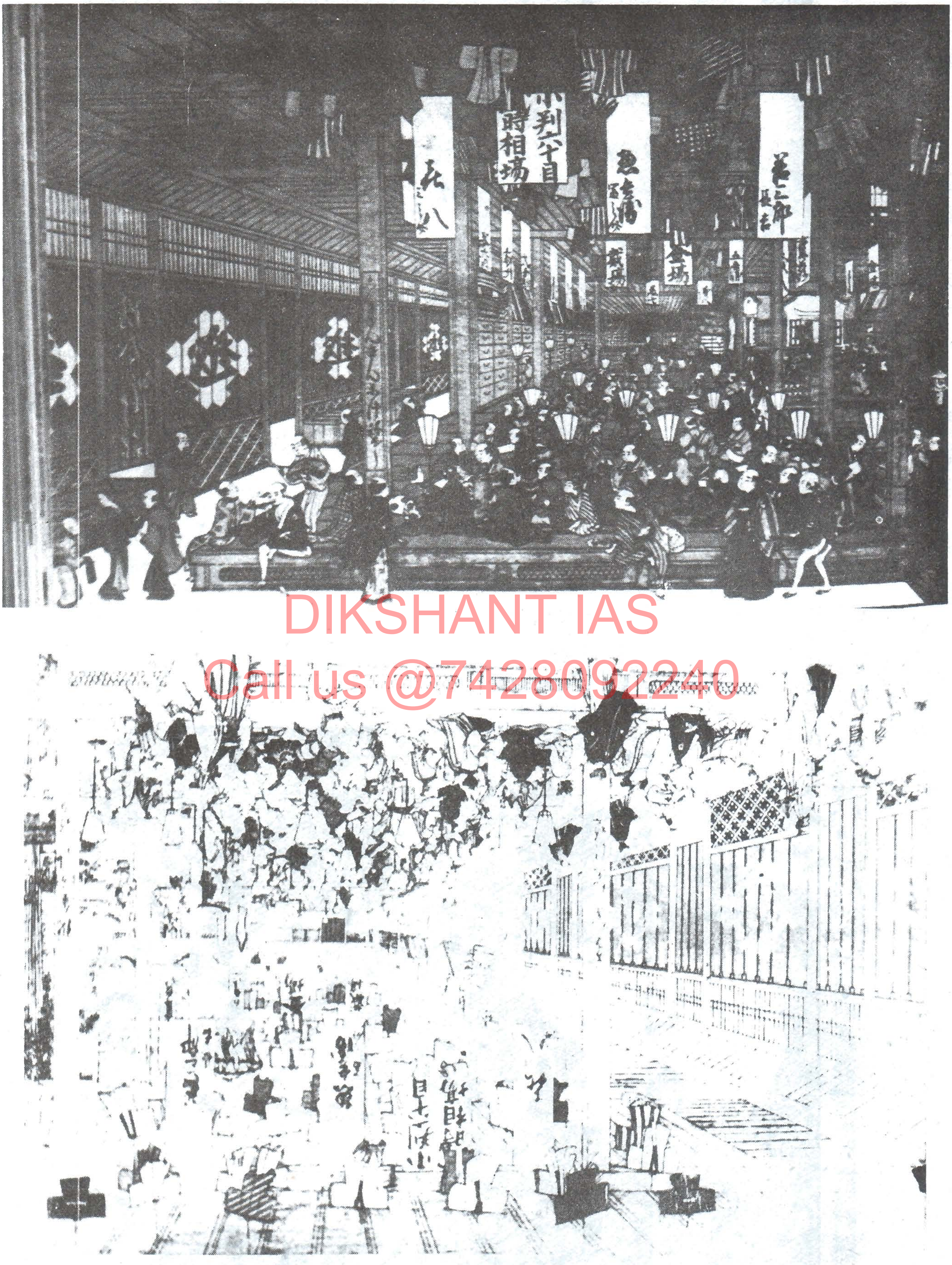

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7. इदो शहर के बाज़ार का प्रदर्शन

9. बच्चों की शिक्षा की पाश्चात्य शैली पर आधारित किंडरगार्टन स्कूल

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10. मेजी राजा (1852-1912)

11. पूर्व मेजी काल का एक किंडरगार्टन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

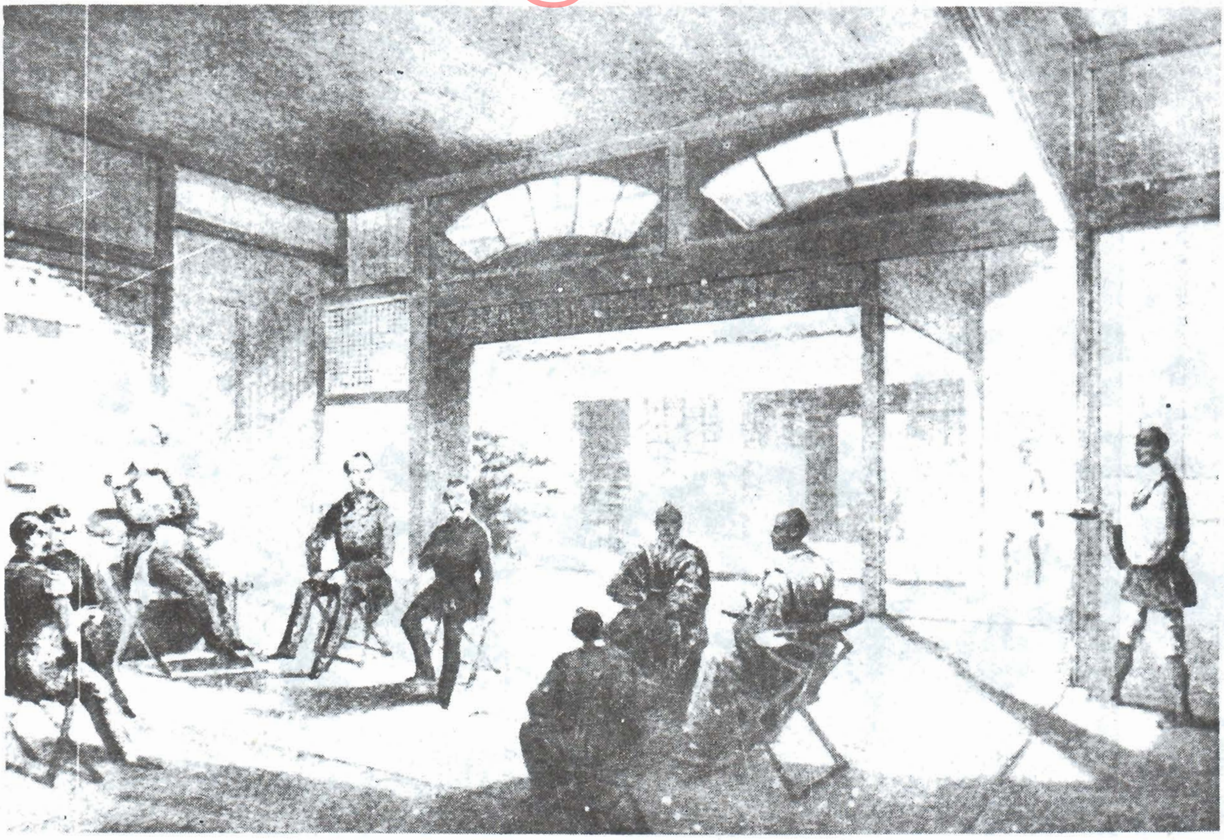

12. जापान और अमेरिका के मध्य एमीटी की संधि पर हस्ताक्षर करते हुए कोमोडोर पेरी और जापानी अधिकारीगण

13. महिलाओं द्वारा रेशम की बुनाई एवं कताई समाज में श्रम-विभाजन को इंगित करती है

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14. मेजी काल में शिक्षण-विधि

लिखा रहता था— ''न तो वर्तमान राजनीति से पथभ्रष्ट होओ और न राजनीति में दखल दो, बल्कि पूरे मन से अपनी निष्ठा (या, राजभक्ति) के बुनियादी कर्त्तव्यों का पालन करो।'' स्त्रियों को 1922 तक राजनीतिक कार्यों से घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी।

मेजी सम्राट ने 1912 में अपनी मृत्यु तक राज्य किया और उसके राज की विशेषता यह रही कि उस दौर में जापान ने एक बंद और पृथक देश से एक बड़ी विश्व शक्ति की ओर संक्रमण किया। जापानी संस्थाओं में क्रांतिकारी बदलाव आये और, हिचक के साथ ही सही, एक संवैधानिक ढांचे का निर्माण हुआ। दाएत (जापानी संसद) शासक अल्पतंत्र पर कुछ अंश तक अधिकार और प्रभाव जमाने में समर्थ रही। इन संभावी और संकोचपूर्ण उपायों से एक दलीय व्यवस्था का विकास हुआ और राजनीतिक बहस बढ़ी, लेकिन शुरुआत से ही मेजी नेता राष्ट्रीय नीति के संबंध में पहल करने और निर्णय लेने में समर्थ रहे। इसका कारण यह था कि उन्होने नौकरशाही और सेना दोनों पर ही नियंत्रण रखा और उन दोनों को ही संवैधानिक प्रक्रिया से बाहर रखा। महत्वपूर्ण संस्थाएं और मंत्रालय सीधे सम्राट के अधीन काम करते थे। यही कारण है कि बाद के दौरों में बदलाव होने के बावजूद कोई हिंसक सामाजिक उथल-पुथल नहीं हुई क्योंकि विभिन्न सरकारी संस्थाएं सत्ता के लिये तिकड़म में लगी हुई थीं। इस तरह, 1930 के दशक में सेना ही सरकार के भीतर प्रमुख शक्ति के रूप में उभरी।

बोध प्रश्न 3

1) जापान मे जनाधिकार आंदोलन के विषय में लगभग 15 पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राजनीतिक व्यवस्था में सम्राट की स्थिति के विषय में लगभग 10 पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) रिक्त स्थानों को भरिए:
   i) रिशिशा एक .... संगठन था जो .... के लिये अधिकारों की .... करता था।
   ii) इवाकुरा मिशन .... पर आक्रमण के .... था।
   iii) गोशी .... योद्धा थे जिन्हें .... भी माना जाता था।
   iv) इत्सुकाइची स्थित संगठन में .... का एक .... व्यवस्था का और एक .... अधिकार संहिता का प्रतिरूप तैयार करने पर चर्चा होती थी।
   v) नौकरशाही में भर्ती की शाही नीति ऐसी थी कि .... सामाजिक वर्गों के लोग .... कर सकते थे।

10.6 सारांश

मेजी काल में बदलाव लाने का काम नेताओं के एक छोटे गुट ने किया जिसने **मेजी** पुर्नस्थापना लाने में मदद की थी। वे आंशिक तौर पर जापान को एक आधुनिक राष्ट्र में बदलने की इच्छा से प्रेरित थे, जिससे वे असमान संधियों में संशोधन कर सकें। वे एक शक्तिशाली और समृद्ध देश के निर्माण में भी रुचि रखते थे। उन्होंने शाही संस्था जैसी विद्यमान संस्थाओं या धार्मिक विचारों का उपयोग धीमा और क्रमिक बदलाव लाने के लिये किया। **मेजी** नेता सामाजिक विघटन और पश्चिमी राष्ट्रों से विघटनकारी विचारों के प्रवाह की संभावना को लेकर चिंतित थे। इसीलिए उन्होंने प्रशा जैसे चुनिंदा देशों से आदर्श लेकर जापान के अनुकूल राजनीतिक ढांचा तैयार करने का काम किया।

विरोधी गुटों के (विपक्षी) आंदोलनों की आकांक्षा भी जापान का निर्माण करने की थी, लेकिन उनकी दृष्टि मेजी अल्पतंत्र की दृष्टि से भिन्न थी। परंपरागत कुलीनों शिजोकू के मेजी-विरोधी आंदोलन प्रगतिशील नहीं थे और वे विशेषाधिकारों के हनन और परंपरागत अधिकारों की समाप्ति से उठे थे। ये कुलीन बाजारी शक्तियों के आगे फेंक दिये गये जिन्हें न वे समझ पाये और न नियंत्रित ही कर पाये।

मेजी के विरोधों में, जनाधिकार आंदोलन अपने पहले दौर में एक उदारवादी और जनतांत्रिक विरोध का प्रतीक रहा, लेकिन धीरे-धीरे दूसरे प्रभावित सामाजिक गुटों के इसमें शामिल होने के साथ इसमें राज्य की सत्ता के लिये खतरा पैदा करने वाले गुट भी शामिल हो गये। इस आंदोलन की असफलता के लिये अनेक कारक उत्तरदायी थे, जैसे—गुटबाजी और कमजोर नेतृत्व, लेकिन बुनियादी तौर पर मेजी सरकार वैचारिक और संस्थागत दोनों धरातलों पर इतनी जमी हुई थी कि उसे उखड़ना संभव नहीं था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जो राजनीति बनी उसके बुनियादी ढांचे में दोहरापन था, जो आने वाले वर्षों में समस्याओं का कारण बना। जापान एक केंद्र केंद्रित और आक्रामक राष्ट्र बन गया और उसने शाही दिव्यता का इस्तेमान न केवल अपनी जनता को एकता के सूत्र में बांधने के लिये, बल्कि अपनी सीमाओं के विस्तार के लिये भी किया। आतंरिक दमन और बाहरी आक्रमण उसी एक राजनीतिक दृष्टिकोण से उभरे। जनाधिकार आंदोलन जनता की आकांक्षा पर आधारित एक जनतांत्रिक सरकार के जिस विचार को लेकर चला था वह तो निस्काम या व्यर्थ हो गया, लेकिन वह दूसरी पीढ़ियों के जनवादियों को प्रेरणा देता रहा।

10.7 शब्दावली

कोगीः सार्वजनिक विचार-विमर्श। इस शब्द का प्रयोग तोकुगावा काल के शोगुन के संदर्भ में भी होता था। उस दौरान "शोगुन" शब्द का प्रयोग बहुत कम होता था।

गोशीः योद्धा, जो सत्सुमा में गांवों में रहते थे। सैमुराई को तो महली कसबों में रहना होता था, लेकिन इन योद्धाओं को सैमुराई की बराबरी पर रखा जाता था।

शिजोकूः पुर्नस्थापना के बाद स्थिति (हैसियत) के अंतर समाप्त कर दिये गये और भूतपूर्व **सैमुराई शिज़ोकू** के नाम से जाने गये।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर उपभाग 10.2.2 के आधार पर लिखें।
2) i) × ii) √ iii) × iv) √

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर में उपभाग 10.3.1 और 10.3.2 में उल्लेखित विभिन्न विचारों को शामिल करें।
2) i) √ ii) × iii) √ iv) ×

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर में विभिन्न राजनीतिक संगठनों, उनके नेताओं, मांगों, और तरीकों का उल्लेख करें। देखें उपभाग 10.4.2.
2) सम्राट की स्थिति (हैसियत) का उल्लेख करें और यह भी लिखें कि यह हैसियत सम्राट को क्यों और कैसे दी गयी। अपना उत्तर उपभाग 10.5.1 के आधार पर लिखें।
3) i) राजनीतिक, जनता, वकालत
   ii) कोरिया, विरुद्ध
   iii) ग्रामीण, सैमुराई
   iv) संविधान, वैधानिक, नागरिक
   v) विभिन्न, पहुंच

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 11 जापान में आधुनिकीकरण-II

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 जापान और पश्चिमी दुनिया
 11.2.1 तोकुगावा काल
 11.2.2 मेजी काल
 11.2.3 बुद्धिजीवियों की भूमिका
11.3 शिक्षा और विकास
 11.3.1 प्रारंभिक प्रयास
 11.3.2 मंत्रिमंडल के अधीन सुधार
11.4 रूढ़िवादी और शैक्षिक सुधार
 11.4.1 शाही राजाज्ञा
 11.4.2 रूढ़िवादी तर्क
 11.4.3 रूढ़िवादियों का प्रभाव
 11.4.4 समाजवादी दृष्टिकोण
 11.4.5 अखिल एशियावाद
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद :

- आप पश्चिमी विचारों को जानने के लिये कुछ जापानी बुद्धिजीवियों द्वारा किये गये प्रयासों के बारें में जान सकेंगे,
- आप यह सीख सकेंगे कि पश्चिमी विचार जापान में कैसे आये और रूढ़िवादियों की उनके प्रति क्या प्रतिक्रिया रही,
- आपको उस प्रक्रिया की जानकारी मिलेगी जिसके जरिये पश्चिमी विचारों का सदुपयोग जापान को एक आधुनिक राष्ट्र राज्य के रूप में विकसित करने के लिये किया गया, और
- आप शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के लिये अपनाये गये विभिन्न उपायों को समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में जापान में विचारों और विचारधाराओं के क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पर चर्चा की गयी है। **मेजीकालीन** जापान के बदलाव के लिये तथा एक केंद्र-केंद्रित राज्य की रचना के लिये नयी राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं का निर्माण ही पर्याप्त नहीं था। जापानी जनता को पश्चिमी राष्ट्रों से आने वाले नये विचारों के साथ भी समझौता करना था। व्यापक स्थितियों का समावेश करने वाले ये विचार कई देशों से आये, जिनमें इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका प्रमुख थे। इस इकाई में इस बात पर विचार किया गया है कि **मेजीकाल** के बुद्धिजीवियों ने इन नये विचारों को कैसे समझा और कैसे उनका उपयोग किया, और इन पश्चिमी विचारों पर प्रतिक्रिया क्या हुई। इस काल के दौरान जापानी जीवन को संगठित करने के लिये देशज स्रोतों की ओर लौटने की एक प्रभावी और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति उभर कर सामने आयी।

एक आधुनिक समाज के लिये आवश्यक पश्चिमीकरण की आवश्यकता और उसकी सीमा से संबंधित बहसें शिक्षा व्यवस्था और उन प्रयोगों में प्रतिबिम्बित हुई जो नयी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये इस शिक्षा व्यवस्था को सुधारने और बदलने के लिये किये गये।

शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ, मेजी काल के अनेक बुद्धिजीवी और नेता नागरिकता बोध बनाने के विषय में चिंतित थे। इस इकाई में इस पहलू पर भी विचार किया गया है।

11.2 जापान और पश्चिमी दुनिया

इस भाग में हम **तोकुगावा** और **मेजी** कालों के दौरान जापान और पश्चिमी दुनिया के संबंधों पर चर्चा कर रहे हैं।

11.2.1 तोकुगावा काल

जापान तोकुगावा काल में भी विदेशी संपर्क से पूरी तरह कटा नहीं था। जैसा कि हम खंड 1 और 2 में देख चुके हैं, जापान ने डच व्यापारियों को नागासाकी से हट कर स्थिति दोशिमा के मानव निर्मित द्वीप में आवास के सीमित अधिकार दे दिये थे। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि **तोकुगावा** काल के दौरान ज्ञान के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों में से दो स्रोत बाहरी थे, ये थे — चीन और हालैंड। पश्चिमी ज्ञान के इस अनुभव ने एक आधार दिया जिससे **मेजी काल** के बुद्धिजीवी पश्चिम से और भी बहुत कुछ सीख सके।

अनुवादों के जरिये जापानी न केवल इन देशों के बारे में, बल्कि सामान्य विदेशी मामलों के बारे में जानकारियों के संपर्क में आये। किताबों का आयात किया गया और डचों को विश्व की स्थिति पर नियमित जानकारी देने को नियुक्त किया गया। चीनी किताबों से ज्ञानार्जन की उनकी थारती के कारण जापानी डच कृतियों से जल्दी ही सीख गये और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक विद्वानों की एक मजबूत और सक्रिय परंपरा बन गयी थी जिन्हें दुनिया की जानकारी थी। इन विद्वानों में दुनिया को वास्तव में देखने की ललक अब बढ़ रही थी और पेरी के काले जहाजों के आते ही वे पश्चिमी शक्ति के स्रोतों का अध्ययन करने के रास्ते जानने के लिये उत्सुक हो उठे।

राजभक्त शिक्षक योशुदा शोइन (1830-59) ने मेजी काल के अनेक नेताओं पर गहरा प्रभाव छोड़ा। वह एक कट्टर राष्ट्रवादी था और उसे तोकुगावा शासन में उसके उग्रवादी विचारों के लिये प्राणदंड दिया गया। उसने पेरी के जहाज पर छिप कर निकल जाने का प्रयास किया लेकिन उसके प्रयास को नाकाम कर दिया गया। बाद में एक और बुद्धिजीवी नीजिमा जो छिप कर देश से बाहर निकल जाने में सफल रहा। उसकी मदद उन कुछ लोगों ने की जो दुनिया देखने की उसकी आकांक्षा की तीव्रता से प्रभावित हुए थे। उसने अमेरिका में पढ़ाई की और बाद में वह जापान में एक विश्वविद्यालय की स्थापना करके एक सम्माननीय व्यक्ति बन गया। इन दोनों ही व्यक्तियों के विचारों में बहुत भिन्नता थी, लेकिन वे दोनों ही पश्चिम को शक्ति का एक स्रोत मानते थे जिससे वे ज्ञान हासिल कर सकते थे और इस ज्ञान का उपयोग राज्य की बुनियाद बनाने में होना था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यक्तिगत संपर्कों और यात्राओं में तो धीरे-धीरे वृद्धि हुई ही, बकुफु की ओर से भी सरकारी अभियान दल (मिशन) बाहर भेजे गये। 1860 में एक अभियान दल को अमेरिका जाने के लिये चुना गया। एक अधिकारी, ओगुरी तादामासा ने फ्रांसीसी मदद से योकोहामा और योकोसूका फाउंड्री (ढलाईघर) और पोत कारखाना बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। प्रशांत महासागर को पार करने वाला सबसे पहला जहाज कानरिन मारू था और उस पर सवार था फुकुजावा युकिची।

फुकुजावा युकिची पश्चिमीकरण का सबसे प्रसिद्ध पोषक हुआ। पश्चिम का विवरण देने वाली उसकी किताबें आसान जापानी में लिखी गयी थीं, और वे सबसे अधिक बिकने वाली किताबें बन गयीं। दूसरे बकुफु अभियान दल यूरोप गये और विशिष्ट राजनायिक कामों पर यात्रा करते हुए भी उन्होंने पश्चिम के बारे में ज्ञान भी इकट्ठा किया और उनमें से कई ने तो पश्चिमी संस्थाओं और रीतियों की सिलसिलेवार छानबीन की। इस तरह, उन्होंने स्कूली व्यवस्था या व्यावहारिक राजनीति का अध्ययन किया और किताबें लिखीं। उदाहरण के लिये, फुकुजावा ने जो कुछ देखा उस पर विस्तार से लिखा और उसने न केवल पश्चिम के जुगाड़ी उपकरणों का, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संगठन का भी पूरे मनोयोग से अध्ययन किया। 1866-69 में छपी उसकी किताब ''पश्चिम की स्थितियां'' **(सैयो जीजो)** जानकारियों की खान है, लेकिन इसने एक नमूना भी दिया कि जापानी समाज को किस स्वरूप में तबदील किया जा सकता था। दूसरे देशों की यात्रा पर गये जापानियों ने अपनी किताबें लिखीं, लेकिन कई दूसरों ने पश्चिमी कृतियों का अनुवाद किया। एक सबसे लोकप्रिय अनुवाद नाकामुरा मासानाओ द्वारा सैमुएल स्माइल्स की कृति ''सेल्फ हेल्प'' (आत्म सहायता) का अनुवाद रहा।

11.2.2 मेजी काल

मेजी पुनर्स्थापना के बाद यात्रा और आसान हो गयी और उसे सक्रिय प्रोत्साहन भी दिया गया। नयी सरकार ने अपने सामने खड़ी समस्याओं के बावजूद, इवाकुरा अभियान दल भेजा जिसमें नयी सरकार के कई महत्वपूर्ण नेता शामिल थे। इसके सदस्यों में अनुभवी राजनायिक थे और इस अभियान दल का उद्देश्य पश्चिम के सभी पहलुओं का अध्ययन करना था। इसके सदस्यों ने कुछ क्षेत्रों पर अपना ध्यान केंद्रित किया उदाहरण के लिये, ओकुबो तोशीमीची ने कारखानों और मजदूरों के आवास वाली मलिन बस्तियों में घूम-घूम कर उद्योग और आर्थिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया।

जापानियों ने पूरी दुनिया में ज्ञान की खोज की। उनकी समझ जैसे-जैसे बढ़ती गयी, वे राष्ट्रों को अलग-अलग दर्जा देने लगे। उदाहरण के लिये :

- इंग्लैंड को औद्योगिक विकास का नमूना माना गया,
- प्रशा को सैनिक संगठन का,
- फ्रांस को पुलिस और शिक्षा व्यवस्था का, और
- अमेरिका को कृषि विकास का।

अपनी शिक्षा के लिये विदेशी कर्मचारियों को नियुक्त करना एक और तरीका था जिसके जरिये जापानियों ने पश्चिम से ज्ञान प्राप्त किया। प्रारंभ में जापानियों ने डचों से ज्ञान प्राप्त किया था, लेकिन बाद में उनकी जगह अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने ले ली, मेजी काल में, 1875 तक, जापानी सरकार में 520 विदेशी कर्मचारी थे। इस संख्या में धीरे-धीरे कमी आयी, निजी कंपनियों में विदेशी कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि आयी। 1897 में 760 ऐसे व्यक्ति थे। ये कर्मचारी विविध व्यवसायों में नियुक्त थे, जैसे शिक्षा, इंजीनियरिंग और अनेक तकनीशियन भी थे। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि जापानी सरकार सबसे बढ़िया उपलब्ध विशेषज्ञता खरीदने के लिये खुले हाथ से खर्च करती थी। विदेशियों का वेतन उद्योग मंत्रालय के नियमित बजट का एक तिहाई और टोक्यो शाही विश्वविद्यालय के लिए स्वीकृत धनराशि का एक तिहाई होता था। इससे यह संकेत मिलता है कि सरकार जिस ज्ञान को आवश्यक समझती थी उसे प्राप्त करने के लिये वह किस हद तक आर्थिक बोझ उठाने को तैयार थी। साथ ही बड़ी लागत ने शायद उन्हें तेजी से सीखने को उद्यत किया और इस पर लगातार जोर दिया जाता रहा। उदाहरण के लिये, इतो हिरोबूमी ने 1873 में एक भाषण में कहा था:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

> "यह आवश्यक है कि इस अवसर का उपयोग हम अपने आपको पूरी तौर पर प्रशिक्षित और शिक्षित करने के लिये करें .... फिर वास्तव में हम विदेशियों के बिना अपना काम चलाने में समर्थ होंगे .... इसलिए देश भर में सारे महत्वाकांक्षी युवा जम कर अपनी पढ़ाई में जुट जायें।"

लेकिन, पश्चिम से सीखने और उसकी नकल करने की आकांक्षा बेतुके स्तरों तक भी पहुंच चुकी थी। उदाहरण के लिये, पश्चिमी वस्तुओं के लिये दीवानगी का प्रतीक हाल ऑफ द डियर पेवेलियन के रूप में मिलता है जहां मेजी के कुलीन औपचारिक पश्चिमी लिबास में सजते थे, हैट पहनते थे, और बाल रूम नृत्य करते थे। लेकिन यह पश्चिमीकरण का एक मात्र पहलू नहीं था, और ज्यादतियां होने के बावजूद जापानियों में नया ज्ञान प्राप्त करने की गहन और गंभीर इच्छा थी।

11.2.3 बुद्धिजीवियों की भूमिका

उस समय का लोकप्रिय जापानी जुमला **बुमने कोइका** या सभ्यता और प्रबुद्धता उस समय की प्रवृत्ति का संकेत देता है। फरवरी 1, 1874 को तैंतीस बुद्धिजीवियों ने सभ्यता और प्रबुद्धता को बढ़ावा देने के लिये एक संस्था **मेरोकुशा** का गठन किया। इस संस्था में **मेजी** कुलीन वर्ग के अनेक प्रमुख सदस्य शामिल थे। इसका पहला अध्यक्ष, मोरी आरीनोरी, अमेरिका में जापान का पहला राजदूत था, उसने सरकार में शिक्षा मंत्री समेत कई हैसियतों में काम किया था। उसने इस संस्था की धारणा इसलिए बनायी क्योंकि उसे शिक्षा में रुचि थी और वह जापान में इसकी उन्नति के लिए तरीकों की तलाश में था।

इस संस्था के सदस्यों में विभिन्न बुद्धिजीवी थे। इसमें निशीमुरा शिगेकी जैसे कन्फ्यूशियसवादी मानवतावादी थे। निशीमुरा का तर्क था कि पश्चिम की सफलता की कुंजी नैतिकता में थी। नाकामुरा केऊ भी व्यक्तिगत नैतिकता और आत्मनिर्भरता पर जोर देता था और इसी कारण उसने जे. एस. मिल की "ऑन लिबर्टी" और सैमुएल स्माइल्स की "सेल्फ हेल्प" का अनुवाद किया।

कानो हिरोपूकी और त्सुदा मासामिची और नीशी अमाने जैसे बुद्धिजीवी समाज की संघटित प्रकृति की बात

करते थे। उनका तर्क था कि पश्चिम की शक्ति इस तथ्य में निहित थी कि इसका समाज विवेक के आधार पर निर्मित और संचालित था। लेकिन उनके दृष्टिकोणों में काफी अंतर था। उदाहरण के लिये, कातो तो शाही संस्था के महत्व के पक्ष में था, जबकि त्सुदा प्रबुद्ध वैधानिक और नौकरशाही संस्थाओं के विकास का पक्षधर था।

एक और सदस्य फुकुजावा युकिची ही एक मात्र ऐसा व्यक्ति था जो जानबूझकर सरकार से बाहर रहा और एक स्वतंत्र बुद्धिजीवी के रूप में काम करता रहा। उसने केओ विश्वविद्यालय स्थापित करने में मदद की। उसका तर्क था कि लोगों को अभी भी (अपने अंदर) स्वाधीनता का बोध विकसित करना था और इस कारण सरकार अभी भी तानाशाह बनी हुई थी क्योंकि "लोग अभी भी शक्तिहीन अज्ञानी थे"। वह सरकार की यह कह कर आलोचना करता था कि सरकार "मात्र एक ऐसा स्थान थी जहां कई बुद्धिमान लोग एक मूर्ख व्यक्ति की तरह काम करने को एकत्र होते हैं।"

दूसरी ओर मोरी आरिनोरी इस बात पर दृढ़ था कि सभी सक्षम लोगों को सरकार के लिये काम करना चाहिये और राष्ट्र की उन्नति में सहायक होना चाहिए। उसने वाणिज्यिक संस्थान स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जिसने बाद में हितोत्सुबाशी विश्वविद्यालय का रूप लिया।

प्रबुद्धता और सभ्यता की तलाश पश्चिमी मूल्यों और विचारों को अपनाने का प्रयास था। ये आदर्श 1868 के शपथ घोषणा पत्र में व्यक्त हुए थे, जिसमें लिखा गया थाः

> "अतीत की कुप्रथाओं को त्यागा जायेगा और सब कुछ प्रकृति के उचित नियमों पर आधारित होगा। ज्ञान की तलाश पूरे विश्व में की जायेगी जिससे शाही राज की बुनियाद को मजबूत किया जा सके।"

बुनमे काईका के दौर में पश्चिम के तमाम उदारवादी विचारों को लाया गया और यह काम उएकी एमोरी और नकाए चोमिन जैसे जनाधिकार समर्थक बुद्धिजीवियों ने किया। फिर भी, इन विचारों पर जापानी संस्कृति और मूल्यों के प्रति एक अस्वीकारी रवैये की प्रधानता थी। सभ्यता को नियंत्रित करने वाले नियमों-कानूनों को सार्वभौमिक समझा जाता था और जापान को पश्चिमी समाजों की तरह आगे बढ़ने के लिये इन नियमों का सीखना भर पर्याप्त था। इन बुद्धिजीवियों ने जो संदेश ग्रहण किया था वह यह था कि सारे सभ्य लोग अपनी मानवता में एक हो जायेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बुद्धिजीवी उस विज्ञान और प्रौद्योगिकी का ज्ञानार्जन करने के विचार में भी लिप्त थे जो आधुनिक थी और राष्ट्र के विकास में भी सहायक होती । उनके विचारों का आधार मनुष्यों की समानता भी थी। फुकुजावा ने अपनी किताब "डिसएडवांसमेंट ऑफ लर्निंग" की शुरुआत इन शब्दों से की : "ईश्वर ने मनुष्य को मनुष्य के ऊपर नहीं बनाया, न ही मनुष्यों को मनुष्यों के ऊपर रखा"। आत्मनिर्भर व्यक्तियों की इसी दृष्टि के कारण ये लेखक अंधाज्ञाकारिता और दासतापूर्ण नकल की आदतें डालने वाली सामंती रीतियों या प्रथाओं के बने रहने के आलोचक थे। इन मूल्यों की निरंतरता पारिवारिक व्यवस्था के कारण थी। बुनमे काईका बुद्धिजीवी एक ऐसे मुक्त समाज के पक्ष में थे जहां प्रतिभा को उचित प्रतिदान मिले और जहां अंतर्राष्ट्रीयता का सिद्धांत व्याप्त हो। राष्ट्रीय मतभेद धीरे-धीरे कम कर दिये जायेंगे। तागुची उकिची यह लिख सका कि तब तक टोक्यो में रहने वाला कोई अंग्रेज उतना ही टोक्योवासी होगा जितना कि टोक्यो में रहने वाला कागोशिमा का कोई व्यक्ति।

बोध प्रश्न 1

1) आप फुकुजावा युकिची के विषय में क्या जानते हैं? लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

2) जापानी बुद्धिजीवियों द्वारा पश्चिमी विचारों की तलाश के क्या कारण थे। उन्होंने पश्चिम से किस तरह ज्ञानार्जन किया। लगभग 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

11.3 शिक्षा और विकास

मेजी कालीन जापान को कई शिक्षा व्यवस्थाएं तोकुगावा काल से विरासत में मिलीं, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें शिक्षा के प्रति एक ऐसा रवैया विरासत में मिला जो शिक्षा के महत्व और आवश्यकता को समझता था। तोकुगावा काल के दौरान देश में मंदिर स्कूल (तेराकोया) फैले हुए थे जहां लिखना, पढ़ना और गणित सिखाये जाते थे। इन स्कूलों का उद्देश्य एक ऐसा बुनियादी ज्ञान देना था जो छात्रों को समाज में प्रभावी ढंग से काम करने के योग्य बनाये। वे "ए प्राइमर ऑन बिजनेस" जैसी किताबों का प्रयोग करते थे। हान द्वारा संचालित ऐसे स्कूल थे जिनमें बड़ी संख्या में सैमुराई आते थे और जहां शिक्षा व्यावहारिक की अपेक्षा साहित्यिक अधिक होती थी। बकुफु ने शोहेको की भी स्थापना की थी जहां कानून, चीनी क्लासिकों (प्राचीन ग्रंथों) और गणित की शिक्षा दी जाती थी। बकुफु द्वारा स्थापित काईजेजो (विदेशी ज्ञानार्जन का स्कूल) पश्चिमी संबंधी ज्ञान का स्रोत बन गया और इससे इस तथ्य का प्रमाण मिलता है कि शासक ताकतों को बाहरी दुनिया के अध्ययन की चिंता थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक 250 हान स्कूल स्थापित हो चुके थे। डच प्रभाव के फलस्वरूप पश्चिमी ज्ञानार्जन के स्कूलों की स्थापना हुई। **तोकुगावा** कालीन स्कूल आधुनिक व्यवस्था या पद्धति के नहीं थे। वे विकेंद्रित थे और प्रायः अध्यापक के घर में ही चलते थे। छात्र एक निश्चित पाठ्यक्रम वाले स्कूल में जाने के बजाय अपनी पसंद के अध्यापकों के पास पढ़ने जाते थे इससे अत्यधिक विविधता की गुंजाइश बनती थी, लेकिन इससे गुणवत्ता का स्तर भी विविध होता था।

11.3.1 प्रारंभिक प्रयास

यह एक रोचक तथ्य है कि मेजी पुर्नस्थापना के साथ, और देश के गृह युद्ध और क्रांति की गड़बड़ी में फंसे होने पर भी, सरकार ने "हमारे मानव संसाधनों के परिष्कार" के लिये ये स्कूल खोले। 1869 में टोक्यो में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी और 1871 में एक शिक्षा मंत्रालय कायम किया गया। 1872 में सरकार ने एक शिक्षा अधिनियम जारी किया जिसमें देश को आठ विश्वविद्यालय जनपदों में बांटा गया और इनका फिर बत्तीस माध्यमिक स्कूल जनपदों में उप विभाजन किया गया। माध्यमिक स्कूल जनपदों को एक बार फिर दो सौ दस प्राथमिक स्कूल जनपदों में बांटा गया। इस व्यवस्था के बाहर सरकार ने कृषि महाविद्यालय और वाणिज्यिक अध्ययन केंद्र जैसे विशेष स्कूलों और विश्वविद्यालयों की भी स्थापना की।

मेजी कार्यक्रम एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम था, लेकिन इसके सामने वित्तीय कठिनाइयां थीं, दूसरे देशों से सीखने के साथ इसमें और भी समज्जन और बदलाव हुए। शिक्षा बजट का एक बड़ा हिस्सा छात्रों को

विदेशों में पढ़ने भेजने में खर्च हो जाता था। उदाहरण के लिये, 1873 में कुल 800,000 येन में से 100,000 येन विदेशों में पढ़ाई के लिये थे।

शिक्षा अधिनियम, 1872, में जिस अर्थव्यवस्था को रखा गया था वह फ्रांसीसी व्यवस्था के नमूने पर आधारित होते हुए भी महत्वपूर्ण तरीकों से उससे भिन्न थी। जापान में यह एकपंथीय व्यवस्था थी जिसमें प्राथमिक शिक्षा मुफ्त थी, जबकि फ्रांस में द्विपंथीय, व्यवस्था थी जिसमें 1933 तक प्राथमिक शिक्षा पर चर्च (धार्मिक संस्था) का नियंत्रण रहा। लेकिन, इस व्यवस्था के विरोध में दंगे हुए। जनता को इन स्कूलों की स्थापना और संचालन में आने वाली लागत का एक बड़ा हिस्सा अपनी जेबों से देना होता था, और उन्हें यह बोझ बहुत भारी लगता था। 1873 में स्कूलों को दी जाने वाली सरकारी सहायता कुल बजट का केवल 12 प्रतिशत थी।

नयी शिक्षा व्यवस्था का वित्तीय बोझ विरोध का एक कारण था। इस नयी व्यवस्था को चलाने वाले अध्यापक और सामग्री भी अपर्याप्त साबित हुई। पाठ्य पुस्तकें बहुत ही कम थीं और जो पाठ्य पुस्तके थीं भी उनके विषय में अध्यापकों को वास्तव में यह ज्ञान ही नहीं था कि उनका प्रयोग कैसे करें। 1876 में 52,000 अध्यापकों में से केवल 1/6 को ही नयी व्यवस्था के तहत प्रशिक्षित किया गया था।

अंतिम बात जीवन के और पक्षों की तरह शिक्षा का पश्चिमीकरण किये जाने पर भी प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। दंगों का लक्ष्य केवल वित्तीय बोझ ही नहीं था, बल्कि जार्ज के कलैंडर का थोपा जाना भी था।

सन् 1875 में, अमेरिकी विचारों से प्रभावित एक शिक्षा अध्यादेश ने कुछ बदलावों की नींव रखी जिसने और अधिक विकेंद्रीकरण और स्थानीय स्वायत्तता को जन्म दिया। इन सुधारों की नींव उस समय रखी गयी जब जनाधिकार आंदोलन और मजबूत हो रहा था और पश्चिमीकरण के विरुद्ध लहर बढ़ रही थी और विचारक परंपरागत मूल्यों पर और अधिक जोर देने की मांग कर रहे थे। सुधार के ये प्रयास इन समस्याओं से निपट नहीं पाये और असफल रहे।

11.3.2 मंत्रिमंडल के अधीन सुधार

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1885 में मंत्रिमंडल व्यवस्था की शुरुआत हुई और मोरी आरिनोरी पहला शिक्षा मंत्री बना। प्रशायी तरीकों से प्रभावित मोरी शिक्षा के विषय में हमेशा चिंतित रहा था। वह शिक्षा को राष्ट्र के विकास से घनिष्ठता से जुड़ा मानता था। उसने लिखा: "तमाम स्कूलों के प्रशासन में, यह ध्यान में रखा जाना चाहिये, कि जो कुछ करना है वह छात्रों के लिये नहीं है, बल्कि देश के लिये है।" इस तरह, लोगों को आज्ञाकारी भी होना चाहिये, और प्रशिक्षित भी, मोरी ने लोगों को सुशिक्षित करने की आवश्यकता को माना, लेकिन उसने यह भी समझा कि आलोचना की भावना राज्य के विरुद्ध भी मोड़ी जा सकती थी और सरकारी व्यवस्था के लिये खतरा पैदा कर सकती थी। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मोरी के सुधारों में एक दोहरा ढांचा कायम किया गया।

स्कूली शिक्षा को राजनीतिक उद्देश्यों के अधीन रखा गया और राजभक्ति और देशभक्ति की भावना बनाने पर जोर दिया गया।

दूसरी ओर, विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा अपेक्षाकृत स्वतंत्र रखी गयी और उच्च स्तर के अनुसंधान और स्नातक प्रशिक्षण को प्रोत्साहित किया गया।

टोक्यो विश्वविद्यालय की स्थापना 1877 में हुई थी लेकिन 1886 में शाही विश्वविद्यालयों की एक व्यवस्था कायम की गयी और टोक्यो विश्वविद्यालय टोक्यो शाही विश्वविद्यालय बन गया। राज्य ने एक उपयुक्त व्यवस्था बनाने को अत्यधिक महत्व दिया। दीएत के लिये शिक्षा पर बहुत नियंत्रण रख पाना संभव नहीं था क्योंकि इसे राज्य के प्रशासनिक ढांचे में रखा गया था। इसका यह अर्थ होता था कि शिक्षा भी सम्राट के नियंत्रण में थी। 1883 में, जब यामागाता अरितोमो प्रधानमंत्री था तब उसने एक अध्यादेश जारी करके यह आवश्यक कर दिया था कि बुनियादी शिक्षा कानून में कोई भी बदलाव करने से पहले प्रिवी कौंसिल (सर्वोच्च न्यायालय) की स्वीकृति ली जाये। 1913 तक पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करने का विशिष्ट अधिकार राज्य के हाथों में आ चुका था।

11.4 रूढ़िवादी और शैक्षिक सुधार

शैक्षिक सुधार मेजी राज्य द्वारा एक केंद्र-केंद्रित राजनीतिक ढांचे के निर्माण का अनिवार्य अंग थे और उनमें

विनीत और आज्ञाकारी नागरिक ढालने की इच्छा परिलक्षित होती थी। किन मूल्यों पर जोर दिया जाये, इस सवाल को लेकर एक बहस उठ खड़ी हुई और इस सिलसिले में रूढ़िवादियों और परंपरावादियों ने देशज (जापान के अपने) मूल्यों और विश्वासों पर जोर दिया। अंधाधुंध पश्चिमीकरण की प्रतिक्रिया हुई और मेजी सुधारों का समर्थन कर चुके कई व्यक्तियों ने अब बदलाव की दिशा और तरीके पर सवाल उठाया।

11.4.1 शाही राजाज्ञा

सन् 1890 में शिक्षा पर सम्राट की ओर से एक राजाज्ञा जारी की गयी। इस दस्तावेज में रूढ़िवादी और परंपरावादी तर्क को बहुत स्पष्टता से रखा गया। राजाज्ञा का प्रारूप मोतूदा एकू और नीशिमुरा शिगेकी ने तैयार किया था। मोतूदा सम्राट का कन्फ्यूशियसवादी शिक्षक था। नीशिमुरा भी कन्फ्यूशियसवादी था। इन दोनों ने रूढ़िवादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति दी, जो पश्चिमी तरीकों को पूर्वी नैतिकता के साथ मिलाने के पहले के दृष्टिकोण से मिलता-जुलता था। सम्राट के शिक्षक की हैसियत से मोतूदा कन्फ्यूशियसवादी शिक्षण को हटा कर उसकी जगह नैतिकता पर अमेरिकी और फ्रांसीसी किताबों को लाने के विरुद्ध अभियान चलाता रहा था। मोतूदा अपने तर्क के समर्थन में सम्राट का भी यह कह उपयोग करता था कि इससे सम्राट भी बहुत परेशान था। 1875 की एक राजाज्ञा "शिक्षा के महान सिद्धांत" (क्योगाकूताइशी) में उसने तर्क दिया था कि पश्चिमीकरण के पोषक अपने आप में एक विदेशी सभ्यता ग्रहण करते हैं जिसके मूल्य केवल तथ्यों को एकत्र करना और तकनीक है, इस तरह वे शिष्टता के नियमों का उल्लंघन करते और हमारे पारंपरिक तरीकों को हानि पहुंचाते हैं। उसका मानना था कि जापान को राजभक्ति और पुत्रोचित या पितृवत पवित्रता के अपने मूल्यों की प्रधानता को फिर से जोरदार ढंग से आगे रखना चाहिये।

इस वक्तव्य के बाद ही शिक्षा के केंद्रीकरण में वृद्धि हुई और छात्रों और अध्यापकों को राजनीतिक सभाओं में जाने की मनाही हो गयी। मोतूदा के दृष्टिकोण को शासक अल्पतंत्र के भीतर पूरा समर्थन नहीं मिला। इतो हिरोबूमी संवैधानिक साम्राज्यिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था और वह प्रत्यक्ष शाही राज के पक्ष में मोतूदा के तर्क का विरोधी था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रारंभ में मेराकुशा में रहे, और "सभ्यता और प्रबुद्धता" के लागू किये जाने का समर्थन कर चुके नीशिमुरा शिगेकी ने अब पश्चिमी विचारों द्वारा संशोधित कन्फ्यूशियसवादी विचारों का प्रकाशन शुरू कर दिया था। 1886 में प्रकाशित एक किताब "जापानी नैतिकता पर प्रवचन" में उसने यह मांग की कि उन बुनियादी कन्फ्यूशियसवादी मूल्यों को फिर से स्थापित किया जाये जो जापानी संस्कृति का अभिन्न अंग थे, और इस कन्फ्यूशियसवादी ढांचे को सहारा और मजबूती देने के लिये चुनिंदा पश्चिमी विचारों का उपयोग किया जाये।

सन् 1889 में मोरी की हत्या हो गयी और मोतूदा और नीशिमुरा सम्राट से एक "पवित्र राजाज्ञा" जारी करवाने में सफल रहे। यह राजाज्ञा पहला **डीएत** खुलने से पहले जारी कर दी गयी थी। शाही राजाज्ञा में यह घोषणा की गयी थी :

> "राजभक्ति और पुत्रोचित या पितृवत पवित्रता में सदा एकताबद्ध हमारी प्रजा ने पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी सुंदरता का उदाहरण पेश किया है। यह हमारे साम्राज्य के मूलभूत चरित्र की महिमा है, और इसमें हमारी शिक्षा का स्रोत निहित है। "

आगे इस राजाज्ञा में लोगों को बढ़ावा दिया गया कि वे "जनता की भलाई को आगे बढ़ायें और आम हितों को बढ़ावा दें", संविधान का आदर करें, राज्य के प्रति अपने जीवन अर्पित कर दें और "इस तरह स्वर्ग और पृथ्वी के समवयस्क (या उनके जितने पुराने) हमारे शाही सिंहासन की समृद्धता की रक्षा करें और उसे बनाये रखें।"

यह दस्तावेज रूढ़िवादी विचारों की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति बन गया। इसे स्कूलों और समाज में भी एक पवित्र ग्रंथ की तरह मान दिया जाता था। धीरे-धीरे, जैसे-जैसे पहले निजी दरबारी अनुष्ठान रहे शाही अनुष्ठानों ने राष्ट्रीय अनुष्ठानों का रूप लिया शिक्षा पर राजाज्ञा को श्रद्धा के साथ लिया जाने लगा। 1891 में पर्वों और अवकाशों पर प्राथमिक स्कूलों के अनुष्ठानों के लिए विनियमों में यह प्रावधान रखा गया कि छात्र और स्कूली कर्मचारी शाही चित्र के आगे नमन करें, राजाज्ञा का पाठ करें और राष्ट्रीय गान गायें। सम्राट लोगों को राजभक्त नागरिकों के रूप में बांधने वाला सूत्र था।

11.4.2 रूढ़िवादी तर्क

रूढ़िवादियों में परंपरागत मूल्यों को बनाये रखने के लिए कई तर्क आगे किये गये। दार्शनिक इनोवे तेत्सुजिरो

ने यह दिखाते हुए परंपरा का पक्ष लेने का प्रयास किया कि यह विवेकपूर्ण और आवश्यक थी, लेकिन अन्य लोगों ने इस तरह के तर्कों का विरोध किया। **नीहोन** (जापान) अखबार के संपादक, कुगा कत्सुनान, ने इस विचार को स्वीकारने के विरुद्ध तर्क दिया कि जापान को भी उसी तरह विकास करना चाहिए जैसे पश्चिम ने विकास किया था। उसने इस तर्क की आलोचना की कि विकास के सार्वभौमिक नियम थे और यह तर्क दिया कि इस दृष्टिकोण की वकालत करने वाले यह नहीं समझते थे कि प्रत्येक समाज अपने ही इतिहास और परंपराओं के अनुसार विकास करता है। प्रत्येक राष्ट्र की एक जीवंत संस्कृति थी जो उसके अवाम के रहने और सोचने के ढंग में परिलक्षित होती थी। कुगा की दृष्टि में पुत्रोचित या पितृवत पवित्रता या राजभक्ति के लिये किसी बौद्धिक सफाई देने या शैक्षिक बचाव की आवश्यकता नहीं थी, बल्कि ये तो इसलिये उचित ठहरते थे क्योंकि ये जापान की इतिहास प्रसिद्ध प्रथाएं थीं।

कुगा कत्सुनान ने किसी देश की सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण की महत्ता और आवश्यकता के पक्ष में भी तर्क दिये। किसी राष्ट्र की परंपराएं वह आधार देती हैं जिस पर इसकी जनता को एकताबद्ध किया जा सकता है और ये मूल्य समाज को बांधते और राष्ट्र को मजबूती देते हैं। किसी राष्ट्र को हराने का तरीका केवल ताकत के जरिये ही नहीं होता, क्योंकि अगर कोई राष्ट्र अपनी ऐतिहासिक परंपराएं खो बैठता है तो वह अपनी स्वाधीनता भी गंवा देता है। यह कुगा का एक प्रेरक और मजबूत तर्क था।

राजाज्ञा जारी होने के समय एक ईसाई दार्शनिक, उचिमुरा कांजो, ने दस्तावेज को नमन करने से इंकार कर दिया और उसने धर्म और शिक्षा के बीच टकराव के विषय में एक निबंध लिखा। उचिमुरा का यह तर्क था कि वह एक ईसाई था और वह मनुष्य के सार्वभौमिक भाईचारे में अपने विश्वास को इस विचार से नहीं मिला सकता था कि सम्राट एक दैवीय विभूति था। लेकिन कुगा ने यह तर्क भी दिया कि अगर ईसाई धर्म को स्वदेशी रूप दे दिया जाता है और वह बौद्ध धर्म की तरह जापानी परंपरा का अंग बन जाता है, तब किसी प्रकार का कोई द्वंद्व नहीं होगा। उसे ईसाई धर्म के विदेशी ताने-बाने के कारण उस पर आपत्ति थी।

बुनमे काईका की वकालत करने वालों और रूढ़िवादियों के बीच बहस राजनीतिक शून्य की स्थिति में नहीं चली, बल्कि उस समय भी चल रही थी जब जापान विदेशी ताकतों के साथ अपने संबंधों में समानता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। बकुफु के दौरान थोपी गयी असमान संधियां अभी भी प्रभावी थीं और विदेशियों को कानूनी और आर्थिक विशेषाधिकार प्राप्त थे। मेजी सरकार भी बातचीत के जरिये इन संधियों को समाप्त करने के विषय में अत्यधिक चिंतित थी और इसके लिये उसने एक आधुनिक राष्ट्र की रचना करने का बीड़ा उठाया ताकि वह यह दावा कर सके कि वे पश्चिमी देशों की बराबरी पर थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस संदर्भ में ये चिंतक इस बुनियादी सवाल का जवाब देने का प्रयास कर रहे थे कि सामाजिक प्रगति का क्या अर्थ था। उनमें से अधिकांश इस विचार को स्वीकार करते थे कि प्रगति आवश्यक थी, लेकिन क्या इसका अर्थ यह था कि सभी समाज एक से हो जायेंगे या यह कि प्रत्येक समाज अपने सार को बचाये रखेगा, ये वे सवाल थे जो बहस का विषय थे। बेशक यह बहस की जा सकती है कि किसी समाज का सार क्या है और क्या समय के साथ यह भी विकसित होता और बदलता है।

सेक्योशा नाम की एक संस्था के नेता और नीहॉनजीन (जापानी) पत्रिका के संपादक, मिया केसेत्सुरे, ने राष्ट्रीय सार को बचाने की वकालत की। 1891 में लिखित अपनी सबसे प्रभावशाली किताब 'जापानी लोग: अच्छाई और सुंदरता' में उसने यह तर्क दिया कि दुनिया की सभ्यता का विकास प्रतिस्पर्धा के जरिये हुआ था और प्रत्येक राष्ट्र के पास अपनी विशिष्ट प्रतिभाएं थीं। आज पश्चिमी देश सबसे उन्नत हो सकते हैं लेकिन दुनिया की प्रगति तभी होगी जब दूसरी संस्कृतियां और मूल्य फले-फूलेंगे। मियाके की दृष्टि में अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देना बुनियादी तौर पर दुनिया की प्रगति के लिये काम करने के बराबर था।

मियाके ने सत्य, सुंदरता और भलाई को विश्व सभ्यता के अंतिम लक्ष्य बताया। इस दिशा में जापानी लोग :

- एशिया संबंधी ज्ञान को, जिसका यूरोप में अभाव था, आगे कर सकते थे
- पश्चिमी साम्राज्यवाद से एशिया की रक्षा करके भलाई का प्रचार कर सकते थे, और
- अपने अनूठे सौंदर्य बोध के कारण, जो कि पश्चिमी अवधारणा से भिन्न था, विश्व सभ्यता में योगदान कर सकते थे।

11.4.3 रूढ़िवादियों का प्रभाव

रूढ़िवादियों की स्थिति जनसाधारण में प्रभावशाली थी, और नीतियों पर भी इसका काफी प्रभाव था। उदाहरण के लिये, सरकार नागरिक संहिताओं में संशोधन की प्रक्रिया को चला रही थी, और रूढ़िवादियों के

विरोध ने न केवल नागरिक संहिता (1898) को, बल्कि वाणिज्यिक संहिता (1899) को भी विलंबित कर दिया।

जापानी परंपरा की तलाश और देशज मूल्यों के संरक्षण का महत्व केवल बुद्धिजीवियों और राजनीतिकों की दुनिया तक ही सीमित नहीं था, बल्कि कला में भी इसकी तलाश होती थी। ओकाकुरा तेनशिन ने अर्नेष्ट फेनेलोसा की मदद से जापानी कला में रुचि को फिर से जगाने का प्रयास किया। ओकाकुरा की ललित कला विश्वविद्यालय की स्थापना करने और एशियाई कला का संग्रहण और अध्ययन करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। उसके प्रसिद्ध वक्तव्य ''एशिया एक है'' ने अनेक लोगों को एशियाई एकता के लिये काम करने की प्रेरणा दी। ओकाकुरा और फेनेलोसा पश्चिमी चित्रकला के प्रति समूची आसक्ति को हटाने और अपने समकालीनों की दृष्टि को अपनी कला की सुंदरता और शक्ति को देखने के लिये और अपने सौंदर्यवादी मूल्यों की संपदा के गुणों को सराहने के लिये मोड़ने में सहायक रहे।

शाही संस्था में समाविष्ट मूल्यों के प्रति रूढिवादियों के जुड़ाव को, इतो हिरोबूमी के शब्दों में ''शाही घराने को राष्ट्र की आधारशिला'' के रूप में उपयोग करने की मेजी सरकार की राजनीतिक नीतियों के द्वारा और बल मिला। ओकुमा के निष्कासन के समय, 1881 के संकट के बाद मेजी नेता जनाधिकार आंदोलन की जनतंत्र की राजनीतिक मांगों से चिंतित थे, और उन्होंने विकास और औद्योगीकरण की आवश्यकता को संतुलित करने और साथ ही सामाजिक व्यवस्था का संरक्षण करने की कोशिश की। इतो ने स्वयं यूरोप की यात्रा की और उसे रूढ़िवादी यूरोपीय चिंतकों से प्रेरणा मिली। रूढ़िवादियों के मोतूदा गुट की सम्राट के प्रति रहस्यवादी दृष्टि थी जिसका विकास शाही घराने के जरिये राजभक्ति और पूर्वज पूजा को आपस में जोड़ने वाले होजुमे नोबुशिगे ने किया था।

समाज में भी सम्राट की आलोचना न सहने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी और कुने कुनिताके नामक एक विद्यार्थी को टोक्यो विश्वविद्यालय से इसलिये निकाल दिया गया क्योंकि उसे शिंतो को आदिम ढंग की पूजा बताया था। कई स्कूली किताबों में सम्राट को महिमामंडित किया गया था और 1903 से शिक्षण मंत्रालय ने नैतिकता की किताबों की सामग्री-संग्रहण का काम अपने हाथों में ले लिया जिससे वह किताबों की विषय वस्तु पर नियंत्रण रख सकें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.4.4 समाजवादी दृष्टिकोण

बुनमे काईका के सार्वभौमिक विचारों से जो मोहभंग हुआ उससे पारंपरिक मूल्यों में व्यापक रुचि की स्थिति बनी। लेकिन धीरे-धीरे जब इन विचारों का उपयोग सुधार और बदलाव रोकने के लिये बहानों की तरह होने लगा तो अनेक रूढ़िवादियों, और उदारवादियों का भी, मोहभंग हो गया। 1880 के दशक के अंत में औद्योगिक विकास की प्रगति के साथ श्रमिक संघों और श्रम संगठनों का उदय हुआ और एक समाजवादी आंदोलन खड़ा हुआ। जापानी इतिहासकार, मत्सुजावा कोयो ने तर्क दिया है कि मेजी कालीन जापान के पहले समाजवादी अमेरिका में समाजवाद के अपने अनुभवों से प्रभावित थे। बाद के किनोशिता नाओए जैसे समाजवादी जनाधिकार आंदोलन के विचारों से प्रभावित थे और उनमें से कई पत्रकारिता करते थे। मेजी कालीन समाजवादियों के अंतिम गुट के सदस्यों ने जिनका जन्म 1880 के दशक में हुआ था, क्षेत्रीय आंदोलनों के प्रभाव का सबसे पहले अनुभव किया, इनमें ओसुगी सकाए जैसे समाजवादी शामिल थे।

ये समाजवादी विकास के तनावों और गरीबी की समस्याओं से प्रभावित थे। उन्होंने अमीरों और गरीबों के बीच के अंतरों को कम करने के तरीके ढूंढने का प्रयास किया। वे व्यापक तौर पर इस बात पर सहमत थे कि मेजी पुर्नस्थापना एक प्रगतिशील क्रांति थी जिसने सामंतवाद को उखाड़ फेंका था और स्वतंत्रता और समानता स्थापित की थी। 1903 में कोतोकू शुसुई और प्रसिद्ध **मेजी** समाजवादी कातायामा सेन ने समाजवाद के सार पर किताबें लिखीं। दोनों समाजवादी एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था कायम करने के विषय में चिंतित थे जिससे आर्थिक असमानता दूर हो जाये। इस उद्देश्य से उन्होंने समान वितरण और उत्पादन सुविधाओं के सार्वजनिक स्वामित्व की वकालत की। वे यह भी मानते थे कि इसे शांतिपूर्ण साधनों से प्राप्त किया जा सकता था, और इसलिये उन्होंने प्रत्येक स्थान पर समान मताधिकार कानून का समर्थन किया और आम शिक्षा में वृद्धि के लिये काम किया। अंत में समाजवादियों पर सामाजिक डार्विनवाद का भी प्रभाव पड़ा जो इतिहास को निरंतर वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के रूप में देखता था। फिर भी, उनकी कमजोरी यह थी कि वे केवल एक छोटे वर्ग-मध्यम वर्ग-से अपनी बात कर रहे थे, और वे सामाजिक बदलाव लाने के लिये संगठनों का विकास करने में असफल रहे। जैसे बुनमे काईका की वकालत करने वाले रूढ़िवादियों के आगे तर्क नहीं रख पाये, उसी तरह समाजवादी, ईसाई और शांतिवादी गुट भी अपने विचारों का प्रसार करने में नाकाम रहे। चीन-जापान युद्ध (1894-95) में जापान द्वारा चीन के विरुद्ध अपनी जीत दर्ज कर लेने के बाद तो राष्ट्रवादी विचार और भी तीव्रता के साथ फैले।

11.4.5 अखिल एशियावाद

जापान की राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वाधीनता के संरक्षण के लिये पश्चिमी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध संघर्ष के फलस्वरूप कुछ चिंतकों ने पश्चिम के विरुद्ध एक एशियाई गठबंधन के विषय में सोचा। ओकावा शुमे और किता इक्की जैसे चिंतकों का तर्क था कि जापान को चाहिए कि वह एशिया को स्वतंत्र कराने के लिये दूसरे एशियाई देशों के साथ मिलकर काम करे। उनका मानना था कि केवल इसी तरीके से जापान अपने आपको स्वतंत्र कर सकता था। जापान एशिया का एक अंग था और उसके समान मूल्यों और सांस्कृतिक परंपरा में इसका साझा था। उनमें से अनेक ने कोरियाईयों और चीनियों के साथ मिल कर इन देशों में क्रांति के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिये काम किया। मियाजाकी तोतेन ने सून यात सेन से भेंट की और वह उसके साथ 1911 की चीनी क्रांति के लिये काम करने चीन गया। सून स्वयं मेजी पुर्नस्थापना को चीन के पुनरुद्धार में पहला कदम और 1911 की क्रांति को दूसरा कदम मानते थे।

इन लोगों को, एशियाई एकता की वकालत करने के कारण, अखिल एशियावादी कहा जाता था। इन अखिल एशियावादियों के विचार को सैन्यवादियों ने बहुत आसानी से मोड़ दिया और उसका उपयोग जापानी विस्तारवाद के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिये कर लिया। उनके चिंतन में बहुत दोहरापन था और जब वे एक एशियाई गठबंधन की बात करते थे तो बहुत से लोग इसका यह अर्थ समझते थे कि जापान के नेतृत्व में गठबंधन की बात की जा रही थी।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन से सही (√) हैं, और कौन से गलत (×) निशान लगायें।
   i) मोरी आरिनोरी शिक्षा को विकास के साथ जोड़ने के विरुद्ध था।
   ii) रूढ़िवादी पश्चिमी विचारों के अनुसरण के विरुद्ध थे।
   iii) पश्चिम के विरुद्ध एशियाईयों के गठबंधन के विचार का प्रयोग जापान के हितों को आगे बढ़ाने के लिये किया गया।
   iv) कुगा कत्सुनान का तर्क था कि जापान को पश्चिम के तरीके से ही विकास करना चाहिए।
   v) 1880 के दशक तक जापान में समाजवादी विचारों का प्रचार हो चुका था।

DIKSHANT IAS

2) मेजी सरकार शिक्षा पर अधिक व्यय क्यों करती थी? पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

Call us @7428092240

....

....

....

....

....

3) रूढ़िवादियों के बुनियादी तर्क क्या थे? लगभग 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

11.5 सारांश

मेजी काल के दौरान जापान में अनेक विचारों और विचारधाराओं का विकास हुआ, लेकिन उनमें से कई सरकारी पुरातन पंथ से आगे नहीं बढ़ पाये। इस दौरान राष्ट्रीयता का बोध भी बना। 1870 के दशक में फुंकुजावा युकिची ने लिखा था कि "जापान में सरकार तो थी, लेकिन कोई राष्ट्र नहीं था", क्योंकि उस का तर्क था कि केवल जन्म के आधार पर कोई नागरिक नहीं बन जाता, बल्कि उसके लिये राष्ट्र बोध बनाना आवश्यक था। **मेजी** अल्पतंत्र राष्ट्रभक्ति और राष्ट्र के विचार को शाही घराने से जोड़ता था और जनता को सम्राट के प्रति पुत्रेचित या पितृवत पवित्रता और राजभक्ति के बंधनों के जरिये राज्य से बांधता था।

जनाधिकार आंदोलन से संबंधित नकाए चेमिन और उएकी एमोरी जैसे विचारक जनता को एक जनतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में शामिल करके राष्ट्र बोध बनाना चाहते थे। उनका तर्क था कि जापान की अपनी रक्षा करने की वास्तविक शक्ति केवल एक मजबूत सेना या संपन्न अर्थव्यवस्था में नहीं, बल्कि इसकी जनता की शक्ति और राष्ट्र के प्रति उनकी प्रतिबद्धता में निहित थी।

समाजवादी मेजी पुर्नस्थापना द्वारा लायी गयी राजनीतिक समानता को पूरा करने के लिये आर्थिक असमानता को समाप्त करने की आवश्यकता पर जोर देते थे। उनका मानना था कि जब तक सामाजिक समस्याएं समाज को विभाजित किये रहेंगी, तब तक जनवादी विकास संभव नहीं होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इतिहासकारों ने विभिन्न अंशों में सहानुभूति रखते हुए मेजी अल्पतंत्र के कार्यों का मूल्यांकन किया है। ई. एच. नामर्न का तर्क था कि जिस गति से सुधारों को लागू किया गया उसमें जनवादी और उदारवादी सुधार की उपेक्षा हुई, लेकिन बाद में वह और भी आलोचक हो गया। दूसरी और जार्ज अकिता मेजी अल्पतंत्र को प्रबुद्ध नेताओं के रूप में देखता है जिन्होंने वातावरण की ओर से बाध्य न होने पर भी उदारवादी सुधार लागू किये।

11.6 शब्दावली

बुनमे काईका : सभ्यता और प्रबुद्धता। एक नारे के रूप में इसकी वकालत उन लोगों ने की जो सार्वभौमिक सत्यों की खोज और विज्ञान और बौद्धिकता के प्रसार के पश्चिमी आदर्शों से प्रेरित थे।

राजाज्ञा : सम्राट के नाम पर जारी किया गया आदेश

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 11.2.1 देखिए
2) उपभाग 11.2.1 तथा 11.2.3 देखिए

बोध प्रश्न 2

1) i) × ii) √ iii) √ iv) × v) √
2) सरकार को यह बोध हुआ कि शिक्षा में निवेश जापान के आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक है। उपभाग 11.3.1 देखिए।
3) उपभाग 11.4.2 देखिए।

इकाई 12 जापान में आधुनिकीकरण-III

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 मेजी पुर्नस्थापना एवं अर्थव्यवस्था
12.3 आर्थिक विकास का प्रारंभिक दौर
12.4 मूलभूत संरचना का निर्माण
12.5 मजदूर संघों का विकास
12.6 ग्रामीण क्षेत्र
12.7 मूल्यांकन
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :

- आपको आधुनिक काल से पूर्व की जापान की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं तथा इसके **मेजी** काल में हुए रूपांतरण का ज्ञान होगा,
- आधुनिक औद्योगिक मूलभूत संरचना के निर्माण के विषय में भी आपको ज्ञान होगा,
- **मेजी** सरकार की आर्थिक नीतियों का बोध भी आपको होगा,
- आपको श्रमिक संगठनों तथा फैक्टरी कानूनों के विकास का ज्ञान हो सकेगा,
- आप कृषि में हुए विकास को जान सकेंगे, और
- आप आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहित करने में राज्य की भूमिका को भी जान जायेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.1 प्रस्तावना

मेजी जापान के आर्थिक रूपांतरण ने बहुत अधिक रुचि एवं ध्यान को आकर्षित किया है और इसका कारण यह है कि जापान एशिया के देशों में एक है जो औद्योगीकरण के सबसे सफलता के प्रयास का प्रतिनिधित्व करता है। इस सफलता के कारण विद्वान लोग इस संदर्भ में **मेजी** शासकों द्वारा अपनायी गयी नीतियों तथा कार्यक्रमों का विश्लेषण करने की ओर प्रेरित हुए। इस पर विस्तृत बहस हुई है कि पश्चिमीकरण तथा आधुनिकीकरण क्या दोनों एक समान हैं। लेकिन जापान के उदाहरण से स्पष्ट है कि एक औद्योगिक समाज के लिये पश्चिमी समाज के समरूप होना आवश्यक नहीं है। इससे पूर्व की इकाईयों से आप इस पक्ष के विषय में पढ़ चुके हैं।

यह प्रश्न कि जापान की आधुनिक अर्थव्यवस्था से पूर्व की अर्थव्यवस्था ने जापान के आधुनिक विकास के लिये कैसे योगदान दिया स्वयं में एक जटिल प्रश्न है। इस प्रश्न पर आर्थिक इतिहासकारों के विचार एक समान नहीं है। लेकिन उनमें से अधिकतर यह स्वीकार करते हैं कि आर्थिक संस्थाओं एवं परम्पराओं के व्यापकतर विकास के कारण ही शानदार तीव्रता एवं शीघ्रता के साथ आधुनिक आर्थिक संगठन का निर्माण संभव हो सका।

अंतर्राष्ट्रीय स्थिति ने भी योगदान किया। यद्यपि पश्चिमी साम्राज्यवादी दबाव ने एक संकट की भावना को उत्पन्न किया किन्तु जापान को जो समय प्राप्त हुआ उसका उसने शीघ्रता एवं प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिये प्रयोग किया। प्रौद्योगिकी की प्रचुरता तथा कौशलता को प्रतिबंधित नहीं किया गया और इस तरह से जापान अपने नेताओं को देश के बाहर उचित कौशल एवं साधनों के लिये भेज सका।

अंत में यह भी स्मरण रखा जाना चाहिये कि जापान अपने संसाधनों में काफी कमजोर है, लेकिन उसके पास पर्याप्त कोयले के भण्डार थे और उन्नीसवीं सदी में औद्योगिकीकरण का आधार कोयला ही था।

इस इकाई में **मेजी** पुर्नस्थापना के समय की आर्थिक स्थिति का विवेचन किया गया है और **मेजी** शासकों की नीतियों की व्याख्या भी की गयी है। इस इकाई में कृषि सुधारों के साथ-साथ औद्योगिकीकरण के क्षेत्र में राज्य के द्वारा किये गये प्रयासों का भी विवेचन किया गया है। बैंकों की संस्थाओं तथा विदेशी व्यापार के योगदान का भी विवेचन किया गया है। तेजी के साथ हुए औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप मजदूर संघों के अंतर्गत मजदूर आंदोलन का भी उद्‌भव हुआ। इस इकाई में इस संदर्भ में सरकार की नीतियों का विवेचन किया गया है।

12.2 मेजी पुर्नस्थापना एवं अर्थव्यवस्था

नयी **मेजी** सरकार को तोकुगावा बकुफु से उत्तराधिकार में कई तत्कालिक समस्यायें प्राप्त हुई थीं और इन समस्याओं में सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण समस्या एकत्रित हुए कर्ज की थी। बकुफु की वित्तीय समस्या तथा हान के बढ़ते कर्ज ने तोकुगावा के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस विशाल कर्ज के प्रबंध के साथ-साथ वह कर्ज जो पुर्नस्थापना के युद्धों के कारणवश हुआ इस समय गंभीर समस्या बना हुआ था और नये शासकों को इसका सामना करना पड़ा। कृषि ही इस समय एक मात्र राजस्व का स्थायी स्रोत था और इसी कारणवश सरकार ने कृषि क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित किया। कृषि के कर्ज को कम करने के लिये सैमुराई के करों में कटौती की गई। तोकुगावा शासन के दौरान सैमुराई परिचर राजस्व के 30 प्रतिशत को निजी भत्तों के रूप में प्राप्त करते थे। हान के अंतर्गत दाइम्यो को इदो में बनाये रखने पर खर्च करते थे। इस 20 प्रतिशत की मांग उनके द्वारा इसलिये की जाती क्योंकि इदो में कभी-कभी उपस्थिति देने की प्रथा थी। सरकार ने इन निजी भत्तों को कम करने तथा भूमिकर को सुधारने के लिये तुरंत कदम उठाये। इन निजी भत्तों को सरकारी ऋण पत्रों में या एकमुश्त अदायगी में रूपांतरित कर दिया गया। इस राशि को प्रभावशाली तरीके से और कम किया गया और ऐसा इसलिये किया गया क्योंकि मुद्रा स्फीति में लगातार वृद्धि हो रही थी। इस तरह से सरकार वित्तीय उत्तरदायित्वों का प्रबंध करने में सफल हो पायी। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि इन आर्थिक सुधारों के कारण हथियारबंद विद्रोह फूट पड़े और परंपरागत विशिष्ट वर्ग के बीच भी असंतोष बढ़ा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि सुधार अगला निर्णायक क्षेत्र था। यद्यपि कृषि में सुधारों के कार्य का प्रारंभ 1873 में हुआ किन्तु इसको पूर्ण होने में छः वर्ष का समय लगा। तोकुगावा के समय में भूमि कर उत्पादन पर आधारित था और सैद्धांतिक तौर पर उसकी अदायगी चावल के रूप में की जाती थी। लेकिन सुधारों के साथ कर को भूमि के अनुमानित किये गये मूल्यों के आधार पर नकद अदा किया जाने लगा। राष्ट्रीय कर की दर अनुमानित किये गये भू मूल्य पर 3 प्रतिशत तथा स्थानीय कर राष्ट्रीय कर का एक तिहाई भाग था। अब कर देने वाले भूमि के स्वामी बन गये।

इन उपायों को कुछ ऐसे परिवर्तनों के द्वारा पूर्ण किया गया जैसे कि भूमि के उपयोग पर लगे प्रथागत प्रतिबंधों तथा भूमि सर्वेक्षणों को समाप्त करके पूरा किया गया। सरकार ने यह प्रयास किया कि विद्रोह आदि न हो, लेकिन इसके बावजूद भी विरोध आंदोलन हुए और इन सबमें महत्वपूर्ण वाकायाम मण्ड्ल में घटित 1876 का विद्रोह था। यद्यपि सरकार ने प्रारंभिक स्थिति में कड़ा रुख अपनाया लेकिन दूसरे सैमुराई विद्रोहों के कारण इसके रवैये में कुछ लचीलापन आया और भूमि कर को बाजार मूल्य के 2.5 प्रतिशत तक कम कर दिया गया। इस कमी का तात्पर्य वार्षिक कर में 17 प्रतिशत की कमी होना था।

1874-1881 के बीच के वर्षों में यह राजनीतिक तौर पर एक सफल उपाय था क्योंकि इन वर्षों में विरोध करने की मात्र 99 घटनाएं हुई और इनमें 37 घटनायें ज़मींदारों एवं काश्तकारों के बीच के झगड़े थे। अब कर निर्धारण को समान तथा तर्क संगत बना दिया गया। लेकिन इस प्रणाली से भी ज़मीदारों को ही अधिक लाभ हुआ और ऐसा विशेष रूप से वहां पर हुआ जहां परम्परागत भूमि अधिकारों को स्थायी तौर पर काश्तकारों को हस्तांतरित नहीं किया गया। इसके कारण जमींदारों एवं काश्तकारों के बीच झगड़ों में भी वृद्धि हुई। लेकिन सिदनेय क्राकौर के द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि कर का नया दर उत्पादन के भाग के रूप में पुराने कर से अधिक न था और कुछ मामलों में वह वास्तव में कम था।

> "भूमि कर का मुख्य प्रभाव यह हुआ कि अब भूमि ऐसी पूंजी सम्पदा हो गई जिसको बाजार में बेचा एवं खरीदा जा सकता था।"

12.3 आर्थिक विकास का प्रारंभिक दौर

1868 से 1885 के बीच के वर्ष ऐसा समय था जबकि सरकार ने आर्थिक विकास के लिये एक व्यवस्था को कायम करने तथा मूलभूत कार्य की नींव रखने का प्रयास किया। **मेजी** सरकार को उत्तराधिकार में न केवल विशाल कर्ज प्राप्त हुआ था बल्कि कुछ नयी निर्मित फैक्टरियां एवं जहाज बनाने के कारखाने भी प्राप्त हुए। **मेजी** नेताओं की राजनीतिक आवश्यकताओं ने उनको रक्षा उद्योगों को विकसित करने के लिये बाध्य किया जबकि वे अपने राजनीतिक नियंत्रण को स्थापित कर ही रहे थे। **तोकुगावा** के अंतिम वर्षों में **बकुफु** के साथ-साथ बहुत से **हानों** ने भी अपने लोहे के कल-कारखानों को मोटे-तौर पर स्थापित करना प्रारंभ कर दिया था। उदाहरण के लिये, हिजैन के **हान** ने 1850 में लोहा पिघलाने की एक बड़ी भट्टी की स्थापना की थी और इसके फलस्वरूप यह अपने द्वारा उत्पादित लोहे से तोप बनाने में सफल हो सका।

इसी तरह से जहाज निर्माण के क्षेत्र में भी कुछ प्रगति हो चुकी थी। बकुफु तथा कुछ हानों ने भाप से चालित जहाजों का निर्माण कर लिया था। कोयला खानों का आधुनिकीकरण किया गया और सूत कातने वाले कारखानों का भी निर्माण हुआ। मेजी सरकार ने इस थोड़े विकसित आधार को निर्मित करके विकास की आधारशिला को तैयार किया। सरकार को विदेशी व्यापार से होने वाली आमदनी में भी कमी का सामना करना पड़ा। इसलिये इस सरकार ने उस मूलभूत संरचनात्मक आधार का निर्माण किया जिससे जापानी उत्पादन को प्रोत्साहित किया जा सके। नेतागण इसके लिये भी सतर्क थे कि कहीं जापान विदेशी सामान के लालच में न फंस जाये। पूंजी खर्च के लिये व्यवसायकर्त्ताओं को स्वयं ही भारी प्रयास करने होते थे और इसलिये सरकार इस आशा के साथ आयात एवं कारखानों को स्थापित कर रही थी कि इससे नयी प्रौद्योगिकी तथा संगठनात्मक तौर-तरीके लागू होंगे।

उदाहरण के तौर पर, 1872 में तोमिओका में रेशम को कीड़ों से उत्पन्न करने वाले कारखाने को स्थापित किया गया। सरकार के ये अधिकतर कारखाने ठीक प्रकार से कार्य न कर सके लेकिन इसी के साथ-साथ उन्होंने प्रयोगशालाओं का कार्य किया और कृषि को सबसे नयी प्रौद्योगिकी तथा उपायों के संपर्क में लाया जा सका। सरकार ने इस तरह के व्यवसायों पर 1868-1881 के वर्षों में लगभग 3 करोड़ 64 लाख येन खर्च किये। इन कारखानों ने निजी कारखानों को कम मूल्य पर माल उपलब्ध कराया और इस तरह से व्यवसायी लोग पूंजीवाद के विकास की आधारशिला को सफलतापूर्वक रख सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर को लेकर वाद-विवाद बना हुआ है यद्यपि यह क्षेत्र वृद्धि एवं विकास के लिये निरंतर राजस्व को उपलब्ध कराता रहा। काजूशी ओखावा ने अनुमान लगाया है कि 1878-1882 के बीच के वर्षों में कृषि उत्पादन का वार्षिक मूल्य वर्तमान दामों में 43 करोड़ 20 लाख येन था।

1874 में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार उत्पादन का 60 प्रतिशत कृषि से, 30 प्रतिशत औद्योगिक सामानों से तथा शेष खान, मछली पालन एवं जंगलों जैसे उद्योगों से प्राप्त होता था। कृषि के क्षेत्र में चावल मुख्य फसल थी। यह बड़ा ही रुचिकर है कि चावल से तैयार होने वाली शराब सेक तथा अन्य तैयार की गयी भोजन सामग्री औद्योगिक उत्पादन का 42 प्रतिशत थी और शेष धागा एवं कपड़ा था।

इस सर्वेक्षण से पुर्नस्थापना के समय की अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताओं का ज्ञान होता है और इससे यह भी स्पष्ट है कि पश्चिमी राष्ट्रों की तुलना में यह अभी भी अविकसित अर्थव्यवस्था थी।

1881 में मत्सुकाता मसायोगी वित्त मंत्री बना और उसको उस मुद्रा-स्फीति का हल ढूंढना था जिसका सामना जापान को करना पड़ रहा था। इसका कारण यह था कि जहां एक और आमदनियों में कमी हो रही थी वहीं दूसरी और सोना-चांदी का निकास भी हो रहा था। मत्सुकाता ने सोना-चांदी में वृद्धि करते हुए मुद्रा के संचरण में कमी की। इसका प्रभाव यह हुआ कि इसने व्यवसायिक लोगों की स्थिति को और मजबूत किया और संसाधनों को आधुनिक क्षेत्र की ओर अग्रसर कर दिया। अर्थव्यवस्था में मंदी ने समाज के कमजोर लोगों को बहुत गहराई से प्रभावित किया और काश्तकारों तथा छोटे किसानों की हालत और खराब हो गई।

रूपान्तरण तथा हान के कर्जों को समाप्त करने (यह कर्ज अनुमानतः 4 करोड़ 70 लाख येन का था) जैसे उपायों ने सरकार तथा ग्रामीण धनी लोगों के हाथों में निवेश करने के लिये संसाधनों को हस्तांतरित करने में मदद की। इसने अर्थव्यवस्था की वृद्धि के लिए मूल ढांचे को सुनिश्चित कर दिया। यहां पर जिस बात पर बल दिया गया है वह यह है कि **तोकुगावा** अर्थव्यवस्था के अंतर्गत निश्चय ही कुछ ऐसी संस्थायें थी जिनके कारण मेजी शासकों के लिए आधुनिक अर्थव्यवस्था को निर्मित करना संभव हो सका। लेकिन जामेज नाकामूश जैसे विद्वानों का कथन है कि इस समय विकास दर कोई विशेष अधिक न थी। इस तरह के

कथनों का सुझाव है कि मेजी शासक अधिक सफल इसलिए हो सके क्योंकि वे खपत को सीमित कर सके और द्वितीय विश्व युद्ध तक इसको कम बनाये रखा गया।

12.4 मूलभूत संरचना का निर्माण

अर्थव्यवस्था में हुई वृद्धि का मुख्य कारण मूलभूत संरचना के निर्माण में सरकार के द्वारा किया गया विशाल खर्च था। 1872 में संयुक्त राज्य अमेरीका के आधार पर राष्ट्रीय बैंक अधिनियम बनाया गया और इसके कारणवश 150 राष्ट्रीय बैंकों की स्थापना हुई। कुछ निजी बैंक भी थे और प्रारंभ में पूंजी का स्रोत रूपांतरण था। ई.एच. नौरमैन के अनुसार, ‘‘सामंतीय जमींदार अब क्षेत्रीय जमींदार न रह गये थे और न वे किसानों से अपनी आमदनी को प्राप्त करते थे, बल्कि वे अब रूपांतरण के बल पर वित्तीय रईस बन गये थे। वे नई पूंजी को बैंकों, स्टॉकों, उद्योगों या भू-सम्पत्तियों में निवेश कर रहे थे और इसलिये वे छोटे वित्तीय अल्पतंत्रों में शामिल हो गये।’’ धीरे-धीरे ग्रामीण धनी एवं व्यवसायी लोगों का इस क्षेत्र में प्रभुत्व कायम हो गया। 1900 तक हाइपोथिक बैंक, औद्योगिक बैंक आदि इस तरह के कई बैंक थे। मेजी सरकार की सलाह पर बड़े वित्तीय घरानों ने भी त्सूशो कैश (वाणिज्यिक कम्पनियां) एवं क्वाजे कैश (विनिमय कम्पनियां) का गठन किया। इन कैशों को त्सूशोशि (वाणिज्यिक ब्यूरो जिसकी स्थापना 1869 में की गई थी) के द्वारा संचालित किया जाता था। बैंकिंग तथा ऋण पूंजी की आपूर्ति काफी हद तक राज्य द्वारा की जाती थी। मेजी सरकार ने इस अवसर का उपयोग ऐसे उद्योगों को विकसित करने के लिये किया जिनमें विशाल पूंजी निवेश की आवश्यकता थी। यहां पर यह उद्धृत करना उचित होगा कि पूंजी संचयन ने औद्योगिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 19वीं सदी के अंत तक ऋणों पर ब्याज दर 12 से 18 प्रतिशत तक थी जबकि जमा पूंजी पर यह दर 7 से 8 प्रतिशत थी।

परिवहन एवं संचार को भी बहुत महत्व दिया गया। प्रथम रेलवे लाइन का निर्माण टोकियो से योकोहामा तक किया गया और 1881 तक जापान में मात्र दो सौ मील लम्बी रेलवे लाईन थी। इस क्षेत्र में सरकार ने निजी निवेशकर्ताओं को उनके द्वारा निवेश की गई राशि पर गारंटी देकर प्रोत्साहित किया। उदाहरण के तौर पर, जापान में 1903 तक कार्य करने योग्य रेलवे लाइन की लम्बाई 4,500 मील थी और इस रेलवे लाईन का 70 प्रतिशत निर्माण निजी कम्पनियों के द्वारा किया गया था। 1906 में रेलवे राष्ट्रीयकरण अधिनियम के द्वारा 17 कम्पनियों का अधिग्रहण कर लिया गया और शाही रेलवे कम्पनी को अदा की गई राशि अन्य सभी औद्योगिक कम्पनियों को अदा की गई कुल राशि से कहीं अधिक थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरकार ने जहाज निर्माण के क्षेत्र में देशी व्यवसायिक कम्पनियों को प्रोत्साहित करने के लिये चुनिन्दा छूटों की नीति का अनुसरण किया। प्रारंभ में इवास्की यातारो की मित्सुबिशी कम्पनी को विशाल छूट प्रदान की गई और इसने प्रभावशाली ढंग से विदेशी प्रतिद्वंद्विता का सामना किया। लेकिन शीघ्र ही इस स्थिति में परिवर्तन हो गया और 1885 में एन.वाई.के. (निपोन युजेन कैश) की स्थापना की गई और शीघ्र ही यह एक बड़ी कम्पनी बन गई। 1883 से 1913 तक सरकार ने इस कम्पनी को विशेष छूटें प्रदान की जिससे कम्पनी अपने जहाज़ी बेड़े का विस्तार कर सकी और जापानी बंदरगाहों तक उनके जहाज 50 प्रतिशत टन भार पहुंचाने लगे। जहाज निर्माण उद्योगों के विकसित होने के फलस्वरूप इंजीनियरिंग तथा दूसरे संबंधित कारीगरी के कार्यों का विकास भी हुआ।

ठीक इसी तरह से विद्युत शक्ति के उत्पादन में वृद्धि हुई और जल विद्युत निर्माण तथा उच्च तनाव को परिवर्तित करने के क्षेत्र में तकनीकी विकासों के कारण विद्युत उत्पादन में वृद्धि हुई। सस्ते श्रम तथा सस्ते पूंजी मूल्यों के कारणवश छोटी कम्पनियों ने सस्ते विद्युत मोटरों को खरीदा और इसकी वजह से उनके उत्पादन में वृद्धि हुई।

जापान का आर्थिक परिदृश्य रूपांतरित होने लगा। आर्थिक इतिहासकार नाकामूरा तक फूसा प्रारंभिक काल का विवरण देते हुए कहते हैं कि आधुनिक उद्योग परम्परागत उद्योग के अथाह समुद्र में दूर-दूर बसे द्वीपों की भांति होता है। लेकिन एक बार इन नये विकास को लागू कर देने के फलस्वरूप धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ। 1883-1913 के मध्य श्रम शक्ति 2 करोड़ 20 लाख से बढ़कर 2 करोड़ 60 लाख हो गई। रोजगार अभी भी परम्परागत क्षेत्र में ही अधिक था और इसके अंतर्गत 60 प्रतिशत मजदूर कार्यरत थे। कृषि उत्पादन में 20 प्रतिशत तथा दूसरे 40 प्रतिशत के लिये अन्य दूसरे क्षेत्र थे।

कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक क्षेत्र का विकास अभी भी मध्यम गति से हो रहा था और परम्परागत क्षेत्र ने ही जापान की अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। इसी तरह से कृषि क्षेत्र

में भी खेतों के आकार में कम ही परिवर्तन हुआ था। एक कृषि अधीन औसतन एक हैक्टर भूमि होती थी और इस काल में यही स्थिति बनी रही। फिर भी भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा और 1885 से 1914 तक काश्तकारी 35 से 45 प्रतिशत तक बढ़ी। जमींदारों की संख्या तथा शक्ति में वृद्धि व्यापार एवं राजनीति में उनकी बढ़ती भूमिका के द्वारा स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होती है।

कृषि विकास एक और अन्य वाद–विवाद का विषय है। लेकिन यहां पर एक संकेत यह मिलता है कि उत्पादन का सकल कृषि मूल्य 17 प्रतिशत औसत वार्षिक दर से 1934-36 की स्थिर कीमतों के आधार पर बढ़ा। यह विकास रसायनिक खादों, मशीनों तथा श्रम शक्ति में वृद्धि तथा तकनीकी परिवर्तनों के कारण हुआ। ग्रामीण सहकारी समितियों के विकास ने भी नये विचारों को फैलाने के साथ-साथ बाजार प्रणाली को सुधारने में योगदान दिया। यहां पर यह भी जानना आवश्यक है कि जापान की कृषि को यूरोपीय तकनीक के आयात करने के प्रयास से कोई लाभ नहीं हुआ। ये प्रयास असफल रहे लेकिन जापान में परम्परागत छोटे स्तर पर कृषि का ही चलन रहा और इसमें सुधार लाए गए इससे जापान की कृषि व्यवस्था को लाभ पहुंचा।

कृषि में विकास की दर कुछ भी रही हो, चाहे वह उतनी उच्च रही हो जैसा एक समय समझा जाता था किन्तु ध्यान देने, योग्य बात यह है कि मांग के अनुरूप ही खाद्य पदार्थों का उत्पादन होता रहा और कभी भी इसकी कमी नहीं रही। 1880 में कृषि में 1 करोड़ 70 लाख श्रमिक थे और उस समय जापान की कुल जनसंख्या 3 करोड़ 60 लाख थी। किन्तु 1920 तक कृषि में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या में गिरावट आयी और वह 1 करोड़ 40 लाख रह गई। परन्तु इस समय तक कुल जनसंख्या 5 करोड़ 50 लाख तक बढ़ गई। उपनिवेशों से खाद्य पदार्थों का आयात नहीं किया जाता था और जो कुछ होता भी था, वह नगण्य था। अन्य विकासशील देशों से भिन्न, जापान में आमदनी में बढ़ोत्तरी होने पर भी खाने की आदतों में परिवर्तन नहीं हुआ। आमदनी की असमानता होने के कारण धनी लोग धन बचत करने में योगदान करते थे और गरीबों के बीच खपत में कमी आती।

विदेशी व्यापार ने भी उस समय प्रारंभिक तौर में निर्णायक भूमिका अदा की जबकि वह कुल व्यापार का 6 प्रतिशत था, लेकिन 1905 में वह 28 प्रतिशत हो गया। प्रारंभ में रेशम निर्यात की एक महत्वपूर्ण वस्तु थी, लेकिन धीरे-धीरे निर्यात में कृषि पदार्थों में कमी होने लगी। यद्यपि अभी भी वे कुल उपभोग वस्तुओं के निर्यात में एक चौथाई का योगदान कर रहे थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

परम्परागत उद्योग ने माल की आपूर्ति के साथ-साथ पूंजी निर्माण तथा निर्यात में भी योगदान दिया। प्रारंभ में **मेजी** सरकार ने व्यापार संगठनों को संगठित करने का प्रयास किया और बाद में इस सरकार ने उन उद्योगों को प्रोत्साहित करने पर अधिक ध्यान दिया जो नयी तकनीक का प्रयोग कर रहे थे। लेकिन 1879 में उस समय से जबकि ओसाका चेम्बर ऑफ कामर्स ने परम्परागत व्यापार को संगठित करने के प्रयास किये, इस क्षेत्र को संगठित करने के लिये बहुत से कानूनों को बनाया गया। वास्तविकता यह है कि यह क्षेत्र विभिन्न प्रकार की मांगों की आपूर्ति करता था और सस्ती विद्युत एवं परिवहन को प्राप्त करने के साथ-साथ यह क्षेत्र आधुनिक क्षेत्र में उत्पादित सस्ती एवं उच्च गुणवत्ता की चीजों के समक्ष ही उत्पादन करंता था। अन्त में, परम्परागत तौर पर उत्पादित किये गये उत्पादन निर्यात बाजार में भी सफलता पूर्वक प्रतियोगिता करते थे। इसलिये सिदनेय क्राकौर यह तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जापान में औद्योगिक विकास वास्तव में परम्परागत क्षेत्र का ही विकास-था।

कुछ मायनों में जापान का अनुभव पश्चिमी देशों से भिन्न प्रकार का था। पश्चिमी देशों में औद्योगिकीकरण सामान्य तौर पर छोटे उद्योगों जैसे कि कपड़ा, खान एवं धातुकर्म रसायनों से प्रगति करता हुआ विशाल उत्पादन माल के रूप में हुआ। लेकिन जापान में स्थिति इससे कुछ भिन्न थी और जापानी रेलवे का विकास, लौह तथा स्टील उद्योग से पूर्व ही हो गया क्योंकि आवश्यक सामग्री एवं कल पुर्जों का आयात किया गया। कपड़ा उद्योग की स्थापना ठीक उसी समय हुई जिस समय लौह एवं स्टील, जहाज निर्माण आदि का निर्माण प्रारंभ हुआ। दूसरे शब्दों में इन उद्योगों की स्थापना इस कारण से हो पाई कि राज्य ने स्वयं विशेष छूटों एवं संरक्षण के माध्यम से इनके उत्तरदायित्व को वहन करने की इच्छा रखी। आर्थिक सहायता देने का आधार राष्ट्रीय हित होते थे न कि योजना से होने वाला आर्थिक लाभ।

1896 ई. में जहाज निर्माण प्रोत्साहन अधिनियम इसका जीवांत उदाहरण है कि राज्य किस तरह राष्ट्र-निर्माण को प्रोत्साहित करना चाहता था। इस अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि अगर स्टील भाप जहाज का निर्माण पूर्ण रूपेण से अपने ही कारखाने में किया जाता है तब 700-1000 टन के जहाज पर छूट 12 येन प्रति टन के हिसाब से दी जायेगी और 1000 टन या इससे अधिक के जहाज पर छूट 20 येन प्रति टन होगी। यदि

जहाज के इंजन का निर्माण जापानियों ने किया है तब प्रति अश्वशक्ति पर 75 येन अतिरिक्त सहायता के तौर पर दिया जायेगा। विदेशों में निर्मित जहाजों के साथ प्रतियोगिता करने में यह पर्याप्त न था और इसी कारण समुद्र परिवहन छूट अधिनियम में 1899 में संशोधन किया गया तथा इस अधिनियम के द्वारा विदेशी निर्मित जहाजों की छूट को घरेलू निर्मित जहाजों के मुकाबले में कम करके आधा कर दिया गया और इससे घरेलू व्यवसाय में तेजी से वृद्धि हुई।

अगर आधुनिक क्षेत्र के विकास का अध्ययन किया जाये तब हम स्पष्ट तौर पर देखते हैं कि इसका घनिष्ठ संबंध सैनिक मांगों से था। जब कभी सैनिक खर्च में बढ़ोत्तरी होती तब आधुनिक क्षेत्र में वृद्धि होती और ऐसा चीन-जापान एवं रूस-जापान युद्धों के समय हुआ। डब्लू.डब्लू. लौकवूड जैसे विद्वानों ने इसे धन की निकासी का नाम दिया लेकिन कोजो यामामूरा जैसे विद्वानों ने तर्क दिया कि इसने पश्चिमी तकनीकी एवं कौशलता को जापान में फैलाने में मदद की।

बोध प्रश्न 1

1) जापान की अर्थव्यवस्था पर भू-कर के प्रभावों की विवेचना कीजिये। उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) जापान के प्रमुख क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण के लिए सरकार ने जो प्रयास किये उनकी विवेचना कीजिये। उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) क्या जापान के औद्योगिकीकरण का अनुभव पश्चिमी देशों के अनुभव के समान था? उत्तर 10 पंक्ति

....

....

....

12.5 मजदूर संघों का विकास

प्रथम मजदूर संघ की स्थापना 1890 के आस पास सान फ्रांसिस्को में तकानो फूसातारो के द्वारा की गई थी और जब वह वापस जापान लौटा तब उसने 1897 में एक अन्य श्रमिक संघ की स्थापना की। तकानो सेमुल गोम्पर्स के विचारों से प्रभावित था और उसने सभी उग्रवादी मांगों को मानने से इंकार कर दिया और उसने समाजवाद का भी विरोध किया। तकानो का कहना था धन में असमानता एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और इसका अन्त मात्र उदार एवं धीरे-धीरे सुधारों के द्वारा ही संभव है।

मजदूर संघ एवं समाजवादी आंदोलन में दूसरा महत्वपूर्ण नेता कतयामा सेन था। कतयामा सेन ने अपने जीवन का प्रारंभ एक ईसाई समाजवादी के रूप में किया और उसने गरीबों के बीच कार्य किया तथा उसने अपने इस अनुभव के कारण टोकियो में मजदूरों को संगठित किया। 1897 में उसने मजदूर संघों के प्रोत्साहन के लिये एक संस्था की स्थापना की।

ओई केन्तारो नाम का एक उग्रवादी विचारक ओसाका क्षेत्र में सक्रिय था। उसने व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों, रात्रि स्कूलों तथा विशेष बैंकों तक की स्थापना की। उस समय जापान में यह महसूस किया जा रहा था कि श्रमिकों की स्थिति को सुधारने के लिये कुछ सुनिश्चित कदमों को उठाया जाना चाहिए। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये न केवल उनको संगठित करना पर्याप्त था बल्कि उनकी शिक्षा तथा भौतिक तौर पर अच्छे जीवन के लिये सुविधाओं को जुटाने की भी आवश्यकता थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रारंभिक मजदूर आंदोलन के नेता अपने विचारों एवं कार्यक्रमों में सामान्य तौर पर उदार थे और वे सौहार्दता एवं सहयोग के साथ कार्य करने पर बल देते थे। लेकिन कतयामा का कहना था कि ऐसे सामन्तीय संबंध जो श्रमिकों तथा पूंजीपतियों के बीच के संबंधों को नियंत्रित करते हैं, उनका निश्चय ही अन्त होना चाहिये। उनकी उदारता के बावजूद सरकार ने उनके आंदोलन का तीन वर्षों के अंदर ही दमन कर दिया और इस कार्यवाही के कारण ये नेतागण यह सोचने के लिये बाध्य हुए कि उनको राजनीतिक तौर पर कार्यवाही करनी चाहिये।

समाजवादी आंदोलन बुद्धिजीवियों के बीच शक्ति एवं प्रभाव प्राप्त कर रहा था। 1901 में एक समाजवादी दल का गठन किया गया और इसको भी तुरन्त प्रतिबंधित कर दिया गया। जैसा कि पहले ही उद्धृत किया जा चुका है कि 1900 के शांति बनाये रखने के कानून के साथ-साथ दूसरे प्रशासनिक एवं नागरिक नियमों, जैसे सरकार के दमनात्मक विधानों का प्रयोग मजदूर संगठनों के विकास को कुचलने के लिये किया गया। सरकार की नीति के कारण श्रमिक आंदोलन कुछ समय के लिये कमजोर पड़ गया लेकिन इसी के साथ-साथ उनके उग्रवाद में इसने बढ़ोत्तरी की और बहुत से श्रमिक नेता वर्ग संघर्ष की वकालत करने लगे।

1904-5 का रूस-जापान युद्ध जापान के आर्थिक इतिहास में महत्वपूर्ण विभाजन रेखा है। ठीक इसी समय से लौह एवं स्टील, कोयला, धातु खनन्, आदि क्षेत्रों का विकास शुरू हुआ और जापान ने भी विदेशों में अपनी विस्तारवादी नीति का अनुसरण अधिक ताकत के साथ किया। आर्थिक विकास ने जहां एक ओर उद्योग के क्षेत्र में झगड़ों में वृद्धि की वहीं पर ग्रामीण क्षेत्रों में किसान विद्रोहों में भी वृद्धि हुई।

1900 से 1910 के वर्षों में मजदूर आंदोलन का और अधिक ताकत से दमन किया गया और ऐसा बहुत से दमनात्मक कानूनों के अस्तित्व में होने के कारण हो सका। इस दमन की बदौलत ही उस हिंसा में वृद्धि हुई जिसकी अंतिम परिणति 1910 में एशिओ ताम्र खान की घटना के रूप में हुई। ये खानें निक्को के पास ही

स्थित थी और निक्को वातारसे नदी के मुख्यालय पर स्थित है। तांबा एक महत्वपूर्ण धातु थी और खानों को, पर्यावरण संबंधी प्रदूषण की ओर कोई ध्यान दिए बिना ही व्यापक तौर पर विकसित किया गया। लेकिन जंगलों के काटे जाने के कारण नदी के पानी संग्रहण क्षेत्र में बाढ़ ने 1896 में भयंकर तबाही की ओर हजारों घर बर्बाद हो गये। इसी के कारण इन खानों का विरोध किया गया और इस तरह से खान, **मेजी** औद्योगिक विकास के नकारात्मक स्वरूप का प्रतीक हो गई। फरवरी 1909 में एशिओ खान के लगभग 1200 श्रमिक बेहतर कार्य करने की शर्तों तथा बेहतर मजदूरी के लिये हड़ताल पर चले गये।

मेजी सरकार ने दोहरी नीति का अनुसरण किया। जहां एक ओर निर्दयी होकर दमन किया गया वहीं पर दूसरी ओर श्रमिकों के कार्य करने की शर्तों को बेहतर करने के प्रयास भी किये गये जिससे कि सामाजिक अव्यवस्था को कम किया जा सके। सरकार ने तुरंत, समाजवादी संस्थाओं पर प्रतिबंध लगा दिया। यहां पर यह देखना महत्वपूर्ण है कि कीड़ों का अध्ययन करने से संबंधित एक सोसाइटी पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया और ऐसा इसलिये किया गया क्योंकि इसमें आशंकायुक्त शब्द सोसाइटी (शाकाय) विद्यमान था और जिसका तात्पर्य समाजवाद समझा जाता था।

नौकरशाही ने काम करने की परिस्थितियों का विश्लेषण जल्दी से जल्दी 1882 में शुरू किया और उस समय मात्र पचास फैक्ट्रियां विद्यामान थीं। फैक्ट्री के अंदर जिस आवश्यक कम से कम स्तर को बनाये रखा जाये उसकी रिपोर्ट एवं अध्ययन से स्पष्ट था कि उनको भी कानून में रूपांतरित्त नहीं किया गया था। प्रथम फैक्ट्री कानून को व्यापारिक घरानों के विरोध के बावजूद 1911 में पारित किया गया लेकिन इस कानून में खामियों को छोड़ दिया गया और उद्योग को इसको अपरिहार्य तौर पर लागू करने से पूर्व काफी समय मिल गया।

12.6 ग्रामीण क्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले रूपांतरण में अधिक रुचि ली गई। मेजी भू-बन्दोबस्त में उन परम्परागत परिपाटियों तथा रीतियों को हटा दिया जिसने समय पर किसान को संरक्षण प्रदान किया था और अब वे जमींदारों के दबावों में और अधिक आ सकते थे। पट्टेधारी अधिकारों को किसी भी समय निरस्त किया जा सकता था और जमींदारों के सम्पत्ति अधिकारों पर कोई सीमा न थी। यही वह कारण था जिससे प्रारंभिक वर्षों में पट्टेधारी के अधिकारों को लेकर झगड़ों में वृद्धि हुई। यद्यपि भूमि कर को 3 प्रतिशत से कम करके 2.5 प्रतिशत कर दिया गया था, लेकिन काश्तकारों के वित्तीय उत्तरदायित्वों में कोई कमी न आयी थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1870-1880 के वर्षों में बहुत से काश्तकारी झगड़े अनभिज्ञता के कारण सामने आये क्योंकि पुर्नस्थापना के समय काश्तकारों के विभिन्न स्तर विद्यमान थे और उनका धीरे-धीरे प्रचलन समाप्त हो गया। अधिकतर काश्तकारों ने अनेकों जमींदारों से भूमि को किराये पर प्राप्त किया था ताकि वे अपने जोखिम को कम कर सकें। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों पर नियंत्रण स्थापित किया जा रहा था। इसी कारण से जमींदारों ने रेशम के धागे के उत्पादन जैसे ग्रामीण उद्योगों को अपना लिया। वे महाजनी का कार्य भी करते थे। ऐन वासवो का तर्क है कि जमींदार ग्रामीण समाज में अभिजात थे और 1900 तक उन्होंने समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

सरकार ने जमींदारों को अपनी भूमि को सुसंगठित करने के लिये सक्रिय समर्थन दिया और ऐसा इसलिये किया गया जिससे कि सिंचाई तथा जल-निकास की बेहतर सुविधाओं को मुहैया कराया जा सके। काश्तकार लोग शहरों में बेहतर जीवन स्तर की ओर आकर्षित हुए क्योंकि वहां पर मजदूरी अधिक थी और इसके कारण कृषि में श्रमिकों की कमी हो गई। किन्तु जमींदारों के लिये स्वयं खेती करने की अपेक्षा भूमि को पट्टेदारों को देना ही अधिक लाभदायक था। सरकार के लगातार बढ़ते खर्च के कारण अब सार्वजनिक कार्यों एवं शिक्षा का उत्तर दायित्व स्थानीय सरकारों का हो गया। स्थानीय सरकारों को अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त कर लगाना पड़ा जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में तनाव का एक अन्य स्रोत पैदा हो गया।

ग्रामीण क्षेत्रों की समस्या को कम करने के लिये सरकारी नौकरशाही ने ग्रामीण सुधार आंदोलन का प्रारंभ किया। यह उस कार्य की ही एक निरंतर कड़ी थी जिसको 1870 के वर्षों में होतोकुशा या रिपेईग वरच्यू सोसाइटी ने किया था। इन सौसाइटियों का गठन जमींदारों के अधीन किया गया और ये 18वीं सदी के कृषि सुधारक निनोमिया सोन्तोकू के उचित उपदेशों पर आधारित थीं। उन्होंने जहां एक ओर उचित सदाचार को विकसित करने के प्रयास किये वहीं पर उन्होंने कृषि में भी व्यवहारिक सुधारों को करने का

प्रयास किया। नौकरशाही में इस तरह के दृष्टिकोण के कारण अनेक कानून पारित किए गए जैसे औद्योगिक सहकारी अधिनियम 1899 को लागू कर दिये जाने पर साख, उपभोक्ता बाजार तथा उत्पादकों की सहकारी समितियों की स्थापना को प्रोत्साहना प्राप्त हुआ। सरकार का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायित्व की परिस्थितियों को लागू करना था क्योंकि जहां एक ओर यह राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिये अति महत्वपूर्ण था वहीं पर सामाजिक स्थायित्व के लिये भी। वे राष्ट्रीय वफादारी एवं देश शक्ति को प्रोत्साहित करने वाले रास्तों की तलाश कर रहे थे।

1908 में शाही आज्ञा पत्र (बोशिन शोशो) के द्वारा जापानी जनता से कड़ी मेहनत तथा सहयोग की अपील की गई जिससे कि उनके प्रयासों के द्वारा "हमारे साम्राज्य की बढ़ती सम्पन्नता को सुनिश्चित किया जा सके।" सरकार ने सामूहिक प्रयासों के इन विचारों के प्रसार के लिये युवक संगठनों एवं सैनिक ऐसोसिएशनों का उपयोग किया। यह सामूहिक प्रयास "समाज की सुरक्षा को संरक्षण" प्रदान करेगा।

12.7 मूल्यांकन

मेजी सरकार ने औद्योगिक मूलभूत ढांचे को निर्मित करने में न केवल संसाधनों को उपलब्ध कराया बल्कि सुनिश्चित आर्थिक नीतियों के साथ प्रभावशाली विकास को जारी रखा। सरकार ने वित्तीय व्यवस्था को रूपांतरित कर दिया तथा इसके पास ज़ापान के सकल राष्ट्रीय उत्पादन को औसतन 14 प्रतिशत था। धन के इस स्रोत की बदौलत यह अपने विकास के कार्यों को लगातार करता रहा। सरकार की कर लगाने की नीति खपत को सीमित करने तथा बचत को प्रोत्साहित करने की थी।

सरकार के खर्च का एक बड़ा भाग सैनिक तंत्र के निर्माण पर खर्च होता था। 1880 के दशक में ये खर्च 18 प्रतिशत के आस-पास था। 1890-1900 तक ये खर्च 34 प्रतिशत तक बढ़ गया तथा 1901 से 1910 तक सैनिक खर्च में 41 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी हो गई। इसने आधुनिक क्षेत्र के विकास को लाभान्वित किया। दूसरी नीतियों के कारण आमदनी की असमानतायें पैदा हुईं जिससे धनी वर्गों के बीच बचत को प्रोत्साहन मिला और इसी कारणवश विकास को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापानी सरकार ने हस्तक्षेप करने वाली नीति का अनुसरण किया। ऐसा करना सरकार की न केवल राजनीतिक इच्छा थी बल्कि इसको जारी रखने के लिए वित्तीय संसाधन भी सरकार के पास थे। मेजी नीति ऋण तथा लाभांश की विशेष गारन्टियों के माध्यम से कुछ निश्चित क्षेत्रों के समर्थन के द्वारा निवेश की दिशा को प्रभावित करती थी। आर्थिक गतिविधियों के नैतिक आचार विचार भी समान रूप से महत्वपूर्ण थे। जापान में लाभ स्वयं में एक लक्ष्य नहीं हो सकता था। कन्फ्यूशियस विचारों के प्रभाव के कारण व्यावसायिक लोग राज्य की सेवा करना अपना महत्वपूर्ण लक्ष्य समझते थे। इसके कारण सरकार व्यावसायिक लोगों के साथ घनिष्ठ तौर पर सामान्य स्वीकृत लक्ष्यों के लिये कार्य करने में सफल हो सकी।

राज्य का उद्योग के क्षेत्र में हस्तक्षेप जिस समय प्रत्यक्ष प्राबंधक के माध्यम से हुआ तब यह सफल न हो सका लेकिन व्यापारिक घरानों (जैबात्सू) के माध्यम से यह हस्तक्षेप विकास के लिए उत्तरदायी था। ऐसे परम्परागत क्षेत्रों जो राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये निर्णायक नहीं थे सरकार उन क्षेत्रों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं करती थी। सरकार ने सामाजिक तनावों को रोकने के लिये और सामाजिक सौहार्द को बनाये रखने के लिये कार्य किया। इस प्रकार सरकार ने कृषि में सहकारी समितियों एवं ऋण उपलब्धता कराने वाली संस्थाओं को प्रोत्साहित करने का काम किया। इसने निरीक्षण सुविधाओं तथा शोध केन्द्रों की स्थापना करके उत्पादन तथा गुणवत्ता को सुधारने का कार्य भी किया। सिदनेय क्राकौर का मत है कि सरकार की नीति सदैव सफल नहीं होती थी और कुल मिलाकर इसने समस्याओं को ही पैदा किया। लेकिन व्यापारियों एवं सरकार के बीच सहयोग के माध्यम से एक अधिक विकासात्मक क्षमता अर्थव्यवस्था से ली जा सकी। यदि यह सहयोग न होता तो संभवतः यह विकासात्मक क्षमता न प्राप्त होती।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में कौन-सा कथन गलत (×) है और सही (√) है। सही (√) या गलत (×) के चिन्ह लगायें।

   i) जापान के प्रथम मजदूर संघ का निर्माण टोकियो में किया गया।

   ii) समाजवादी दल को सरकार के द्वारा प्रोत्साहित किया गया।

   iii) अपने भू-स्वामित्व को सुदृढ़ करने के लिये सरकार ने जमींदारों को प्रोत्साहित किया।

   iv) सरकार किसी भी तरह के शाकाय (सोसाइटी) का विरोध करती थी और उसने इन्सेक्ट सोसाइटी पर प्रतिबंध लगा दिया।

2) जापान के मजदूर आंदोलन के विकास एवं दमन की 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) मेजी सरकार की औद्योगिक नीति का मूल्यांकन लगभग 10 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.8 सारांश

इस इकाई में हमने मेजी अर्थव्यवस्था के विकास की मुख्य विशेषताओं को पढ़ा। **मेजी** शासकों ने एक जटिल अर्थव्यवस्था एवं नौकरशाही के ढांचे को **तोकुगावा बकुफु शासकों** से उत्तराधिकार में प्राप्त किया था। लेकिन **मेजी** शासकों ने कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हस्तक्षेप के द्वारा अर्थव्यवस्था को संचालित किया तथा उस पर नियंत्रण कायम किया। **मेजी** शासकों को उत्तराधिकार में ऐसी विशाल वित्तीय समस्याएं मिली जिन्होंने बकुफु की राजनीतिक शक्ति को तोड़ दिया था। अंत में, सैमुराई शासक वर्ग का भूमि पर प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं रहा और उनमें से बहुत से नौकरशाही का हिस्सा वन गये। इसका यह तात्पर्य था कि उनके हित किसी विशेष प्रकार की भू-स्वामित्व व्यवस्था के साथ नहीं वंधे थे और इसलिये उन्होंने मेजी सरकार द्वारा प्रारंभ किये गये परिवर्तनों का कम विरोध किया तथा उनके अनुरूप अपने को ढालने में सफल हुए।

मेजी सरकार ने अपने नव निर्मित संसाधनों को परिवहन, संचार, ऊर्जा क्षेत्रों के निर्माण तथा एक मजवूत सैनिक तंत्र को बनाने में लगा दिया। इन नीतियों ने उनकी इस समझ को प्रतिविंवित किया कि यदि जापान राष्ट्र को बने रहना है तव उसको फूकोकू क्योहेई (धनी, देश, मजवूत सेना) के लक्ष्य की नीति का अनुसरण करना ही होगा। मूलभूत संरचनात्मक सुविधाओं के निर्माण के साथ-साथ नये-नये उद्योगों का आयात किया गया और इनको व्यापारियों को कम कीमतों पर वेचा जाता। इसी के साथ-साथ गहन आर्थिक नीतियों का अनुसरण किया गया। इन नीतियों ने चुनिन्दा तौर पर निवेश की गारंटी दी, छूटे प्रदान की और संसाधनों को स्वदेशी उद्योग को विकसित करने की और मोड़ दिया।

आर्थिक नीतियां सरकार तथा व्यापरिक नेताओं के बीच समान समझदारी पर आधारित थी और उस केन्द्रीकरण का भाग एवं अंश थीं जो राजनीतिक क्षेत्र में स्थान ग्रहण कर चुका था। आर्थिक क्षेत्र में मुख्य व्यापारिक घरानों को प्रोत्साहित किया गया। इसके कारण दोहरे क्षेत्र की रचना हुई अर्थात् आधुनिक क्षेत्र एवं परम्परागत क्षेत्र। इन दोनों क्षेत्रों में आकार, उत्पादकता तथा वेतन में अंतर था। लेकिन जैसा कि हम देख चुके हैं कि परम्परागत क्षेत्र ने अर्थव्यवस्था के विकास एवं वृद्धि में विशेष योगदान किया।

विदेशी ऋणों को कम से कम रखा गया क्योंकि मेजी शासकों को यह चिंता थी कि कहीं वे अपनी संप्रभुता को न खो दें। उन्होंने इन ऋणों का उपयोग कुछ ही अवसरों के लिये किया लेकिन विकास की दर को निर्यातों के द्वारा वित्त प्रदान करं तथा आंतरिक खपत को कम स्तरों पर रख कर बनाये रखा गया। यह केवल **मेजी** सरकार के उस राजनीतिक नियंत्रण के द्वारा ही संभव हो पाया जिसका उन्होंने उपयोग किया। अल्पतंत्र उस दमनात्मक व्यवस्था का निर्माण करने में सफल हो सका जिसने निर्दयता के साथ विरोध का दमन किया। लेकिन दूसरी तरफ इसने ऐसी नीतियों को जारी रखा जिसने सरकार एवं जनता के बीच वफ़ादारी के संबंधों को स्थापित किया। सम्राट के प्रति वफ़ादारी के इन विचारों के माध्यम से जनता का राज्य के साथ वैचारिक सम्पर्क जापान के आर्थिक विकास में निर्णायक कारक था क्योंकि इसने राष्ट्र के लिये आत्म बलिदान को प्रोत्साहित किया।

विकास की नीतियों ने उस जनता से वसूली की जिसको बलिदान के भार को सहना पड़ा और इसी के साथ-साथ जापान के पड़ोसी देशों को भी उसकी विस्तारवादी नीतियों के परिणामों का सामना करना पड़ा। इन प्रश्नों पर आगामी इकाईयों में विचार किया गया है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना पर्याप्त होगा कि जापान द्वारा अपनाया गया सैन्यवाद एवं विस्तारवाद सफल आर्थिक विकास से आंतरिक रूप से जुड़ा हुआ है। महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें राज्य की भूमिका भी निर्णायक थी।

मेजी सरकार ने जापानी अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रतिद्वंद्विता से संरक्षण प्रदान किया और उसको सक्रिय सहायता प्रदान कर स्वदेशी उद्योग को विकसित किया। इसके कारण सरकार एवं व्यापार के बीच मजबूत संबंधों की रचना हुई और इसलिये उन नीतियों को जो राज्य के राजनीतिक उद्देश्यों के अनुरूप थीं, कार्यान्वित किया जा सका। जनता एवं पर्यावरण को इस आर्थिक विकास के लिये भारी मूल्य चुकाना पड़ा और राजनीतिक नियंत्रण के कारण उनको इसे वहन करना पड़ा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.9 शब्दावली

आधुनिक क्षेत्र : उन आर्थिक गतिविधियों को इस क्षेत्र में रखा गया है जिनके विकास के लिये आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक का उपोग किया गया।

परंपरागत क्षेत्र : इस क्षैत्र के अंतर्गत वे आर्थिक गतिविधियां थीं जो परम्परगात थीं और जिनमें उत्पादन के साधन परंपरागत थे।

जैबात्सू : ऐसे एकाधिकार घराने जिनका विभिन्न प्रकार के व्यापारिक कारोबार पर नियंत्रण था। मुख्य-मुख्य घराने मित्सूई, मित्सूबिशी, सुमितो तथा वासूदा थे। इस शब्द का साहित्यिक अर्थ वित्तीय तंत्र है।

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 12.2 में उल्लेखित कृषि सुधारों को आप अपने उत्तर में शामिल करें।
2) लौह उद्योग, जहाज निर्माण, रेलवे, विद्युत उत्पादन आदि को सहयोग प्रदान करने में सरकार की नीति की विवेचना करते हुए आप अपने उत्तर का आधार भाग 12.3 एवं 12.4 को बनाये।
3) भाग 12.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) i) × ii) × iii) √ iv) √
2) आप अपने उत्तर में मजदूर संघों के उद्भव, मजदूर आंदोलन के नेताओं के विचारों, सरकार के द्वारा इस आंदोलन के दमन के प्रयास, प्रतिबंधात्मक कानून आदि को शामिल करें। देखें भाग 12.5।
3) देखें भाग 12.7।

NOTES

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 13 ताइपिंग विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 पृष्ठभूमि
13.3 हंगश्यु चुआन और ईश्वर पूजक संघ
13.4 ताइपिंग विद्रोह का स्वर्ण-काल
13.5 ताइपिंग संगठन और कार्यक्रम
    13.5.1 भू-व्यवस्था
    13.5.2 स्त्रियों की स्थिति
    13.5.3 हस्तशिल्प और व्यापार
13.6 ताइपिंगों का पतन
    13.6.1 जेंग क्यो-फान और चिंग सरकार द्वारा ताइपिंगों को दबाने के प्रयास
    13.6.2 पश्चिमी ताकतों का रवैया
    13.6.3 ताइपिंग आंदोलन की आंतरिक समस्याएं
    13.6.4 ताइपिंगों की पराजय
13.7 ताइपिंग विद्रोह की प्रकृति और प्रभाव
    13.7.1 विद्रोह अथवा सामाजिक क्रांति
    13.7.2 परिणाम
13.8 सारांश
13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- ताइपिंग विद्रोह के स्रोत और उसके सामाजिक आधार को समझ सकेंगे,
- ताइपिंग विद्रोहियों के कार्यक्रम और उनकी गतिविधियों का आकलन कर सकेंगे,
- तापिंग विद्रोहियों को पराजित करने के लिए किये गये चिंग सरकार के प्रयासों के विषय में सीख सकेंगे,
- विद्रोह के अंततः विफल होने के कारणों को समझ सकेंगे,
- तापिंग विद्रोह के प्रभाव और इसके समग्र महत्व का आकलन कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में दक्षिणी और मध्य चीन के अधिकांश हिस्सों में फैलने वाला तापिंग विद्रोह केवल बीसवीं शताब्दी के पहले चीन में होने वाला सबसे बड़ा विद्रोह ही नहीं था, बल्कि विश्व इतिहास के सबसे बड़े किसान विद्रोहों में से भी एक था। यह विद्रोह 13 साल (1851 से 1864) तक चला। अनेक प्रांत और कोई 20 करोड़ लोग इसकी चपेट में आये। इस विद्रोह ने 200 साल पुराने चिंग वंश का खात्मा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उस जमाने में इसका असर इतना जबर्दस्त था कि चिंग वंश को पश्चिमी ताकतों के हाथों मिलने वाली मातें, अपनमान और धमकियां भी इसके मुकाबले में बहुत छोटी जान पड़ी। अंततोगत्वा विद्रोह को कुचल दिया गया, लेकिन उस समय तक दो करोड़ से भी अधिक लोग अपनी जान गंवा चुके थे और चीन के कुछ सबसे संपन्न और सबसे अधिक आबादी वाले प्रांत उजाड़ हो चुके थे। तापिंग विद्रोह एक और कारण से भी महत्वपूर्ण था। चीनी इतिहास के एक सबसे घटनापूर्ण दौर में होने वाला यह विद्रोह दो युगों के संक्रमण काल में चला। इसके उद्भव, इसकी विचारधारा, इसके कार्यक्रम और इसकी आंतर्निहित खामियों में चीन की प्राचीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के भी तत्व थे और निर्माणाधीन नये चीन के भी एक अर्थ में तो, तापिंग विद्रोह पारंपरिक चीनी इतिहास के हो रहे महान् किसान विद्रोहों की शृंखला के अंत का प्रतीक था, और दूसरे अर्थ में यह विद्रोह 19वीं शताब्दी के राष्ट्रवादी, विचारधारा-प्रेरित क्रांतिकारी आंदोलनों का अग्रदूत भी था।

इन तमाम कारणों से, आधुनिक चीनी इतिहास की गति को समझने के लिये तापिंग विद्रोह को समझना आवश्यक है।

इस इकाई की शुरुआत ताइपिंग विद्रोह की पृष्ठभूमि से होती है। इसमें उन विभिन्न कारकों पर चर्चा की गयी है जिनके कारण इतना व्यापक विद्रोह हुआ, इस इकाई में विद्रोह के नेतृत्व के साथ-साथ ताइपिंगों के कार्यक्रम की भी विवेचना की गयी है – विशेषकर उनकी भूमि नीति और महिलाओं के लिये समान अधिकारों की। इकाई में ताइपिंग सेना के कारनामों और उन्हें कुचलने के चिंग सरकार के प्रयासों की भी चर्चा की गई है। पश्चिमी ताकतें प्रारंभ में तो ताइपिंगों के साथ सहानुभूति रखती रही, लेकिन बाद में उन्होंने ताइपिंगों के खिलाफ सशस्त्र हस्तक्षेप किया।

इस इकाई में ताइपिंगों के संघर्ष के विषय में, विद्रोह की खामियों के विषय में और चीन की अर्थव्यवस्था, समाज और राज्यतंत्र पर उसके प्रभाव के विषय में भी चर्चा की गयी है। विद्रोह को लेकर चलने वाली बहस की भी संक्षेप में विवेचना की गयी है।

13.2 पृष्ठभूमि

इतिहासकार ज्यां चेस्वों के शब्दों में "ताइपिंग आंदोलन की तीन प्रकार की विशेषताएं थी: राष्ट्रीय, धार्मिक और सामाजिक" यह विद्रोह इसलिये

- मांचू विरोधी था कि उसने शासक वंश को "विदेशी और बर्बर" बता कर उस पर प्रहार किया,
- धार्मिक था कि उसने कन्फ्यूशियस पंथ पर जबरदस्त प्रहार किया,
- उसने जनप्रिय चीनी पंथों को मिला दिया और ईसाई धर्म से भी कुछ बातें ग्रहण की,
- सामाजिक विरोध का आंदोलन था क्योंकि उसने कृषि-आधारित संबंधों को बदलने के लिये एक कार्यक्रम प्रस्तुत करके चीन में सामंतवाद के महल को हिला कर ही नहीं रख दिया, बल्कि महिलाओं की स्वतंत्रता का भी समर्थन किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन आइए पहले हम उन स्थितियों के महत्व को समझें जिनके कारण कुछ कारक एक दूसरे से जुड़ गये और उन्होंने ऐसी क्रांतिकारी लहर को जन्म दिया।

डेढ़ सौ वर्षों के चिंग शासन के बाद, सामाजिक और आर्थिक संकट और राजनीतिक अव्यवस्था के लक्षण प्रारंभिक 19वीं शताब्दी के चीन में महत्वपूर्ण ढंग से प्रकट होने लग गये थे। बढ़ते किसान असंतोष, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और अक्षमता, प्राकृतिक विपदाएं, विद्रोह और विदेशी अतिक्रमण जाने-पहचाने रूप में सामने आने लग गये। इकाई 2 में हमने इन लक्षणों के विषय में कुछ विस्तार से चर्चा की है। यहां हम केवल 1840 के दशक में दक्षिण चीन में विद्यमान उन स्थितियों का वर्णन करेंगे जिन्होंने तापिंग विद्रोह के फैलने के लिए उर्वर भूमि तैयार की। फिर भी, यहां इस बात को ध्यान में रखना होगा कि मांचू विरोधी भावनाएं दक्षिण चीन के लिए नई नहीं थीं। यह बात एक लंबे समय से चले आ रहे किसान विद्रोहों के संबंध में भी सही थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में आम आदमी की जिंदगी को अधिकाधिक कठिन और असुरक्षित बनाने वाली स्थितियां दक्षिण चीन में व्याप्त थीं। इसके अतिरिक्त, अफीम युद्ध और विदेशी उपस्थिति से बनने वाली अवस्वस्था, इस क्षेत्र में विधि जातीय समुदायों की उपस्थिति से बनने वाले तनावों, और गंभीर अराजकता और तानाशाही हिंसा, इन सबने मिलकर दक्षिण चीन की स्थिति को विशेष रूप से विस्फोटक बना दिया। ऐसा विशेषकर क्वांगसी और क्यांगतुग प्रांतों में था।

मांचू शासकों के लिए, नियंत्रण करने की दृष्टि से दक्षिण चीन सबसे दुर्गम प्रदेश रहा। 17वीं शताब्दी के मध्य में चीन पर विजय हासिल करने के बाद पूरी तरह अधीनता में आने वाला यह अंतिम प्रदेश था। मांचू शासन का प्रतिरोध करने वाले अंतिम प्रमुख केन्द्रों की कमर तोड़ देने के बाद भी इस क्षेत्र पर कब्जा हो पाना कठिन बना रहा। इसका आंशिक कारण यह था कि यह क्षेत्र प्रशासन के केन्द्र पीकिंग से काफी दूरी पर था। यह बात क्यांगसी जैसे पहाड़ी अर्ध बंजर या सीमांत क्षेत्रों के संबंध में विशेष रूप से सही थी जिसे 18वीं शताब्दी में ज

ही उपनिवेश बनाया जा सका। वास्तविकता यह थी कि भूमि पर आबादी के दबाव के कारण लोगों को निचली भूमि वाले अपेक्षाकृत अधिक उपजाऊ क्षेत्रों को छोड़कर आना पड़ा था। सामान्य तौर पर, पुलिस और प्रशासन की उपस्थिति ऐसे इलाकों में उन इलाकों की अपेक्षा कहीं कम थी जो कुछ पहले बस गये थे और जिनकी आबादी घनी थी। विभिन्न क्षेत्रों से लोगों के आ जाने के कारण इन नये बसे इलाकों की आबादी कहीं अधिक मिश्रित थी। इसके कारण भी काफी सामाजिक मनमुटाव की स्थिति बनी। सीमांत प्रदेशों में जीवन की कठिन स्थितियों के कारण विभिन्न समुदाय के लोगों में एकजुट होकर आपस में लड़ने वाली भारी हथियारबंद टोलियां बनाने की प्रवृत्ति बनी। इसके कारण **त्येन ती हुई** जैसे गुप्त संगठन उठ खड़े हुए जो इन स्थितियों में खूब पनपे।

क्यागतुंग और क्यांगसी प्रांतों में सामाजिक तनाव का एक बड़ा कारण हक्का लोगों और मूल वाशिंदों (पेंती) के बीच सदियों से चला आ रहा संघर्ष था। हक्का वह जनसमूह था जो बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों के दौरान इस क्षेत्र में आ बसा था। दक्षिण में कई शताब्दियों से रहते आने के बावजूद उन्होंने अपनी कई विशिष्टताओं, रीति-रिवाजों और अपनी बोली को बरकारार रखा था। उनके और अन्य स्थानीय लोगों के बीच होने वाले संघर्ष अनगिनत और बहुधा हिंसक थे। इस समुदाय की एक विशिष्टता थी उनके आसपास के महौल से उनका अलगाव बोध। ताइपिंग आंदोलन का प्रवर्तक हंग श्यु चुआन, इसी समुदाय की देन था। ताइपिंगों का प्रारंभिक सामाजिक आधार **हक्का** समुदाय में से था।

पश्चिमी व्यापारियों की उपस्थिति ने भी दक्षिण चीन के तटीय भाग और उसके भीतरी भाग में अराजकता की स्थिति के फैलने में योगदान दिया। ऐसा विशेषकर 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों से हुआ जब अफीम व्यापार की एक प्रमुख सामग्री बन गई थी। अफीम के अवैध व्यापार ने चोरी छिपे तस्करी और वितरण का एक ऐसा जाल तैयार किया जिसमें हजारों स्थानीय लोग लिप्त हो गए। अफीम युद्ध अपने आप में खुद विशेष रूप से विध्वसंकारी था। अफीम युद्ध और नानकिंग संधि के बाद यह हुआ कि जो व्यापार पहले कैंटन में केंद्रित था वह अब उठकर उत्तर शंघाई में चला गया। कैंटन प्रदेश के ऐसे हजारों कुली मल्लाह और अन्य लोग जो इस धंधे के कारण रोजगार से लगे थे अचानक बेकार हो गये। अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए उन्होंने डकैती को अपना लिया। अंग्रेजी नौ-सेना के समुद्री डकैती उन्मूलन अभियान ने समुद्री डाकुओं को मैदानी भाग में खदेड़ दिया तो उससे भी ऐसे जोखिम पसंदों और आततायियों की भीड़ बढ़ गई जो कुछ भी कर गुजरने को तैयार थे। यह कम महत्व की बात नहीं है कि हक्का लोगों के अतिरिक्त जो लोग शुरुआत में ताइपिंग आंदोलन से जुड़े वे किसान तबके से इतने नहीं थे जितने विस्थापित फेरी वालों मल्लाहों, कुलियों और ऐसे अन्य लोगों से।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

नानकिंग संधि का स्वदेशी दस्तकारी उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। उदाहरण के लिए, बाजार में अब विदेशी कपड़े छा गये थे और स्वदेशी सूती कपड़ों का उतना काम नहीं रह गया था। यही हालत दस्तकारी की थी। बहुत सारे दस्तकार बेकार हो गये थे।

चिंग सरकार ने हर्जाना अदा करने की गरज से बहुत सारे कर लाद दिये जिससे किसानों पर बोझ बढ़ गया और कीमतें ऊंची हो गई। उदाहरण के लिए 1846 तक नमक की कीमत कुछ क्षेत्रों में दुगनी से भी अधिक हो गई थी। जमींदार लोग किसानों के शोषण में लगे रहे। अधिकांश भूमि बड़े जमींदारों के हाथों में केंद्रित थी आम आदमी के कष्टों और शासक विरोधी भावनाओं को **त्येन ती हुई** की घोषणा से उस समय अभिव्यक्ति मिली जब यह गुप्त संगठन क्रांति के लिए उठ खड़ा हुआ:

> समूचे साम्राज्य में लोभी अधिकारी लुटेरों से भी बदतर है और सार्वजनिक कार्यालयों के अधिकारी भेड़ियों और बाघों से कुछ बेहतर नहीं है। अमीरों के अपराधों के लिए कोई दंड नहीं दिया जाता और गरीबों के अन्यायों का कोई सुधार नहीं है। अपनी आजीविका के साधनों से वंचित लोग कष्टों की घोर अंधकारपूर्ण गहराई में डूबे हैं।

ताइपिंग विद्रोह के ठीक पहले 1840 के दशक में किसानों या विस्थापित दस्तकारों आदि के नेतृत्व में अनेक विद्रोह हुए। यह संघर्ष निम्न के विरोध में हुए:

- करों की अदायगी
- ऊंचे कर और लगान, और
- भ्रष्ट अधिकारी, इत्यादि

इन विद्रोहों का नेतृत्व त्येन ती हुई जैसे गुप्त संगठनों के कार्यकर्ताओं ने किया। 1840 के दशक के कुछ प्रमुख विद्रोह थे:

- त्येन ती हुई के ले जाई हाओ के नेतृत्व में 1847 में हुनान क्वांगसी सीमा पर हुआ विद्रोह।
- क्यांगतुंग-क्वांगसी सीमाओं और हुनान के क्षेत्रों में 1848-50 के बीच चांग चिया-श्यांग, चेन या-बुआई और ली युआन-फा के नेतृत्व में हुए विद्रोह।

बेशक अधिकारियों ने आम आदमी में उत्पीड़न के खिलाफ व्याप्त असंतोष को मान लेने के बजाय, इन्हें डाकुओं की कारगुजारी ही बताया। सच तो यह था कि डकैती सामाजिक दुखों से ही निकली थी और उसके लिए एक दमनकारी तंत्र के खिलाफ विद्रोह कर देना उचित ठहरने वाला था, उदाहरण के लिए चांग चिया जियांग की निम्न पंक्तियां:

> उच्च वर्गों पर निकलता है हमारा धन
> मध्य वर्गों के लिए आवश्यक है जागरण
> किंतु निम्न वर्ग करें मेरा अनुसरण
> यह बंजर भूमि को जोतने के लिए बैल किराये पर लेने से आगे की बात है।

लेकिन सरकारी भाषा में चांग एक डाकू के सिवा और कुछ नहीं था। इसी पृष्ठभूमि में ताइपिंगों का उदय हुआ।

13.3 हंग श्यू-चुआन और ईश्वर पूजक संघ

ताइपिंग आंदोलन के प्रवर्तक हंग श्यू चुआन (1814-1864) का जन्म हुआ-श्येन (क्वांगतुंग प्रांत) के एक किसान परिवार में हुआ था। कुछ समय तक उसने गांव में अध्यापकी की, लेकिन उसकी महत्वकांक्षा अफसरशाही में आने की थी। उसने 15 साल की अवधि में चार बार प्रथम स्तर की परीक्षा दी लेकिन वह सफल नहीं हो सका, बेशक इन असफलताओं के कारण उसमें व्यवस्था विरोधी भावनाएं बनी होंगी। अपनी दूसरी असफलता के बाद हंग पहली बार कुछ प्रोटेस्टेंट मिशनरियों के संपर्क में आया (यह और बात है कि पहले पहल उस पर इसका कोई बड़ा असर नहीं पड़ा) अपनी तीसरी असफलता के बाद उस पर गहरे बिषाद का दौरा पड़ा जिसके दौरान उसे मतिभ्रम (काल्पनिक चीजें दिखाई देना और काल्पनिक आवाजें सुनाई देना) का अनुभव हुआ। इन दोनों घटनाओं ने मिलकर न केवल हंग के जीवन को आकार देने में निर्णायक भूमिका अदा की बल्कि आगे चलकर ताइपिंग आंदोलन बनने वाले विद्रोह पर भी गहरी छाप छोड़ी। हंग को विश्वास था कि उसने मतिभ्रम की अवस्था में कल्पना में जो कुछ देखा वह यह संदेश था कि वह ईश्वर का पुत्र और यीशु खीष्ट का छोटा भाई था, जिसके जीवन का उद्देश्य ईश्वर के वचन को फैलाना और मनुष्य जाति का उद्धार करना था। उसने कन्फ्यूशियस पंथ को सामंतों को धर्म कह कर उस पर प्रहार किया। उसके विचार में शैतान उत्पात कर रहा था क्योंकि कन्फ्यूशियस के सिखाए अधिकांश सिद्धांत अनर्गल हैं। हंग को उसके रूढ़ि विरोधी विश्वासों के कारण 1844 में स्कूल अध्यापकी की नौकरी से निकाल दिया गया। उसके बाद हंग और उसका निष्ठावान मित्र नवधर्मान्तरित फेंगयिन-शान, पड़ोसी प्रांत क्वांगसी में आ गये और वहां उन्होंने अपनी मिशनरी गतिविधियां जारी रखी। कुछ ही वर्षों में उन्होंने हजारों लोगों का धर्मान्तरण कर लिया जिनमें विशेषकर हक्का समुदाय के भट्टी पर काम करने वाले गरीब किसान और खान श्रमिक थे। इन नव धर्मान्तरितों को ईश्वर पूजकों के एक संघ में संगठित किया गया। धर्मान्धता धार्मिक उत्साह और निर्धन समर्थक भावनाओं वाले इस संघ ने चिंग शासन के आधार को ही ललकार दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आगे बढ़ने से पहले इस पर ध्यान देना उचित होगा कि हंग ने अपने क्रांतिकारी विचारों को प्रचारित करने के लिए अनेक लेख और कविताएं लिखीं। इनमें से कुछ हैं:

- उद्धार के सिद्धांत
- विश्व जागरण के सिद्धांत, और
- विश्व उद्बोधन के सिद्धांत।

उसके लेखने के कुछ उदाहरण निम्न हैं:

- सामंतों और एक तंत्र (या तानाशाही) पर प्रहार करते हुए उसने लिखा "स्वर्ग तले सभी का एक ही स्वर्गीय पिता है और इसलिए सब एक परिवार के हैं सम्राट के लिए क्या कारण है कि वह सब कुछ अपने हाथों में हड़प लें?"
- विश्व उद्बोधन के सिद्धांत में उसने अलौकिक तंत्र, अर्थात् नर्क के शैतान राजा से लेकर दुनिया के विभिन्न् राक्षसों (या दानवों) के हाथों लोगों के उत्पीड़न का विरोध किया। ये दानव और कोई नहीं चिंग सम्राट और उसके मातहत थे। लोगों के लिए दुष्टता के इन प्रांतों के खिलाफ विद्रोह करना आवश्यक था।
- अपनी एक कविता में हंग ने दानवों को जीतने और गद्दारों का दमन करने का संदेश दिया ताकि शांति कायम हो सके।

यह ठीक-ठीक बता पाना मुश्किल होगा कि कब ईश्वर पूजक संघ एक धार्मिक पंथ से चिंग वंश को खुली चुनौती देने वाला एक आंदोलन बन गया। ईश्वर पूजकों की गतिविधियों और क्वांगसी के सैन्यीकरण के सामान्यतया ऊंचे स्तर ने मिलकर यह सुनिश्चित कर दिया कि बहुत जल्दी उन्हें अपने आपको एक अर्धसैनिक ढंग से संगठित करना था। ईश्वर पूजकों का सैन्यीकरण जुलाई 1850 में उस समय एक नये स्तर पर पहुंच गया जब उसकी तमाम शाखाओं को यह निर्देश दिया गया कि वे सब चिन त्येन में हंग के मुख्यालय पर जमा हों और अपनी तमाम वस्तुओं को एक ही खेमे में जमा कर दें। इस तरह के संगठन का सरकार के लिए खतरा बनना स्वाभाविक था। जल्दी ही, ईश्वर पूजकों की सेना और शाही सेना के बीच सशस्त्र झड़पें हुई, जिनमें अंत में जीत ईश्वर पूजकों की हुई। इससे साहस लेकर ईश्वर पूजकों ने 11 जनवरी 1851 को अपने "महान शांति के स्वर्गीय राज्य" (**ताइपिंग त्येन कुओ**) की औपचारिक घोषणा कर दी, जिसका "स्वर्गीय राजा (त्येन-वांग) खुद श्यु-चुआन था। विद्रोह की शुरुआत हो चुकी थी और उसके बाद हंग और उसके अनुयायियों के लिए मुड़कर देखना नहीं हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) पश्चिमी लोगों की उपस्थिति ने दक्षिण चीन के लोगों के दुःखों को किस तरह बढ़ाया? लगभग 10 पंक्तियों में विवेचन करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) लगभग 10 पंक्तियों में हंग श्यू-चुआन के विचारों का विवेचन करें।

....
....
....
....
....
....
....

....

....

13.4 तापिंग विद्रोह का स्वर्ण-काल

शुरुआत में विद्रोहियों और चिंग सेना के बीच इस एक छोटी-सी दिखने वाली झड़प ने जल्दी ही एक व्यापक आंदोलन का रूप ले लिया। यह केवल चिंग सेनाओं को हरा देने या कुछ जमींदारों की छुट्टी कर देने का सवाल नहीं था। क्योंकि तापिंग विद्रोही तो अपने मनों में सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के पूरी तौर पर पुनर्गठन का एक खाका बना चुके थे। यहां हम ताइपिंगों की विजयों और उन कार्यक्रमों के विषय में चर्चा करेंगे जिन्हें उन्होंने अपने प्रभाव-क्षेत्रों में अपनाया। उन्हें अपने इस अभियान में त्येन ती हुई का और ता-कांग और सु सान-नियांग जैसे उन नेताओं का भी समर्थन मिला जिन्होंने किसी दूसरी जगह विद्रोह किया था। "स्वर्गीय राज्य" की घोषणा के कुछ ही समय बाद, ताइपिंगों ने उत्तर की ओर बढ़ना शुरू किया। जहां-जहां से होकर ताइपिंग बढ़े, वहां-वहां उनके और चिंग सेना के बीच कड़ी भयंकर झड़पें हुई। इनमें दोनों ही तरफ भारी नुकसान हुआ। लेकिन कुल मिलाकर ताइपिंगों को आगे बढ़ने से नहीं रोका जा सका।

ताइपिंगों की पहली बड़ी विजय युंगान कस्बे पर उनका कब्जा होना था। वहां उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ायी और उनकी सेना में 37,000 सैनिक हो गये। उन्होंने तमाम चीनियों का आहवान किया कि वे उठ खड़े हों और विदेशी मांचू शासकों का तख्ता पलट दें, उन्होंने एक नये कैलेंडर को भी अपना लिया, जो परंपरा के अनुसार एक नये वंश के सत्ता में आने का चिन्ह होता था। इस तरह उन्होंने यह संकेत दे डाला कि वे ही चीन के आगामी शासक थे। पुराने कैलेंडर में जो शुभ और अशुभ दिनों की अंधविश्वासी धारणाएं थी उन्हें खत्म कर दिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चिंग सेनाओं ने युंगान में ताइपिंगों को घेर लिया। ताइपिंगों को इस घेरे को तोड़कर बाहर आने में छह महीने लग गये। युंगान के बाद तो ताइपिंगों का उत्तर की ओर बढ़ने का सिलसिला जारी रहा और वे हुनान प्रांत की सीमा के अंदर तक पहुंच गये। सामरिक दृष्टि से यह एक बड़ा राजनीतिक और सैनिक कदम था। इसका मतलब यह निकलता था कि तापिंग विद्रोह अब चीनी साम्राज्य के एक दूर-दराज प्रदेश में चलने वाला कोई छोटा-मोटा प्रांतीय आंदोलन नहीं रह गया था। उसने अपनी नजरें मध्य चीन के संपन्न, सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित और राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण यांगसी नदी क्षेत्र पर जमा दी थी।

ताइपिंगों के उत्तर की ओर बढ़ने के दौरान उन्हें उपलब्ध बलों और संसाधनों में भी महत्वपूर्ण बढ़ हुई। दक्षिण मध्य चीन की भीषण रूप से शोषित जनता ने ताइपिंगों के समानतावादी सामाजिक संदेश को पूरे उत्साह से अनुकूल प्रतिक्रिया दी। इसका नतीजा यह हुआ कि यांगसी नदी के सहारे स्थित बड़े कस्बों में पहुंचने तक ताइपिंग कार्यकर्ताओं या सैनिकों की संख्या कई लाख हो चुकी थी। उदाहरण के लिए, ताओचो और चेनचों के कोयला खान श्रमिक उनमें आ मिले। उन्होंने अपने इस प्रयास के दौरान राज्य के खजानों से चांदी के भंडार और अनाज और गोला-बारूद और जहाज अपने कब्जे में करके अपने संसाधनों को बढ़ा लिया। इस भारी भंडार को लेकर वे अनेक कस्बों पर कब्जा करते और अपनी संख्या बढ़ाते, आगे बढ़ते रहे। मार्च 1853 में वे चीनी साम्राज्य की पुरानी राजधानी, महान नगर नानकिंग में घुस पड़े और उन्होंने इसका नाम बदल कर त्येनचिंग कर दिया अर्थात् उनके अपने "स्वर्गीय राज्य" की स्वर्गीय राजधानी।

13.5 ताइपिंग संगठन और कार्यक्रम

ताइपिंग आंदोलन के चरित्र में जो संक्रमण हुआ वह सचमुच उल्लेखनीय था। एक विदेशी धर्म अपनाने वालों की एक छोटी-सी टोली से उभरकर वह एक जबरदस्त राजनीतिक सैनिक शक्ति के रूप में सामने आया था जिसका सपना था समूचे चीन को जीतकर पूरी सामाजिक व्यवस्था को नया रूप दे डालना। इसके प्रवर्तको के मल मसीहाई सपने और आग्रह ने अब

आंदोलन का मुख्य नेतृत्व प्रारंभ के सबसे महत्वपूर्ण धर्मान्तरितों के हाथों में ही रहा। हग श्यु चुआन "स्वर्गीय राजा" बेशक था, लेकिन सत्ता में उसके साथ दूसरे "राजाओं" (वांग) की भी हिस्सेदारी थी। ये सभी राजा मूल मंडल के अंग थे। कुल मिलाकर पांच राजा थे – उनमें से चार के नाम विभिन्न दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण) पर थे, जबकि पांचवा राजा "सहायक राजा" कहलाता था।

ताइपिंग अनुयायियों को एक संयुक्त गैर-सैनिक ढांचे में संगठित किया गया था। परिवार इस ढांचे की बुनियादी इकाई थी। परिवार समूहों को ही सेना की टुकड़ियों में संगठित किया गया था। वैसे, ये सैनिक टुकड़ियां केवल लड़ने का ही काम नहीं करती थी, वे भूमि भी जोतती थी और लोक निर्माण का काम भी करती थी। परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने ढंग से योगदान करता था। उदाहरण के लिए, बुजुर्ग लोग बांस की कीलें बनाते या खाना बनाते थे और बच्चे व्यस्कों की युद्ध में मदद करते थे। उनके नेता केवल युद्ध में उनका नेतृत्व ही नहीं करते थे बल्कि वे नागरिक प्रशासनिक भी थे जिनपर तमाम आर्थिक प्रशासनिक न्यायिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यकलापों की जिम्मेदारी थी।

वैसे तो इस संगठन की बुनियादी इकाई परिवार ही रही, फिर भी ताइपिंगों में जोर इस बात पर रहता था कि तमाम संसाधनों पर स्वामित्व पूरे समुदाय का हो। वे सामुदायिक जीवन पर जोर देते थे। उनमें स्त्री-पुरुषों को अलग-अलग स्थान देने पर भी जोर था। सारी संपत्ति और लोगों के श्रम उत्पादनों को राज्य की संपत्ति (पवित्र राजकोष) माना जाता था और इस बात का प्रयास रहता था कि इस संपत्ति का लाभ प्रत्येक को यथा संभव समान रूप से मिले। ताईपिंगों ने इन तमाम उपायों को उन क्षेत्रों में अपनाने का प्रयास भी किया जिनपर उनकी कहीं मजबूत पकड़ थी। यहां हम ताइपिंग कार्यक्रम के एक-एक ब्योरे का विवेचन नहीं कर रहे। हम तो केवल इससे संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं के विषय में ही चर्चा करेंगे।

13.5.1 भूमि व्यवस्था

"स्वर्गीय राज्य" के बुनियादी कार्यक्रम का विवरण "स्वर्गीय राज्य की भूमि व्यवस्था" **(त्येन चाओ त्येन मोऊ ची-तु)** नाम के एक उल्लेखनीय दस्तावेज में दिया हुआ था। इस दस्तावेज में भूमि संबंधी विनियमों के विवरण के अलावा और भी बहुत कुछ था। लेकिन इसका मूल सार यह क्रांतिकारी विचार था कि सारी भूमि पर सभी का मिला-जुला स्वामित्व हो और इसकी पैदावार सभी के उपयोग के लिए हो। इस तरह, ताइपिंगों ने तमाम निजी संपत्ति का खात्मा कर दिया। दरअसल यह सामंती व्यवस्था के खात्मे की घोषणा थी। उन्होंने स्तर के हिसाब से सारी भूमि को नौ श्रेणियों में रखा। 16 वर्ष से अधिक आयु वाले प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए खेती के वास्ते एक हिस्सा रखा गया। भूमि के वितरण की व्यवस्था इस तरह रखी गयी कि किसी भी परिवार को अच्छी या खराब भूमि गलत अनुपात में न मिले। अर्थात्, ऐसा न हो कि किसी परिवार के हाथ अच्छी ही अच्छी भूमि आये और दूसरे को खराब ही खराब हिस्से मिले। इस तरह व्यक्ति को मिली भूमि उसकी निजी संपत्ति नहीं होती थी। उसका इस्तेमाल केवल पैदावार के लिए होना था। किसी परिवार को मिली भूमि पर अगर उसकी बुनियादी जरूरतों से ज्यादा पैदावार होती थी तो उसे उस अतिरिक्त पैदावार को सामूहिक भंडार में दे देना होता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भूमि के सामुदायिक इस्तेमाल का सिद्धांत चीन के लिए नया नहीं था। इसके संकेत प्राचीन ग्रंथ "चोऊ के कर्मकांड" में था। शिन वंश के वांग मांग के शासन की अल्प अवधि (8-23 ई.) में भी मिल जाता है। लेकिन एकाध क्षेत्रों को छोड़कर इस आदर्शवादी कार्यक्रम को और कहीं क्रियान्वित नहीं किया जा सका। कहा नहीं जा सकता कि इसके क्रियान्वित न हो जाने का कारण युद्ध की अनिवार्यताएं रहीं या फिर इसके क्रियान्वित संबंधी कठिनाइयां, फिर भी, हमें यह तो देखने को मिलता है कि ताइपिंगों के प्रभाव वाले क्षेत्रों में जमींदारों की शक्ति आंशिक रूप से खत्म हो गयी थी और कई तो भागकर दूसरे क्षेत्रों में चले गये थे। उदाहरण के लिए, यांगचो में किसानों ने तीन साल तक कोई लगान नहीं दिया, और नानकिंग के आसपास के क्षेत्रों में काश्तकारों ने जमींदारों को लगान देना बंद कर दिया। इसी तरह, और कई क्षेत्रों में लगान आधा तक ही दिया गया।

13.5.2 स्त्रियों की स्थिति

ताइपिंगों की भूमि व्यवस्था की और समूची सामाजिक नीति की भी, एक महत्वपूर्ण विशिष्टता थी स्त्रियों और पुरुषों की समानता का विचार जो कन्फ्यूशियसवादी व्यवस्था के लिए बुनियादी तौर पर अपरिचित था। स्त्रियां ताइपिंगों की सेनाओं का एक अंग थीं और

उनके पास जिम्मेदारी वाले पद भी थे। हंग की बहन खुद महिला सिपाहियों की कमान संभालती थी। जवान लड़कियों और युद्ध में मारे गये लोगों की विधवाओं के लिए न-कुआंन (महिला आवास कक्ष) खोले गये थे।

ताइपिंगों ने कन्याओं के पांव बांध कर रखने की प्रथा और बहुविवाह और वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के लिए जो उपाय किये उनसे भी स्त्रियों के प्रति उनके दृष्टिकोण का संकेत मिलता है। एक अंग्रेज मिशनरी डब्ल्यू. म्यूरहैड ने स्वर्गीय राज्य का दौरा करने के बाद स्त्रियों की बदली स्थिति का इस तरह विवरण दिया:

> "सड़कों पर चलते हुए, रास्ते में दिखायी पड़ने वाली स्त्रियों की संख्या एक नयी-सी बात है। आमतौर पर वे अच्छी वेश-भूषा वाली, और बहुत सम्माननीय दिखने वाली हैं। अनेक घोड़ों पर सवार हैं, अन्य पैदल चल रही हैं और उनमें से अधिकांश के पांव बड़े हैं। हमारा प्रचार सुनने के लिए कम नहीं ठहरतीं, और उनका व्यवहार हमेशा उचित होता है। पहले की स्थितियों को देखते हुए, यह एक नयी बात है, और इस सबको देखकर आपको अपने यहां की जिंदगी की याद हो आती है।"

ताइपिंग उपर्युक्त प्रथाओं को भ्रष्ट मानते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें तो खत्म किया ही, इसके अलावा उन्होंने दासता, जुआ, तंबाकू और शराब के इस्तेमाल और अफीम के धूम्रपान को भी खत्म कर दिया।

13.5.3 हस्तशिल्प और व्यापार

ताइपिंगों ने हस्तशिल्प के कारीगरों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया के वे अपने उत्पादों से संबंधित विशिष्ट कार्यशालाओं में ही काम करें। ये कार्यशालाएं ताइपिंग अधिकारियों की देख-रेख में चलती थीं। फिर भी, सेना की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता था और उत्पादों का उपयोग मुख्य तौर पर सेना ही करती थी।

प्रारंभ में व्यापार और वाणिज्य को समाप्त करने के प्रयास किये गये। यह घोषणा की गयी कि:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

> सब कुछ स्वर्गीय पिता देता है। पैसों की चीजें खरीदना आवश्यक नहीं है।

लेकिन जल्दी ही यह महसूस कर लिया गया कि यह दृष्टिकोण अयथार्थवादी था। फिर वाणिज्य को केंद्रीय प्राधिकरण के माध्यम से चलाने के प्रयास किये गये। राजधानी के बाहर एक मुक्त बाजार की अनुमति दी गयी जहां समान खरीदा और बेचा जाता था। सौदागरों को अपना व्यापार चलाने के लिए सशुल्क लाइसेंस सेना पड़ता था। चिंग शासित क्षेत्रों की तुलना में ताइपिंगों के अधीन व्यापार पर लगने वाले कर की दर निश्चित रूप से कम थी।

कई तरह से, ताइपिंग आंदोलन ने अपने मूल के महत्वपूर्ण तत्वों को बनाये रखा। इसने अपने गहन धार्मिक चरित्र को कभी नहीं छोड़ा जिसका आधार ईसाई धर्म का एक रूप था (वैसे हंग श्यु-चुआन और आंदोलन के दूसरे नेताओं ने इसकी विलक्षण ढंग से विवचेना की)। ताइपिंग कार्यक्रम के अनेक तत्व भी उस सामुदायिक ढंग की जिंदगी की देन थे जिस ढंग की जिंदगी क्वांगसी के हक्का समुदायों के प्रारंभिक धर्मान्तरित जीते थे।

किसी भी पैमाने से, चाहे हम अपने समय का ही पैमाना क्यूं न लें, ताइपिंगों के कार्यक्रम को सचमुच क्रांतिकारी कहा जा सकता है। वैसे यह आकलन करते समय हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखकर चलना होगा कि ताइपिंग लगातार लड़ते या शत्रुओं से घिरे रहते थे और इसलिए उनके पास अपने उपायों को लागू करने का न तो समय होता था और न ही अवसर। ताइपिंगों ने दो अलग-अलग मानदंड अपनाये – एक नेताओं के लिए, और दूसरा जनता के लिए। फिर भी, ताइपिंगों का यह अत्यधिक आदर्शवादी कार्यक्रम ही था जिसने उन्हें दूसरे किसान आंदोलनों और वंश विरोधी विद्रोहों की तुलना में विशिष्ट बनाया, और इसी ने संभवतः इसके अनुयायियों के धर्मांध उत्साह और निष्ठा को अंत तक प्रेरित किये रखा।

बोध प्रश्न 2

1) लगभग 15 पंक्तियों में ताइपिंगों के भूमि कार्यक्रम का विवेचन करें।

....

....

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) ताइपिंगों का स्त्रियों के प्रति क्या रवैया था? पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित में से कौन से सही या गलत हैं? √ अथवा × का चिन्ह लगायें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

i) ताइपिंगों ने अपने कलैंडर में शुभ और अशुभ दिनों की धारणा को शामिल किया।
ii) कोयला खान श्रमिकों ने ताइपिंगों का समर्थन किया।
iii) जमींदार ताइपिंगों के सक्रिय समर्थक थे।
iv) ताइपिंगों के अधीन व्यापार पर लगने वाले करों की दर ऊंची थी।
vi) सौदागरों को व्यापार चलाने के लिए सशुल्क लाइसेंस लेना पड़ता था।

13.6 ताइपिंगों का पतन

सन् 1853 में नानकिंग पर ताइपिंगों का कब्जा एक अर्थ में तो इस बात का सूचक था कि ताइपिंग विद्रोह की महत्वकांक्षा कितनी असीम थी। लेकिन, एक और अर्थ में इस विजय ने आंदोलन की सीमा का भी संकेत दे दिया, क्योंकि नानकिंग पर विजय के तुरंत बाद ही ताइपिंग नेताओं ने यह महत्वपूर्ण निर्णय ले डाला कि वे अपनी पूरी शक्ति के साथ पीकिंग की ओर नहीं बढेंगे। उन्होंने निर्णय लिया कि वे नानकिंग और यांगसी नदी क्षेत्र पर अपनी पकड़ को मजबूत करेंगे और पीकिंग में अपनी सेना का केवल एक हिस्सा ही भेजेंगें। उनके इस निर्णय ने ही दरअसल चिंग वंश को बचा लिया। ताइपिंगों के उत्तर की ओर कमजोर अभियान को 1855 के वसंत तक कुचल दिया गया और पीकिंग में चिंग सरकार का व्यवस्था केंद्र और मुख्यालय ज्यों के त्यों बने रह सके। ताइपिंग विद्रोह को पूरी तरह कुचलने में तो और नौ वर्ष लग गये फिर भी यांगसी नदी घाटी "स्वर्गीय राज्य" की धुर उत्तरी सीमा बनी रही। इस तरह, चिंग साम्राज्य का एक बड़ा हिस्सा अछूता बचा रहा।

13.6.1 जेंग क्वो-फान और चिंग सरकार के ताइपिंगों को दबाने के प्रयास

ताइपिंग पर कब्जा कर लेने के बाद ताइपिंगों ने अपने सैनिक प्रयासों को यांगसी नदी के सहारे, पश्चिम में वूचंग से पूर्व में चिनकियांग तक के प्रमुख कस्बों और शहरों पर कब्जा जमाने में लगा दिया। शुरुआत में, चिंग सेना की प्रतिक्रिया पूरी तौर पर बचाव करने की रही। शाही सेनाओं ने नानकिंग के बाहर दो शिविर लगाये, एक यांगसी नदी के उत्तर में

और दूसरा उसके दक्षिण में। लेकिन वे ताइपिंग सैनिकों को नदी के दोनो ओर स्थित संपन्न (प्रशासकीय) प्रांतों को रौंदने से रोक नहीं पाये। गिरे हुए मनोबल और पुराने पड़ गये संगठन वाली शाही सेनाएं ताइपिंगों की अत्यधिक प्रेरित और जेहादी सेना के मुकाबले कहीं नहीं ठहरती थीं।

जब चिंग सरकार को आखिरकार इस सच्चाई का होश आया तो उसने हताशा में कई कदम उठा डाले। जैसे, 1853 में उसने अपने ग्रह प्रांत, हुनान में छुट्टी बिता रहे एक महत्वपूर्ण अधिकारी जिंग क्वो फान को यह निर्देश दिया कि वह वहां उपद्रव कर रहे ताइपिंग विद्रोहियों को ललकारने के वास्ते एक सैन्य बल तैयार करे। जेंग ने निष्ठा (या राजभक्ति) का परिचय देते हुए इस निर्देश का पालन किया, लेकिन इसे क्रियान्वित करने के बारे में उसके अपने अलग विचार थे।

जेंग ने दुश्मनों जैसे ही चुस्त संगठन और प्रतिबद्धता वाली एक सेना का गठन करने का काम शुरू कर दिया। इस सेना को ''मानव सेना'' का नाम दिया गया। उसने बहुत सतर्कता बरतते हुए विद्वान अधिकारियों का चयन सेनापतियों के तौर पर किया। इन सेनापतियों ने फिर स्थानीय किसान वर्ग में से ऐसे सिपाहियों की भर्ती की जो उनके प्रति निष्ठावान रहे। नियमित सेना को सिपाहियों की तुलना में अच्छा वेतन और प्रशिक्षण दिया जाता था। उनमें यह विश्वास कूट-कूट कर भर दिया गया कि वे लूटमार करने वाली ''डाकू'' सेनाओं से अपने गावों, अपनी जमीनों, अपने मंदिरों और अपनी जिंदगियों की रक्षा कर रहे थे। साथ ही साथ जेंग क्वो-फान ने स्थानीय लोगों के प्रत्येक वर्ग से भी यह सार्वजनिक आग्रह किया कि वे विद्रोहियों को दबाने के अभियान में सहायता करें।

जेंग की सुविचारित और क्रियान्वित रणनीति ने अच्छे परिणाम दिये। शुरुआत में तो, ताइपिंग सैनिकों और नयी हुनान सेना के बीच होने वाली मुठभेड़ ने किसी के भी पक्ष में परिणाम नहीं दिये। लेकिन 1856 के मध्य में नानकिंग के बाहर शिविर डाले नियमित शाही सेनाओं की जबरदस्त हार ने यह सुनिश्चित कर दिया कि इसके बाद जेंग क्वो-फान की नयी सेना के अलावा और कोई भी सेना ताइपिंगों को ललकार नहीं सकती। इस सच्चाई को स्वीकारते हुए, चिंग दरबार ने जेंग क्वो-फान को दिए हुए अधिकारों और जिम्मेदारियों को और बढ़ा दिया। 1860 तक जेंग को शाही आयुक्त का ऊंचा पद और ताइपिंगों के खिलाफ होने वाली तमाम कार्यवाहियों की कमान दे दी गयी थी और इस वर्ष तक उसके पास 120,000 जवानों की एक बढ़िया सेना और योग्य सेनापतियों और रणनीतिज्ञों की कमान थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.6.2 पश्चिमी ताकतों का रवैया

शुरुआत में, संधिगत बंदरगाहों में विद्यमान पश्चिमी ताकतों का रवैया ताइपिंग विद्रोह के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। 1850 के दशक में पश्चिमी ताकतों और चिंग सरकार के बीच तनाव बढ़ा और इन ताकतों के लिए ऐसा कोई आग्रहपूर्ण कारण नहीं था कि वे चिंग सरकार की सुरक्षा के लिए आगे आतीं। इसके अलावा ताइपिंगों का प्रकट रूप में ईसाई धर्म के एक रूप का पालन करना भी इनके पक्ष में जाता था।

लेकिन, अधिकारिक तौर पर पश्चिमी ताकतों विशेषकर अंग्रेजों, का रवैया अटल तटस्थता या रुक कर देखने का था। जब तक पश्चिमी ताकतों के संधिगत अधिकारों, संधिगत बंदरगाहों और वाणिज्य पर कोई आंच नहीं आ रही थी, तब तक उनके पास हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं था।

लगभग 1860 से इस रवैये में बदलाव आना शुरू हुआ और पश्चिमी लोग ताइपिंगों के अधिकाधिक खिलाफ होते गये। इसके कुछ कारण थे:

i) एक कारण यह था कि यांगसी क्षेत्र में और तट के पास अरसे से चली आ रही अराजकता और हिंसा की स्थिति वाणिज्य के हितों के पक्ष में नहीं थी और विदेशी ताइपिंगों के कब्जे वाले क्षेत्रों में एक स्थिर असरकारी प्रशासन कायम न कर पाने के लिए ताइपिंगों को ही जिम्मेदार मानते थे।

ii) दूसरा कारण था ताइपिंगों का अफीम का विरोध, जिसके पीछे कुछ ही साल पहले अंग्रेजों ने चिंग सरकार से युद्ध लड़ा था।

iii) पश्चिमी लोगों का ताइपिंग छाप ईसाई धर्म से मोह टूटने लगा और उन्हें उसमें कुछ-कुछ कुफ्र भी दिखायी देने लगा।

iv) शायद कहीं अधिक महत्वपूर्ण कारण था पश्चिमी ताकतों और उनकी मांगों के प्रति चिंग सरकार के रवैये में बदलाव जो अपने आपमें चिंग वंश की अंदरूनी दरबारी राजनीति से संबंधित था। 1860 में द्वितीय अफीम युद्ध के बाद संधियों पर हस्ताक्षर के नये दौर के साथ, पश्चिमी ताकतों के लिए चिंग शासन का बना रहना ही हितकारी था, क्योंकि चिंग शासन ही इन संधिगत अधिकारों के बने रहने को सुनिश्चित करने वाला था। फिर भी, पश्चिमी ताकतों को पीकिंग में राजनयिक प्रतिनिधत्व रखने की अनुमति मिल जाने से अब स्थिति यह हो गयी थी कि कुछ प्रमुख पश्चिमी प्रतिनिधि प्रमुख चिंग अधिकारियों से और भी परिचित हो गये थे। वे अब चिंग अधिकारियों में एक ऐसे "नरमपंथी" गुट को भी जान गये थे जो पश्चिम के साथ निकटतर संबंधों के पक्ष में था। पूर्व सम्राट के भाई, राजकुमार कुंग, के नेतृत्व वाले इस गुट के 1861 के बाद, उभरने से पश्चिम के नीतिगत मामले चिंग शासन के प्रति और भी सहानुभूतिपूर्ण हो गये।

पश्चिमी ताकतों की अधिकारिक तटस्थता ने ताइपिंगों के खिलाफ हस्तक्षेप का रूप तभी लिया जब उन्होंने 1860 में शंघाई पर हमला किया। शुरुआत में इसने एक अमेरिकी, एफ.टी. वार्ड की एक निजी सैनिक कमान का रूप धारण किया जिसके लिए वित्त का प्रबंध शंघाई के धनी व्यापारियों की ओर से था। इस सेना की सफलताओं को जल्दी ही सम्राट ने उसे "सदा विजयी सेना" की उपाधि देकर मान्यता प्रदान की। एक अंग्रेज चार्ल्स गॉर्डन, के नेतृत्व में "सदा विजयी सेना" ने जल्दी ही अपनी कार्यवाहियों को केवल शंघाई और उसके आसपास के क्षेत्र की सुरक्षा से बढ़ाकर ली हंग-चांग के नेतृत्व में चीनी सैनिकों के साथ ताइपिंगों के गढ़ों के खिलाफ संयुक्त अभियान तक पहुंचा दिया। लेकिन ताइपिंगों के खिलाफ युद्ध में विदेशियों के इस सीधे हस्तक्षेप से भी महत्वपूर्ण उनका हथियारों की आपूर्ति करना था। इसने ताईपिंगों के खिलाफ चिंग समर्थक सेनाओं को श्रेष्ठता प्रदान करने में एक बड़ी भूमिका निभायी। दरअसल, ली हंग-चांग जैसे अधिकारी कुछ सीमित क्षेत्रों में तो पश्चिमी सहायता लेने के विरुद्ध नहीं थे, लेकिन वे युद्ध में उनकी सीधी भागेदारी के बहुत खिलाफ थे। वे डरते थे कि अगर यूंही रहा तो अंत में पश्चिमी ताकतें चीन के मामलों में और भी आर्थिक हस्तक्षेप करने लग जाएंगी।

DIKSHANT IAS

13.6.3 ताइपिंग आंदोलन की आंतरिक समस्याएं

Call us @7428092240

सन् 1865 में नानकिंग का घेरा डाले शाही सेनाओं की हार के साथ ताइपिंगों की स्थिति में चढ़ाव भी आया और उसी वर्ष ताइपिंग आंदोलन के अंदर एक बड़ा संकट भी देखने में आया। उसके चोटी के नेताओं के बीच होने वाले दलगत झगड़ों ने इस आंदोलन को ऐसा झटका दिया जिससे वह कभी उबर नहीं पाया।

पूर्व राजा, यांग शिन चिंग, ने कई वर्षों से प्रतिद्वंद्वी राजाओं की कीमत पर अपनी स्थिति ऊंची करने का प्रयास किया था। पूर्व राजा के पास निश्चित सैनिक सामर्थ्य थी और वह आध्यात्मिक मामलों में चतुराई से जोड़तोड़ भी कर लेता था (जैसे, समाधि लगा लेना)। इसी के बूते उसने 1856 तक अपनी स्थिति ऐसी कर ली थी कि हंग श्यू-चुआन के बाद और कोई उसकी बराबरी पर नहीं था।

लेकिन, यांग की महत्वाकांक्षा खुद हंग को हटाकर उसकी जगह लेने की थी। उसने इस दिशा में प्रयास भी शुरू कर दिये। लेकिन हंग ने जल्दी ही उसकी चालों को समझ लिया। हंग ने अन्य दो राजाओं, उत्तर राजा और सहायक राजा, को अपनी रक्षा के लिए बुला लिया (दक्षिण राजा और पश्चिम राजा दोनों पहले के अभियानों में मारे जा चुके थे)। उन्होंने पूर्व राजा को मार डाला और उसके 20,000 से भी अधिक अनुयायियों को भी मौत के घाट उतार दिया। लेकिन, इस प्रक्रिया में वे एक दूसरे के विरोधी हो बैठे। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर राजा ने सहायक राजा के पूरे परिवार और अनुयायियों की हत्या करवा दी। उत्तर राजा की इन हरकतों से क्षुब्ध होकर हंग ने यांग के मरने के केवल तीन महीनों के बाद उसे भी मरवा दिया। हंग का भी सहायक राजा से विरोध हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सहायक राजा बड़ी संख्या में अपने अनुयायियों के साथ उससे अलग हो गया।

इस सबके अंत में, हंग के अतिरिक्त नेताओं के मूल गुट का कोई भी सदस्य नहीं बचा। हंग ने अपने आपको सरकारी कामकाज से धीरे-धीरे अलग कर लिया। अगर उसका एक अंतिम शेष सहायक प्रयास न करता तो इस बात की पूरी संभावना थी कि ताइपिंगों का आंदोलन जो सात वर्ष और चल गया, न चला होता।

13.6.4 ताइपिंगों की पराजय

खात्मा जेंग क्वो-फान के समग्र निर्देशन में चलने वाले तिहरे आंदोलन पर हुआ। जेंग के भाई को नानकिंग को घेरने का जिम्मा दिया गया। ली हंग-चांग के पास क्यांगसू को शांत करने का जिम्मा था, जबकि एक और सेनापति जो जुंग-तांग को चेक्यांग प्रांत में लड़ने का जिम्मा दिया गया। इसके पहले, ताइपिंगों का पश्चिम की ओर अंतिम बड़ा आक्रमण अभियान 1861 में पिट चुका था।

सन् 1864 तक, चिंग शासन के प्रति निष्ठावान सेनाओं को एक के बाद एक सफलता मिली थी और नानकिंग में छिपे ताइपिंगों की स्थिति कमज़ोर पड़ गई थी। फिर भी, नानकिंग के रक्षकों ने अंतिम व्यक्ति तक लड़ाई लड़ी और एक व्यक्ति ने भी समर्पण नहीं किया। अंत में 19 जुलाई,1864 को जेंग क्वो-फान की सेना ने नानकिंग पर कब्जा किया तो उसमें बहुत खून बहा। जेंग क्वो-फान की सेनाओं ने अपनी जीत में कोई दया नहीं दिखायी। उन्होंने अभियान के अंतिम चरण में ही कई लाख लोगों को मौत के घाट उतार दिया।

एक समय ऐसा था जब यह संभव दिखायी देता था कि ताइपिंग विद्रोह चिंग शासन का तख्ता पलट देंगे और पूरे चीन पर विजय हासिल कर पाएंगे। लेकिन उनका ह्रास और पतन बहुत तेजी से हुआ। ताइपिंग नेताओं के बीज जो भयंकर शत्रुता बनी, उसने आपसी झगड़ों को जन्म दिया। यह निस्संदेह उनकी हार का एक प्रमुख महत्वपूर्ण कारण था। विद्रोह के अंतिम दौर में, ताइपिंगों के पास सच में कोई केंद्र-केंद्रित कमान नहीं रह गयी थी। उनके सबसे प्रतिभाशाली सेनापति और संगठनकर्त्ता भी छिन गये थे जिन्होंने आंदोलन को बहुत नीचे से उठाकर इस स्थिति तक पहुंचाया था।

संयोग ऐसा रहा कि जब ताइपिंगों के नेतृत्व का स्तर गिरने लगा, तभी चिंग सेनाओं के नेतृत्व में मजबूती और पुनर्जागरण आया। जेंग क्वो-फान के नेतृत्व में पुराने और बेअसर सैनिक तंत्र की जगह जो नयी सेनाओं का गठन किया गया, वह ताइपिंगों की हार में निर्णायक बना। इन सेनाओं के नेताओं का चुनाव खुद जेंग ने पूरी सतर्कता के साथ, उनकी प्रतिभा, योग्यता और उसके प्रति उनकी निष्ठा के आधार पर किया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ताइपिंग आंदोलन की विफलता का एक और कारण उनकी कथनी और करनी के बीच के कुछ गंभीर अंतर थे। ताइपिंग नेताओं ने अपने अनुयायियों को एक सामुदायिक, सादा और कठोर किस्म की जिंदगी का उपदेश दिया और ऐसी ही जिंदगी उन पर थोपी। लेकिन, विशेषकर अपने आपको नानकिंग में जमा लेने के बाद, उन्होंने खुद इस किस्म की जिंदगी का पालन नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने अत्यधिक दिखावे वाली ऐश की जिंदगी जी।

ताइपिंगों ने अपने आपको चिंग वंश के विदेशी मांचू शासकों के खिलाफ, तमाम चीनियों के नेता के रूप में पेश किया। लेकिन यह राष्ट्रवादी आग्रह उनके धार्मिक उपदेशों और व्यवहारों से मिश्रित था, जो सभी चीनियों को स्वीकार्य नहीं थे। कन्फ्यूशियस पंथ के उनके अस्वीकार और समानतावाद के विचारों ने कुलीनों को उनसे अलग कर दिया और मंदिरों और देवालयों को नष्ट करके उन्होंने निम्न वर्ग के लोगों को भी अपने से अलग कर लिया। गैर-ईसाई धर्मों के प्रति उनके संदेह और असहिष्णुता के कारण उनके लिए उस समय के अनेक गुप्त संगठनों और विद्रोही गुटों के साथ लंबे समय तक सहयोग करना कठिन रहा।

अंत में, शायद चिंग शासन पर तेजी से निर्णायक विजय हासिल करने में कामयाब न होना ही शायद उनके हितों के विरुद्ध गया। पीकिंग तक बढ़ जाने में उनकी नाकामयाबी और नानकिंग के घेरे को उनका जल्दी न तोड़ पाना, ये दोनें ही ऐसी भयंकर सैनिक भूलें थीं जिसने लड़ाई के लंबे खिंचने को सुनिश्चित कर दिया। उससे उस क्षेत्र की सामान्य जिंदगी और आर्थिक गतिविधि नष्ट हो गयी। लोगों ने अव्यवस्था के लिए चिंग शासन को नहीं बल्कि विद्रोही ताइपिंग सैनिकों को दोषी ठहराया। इस बात के भी प्रमाण हैं कि यही मुख्य कारण था जिससे विदेशियों का रवैया निर्णायक तौर पर ताइपिंगों के विरोध में हो गया। जब यह स्पष्ट हो गया कि ताइपिंग एक स्थिर और सुसंगत प्रशासन देने और क्षेत्र में शांति कायम करने की अपनी सामर्थ्य का प्रमाण नहीं दे सकते तो विदेशी व्यापारिक समुदाय विद्रोहियों के खिलाफ हो गया। वैसे यह ताइपिंगों की हार का प्रमुख कारण तो नहीं था, पर यह कारण महत्वहीन भी नहीं था।

बोध प्रश्न 3

1) पश्चिमी ताकतों का ताइपिंगों के प्रति क्या रवैया था? 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

2) चिंग दरबार ने ताइपिंगों को कुचलने के जो प्रयास किए उनका उल्लेख कीजिए। लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.7 ताइपिंग विद्रोह की प्रकृति और प्रभाव

ताइपिंग विद्रोह की प्रकृति और चीन पर इसके प्रभाव को लेकर काफी बहस चलती रही है। यहां हम इन बहसों से संबंधित कुछ बहसों पर विचार करेंगे।

13.7.1 विद्रोह अथवा सामाजिक क्रांति

शाही चीन के लंबे इतिहास में, समय-समय पर व्यापक और जबरदस्त किसान विद्रोह होते रहे। इस अर्थ में, ताइपिंग विद्रोह को ऐसा अंतिम विद्रोह माना जा सकता है।

फिर भी, अनेक अर्थों में, ताइपिंग विद्रोह एक "आम" चीनी किसान विद्रोह नहीं था। यह विद्रोह एक ऐसे क्षेत्र (दक्षिण चीन) में और एक ऐसे समय (मध्य 19वीं शताब्दी) में फैला जब वहां एक बिल्कुल नये प्रकार की स्थिति के प्रभाव को महसूस किया जा रहा था – अर्थात् पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति को। इस तथ्य का ताइपिंग विद्रोह पर कई तरीकों से गहरा प्रभाव पड़ा।

सबसे स्पष्ट रूप से, पश्चिम का प्रभाव ताइपिंग विद्रोह की विचारधारा पर इसके प्रवर्तक हंग श्यू-चुआन के धार्मिक विश्वासों के माध्यम से पड़ा। ताइपिंगों की धार्मिक विचारधारा इनके कार्यकलापों में कभी कम महत्वपूर्ण नहीं रहा। बल्कि यह सबसे आगे रहा। यह सही है कि चीनी इतिहास में मिलने वाले कई अन्य किसान विद्रोह कन्फ्यूशियस विरोधी और

समानतावादी तेवलर के थे। लेकिन ताइपिंग नेताओं के ईसाई धार्मिक विश्वासों ने उनके कन्फ्यूशियस विरोधी समानतावादी विचारों को कहीं अधिक तीखा और दुराग्रही बना दिया। किसी और विद्रोह ने तमाम लोगों के भाइचारे और समानता के विचार को भूमि वितरण और सामुदायिक स्वामित्व जैसे ठोस कार्यक्रमों का रूप नहीं दिया था। किसी और विद्रोह ने उस समय की अफीम धूम्रपान, जुआ, वेश्यावृत्ति आदि बुराइयों को मिटाने का बीड़ा इतने जुनून के साथ नहीं उठाया था। यही नहीं, ताइपिंग अपनी दहलीज पर पश्चिमी ताकतों की मौजूदगी के मामले के प्रति भी सचेत थे। उन्होंने आंखें मूंदकर विद्रोहियों का विरोध किये बिना इस मसले का हल निकालने का प्रयास भी किया।

संक्षेप में, ताइपिंग विद्रोह एक शासक घराने को हटाकर दूसरे शासक घराने को स्थापित करने का ध्येय लेकर चलने वाला कोई साधारण परंपरावादी विद्रोह न होकर, एक ऐसा आंदोलन था जिसके पास एक दृष्टि थी, एक सामाजिक संदेश था और एक व्यापक सुधार कार्यक्रम था। यह चीनी इतिहास के एक अनूठे, संक्रमणकालीन दौर की देन था। इस विद्रोह ने कुछ निश्चित सीमाओं में रहते हुए उस युग की समस्याओं का हल ढूंढने का प्रयास किया। ताइपिंग विद्रोह के इसी अनूठेपन के कारण इसे "क्रांति" कहा जाने लगा। चीन के साम्यवादी इतिहासकारों ने इसे "आधुनिक चीन के इतिहास में क्रांति का महान ज्वार भाटा" कहा है। उनके विचार में ताइपिंग विद्रोह राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और सामाजिक बदलाव के लिए चीनी जनता के शताब्दी लंबे संघर्ष का प्रारंभिक अभियान था जिसने 1949 में आकर चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चीनी जनता की क्रांति का रूप लिया।

ताइपिंग विद्रोह को शाही चीन के अंतिम वंश विरोधी विद्रोह के रूप में या आधुनिक चीनी इतिहास में मिलने वाले कई क्रांतिकारी विप्लवों की शृंखला के प्रथम विप्लव के रूप में देखना प्रलोभनकारी है। फिर भी, ताइपिंग विद्रोह को उसकी असलियत में देखना शायद अधिक सटीक होगा। यह विद्रोह अपूर्व सामाजिक और आर्थिक संकट में जकड़े एक ऐसे समाज की देन था जिसमें जनता के पास अपने असंतोष और निराशा को व्यक्त करने का इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं था कि वह व्यवस्था के विरोध में हिंसक विद्रोह कर दे।

DIKSHANT IAS

13.7.2 परिणाम

Call us @7428092240

केवल चीनी साम्यवादियों ही नहीं, बल्कि 20वीं शताब्दी के, डा. सुन यात सेन जैसे, दूसरे दृष्टा और क्रांतिकारियों ने भी ताइपिंगों के राष्ट्रवादी विश्वास, उनके सामाजिक कार्यक्रम और व्यवस्था पर उनके प्रहार से प्रेरणा ग्रहण की। फिर भी, राजभक्त सेनाओं ने ताइपिंगों का सफाया कर दिया तो उस विद्रोह की बस यह याद और प्रेरणा ही बची रह पायी। यहां तक कि कोई ऐसे भूमिगत गुट या धाराएं भी नहीं रहीं जो ताइपिंगों से जुड़ी हों या इसके परचम को थामे हों। 1840 के दशक में उभरकर तेजी से प्रसिद्धि और शक्ति के शिखर पर पहुंच जाने वाला यह आंदोलन कुल मिलाकर 20 साल भी नहीं चल सका। यह अपने आपमें अजीब बात है कि ताइपिंग विद्रोह ने जिस चिंग वंश को खत्म कर देने का लक्ष्य सामने रखा था, उसकी राजनीति पर इस विद्रोह का कोई महत्वपूर्ण असर नहीं पड़ा। चिंग शासकों ने ताइपिंगों के खिलाफ लड़ाई तो जीती, लेकिन उनकी अपनी ताकत इस प्रक्रिया में क्षीण हो गयी। ताइपिंगों को दबाने के लिए जेंग क्वो-फान की जिस हुनान सेना और ली हंग चांग की जिस सेना और जिन अन्य सेनाओं का इस्तेमाल किया गया था वे सत्ता के उन नये केंद्रों के मुख्य आधार बन गये जो पूरी तौर पर चिंग दरबार के आश्रित नहीं थे। विद्रोह को दबाने की हताशा में चिंग शासन ने अपनी चीनी उच्चाधिकारियों को महत्वपूर्ण अधिकार दे डाले, जिससे अतीत में वे सतर्कता से बचते रहे थे। उन्होंने तमाम नियमित सेनाओं पर से अपना एकाधिकारी नियंत्रण छोड़ दिया जिसे 11वीं शताब्दी में सुंग सम्राटों ने हासिल किया था। इन्हें प्रांतीय अधिकारियों और स्थानीय भद्रजनों को कार्य करने की काफी आजादी भी देनी पड़ी। इस सबने मिलकर विद्यमान राजनीतिक ढांचे के अंदर सत्ता के एक निश्चित विचलन या स्थानांतरण की स्थिति बना दी।

जब तक जेंग क्वो-फान जैसे कट्टर भक्तों के हाथों में नेतृत्व रहा, सत्ता में इस विचलन का इस्तेमाल चिंग सम्राटों के शासन को खुले आम चुनौती देने के लिए नहीं किया गया। लेकिन बाद में जाकर इसने उनकी सत्ता और प्रतिष्ठा की बुनियाद में दरार डालने में भूमिका निभायी। यह अपने आपमें महत्वपूर्ण है कि 1911 में चिंग शासन का तख्ता पलटने वाली अंतिम क्रांति में प्रमुख महत्वपूर्ण कारक किसान इतने नहीं थे जितने कि नयी सेनाओं के सिपाही और अधिकारी और स्थानीय भद्रजन।

बोध प्रश्न 4

1) क्या आप ताइपिंग विद्रोह को एक सामाजिक क्रांति मानते हैं? 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) ताइपिंग विद्रोह का चिंग शासन पर क्या प्रभाव पड़ा? 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.8 सारांश

ताइपिंग विद्रोह मध्य 19वीं शताब्दी में होने वाला एक व्यापक जन-विद्रोह था जिसने चिंग वंश के शासन की बुनियाद को हिला कर रख दिया। चीन के दूर दराज दक्षिण-पश्चिमी कोने में क्वांगसी में ईसाई धर्म के एक रूप का प्रचार करने वाले एक धार्मिक पंथ से शुरू होकर, इसने तेजी से एक जबरदस्त सैनिक शक्ति वाले व्यापक राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। चिंग वंश की कमजोरी और इस समय की अनिश्चित स्थितियों के कारण जनता में अशांति और असंतोष का भाव बना। ऐसा विशेषकर दक्षिण चीन में हुआ।

अपने कार्यक्रम और दृष्टि में ताइपिंग आंदोलन ने एक साहसिकता और निश्चित प्रगतिशीलता दिखायी, जो इसे पहले के किसान विद्रोहों और अन्य समकालीन विद्रोही गुटों से अलग करती थी। लेकिन, इसकी कुछ घातक खामियां भी थीं जिन्होंने इसे पंगु कर दिया। जैसे, इसके शीर्ष नेताओं में फूट और मनोबल का पतन। ताइपिंग विद्रोह के ताबूत में आखिरी कील तब ठुक गयी जब चिंग अधिकारियों को पुरानी व्यवस्था के बचाव में तमाम सेनाओं को जुटा लेने और ताइपिंगों को हराने में समर्थक एक नये सैनिक तंत्र का गठन करने में सफलता मिल गयी।

ताइपिंग विद्रोह कुचल दिया गया और उसका वास्तव में सफाया कर दिया गया। लेकिन इसे दबाने की प्रक्रिया में चिंग वंश को अपनी चीनी अधिकारियों और नयी सेनाओं के सेनापतियों और स्थानीय भद्रजनों को महत्वपूर्ण अधिकार देने पड़े। आगे जाकर, इसी कारण चिंग सत्ता की बुनियाद खोखली पड़ गयी और उसका जल्दी ही पतन हो गया। ताइपिंग विद्रोह एक स्पष्ट याद बन कर रहा और उसने राष्ट्रवादियों और क्रांतिकारियों की आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा-स्रोत का काम किया।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर भाग 13.2 के आधार पर लिखें।
2) अपना उत्तर भाग 13.3 के आधार पर लिखें।

बोध प्रश्न 2

1) देखें उपभाग 13.4.1
2) देखें उपभाग 13.4.2
3) i) × ii) √ iii) × iiv) √ v) √

बोध प्रश्न 3

1) अपना उत्तर उपभाग 13.5.2 के आधार पर लिखें।
2) आपको अन्य प्रयासों के अतिरिक्त यूनान सेना की भूमिका का भी विवेचन करना है। देखें उपभाग 13.5.1

बोध प्रश्न 4

1) अपना उत्तर भाग 13.6 के आधार पर लिखें।
2) अपना उत्तर भाग 13.7 के आधार पर लिखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 14 बॉक्सर विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 चीन की सामाजिक-आर्थिक स्थितियां
14.3 साम्राज्यवाद
14.4 यी हो तुआन
14.4.1 शांतुग क्यों?
14.4.2 विद्रोह
14.4.3 साम्राज्यवादियों का हस्तक्षेप
14.4.4 बॉक्सर प्रोटोकॉल
14.5 विद्वानों की बहस
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न बातों की व्याख्या कर पायेंगे:

- उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में चीन की बिगड़ती सामाजिक आर्थिक स्थितियां,
- चीन में साम्राज्यवादी अतिक्रमण की सीमा,
- बॉक्सरों का उदय, उनकी गतिविधियां और उन्हें दबाने के प्रयास, और
- बॉक्सर विद्रोह का अंत करने वाले बॉक्सर प्रोटोकॉल की विशेषताएं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.1 प्रस्तावना

सन् 1900 का बॉक्सर विद्रोह या यी हो तुआन आंदोलन साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक बड़ा किसान विद्रोह था, यी हो तुआन का अर्थ होता है सदाचारिता और तालमेल। इस संगठन का उदय और विकास चीन के शांतुंग प्रांत में हुआ। चीनी जिसे अधिकारिक तौर पर यी हो तुआन आंदोलन कहते हैं। पश्चिमी विद्वान उसे बॉक्सर विद्रोह कहते हैं, इसे बॉक्सर (या मक्केबाज़) विद्रोह इसलिये कहते हैं क्योंकि इस आंदोलन के अनेक कार्यकर्ता और क्रांतिकारी चीनी युद्ध कलाओं का अभ्यास करते थे, जिनमें "बॉक्सिंग (या, मुक्केबाजी) भी थी।

वैसे तो इस आंदोलन का पहला निशाना ईसाई धर्म का प्रचार करने वाले मिशनरी थे, फिर भी इसका असली ध्येय साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करना था। यह हिंसक, नाटकीय और विप्लवकारी आंदोलन विदेशी शक्तियों द्वारा चीनी राष्ट्र को गुलाम बनाने और उन बिगड़ती सामाजिक,.आर्थिक स्थितियों का परिणाम था जिन्हें राजनीतिक स्तर पर सुधार करके रोकना संभव नहीं था। चीन पर पश्चिमी अतिक्रमण की कसर पूरी करने के लिये जापानी साम्राज्यवाद भी जापान को और कुचल देने वाली शक्ति के रूप में उभरा। मांचू शासन या चिंग वंश अपनी आंतरिक स्थितियों के कारण और चीन पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व होने के कारण भी सभी मोर्चों पर काफी हद तक कमजोर हो गया था। बॉक्सर विद्रोह ने साम्राज्यवादी शासकों और मांचू शासकों पर भी जबरदस्त प्रहार किया। अंत में सरकार ने साम्राज्यवादी ताकतों की मदद से इस आंदोलन को दबाया, जिसके परिणामस्वरूप 1910 के बॉक्सर प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर हुए – यह सबसे अपमानजनक असमान संधि थी। इसके तहत चीन को विदेशियों को जो हरजाने देने पड़े वे इतने भारी थे कि इन्हें वसूलने के लिए चीनी जनता को पीस डाला गया। इससे चीन की आंतरिक स्थिति और भी बिगड़ गयी, और अंत में इन्होंने और भी क्रांतिकारी विद्रोह को जन्म दिया, जिससे 1911 में राजतंत्र का पतन हो गया। यी हो तुआन (बॉक्सर आंदोलन) के लगभग सभी पहलुओं पर इस इकाई में विचार किया गया है।

14.2 चीन की सामाजिक-आर्थिक स्थितियां

यहां हम 19वीं शताब्दी में चीन की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर चर्चा कर रहे हैं।

इस अवधि के दौरान जनसंख्या में हुई वृद्धि के परिणमस्वरूप शिक्षित या साक्षर वर्ग में बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हुई। सरकारी नौकरियों के लिये होड़ मच गयी क्योंकि घटते सँसाधनों के दावेदार अब और भी अधिक हो गये थे। चिंग सरकार ने प्रशासनिक ढांचे को जनसंख्या की वृद्धि और वाणिज्य के अनुसार बनाने के लिये उसका पर्याप्त विस्तार नहीं किया सरकार के संस्थात्मक ढांचे में वृद्धि न हो पाने का अर्थ यह हुआ कि पढ़े-लिखे युवा उन्नति नहीं कर पाये। नौकरी की होड और कुंठा के कारण सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार फैल गया। घूस, भाई- भतीजावाद और पक्षपात, ने प्रशासन की प्रक्रियाओं पर उलटा प्रभाव डाला। इसके चलते कन्फ्यूशिसवादी सिद्धांत की श्रेष्ठता भी भंग हुई। व्यक्तिगत गुट और संरक्षितों का जाल उभरा जिसका परीक्षा व्यवस्था, कराधान और न्याय-प्रशासन पर उल्टा प्रभाव पड़ा।

किसान और भी पिस गया। जिन प्रांतीय अधिकारियों का मुख्य काम यह था कि वह उनको दिये गये कोटे के अधिकार पर खेतीहरों से कर लें और कुछ अधिशेष या अतिरिक्त राशि अपने लिये रखें, वे अधिकारी आम आदमी के प्रति निर्मम बन गये। इन अधिकारियों से केंद्रीय कोषागार की माँग बहुत अधिक थी क्योंकि पीकिंग सरकार सेना, राजदरबार के अधिकारी वर्ग और भव्य समारोहों के रख-रखाव के लिये संघर्ष कर रही थी । अधिकारी अपनी ओर से इस बोझ को किसान वर्ग पर लाद रहे थे, जिसके लिये वे भारी मांगे उन पर थोप रहे थे और सभी किस्म के अत्याचारी तरीके अपना रहे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि किसान विद्रोहों की संख्या बढ़ गयी। अनेक किसान गाँव छोड़ कर शहरों को चले गये।

जिस लोक-सेवा ने चीन को शताब्दी दर शताब्दी और वंश दर वंश एक बनाये रखा था वही अब उसकी प्रगति में बाधा बन गयी। अधिकारियों के लोभ और जनता पर मुसीबतें थोपने के साथ- साथ अकाल और बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाएं भी अक्सर आती रहती थी : सरकार के जनता को राहत देने की दिशा में असफल रहने के कारण गांवों में कष्ट और तनाव कई गुना बढ़ गये। प्रशासन संगठित दमन की मूर्ति ही दिखाई देता था। दूसरी ओर केन्द्रीय सत्ता की वैधता को देश के अनेक भागों में विद्रोहियों ने चुनौती दे रखी थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरकार के कमजोर होने के अतिरिक्त जनसंख्या में भयंकर वृद्धि ने भी प्रोद्योगिक विकास को सीधे-सीधे अवरुद्ध किया। जैसा कि जॉन फेयर बैक ने कहा है, ''मानव शक्ति के बहुतायत होने के कारण श्रम बचाने वाले उपकरण खर्चीले पड़े'' मानव जीवन और मानव श्रम दोनों ही बहुत सस्ते हो गये थे। आम आदमी के लिये जीवन अस्तित्व के लिये संघर्ष हो कर रह गया था। परिवारो को अनाज के प्रत्येक दानों के लिये पानी देना पड़ता था। कुछ लोग करों से बचने के लिये धनी और शक्तिशाली जमींदारों से जुड़ जाते थे और उन्हें मजदूर, गुंडे और लड़कियां देते थे। जो लोग शहरो को भाग गये, उनमें से भाग्यशाली लोग जीवित रहने के लिये सस्ते में अपना श्रम बेच देते थे। बाकी भिखारी वेश्या ,अपराधी आदि हो गये, आत्म-निर्भर किसान के लिये भी यह मुश्किल का समय था। उसे चरित्रहीन अधिकारियों, बड़े जमींदारों के गुंडों और भूमिहीन वर्ग से निकलने वाले डाकुओं से सुरक्षा की आवश्यकता होती थी।

चीन की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में इस गहराते संकट को साम्राज्यवाद की शोषक माँगों ने और भी हवा दी।

14.3 साम्राज्यवाद

अफीम युद्धों में चीन की सैनिक हार और असमान संधि व्यवस्था ने चीन को पश्चिमी ताकतों का एक अर्ध-उपनिवेश सा बना दिया था। साम्राज्यवादी आधुनिकीकरण के नाम पर अपनी कार्यवाहियों को निर्लज्जता से उचित ठहराते थे। उदाहरण के लिये, इंग्लैंड यह दावा करता था कि उसके इस कार्य से चीन राष्ट्रों के परिवार में आ गया था और समानता की शर्तों पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रवेश पा ा था। लेकिन बाहरी हस्तक्षेप ने सम्राट की स्थिति को खटाई में डाल दिया। लोग जिस सम्राट के 'स्वर्ग का पुत्र' होने में विश्वास करते थे उसे

अशक्त देखकर वे निराशा और आघात की स्थिति में थे।

और बातों के साथ, चीन में पश्चिमी ताकतों की घुसपैठ ने भारी संख्या में ईसाई मिशनरियों को प्रवेश दिलाया और चीनियों के साथ व्यापार करने के लिये बिचौलियों का एक वर्ग खड़ा किया जिन्हें कम्प्रेडर (Compradare) कहा जाता था। इस दोनों कारकों ने बाद के वर्षों में देश पर काफी प्रभाव डाला। विदेशी ताकतों और बिगड़ती सामाजिक-आर्थिक स्थितियों की चुनौतियों से सफलतापूर्वक निपटने के लिये चिंग सरकार ने सुधारों के जरिये व्यवस्था को आधुनिक बनाने का प्रयास किया। 1860 के दशक में स्वयं ''सुदृढीकरण आंदोलन'' छेड़ा गया और बाद में चीनी जीवन के कुछ पहलुओं को कम से कम आंशिक तौर पर ही आधुनिक बनाने के लिये शाही फरमान और कानून पारित किये गये। शिक्षा, सैनिक प्रशिक्षण, विज्ञान. प्रौद्योगिकी और कानूनी व्यवस्था सभी सुधार आंदोलन के दायरे में आ गये। 1898 में सरकारी तौर पर लागू किये तथाकथित ''सौ दिनों के सुधार''में इनमें से अनेक विषयों को छुआ गया, लेकिन ये सुधार ''बहुत कम और बहुत देरी से''होने के कारण एक ढहती व्यवस्था द्वारा अपने आपको व्यवस्थित रखने के अंतिम प्रयास जैसे दिखायी दिये।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में विश्व पूंजीवाद अपने एकाधिकारवादी चरण में प्रवेश कर गया था जो कि साम्राज्यवाद का चरण होता है, ऐसे चरण में, लेनिन के शब्दों में ''आवश्यक वस्तुओं के निर्यात की तुलना में पूंजी का निर्यात अत्याधिक महत्वपूर्ण हो जाता है ''विश्व के क्षेत्रीय विभाजन के लिये संघर्ष अत्यधिक तेज हो गया। चीन इस एकाधिकारवादी चरण का एक शिकार था। 1895 में जापान के हाथों चीन की हार और एक और असमान संधि – शिमोनोसेकी संधि संपन्न होने से चीन में एक और साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा हो गयी। चीनियों के लिये यह संकट कभी इतना गंभीर नहीं रहा। शिमोनोसेकी की संधि में यह प्रावधान था कि जापानी व्यापारी चीन के संधिगत बंदरगाहों में कारखाने चालू कर सकते थे। इस प्रावधान से साम्राज्यवाद की यह मांग पूरी हुई कि उसके पास पूंजी के निर्यात के लिये निकासी के मार्ग हों। चीन को इस बात के लिये बाध्य किया गया था कि वह पहले की असमान संधियों में सबसे अनुकूल राष्ट्र-संबंधी शर्त को स्वीकार करे जिसका अर्थ यह होता था कि एक को दिये गये विशेषाधिकार दूसरों को भी दिये जायें। इसलिये, जैसे ही जापान को चीन में कारखाने चालू करने का विषेषाधिकार मिला, दूसरी तमाम ताकतों को भी यह विषेषाधिकार मिल गया। 1895-96 के वर्ष में ही कुछ कारखाने चीन में स्थापित हो गये थे जो अपने लिये मुनाफा कमाने की गरज से न केवल चीनियों से सस्ती मजदूरी लेते थे बल्कि इसके अपने उद्योग के विकास को भी अवरुद्ध करते थे.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान ने भी चीन पर युद्ध का भारी हरजाना थोप दिया था जिसकी अदायगी के लिये चिंग सरकार को रूस-फ्रांस और आंग्ल-जर्मन एकाधिकार – पूंजीवादी गुटों से दो बड़े ऋण लेने पड़े। बदले में इन गुटों को चीन में विशेषाधिकार देने पड़े। इन ऋणों से जुड़ी ऊंची ब्याज-दरों और राजनीतिक शर्तों ने चीनी प्रभुसत्ता का मजाक बना दिया। साम्राज्यवादी चीन में जिन विदेशी बैंकों के जरिये पूंजी का निर्यात करते थे उन्होंने भी मांचू सरकार के सामने अपनी शर्त रखी।

शिमोनोसेकी की संधि में जापान के चीनी क्षेत्र के बड़े टुकड़ों पर कब्जे का भी प्रावधान था – ये थे हियाओतुंग प्रायद्वीप और ताइवान। इससे चीनी क्षेत्र के लिये अंतर-साम्राज्यवादी भगदड़ की प्रक्रिया की भी शुरुआत हुई। एक समय ऐसा आया जब चीन का विभाजन लगभग अपरिहार्य दिखता था। 1896-98 के बीच अधिकांश चीन विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों के प्रभाव में बंट गया था। उदाहरण के लिये:

- रूस को महान दीवार के उत्तर के क्षेत्र मिले,
- यांगसी घाटी इंग्लैंड को मिली,
- शांतुंग जर्मनी को मिला,
- फ्यूकिएन जापान को और क्वांगतुंग, क्वांगसी और यूनान के बड़े हिस्से फ्रांस को मिले।

इन क्षेत्रीय रियायतों पर अपना कब्जा बनाये रखने के लिये इन ताकतों ने रेलवे का निर्माण तथा अन्य कई निर्माण करने शुरू कर दिये और इन क्षेत्रों के संसाधनों का दोहन किया। इससे चीन में बाहर से पूंजी का आना भी बना रहा। साम्राज्यवादी ताकतों ने वैसे तो चीन का दोहन करने के लिये एक दूसरे का साथ दिया, फिर भी उन्होंने अपने आपको मिलने वाले प्रत्येक अधिकार और विशेषाधिकार को दूसरों से बचा कर भी रखा। इसलिये, इन ताकतों के बीच

टकराव भी एक उल्लेखनीय विशेषता रही।

भारती संख्या में विदेशी मिशनरी चीन आये। अधिकारिक चीनी इतिहास में उन्हें ऐसे व्यक्ति बताया गया जो धर्म का लबादा पहनते थे लेकिन वास्तव में साम्राज्यवादी आक्रमकता को बढ़ावा देते थे। ये मिशनरी चीन-जापान युद्ध से कई वर्षों पहले से चीन में आते रहे थे। उनकी गतिविधियों में गिरजाघरों का निर्माण करना, धर्म का प्रचार करना, और कभी-कभी स्थानीय बाशिंदों के साथ टकराना शामिल था। 1860 के दशक से चीन में मिशनरी-विरोधी संघर्ष छेड़े गये।

बॉक्सर विद्रोह का रुख निश्चित तौर पर ईसाई विरोधी या मिशनरी-विरोधी था, और इसलिये विद्वानों के हलकों में चलने वाली बहसों में इस बात का समाधान निकालने के प्रयास हुए हैं कि यह विद्रोह मुख्य तौर पर "विदेशी विरोधी" था या "मिशनरी-विरोधी"। चीन की कम्युनिस्ट सरकारी विवेचना के अनुसार यह विद्रोह पहले तो साम्राज्यवाद-विरोधी और दूसरे नंबर पर मांचू-विरोधी भी था। संभावना इस बात की बहुत है कि, मिशनरी क्योंकि विदेशी थे, इसलिये वे विद्रोहियों का पहला निशाना बने। जनसाधारण और किसान ईसाई धर्म के घोर विरोधी इस कारण से थे कि ईसाई धर्म सभी विदेशी वस्तुओं का प्रतीक था। बॉक्सर विद्रोहियों के लिये, विदेशी मिशनरी "पहले शैतान" थे और उनके स्वदेशी चीनी ईसाई "दूसरे शैतान" थे। इसलिये दोनों को समाप्त करना आवश्यक था। विक्टर पर्सेल जैसे अनेक पश्चिमी विद्वान भी यही दृष्टिकोण रखते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में चीन की समाजिक-आर्थिक स्थितियों पर लगभग 10 पंक्तियों में चर्चा करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) चीन-जापान युद्ध के दौरान और बाद में साम्राज्यवाद ने चीन में किस तरह घुसपैठ की? लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

14.4 यी हो तुआन

एक लम्बे समय से चीन में गुप्त संगठन रहे हैं। इन संगठनों ने दलितों को संगठित करके उन्हें अनेक स्थापित व्यवस्थाओं के विरुद्ध विद्रोही बनाया है। जब कभी कष्ट और दु:ख असहनीय हो गये तो, लोगों ने या तो डकैती को अपना लिया या वे गुप्त संगठनों के सदस्य हो गये। ऐसे उदाहरण हैं कि गुप्त संगठन के नेताओं ने किसी वंश के विरुद्ध सफल विद्रोह खड़ा करके अपना वंश राज्य स्थापित कर लिया। बॉक्सर विदोहियों या **यी हो तुआन** के संबंध में यह विश्वास किया जाता है कि वे व्हाइट लोटस (या, श्वेत कमल) के थे। यह गुप्त संगठनों का एक गुट था जिसका दावा था कि वह उन मिंग सम्राटों का वंशज था जो 1644 में चिंग के गद्दी हथियाने से पहले चीन पर शासन करते थे। उनकी गतिविधियाँ कुछ-कुछ दबी हुई थीं या एक लंबे समय तक वे ध्यान देने योग्य नहीं रही:

जैसा कि कुछ सरकारी दस्तावेजों से पता चलता है, अगस्त 1898 में, बॉक्सर विदोही चिल्बी और शां तुंग प्रांतों की सीमाओं पर उभरे। अक्टूबर में विद्रोह की शुरुआत वास्तव में ईसाई – परिवारों और घरों पर हमलों से हुई, इसके कुछ समय पहले इस आशय के इश्तिहार या पोस्टर दिखायी पड़े थे कि नव-ईसाइयों को मार डाला जायेगा। बॉक्सर विद्रोह में भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्तियों के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि कट्टर मांचू-विरोधी थे जो सभी ओर घृणा के पात्र विदेशियों के विरुद्ध दूसरे विद्रोहियों के साथ जुड़ गये थे। कुछ पोस्टर और दीवार पर लिखी इमारतों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि कम से कम बॉक्सर विद्रोहियों का एक गुट मांचू-विरोधी था। विद्रोह की शुरुआत शांतुंग में हुई।

14.4.1 शांतुंग क्यों?

जिस शांतुंग प्रांत में विद्रोह की जड़े गहरी जमी थीं, वहां हिंसा का फूटना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। शांतुंग को साम्राज्यवादी अतिक्रमणों को झेलना पड़ा। चीन-जापान युद्ध के दौरान, जापान की आक्रमणकारी सेनाओं ने शांतुंग प्रायद्वीप पर हमला किया और तीन वर्षों तक इस क्षेत्र पर इस धमकी के साथ कब्जा बनाये रखा कि जब तक हरजाने की राशि पूरी नहीं चुका दी जाती वह वहां से नहीं हटेगा। शांतुंग के दो बड़े बंदरगाह जर्मनी और इंग्लैंड के कब्जे में आ गये। जर्मनी ने पूरे प्रांत को अपना प्रभाव क्षेत्र भी घोषित कर लिया। साम्राज्यवादियों ने तटीय जहाजरानी और रेलपथ शुरू किये तो उनका रोजगार के स्वरूप पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अनेक कुली, फेरीवाले और छोटे व्यापारी बेरोजगार हो गये। इससे कुल बिगड़ती सामाजिक-आर्थिक स्थिति और बदतर हो गयी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक, गिरजाघरों का एक जाल पूरे चीन में फैल चुका था। अकेले शांतुंग में एक हजार से ऊपर गिरजाघर और कोई अस्सी हजार मिशनरी और नव-ईसाई थे साम्यवादियों के सत्ता में आने के बाद लिखे गये चीन के आधिकारिक इतिहास के अनुसार, मिशनरियों को चीनी जनता के खिलाफ हमले के हथियारों के रूप में इस्तेमाल किया जाता था जैसा कि एक विवरण से पता चलता है:

"अनेक मिशनरी – अपने महाधर्माध्यक्षों (आर्कबिशप), धर्माध्यक्षों (बिशप) और अन्य वरिष्ठ धर्माधिकारियों के निर्देशन में गुप्त सूचनाएं एकत्रित करते थे; जबरन खेत-खलिहान को हथिया लेते थे; निचली अदालतों पर दबाव डालते थे; लोगों से धन वसूलते थे; गुंडों और दूसरे गलत तत्वों को धर्मान्तरण के लिए खरीदते थे; वारदातें कराते थे; आम चीनी आदमी पर धौंस जमाते थे; और हत्या जैसे अपराध करते थे। प्लेग की तरह उन्होंने चीनी जनता को असीम कष्ट दिये, बड़े-छोटे चिंग अधिकारी साम्राज्यवादी अत्याचार के आगे नाक रगड़ते थे, जनसाधारण और मिशनरियों के बीच झगड़ों में वे हमेशा मिशनरियों का बचाव करते थे और जनसाधारण का दमन करते थे और उनके लिये सिर छिपाने को कोई जगह नहीं रह जाती थी।"

उपर्युक्त विवरण पढ़ने के बाद यह समझ में आ जाता है कि मिशनरियों के विरोध की घटनाएं इतनी अधिक क्यों हुई: प्रत्येक मामले में साम्राज्यवादी दंड की मांग करते थे, हरजाना वसूलते थे, और इस तरह-ईसाई धर्म-संस्था का विस्तार करते थे। ऐसे में चीनी लोग साम्राज्यवादियों और उनके पिछलग्गुओं के खिलाफ हथियार उठाने के अलावा और क्या कर सकते थे।

14.4.2 विद्रोह

विदेशी गिरजाघरों के विरुद्ध जनता के संघर्षों की शुरुआत 1896 में शांतुंग में **ता ताओ हुई**

(बृहत् खड्ग संगठन) (Big Sword Society) नाम के एक गुप्त संगठन के नेतृत्व में हुई, 1897 और 1898 में भी ऐसे ही संघर्ष छिड़े। **यी हो तुआन** आंदोलन ने जल्दी ही शांतुंग को अपने घेरे में ले लिया और अन्य जगहों पर भी यह आंदोलन फैल गया।

इस संगठन के सदस्यों में किसान, दस्तकार, शहरी गरीब और बेरोजगार दिहाड़ी मजदूर थे। इस संगठन की कभी कोई केंद्रीय शाखा नहीं रही। इसकी बुनियादी इकाई "**ताओ या मंदिर**" थी जिसके सदस्य युवक किशोर और अनेक स्त्रियां थीं: नेतागण और साधारण सदस्य दोनों ही कठोर अनुशासन का पालन करते थे और संगठन को एकजुट रखते थे। बॉक्सर दस्ते में 10 योद्धा होते थे और 10 दस्तों की एक वाहिनी (ब्रिगेड) होती थी।

सन् 1899-1900 की सर्दियों में, बॉक्सरों ने साम्राज्यवाद का विरोध करने की गरज से शांतुंग में मिशनरियों और गिरजागरों पर हमले किये, पीकिंग स्थिति विदेशियों ने आंदोलन के तेज होने की आशंका को देखते हुए चिंग सरकार पर दबाव डाला कि वह इस आंदोलन को दबाये। शांतुंग के शासक राज्यपाल, यू शिन, को हटा दिया गया और उसकी जगह युआन-शी-काई आया जिसकी "नव सेना" एक शक्तिशाली राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर रही थी। विद्रोह को कुचलने के लिये उसने यी हो तुआन पर प्रतिबंध का ऐलान किया। इस विद्रोह को दबाने के अपने अभियान के तहत उसने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे बॉक्सरों से जुड़े किसी भी व्यक्ति को गोली मार दें, उसने सैनिकों को यह आश्वासन भी दिया कि ऐसा करने पर उन्हें पूरी सुरक्षा दी जायेगी।

यी हो तुआन ने अपनी साम्राज्यवाद-विरोधी गतिविधियों को बरकरार रखते हुए युआन की सेना से बहादुरी और चालाकी के साथ संग्राम किया। युआन ने अपनी सेना में नई टुकड़ियां जोड़ कर उसे मजबूत कर लिया। उसने जर्मन फौजों और उन दूसरी सशस्त्र सेनाओं की भी मदद मांगी जिन्हें साम्राज्यवादियों ने **यी हो तुआन** के नरसंहार के लिये गठित किया था। **यी हो तुआन** को भारी नुकसान हुआ। सन् 1900 के वसंत काल में, भारी संख्या में बॉक्सर शांतुंग छोड़ कर पीकिंग क्षेत्र के पड़ोसी चिल्बी (आज के होपे प्रांत) में चले गये। इसके बाद उनकी अधिकांश गतिविधियां इसी क्षेत्र में चलीं लेकिन उनका प्रभाव शांसी, आंतरिक मंगोलिया, होनान और चीन के उत्तर-पूर्वी प्रांतों में भी महसूस किया गया। बॉक्सरों को स्थानीय बाशिंदों का व्यापक समर्थन मिला। उनकी मदद से उन्होंने सरकारी सेनाओं से लड़ाइयां लड़ी और वे मिशनरियों, नव-ईसाइयों और उनके समर्थकों को मौत के घाट उतारते रहे। गिरजाघरों, विदेशियों की संपत्तियों, आवासों आदि का विनाश छिट-पुट तौर पर और क्रमबद्ध ढंग से भी जारी रहा। मई महीने में **यी हो तुआन** ने पीकिंग के दक्षिण में महत्वपूर्ण शहर चोचो पर कब्जा कर लिया – उनकी लड़ाई चलने के साथ-साथ उनके सदस्यों की संख्या भी बहुत बड़ी होती गयी जिससे चीन में विदेशी ताकत और चिंग सरकार भी खतरा खा गयी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कुछ ही दिनों में बॉक्सर सेनाएं पीकिंग में घुस गयी। उन्होंने राजधानी आने वाले रेलपथों को नष्ट कर दिया जिससे उत्तर और दक्षिण से आ सकने वाली सरकारी नेताओं का रास्ता बंद हो गया। पीकिंग में **यी हो तुआन** की सेनाओं ने पहले छोटी-छोटी टुकड़ियों में गुप्त रूप से गतिविधियां की थी। उन्होंने "विदेशियों का विनाश करो" अभियान की मांग करने वाले गुमनाम इश्तिहार लगाये थे। राजधानी में मजदूर वर्ग के अनेक लोगों के इस संगठन में शामिल हो जाने से इसके सदस्यों की संख्या बहुत अधिक हो गयी – इश्तिहार अभियान से कई लोग इस आंदोलन से जुड़े। उनके इश्तिहार जनता की साम्राज्यवाद-विरोधी भावना और उस शासक वंश के प्रति उनकी चिढ़ को परिलक्षित करते जिसके बारे में उनका विश्वास था कि यह वंश विदेशियों के सहयोग से अपनी ही जनता का दमन कर रहा था। एक जनप्रिय इश्तिहार का पाठ यह था:

> "बहुत घृणा है हमें उन संधियों से जो देश को हानि पहुंचाती और जनता को संकट में डालती हैं। उच्चाधिकारी देश से गद्दारी करते हैं। निचले दर्जे के अधिकारी उनका अनुसरण करते हैं। जनता को उनकी शिकायतों का कोई हल नहीं मिलता"।

जून 1900 के प्रारंभ तक पीकिंग **यी हो तुआन** के इश्तिहारों से भर गया था। इसके सदस्य दिन में और रात में भी पीकिंग शहर में आने लगे। शहर के फाटक पर तैनात गारदों ने भी उन्हें, या तो सहानुभूतिपूर्ण भावनाओं के कारण या भयवश, रोका नहीं। लाल पगड़ियाँ और कमरबंद और लाल किनारी वाले जूते और मोजे पहने बॉक्सर तलवारें और भाले लिये राजधानी की सड़कों पर निकले। कुछ ही समय में पीकिंग में 800 से भी अधिक धार्मिक स्थल स्थापित किये गये। वे लोग शाही और सामंती घरानों में ठहरे, पूरे शहर में फैल गये

और उन्होंने विदेशियों पर हमले किये। असहाय विदेशियों ने दूतावास की रिहाइशों में या गिरजाघरों में सशस्त्र सुरक्षा के अधीन शरण ली। बॉक्सरों ने अपने प्रदर्शन अधिकांश तौर पर रात में किये। उन्होंने लोगों से आग्रह किया कि वे विदेशी वस्तुएं न ख़रीदें। उन्होंने शिक्षा देना और दूसरे अभियान जारी रखे।

इसके साथ-साथ, ऐसे ही संघर्ष त्येनसिन में भी शुरू हुए और चले। यहां आंदोलन की शुरुआत इश्तिहार बांटने, धार्मिक स्थल स्थापित करने और सैनिक प्रशिक्षण के रूप में हुई। 1900 के मध्य तक वे अपनी तलवारें और भाले स्वयं बना रहे थे। गिरजाघरों को जलाने के साथ-साथ, उन्होंने बिजली के खंभों को भी तोड़ा और सीमा-शुल्क के कार्यालय को नष्ट कर दिया। दो-तीन महीनों में बॉक्सर विद्रोह ने समूचे पीकिंग-त्येनसिंन क्षेत्र को अपने घेरे में ले लिया। यह विद्रोह साम्राज्यवाद-विरोधी था, इस का संकेत इस तथ्य से मिलता है कि विद्रोहियों की घृणा के तुरंत शिकार गिरजाघर, रेलपथ, बिजली के तार, स्टीमर और विदेशी सामान बने। सन् 1900 की गर्मियों में पीकिंग और त्येनसिंन पर वास्तव में यी हो तुआन का कब्जा हो गया था।

शांतुंग में शुरू होने वाली अपनी नाटकीय गतिविधियों के कुछ ही महीनों के भीतर, बॉक्सरों ने महान दीवार के दोनों ओर और पीली नदी (हवांग हो) के मध्यवर्ती और निम्नवर्ती कछारों पर अपना विद्रोह का झंडा उठा लिया था। जब साम्राज्यवादी ताकतों ने यह देखा कि मांचू सरकार इस जनप्रिय विद्रोह को दबाने में अशक्त थी तो उन्होंने बॉक्सरों को दबाने का तरीका ढूंढने के लिये आपस में विचार-विमर्श शुरू कर दिया। ऐसा लगता था कि चीन में उनका अस्तित्व दांव पर था। जुलाई-अगस्त, 1900 तक कांगफू, हयूपे, क्यांगसी, फ्यूकिएन, क्वांगसी, शांती और कांसू प्रांतों में कई जगहों पर साम्राज्यवाद-विरोधी इश्तिहार दिखायी पड़े। सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों पर लोग बाक्सिंग और दूसरी चीनी युद्ध-कलाओं का अभ्यास करते भी दिखायी दिये, इनमें से अनेक स्थानों पर लोगों ने गिरजाघरों को आग लगा दी और मिशनरियों को भगा दिया। ऐसे कई स्थानीय गुप्त संगठन, जो प्रारंभ में बॉक्सर विद्रोह का अंग नहीं थे, इस हिंसक साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में बॉक्सरों के साथ शामिल हो गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.4.3 साम्राज्यवादियों का हस्तक्षेप

बॉक्सरों के मांचू-विरोधी दृष्टिकोण और उन्हें दबाने के युआन शी-काई और अन्य राजतंत्रीय सैनिक उच्चाधिकारियों के प्रयासों के बावजूद, विधवा साम्राज्ञी, ज्यू त्सी की इस मुद्दे पर स्थिति अस्पष्ट रही। एक राजाज्ञा में तो यह कहा गया कि सभी विद्रोहियों को लुटेरा न माना जाये। एक और राजाज्ञा में यह कहा गया कि संगठन के सदस्य "आपसी निगरानी रखने और आपसी मदद देने" के प्राचीन सिद्धांत पर अमल करें। इससे साम्राज्यवादी और भी हताश हो गये और बॉक्सरों ने, बहुत संभवतः इसे आगे बढ़ने का संकेत या हरी झंडी समझा, विदेशी अधिकारी भी यह मानते थे कि राजदरबार के कई वरिष्ठ अधिकारी और कुछ राज्यपाल गुप्त रूप से इस "राजद्रोही गुप्त संगठन" को प्रोत्साहन दे रहे थे। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस और अमेरिका के पांच विदेशी दूतों ने भी यह मांग की कि चीन सरकार यी हो तुआन को एक अपराधी संगठन घोषित करें, जिसका अर्थ यह होता कि बॉक्सर विद्रोह पर राजदरबार के अपने ही दृष्टिकोण का खंडन किया जाये। मांचू सरकार ने इसे अपने मामलों में सीधा हस्तक्षेप माना और यह महसूस किया कि विदेशी उनके लिये बॉक्सरों की अपेक्षा कहीं बड़ा खतरा थे।

मई आते-आते, विदेशी ताकतों ने अपनी सेनाओं को बॉक्सर विद्रोहियों के साथ टकराव के लिये तैयार करना शुरू कर दिया। आठ ताकतों – इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली, जापान, अमेरिका और रूस – ने एक संयुक्त कमान बनायी। चीन में बने रहना उन सबका समान स्वार्थ था और चीनी राष्ट्रवाद पर प्रहार करने की गरज से फिलहाल उन्होंने अपने मतभेद भुला दिये। चीनी विदेश मंत्रालय (जोंगली यामेन) ने इन ताकतों से आग्रह किया कि वे अपनी सेनाओं को आगे न बढ़ायें। जब इस आग्रह पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो, चीन सरकार युद्ध के लिये तैयार हो गयी। पीकिंग पर संयुक्त सेनाओं की चढ़ाई चीन की प्रभुसत्ता लिये सीधा खतरा थी।

शाही सभा ने इन आठ ताकतों के सशस्त्र हस्तक्षेप से पैदा होने वाली स्थिति पर विचार-विमर्श करने के लिये 16 जून को एक बैठक निश्चित की। इस बैठक में बॉक्सर आंदोलन पर सामंतों और राजदरबार के वरिष्ठ अधिकारियों के भिन्न दृष्टिकोण सामने आये। इसमें स्पष्ट रूप से बॉक्सर-समर्थक और बॉक्सर-विरोधी दो गुट दिखायी दिये। विदेशी

ताकतें सशस्त्र दमन की ठाने हुए थी, इसलिये राजदरबार ने एक राजाज्ञा जारी करके 21 जून, 1900 को युद्ध का ऐलान कर दिया। राजनयिकों से 24 घंटे के अंदर पीकिंग छोड़ देने को कह दिया गया, बाद में यह अवधि बढ़ा दी गयी। निर्धारित समय-सीमा समाप्त होते ही, चीनी सेनाओं ने दूतावासों पर गोलाबारी कर दी।

उत्तरी चीन में युद्ध छिड़ा तो, दक्षिणी प्रांतों के राज्यपालों और वाइसरायों ने विदेशी ताकतों का साथ दिया और उनसे लड़के के राजदरबार के निर्णय की अवहेलना कर दी। इससे राष्ट्र की फूट सामने आ गयी, जिससे साम्राज्यवादियों के लिये चीन का विभाजन करने और इसे पूरी तौर पर अपने अधीन करने के प्रयास का काम और भी आसान हो गया। 29 जून तक, पीकिंग सरकार ने एक अलग रुख अपना लिया। विधवा साम्राज्ञी ने अपने राजनयिकों के माध्यम से विदेशी सरकारों को यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि दंगाई "भीड़" को खत्म कर दिया जायेगा और सभी विदेशी दूतावासों की सुरक्षा की जायेगी, चिंग सरकार के इस रवैये से युद्ध की घोषणा के पीछे के उसके मंतव्य पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। चीनी माम्यवादी इतिहासकारों के अनुसार यह मांचू शासकों की एक युक्ति मात्र थी जिनका अंतिम और असली इरादा यी हो तुआन को सफाया करना, विदेशी ताकतों के साथ सहयोग करना और अपना शासन बनाये रखना था।

चीनी शासक वर्ग के एक बड़े हिस्से के सीधे समर्थन और एक दूसरे हिस्से के निष्क्रिय विरोध की स्थिति में, आठ राष्ट्रों की संयुक्त सेना ने जम कर लूटमार की, आसपास के क्षेत्रों में आतंक फैलाया और बॉक्सर विद्रोह को दबाने के लिये हिंसक कार्यवाहियां की : उनके युद्धपोत यांगसी नदी पर फैल गये और तोपवाहक नौकाओं की चीनी बंदरगाहों पर गश्त बढ़ गयी। उन्होंने साम्राज्यवादी ताकतों में अपनी सुरक्षा की निश्चितता देखने वाले जमींदारों और कुलीनों से दोस्ती गांठ ली।

यी हो तुआन के योद्धा आठ ताकतों की संसाधन और प्रौद्योगिकी की दृष्टि से कहीं अधिक संपन्न संयुक्त सेना के खिलाफ बहादुरी से लड़े। जुलाई-अगस्त 1900 में भीषण युद्ध हुआ जिसमें दोनों ओर जान-माल का नुक्सान हुआ। अंग्रेजी सेनाएं और रूस और जापान की सेनाएं भी पीकिंग में घुस आयीं और अगस्त के मध्य तक पीकिंग विदेशी ताकतों के हाथों में आ गया। जैसे ही पीकिंग पर नियंत्रण का यह समाचार मिला, विधवा साम्राज्ञी और उसकी चौकड़ी पीकिंग से भाग खड़ी हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

और स्थानों पर भी भीषण युद्ध चला। बॉक्सर विद्रोहियों ने हर जगह कड़ा संघर्ष किया लेकिन अंत में उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा। साम्राज्यवादी सेनाएं अपनी जीत से ही संतुष्ट नहीं हुई उन्होंने चीनी जनता पर अत्याचार और ज्यादतियां भी की : मार-काट, लूट, बलात्कार और आगजनी करने के अलावा उन्होंने कलाकृतियों, वैज्ञानिक उपकरणों, दुर्लभ पुस्तकों और चित्रों, अर्थात् चीन की प्राचीन, गौरवशाली सभ्यता के सभी जीवंत प्रमाणों को नष्ट कर दिया।

जुलाई 14, 1900 को त्येनसिन का पतन हो जाने के बाद चिंग सरकार ने संधि की मांग रखी और साम्राज्यवादी ताकतों को शांति वार्ता का खुला निमंत्रण दिया, लेकिन आठ राष्ट्रों की संयुक्त सेना पीकिंग पर कब्जा कर लेने के बाद ही हमले रोकने को सहमत हुई।

अगस्त के अंतिम दिनों में बातचीन शुरू हुई, लेकिन हस्तक्षेप करने वाले आठ राष्ट्रों को शांति की शर्तों पर आपस में सहमत होने में कुछ समय लगा। फिर भी, शायद आपस में कुछ कूटनीतिक युक्तियों के बाद, उन्होंने चीनी सरकार के साथ कुख्यात बॉक्सर प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किये जिसके साथ ही चीनी इतिहास में बॉक्सर प्रकरण का औपचारिक अंत हुआ लेकिन इस प्रोटोकॉल से एक लोचदार साम्राज्यवाद-विरोधी लहर की भी शुरुआत हुई जिसने एक दशक के अंदर न केवल चिंग वंश का बल्कि पूरी सम्राट-व्यवस्था का ही सफाया कर दिया।

14.4.4 बॉक्सर प्रोटोकॉल

संयुक्त सेनाओं में चीन को विभाजित करने के तरीके पर आपस में समझ न बन पाने के कारण चीन का बंटवारा होने से बच गया। इन ताकतों के बीच प्रतिद्वंद्विता भयंकर रूप ले चुकी थी। लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काफी वाद-विवाद के बाद दिसम्बर 1900 में चीन को एक संयुक्त पत्र दिया गया। इसके तुरंत बाद विचार-विमर्श शुरू हो गया। बातचीत कई महीनों चलती रही और दिसम्बर 1901 में जा कर ही अंतिम समझौतों पर हस्ताक्षर हुए।

सितम्बर 7, 1901 के इस बॉक्सर प्रोटोकॉल में 12 अनुच्छेद थे। ये इस प्रकार थे:

1. चीन के शाही परिवार का एक सदस्य बर्लिन जा कर एक जर्मन मंत्री बैरन बॉन केफलर की हत्या के लिये चीनी सम्राट और ग्रांड कौंसिल की ओर से जर्मन सम्राट से खेद प्रकट करेगा। उसकी हत्या के स्थल पर एक स्मारक बनाया जायेगा
2. जिन-जिन शहरों में विदेशियों की हत्याएं हुई थीं या उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया था, उन तमाम शहरों में लोक सेवा परीक्षाओं का निलम्बन।
3. चीन की राजस्व परिषद् का उपाध्यक्ष जापान जाकर जापानी लिगेशन चांसलर की हत्या के लिये चीनी सम्राट और सरकार की ओर से खेद प्रकट करेगा।
4. जिन-जिन विदेशी ठिकानों को "अपवित्र" करना पड़ा था, वहां प्रायश्चित का प्रतीक स्मारक बनाया जायेगा।
5. पांच वर्षों तक हथियारों और गोला-बारूद का आयात नहीं होगा।
6. पीकिंग स्थित विदेशी दूतावास को विदेशियों के आवास के लिये आरक्षित रखा जायेगा।
7. पीकिंग स्वतंत्र सामुहिक संचार में बाधक बनने वाले ताकू और अन्य किलों को ढहा दिया जायेगा।
8. कुछ विशिष्ट केंद्र पश्चिमी ताकतों के कब्जे में रहेंगे।
9. एक राजाज्ञा जारी करके विदेश-विरोधी किसी भी संगठन में शामिल होने वाले व्यक्ति के लिये मृत्यु दंड का प्रावधान रखा जायेगा।
10. विदेशी भागीदारी से नदी, सफाई परिषदों की स्थापना और वाणिज्य और जहाजरानी की विद्यमान संधियों में संशोधन करने के लिये बातचीत की जायेगी।
11. **जोंगली यामेन** (विदेशी कार्यालय) में सुधार किया जायेगा और उसे छह अन्य मंत्रालयों के ऊपर विदेश मंत्रालय का दर्जा दिया जायेगा।
12. चालीस वर्षों की अवधि में 33 करोड़ 30 लाख अमेरिकी डालर के हरजाने का भुगतान किया जायेगा। (ब्याज की दर इतनी ऊंची थी कि रकम भुगतान की अवधि में दुगनी हो जाये)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बॉक्सर प्रोटोकॉल का एक-एक प्रावधान चीनी प्रभुसत्ता और आत्म-सम्मान पर प्रहार था। हरजाने वाला प्रावधान सबसे कठोर था क्योंकि यह चीन के संसाधनों की तबाही करने वाला था। प्रत्येक वर्ष चीन की पहले से ही गरीब जनता पर डेढ़ करोड़ डालर के भुगतान का बोझ पड़ रहा था। भुगतान का जो तरीका रखा गया था उससे चीन की प्रभुत्ता के अत्यंत व्यापक अतिक्रमण का बोध होता था। हरजाने की जमानत के तौर पर निम्न संसाधनों को लिया गया था:

- समुद्री सीमा-शुल्क और आंतरिक सीमा-शुल्कों का वह अंश जो अब तक चीनी नियंत्रण में था, और
- नमक कर जैसा कि किसी ने कहा था, मांचू सरकार "पश्चिमी ताकतों के लिये ऋण वसूलने वाला अधिकरण" बन गई।

बॉक्सर प्रकरण का अंत तो हो गया, लेकिन इससे चिंग सरकार द्वारा शुरू किये गये सुधारों का खोखलापन उजागर हो गया, क्योंकि इनसे चीन को अपमानजनक स्थिति से बचाया नहीं जा सका। पश्चिमी ताकतों ने चीन के प्रति किसी भी चिंता या समझ से परे बर्ताव किया।

14.5 विद्वानों की बहस

विद्वानों ने बॉक्सर विद्रोह की असली प्रकृति, इसके प्रभाव और प्रतिक्रियाओं को समझने के लिये विविध स्रोतों का उपयोग किया है। इनमें प्रमुख हैं:

- चीन में उलझी विदेशी ताकतों के अधिकारिक प्रकाशन,
- मिशनरी दस्तावेज़ और लेख,

- चीन में उस समय रह रहे इतिहासकारों और दूसरे विद्वानों की पांडुलिपियां, और
- चीनी सरकार के प्रकाशन और दस्तावेज।

इन सभी को एक साथ लिया जाये तो इनसे काफी जानकारी मिलती है।

फिर भी, बॉक्सर विद्रोह की प्रकृति को लेकर अभी बहस चल रही है, क्या यह मुख्य तौर पर ईसाई-विरोधी या साम्राज्यवाद-विरोधी था? यदि यह ईसाई-विरोधी था तो, क्या यह प्रोटैस्टेंट-विरोधी की अपेक्षा कैथोलिक-विरोधी अधिक थी? बॉक्सर विद्रोही किस हद तक वंशवाद- विरोधी थे? ये सवाल हैं जिन के घेरे में बहस चलती हैं। विद्रोह के परिणाम के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण यह है कि चीनी सामंतवाद और विदेशी साम्राज्यवाद के बीच एक सुनियोजित षड़यंत्र ने इस आंदोलन को कुचला। गैर-मार्क्सवादी विवेचना यह कहती हैं कि चीनी व्यवस्था का आधुनिकीकरण असफल होने के कारण चीन एक कमजोर राष्ट्र रह गया। इस तरह इसके पास इतने संसाधन नहीं थे कि वह विदेशी हस्तक्षेप को रोक पाता या जनता की मांगों को संतोषजनक ढंग से पूरा कर पाता। यही कारण था कि चिंग सरकार ने अपने आपको बॉक्सर विद्रोहियों से दूर रखा।

इस आंदोलन के बारे में एक सवाल जो बार-बार पूछा जाता है वह यह है: क्या बॉक्सर विद्रोही चीन में एक सफल राज्य कायम कर सकते थे? इसका आसान जवाब है शायद नहीं। उनके पास समर्पित सदस्य तो थे, लेकिन उनका संगठन कमजोर था। उन्हें मिलने वाले व्यापक समर्थन के बावजूद उन्हें संगठन की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि उनकी संस्था मुख्य रूप से एक गुप्त संगठन था। इसके अलावा, विचारधारा के स्तर पर उनके पास देने को ऐसा कुछ नहीं था जो उस समय पतन के कगार पर टिकी राज्य की कन्फ्यूशियसवादी विचारधारा का स्थान ले सकता। ताइपिंग विद्रोहियों की तुलना में, उनके पास कृषि सुधार का कोई कार्यक्रम नहीं था यद्यपि उनके अधिकांश सदस्य किसान थे। उनका अकेला प्रगतिवादी सिद्धांत यह था कि वे महिलाओं को समानता का स्तर देते थे। कुल मिलाकर, उनका ध्येय चीन पर शासन करना नहीं, बल्कि अपने देश को उसके शत्रुओं से मुक्त कराना था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) सही उत्तर छांटिये:
   बॉक्सर विद्रोही सबसे पहले प्रांत में उभरे।

   क) हुनान

   ख) नानकिंग

   ग) शंघाई

   घ) शांतुंग

2) बॉक्सर प्रोटोकॉल चिंग सरकार और राष्ट्रों के बीच संपन्न हुआ।

   क) छह

   ख) आठ

   ग) दस

   घ) पांच

3) लगभग 10 पंक्तियों में 1901 के बॉक्सर प्रोटोकॉल के ध्येयों और उद्देश्यों के विषय में बताइये।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

. . . .

. . . .

. . . .

4) **लगभग 10 पंक्तियों में बॉक्सर विद्रोह की प्रकृति पर विद्वानों के स्तर पर चलने वाली बहस के विषय में बताइये।**

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

14.6 सारांश

चीन के इतिहास में जो किसान विद्रोह होते रहे हैं, बॉक्सर विद्रोह उनमें से एक प्रमुख किसान विद्रोह था। यह उत्तरी चीन के किसानों का एक देशभक्तिपूर्ण विद्रोह था, जिसके साथ ही चीन के अन्य कई भागों में भी विद्रोह हुए जिसने चीनी राष्ट्रवाद के जन्म को रास्ता दिखाया। यह विद्रोह पहले ईसाई मिशनरियों और नव-ईसाईयों के खिलाफ शुरू हुआ और अंत में पूरी साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया गया। यह व्यवस्था की निर्ममता, अथक दुःखों, कष्टों और गरीबी का परिणाम था। जनसाधारण और अधिकारियों की आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में मांचू सरकार की असफलता और जनता के साथ इसके निर्मम व्यवहार ने जनता को सरकार से पृथक कर दिया। इसके साथ, चीन में साम्राज्यवादियों के अतिक्रमण, और इसे इसकी गरिमा और प्रतिष्ठा से वंचित करने के कारण भी इस विद्रोह को भड़कने का अवसर मिला। चिंग सरकार के माध्यम से इस आंदोलन को दबाने के साम्राज्यवादी ताकतों के प्रयासों को सफलता नहीं मिली क्योंकि चिंग सरकार ने इसके प्रति एक दोहरा दृष्टिकोण अपनाया। चीन के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने की आठ राष्ट्रों की योजना का जवाब चीन ने युद्ध की घोषणा करके दिया, जो एक कमजोर प्रयास निकला जल्दी ही शांति के लिये बातचीत शुरू हुई और इन ताकतों और चिंग सरकार के बीच तथाकथित बॉक्सर प्रोटोकॉल संपन्न हुआ। चीन से कई रियायतें हथियाने के अलावा, इस अपमानजनक संधि में हरजाने की एक बड़ी राशि की अंदायगी का भी प्रावधान था। यह राशि इतनी बड़ी थी कि इसका भुगतान करने पर चीन के सभी संसाधन चुक जाते। साम्राज्यवादी ताकतों के आपस में सहमत न हो पाने के कारण चीन का बंटवारा होने से बच गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.7 शब्दावली

लिगेशन : एक देश के अधिकारियों का किसी दूसरे देश में मुख्यालय (दूतावास)।

प्रोटोकॉल : औपचारिक राजनयिक प्रक्रिया।

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) बेरोजगारी, जनसंख्या विस्फोट, भ्रष्टाचार और संस्थागत ढांचे की विफलता, ये सब

19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में चीन की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के बिगड़ने का कारण बने। देखिये भाग 14.2

2) ग.

3) अफीम युद्ध में चीन की हार, पश्चिमी ताकतों के पक्ष में संपन्न होने वाली असमान संधियों और एकाधिकारवादी पूंजीवाद ने पश्चिमी ताकतों को चीन में साम्राज्यवाद की स्थापना करने के पर्याप्त अवसर दिये। देखिये भाग 14.3.

बोध प्रश्न 2

1) घ

2) ख

3) बॉक्सर प्रोटोकॉल का मुख्य उद्देश्य चीन का विभाजन करना और उसकी प्रभुसत्ता और अखंडता की जड़ों को खोदना था। देखिये उपभाग 14.4.3.

4) बॉक्सर विद्रोह की प्रकृति पर यह बहस चल रही है कि यह ईसाई विरोधी था या साम्राज्यवाद-विरोधी? देखिये भाग 14.5.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 15 स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलन और सौ दिनों के सुधार

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलन : प्रथम चरण

- 15.2.1 पुनर्स्थापन तथा सुदृढ़ीकरण के निर्माता
- 15.2.2 कृषि अर्थव्यवस्था का पुर्स्थापन
- 15.2.3 राज्य एवं नागरिक प्रभुत्व का पुनर्स्थापन
- 15.2.4 पश्चिम की ओर नई कूटनीति
- 15.2.5 स्वयं सुदृढ़ीकरण

15.3 दूसरा चरण

- 15.3.1 आधुनिक शिक्षा की प्रारम्भ
- 15.3.2 नवीनीकरण का विरोध
- 15.3.3 पुनर्स्थापन तथा स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलन के परिणाम

15.4 1898 का सुधार आंदोलन

- 15.4.1 सुधार आंदोलन के मुख्य विचारक
- 15.4.2 सुधार आंदोलन का प्रभाव

15.5 सौ दिनों के सुधार

- 15.5.1 सुधार का क्षेत्र
- 15.5.2 प्रतिक्रिया

15.6 सारांश

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS

15.0 उद्देश्य

Call us @7428092240

इस इकाई को पढ़ने के बाद:

- आपको सुदृढ़ीकरण आंदोलन के बारे में पता लगेगा तथा यह भी कि इसने चीनी राज्य की सुरक्षा में कैसे योगदान दिया,
- आपको यह भी मालूम हो जायेगा कि तोंग झी शासकों ने नागरिक प्रभुत्व एवं प्रशासन को स्थापित करने के लिये कैसे-कैसे प्रयास किये,
- आप सुदृढ़ीकरण आंदोलन के दूसरे चरण के बारे में भी जान जायेंगे,
- आप पुनर्स्थापन एवं स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलनों के प्रभाव को जान सकोगे,
- आपको सौ दिनों के सुधार, इसके क्षेत्र तथा इसकी असफलता की भी जानकारी हो सकेगी।

15.1 प्रस्तावना

आधुनिक चीन के इतिहास में 19वीं सदी एक महत्वपूर्ण काल था। साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रसार के साथ-साथ आन्तरिक संकट के बढ़ने के कारण चिंग राज्य एवं समाज सुधारों के कार्यक्रम की ओर अग्रसर हुआ। 19वीं सदी के दौरान ये सुधार कार्यक्रम 1860 तथा 1870 के दशकों में तोंगझी पुनर्स्थापना के स्वरूप में वास्तविक तौर पर प्रस्तावित किये गये कार्यक्रमों को भी लांघ गये। ये सुधार कार्यक्रम स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलन के नाम से जाने गये। 1858 में त्येनसिन की संधि करने के बाद पश्चिमी शक्तियों ने शांति की नीति का अनुसरण किया। पश्चिमी देशों की इस नीति के कारण चिंगराज्य को कुछ समय मिल गया जिससे वह ताइपिंग की समस्या का हल कर सकता था और विदेशियों तथा विद्रोही कृषकों द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं की ओर भी अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता था। चिंग राज्य को मज़बूत करने के उद्देश्य से जो सुधार कार्यक्रम शुरू किये गये वे 19वीं सदी के अन्त तक चीनी समाज के व्यापक सुधार के प्रयास में परिवर्तित हो गये। 1898 के सुधार आंदोलन ने एक

तरह से 20वीं सदी के प्रारम्भ में उठने वाले क्रान्तिकारी विप्लव की आधारशिला रखी और चीनी साम्राज्यिक तन्त्र को धराशयी होने के साथ ही इन सुधार प्रयासों का समापन हुआ। इस इकाई में स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलन तथा सौ दिन के सुधार के अनेक पहलुओं का विवेचन किया गया है।

15.2 स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलन : प्रथम चरण

19वीं सदी के मध्य में ताइपिंग विद्रोह और दो अफीम युद्धों के द्वारा यूरोपीय शक्तियों के प्रहार से उत्पन्न हुए आन्तरिक संकट की चुनौतियों का मजबूती से सामना करते हुए चिंग शासन ने राज्य को मजबूत करने के लिये साहसिक तरीके से सुधार के कार्यक्रम की घोषणा की। इस काल का उल्लेख तोंगझी पुनर्स्थापन के नाम से किया जाता है और उसके दो नीति विषयक तत्व थे। तोंगझी सम्राट की शासन उपाधि थी और उसने 1861 में चीनी सिंहासन को प्राप्त किया था। तोंगझी का शासन 1861-1874 तक चला। उसकी नीति के दो पक्ष इस प्रकार थे :

1) चिंग शक्ति को पुन: स्थापित करना (चुंग-सिंग)

राज्य की शक्ति एवं शान-शौकत को पुन: स्थापित करना प्रमुख उद्देश्य था और यह कन्फ्यूशियस समाज में निहित नियमों के द्वारा किया गया। पुनर्स्थापन के विचार में कुछ भी नया नहीं था। यह भी एक वास्तविकता है कि चीनी इतिहास में इस तरह के बहुत से प्रयास पहले भी हो चुके थे। इस तरह के पुनर्स्थापनों ने राजवंश एवं परम्परागत व्यवस्था में पुन: एक बार अन्तरिम तौर पर विश्वास एवं समर्पण पैदा किया। इन पुनर्स्थापना में सबसे महत्वपूर्ण पुनर्स्थापन वेस्टर्न झाऊ का 9वीं सदी ई.पू. का था। प्रथम सदी ई. का हान पुनर्स्थपिन और 8वीं सदी ई. का तांग पुनर्स्थापन भी महत्वपूर्ण थे।

2) स्वयं सुदृढ़ीकरण (जिंग इयांग)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस नीति के अन्तर्गत सीमित तौर पर आधुनिकीकरण करना था और इस नीति का प्रारम्भ हथियार उद्योगों के आधुनिकीकरण से किया गया। 1870 तथा 1880 के दशकों के दौरान इस नीति के अनुसार उद्योग, संचार और शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों का भी आधुनिकीकरण किया गया।

15.2.1 पुनर्स्थापन तथा सुदृढ़ीकरण के निर्माता

सम्राट हवेन फेंग का भाई राजकुमार गोंग (1833-1898) तथा सार्वजनिक निर्माण मन्त्रालय एवं नागरिक कार्यों के मन्त्रालय का अध्यक्ष बेन जियांग इन कार्यक्रमों के मुख्य निर्माणकर्ता थे। प्रांतीय स्तर पर उनके पास अति योग्य अधिकारी थे जिन्होंने इस कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की। इन सब में सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी जेंग गुओ फेन था (1811-1872) जिसने ताइपिंग विद्रोह को कुचलने में मदद की थी। सन् 1860 में ताइपिंग के विद्रोह को कुचलने के लिये वह शाही आयुक्त था।

जुओ ज़ौंग तांग (1812-1885) नाम का एक और अधिकारी था वह ताइपिंग के विद्रोह को दबाने के समय प्रकाश में आया था। इस अधिकारी ने आधुनिक कम्पनियों की स्थापना एवं कृषि अर्थव्यवस्था पुन:स्थापित करने में निर्णायक भूमिका अदा की।

पुनर्स्थापन करने वालों में लि होंग-झांग (1823-1901) भी एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व था। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ चीन के संबंध में उसने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन अधिकारियों का भरपूर समर्थन प्रांतीय नेताओं तथा अधिकारियों के द्वारा किया गया। ये सभी अधिकारीगण परीक्षा प्रणाली की उत्पत्ति थे। उन्होंने कन्फ्यूशियस शिक्षा को प्राप्त किया था और इसी के कारण वे सामाजिक व्यवस्था तथा राज्य की कन्फ्यूशियस अवधारणा को बनाये रखने के लिये समर्पित थे। इस बात को याद रखने की जरूरत है कि सामाजिक एवं वैचारिक आधार को कन्फ्यूशियसवाद के द्वारा सुनिश्चित किया जाता था और इसी के साथ-साथ प्रस्तावित किये जाने वाले सुधार का फैलाव भी इसी के द्वारा सुनिश्चित किया गया।

19वीं सदी के मध्य में अनेकों पर्यवेक्षकों ने चीनी जनता की सामान्य निर्धनता पर टिप्पणियां

की थी। यांग्जी नदी की घाटी का विवरण निम्नलिखित पंक्तियों में जरनल ऑफ दी नार्थ चाइना ब्रांच ऑफ दि रोयल एशियाटिक सोसाइटी (1865) में किया गया है – "लहलहाते खेत निर्जन उजाड़ में परिवर्तित हो गये थे : शहर खंडहर बनकर रह गये थे। कियांग-नान, कियांग-सी और चैखांग नदियों के मैदानों में मानव कंकाल बिखरे पड़े थे, इन मैदानों की नदियां शवों के भरे रहने से दूषित हो गई थीं, दूर-दराज के पर्वतों पर रहने वाले जंगली जानवर भागकर भूमि पर विचरण करते फिरते थे, और इन्होंने अपनी गुफाओं को रेगिस्तान बने नगरों के कूड़े-करकट के ढेरों में बना लिया था ··· भूमि की जुताई करने के लिये कोई हाथ न बचा था, और अहितकारी वस्त्रों ने जब तक बीमार उद्योग को ठीक किया जाये तब तक जमीन को ढक लिया था।

15.2.2 कृषि अर्थव्यवस्था का पुनर्स्थापन

कृषि अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करना एक प्राथमिकता थी सरकार के पास खर्च करने के सीमित साधन थे और इस से भी अधिक मजबूरी यह थी कि सरकार कृषकों में भौतिक उपलब्धियों के लिये प्रेरणा पैदा करने में असमर्थ थी। यह विचार न तो राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि करने के लिये था और न उत्पादन में। राज्य की वित्तीय अवस्थाओं और जनता के जीवन यापन के बीच एक संतुलन कायम करने का प्रयास किया गया और यही कारण था कि एक बार फिर राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कन्फ्यूशियस सिद्धान्तों पर जोर दिया गया। इस, कार्यक्रम के द्वारा निम्नलिखित बड़े लक्ष्यों पर बल दिया गया:

अ) कृषि योग्य क्षेत्रों का प्रसार करना,

ब) सार्वजनिक कार्यों का प्रसार करना, और

स) भू-कर में कमी करना।

अ) कृषि योग्य क्षेत्रों का प्रसार करना

19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजनीतिक उथल-पुथल के दौर में काफी बड़ी मात्रा में भूमि का परित्याग कर दिया गया था। ऐसा ग्रामीण आबादी के विस्थापन के कारण हुआ था। जैसे ही राजनीतिक उथल-पुथल का दौर समाप्त हुआ वैसे ही हुनान जैसे प्रांत में पुनः आबादी को बसाने के लिये प्रयास किये जाने लगे। इस प्रदेश में ऐसा विस्थापित सैनिकों को खेती के लिये जमीन देकर किया गया। किसानों को अधिक सम्पन्न एवं सिंचित क्षेत्रों की ओर बसने के लिये उत्साहित किया गया। उदाहरण के लिये, जियांगशी प्रांत में जनसंख्या 6 महीने के संक्षिप्त समय में 8000 से बढ़कर 40,000 हो गई। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या में वृद्धि स्वतः हुई थी, किन्तु चिंग सरकार के अधिकारियों ने गृहनिर्माण के कानूनों के द्वारा भी इसे प्रोत्साहित किया। समूह संगठनों को प्रोत्साहित करना तथा बीज, अनाज एवं औजारों का वितरण करने के लिये कृषि बन्दोबस्त कार्यालयों को स्थापित किया गया।

DKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन इस नीति के परिणाम असमान थे। जियांगशू, अन हुई, फूजईयान तथा झेन जियांग जैसे प्रांतों में पहले अधिक किसानों के पास छोटे-छोटे खेत थे जिनका क्षेत्रफल एक हेक्टेयर से भी कम था। उदाहरण के लिये, झेन जियांग, जियांगशू प्रांतों में ताइपिंग विद्रोह के दौरान जमींदारों का सफाया हो गया था केवल कृषक भू-स्वामी छोड़ दिये गये थे। लेकिन पुनर्स्थापन के साथ भूमि को मूल स्वामी को वापस लौटा दिया गया। बड़े नौकरशाहों तथा सैन्य अधिकारियों के भी अधीन बड़ी-बड़ी भूमि आ गई। अब भू-स्वामित्व पर जोर देने की ओर एक स्पष्ट प्रवृत्ति का उदय हुआ।

ब) सार्वजनिक कार्यों का प्रसार

अकाल का सामना करने के प्रयास के तौर पर सुरक्षित अनाज भंडारों की मरम्मत की गई और कुलीनों की सहायता से नये अनाज भंडारों का निर्माण किया गया। नालों एवं नहरों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा था। झिली, शांतुंग, शैनशी और सिहोन जैसी विशाल योजनाओं का प्रारम्भ जलचाप कार्यों की मरम्मत तथा बाढ़ग्रस्त भूमि को ठीक करने के लिये किया गया। यद्यपि यह पहचान लिया गया था कि उत्तर चीन की मैदानी कृषि के स्थायित्व के लिये मुख्य खतरा येलो नदी की लहरों से था, इसको नियन्त्रित करने के लिये प्रयास किये गये किन्तु वे योजना के स्तर तक ही रह गये थे।

स) भू-कर में कमी

जन-आंदोलन का मुख्य निशाना करों पर होता था। ऐसा अनुमान किया गया है कि तोंगझी शासन के दौरान करों में 30 प्रतिशत की कमी की गई थी। इस सन्दर्भ में जो महत्वपूर्ण

निर्णय लिया गया वह यह था कि जियांगसू जैसे अधिक प्रभावित क्षेत्र में भूमि कर में स्थायी तौर पर कमी की गई।

जैसा कि अन्य सुधारों के मामले में था, वैसा ही भूमि करों के सुधार में भी हुआ और कर सुधारों का लाभ आम किसान तक न पहुंच सका। चांदी के दामों में हुई वृद्धि के कारण उनको जो लाभ हो सकता था वह न हुआ। न भूमि के प्रमाणों को दर्ज किया गया और न ही कर व्सवस्था को प्रकाशित किया गया। इस कमी के कारण स्थानीय मजिस्ट्रेट एवं कुलीन पुरानी दरों पर कर की वसूली करते रहे। प्रस्तावित भू-कर संबंधी सुधारों में सबसे गम्भीर कमी यह रह गई कि भू-कर में कटौती के साथ-साथ लगान में कटौती नहीं की गई। ऐसे बहुतसंख्यक कृषकों को कर सुधार के क्षेत्र से अलग कर दिया गया जो जमींदारों के अधीन किसान थे।

कृषि अर्थव्यवस्था को पुनः स्थापित करने के प्रयासों से शायद ही किसानों की दुर्दशा में सुधार हुआ हो। क्योंकि किसानों का बड़े भू-स्वामियों द्वारा किये जाने वाला व्यापक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण जारी रहा।

गैर-कृषि अर्थव्यवस्था के ऐसे दूसरे बहुत से पक्ष थे जिन पर बहुत कम ध्यान दिया गया। पुनः स्थापित सरकार के पास व्यापार एवं वाणिज्य को पुनर्जीवित तथा विकास को प्रोत्साहित करने की कोई नीति न थी। इस ओर उसने बहुत कम ध्यान दिया।

समुद्र द्वारा पीकिंग की किलेबन्दी करने तथा खाद्य आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिये साधनों के रूप में परिवहन को भी सुधारने के प्रयास किये गये थे। स्टीम जहाजों ने धीरे-धीरे समुद्र में चलने वाली बड़ी नावों का स्थान ले लिया। 1872 ई. में चइना मर्चेन्ट्स स्टीम नेविगेशन कम्पनी का प्रारम्भ किया गया। अन्तर्देशीय जल परिवहन के लिये स्टीम जहाजों, रेलवे निर्माण और तार व्यवस्था को लागू करने का चीन के अन्दर काफी विरोध हुआ। ऐसा विश्वास किया जाता था कि इन नवीन परिवर्तनों के कारण कन्फ्यूशियस सामाजिक व्यवस्था की गम्भीर रूप से अवहेलना की जायेगी।

सारांश में इस काल के दौरान की आर्थिक नीति बुनियादी तौर पर प्रतिक्रियावादी थी। कथित और अकथित दोनों तौर पर इसका उद्देश्य परम्परागत राज्य की कृषि आधारशिलाओं को कुछ मामूली परिवर्तन के साथ पुनः स्थापित करना एवं शक्तिशाली बनाना था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.2.3 राज्य एवं नागरिक प्रभुत्व का पुनर्स्थापन

कृषि एवं आर्थिक सुधारों के साथ-साथ, तोंगझी पुनर्स्थापन ने राज्य प्रभुत्व एवं प्रशासन को पुनः स्थापित करने पर ध्यान केन्द्रित किया। राज्य प्रभुत्व एवं प्रशासन को 19वीं सदी ई. के पूर्वार्द्ध में काफी कमजोर कर दिया गया था। योग्य लोगों की भर्ती करने पर बल देकर नौकरशाही को सुधारने के पर्याप्त प्रयास किये गये। परीक्षा के महत्व को यह कहकर समझाया गया कि शक्ति एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करने का यह एक मात्र मार्ग है। डिग्रियों एवं पदों को बेचने में कटौती करने के प्रयास किये गये। इससे पूर्व के दशकों में पदों एवं कार्यालयों की बिक्री एक खतरनाक स्थिति में पहुंच गई थी। परीक्षा को अब एक ऐसी प्रक्रिया माना गया था जो नागरिक प्रशासन को उच्च स्तर बनाने में योगदान करती थी। इस परीक्षा का लक्ष्य आदर्श तथा संर्वागीण योग्यता वाले अधिकारियों को भर्ती करना था। नौकरशाही को कन्फ्यूशियसवादी सिद्धांतों के प्रति सजग रखने के प्रयास किये गये। क्वींग ने तेजी से नौकरशाही के आर्थिक, वैधानिक एवं सामाजिक विशेषाधिकारों को पुनः स्थापित किया और ऐसा उनकी स्थिति को सुदृढ़ करने के प्रयास में किया गया। ताइपिंग विद्रोहों से जो क्षेत्र प्रभावित हुए थे उनमें भूमि को उनके मूल स्वामियों को दे दिया गया। करों में कमी करने का सीधा लाभ कुलीनों को मिला।

राजनीतिक एवं प्रशासनिक पुनर्निर्माण को कन्फ्यूशियसवादी ज्ञान पर बल देने के साथ वैचारिक पुनर्निर्माण के द्वारा सुदृढ़ किया गया। स्कूलों एवं ज्ञानपीठों को पुनः खोल दिया गया और ऐसा जनता के एक बड़े भाग में कन्फ्यूशियवादी शिक्षा का प्रसार करने के प्रयास के रूप में किया गया।

15.2.4 पश्चिम की ओर नई कूटनीति

दोनों अफीम युद्धों में पराजय के बावजूद चीन के अधिकतर अधिकारियों एवं कुलीनों का यह विश्वास था कि पश्चिमी शक्तियों को वापस धकेला जा सकेगा। राजकुमार गोंग, बेन

शियांग, लि होंग झांग तथा अन्य कुछ नेताओं ने यह महसूस किया कि विदेशी अधिपत्य को रोकने की आवश्यकता थी। इसलिये जनवरी 20, 1861 को **जोंगली यामेन** (Zongli-Yamen) की स्थापना की गई। जोंगली यामेन की भूमिका को बहुत से बन्दरगाहों में विदेशी व्यापार को नियंत्रित तथा निरीक्षण करने की एक संस्था के रूप में देखा गया। पश्चिमी शक्तियों के साथ चीन के सभी प्रकार के संबंधों पर इसका सामान्य नियन्त्रण था। यहां पर व्हीटन के अनुवाद **"ऐलीमेंट ऑफ इन्टरनेशनल लॉ"** का उल्लेख करना उचित ही होगा। यह अनुवाद 1864 में चीनी भाषाओं में एक अमेरीकी मिशनरी डब्लू.ए.पी. मार्टिन ने किया था। चीनियों के लिये यह अनुवाद बड़ा ही उपयोगी साबित हुआ क्योंकि इसकी बदौलत जोंगली यामेन पश्चिम को संधियों की अनुल्लंघनीयता का अनुसरण कराने को बाध्य कर सका अर्थात् जोंगली यामेन ने चीन सरकार के लिये संधियों को सुरक्षा की दीवार बनाने की कोशिश की और उन्होंने पश्चिमी शक्तियों को संधियों की शर्तों को मानने तक सीमित रखा।

15.2.5 स्वयं सुदृढ़ीकरण

पुनर्स्थापन से घनिष्ठ रूप से जुड़ी सीमित आधुनिकीकरण की औपचारिक नीति थी। इस नीति को **यांगवू ड़ोंग** (विदेशी मामलों का आंदोलन) कहा जाता था। इस शब्द का उपयोग कूटनीति से लेकर औद्योगिक यन्त्र तक किसी भी विदेशी चीज के लिये किया जाता था। इस नीति की सबसे पहले, अभिव्यक्ति हथियारों के उद्योग की स्थापना के रूप में हुई। इसी का अनुसरण करते हुए खदानों, संचार एवं कपड़ा उद्योग का विकास किया गया और यह सब 1870 के दशक से "सम्पत्ति एवं शक्ति" **(फ्यू क्यांग)** को प्राप्त करने के उद्देश्यों के कारणवश हुआ था। **जी क्यांग** का प्रचार घरेलू नीति के कारणों के लिये किया गया। ऐसा इसलिये किया गया जिससे कि साम्राज्यिक सैनिक बलों की योग्यता को जन आंदोलनों का दमन करने तथा विदेशियों का विरोध करने के लिये सुनिश्चित किया जा सके। यह घरेलू एवं विदेशी संबंधों में राष्ट्रीय पुनर्जीवन प्राप्त करने का एक प्रयास था। यह मान्यता बढ़ती जा रही थी कि शक्ति को बनाये रखने के लिये पश्चिम से कुछ तकनीकी प्राप्त करने की आवश्यकता थी। सुझाओ के विद्वान फेंग-गुई-फेन (1808-1874) ने परम्परागत राज्य का कड़ा समर्थन करते हुए पश्चिमी तकनीकी के उपयोग करने की आवश्यकता पर निबंधों की एक श्रृंखला लिखी। फेंग के विचार को उन सभी अधिकारियों तथा कुलीनों में पर्याप्त समर्थन मिला जो परम्परागत व्यवस्था को बनाये रखने के लिये चिन्तित थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पश्चिमी तकनीकी को तर्क संगत बनाने तथा उसके लागू करने को उचित ठहराने के लिये उन दिनों चीन में यह मुहावरा "बुनियाद के लिये चीनी ज्ञान और व्यवहारिक इस्तेमाल के लिये पश्चिमी ज्ञान" काफी लोकप्रिय हो चला था। इस विचार के द्वारा ऐसी किसी आलोचना का सामना करने का प्रयास किया गया जिसके अनुसार प्रस्तावित परिवर्तनों को कन्फ्यूशिय संस्कृति और समाज के मूलभूत मूल्यों एवं मानकों का विरोधी बताया जा सकता था।

चीन को जिस सैनिक पराजय के रूप में अपमान का सामना करना पड़ा था, उसके आधार पर सेना के आधुनिकीकरण को प्रारम्भिक प्राथमिकता प्रदान की गई। सैन्य आधुनिकीकरण के निम्नलिखित दो मुख्य पक्ष थे:

1) सेनाओं को पुनः संगठित करना और तेजी से बढ़ने वाली क्षेत्रीय सेनाओं की राज्य के प्रति वफादारी को पुनः लागू करना,

2) चीन को सैनिक तौर पर पश्चिम के हथियारों एवं अस्त्र-शस्त्रों के बराबर करना।

आधुनिक हथियारों की आश्यकता की पहचान करने और चीन में उनके निर्माण के कारणवश 1865-67 के बीच चार बड़े शस्त्रागारों को स्थापित किया गया।

1) जियांग नान शस्त्रागार को जेंग गुओं-फेन ने 1865 में शुरू किया,

2) लि होंग-झांग के द्वारा नानकिंग शस्त्रागार को शुरू किया गया,

3) फूझाओ जहाज कारखाने की स्थापना 1867 में जुओज़ोंग तांग के द्वारा की गई,

4) 1867 में त्येनसिन में एक शस्त्रागार की स्थापना मांचू वंश के चोंग-हाउ ने तकनीकी सलाहकार के रूप में एक अंग्रेज मीडोज के साथ की।

सेनाओं को पुनः संगठित करने के प्रथम लक्ष्यों को पूरा न किया जा सका क्योंकि यह तभी सम्भव था जबकि वर्ग की संरचनाओं एवं मूल्यों में व्यापक परिवर्तनों को शामिल किया जाता

और किंग इस तरह के परिवर्तनों को करने का इच्छुक न था।

आधुनिक शस्त्रागारों ने प्रथम बार चीन में यान्त्रिक उत्पादन का प्रारम्भ किया। लेकिन फिर भी इसके कारण तकनीकी क्रान्ति न हो सकी। न ही यह पूंजीपति वर्ग के उदय का वाहक बन सका। ये शस्त्रागार निश्चित रूप से राज्य द्वारा संचालित थे और इस कारण से किसी उद्योग का उत्थान नहीं हो सका। कुल मिलाकर शस्त्रागार के उद्योग सरकारी दफ्तरों के रूप में कार्य करते थे। बढ़ते घाटे, अक्षमता एवं भ्रष्टाचार के कारण ये उपक्रम तबाह हो गये।

औद्योगीकरण नीति के प्रथम चरण से न कृषि अर्थव्यवस्था में ह्रास के प्रवाह को रोका जा सका और न ही परम्परागत कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में यह कोई राहत दे पाया।

तोंग वेन क्वान

यद्यपि राइफलों, तोपों तथा जहाजों का निर्माण करने के लिये पश्चिमी तकनीकी को उधार लेने पर मुख्य रूप से बल दिया गया था, लेकिन कुछ दूसरी ऐसी प्रवृत्तियां थी जिनका विकास भी उसी समय हुआ था। जोंगली यामेन को चलाने के लिये दुभाषिये की आवश्यकता थी। विदेशी भाषा को समझने की मांग को पूरा करने के लिये स्कूलों का प्रारम्भ किया गया (**तोंग-वेन क्वान**) सबसे पहले इनका प्रारम्भ पीकिंग में किया गया और वहां पर इन स्कूलों में अंग्रेजी, रूसी और फ्रेंच को पढ़ना-लिखना सिखाया गया। कैन्टन एवं शंघाई में भी इस तरह के केन्द्रों को खोला गया। कुछ ऐसे भी स्कूल थे जो शस्त्रागारों से जुड़े थे। ये संस्थाएं तकनीकी विषयों एवं पश्चिमी भाषाओं की जानकारी उपलब्ध कराती थी। धीरे-धीरे इन स्कूलों में दूसरे पश्चिमी विषयों को भी लागू कर दिया गया। इस प्रवृत्ति के दूरगामी परिणामों को न केवल शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि परिवर्तन, सुधार एवं आधुनिकीकरण पर बदलते चीनी विचारों में भी देखा जाना चाहिये।

बोध प्रश्न 1

1) 1861-1874 के बीच तोंगझी पुनर्स्थापन के दो बड़े नीति अवयवों की पांच पंक्तियों में विवेचना कीजिये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....
....
....
....
....

2) राज्य प्रभुत्व एवं प्रशासन को पुनः स्थापित करने के लिये तोंगझी पुनर्स्थापन के द्वारा किये गये प्रयासों को दस पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) लगभग पांच पंक्तियों में तोंग वेन क्वान पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

....
....
....

15.3 दूसरा चरण

एक बार लोकप्रिय विद्रोहों का दमन कर दिये जाने पर 1870 के दशक के बाद हथियारों का निर्माण संभवतः कम हो गया। **यांगवू** आंदोलन के दूसरे चरण का प्रारम्भ कर दिया गया था। लि होंग झांग तथा दूसरों का उद्देश्य था कि व्यापारियों की संपत्ति और व्यापारिक कुशलता का इस्तेमाल नये उद्योग धन्धों को लगाने में किया जाये।

जैसा कि लि होंग झांग ने 1872 में लिखा था कि उनका उद्देश्य चीन की ''सम्पत्ति एवं शक्ति'' (फू-क्यांग) में वृद्धि करना था। लि ने **क्वान दू शांग बान** (सरकार का निरीक्षण और व्यापारियों की कार्यवाहियां) शब्द का प्रयोग उन सभी उपक्रमों के लिये किया जिनका प्रारम्भ कर दिया गया था। इस नीति के एक भाग के रूप में 1872 में चाइना मर्चेन्ट्स स्टीम नेवीगेशन कम्पनी का प्रारम्भ किया गया। व्यक्तिगत पूंजी को कम्पनी की ओर आकर्षित करने के प्रयास किये गये यद्यपि प्रारम्भ के कुछ वर्षों में यह प्रयास सफल रहा किन्तु अधिक समय न चल सका। 1877 तक शेंग श्वान हॉय (1844-1916) के अधीन कम्पनी नौकरशाही के हितों का प्रतिनिधित्व करने लगी। खान उद्योग का विकास इस तरह से हुआ कि वह हथियारों के उद्योग की जरूरतें पूरी करता, वहीं वह दूसरी ओर उन विदेशियों का सामना करने में भी सफल हुआ जो चीन में खान खोलने की मांग कर रहे थे। 1876-1885 के बीच 10 खानों को शुरू किया गया और ये सभी खाने **क्वान दू शांग बान** व्यवस्था के अधीन थी। ये सभी लि-होंग झांग के नियन्त्रण में थी।

कपड़ा उद्योग में सरकारी एवं व्यक्तिगत उपक्रमों के बीच निश्चय ही कुछ प्रतियोगिता थी। शंघाई कपड़ा मिल का प्रारम्भ 1880 के दशक के अन्तिम वर्षों में हुआ लेकिन इसके अन्दर उत्पादन 1890 में ही हो सका। 1860 के दशक के अन्त में चीन के सहायक पूंजीपतियों ने विदेशी कम्पनियों के सहयोग से अनेक कपड़ा कम्पनियों का प्रारम्भ किया था। प्रथम पूर्ण रूपेण चीनी कपड़ा मिल का प्रारम्भ 1872 में कैन्टन क्षेत्र में एक रेशमी व्यापारी चेन क्युई-चॉन के द्वारा किया गया था। यह मिल सिर्फ रेशमी कपड़े की मिल थी सरकारी अधिकारियों के द्वारा उसकी सफलता को बहुत नहीं सराहा गया। चीन के अधिकारियों का प्राइवेट उद्योग धन्धों के प्रति क्या दृष्टिकोण था इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति एक स्थानीय अधिकारी के द्वारा दिया गया यह बयान ''मशीनों का प्रयोग करने का अधिकार केवल सार्वजनिक अधिकारियों को है'' करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युनयांग नीति के कारण संचार व्यवस्था के क्षेत्र में रेल एवं डाक व्यवस्था के रूप में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सन् 1863 में 27 विदेशी कम्पनियों के द्वारा शंघाई एवं सुझाओं के बीच रेलवे लाइन बनाने का प्रस्ताव किया गया। लेकिन इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया जिससे कि विदेशियों के द्वारा आगे किये जाने वाले अवैध अधिकार को रोका जा सके। लेकिन सीमित आधुनिकीकरण के कारण अनुकूल स्थिति पैदा हो जाने के कारण इस स्थिति में परिवर्तन आ गया। 1881 में 11 किलोमीटर लम्बी प्रथम रेलवे लाइन को काइपिंग माइनिंग कम्पनी के लिये कोयला ढुलाई करने के लिये बनाया गया। 1870-71 में विदेशी कम्पनियों ने हांगकांग शंघाई एवं व्लादि वोस्तक को डाक तार लाइन से जोड़ दिया। राष्ट्रीय डाक सेवाओं को लागू करने का विरोध जहां एक ओर सरकारी अधिकारियों की ओर से हुआ, वहीं विदेशियों, बैंकों तथा दूसरी अन्य कम्पनियों ने भी इसका विरोध किया क्योंकि उनके अपने स्वार्थ प्राइवेट डाक व्यवस्था में निहित थे। अधिकारियों को यह भय हुआ कि यदि उनकी सेवाओं को निरस्त्र कर दिया गया तब औपचारिक प्रभुत्व खतरे में पड़ जायेगा। बैंक अपने व्यवसाय की हानि नहीं चाहते थे। जिन विदेशियों ने बन्दरगाह नगरों में डाक सेवा को स्थापित किया वे विदेशी डाक सेवा को मजबूती से अपने स्वयं के नियन्त्रण में रखना चाहते थे।

15.3.1 आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ

स्वयं को मजबूत करने की इच्छा के साथ विदेशी भाषा के स्कूलों की स्थापना की गई थी, लेकिन इसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन नवीन स्कूलों की स्थापना में वैज्ञानिक खोजों को प्रसारित करने का कोई उद्देश्य न

था। लेकिन इन संस्थाओं के द्वारा उन गैर चीनी विचारों की स्पष्ट तौर पर अभिव्यक्ति हुई जिनका प्रसार 19वीं सदी के अन्तिम दशकों में तेजी के साथ हुआ था। एक थोड़ी संख्या में स्कूलों को, सीमित लोगों को तकनीकी ज्ञान प्रदान करने या अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के लिये खोला गया था। 1880 में कैन्टन में पश्चिमी ज्ञान की संस्था का प्रारम्भ किया गया। त्येनसिन में 1880 में एक टेलिग्राफ स्कूल, 1881 में एक नौसेना एवं सेना मेडिकल स्कूल तथा 1885 में एक सैनिक स्कूल खोला गया। सन् 1872-1881 के बीच में अमेरिकी शिक्षा प्राप्त करने के लिये 120 चीनी युवकों को संयुक्त राज्य अमेरिका में हार्टफोर्ड भेजा गया। इसी के समानान्तर एक दल को 1876 में शिक्षा प्राप्त करने के लिये फ्रांस भेजा गया।

पश्चिमीकरण में हिस्सेदारी करने के कारण इन कार्यक्रमों की गम्भीर आलोचना की गई। यह एक महत्वपूर्ण घटना है कि विदेश की इस शिक्षा से लाभान्वित होने वाले येन फू जैसे लोगों ने 19वीं सदी के अन्तिम वर्षों में चीन के बौद्धिक एवं राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान किया। लेकिन सन् 1881 में समुद्र पार शिक्षित करने के कार्यक्रम का परित्याग कर दिया गया। ऐसा करने का कारण अमेरिका की नीति थी। अमेरिका ने स्वयं ही चीन वासियों एवं अन्य एशियाई वासियों के अमेरिका में आने पर रोक लगा दी। कैलिफोर्निया में जबरदस्त चीन विरोधी आंदोलन के कारण ऐसा करना पड़ा। फिर भी 19वीं सदी के अन्तिम दशक में बहुत से चीनी युवक विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने की कोशिश करते रहते थे।

15.3.2 नवीनीकरण का विरोध

प्रारम्भ से ही सरकारी क्षेत्रों में **यांगवू** आंदोलन का लगातार विरोध किया जा रहा था। इसका सबसे कड़ा विरोधी मंगोल अधिकारी के-रेन था। वह सम्राट के शिक्षक तथा हानलिन अकादमी के अध्यक्ष जैसे महत्वपूर्ण पदों पर था। कन्फ्यूशियवादी ग्रंथों का प्रयोग करते हुए उसने तर्क देने का प्रयास किया कि मात्र विज्ञान एवं तकनीकी राज्य की समस्याओं का हल नहीं कर सकते। **यांगवू** आंदोलन ने आंतरिक विद्रोहों तथा विदेशी घुसपैठ को रोकने के लिये हथियार निर्माण की नीति का समर्थन किया था और इस कारण से यह बहस बहुत आगे नहीं बढ़ी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन यह विवाद उस समय और गहरा हो गया जब इन नवीन परिवर्तनों को उद्योग, संचार एवं शिक्षा जैसे दूसरे क्षेत्रों में लागू करने का प्रयास किया गया। नवीनीकरण के प्रति विरोध को मशीनीकरण तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था के प्रति जन विद्रोह से बल मिला। रेलवे के विरोध में होने वाले दंगों के कारण यह तर्क दिया गया कि आधुनिक तकनीकी को लागू करने में कानून एवं व्यवस्था को खतरा था। लेकिन यहां पर यह भी याद रखना चाहिये कि इन परिवर्तनों का जन विरोध जहाँ एक ओर धार्मिक विश्वासों एवं अन्य विश्वासों के कारण उत्पन्न हुआ था वहीं पर इस विरोध के पीछे यह डर भी छिपा था कि मशीनें आम जनता के जीवन यापन के साधनों को भी नष्ट कर देंगी। यह आधुनिकता विरोधी प्रतिक्रिया राज्य एवं व्यवस्था को परंपरावादी बनाये रखने के लिये एक संघर्ष था। उनको भय था कि नवीन परिवर्तनों के द्वारा राज्य एवं व्यवस्था को कमजोर कर दिया जायेगा और आगे चलकर वो-रैन तथा दूसरों का यह भय ठीक साबित हुआ।

15.3.3 पुनर्स्थापन तथा स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलनों के परिणाम

1) पुनर्स्थापन ने कुलीनों की राजनीतिक तथा सामाजिक भूमिकाओं को एक बार फिर से लागू कर दिया।

2) 19वीं सदी के ताइपिंग तथा दूसरे जन विद्रोहों का दमन करने के लिये राज्य ने प्रांतीय कुलीनों द्वारा बनाये सैनिक बलों का प्रयोग किया था और इसी के द्वारा क्षेत्रीय सैनिकवाद का बीजारोपण हुआ था। ये नयी सेनायें परम्परागत साम्राज्यिक सेनाओं से बेहतर थीं और अपनी क्षमता के कारण राज्य के लिये एक खतरा हो सकती थी। 20वीं सदी के प्रारम्भ में यह खतरा और भी गहरा हो गया।

3) इतिहासकार इस पर सहमत हैं कि राज्य द्वारा स्थापित किये गये उद्योग-धन्धे चीन में आधुनिक पूंजीवाद के उदय का चित्रण करते हैं। अधिकारियों के रूप में पूंजीपतियों, सहयोगी पूंजीपतियों, सौदागरों, कुलीनों एवं भू-स्वामियों का उदय एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन था।

4) अनुवाद तथा प्रकाशन के क्षेत्र में नवीन बौद्धिक एवं साहित्यिक रुझानों ने चीन के बुद्धिजीवियों के क्षितिज को और विस्तृत किया। धीरे-धीरे चीनी विद्वान इस तथ्य के प्रति

जागरूक हो रहे थे कि पश्चिमी ज्ञान, पश्चिमी सम्पन्नता तथा शक्ति का आधार केवल तकनीकी ज्ञान ही नहीं बल्कि कुछ और भी था।

लेकिन अन्तिम विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि इन प्रयासों के परिणाम थोड़े ही समय के लिये थे। लक्ष्य पूर्ण रूपांतरण का न था बल्कि नवीनीकरण को बनाये रखना मात्र था। राज्य शक्ति अभी भी छोटे प्रबुद्ध शासक वर्ग के हाथों में ही केन्द्रित थी। 1880 के दशक में यह व्यापक तौर पर विश्वास किया जाता था कि विदेशी संबंधों पर नियन्त्रण करने के लिये सीमित प्रयास किये गये। 19वीं सदी के अन्तिम दो दशकों में लगातार यह तथ्य तूल पकड़ता गया कि विदेशी उपस्थिति पर कोई नियन्त्रण नहीं था। **यांगवू** आंदोलन ने उद्योगों के प्रारम्भ करने तथा अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ तो कर दिया था, परन्तु यह चीनी अर्थव्यवस्था को वास्तव में मजबूत नहीं कर पाया था। न राज्य ही इतना मजबूत हो पाया कि वह साम्राज्यवादियों की चुनौतियों का सामना कर पाता और न उसमें अपने शोषित किसानों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता थी।

बोध प्रश्न 2

1) आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पर 10 पंक्तियों में एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) पांच पंक्तियों में पुनर्स्थापन तथा स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलनों के परिणाम बताइये।

....
....
....
....
....

15.4 1898 का सुधार आंदोलन

1894-95 के चीन-जापान युद्ध तथा उसमें चीन की पराजय ने **यांगवू** आंदोलन की पूर्ण असफलता को स्पष्ट कर दिया। कोरिया में जापान के हाथों चीन की अपमानपूर्ण पराजय ने चीन के सैन्यीकरण के खोखलेपन को उजागर कर दिया। चीन-जापान युद्ध की समाप्ति 1895 की शिमोनेसेकि की संधि के रूप में हुई और इस संधि के तुरन्त बाद विदेशी उद्योग एवं पूंजी की भरमार ने आर्थिक विकास पर सरकारी नियन्त्रण की क्षमता के ऊपर प्रश्न-चिह्न लगाया।

संक्षेप में इस युद्ध ने पुनर्स्थापन के बाद प्रारंभ किये गये विदेशी संबंधों के औचित्य से संबंधित और राज्य द्वारा प्रस्तावित सैनिक तथा आर्थिक आधुनिकीकरण से संबंधित अनेकों प्रश्नों को उठाया। मूल रूप से इसने चीन के बिखर जाने और औपनिवेशीकरण की संभावना को बलवती कर दिया।

जापान के हाथों चीन की पराजय **यांगवू** आंदोलन की असफलता का अकाट्य सबूत है। विदेशी शक्तियों के प्रसार में और 'चीनी तरबूज के टुकड़े करने' की पृष्ठभूमि में गहन

राजनीतिक असन्तोष के समय में एक बार फिर सुधार के लिये मांगे उठने लगीं।

शिमोनेसेकि की संधि की शर्तों के विरुद्ध हिंसात्मक प्रतिक्रिया हुई। संधि की शर्तें पूर्ण रूपेण जापान के पक्ष में थीं। चीन ने कोरिया के ऊपर अपने अधिकार का परित्याग कर दिया और ताइवान, पेसकेडोरस एवं लियाओतुंग द्वीपों को जापान के अपने अधीन कर लिया।

सम्राट के प्रभुत्व के विषय में 1890 के वर्षों से ही प्रश्नों को उठाया जाने लगा था। 1894 में कैन्टन निवासी सन यात सेन के द्वारा **सिंगझोन्गुई** (दि रिवाइव चाइना सोसायटी) के नाम की एक गुप्त संस्था का गठन किया गया। सन यात सेन ने सम्राट को सत्ता से हटाने के लिये एक विद्रोह को भी संगठित करने का प्रयास किया। लेकिन षडयंत्र का भेद खुल गया। सनयात सेन ने जापान में शरण ली। ताइवान के द्वीप को जापान के अधीन कर देने का विरोध हजारों कुलीनों ने सम्राट को स्मृति-पत्र देकर किया।

इस तरह के उफान ने कांग-यू-वी जैसे विद्यार्थियों को भी बहुत अधिक प्रभावित किया। कांग-यू-वी उस समय पीकिंग में राजधानी की एक परीक्षा में बैठने के लिये आया हुआ था और वह गोंग डंग का निवासी था और विद्वान भी। उसने सम्राट गोंग शू (1875-1909) को एक मांग-पत्र को 10,000 शब्दों में लिखा। इस मांग पत्र पर 1300 स्नातक परीक्षार्थियों ने हस्ताक्षर किये। ये परीक्षार्थीगण इस समय अपनी परीक्षा देने के लिये पीकिंग में ठहरे हुए थे। इस महत्वपूर्ण मांग-पत्र में बहुत सी मांगे थी:

1) इस मांग-पत्र के द्वारा राजा से यह प्रार्थना की गई थी कि वह शिमोनेसेकि की संधि को पारित न करे। चीन की पराजय के लिये जो उत्तरदायी थे उनको दंड दिया जाये।
2) सेना को पूरी तरह से पुनर्संगठित किया जाये और उसको आधुनिक बनाया जाये।
3) धन संबंधी मसले, बैंकिंग व्यवस्था तथा डाक व्यवस्था जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान करते हुए उनको सुधारा जाये।
4) सरकार प्राइवेट उद्योग एवं वाणिज्य को प्रोत्साहित करे।
5) कृषि विज्ञान, आधुनिक विज्ञान और अन्य तकनीकी विषयों का अध्ययन किया जाये।
6) स्कूलों एवं पुस्तकालयों का निर्माण हो।
7) परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन किया जाये।
8) एक महत्वपूर्ण मांग यह थी कि एक निर्वाचित परिषद बनायी जाये तथा यह परिषद राजनीतिक एवं आर्थिक मामलों को निपटाये। जिस समय गोंगयू सम्राट ने इस मांग-पत्र को देखा तब तक शिमोनेसेकि संधि पर हस्ताक्षर हो चुके थे। लेकिन कांग के इस मांग-पत्र को सभी प्रांतीय गवर्नरों को प्रेषित कर दिया गया। अब नवीन प्रस्तावित सुधारों के कारण प्रांतों में स्थान-स्थान पर अध्ययन संस्थायें खुल गई थीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1895 ई. में क्यांगशूई हुई (स्वयं अध्ययन के लिये संस्था) का प्रारम्भ किया गया। इसने भाषाओं का आयोजन किया और बिना किसी मूल्य के अध्ययन के लिये सामग्री का वितरण किया गया। नवम्बर 1895 में इस सोसायटी को यह कहते हुए बंद कर दिया गया कि यह विध्वंसात्मक गतिविधियों का केन्द्र बन चुकी थी। इस तरह की दूसरी संस्थाओं को झिल्ली, शंघाई, हुनान एवं शैनसि जैसे अन्य संस्थाओं पर प्रारम्भ किया गया। प्रेस का प्रसार हो जाने से इन सुधारवादी विचारों का फैलाव काफी व्यापक हो गया था। 1896-1898 के दो वर्षों में 25 से अधिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इन पत्रिकाओं में सबसे महत्वपूर्ण **शिवू बाओ** (तात्कालिक मामलों की पत्रिका) थी। इसका प्रकाशन शंघाई में कांग यू-वी के कुछ शिष्यों द्वारा किया गया था। **गौवेने बाओ** (राष्ट्रीय समाचार पत्र) का प्रकाशन फूझाओ के शस्त्रागार के भूतपूर्व स्नातक यान फू के द्वारा किया गया था। सुधार गतिविधियों के सबसे सक्रिय केन्द्र निचले वांगजी, गौंगडाग, हुनान एवं झिली क्षेत्रों में स्थित थे।

15.4.1 सुधार आंदोलन के मुख्य विचारक

कांग यू-वी

सबसे महत्वपूर्ण विचारक कांग यू-वी (1858-1927) था। उसका जन्म गौंग जेंग प्रांत में नानहाय में हुआ था। कांग ने परम्परागत शिक्षा प्राप्त की। जब 1881 एवं 1879 में वह शंघाई एवं हांगकांग गया तब उसने पश्चिमी ज्ञान को भी सीख लिया। कांग यू-वी के विचारों को दो बड़ी रचनाओं से समझा जा सकता है:

अ) **शिन स्यू वी जींग काओ** (सिन के शासन काल में संकलित की गई श्रेष्ठतम रचनाओं का अध्ययन।

ब) **कोंच-जी गाय झी काओ** (एक सुधारक के रूप में कन्फ्यूशियस) चीनी कन्फ्यूशियसवादी विचारों की प्रामाणिकता के लिये चीन के श्रेष्ठतम विद्वानों के बीच चली लम्बी बहस से निष्कर्ष निकालते हुए कांग ने स्वयं को हान काल की रचनाओं पर आधारित किया।

हान काल की कन्फ्यूशियसवादी रचनाओं को प्रामाणिक माना जाता है। इन रचनाओं के द्वारा कांग ने स्वयं को अपने समकालीन विद्वानों और पुनर्स्थापिन काल के विद्वानों से बुनियादी तरीके से अलग कर लिया। उसने तर्क दिया कि कन्फ्यूशियसवाद इन नये ग्रंथों में निर्भय खोजी के रूप में उभर कर आता है। कन्फ्यूशियसवाद सुधार का विरोधी नहीं है और वह परिवर्तन करने की आज्ञा भी देता है। इस तरह से कांग द्वारा कन्फ्यूशियस के अध्ययन ने स्वयं की परम्परा की सीमाओं के अन्दर एक परिवर्तन के मार्ग को प्रशस्त किया। 19वीं सदी के अन्त में इसका बड़ा व्यापक प्रभाव हुआ। कांग ने अपनी एक अन्य बड़ी रचना **दातोंग शू** (महान एकता की पुस्तक) में एक ऐसे उपयोगितावादी दृष्टिकोण को विकसित किया जिसके अनुसार अपने अन्तिम चरण में सभी प्रकार की असमानताएं तथा सरकारें समाप्त हो जायेगी। यह एक ऐसा युग होगा जिसमें मानव सौहार्दता एवं प्रसन्नता के साथ रह सकेगा।

कांग का योगदान उसकी इसी योग्यता में निहित था कि उसने सुधारों की मांगों को स्वयं चीनी परम्परा के ढांचे के अन्दर फिट कर दिया था। लेकिन कई मायनों में कांग भी **यांगवू** आंदोलन के नेताओं जैसा ही था।

कन्फ्यूशियसवाद की एक सुधारवादी विचारधारा के रूप में की गई मौलिक परिभाषा के बावजूद भी कांग कन्फ्यूशियसवादी मूल्यों का अनुसरण करने के प्रति समर्पित बना रहा और वह चीन के पुनरूत्थान में कुलीन वर्ग की भूमिका को भी स्वीकार करता था। उसने प्रबुद्ध वर्ग से आग्रह किया वह नेतृत्व की भूमिका को स्वीकार करे और सुधारों को निर्देशित करे और ऊपर की ओर से परिवर्तन करे। वह यह भी मानता था कि चीन का सम्राट भी उसी तरह की भूमिका अदा कर सकता था जैसी की मेजी सम्राट ने जापान में और पीटर महान ने रूस में राज्य के नियन्त्रण एवं निर्देशन में सुधारों का प्रारम्भ करने में की थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यान फू एवं तान सी तोंग

यान फू ने हक्सले की पुस्तक **इवोल्यूशन एण्ड एथिक्स**, एडम स्मिथ की पुस्तक **दि वेल्थ ऑफ नेशन्स** तथा हरबर्ट स्पेन्सर की पुस्तक **ए स्टडी ऑफ सोशोलोजी** के अनुवाद के द्वारा पश्चिमी विचारों को फैलाने में निर्णायक भूमिका अदा की। डार्विन के तर्कों का प्रयोग करते हुए यान फू ने तर्क दिया कि चीन का सम्पूर्ण पुनर्निरीक्षण किया जाये और उसने सुझाव दिया कि विश्व की नयी राजनीतिक वास्तविकता में केवल शक्तिशाली ही जीवित रह पायेगा। यद्यपि यान फू प्रत्यक्ष तौर पर राजनीति में नहीं था किन्तु उसके अनुवादों का चीन पर गहरा प्रभाव पड़ा

तान सी तोंग ने प्रत्यक्ष तौर पर न केवल शासक वर्ग की रूढ़िवादिता की कड़ी आलोचना की बल्कि कन्फ्यूशियसवाद के नैतिक नियमों की भी आलोचना की। उसने चीन पर मांचू वंश के प्रभुत्व को भी समाप्त करने का आह्वान किया। मांचू वंश एवं चीन के बीच के विवाद का अन्तिम शीर्षक 19वीं सदी के अन्त में राष्ट्रवादी गतिविधि के लिये मुख्य मुद्दा बन गया। इसी के कारणवश अन्ततः 1911 की चीनी क्रांति हुई। इसका विवरण आगामी भाग में किया जायेगा।

15.4.2 सुधार आंदोलन का प्रभाव

साम्राज्यवादी देशों के स्वार्थों तथा प्रभाव क्षेत्रों का प्रसार तेजी के साथ हुआ जिससे चीन का बिखर जाना काफी संभावित प्रतीत होता था। पश्चिमी शक्तियों ने अपनी राष्ट्रीयताओं के अनुसार अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों को पारस्परिक पहचान के द्वारा आपस में बांट लिया। इस प्रक्रिया पर सम्राट का बहुत कम नियन्त्रण था।

कांग ने अपने पांचवे स्मृति-पत्र में गौंगशू सम्राट को सम्बोधित करते हुए राजनीतिक सुधारों के लिये निवेदन किया और यह तर्क भी दिया कि यही एक मात्र ऐसा रास्ता है जिससे चीन एवं शासक वंश को बचाया जा सकता है। अब कांग के स्मृति-पत्रों को राजा तक पहुंचाने की आज्ञा दे दी गई थी। 11 जून, 1898 को गौंगशू सम्राट ने सुधार कार्यक्रम की जो घोषणा की उसी से ही सुधार प्रयास का प्रारम्भ हुआ।

बोध प्रश्न 3

ठीक उत्तर का पता लगाइए:

1) 1894 में **शिंगझोंगहाय** (दि रिवाइव चाइना सोसायटी) के नाम से पुकारे जाने वाली गुप्त सोसायटी की स्थापना की गई:

अ) माओं त्से-तुंग के द्वारा

ब) युआन शि-काइ के द्वारा

स) सन यात-सेन के द्वारा

द) सिन फेंग के द्वारा

2) सुधार आंदोलन के मुख्य विचारक कौन थे? लगभग 10 पंक्तियों में उनके विचार लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.5 सौ दिनों के सुधार

इन सुधारों का यह नाम जिस कारण से रखा गया था वह यह कि ये 11 जून 1898 से16 सितम्बर, 1898 तक अर्थात 103 दिन में लागू किये गये थे। कांग और उसके सहायकों कों कार्यक्रम में सहायता करने के लिये पीकिंग बुलाया गया। कांग को जोंगली यानेन का सचिव नियुक्त किया गया।

15.5.1 सुधार का क्षेत्र

शाही आज्ञापत्रों में प्रशासन, शिक्षा और अर्थव्यवस्था जैसे महत्वपूर्ण विषयों को शामिल किया गया। कार्यरहित अधिकारियों तथा पदों को समाप्त कर दिया गया तथा मांचूओं को दी जाने वाली सभी प्रकार की आर्थिक सहायता को भी समाप्त कर दिया गया। परम्परागत रीति से बुनियादी तौर पर अलग होते हुए, सभी अधिकारियों एवं जनता को यह आज्ञा दे दी गई कि सीधे-सीधे सुझावों को सम्राट को सम्बोधित करते हुए भेजें। ऐसा इसलिए किया गया, जिससे सम्राट को राजमहल से बाहर निकाल कर उसका जनता के साथ सीधा-सीधा सम्पर्क कायम हो जाये। पुराने शिक्षा केन्द्रों को स्कूलों में परिवर्तित कर दिया गया। पीकिंग विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। विज्ञान एवं राजनीति को परीक्षा के विषयों के रूप में शामिल कर दिया गया।

आठ हिस्सों वाली जटिल निबंध प्रणाली को समाप्त करते हुए परीक्षा पद्धति का आधुनिकीकरण करने का प्रयास किया गया। इस निबन्ध का स्वरूप निबन्ध लेखन की एक कठोर शैली पर आधारित था। यह निबन्ध सदियों से निबन्ध के स्वरूप एवं शैली से संबंधित होता था किन्तु इसके अन्तर्गत लेखन के सार का कोई महत्व न था।

आधुनिक वैधानिक व्यवस्था को लागू करने के लिये कार्यालयों को खोला गया और राज्य के वित्तीय प्रबन्धन को भी दुरुस्त करने के प्रयास हुए। कृषि, उद्योग तथा व्यापार की देखभाल करने के लिये मन्त्रालयों का निर्माण किया गया। प्रांतीय अर्थव्यवस्थाओं को स्थायित्व प्रदान करने के लिये योजनाओं को बनाया गया था और **चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स** का प्रारम्भ किया गया।

इन उपायों का लक्ष्य राज्य की सत्ता को उखाड़ फेंकना नहीं था। इन सबके बावजूद भी मांचू, चीनी अधिकारीगण तथा विद्वानों की जमात के बीच इन सुधारों को लेकर एक चिन्ता व्याप्त थी। इन विद्वानों ने परीक्षाओं की तैयारी में सम्पूर्ण जीवन लगा दिया था और अब वे इसके लिये चिन्तित थे कि नयी परीक्षा पद्धति एवं प्रस्तावित शिक्षा व्यवस्था में उनकी स्थिति कैसी होगी।

15.5.2 प्रतिक्रिया

सुधार आंदोलन के विरोधियों को महासम्राज्ञी दावागर त्सूत्सी के रूप में एक जबरदस्त समर्थक मिल गया। सेनापति युआन शि-काइ की सहायता से महारानी ने गौंगशू सम्राट को बन्दी बना लिया और 21 सितम्बर, 1898 को सभी सुधारवादियों को गिरफ्तार कर लिया गया। कांग यू-वी और उसका घनिष्ट सहयोगी तथा शिष्य लियांग की-चाओ विदेश भाग गये। तान सी-तोंग तथा अन्य पांच सुधारवादियों को फांसी दे दी गई। तान ने विदेश जाने से इंकार करते हुए यह कहा : "बिना रक्त बहाये किसी भी देश में सुधारों को पूरा नहीं किया जा सका। चीन में अभी तक इसके लिये किसी ने कोई खून नहीं बहाया है। ऐसा करने वाला मैं प्रथम हो जाऊंगा।"

सभी सुधारों को पलट दिया गया। केवल पीकिंग विश्वविद्यालय को जारी रहने दिया गया।

सुधार प्रयास में स्वयं में बहुत से विरोधाभास निहित थे। सुधारकर्ताओं का मुख्य ध्यान चीन के प्रबुद्ध वर्गों पर ही केन्द्रित था। प्रस्तावित राजनीतिक सुधार ऐसे थे कि वे स्वयं ही शासक प्रबुद्ध वर्ग के हितों को निरन्तर पूरा करते रहते। समाज के जीवन निर्वाह के मुख्य साधन कृषि पर कोई ध्यान न दिया गया। सुधारकों ने जिस अवैध विदेशी आधिपत्य का विरोध करने की प्रतिज्ञा की थी और इससे ऐसा प्रतीत होता था कि वे उस पश्चिमीकरण का विरोध कर रहे थे जिसकी उन्होंने पुरजोर वकालत की थी।

1898 के सुधार आंदोलन ने जनता के बहुत से समूहों पर किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव छोड़ा था। सुधारकों को एक समूह यह मानने लगा था कि राजनीतिक परम्परा एवं इसकी व्यवस्था के अन्तर्गत ही धीरे-धीरे राजनीतिक सुधारों को किया जाये। कुछ अन्य को यह विश्वास हो गया कि राजा चीन की समस्याओं का हल करने में पूर्ण रूपेण अयोग्य था और अपनी इस समझ को उन्होंने राजनीतिक संगठनों तथा अन्य संस्थाओं तक पहुंचाया। इन सभी लोगों को बीसवीं शताब्दी में काफी समर्थन मिला और इनके अनुसार अब चीनी समस्याओं का क्रांति के अतिरिक्त कोई अन्य समाधान न था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

1) सौ दिन के सुधार की प्रतिक्रिया पर 10 पंक्तियां लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) रिक्त स्थान को भरें।

i) आठ हिस्सों वाली निबंध प्रणाली को .... (जारी रखा गया/समाप्त कर दिया गया)।

ii) सुधार प्रयास के विरुद्ध .... (थे/नहीं थे)।

iii) सम्राज्ञी दावागर त्सूत्सी सुधारों को .... (कुचल डाला/बढ़ावा दिया)।

15.6 सारांश

1850 के बाद के दशकों में चीनी समाज चिंग शासकों के अन्तर्गत एक संकट के दौर से गुजर रहा था। साम्राज्यवादी शक्तियों के विस्तार तथा आंतरिक उथल-पुथल ने चीनी राज्य को लगभग पतन के कगार पर ला खड़ा किया। इस संकट से निपटने के लिये चिंग सरकार ने सुधारों की एक श्रृंखला की शुरुआत की। विद्वानों ने सुधारों के इस काल को पुनर्स्थापन का काल माना। इस काल में तोंगझी का शासन काल (1862-71) भी शामिल होने के कारण इसे तोंगझी पुनर्स्थापन का काल भी माना जाता है।

तोंगझी पुनर्स्थापन का उद्देश्य मात्र पुरानी व्यवस्था को बनाये रखना ही नहीं था परंतु बाहरी शक्तियों तथा आंतरिक विद्रोहों से उत्पन्न संकट के कारण एक नये राष्ट्रीय कार्यक्रम का निर्माण करना भी था। स्वयं सुदृढ़ीकरण आंदोलन इस पुनर्स्थापन का ही एक हिस्सा था। इसका सार आंशिक आधुनिकीकरण की नीति में निहित था।

कृषि अर्थव्यवस्था और राज्य प्रशासन तंत्र की पुनर्स्थापना को पूरी ईमानदारी के साथ लागू किया गया। पर कुल मिला कर किसानों को एक सामाजिक वर्ग की क्षमता में, इस नीति से कोई फायदा नहीं मिला।

राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कन्फ्यूशियसवादी सिद्धांतों पर ज़ोर दिया गया। राज्य की नागरिक प्रशासन व्यवस्था को बहाल किया जा सका और ऐसा नई परीक्षा प्रणाली से आये योग्य अधिकारियों के कारण ही संभव हो पाया। कन्फ्यूशियसवादी सिद्धांतों के अनुरूप नौकरशाही को पुनर्संगठित किया गया। कन्फ्यूशियसवादी विचारधारा और ज्ञान के द्वारा राज्य के राजनीतिक तथा प्रशासनिक ढांचे को मजबूत किया गया।

इस काल के दूसरे चरण में चीनियों ने अपने देश को धनी और शक्तिशाली बनाने के प्रयास किये। यद्यपि थोड़ी आर्थिक वृद्धि तो हुई, पर ये प्रयास अधिक सफल न हो सके क्योंकि तोंगझी पुनर्स्थापन के अन्तर्गत चीन के पारंपरिक व्यापार को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया गया। फिर भी इस समय में चीनी समाज में कुछ नये परिवर्तन अवश्य हुए। संचार की दशा में मुख्य रूप से यातायात और डाक-तार के क्षेत्र में, देश भर में सुधार आया। डाक-तार सुविधाओं के विकास के लिये किये गये गंभीर प्रयासों का काफी सक्रिय विरोध हुआ। अधिकतर नेताओं का यह मानना था कि स्टीम से चलने वाले पानी के जहाज, रेलवे तथा टेलीग्राफ व्यवस्था की शुरुआत से परंपरागत अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक ढांचे को नुकसान था तथा पाश्चात्य तौर तरीकों को अपनाने में राज्य की सुरक्षा को भी खतरा हो सकता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान के साथ युद्ध में चीन की पराजय ने चीनी लोगों के बीच में कई तरह की प्रतिक्रिया पैदा की। युद्ध के बाद 1895 की शिमोनेसेकि की संधि के घातक परिणाम हुए। लगभग पूरे शासन तंत्र को धक्का पहुंचा और चीन औपनिवेशीकरण की संभावनाओं के और भी नजदीक पहुंच गया। लेकिन संकट के इस दौर में सभी चीनी नेताओं ने पूरी एकता दिखाई और राजनीतिक परिवर्तन के लिये एकजुट होकर प्रयास किया।

पहला प्रयास सन-यात-सेन ने किया। चिंग वंश के पतन के लिये एक गुप्त संस्था का निर्माण किया, पर इस प्रयास में सफलता नहीं प्राप्त हुई। सन-यात-सेन की पूरी योजना ही असफल हो गई। कांग-यू-वी के शासन तंत्र को पुनर्गठित करने के प्रस्तावों के भी संतोषजनक परिणाम न निकले। विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों के अधिक फैलाव के कारण, चीन बिल्कुल पतन के कगार पर पहुंच गया।

संकट की इस घड़ी में कांग तथा सुदृढ़ीकरण आंदोलन के अन्य विचारकों ने यह समझ लिया कि सिर्फ राजनीतिक सुधार ही चीन को बचा सकते हैं। सौ दिन के सुधारों ने कई प्रकार के मुद्दों को उठाया और प्रशासन, शिक्षा तथा अर्थव्यवस्था पर काफी जोर दिया गया लेकिन इन सुधार प्रयासों का उद्देश्य राज्य सत्ता को उखाड़ फेंकना नहीं था। समाज के विभिन्न वर्गों ने भी इन सुधारों का विरोध किया। इन सुधारों की असफलता के कारण कई और विभिन्न हैं। नई परीक्षा प्रणाली के अन्तर्गत शोषक सुधार प्रयासों में कई छात्रों का भविष्य बरबाद कर दिया। सुधारवादियों ने विदेशियों के अतिक्रमण पर भी कोई रोक नहीं लगाई। इन सब कारणों से इन सुधारों का असफल होना अवश्यंभावी ही था। यद्यपि सुधारों का यह प्रयास संक्रमणकालीन ही था, लेकिन इसने देश पर अपना प्रभाव छोड़ा। इसने राजनीतिक परिवर्तन की तलाश में चीन के शिक्षित वर्ग को एक दशा दी और उनका मार्गदर्शन किया।

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) दो मुख्य नीति अवयव थे चिंग सत्ता का पुनर्स्थापन और स्वयं सुदृढ़ीकरण। इनका मुख्य उद्देश्य था राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा को वापस लाना और आंशिक आधुनिकीकरण।

2) तोंग झी पुनर्स्थापन द्वारा प्रशासन को पुनर्गठित करने के कई प्रयास किये गये। नौकरशाही में योग्य व्यक्तियों की भर्ती की गई। राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचों को मजबूत करने का प्रयास कन्फ्यूशियसवाद पर जोर देते हुए किया गया। देखें उपभाग 15.2.3.

3) तोंग-वेन-क्वान विदेशी भाषाओं के स्कूल थे। उन स्कूलों की स्थापना तकनीकी विषयों और विदेशी भाषाओं की जानकारी देने के लिये हुई थी। देखें उपभाग 15.2.5.

बोध प्रश्न 2

1) सुदृढ़ीकरण आंदोलन के अन्तर्गत विदेशी स्कूलों की स्थापना ने शिक्षा के क्षेत्र में नई प्रवृत्तियों की शुरुआत की। इससे गैर चीनी और पश्चिमी विचारों की ओर चीनियों का झुकाव हुआ।

2) पुनर्स्थापन ने कुलीनों की राजनीतिक और सामाजिक भूमिका को मजबूती प्रदान की। नई बौद्धिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों ने चीनियों के ज्ञान का प्रसाय किया। देखें उपभाग 15.3.3.

बोध प्रश्न 3

1) स

2) कांग-यू-वी, यान फू, और तान सि तोंग सुधार आंदोलन के मुख्य विचारक थे। कांग ने कन्फ्यूशियसवाद को प्राचारित किया और हान काल के नये ग्रंथों पर अपने विचारों को आधारित किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

1) सौ दिनों के सुधार की युआन-शि-काई द्वारा आलोचना की गई और इसकी काफी गम्भीर प्रतिक्रिया हुई। कई सुधारकों को गिरफ्तार कर लिया गया और कुछ बाहर भाग गये। पीकिंग विश्वविद्यालय की स्थापना को छोड़कर सुधार के सभी प्रयासों को वापस ले लिया गया। देखें भाग 15.5.

2) i) समाप्त कर दिया गया।

   ii) नहीं थे।

   iii) कुचल डाला।

इकाई 16 जापान में राजनीतिक सुधार

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 शपथ चार्टर
16.3 बाकू-हान व्यवस्था के उपरान्त का राजनीतिक तंत्र
 16.3.1 हान की समाप्ति
 16.3.2 स्थानीय सरकार
16.4 जनप्रिय अधिकारों के लिए आंदोलन
16.5 राष्ट्रीय सभा की स्थापना
16.6 संविधान
 16.6.1 सम्राट
 16.6.2 डायट
 16.6.3 जनता के अधिकार
 16.6.4 कार्यपालिका
 16.6.5 सेना
 16.6.6 न्यायपालिका
 16.6.7 संविधान का कार्य
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई को पढ़ने के बाद:

- जापान के सम्राट की उस प्रारंभिक घोषणा की आपको जानकारी हो सकेगी जिसके द्वारा जनता को राजनीति में भाग लेने की आज्ञा प्रदान कर दी गई,
- आप उस प्रक्रिया को जान सकेंगे जिसके द्वारा बाकू-हान व्यवस्था को नष्ट कर दिया गया था और एक केन्द्रीयकृत नौकरशाही राज्य की स्थापना की गई,
- जनता के आंदोलन, उनके नेतृत्व तथा राजनीतिक प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व से संबंधित मांगों के विषय में भी आपको जानकारी हो सकेगी,
- इस आंदोलन के बारे में सरकारी प्रतिक्रियाओं के विषय में आप सीख सकेंगे,
- आपको यह जानकारी होगी की संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना कैसे की गई, और
- आपको यह भी आभास हो जाएगा कि प्रारम्भिक वर्षों में संविधान ने कैसे कार्य किया।

16.1 प्रस्तावना

यह इकाई उन राजनीतिक सुधारों का विवरण प्रस्तुत करती है जिनके कारण जापान में आधुनिक राष्ट्र राज्य की स्थापना हुई। इस इकाई में 1868 से 1889 तक उस समय का विवेचन किया गया है जबकि संविधान को निर्णायक रूप से लागू किया गया। इस काल में जापान का उद्भव एक केन्द्रीकृत प्रशासन के अंतर्गत एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में हुआ। इसके अंतर्गत जहां एक ओर राष्ट्रीय एकता शामिल थी वहीं इसने उन क्षेत्रीय वफादारियों को भी समाप्त कर दिया जिनकी अभी तक एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। इन राजनीतिक सुधारों का उद्देश्य जापान को एक ऐसा आधुनिक राष्ट्र बनाना था जो पश्चिमी राष्ट्रों के समान आधुनिक राष्ट्र हो और इस उद्देश्य को बहुत-सी आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं के समाविष्ट के द्वारा प्राप्त किया गया।

अप्रैल, 1868 में सम्राट के द्वारा जारी किये गये शपथ चार्टर में मंत्रणात्मक सभाओं की स्थापना का वायदा किया गया। सार्वजनिक मत के द्वारा किये जाने वाले निर्णयों से स्पष्ट था कि राजनीतिक प्रक्रिया में सार्वजनिक हिस्सेदारी की अनुमति दे दी जाएगी। इस पृष्ठभूमि में लोकप्रिय अधिकारों के आंदोलन ने राष्ट्रीय सभा की स्थापना की मांग को उठाया। जनता की ओर से सरकार पर डाले गये इन दबावों के साथ-साथ संविधान निर्माण के लिए मेजी शासकों के द्वारा प्रारम्भ की गई प्रतिक्रियाओं की अंतिम परणिति 1889 में मेजी संविधान को लागू करने के रूप में हुई। इस तरह से जापान एशिया में एक लिखित संविधान वाला प्रथम राष्ट्र हो गया।

16.2 शपथ चार्टर

जापान के विद्वानों ने मेजी वंश के शासन से पूर्व की कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं के इतिहास को संकलित किया है। इनमें से निर्णय लेने के आधार को विस्तृत करने की प्रक्रिया भी थी जिसके द्वारा जनता को भी इस प्रक्रिया में शामिल किया जाना था। तोकूगावा शासकों ने अपने शासन के अंतिम वर्षों में राजनीतिक प्रक्रिया में जनता के और व्यापक समूहों को शामिल किया। इस पृष्ठभूमि के कारण ही मेजी सरकार के लिए यह संभव हो पाया कि साम्राज्यिक वापसी के तुरंत बाद सार्वजनिक मत के द्वारा निर्णय करने के सिद्धांतों की उन्होंने घोषणा कर दी। सम्राट द्वारा उद्घोषित पांच धाराओं के शपथ चार्टर की घोषणा विश्व के सम्मुख अप्रैल, 1868 में उस नये मार्ग के लिए की गई जिसका जापान को अनुसरण के लिए प्रस्ताव किया गया था। ये पांच धाराएं थी :

1) मंत्रणात्मक सभाओं की व्यापक तौर पर स्थापना की जाएगी और राज्य के सभी मामलों का निर्णय आम मत के द्वारा होगा।

2) सभी वर्ग, उच्च या निम्न संयुक्त तौर पर राज्य के मामलों में प्रशासन को संचालित करने में सहयोग करेंगे।

3) सामान्य जन नागरिक सैनिक अधिकारियों से कम महत्वपूर्ण नहीं होंगे। उनको वह करने की अनुमति होगी जो वे करना चाहते हों। राजनीति के प्रति इससे लोगों में उदासीनता नहीं फैलेगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) अतीत की गलत परंपराओं का परित्याग कर दिया जाएगा और प्रत्येक वस्तु स्वर्ग तथा पृथ्वी के कानून पर आधारित होगी।

5) ज्ञान को संपूर्ण विश्व से खोजा जाएगा जिससे कि साम्राज्यिक शासन के आधार बलशाली बन जाएंगे।

इन धाराओं का मौलिक प्रारूप एछिजैन जाति के यूरी किमीमासा के द्वारा तैयार किया गया था और वह तोबूंगावा विद्वान योकोय शोनन से प्रभावित था। इन धाराओं में संवैधानिक संसदात्मक सरकार की संभावनाएं निहित थी। इस घोषणा का उपयोग एक ऐसे आंदोलन के आधार के लिए किया गया जिसके द्वारा जनता की मांग पर राष्ट्रीय सभा की स्थापना की गई हो। इस राष्ट्रीय सभा में सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व होगा और इसके माध्यम से वे अपने भाग्य का फैसला कर सकेंगे।

16.3 बाकू-हान व्यवस्था के उपरान्त का राजनीतिक तंत्र

सन् 1868 में तोकूगावा शासकों के तख्तों को एक साम्राज्यिक गुट के द्वारा उलट देने के बाद, 1868 के संविधान के नाम से प्रसिद्ध एक उद्घोषणा के द्वारा एक नवीन राजनीतिक तंत्र की स्थापना की गई। इसके अंतर्गत सर्वोच्च राजनीतिक प्रभुत्व के साथ कौंसिल ऑफ स्टेट (दाजोकन) की स्थापना हुई। यह शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित थी। जुलाई 18969 में फिर कुछ परिवर्तन किये गये लेकिन मेजी नेताओं के रूप में सरकार का स्वरूप निर्धारित हो चुका था। 1871 में अपनायी गई मंत्रि परिषद की व्यवस्था को 1885 में लागू कर दिया गया। कौंसिल ऑफ स्टेट या राज्य परिषद को सेंट्रल बोर्ड, राइट बोर्ड तथा लैफ्ट बोर्ड (वान बोर्ड) में विभाजित किया गया। सेन्ट्रल बोर्ड सरकार का सर्वोच्च संगठन था और इसका प्रमुख चांसलर **(दाजो देजिन)** था और इसमें जन प्रतिनिधि भी शामिल होते थे। बाद

में इन जन प्रतिनिधियों (**दायनगों**) का स्थान लैफ्ट तथा राइट के मंत्रियों और अनेकों कौंसिलरों ने ले लिया। लैफ्ट बोर्ड की रचना विधायिका कार्यों को संपन्न करने के लिए की गई थी किन्तु इसने मात्र एक सलाहकार संस्था के रूप में कार्य किया। राइट बोर्ड को विभागों के प्रमुख तथा उनके जन प्रतिनिधियों के द्वारा बनाया गया था। इस समय में विदेशी मामलों के विभाग, वित्तीय, युद्ध, सार्वजनिक कार्य, सामाजिक गृह शिक्षा, शिन्टों और न्यायपालिका जैसे विभागों की रचना की गई। 1873 में गृह विभाग को भी जोड़ा गया। सिद्धांत तौर पर राइट बोर्ड को सेन्ट्रल बोर्ड से अलग कर दिया गया था किन्तु प्रभावशाली कौंसिलरों ने भी विभागों के प्रमुखों के रूप में कार्य किया। नीति निर्माण एवं प्रशासनिक कर्तव्य दोनों मिश्रित हो गये।

सनजो सनेटोमी (1887-1891) और इवाकुरा तोमोमी ने क्रमशः चांसलर के पद तथा राइट के मंत्री का पद ग्रहण किया, लेकिन वास्तविक सत्ता का संचालन चांसलरों के द्वारा ही किया जाता था और ये चांसलर मुख्य रूप से सतसुमा एवं चोसी से होते थे। सतसुमा से सैगो टाकोमारी, ओकूबो तोसीमिची, चोसी से किदो कोयन, इतो हिरोबूमि, इनावो कौरू, यमगाता तै सुके, हिजेन से उनेकूमा, शिगेनोबू तथा टोसा से इतागाकी तै सुके और जोतो शोजिटों मुख्य नेता थे। इन सभी नेताओं ने तोकूगावा शासन को उखाड़ फेंकने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

16.3.1 हान की समाप्ति

मात्र प्रशासन में पविर्तन नयी सरकार को शक्तिशाली नहीं बना सकता। केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में देश का सारा राजस्व नहीं था। केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में जापान के कृषि उत्पादन का एक चौथाई से भी कम था। शेष राजस्व प्रत्येक हान (डोमेन) के अन्तर्गत था और इसकी स्वायत्तता अभी अबाध तौर पर जारी थी। किदी कोयन ने महसूस किया कि शोगुन की भांति हान को बाध्य किया जाए, जिससे वे अपनी स्वायत्तता को सम्राट के अधीन कर दें। सतसुमा चोसु, तोसा तथा हिजेन से नेताओं ने अपने-अपने स्वामियों को यह मनाने में सफलता प्राप्त कर ली कि वे अपने-अपने राजस्व के अधिकारों को अधिक से अधिक मार्च, 1869 तक सम्राट को वापस करने प्रारंभ कर दें। दूसरे जमींदारों ने भी भय से ऐसा करना शुरू कर दिया वरना उनको सम्राट के प्रति वफादार न समझा जाता। जिन जमींदारों ने ऐसा स्वयं नहीं किया उनको ऐसा करने के लिए बाध्य किया गया। भूतपूर्व जमींदारों को पैतृक हान के तौर पर नियुक्त कर दिया गया और उनको हान की कुल आमदनी का दसवां भाग वेतन के तौर पर दिया जाने लगा। इन भूतपूर्व देम्यो के सामुराइ वर्ग को आमदनी के तौर पर उनके पहले की आमदनी का एक मामूली भाग दिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हान भूमि को सम्राट को वापस करने की प्रक्रिया को 1870 तक पूर्ण कर लिया गया। हान भूमि को वापस करते समय कुछ दैम्मो जैसे सतसुमा के शयाजू हिसामित्सु को ऐसा समझाया गया कि वे अपनी स्वायत्तता तथा अपनी सेना को अपने पास रख सकेंगे। लेकिन मेजी शासकों की इच्छा यह थी कि हान को पूर्ण रूप से हटाकर उनके स्थान पर सरकार के जिला अधिकारियों को बैठा दिया जाये और उनको केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा जाए। इस नीति को कार्यरूप देने के लिए सतसुमा जैसे मामलों में दबावों की आवश्यकता थी शिमाजू हिसामित्सू को सरकार में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया, लेकिन उसने इंकार कर दिया। फिर भी उसने शैगो ताकामोरी को सरकार में सम्मिलित होने की अनुमति प्रदान कर दी। सरकार ने भी एक साम्राज्यिक सेना को सतसुमा चोशू तथा तोसा द्वारा उपलब्ध कराये गये योद्धाओं के द्वारा सरकार को उखाड़ने के प्रयासों का विरोध करने के लिए संगठित किया। अगस्त, 1871 में हान को समाप्त करने की घोषणा की गई और उनके स्थान को सरकार जिला अधिकारियों ने ले लिया और इन अधिकारियों के प्रमुख केन्द्र सरकार द्वारा नामजद किये गये गवर्नर थे। कैसे इतनी सरलता से इन दैम्यों ने अपने अधिकारों का परित्याग कर दिया? उन्होंने बड़ी अनुकूल शर्तों को प्राप्त करने के बाद ही अपने अधिकारों का परित्याग किया। उन शर्तों के अनुसार हान के संचालन में कुछ भी खर्च किये बिना वे हान की आमदनी का दसवां भाग अपने पास रख सकते थे। अनेक हानों को वित्तीय संकट किसानों के बीच असंतोष तथा सामुराइयों के विरोध जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। वास्तव में केन्द्रीय सरकार ने हानों की समस्याओं का समाधान ही किया। इसके बावजूद भी भूतपूर्व दैम्मों को अदायगी का वचन तथा हान की आमदनी पर सामुराइ के एक भाग ने सरकार के राजस्व पर अतिरिक्त भार लाद दिया क्योंकि राजस्व का एक तिहाई भाग इन अदायगी के लिए आवंटित किया गया था। हान पर जो भी कर्ज था वह अब सरकार का

उत्तरदायित्व हो गया था। 1871 में हान की समाप्ति के बाद नेताओं के बीच नई सरकार का स्वरूप क्या हो – इसको लेकर काफी मतभेद थे। जहाँ एक ओर सैगो ताकामोसी ऐसी व्यवस्था चाहता था जिसमें सत्ता नियंत्रण शिज़ोकू (भूतपूर्व सामुराइ) के हाथों में हो, वहीं पर ओकूबो तथा किदो ने केन्द्रीकृत नौकरशाही सरकार की स्थापना को प्राथमिकता दी।

एक ऐसा महत्वपूर्ण सुधार किया गया जिसको सामाजिक सुधार की श्रेणी में भी रखा जा सकता है और इस सुधार से देश की राजनीतिक प्रक्रियाओं पर गंभीर परिणाम हुए। वर्ग व्यवस्था के कारण समाज **शी, नो, को शो** (सामुराइ, किसान, कारीगर तथा व्यापारी) जैसे पदानुक्रम में विभाजित था। इस नये सुधार के द्वारा तोकूगावा काल में विद्यमान इस सामाजिक बुराई का अंत कर दिया गया। मेजी सरकार की घोषणा के द्वारा व्यवसाय की स्वतंत्रता की अनुमति प्रदान कर दी गई, सामान्य जनों को अपने पारिवारिक नामों को धारण करने की भी अनुमति प्राप्त हो गई। सामुराइ को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे उनको खत्म कर दिया गया। इस सुधार के बावजूद भी सरकार ने 1872 में जनता का वर्गीकरण **काजोकू** (सामतों), **शिजोकू** (सामुराइ का उच्च वर्ग) और **हेमिन** (सामान्य जन) में किया गया। इस वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य वंशानुक्रम की पहिचान करना था। आगे चलकर **काजाकू** वर्ग सामन्तों की नयी व्यवस्था के निर्माण का एक आधार बन गया और इस नयी व्यवस्था को हाऊस ऑफ पीर्स (House of Peers) के नाम से जाना गया।

16.3.2 स्थानीय सरकार

261 **हानों** को समाप्त कर दिया गया और देश को 302 **केन** (प्रशासक पदों) तथा 3 **फू** (राजधानीय प्रशासनिक पदों) में विभाजित किया गया। आगामी वर्षों में इसको और अधिक सुदृढ़ करने के लिए प्रयास किये गये। सन् 1888 तक देश को तीन प्रशासनिक पदों के साथ ओकीनावा को शामिल करते हुए 43 प्रशासनिक पदों में विभाजित कर दिया गया। इन प्रशासनिक क्षेत्रों के गवर्नरों की नियुक्ति तथा उन पर नियंत्रण केन्द्रीय सरकार के द्वारा किया जाता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रारंभ में अर्थात् 1871 में बहुत से गांवों को एकीकृत किया गया और फिर उनको प्रशासनिक जिलों के अधीन कर दिया गया। इन इकाइयों के प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति केन्द्र के द्वारा की जाती और प्रभावी तौर पर वे नवीन नौकरशाही वर्ग के सदस्य थे। सन् 1878 में जिलों को समाप्त कर दिया गया और संपूर्ण देश को नगरों तथा गांवों के रूप में गठित किया गया तथा ये नगर एवं गाँव प्राथमिक प्रशासनिक इकाई बन गये। सन् 1880 में नगर एवं ग्राम सभाओं की स्थापना की गई। इन सभाओं के सदस्यों का निर्वाचन राष्ट्रीय विधि द्वारा निर्धारित मामलों को करने के लिए किया जाता था।

इसलिए 1880 के आसपास केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था को स्थापित कर दिया गया था और ऐसा गांव तथा नगर स्तर पर सभाओं की स्थापना के बाद ही संभव हो सका। क्या यह जनप्रिय अधिकारों के लिए आंदोलन का परिणाम था? क्या इन सभाओं को राष्ट्रीय सभा का अग्रदूत कहा जा सकता था?

बोध प्रश्न 1

सही का चिन्ह (√) लगाइये।

1) एशिया में ऐसा कौन सा पहला राष्ट्र था जिसका लिखित संविधान था।

   अ) चीन

   ब) कोरिया

   स) थाइलैंड

   द) जापान

2) अ) मेजी सरकार के समय में राज्य परिषद सेन्ट्रल बोर्ड एवं राज्य सचिवालय नामक दो भागों में विभाजित थी।

   ब) मेजी सरकार के समय में राज्य परिषद सेन्ट्रल बोर्ड, राइट बोर्ड एवं लैफ्ट बोर्ड नाम की तीन संस्थाओं में विभाजित थी।

   स) मेजी सरकार के समय में राज्य परिषद मुख्य तौर पर केंद्र राज्य संबंधों के सिद्धांतों पर आधारित थी।

द) मेजी सरकार के समय में राज्य परिषद सेन्ट्रल बोर्ड, राइट बोर्ड, लैफ्ट बोर्ड एवं स्टेट बोर्ड जैसे चार भागों में विभाजित थी।

3) हान की समाप्ति कैसे हुई? इस पर 10 पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

16.4 जनप्रिय अधिकारों के लिए आंदोलन

जनप्रिय अधिकारों के लिए आंदोलन **शिजोक** (उच्च सामुराइ वर्ग) के असंतोष का परिणाम था। यह वर्ग केन्द्र की उस सत्ता में हिस्सेदारी की मांग कर रहा था जिसको सतयूमा-चोशु जाति के द्वारा एकाधिकारकृत कर दिया गया था। उनके साथ ऐसे धनी किसान (ओनो) शामिल हो गये जो सरकार का ध्यान किसानों की समस्या पर केंद्रित करना चाहते थे। इतागाकी तैसुके के नेतृत्व में तोसा गुट इस आंदोलन का केन्द्र था और इतागाकी ने कोरिया के प्रश्न पर (इसकी विस्तृत जानकारी के लिए इकाई-10 को देखें) सरकार को छोड़ दिया था। इतागाकी ने एक छोटे राजनैतिक दल का गठन कर लिया और इस दल में ग्रामीण क्षेत्रों के असंतुष्ट तत्व भी सम्मिलित हो गये। जनवरी, 1874 में इतागाकी, गोतो शोजिरो तथा सोयजिमा तनोयमि के साथ अन्य चार लोगों ने मिलकर राष्ट्रीय सभा की स्थापना की मांग करते हुए सरकार को एक मांग पत्र दिया। उनके तर्क पश्चिमी उदारवाद पर आधारित थे। उन्होंने अपने इस मांग पत्र में अधिकृत निरंकुशवाद का विरोध किया और कहा कि देश की अच्छाई के लिए स्वतंत्र बहस की आज्ञा दी जानी चाहिए। उन्होंने "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" के नारे को उठाया और इससे किसानों के उस असंतोष की अभिव्यक्ति हुई जो चावल की शराब पर नये कर लगाने से संबंधित था। इस मांग पत्र में जापान के अंदर राष्ट्रीय सभा के बुलाने की आवश्यकता के विषय में भी बहस कराने की मांग को उठाया गया था। फिर चाहे जनता संसदात्मक सरकार के लिए तैयार थी या नहीं। मेजी सरकार ने परंपरागत पदानुक्रम संस्थाओं के समझौतों को भंग कर और नवीन विचारों के प्रसार को प्रोत्साहित कर राजनीतिक बहस के लिए एक माहौल को तैयार किया। गाँवों के शिक्षित नेताओं के साथ-साथ अन्य दूसरे बुद्धिजीवियों ने ग्रामीण स्कूलों को प्रारम्भ करने, राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना करने, तथा राजनीतिक अधिकारों के विचारों का प्रसार करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। एक विशिष्ट ग्रामीण परिवार में कोनो हिरोनाका (1849-1923) इस आंदोलन का एक मुख्य नेता था। बुद्धिजीवी तथा पत्रकार, इन विषयों में जनता की रुचि को जगाने के लिए टोक्यो से भाषण यात्रा पर जाते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरकार की प्रतिक्रिया दो तरह की थी। पहले तो सरकार ने दमनात्मक तरीकों को अपनाया। राजनीतिक आलोचनाओं को सीमित करने के लिए सरकार ने 1875 में प्रेस अधिनियम को लागू कर दिया और गृह मंत्रालय से सेंसरशिप लागू करने तथा हिंसा के लिए भारी जुर्माने लगाने के लिए कहा। अप्रैल, 1880 में राजनीतिक सभाओं तथा संगठनों के ऊपर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। कुछ अन्य प्रकार के सकारात्मक कदमों को भी उठाया गया। सभाओं को शहरों, कस्बों एवं ग्रामों में स्थापित किया गया। ये सभायें मेयरों एवं गांवों के प्रमुखों का चुनाव करती थी। सभा के एक तिहाई सदस्यों को प्रत्यक्ष निर्वाचन के अंतर्गत चुना जाता। एक अन्य उपाय के तहत मेयर के पद को अवैतनिक बना दिया गया। गरीबों को इस राजनीतिक प्रक्रिया से बिल्कुल अलग रखा गया। प्रशासनिक क्षेत्र की सभा के सदस्यों को नगर, कस्बा तथा ग्राम के उन सम्मानीय लोगों के मध्य से चुना जाता था जो दस येन से

अधिक राष्ट्रीय कर अदा करते थे। जिस समय बाद में राष्ट्रीय सभा का गठन किया गया तब भी मतदाता सूची में केवल धनी लोगों को शामिल करने का सिद्धांत लागू रहा। जनप्रिय अधिकारों के आंदोलन की आलोचना की प्रतिक्रिया में सरकार ने किदो तथा इतागाकी नामक नेताओं को 1875 में सरकार में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। इसके साथ ही सरकार ने राजनीतिक आधार विस्तृत करने के लिए सुधारों का वायदा भी किया। इस सबके बावजूद भी कोई वास्तविक राजनीतिक सुधार नहीं लागू किये गये। परिणामस्वरूप किदो तथा इतागाकी ने त्यागपत्र दे दिये। सैगो ताकामोरी की कोरिया पर आक्रमण करने की योजना को 1873 में नकार दिया गया और परिणामस्वरूप उसने सरकार से त्यागपत्र दे दिया। इसी के साथ उसने 1877 में सरकार के खिलाफ विद्रोह में सामुराइयों का प्रतिनिधित्व भी किया। ये सामुराइ अपने विशेषाधिकारों के छिनने के कारण सरकार से असंतुष्ट थे। इस विद्रोह को सतसुमा विद्रोह के नाम से जाना जाता है। सतसुमा विद्रोह का नवनिर्मित साम्राज्यिक सेना ने सफलतापूर्वक दमन किया। विद्रोह की असफलता ने राष्ट्रीय सभा की स्थापना के लिए चल रहे आंदोलन को और बढ़ावा दिया। 1880 के दौरान 240,000 से अधिक लोगों ने औपचारिक तौर पर याचिकायें दायर कीं।

16.5 राष्ट्रीय सभा की स्थापना

बाकूहान व्यवस्था को समाप्त कर दिये जाने पर जहां एक ओर राष्ट्र को एकीकृत कर दिया गया वहीं 1872 में इवाकुरा तोमोमी के नेतृत्व में ओकूबो, इतो, इनावू, किदो जैसे सदस्यों का एक प्रतिनिधि मंडल वैधानिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन करने के लिए पश्चिमी देशों की यात्रा पर गया। यह महसूस किया गया कि यदि संस्थाओं का पुनर्गठन पश्चिमी संस्थाओं के आधार पर न किया गया तब पश्चिमी देशों द्वारा स्वीकृत की गई असमान संधियों में संशोधन करना संभव न हो सकेगा। यह प्रतिनिधि मंडल यह मानकर लौटा कि जहां एक ओर मजबूत जापान का निर्माण करने के लिए संवैधानिक सरकार का होना आवश्यक है वहां इसी के साथ-साथ पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत असमान संधियों में भी संशोधन करना होगा। बहस सरकार के स्वरूप को लेकर भी और उसी के साथ-साथ राष्ट्रीय सभा की स्थापना के समय को लेकर भी थी तथा 'सार्वजनिक' (Public) शब्द को भी परिभाषित करना था। शासक वर्ग के अंदर यह आम सहमति बनी कि कुछ लोगों द्वारा शासित सरकार की व्यवस्था को परिवर्तित किया जाना चाहिए और 1873 में स्वयं ओकूबो ने इतो से एक संविधान के प्रारूप को तैयार करने के लिए कहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सैगो के समर्थकों द्वारा ओकूबों की हत्या कर देने के बाद संविधान निर्माण के कार्य के लिए इतो तथा ओकूमा का मुख्य व्यक्तियों के रूप में उद्भव हुआ। सन् 1879 में सम्राट ने इवाकूरा की सलाह पर पार्षदों से संवैधानिक सरकार के औचित्य के लिए लिखित मतों को जमा करने के लिए कहा। जबकि सभी पार्षदों ने अपने स्मरण पत्रों में संवैधानिक सरकार के स्वरूप पर क्रमिक दृष्टिकोण को अपनाने के लिए आग्रह किया वहीं पर ओकूमा ने ब्रिटिश ढांचे पर आधारित संसदात्मक सरकार को तुरंत अपनाने के लिए जोर दिया। ओकूमा ने दूसरे नेताओं को उनके प्रस्तावों में अपनी असहमति के विषय में सूचित नहीं किया और सीधे-सीधे अपने प्रस्तावों को सम्राट के पास भेज दिया। इतो ने इसको विश्वासघात माना और उसने महसूस किया कि ओकूमा अपनी उग्रवादी योजना के माध्यम से जनता के समर्थन को प्राप्त करना चाहता था तथा इस तरह से वह अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने का भी इच्छुक था। ओकूमा के साथ अन्य मामलों पर भी मतभेद और गहरा हो गया। सन् 1881 में सरकार ने होक्केदो औपनिवेशी कमीशन में अपनी संपत्ति को **सतसुमा** की एक प्राइवेट कंपनी को 380,000 येन में बेचने का निर्णय किया जबकि सरकार ने इसमें एक करोड़ चालीस लाख येन निवेश किये थे। ओकूमा पर यह आरोप लगाया गया कि उसने इसकी सूचना प्रेस को दे दी। जिसके कारण यह राजनीतिक हंगामें का विषय बन गया। एक सुनिश्चित अभियान का प्रारंभ ओकूमा के मित्र फूकूजावा युकिची के द्वारा किया गया। इसलिये ओकूमा पर यह आरोप लगाया गया कि वह प्रेस के समर्थन का उपयोग कर रहा था और वह सरकार का तख्ता पलटने में रुचि रखता था और इसी कारणवश उसको 12 अक्टूबर 1881 को सरकार से बहिष्कृत कर दिया गया।

सरकार ने आम जनता के असन्तोष को शान्त करने के लिये उसी समय 1889 में संविधान निर्माण की ओर 1890 में राष्ट्रीय सभा को संगठित करने की घोषणा की। एक तरह से इतो-ओकूमा संघर्ष ने सरकार को संवैधानिक सरकार के प्रति एक प्रतिबद्धता को मानने तथा

एक सुनिश्चित तारीख की घोषणा के लिये बाध्य किया। लेकिन ओकूमा के उन प्रस्तावों को पर्याप्त समर्थन नहीं मिला जिनमें संसद के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमण्डल के ब्रिटिश प्रारूप का आग्रह किया गया था। अब इतो का उदय जापान के संविधान के जनक के रूप में हुआ। इस संविधान को काफी सीमित रखा गया था।

इतो ने विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं का एक गहन अध्ययन करने तथा जापान की परम्परा के अनुरूप व्यवस्था की तलाश में 1882-1883 का समय ब्रिटेन, फ्रांस तथा जर्मनी में लगाया। अपने अध्ययन अभियान पर जाने से पूर्व हरमन रोज लेर के प्रभाव के अधीन इतो ने प्रशिया के संविधान के प्रारूप को अपनाने का निर्णय किया। जर्मनी में इतो को वहां के प्रसिद्ध विद्वानों की सलाह का भी लाभ प्राप्त हुआ। उन विद्वानों में रुदोइफवॉन रिनस्ट तथा लॉरेंज वॉन स्टेन प्रमुख थे। इतो ने विदेशों में जाकर अध्ययन के द्वारा स्वयं को ऐसे ज्ञान से लैस किया कि वह इसके द्वारा उन आलोचकों का सफलतापूर्वक सामना कर सका जो ब्रिटिश संविधान के प्रारूप का समर्थन करते थे।

अपने वापस लौटने पर इतो ने संविधान का अध्ययन करने के लिये एक आफिस खोला। सरकार को मजबूत करने के लिये उसने आवश्यक संस्थात्मक आधारों का निर्माण किया जिससे कि राजनीतिक दलों के द्वारा सत्ता में हिस्सेदारी करने की मांग से निबटा जा सके। हाऊस ऑफ पीस के लिये उसने जर्मन ढांचे के अनुसार सामन्तों के लिये एक नयी व्यवस्था की रचना की। यह हाऊस ऑफ पीस क्रीजोकू से लोकप्रिय मताधिकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों पर नियन्त्रण रख सकता था और यह उच्च सरकारी अधिकारियों तथा दूसरे महत्वपूर्ण अधिकारियों पर भी नियन्त्रण रख सकता था। यामागता ओसीतोमो की भांति इतो स्वयं काउंट बन गया। सन् 1888 में संविधान की जांच-पड़ताल करने के लिये प्रिवी कोंसिल की रचना की गई लेकिन इस कार्य को पूरा करने के बाद भी यह संस्था जारी रही और इस पर अल्पतंत्र (Oligarchy) का कड़ा नियन्त्रण कायम हो गया। मंत्रिमंडल से अलग दो मंत्रिपदों की शुरुआत की गई। ये थे – साम्राज्यिक मामलों (Imperial Household) का मंत्रालय तथा प्रिवी सील (Privy Seal) मंत्रालय (Lordkeeper) ये दोनों मंत्री अल्पतंत्र (Oligarchy) से चुने जाते थे। इन दोनों पदों की स्थापना सत्ता में आने वाले राजनीतिक दलों के प्रभाव से सामाजिक संस्थाओं को मुक्त रखने के लिये की गई थी। सामाजिक सम्पत्ति एवं भू-सम्पत्ति में काफी वृद्धि हुई थी। 1881 एवं 1890 के बीच सम्पत्ति में 6000 गुणा वृद्धि हुई थी। 1887 के आसपास उनकी सम्पत्ति स्टॉक एवं बौण्ड में 80 लाख येन के करीब जांची गई थी। इस तरह से राजस्व का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका था और सरकार के द्वारा अपनी योजनाओं को कार्यरूप देने के लिये इसका शोषण किया जा सकता था और फिर चाहे भविष्य की संसद के द्वारा इसका विरोध भी किया जाता इस तरह के स्रोत को डायट के सीमा क्षेत्र के अन्दर नहीं लिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1885 में मन्त्रिमण्डल व्यवस्था ने **दाजोकन** का स्थान ले लिया। प्रधान मंत्री सहित इस मन्त्रिमण्डल में दस सदस्य थे और प्रधान मंत्री सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। **सतसुमा** एवं **चोशू** के अन्दर चार-चार मंत्री रख कर एक नये संतुलन को कायम किया गया। इसलिये नयी व्यवस्था के अन्तर्गत भी **सतसुमा** एवं **चोशू** का प्रभुत्व बना रहा। इस नयी व्यवस्था के अधीन जनप्रिय अधिकारों के नेताओं की इस तंत्र को तोड़ने की आशायें पूर्ण न हो सकीं। नागरिक सेवा की एक नयी व्यवस्था का प्रारम्भ किया गया जिसके अनुसार कुछ पदों को छोड़ कर सम्पूर्ण नौकरशाही की परीक्षा प्रणाली के द्वारा भर्ती की जानी थी। इस तरह से यदि कोई राजनीतिक दल सत्ता में आने पर अपनी इच्छानुरूप उच्च पदों पर लोगों को नामजद करना चाहे तब वह ऐसा नहीं कर सकता था। आगे आने वाले समय में नौकरशाही अल्पतन्त्र के लिये एक परकोटा साबित हुई। इस परीक्षा प्रणाली के कारण नौकरशाही में वही लोग आ पाते थे जो सरकार द्वारा संचालित आठवीं एवं हाई स्कूलों में तथा इसी के साथ-साथ सम्मानित टोकियो विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते थे। सरकारी अधिकारियों के परम्परागत भय के साथ-साथ उनके इस अभियान के कि वे सामाजिक सेवाओं से जुड़े थे न केवल उनको प्रभुत्वसम्पन्न वर्ग बनाया बल्कि उनके अन्दर जनता के प्रति तिरस्कार की भावना और बढ़ी। इसके अतिरिक्त उच्च नौकरशाही को कानून के अन्तर्गत विशेषाधिकार प्राप्त थे और उसके लिये विशेष आमदनी वाले कानून भी थे। इस तरह से सार्वजनिक बहस के माध्यम से लिये जाने वाले निर्णयों के सिद्धान्त को संविधान के द्वारा लागू किये जाने से पूर्व ही इतो ने सरकार को काफी सुरक्षित गढ़ उपलब्ध करा दिया था।

बोध प्रश्न 2

1) सही वक्तव्य पर (√) निशान लगाइये।

अ) सभी क्षेत्रों से राजनीतिक टिप्पणियों को बढ़ावा देने के लिये 1875 में प्रेस अधिनियम को लागू किया गया।

ब) मेजी शासन के दौरान सरकारी तथ्यों की सत्यता को बनाये रखने के लिये 1875 में प्रेस अधिनियम को लागू किया गया।

स) सरकारी तथ्यों का खुलासा करने देने के कारण सरकारी अधिकारियों पर जुर्माना लागू करने के लिये प्रेस अधिनियम को लागू किया गया।

द) राजनीतिक आलोचनाओं को सीमित करने के लिये 1875 में प्रेस अधिनियम को लागू किया गया और गृह मंत्रालय से सेंसरशिप लागू करने को भी कहा गया।

2) अ) सतसुमा विद्रोह सामन्त जमींदारों के विरुद्ध था।

ब) सतसुमा विद्रोह सामन्त जमींदारों के समर्थन में था।

स) सतसुमा विद्रोह किसानों के एक समुदाय के विरुद्ध एक षड्यंत्र था।

द) सतसुमा विद्रोह सरकार के विरुद्ध था।

3) ब्रिटिश ढांचे पर आधारित ओकूमा के प्रस्तावों की असफलता पर दस पंक्तियाँ लिखिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.6 संविधान

इता और उसके तीन सहयोगियों इनाउ कोबाशी, केनेको कान्त्रो तथा इतो मियोजी ने 1887 की गर्मियों में संविधान के प्रारूप को अन्तिम रूप से तैयार कर दिया था। उसकी जांच रूजलर के द्वारा की गई तथा उसको प्रिवी कौंसिल को सौंप दिया गया। इतो के अधीनस्थ प्रिवी कौंसिल ने छः माह तक इस पर विचार किया। इतो का कहना था कि "संविधान के पीछे यह भावना है कि शासक के प्रभुत्व को सीमित किया जा सके तथा जनता के अधिकारों की सुरक्षा।" इसी के साथ-साथ उसने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि संविधान के प्रारूप को शासक के प्रभुत्व को और मज़बूत करने के लिए तैयार किया गया है। इस तरह से यह कहा जा सकता है: "मेजी संविधान आवश्यक तौर पर ऐसी ही अवधारणाओं को एकीकृत करने का प्रयास था जिनके बीच आपसी सौहार्द पैदा नहीं किया जा सकता था। ये अवधारणाएं थीं – सामाजिक निरंकुशता और लोकप्रिय सरकार।"

16.6.1 सम्राट

इतो एवं अन्य के सम्मुख यह समस्या थी कि सम्राट के स्थान को एक संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत कैसे सुनिश्चित किया जाए क्योंकि सम्राट की जड़े जापान की ऐतिहासिक परंपरा में निहित थी। आगे उन्होंने यह महसूस किया कि सम्राट की स्थिति को संविधान में इस प्रकार परिभाषित किया जाए कि न केवल उसके पास सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति हो अपितु उसको एक ऐसी धार्मिक भूमिका करने वाले के रूप में प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए जिसके द्वारा वह जनता के आत्मिक एवं नैतिक मूल्यों का केन्द्र बिंदु हो जाए।

इसी के साथ-साथ यह भी सहमति हुई कि सम्राट की शक्तियों का संचालन संविधान के द्वारा

किया जाना चाहिए जिससे उसके पास असीमित शक्तियाँ न रह पाएंगी। इसी कारणवश संविधान की धारा 3 में "सम्राट पवित्र एवं अनुल्लंघनीय है" और संविधान की धारा 4 में कहा गया, "सम्राट साम्राज्य का प्रमुख होने के कारण, संप्रभुता के अधिकार उसके अंतर्गत निहित हैं और वह इनका उपयोग संविधान में उल्लेखित प्रावधानों के अनुरूप ही करता है।" 11 फरवरी, 1889 को संविधान को सम्राट की ओर से जनता के लिए उपहार के रूप में उद्घोषित किया गया। 11 फरवरी साम्राज्य दिवस था, परम्परा के अनुसार सम्राट ने इसी दिन सिंहासन को प्राप्त किया था। सम्राट की निम्नलिखित शक्तियों को संविधान में शामिल किया गया:

1) सैन्य बलों का सर्वोच्च अधिकारी
2) युद्ध की घोषणा, शांति करना तथा संधियों को करने की शक्ति
3) अधिकारियों को नियुक्त करने तथा व्यापक कार्यपालिका प्रभुत्व की शक्ति
4) साम्राज्यिक डायट को बुलाने, खोलने, बंद करने, सत्रावसान करने तथा प्रतिनिधि सभा को भंग करने की शक्ति
5) जिस समय डायट विधान को पारित कर देती है तब सम्राट उसको निरस्त कर सकता था और नये अध्यादेश जारी कर सकता था
6) सभी सरकारी अधिकारी एवं मंत्रिमंडल के मंत्री सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे, न कि डायट के प्रति।

सिंहासन के उत्तराधिकार को इम्पीरियल हाऊस लॉ, साम्राज्यिक परिवार के प्रमुख उत्तराधिकारियों में से निश्चित करेगा। इम्पीरियल हाऊस लॉ में संशोधनों का निर्णय सम्राट के द्वारा इम्पीरियल परिवार कौंसिल तथा प्रिवी कौंसिल की सलाह से किया जाएगा।

संविधान में राजनीतिक प्रक्रिया में जनता की हिस्सेदारी के सिद्धांत को शामिल करने के लिए किस प्रकार के तंत्रवाद को लागू किया गया?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.6.2 डायट

डायट को दो सदनों से बनाया गया था और ये दोनों सदन **हाऊस ऑफ पीर्स** तथा प्रतिनिधि सभा थे। हाऊस ऑफ पीर्स में साम्राज्यिक परिवार के सदस्यों, सामंतों तथा सम्राट द्वारा नियुक्त किए गए व्यक्ति मनोनीत किए जाते थे। प्रतिनिधि सभा में तीन सौ सदस्य थे और उनका निर्वाचन जनता के द्वारा सीमित मताधिकार के आधार पर किया जाता था। संविधान के साथ-साथ प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के चुनावी कानूनों को भी लागू किया गया था। मताधिकार का अधिकार केवल उन पुरुषों के पास था जो संपत्ति के मालिक थे। औसतन 2-3 हेक्टेयर से अधिक भूमि की मिल्कियत आवश्यक थी और जिनकी आयु 25 वर्ष से अधिक थी। इस तरह से 4 करोड़ की जनसंख्या में मात्र 450,000 लोगों के पास मत देने के अधिकार थे। प्रतिनिधि सभा निचला सदन था और इसके पास व्यवस्थापिका की सीमित शक्तियां थी क्योंकि सम्राट एवं हाऊस ऑफ पीर्स इसके द्वारा पारित किए गए विधान को निरस्त कर सकते थे। लेकिन डायट के सदस्यों के पास किसी भी प्रस्ताव को प्रस्तावित करने का अधिकार था। निचला सदन अर्थात् प्रतिनिधि सभा संविधान में कोई संशोधन नहीं कर सकती थी। केवल सम्राट के पास ही इस तरह का अधिकार था। डायट का सरकारी अधिकारियों के ऊपर कोई प्रभुत्व न था और बजट पर भी उसका सीमित नियंत्रण था। बजट के कुछ विशेष प्रावधानों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता था। यदि डायट इसको पारित करने में असफल हो जाती तब सरकार को यह अधिकार था कि वह पिछले वर्ष के बजट के प्रावधानों के आधार पर कार्य कर सकती थी। कर संबंधी बिलों पर डायट की सहमति लेना आवश्यक था। यही एकमात्र प्रावधान था जहां पर डायट में विरोधी दल कार्यपालिका पर कुछ सीमा तक नियंत्रण करने के लिए कार्यवाही कर सकते थे।

सीमित शक्तियों के बावजूद भी सरकार डायट के सहयोग के बगैर कार्यों को नहीं कर सकती थी। डायट अविश्वास के प्रस्ताव को पारित कर मंत्रीमंडल को सत्ताच्युत नहीं कर सकती थी क्योंकि मंत्रिमंडल डायट के प्रति उत्तरदायी न था। दोनों सदनों को सम्राट से प्रत्यक्ष आग्रह करने का अधिकार दिया गया था ये जनता से याचिकाओं को प्राप्त कर सकते थे। डायट के अधिवेशन का समय मात्र तीन माह क सीमित था लेकिन शाही आदेश के द्वारा इसके समय को बढ़ाया जा सकता था। अति विश ष अधिवेशनों का निर्णय भी शाही आदेश के द्वारा होता था। दोनों सदनों की कार्यवाहियों क ार्वजनिक तौर पर किया जाता था। प्रतिनिधि सभा को

प्रधान मंत्री की इच्छा पर भंग किया जा सकता था। जबकि हाउस ऑफ पीर्स जारी रहता था, निचले सदन के सदस्यों को नवनिर्वाचित करना पड़ता था और भंग होने के पांच माह के अंदर नये सदन को बुलाना पड़ता था।

16.6.3 जनता के अधिकार

संविधान के द्वारा जनता के कुछ अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की गारंटी दी गई थी, लेकिन इनको ''कानून की सीमाओं'' के अंतर्गत सीमित कर दिया गया था। सरकारी अधिकारियों द्वारा किए गए गलत कार्यों को विधि की स्थायी अदालतों में चुनौती नहीं दी जा सकती थी। वास्तव में जापान की जनता को सीमित अधिकार एवं स्वतंत्रता प्रदान की गई थी।

16.6.4 कार्यपालिका

ऐसे लोग जो मंत्रीगण हो सकते थे उनके लिए संविधान में कोई विशेष योग्यताओं का उल्लेख नहीं किया गया था। मंत्रीमंडल का कोई सामूहिक उत्तरदायित्व न था और प्रत्येक मंत्री सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। प्रिवी कौंसिल को भी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करने का अधिकार दिया गया था और वह सम्राट को भी सलाह दे सकती थी। प्रिवी कौंसिल के साथ-साथ अनौपचारिक समूह जेनरो (बड़े राजनेताओं की संस्था) ऐसी संस्थाएं नहीं थीं जिनका गठन संविधान के द्वारा किया गया हो लेकिन वे मंत्रिमंडलों के निर्माण में प्रभुत्व का प्रयोग करती और सम्राट उनके द्वारा दी गयी सलाह पर अपनी सहमति प्रदान करता। कई वर्षों तक जेनरो का गठन सतसुमाचोशू समूह के सदस्यों द्वारा किया जाता था। इसी कारणवश संविधान की उद्घोषणा भी सतसुमाचोशू तंत्र के प्रभुत्व को खण्डित न कर सकी।

16.6.5 सेना

सेना प्रत्यक्ष तौर पर सम्राट के प्रति उत्तरदायी थी और संविधान में ऐसा कोई प्रावधान न था जिसके आधार पर सेना नागरिक नियंत्रण के प्रति सहायक हो। 1900 में एक साम्राज्यिक अध्यादेश द्वारा सेना को यह कहते हुए अनुबंधित किया गया कि केवल सक्रिय सेनापतियों तथा उप-सेनापतियों के साथ-साथ नौसेनापति एवं उप-नौसेनापति क्रमशः युद्ध के पदों एवं नौसेना मंत्री पद को प्राप्त कर सकते थे। इस तरह से उनकी शक्तियों को बढ़ाकर मंत्रिमण्डल की शक्ति को कम कर दिया गया। सैनिक अधिकारीगण उनकी नीतियों का विरोध अपने पदों को छोड़ कर कर सकते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.6.6 न्यायपालिका

संविधान के अंतर्गत जो वैधानिक व्यवस्था उत्पन्न हुई उसको ''कानून के द्वारा शासन'' कह कर परिभाषित किया गया न कि ''कानून का शासन'' कह कर। अदालतों के एक पदानुक्रम में लघु नीति अदालतों, जिला अदालतों, स्थानीय अदालतों, अपील अदालतों तथा ठहराव की अदालतों की स्थापना की गई। इन ठहराव की अदालतों में छोटी अदालतों से दायर किए मुकदमों पर कानूनी बिंदुओं पर विचार किया जाता था। मुकदमें की कार्यवाही सार्वजनिक तौर पर होती थी, लेकिन जब किसी मामले को कानून व्यवस्था के लिए न्यायपूर्व समझा जाता था तब मुकदमें की सार्वजनिक कार्यवाही को निरस्त कर दिया जाता। एक अलग अदालती व्यवस्था (प्रशासनिक मुकदमों की अदालत) प्रशासनिक अधिकारियों के शामिल होने वाले मामलों का निपटारा करने के लिए स्थापित की गई। इसका तात्पर्य यह था कि प्रशासनिक गलतियों को कानून की परिधि के अंदर नहीं लाया जा सकता था।

16.6.7 संविधान का कार्य

मेजी संवैधानिक व्यवस्था ने सम्राट को अनेक विशेषाधिकार प्रदान किए थे किंतु परिपाटी के कारण वह इन शक्तियों का उपयोग अपनी स्वयं की इच्छा के अनुरूप नहीं कर सकता था। उसको राज्य के मंत्री एव साम्राज्यिकी डायट की सलाह पर निर्भर रहना पड़ता था। मंत्री परिषद, डायट, सेना, प्रिवी कौंसिल जैसी राज्य की संस्थाओं का अस्तित्व कुल मिलाकर स्वतंत्र था। ये संस्थाएं सम्राट के माध्यम से एकीकृत स्वरूप ग्रहण कर चुकी थीं और सम्राट अपनी व्यक्तिगत इच्छा के आधार पर अपने अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकता था। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय सरकार के सरल संचालन के हित में बहुत सी संस्थाओं के बीच पारस्परिक सहयोग एवं सौहार्द बनाये रखना अति आवश्यक था। मेजी शासन के दौरान जेनरो (बड़े राजनेताओं की संस्था) ने सम्राट के नाम पर उसके कार्यों को संयुक्त रूप से संपन्न किया। लेकिन 1910 से जेनरो के पतन के कारण शक्ति विसर्जन की खामियां स्पष्ट

होने लगी। बाद में बहुत से शक्ति केन्द्रों के बीच संघर्ष होने लगे। यदि शक्ति का विसर्जन किया गया था तब उत्तरदायित्व का भी विसर्जन होना चाहिए था लेकिन सम्राट को प्रत्यक्ष तौर पर उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता था और इसी कारण से "गैर-उत्तरदायित्व" की व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

लोकप्रिय अधिकारों के समूह ने मेजी संविधान के प्रति समर्थन का दृष्टिकोण दिखाया क्योंकि इसके द्वारा दलीय मंत्रिपरिषद से इंकार नहीं किया गया था।

डायट में सार्वजनिक बहस के कारण सदस्यगण सरकार की बहुत सी नीतियों एवं प्रशासनिक कार्यवाही के बारे में जनता को सूचित करने में सफलता प्राप्त कर सके। यद्यपि डायट सरकार का तख्ता नहीं पलट सकती थी फिर भी यह जनता की दृष्टि में मंत्रियों की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचा सकती थी एवं सहयोग करने से इंकार करके सरकार को परेशानी में डाल सकती थी। इस तरह से जहाँ डायट को प्रारंभ में अल्पशासन तंत्र के द्वारा एक आवश्यक आपत्तिजनक वस्तु माना जाता था, वहीं अब इसका अधिक महत्व हो गया और इसी कारणवश 1900 में इतो हिरोबूमि स्वयं एक राजनीतिक दल की स्थापना की ओर अग्रसर हुआ। सम्राट को प्रत्यक्ष तौर पर मांग-पत्र देने के अधिकार का उपयोग डायट के सदस्यों द्वारा मंत्रिपरिषद को सेंसर करने के लिये 1892 में उस समय किया गया जबकि मंत्रियों ने उनके विचारों की ओर ध्यान नहीं दिया। लेकिन सम्राट ने मंत्रिपरिषद तथा डायट के सदस्यों को अपने मतभेदों को केवल दूर करने को कहा। दिसम्बर 1893 में डायट के सदस्यों ने सम्राट को प्रधान मंत्री इतो को बर्खास्त करने का प्रस्ताव भेजा। प्रिवी कौंसिल ने सम्राट की ओर से जवाब देते हुए बयान जारी किया "प्रधान मंत्री के त्याग पत्र के संबंध में, मैं बाहरी हस्तक्षेप नहीं सुनूंगा।"

जापान में संवैधानिक सरकार के प्रारम्भिक वर्षों के दौरान अलग-अलग चार मंत्रिमण्डल बने और तीन बार चुनाव हुए। निचले सदन के बार-बार भंग होने और आम चुनावों के दौरान हिंसा होने से जहां एक ओर डायट पर नियंत्रण करने के लिये संघर्ष के संकेत स्पष्ट होते हैं वहीं पर डायट के सदस्यगण राजनीतिक चतुरता में कमजोर पड़ने लगे और वे प्रभावहीन हो गये। दलों ने डायट के अन्दर यह दृढ़ निश्चय किया कि सरकार पर नियंत्रण स्थापित न कर पाने की स्थिति में जब कभी भी सम्भव होगा वे सरकार के कार्यों में बाधा पहुंचायेंगे। लेकिन 1894 में चीन-जापान युद्ध के समय शासकों के अल्प तंत्र एवं डायट सदस्यों के बीच के मतभेद लुप्त हो गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संविधान ने जनता को शासित जन (Subjects) कहकर उद्धृत किया और उनके अधिकारों की तुलना में कर्तव्यों पर अधिक बल दिया। मताधिकार के लिये सम्पत्ति की योग्यता कर देने से प्रतिनिधि सभा में प्रबुद्ध वर्ग को ही प्रतिनिधित्व मिल पाया। और उन्होंने शान्ति संबंधी कानून बनाये जिससे जनता की स्वतन्त्रता और भी सीमित हो गई। जापान के संविधान निर्माता वास्तव में लोकतन्त्र को लागू करने की इच्छा नहीं रखते थे। इसीलिये रॉबर्ट ए. स्कैलपिनो के अनुसार इन प्रारंभिक प्रयासों को असफल नहीं माना जा सकता। वास्तविकता में ये प्रयास लोकतंत्र की स्थापना के लिये थे ही नहीं। वे एक ऐसी एकीकृत मजबूत सरकार को चाहते थे जो "धनी राष्ट्र एवं शक्तिशाली सेना" के निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आम जनता की हिस्सेदारी को सीमित रखा गया। लेकिन फिर भी मताधिकारी के विस्तार का मार्ग खोल दिया गया था और इस प्रक्रिया की अन्तिम परिणिति 1925 में प्रदान किये गये पूर्ण व्यस्क पुरुष मताधिकार के रूप में हुई।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित कथनों में से किसी एक पर सही (√) का चिन्ह लगाइये:

   अ) मेजी संविधान में वास्तव में शासक की शक्ति को कम करने का प्रयास था।

   ब) मेजी संविधान शासक के स्तर को समाज में सुधारने का एक प्रयास मात्र था।

   स) मेजी संविधान जहां एक ओर शासक के प्रभुत्व को सीमित करने का एक प्रयास था वहीं पर दूसरे तरह से शासक के प्रभुत्व को मजबूत करने का भी।

   द) मेजी संविधान शासक की शक्ति एवं प्रभुत्व को सीमित करने का प्रयास था।

2) अ) जापान की डायट के अन्दर दो सदन थे – एक निचला सदन – प्रतिनिधि सभा और दूसरा हाऊस ऑफ पीर्स।

ब) जापान की डायट के अन्दर तीन सदन थे – सीनेट, प्रतिनिधि सभा तथा हाउस ऑफ कॉमन्स।

स) डायट का निर्माण एक मात्र विधान के द्वारा हुआ।

द) डायट के अन्दर दो सदन थे – हाउस ऑफ नोबल्स एवं हाउस ऑफ पीर्स।

3) अ) संविधान के अन्तर्गत वैधानिक व्यवस्था की उत्पत्ति "विधि के द्वारा शासन" जैसी परिभाषित शब्दावली के रूप में हुई।

ब) संविधान के अन्तर्गत वैधानिक व्यवस्था का उद्भव "विधि का शासन" जैसी परिभाषित शब्दावली के रूप में हुई।

स) संविधान के अन्तर्गत वैधानिक व्यवस्था का उदभव "विधि के विरुद्ध शासन" जैसी परिभाषित शब्दावली के रूप में हुआ।

द) संविधान के अन्तर्गत वैधानिक व्यवस्था का उद्भव "विधि के साथ शासन" जैसी परिभाषित शब्दावली के रूप में हुआ।

16.7 सारांश

हान की समाप्ति से एक केन्द्रीकृत प्रशासन के अधीन एक एकीकृत राष्ट्र राज्य अस्तित्व में आया। इस कार्य को अन्जाम एक सीमित एवं नियन्त्रित हिंसा के द्वारा किया गया। लेकिन केन्द्र में सतसुमा-चोशू वंशों के द्वारा राज सत्ता पर एकाधिकार करने के प्रयास और वंचित करने की प्रवृत्ति के साथ-साथ नीतियों को निर्देशित करने के कारण ऐसे गृह युद्ध एवं दंगों का प्रारम्भ हुआ जो सामुराइ के विशेषाधिकारों को समाप्त करना चाहता था। इन दंगों पर 1877 के आस-पास नवीन प्रशिक्षित साम्राज्यिकी सेना ने नियन्त्रण कर लिया। लोकप्रिय अधिकारों के आंदोलन को उन नेताओं ने नेतृत्व प्रदान किया जिन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व की मांग को लेकर सरकार का परित्याग कर दिया था। जहां एक ओर शासन तन्त्र ने संविधान के निर्माण के कार्य का प्रारम्भ किया वहीं पर लोकप्रिय आंदोलन ने इस प्रक्रिया को और तीव्र कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संविधान का निर्माण गुप्त रूप से इतो हिरो बूमि के नेतृत्व में किया गया और "साम्राज्यिक निरंकुशतावाद तथा लोकप्रिय सरकार" दोनों प्रकार की अवधारणाओं को शामिल करने का प्रयास किया गया। मेजी नेताओं का उद्देश्य एक ऐसी सरकार की स्थापना करना था जो "धनी राष्ट्र तथा शक्तिशाली सेना" के निर्माण में योगदान कर सके। उनका उद्देश्य किसी ऐसी सरकार की स्थापना करना नहीं था जो जनता की इच्छा का प्रतिबिम्ब हो और न ही ऐसी सरकार की जो जनता के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता की गारन्टी देती हो। फिर भी एक सीमित हिस्सेदारी को सुनिश्चित करने वाले संविधान की घोषणा ने भविष्य में पूर्ण हिस्सेदारी करने की आशाओं के द्वार खोल दिये थे। संविधान को पश्चिमी शक्तियों से मान्यता प्राप्त करने की दिशा में एक कदम समझा गया क्योंकि वे पश्चिमी शक्तियों से मान्यता प्राप्त लिये एक समान स्तर को प्राप्त करने के इच्छुक थे।

16.8 शब्दावली

अल्पतन्त्र (Oligarchy): कुछ लोगों का शासन।

वंशावली: परिवार के पूर्वज।

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) द)

2) स)

3) हान की सभी प्रकार की भूमि के समर्पण की प्रक्रिया को 1870 के आस-पास पूरा कर लिया गया था। उनके मस्तिष्क में यह भय था कि यदि वे सम्राट को अपनी भूमि का समर्पण नहीं करते तब उनको सम्राट के प्रति गैरजिम्मेदार समझा जायेगा। मेजी सरकार का मुख्य उद्देश्य सरकार को जिला अधिकारियों के द्वारा हटा कर उस पर केन्द्रीय सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित करना था।

बोध प्रश्न 2

1) द)

2) स)

3) ओकूमा ने दूसरे नेताओं को इस विषय में सूचित नहीं किया कि उसने उनके प्रस्ताव में अपने भिन्न मत को जोड़ दिया था और उसने अपने मांग-पत्र को सम्राट के पास जमा कर दिया। इतो ने इस पर गम्भीर चिन्ता की और इस तरह से संघर्ष प्रारम्भ हुआ। आप अपने उत्तर का आधार भाग 16.5 को बनायें।

बोध प्रश्न 3

1) स)

2) अ)

3) अ)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 17 1911 की चीनी क्रांति

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 चिंग सुधार
 17.2.1 शैक्षिक सुधार
 17.2.2 सैन्य सुधार
 17.2.3 प्रशासनिक एवं संस्थात्मक सुधार
17.3 अर्थव्यवस्था की स्थिति और विदेशी स्वार्थ
17.4 विरोधी शक्तियां
17.5 चीनी राष्ट्रवाद का विकास
 17.5.1 सुधारवादी तथा क्रांतिकारी
 17.5.2 सुधारवादी
 17.5.3 क्रांतिकारी
17.6 तोंग मेंग हुई का निर्माण और इसकी विचारधारा
17.7 1911 की क्रांति
 17.7.1 सिच्वान रेलवे की रक्षा
 17.7.2 वू चंग विद्रोह
 17.7.3 प्रांतों द्वारा स्वतंत्रता की घोषणा
 17.7.4 चिंग द्वारा जवाबी कार्यवाही
 17.7.5 चीनी गणतंत्र
17.8 परिणाम
17.9 सारांश
17.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद :

- आपको चीनी क्रांति के लिए उत्तरदायी कारणों की जानकारी होगी,
- आप मांचू शासकों द्वारा अपने शासन को मजबूत करने तथा आधुनिक राज्य की स्थापना के लिए लागू किये गये सुधारों के विषय में जान सकेंगे,
- आप उन सामाजिक शक्तियों के बारे में समझेंगे जिनका उद्‌भव चिंग शासन से देश की रक्षा करने के लिए हुआ था,
- आप चिंग शासन और विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों के विरोध में एक मजबूत शक्ति के रूप में चीनी राष्ट्रवाद के उदय को समझ सकेंगे,
- चीनी समाज के उन विभिन्न वर्गों के विषय में आपका एक दृष्टिकोण बनेगा जो राष्ट्रवाद के उदय के लिए मुख्य शक्ति थे, और
- आपको 1911 की क्रांति एवं इसके परिणामों का भी बोध हो जाएगा।

17.1 प्रस्तावना

इकाई 15 में हम देख चुके हैं कि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में किस तरह से चिंग राज्य को सीमित सुधारों के कार्यक्रम शुरू करने के लिए बाध्य किया गया। शताब्दी के अंत तक बढ़ते हुए साम्राज्यवादी खतरे के साथ-साथ अधिक व्यापक सुधारों के लिए एक संक्षिप्त प्रयास किया गया। सुधार के ये सभी प्रयास समाज और सत्ता की ऊपरी परत से किये गये थे इसलिए इन्होंने चीन के साम्राज्यिक राजनीतिक ढांचे की प्रासंगिकता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया। सुधारों को लागू करने का एकमात्र उद्देश्य था कन्फ्यूशियसवादी परंपरा एवं

राजनीतिक प्रणाली को सुदृढ़ करना एवं बनाये रखना। 1898 के सुधार आंदोलन का जीवन संक्षिप्त था, लेकिन इस सुधार आंदोलन ने ऐसी प्रवृत्तियों का प्रारंभ किया जो 20वीं सदी के प्रथम दशक में चिंग एवं राजनीतिक ढांचे के ऊपर हावी बनी रही। 1911 की चीनी क्रांति इस प्रक्रिया की अंतिम परणिति थी।

यह क्रांति कई कारणों से हुई। कुलीन वर्ग एवं किसानों के बीच असंतोक्ष बढ़ रहा था। ऐसे नये सामाजिक समूह जिन्होंने आर्थिक परिवर्तनों से शक्ति प्राप्त की थी – व्यवस्था की आलोचना करने में और अधिक उग्र हो गये। यद्यपि 1898 के सुधारों को वापस ले लिया गया था किंतु 20वीं सदी के प्रथम दशक में चिंग वंश ने अपना शासन बचाने के लिए इन सुधारों को पुनः लागू किया। लेकिन राज्य ने जब इन सुधारों को लागू किया तब इसके विपरीत परिणाम हुए। पुनर्गठित की गई सेनायें चिंग के विरुद्ध हो गई और 19वीं सदी के अंत से विकसित होती राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति गुप्त संगठनों के रूप में हुई और समाज के बहुत से वर्गों में असंतोष बढ़ने लगा। इस पृष्ठभूमि में सन यात सेन का उद्‌भव हुआ और उसे नवीन चीन का प्रतीक समझा जाने लगा। 1911 की क्रांति के अन्य बहुत से पक्ष थे और उनका इस इकाई में विस्तार से विवरण किया गया है।

17.2 चिंग के सुधार

मांचू शासकों ने अपने वंशीय शासन को बनाये रखने के लिए सुधारों को उस समय लागू किया जबकि उनका शासन विनाश के कगार पर था। ये सुधार कांग यू-वी के द्वारा प्रस्तावित सुधारों से कहीं अधिक क्रांतिकारी थे। सुधार तीन क्षेत्रों पर केंद्रित थे : शिक्षा, सेना और प्रशासनिक एवं संस्थात्मक संगठन। सुधारों को न्यायालय एवं झांग झी-डांग तथा युआन शि-काई जैसे बड़े अधिकारियों ने लागू किया। ये सुधार चिंग राज्य की शक्ति का अंतिम प्रदर्शन थे और ऐसे आधुनिक राज्य के ढांचे को बनाने का प्रयास थे जो इसको जीवित बनाये रखने को सुनिश्चित कर सकें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.2.1 शैक्षिक सुधार

जनवरी 1901 में जिन सुधारों की घोषणा की गई थी उनमें शिक्षा व्यवस्था का सुधार सबसे महत्वपूर्ण था। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही ऐसे बहुत से सुझाव दिये जा रहे थे कि परंपरागत शैक्षिक व्यवस्था में परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता थी। झांग झी-डोंग अपनी आलोचना में काफ उग्र था और उसका तर्क था कि आधुनिक राज्य प्रशासन के निर्माण के लिए शिक्षा एवं प्राथमिक शिक्षा की नवीन प्रणाली की आवश्यकता थी। 1901 से 1906 के बीच शिक्षा के मूल तत्व में परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा व्यवस्था को पुनर्गठित करने के लिए शाही आदेशों की एक शृंखला को पारित किया गया। 1901 में परंपरागत आठ-सुधारों वाले निबंध को समाप्त कर दिया गया। अब विद्यार्थीगण चीन के इतिहास विश्व इतिहास, भूगोल, गणित तथा विज्ञान का अध्ययन करते थे।

पदानुक्रम में स्कूलों के तंत्र को व्यवस्थित करते हुए योजनाबद्ध किया गया था। जिलों के स्तर पर प्राथमिक स्कूलों, मंडलों के स्तर पर हाई स्कूलों तथा प्रत्येक प्रांत में एक कालिज को खोलने की योजना बनी। 1905 में परीक्षा पद्धति को स्वयं ही समाप्त कर दिया गया। शिक्षा के इस आधुनिकीकरण को प्रांतीय कुलीनों एवं प्रबुद्ध वर्ग का सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ। चीन में 1909 के आस-पास 100,000 आधुनिक स्कूल थे। इन सुधारों का प्रभाव एक दशक के अंदर ही महसूस किया जाने लगा। पुरानी परीक्षा पद्धति का उद्देश्य न केवल नौकरशाहों को भर्ती करना था अपितु प्रांतीय कुलीनों एवं प्रबुद्ध वर्गों को सांस्कृतिक एवं वैचारिक स्तर पर शासक वंश के साथ जोड़कर रखना भी था। पुरानी परीक्षा पद्धति की समाप्ति से राजतंत्रीय राज्य के साथ कुलीनों के संबंध धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगे।

17.2.2 सैन्य सुधार

19वीं सदी के अंत में मांचू सेना के आधार स्तंभ मांचू पताकायें एवं क्षेत्रीय सेनायें थी और ये 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अस्तित्व में आयी थी। मांचू पताका चिंग शासन के प्रारंभ में अस्तित्व में आयी। ताइपिंग विद्रोह का दमन करने के लिए जेंग जुओ-फेन ली होंग-झांग तथा जुओ-जोंग तांग ने क्षेत्रीय सेनाः की भर्ती की थी। इन सेनाओं में अपने क्षेत्रीय नेताओं के नजदीकी एवं उनके प्रति वफादार व्यवसायिक सैनिकों को शामिल किया गया था।

बॉक्सर विद्रोह के दौरान सेना की भयंकर पराजय ने सेना में सुधार करना अति आवश्यक कर दिया। 1901 में यह तय किया गया कि पताका व्यवस्था को प्रतिबंधित कर दिया जाएगा। सेनाओं को प्रांतीय सैनिक विद्यालयों में प्रशिक्षित किया जाएगा। परंपरागत सैन्य परीक्षा पद्धति को समाप्त कर दिया गया। सेना को सुरक्षित इकाइयों सहित पश्चिमी पद्धति के आधार पर संगठित किया जाने लगा। लेकिन इन उपायों के द्वारा भी सेना में बढ़ते क्षेत्रीयवाद तथा व्यक्तिगत वफादारियों को न रोका जा सका।

1901 से 1906 के बीच युआन शि-काई ने सेना में सुधार के महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1905 में उसने उत्तरी सेना (जिसे बेयांग सेना कहा जाता था) की छः डिवीजनों का निर्माण किया। इस सेना के पास आधुनिक हथियार थे और इसके अधिकारियों को विदेशों या नये सैनिक विद्यालयों में प्रशिक्षित किया गया था। इसके पास जापानी प्रशिक्षक थे। इस सेना की इकाईयां व्यक्तिगत तौर पर युआन शि-काई के प्रति वफादार थी। इसी कारणवश वह इस सेना पर बहुत अधिक निर्भर था और उसने मांचू विरोध एवं शासक वंश विरोधी सेनाओं का साथ दिया।

17.2.3 प्रशासनिक एवं संस्थात्क सुधार

प्रशासन को चुस्त एवं कड़ा करने के लिए बहुत से सुधार किये गये। मांचू तथा चीनी अधिकारियों के बीच संतुलन के सिद्धांत का परित्याग कर दिया गया। कोटे की अनिवार्य नौकरियों को समाप्त कर दिया गया। इससे मांचुओं को फायदा हुआ और चीनी अधिकारियों में इसके कारण बहुत अधिक असंतोष पैदा हुआ।

राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के प्रयास में चिंग ने संसदात्मक तौर-तरीकों से राजनीतिक व्यवस्था के सुधार की घोषणा की। शासक एवं शासित के बीच घनिष्ठ संबंधों की आवश्यकता पर बल देते हुए राज्य ने संवैधानिक सुधारों के कार्यक्रम का प्रारम्भ किया। इस सुधार की प्रेरणा जापान से प्राप्त की गई थी और जापान के विषय में यह समझा गया कि मेजी सुधारों तथा डायट के निर्माण के द्वारा मेजी सम्राट अपनी जनता के संसाधनों को प्राप्त करने में सफल हुआ था। जुलाई 1905 में महारानी दावागर ने एक आयोग का गठन किया। इस आयोग की स्थापना लागू करने योग्य राजनीतिक सुधारों के लिए सरकार को सलाह देने के लिए की गई थी। अगस्त 1907 में एक संवैधानिक सरकारी आयोग का भी गठन किया गया। संपूर्ण देश में अधिकारियों ने संसदात्मक सरकार के स्वरूप के पक्ष में भरपूर समर्थन दिया। सरकार ने संवैधानिक सभा एवं प्रान्तीय सभाओं के निर्माण का वायदा किया। अगस्त 1908 में उन संवैधानिक सिद्धांतों की घोषणा की गई जो परिवर्तन का आधार बनने थे। स्थानीय स्वायत्त शासन के अंतर्गत तुरंत ब्यूरो का निर्माण किया जाने वाला था। प्रान्तीय सभाओं के लिए 1909 में चुनाव होने वाले थे। लेकिन संसद का कार्य केवल 1917 में ही शुरू हो सका। गौन शू सम्राट तथा सी-क्सी की जल्दी ही 1908 में मृत्यु हो गई। सिंहासन का उत्तराधिकारी पू-ची था और उसने यौन-तोंग सम्राट के रूप में 1909 से 1912 तक शासन किया। उसका पिता प्रिंस चिन रिजेन्ट बन गया था। लेकिन उसके पिता ने सी-क्सी के मुख्य सलाहकार युआन शि-काई से दूरी को बनाकर रखा और उसने अधिक रूढ़िवादी नीति का अनुसरण किया जो सुधारों के पक्ष में न थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन राजनीतिक परिवर्तनों के उद्देश्य को जिस तरह से चिंग राज्य एवं कुलीन वर्ग ने समझा उसमें एक मूलभूत विरोधाभास था। चिंग शासन कर्ताओं के लिए ये सुधार किसी भी प्रकार से साम्राज्यिक संप्रभुता या शक्ति को कमजोर करने के लिए न थे लेकिन प्रान्तीय कुलीनों ने इन सुधारों का यह अभिप्राय लगाया कि वास्तव में सत्ता का हस्तांतरण स्थानीय एवं प्रान्तीय स्तरों पर होगा।

इसी के साथ-साथ अन्य कई प्रकार की समस्याएं थीं। चुनाव अपरिहार्य तौर पर समाज के प्रबुद्ध वर्ग के लिए था। चुनाव के लिए संपत्ति एवं शैक्षिक योग्यताओं ने यह सुनिश्चित कर दिया था कि सामान्य व्यक्ति जनमत का उपयोग नहीं कर सके। चुनाव में प्रत्याशी बनने के लिए 5,000 तायन्स से अधिक की वार्षिक आमदनी या प्रान्तीय डिग्री या नये माध्यमिक स्कूलों में किसी एक से स्नातक होना आवश्यक था। इसलिए स्वाभाविक ही था कि प्रान्तीय सभाओं की सदस्यता पर उच्च कुलीनों का वर्चस्व था। उदाहरण के तौर पर, शातुंग के प्रान्त की कुल जनसंख्या 3 करोड़ 80 लाख में से मात्र 119,000 लोगों को मताधिकार प्राप्त था और हुबाई में 3 करोड़ 40 लाख में से 113,000 को।

सीमित मताधिकार के बावजूद भी ये संस्थाएं विरोध का केन्द्र हो गई थीं। फरवरी 1910 में

पैकिंग की एक सभा में प्रतिनिधियों ने मांग की कि संसद को तुरंत बुलाया जाए। परिणामस्वरूप अक्तूबर 1910 में एक राष्ट्रीय सलाहकार सभा का आयोजन किया गया। इस सभा के आधे सदस्यों को सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था। बढ़ते दबाव के कारण प्रिंस चुन ने वायदा किया कि 1913 के आस-पास एक वास्तविक संसद को बुलाया जाएगा। अन्तरिम उपाय के तौर पर 1911 में एक मंत्रिपरिषद का गठन किया गया और इसके अंदर मुख्य रूप से राजकुमार एवं मांचू वंश के कुलीन थे। ठीक इसी समय बहुत से प्रान्तों में सशस्त्र संघर्ष भड़क उठा और यह मांचू वंश के निर्णायक पतन की शुरुआत थी।

सुधारों की असफलता के कारण ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक अव्यवस्था व्याप्त हुई जिसने चीन को हिला कर रख दिया और इस तरह का असंतोष उत्पन्न हो गया जिसको आधे अधूरे उपायों से संतुष्ट नहीं किया जा सकता था।

बोध प्रश्न 1

1) चिंग वंश द्वारा किए गए शैक्षिक सुधारों का 10 पंक्तियों में विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) चिंग शासकों द्वारा 20वीं सदी के प्रारंभिक दशक में किए गए प्रशासनिक एवं संस्थात्मक सुधारों के उद्देश्यों का 10 पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

17.3 अर्थव्यवस्था की स्थिति और विदेशी स्वार्थ

20वीं शताब्दी के प्रारंभ तक चीन में विदेशी प्रभाव क्षेत्र का प्रसार पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। 1902 से 1910 तक विदेशी पूंजी का निवेश 78 करोड़ 30 लाख से बढ़ कर 161 करोड़ तक बढ़ गया। इस धन का अधिकतम भाग रेलवे निर्माण, खान तथा अन्य औद्योगिक व्यवसायों में लगा था।

इसके फलस्वरूप बहुत से परिवर्तन हुए। विदेशी पूंजीपतियों के द्वारा प्रस्तुत की गई इस चुनौती के कारण चीन में भी आधुनिक कंपनियों के उत्थान को प्रोत्साहन मिला। उदाहरण के तौर पर चीन में प्रथम आधुनिक बैंकों की स्थापना 1897 में कमर्शियल बैंक ऑफ चाइना

तथा 1907 में बैंक ऑफ कम्युनिकेशन तथा हुबू बैंक के रूप में हुई। इन सबके फलस्वरूप प्राइवेट कंपनियों का विकास हुआ। 1904 में प्राइवेट कंपनियों के सम्मिलन की आज्ञा प्रदान कर दी गई। 1908 तक उद्योग मंत्रालय, कृषि एवं वाणिज्य मंत्रालयों के साथ 227 कंपनियां रजिस्टर्ड थीं।

राष्ट्रीय आधुनिक सेक्टर की वृद्धि असमान थी। प्राथमिक तंत्रीय सुविधाओं का अभाव, व्यापारियों एवं अधिकारियों में व्याप्त अविश्वास जैसी बहुत सी समस्याएं थीं। इसके अलावा स्वदेशी कंपनियां विदेशियों के साथ प्रतियोगिता करने में सक्षम थीं। चीन के द्वारा कस्टम में स्वायत्तता खो देने के कारण सरकार बाजार को सुरक्षित नहीं कर सकती थी। पश्चिमी सामानों को आंतरिक करों से मुक्त कर दिया गया था। सरकारी कोष पर बहुत अधिक भार पड़ जाने से सरकार भी स्वयं धन निवेश करने की स्थिति में नहीं थी और ऐसा इसलिए हुआ था कि चीन को भारी युद्ध हर्जाने को अदा करना पड़ा। बॉक्सर संधि की शर्तों के अनुसार उसको 1902 से 1910 तक 22 करोड़ 40 लाख तॉयल युद्ध हर्जाने के तौर पर अदा करने थे। यह अनुमान लगाया गया है कि चिंग का वार्षिक बजट 9 करोड़ तॉयल का था। संतुलन बनाये रखने के लिए ऐसे विदेशी ऋणों को लेना पड़ा जिसने आर्थिक स्थिति को और खराब कर दिया। बिना उधार लिए चीन के पास निवेश हेतु कोई धन न था। गहरे आर्थिक संकट के बावजूद राज्य एवं अर्थव्यवस्था के रूपांतरण के महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक परिणाम निकले।

17.4 विरोधी शक्तियां

इस समय में चीन के अंदर नवीन सामाजिक शक्तियों का उदय हुआ। उदाहरण स्वरूप संधि बंदरगाहों में पूंजीपतियों एवं बिचौलियों के रूप में एक बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ। चीन के सभी सहयोगी पूंजीपति विदेशी कंपनियों में थे और चीन तथा पश्चिमी व जापानी व्यापारियों के बीच मध्यस्थता का कार्य करते। शंघाई एक ऐसा क्षेत्र था जहां चीनी पूँजीपति में विदेशी व्यापारिक स्वार्थों के साथ अधिक संपर्क में आये तथा दूसरी ओर दोनों में संघर्ष भी हुआ। 1905 तथा 1907 के बहिष्कार में राष्ट्रवादी भवनाएं अधिक स्पष्ट हुईं। उदाहरण के तौर पर, 1907 में शंघाई-निंगपो रेलवे निर्माण के लिए चीनी तथा ब्रिटिश कंपनियों के मध्य हुए समझौते के विरुद्ध कुलीनों व्यापारियों तथा कुलियों के प्रतिनिधियों ने संयुक्त रूप से विरोध प्रकट किया। पश्चिमी विरोध के ये वर्ष चीनी साम्राज्य के विरुध शत्रुता में रूपांतरित हो गये क्योंकि चीनी सरकार चीन तथा चीन के व्यापारिक हितों की रक्षा करने में असमर्थ रही।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ऐसे अन्य कई सामाजिक समूह थे जिनका उद्भव चिंग एवं साम्राज्यिक व्यवस्था के विरुद्ध शक्तिशाली शत्रुओं के रूप में हुआ। 20वीं सदी के प्रारंभिक दशक में युवकों को सैनिक जीवन अपनाने के लिए उत्साहित किया गया। बहुत से विद्यार्थियों ने देश की बेहतर सेवा करने के लिए "अपने लेखनी का परित्याग कर तलवार को ग्रहण कर लिया।" मिलिट्री अकादमियों के स्नातक एवं नये स्कूल कन्फ्यूशियसवादी विचारधारा से दूर होते जा रहे थे। वे ऐसे उद्देश्य से प्रेरित थे जिसके द्वारा न केवल चीन को बचाना चाहते थे अपितु वे एक ऐसे नये एवं मजबूत चीन का निर्माण करना चाहते थे जो पश्चिमी तथा जापानी दोनों प्रकार के साम्राज्यवाद की चुनौतियों का सामना कर सके। जहां एक ओर व्यापारियों, सैनिकों तथा विद्यार्थियों के बीच असंतोष बढ़ रहा था, ठीक इसके अनुरूप कृषकों के बीच भी असंतोष बढ़ा। यद्यपि इस समय किसानों के ताइपिंग एवं बॉक्सर जैसे विद्रोह नहीं हुए। यांगजी क्षेत्र के निचले तथा मध्य प्रान्तों में लगातार इस तरह के दंगे होते रहते। गुप्त संस्थाएं जो सामान्यत: वंशीय पतन के दौरान उभर कर सामने आती थीं एक बार फिर सक्रिय हो उठीं।

वह ग्रामीण प्रबुद्ध वर्ग जिसे शक्ति के क्षेत्रीयकरण से मुख्य रूप से लाभ मिला था अब वह हर कीमत पर अपने हितों की सुरक्षा करने को उत्सुक था। विदेशी शक्तियों के आर्थिक साम्राज्यवाद के चारों ओर फैल जाने से, उन्होंने इसे अपने आर्थिक हितों के लिए खतरा समझा। चिंग के द्वारा उनके हितों की सुरक्षा न कर पाने के कारण वे बहुत क्रोध में थे। 19वीं सदी के अंत तक ग्रामीण संपन्न वर्ग के मज़बूत व्यापारिक हित विकसित हो चुके थे। व्यापारियों एवं जमींदारों के बीच अब मजबूत संबंधों का बढ़ता रुझान था (अब उन दोनों के बीच एक मजबूत समूह बन गया जिसको शेन-शांग कहा जाता था)।

खान तथा रेलवे में छूट के लिए किये गये आंदोलन से स्पष्ट है कि शेन-शांग ने विदेशी

प्रतियोगिता एवं घुसपैठ को रोकने और राज्य के विरुद्ध अपने आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों को बढ़ाने का दृढ़ निश्चय किया। अपने इस प्रयास में वे अक्सर बड़े नौकरशाहों का भी समर्थन करते। उदाहरण के लिए 1890 में चीन के एक बड़े अधिकारी झांग-झी-डोंग (1837-1909) ने एक अमेरीकी कंपनी से हानको-कैन्टन रेलवे निर्माण के अधिकारों को वापस खरीद लिया। उसको हुबई हुनान तथा कुआतिंग के कुलीनों का सक्रिय समर्थन प्राप्त था। 1911 में चिंग के द्वारा रेलवे के राष्ट्रीयकरण के प्रस्ताव के प्रति प्रांतीय शैन-शांग ने शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाया। लेकिन चिंग की इस घोषणा का दूसरा पक्ष यह था कि उसने विदेशी बैंक सिंडीकेट से विशाल ऋण प्राप्त करने के लिए समझौता किया था और इस कार्यवाही को चीनी राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध विश्वासघात समझा गया। शैन-शांग ने इसको उनकी देशभक्ति, प्रांतीय स्वायत्तता तथा आर्थिक सम्पन्नता के लिए एक खतरे एवं अपमान के रूप में लिया। सिच्वान प्रांत में रेलवे की रक्षा करना एक तरह से क्रांति को आमंत्रित करना बन गया। इसका आगे विवेचन किया जाएगा किन्तु पहले हमें चीनी राष्ट्रवाद के विकास पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

17.5 चीनी राष्ट्रवाद का विकास

20वीं सदी के प्रारंभ में चीनी राष्ट्रवाद ने अधिक सुनिश्चित स्वरूप को ग्रहण कर लिया था। अब वह मुख्य रूप से मांचू विरोधी एवं साम्राज्यवाद विरोधी मुद्दों पर केन्द्रित था।

मांचू वंश 1644 में सत्ता में आया तथा उसने स्वयं को अलग समूह में रखते हुए अपनी विशेष पहचान को बनाये रखा। लेकिन उनके इस अलगाववाद से किसी भी तरह से चीन के अस्तित्व को खतरा पैदा नहीं हुआ। उनकी अपनी मातृभूमि मंचूरिया पर आप्रवासियों को बसने का आज्ञा नहीं थी। नागरिक एवं सैनिक प्रशासन में मांचुओं के लिए पदों को सुरक्षित कर दिया गया था। मांचू-प्रभुत्व को एक सामाजिक परंपरा के द्वारा लागू किया गया। इस सामाजिक परंपरा के तहत चीनियों को सर पर एक लंबी चोटी रखना पड़ता था। एक ऐसी लंबी चोटी जिसको 20वीं सदी के प्रथम दशक में मांचू प्रभुत्व तथा उनके अंतर्गत चीनी अधीनता के प्रतीक के तौर पर देखा जाने लगा। इन सभी के बावजूद मांचू काफी लचीले थे। उन्होंने चीन की सामाजिक एवं राजनीतिक परंपरा तथा कन्फ्यूशियसवाद को अपना लिया था। इन्होंने नौकरशाही के समर्थन तथा प्रांतीय कुलीनों के मौन समर्थन से शासन किया। यही वह समर्थन था जो कई कारणों से कमजोर पड़ गया था और जिनको पहले ही उद्धृत किया जा चुका है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मांचू विरोधी भावनाएं जीवित थीं और उन्हें लंबे समय तक गुप्त संस्थाओं द्वारा बनाये रखा गया। बॉक्सर आंदोलन के प्रारंभ में शक्तिशाली मांचू विरोधी तत्व विद्यमान थे। मांचू विरोध धीरे-धीरे जनसंख्या के विशाल हिस्से में फैल गया। चीनी बुद्धिजीवियों में यह विरोध सम्राट की निरंकुश शक्तियों की निंदा करने के साथ फैला।

इसी के साथ 19वीं सदी के दौरान समय-समय पर चीनी अधिकारियों एवं किसानों के द्वारा विदेश विरोधी भावनायें अभिव्यक्त की गई। 20वीं सदी के प्रथम दशक में विदेशी व्यापार एवं वाणिज्य पर सीधे-सीधे हमले किये गये। अमेरिका के अप्रवास संबंधी कानूनों के विरोध में 1905 में चीनी सौदागरों तथा व्यापारियों ने शंघाई में अमेरिकी सामान का बहिष्कार किया। अमेरिका के अप्रवास संबंधी कानून चीनियों के विरुद्ध पक्षपातपूर्ण थे। इस बहिष्कार आंदोलन में विद्यार्थी एवं जनता ने भारी संख्या में भाग लिया। इस राजनीतिक बहिष्कार की मुख्य विशेषता यह थी कि अब चीनी मात्र अपने आर्थिक विशेषाधिकारों के हनन का विरोध नहीं कर रहे थे अपितु राष्ट्र के प्रति वफादार एवं आत्म चेतना का प्रदर्शन भी कर रहे थे। ठीक इसी तरह के बहिष्कार का आयोजन 1908 में जापानी सामान के विरुद्ध किया गया। अवैध सामग्री ले जाते हुए तातसू मारू नाम के जापानी जहाज पर चीनियों ने अधिकार कर लिया। जापानियों ने इसका प्रबल विरोध किया तथा माफी एवं क्षतिपूर्ति की मांग की। इसने चीनियों के क्रोध को और उग्र कर दिया तथा उन्होंने जापानी सामान के बहिष्कार को संगठित किया। व्यापारियों ने जापान के सामान के गोदामों को जला डाला तथा गोदी मजदूरों ने जापानी जहाजों को खाली करने से इंकार कर दिया।

इन बहिष्कारों से स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद का विरोध तथा चीन की संप्रभुता की रक्षा के प्रति दृढ़ संकल्प बढ़ रहा था। लेकिन साम्राज्यवाद का बढ़ता यह विरोध किसी भी तरह से विरोधाभासों से मुक्त न था। जैसे मांचू विरोधी राष्ट्रवाद का विकास हो रहा था वैसे-वैसे

सन-यात-सेन जैसे राजनीतिक आंदोलनों के नेतागण चिंग की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों की सहायता प्राप्त करने के लिए प्रयासरत भी थे। इसके फलस्वरूप इस स्थिति में एक सुस्पष्ट साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन विकसित न हो सका। लेकिन चीनी राष्ट्रवाद की बढ़ती चेतना चीनी समाज के बहुत से वर्गों के बीच एक आबद्ध शक्ति बन गई।

17.5.1 सुधारवादी एवं क्रांतिकारी

20वीं सदी के प्रारंभ तक चीन की आबादी का एक बड़ा भाग यह मानने लगा था कि चीन को बचाने के लिए कुछ व्यापक परिवर्तन करना अपरिहार्य हो गया था। जबकि सभी समूह राष्ट्रवाद एवं समर्पण की अवधारणाओं से प्रेरित थे लेकिन चीन में सरकार का स्वरूप कैसा होगा इसको लेकर दो बड़े-बड़े किंतु अलग-अलग रुझान प्रकट हुए।

प्रथम वह समूह जो स्वयं को सुधारवादी कहता था और परिवर्तन को धीरे-धीरे करने तथा संवैधानिक राजतंत्र की वकालत करता था। दूसरा वह समूह था जो अक्सर स्वयं को क्रांतिकारी के रूप में उद्धृत करता था उसने ऐसे राजनीतिक परिवर्तन को प्रचारित किया जिसके अंतर्गत मांचुओं एवं साम्राज्यिक राजतंत्रीय व्यवस्था की किसी भी स्थिति में कोई भूमिका न होगी।

1911 की क्रांति का नेतृत्व इन क्रांतिकारियों के हाथों में केन्द्रित हो गया था और जिसने अंततः चिंग तथा साम्राज्यिक व्यवस्था को धराशायी कर दिया।

17.5.2 सुधारवादी

लियांग दि-चाओ सुधारवादियों में सबसे महत्वपूर्ण था और वह कांग-यू-वी का घनिष्टतम सहयोगी एवं शिष्य था। लियांग का जन्म 1873 में कैंटन में हुआ था तथा उसने चीनी शिक्षा प्राप्त की। 1898 के सुधार आंदोलन की असफलता के बाद लियांग कांग के साथ जापान भाग गया। लियांग एक बहुमुखी लेखक एवं निबंधकार था। लियांग का अपने समय की संपूर्ण चीनी युवा पीढ़ी पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। यद्यपि लियांग तत्काल क्रांतिकारी राजनीतिक परिवर्तन में विश्वास नहीं करता था, वह अपने समकालीन और कहीं अधिक लोकप्रिय नेता सनयात-सेन से भिन्न था। लियांग ने युवकों का आहवान करते हुए लिखा कि वे अपने अतीत को छोड़ते हुए उसी तरह से आगे की ओर अग्रसर हों जैसे "जहाज तट को छोड़कर बढ़ जाता है।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लियांग क्रांतिकारी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं अथवा सनयात सेन से सहमत नहीं था कि तत्काल क्रांतिकारी परिवर्तन संभव था या चीन इस मोड़ पर इस तरह के परिवर्तन के लिए तैयार था। सन् 1907 में लियांग ने झेंग वेन शी (राजनीतिक संस्कृति संगठन) की स्थापना की। इस संगठन के माध्यम से लियांग ने संविधान एक संसद, एक मंत्री परिषद, एक स्वतंत्र न्यायपालिका तथा प्रांतीय स्वायत्तता को अपनाने की वकालत की। लियांग जिस लोकतंत्र की स्थापना करना चाहता था उसका स्वरूप संवैधानिक राजतंत्र था और जिसे स्वयं चिंग के द्वारा स्थापित किया जाना था। सम्राट को एक "जागरूक राजतंत्र" के रूप में कार्य करना था जिसके अधीन जनता को अपने अधिकारों के अनुरूप कार्य करने के लिए राजनीतिक तौर पर शिक्षित किया जाना था। क्रांतिकारी राजनीतिक परिवर्तन का उसका विरोध उसके इस विचार पर आधारित था कि चीनी जनता इस तरह के परिवर्तन के लिए बिल्कुल भी तैयार न थी और वह एक उत्तरदायी एवं चेतन नागरिक की भूमिका करने के प्रति पूर्णतः अनभिज्ञ थी। कहने का तात्पर्य यह है कि वह संवैधानिक राजतंत्र के अंतर्गत एक संरक्षण की व्यवस्था का समर्थक था।

यद्यपि 1911 की क्रांति के पूर्व वर्षों में चीनी युवक एवं उग्रवादी यह विश्वास करते हुए लियांग से दूर हट रहे थे कि उसके विचार रूढ़िवादी थे। लेकिन इसके बावजूद लियांग के विचारों का चीनी समाज पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा। उसके विचारों ने उस संवैधानिक आंदोलन को प्रेरित किया जिसने चिंग के विरुद्ध कुलीन वर्ग को गतिशील बनाया। लेकिन कुलीन वर्ग भी लियांग के लोकतांत्रिक चीन के लक्ष्य के प्रति पर्याप्त समर्पित न था। उन्होंने उसके विचारों का प्रयोग चिंग के विरुद्ध अधिक राजनीतिक हिस्सेदारी एवं सत्ता को प्राप्त करने के उद्देश्य के लिए किया।

17.5.3 क्रांतिकारी

सन यात-सेन (1866-1925) के अधिक मूलगामी राजनीतिक परिवर्तन की प्रवृत्ति के

प्रतिनिधि के रूप में देखा गया है। सन यात-सेन ने न केवल चिंग को उखाड़ फेंकने की मांग की अपितु वह साम्राज्यिक संस्थाओं की समाप्ति का भी पक्षधर था। उसके गणतंत्र के स्वरूप में एक नये राजनीतिक तंत्र के निर्माण की वकालत की।

लियांग की भांति ही सन यात-सेन का जन्म कुआतांग प्रान्त के एक धनी कृषक परिवार में हुआ था। लियांग की भांति उसको बुनियादी चीनी शिक्षा नहीं प्राप्त हुई। उसने होने लूलू तथा हांगकांग में शिक्षा प्राप्त कर पश्चिमी विधि में डाक्टर के प्रशिक्षण को प्राप्त किया। वह ताइपिंग विद्रोह एवं गुप्त संस्थाओं का प्रबल समर्थक था। उसने 1895 में चिंग के विरुद्ध एक विद्रोह को संगठित करने का प्रयास किया। किन्तु यह असफल रहा। उसने झिंग झोंग हुई (रिवाइव चाइना सोसाइटी) को गठित किया।

उसके पश्चिमी तौर-तरीके तथा वंशवाद विरोधी विचार चीनी युवकों के बीच गुप्त संस्थाओं तथा विदेशों में चीनी समुदायों के बीच बहुत लोकप्रिय हुए। विदेशों में स्थित चीनी समुदाय उसको चिंग विरोधी गतिविधियों को वित्तीय सहायता प्रदान कर रहे थे। 17वीं शताब्दी में मिंग वंश के पतन के समय से ही गुप्त संस्थाओं ने मांचूवाद-विरोधी एक परंपरा को बनाये रखा था। विदेशों में रहने वाले चीनी समुदायों ने समझा कि चिंग आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास को अवरुद्ध कर रहा था और इसलिए उनके वाणिज्यिकी हितों पर भी वह कुठाराघात कर रहा था। 19वीं सदी के अंत से ही चीनी युवक लगातार गैर चीनी विचारों में परिचित होते जा रहे थे। उन्होंने सन यात-सेन के आधुनिक राजनीतिक विचारों में चीन के जीवन दान की संभावनाओं को देखा।

बोध प्रश्न 2

1) चिंग शासन के प्रति शैन-शांग के दृष्टिकोण का उल्लेख पांच पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) लियांग दि-चाओ के विचारों का 10 पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) मांचुओं के विरुद्ध चीनी लोगों को संगठित करने में सन यात-सेन की भूमिका पर दस पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

17.6 तोंग मेंग हुई का निर्माण और इसकी विचारधारा

1895 के विद्रोह के असफल हो जाने के बाद सन यात-सेन जापान भाग गया। वहां पर उसकी समान विचारों वाले बुद्धिजीवियों और गुप्त संस्थाओं के सदस्यों से भेंट हुई। 20वीं सदी के प्रथम दशक में इस तरह की बहुत सी संस्थायं थी और इनका उद्भव चिंग शासन को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से हुआ था। उदाहरण के लिये, देशभक्तिपूर्ण अध्ययन के लिए संस्था का प्रारंभ प्रत्यक्ष संघर्ष में लोगों को शामिल करने के लिए किया गया। शंघाई तथा हुनान जैसे अनेक स्थानों पर विद्रोह करने के प्रयास किये गये। 1903 में हुनान प्रांत में हुआ शिंग हुई (चीन की पुनरावलोकन संस्था) को हुआंग शिंग के नेतृत्व में विद्रोह करने के लिए संगठित किया गया। इन प्रयासों में से अधिकतर असफल हो गये और इनके नेतागण जापान भाग गये। उस समय जापान को इन सभी राजनीतिक "असंतुष्टों" के लिए सुरक्षित देश समझा जाता था।

जुलाई 1905 में इन असंतुष्ट नेताओं ने जापान में एक बैठक की। इस बैठक से ही **तोंग मेंग हुई** की उत्पत्ति हुई। **तोंग मेंग हुई** का निर्माण शिंग झोंग हुई (रिवाइव चायना सोसाइटी) **हुआ सिंग हुई** (चीन की पुनरावलोकन संस्था) तथा **गोंग फ्यू हुई** (पुनर्स्थापना संस्था) का विलय करके किया गया। तोंग मेंग हुई की स्थापना विभिन्न छोटे समूहों की दिशा में एक सुनिश्चित कदम, समान उद्देश्यों के साथ तत्काल एक साथ मिलकर कार्य करने के लिए हुई थी। तोंग मेंग हुई के सदस्यगण भ्रातत्व की एक ऐसी शपथ से बंधे थे जो गुप्त संस्थाओं की परंपरा के अनुरूप थी। इस शपथ का एक उदाहरण है :

> मैं ईश्वर को साक्षी मानकर शपथ लेता हूं कि मांचू शासकों को निकालने, चीनी संप्रभुता को पुस्थापित करने, गणतंत्र को स्थापित करने और भूमि अधिकारों को समान बनाने के लिए मैं अपने भरसक प्रयास करूंगा। मैं इन सिद्धांतों के प्रति वफादार रहने की शपथ लेता हूं . . . ।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस शपथ के अंतर्गत मांचुओं को सत्ताच्युत करना, उन संप्रभु अधिकारों को प्राप्त करना जिनका हरण चीन से विदेशी शक्तियों ने कर लिया था और गणतंत्र का निर्माण करना शामिल था। इन सभी उद्देश्यों में से मांचूवाद का विरोध मुख्य केन्द्र बन गया। मांचू-विरोध का सबसे अच्छा उदाहरण "क्रांतिकारी सेना" नामक लोकप्रिय पुस्तिका थी। इस पुस्तिका को उग्र राष्ट्रवादी एवं क्रांतिकारी जाओ रोंग के द्वारा लिखा गया था। उसने चीन वासियों का आहवान करते हुए लिखा। ". . . यदि चीन को स्वतंत्र होना है, यदि चीन को 20वीं सदी के नये विश्व में जीवित रहना है, तब पचास लाख लोगों की कर्कश मांचू जाति को उखाड फेंकना होगा।"

इस संयुक्त दल के निम्नलिखित मूलभूत लक्ष्य थे:

1) यह गणतंत्र की रचना एवं स्थापना के प्रति समर्पित था।

2) जिन विचारों ने इसकी कार्यवाहियों के आधार को प्रतिपादित किया वे सान मिन झू वी (जनता के तीन सिद्धांत) में निहित थे और इन सिद्धांतों का रचियता सन यात-सेन था। ये तीन सिद्धांत थे — राष्ट्रवाद, लोकतंत्र तथा समाजवाद।

सान मिन झू वी में प्रथम राष्ट्रवाद था। इसकी मुख्य विशेषता मांचू विरोधी स्पष्ट एवं समझौताविहीन दृष्टिकोण अपनाना था। यद्यपि इस तरह की नीति ग्रहण करने में साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण भी निहित था। मांचुओं के प्रति घृणा अंततः शक्तिशाली साम्राज्यवाद विरोधी शक्तिशाली दृष्टिकोण में परिवर्तित हो गई। लोकतंत्र का अभिप्राय एक गणतंत्रीय संविधान तथा सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों सहित सरकार की स्थापना करना था। इसका अभिप्राय कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका को अलग-अलग करना था। वास्तव में यह परंपरागत साम्राज्यिक व्यवस्था से काफी हटकर था।

तीसरा लक्ष्य जनता की आम हालत को सुधारना था। यहां पर यह जानना आवश्यक है कि

सन यात-सेन के विचार हेनरी जॉर्ज से प्रभावित थे। हेनरी भूमि मूल्यों में समुचित वृद्धि के लिए एक ही कर का पक्षधर था। इस तरह से वह तेजी से होते औद्योगिकरण एवं नगरीय समाज में सट्टाबाजों एवं एकाधिकारवादियों की अधिक संपन्नता पर रोक लगाना चाहता था। जहां एक ओर इसका उद्देश्य सामान्य माल के प्रचलित सिद्धांत के प्रति समर्पण था वहीं इसका लक्ष्य औद्योगिकरण तथा नगरीकरण के द्वारा उत्पन्न भूमि मूल्यों में सट्टेबाजी पर नियंत्रण करना भी था। लेकिन तोंग मेंग हुई के कथित इन सिद्धांतों के साथ बहुत सी समस्यायें भी थीं। चीनी राष्ट्रवाद पर बहुत अधिक अनावश्यक बल देने का तात्पर्य था मांचुओं को बाहर निकाल देना। लेकिन पिछली तीन सदियों से मांचुओं का काफी चीनीकरण हो चुका था। इस नीति के कारण पश्चिम तथा जापान जैसे साम्राज्यवादी शक्तियों की उपस्थिति जैसी अति उस गंभीर समस्या पर कम ध्यान दिया गया जिसका चीन सामना कर रहा था।

गणतंत्र की स्थापना के दूसरे सिद्धांत के लिए तैयार की जाने वाली मजबूत आधारशिला की आवश्यकता पर कम ही ध्यान दिया गया जबकि इसी आधारशिला पर गणतंत्र को विकसित होना था। जहां गणतंत्र की स्थापना का लक्ष्य था, वहीं सन यात-सेन लियांग की एक संरक्षणात्मक काल की वकालत भी करता था। इस दृष्टिकोण का उपयोग बाद में 1920 में सैनिक शासन को चिरस्थायी करने के लिए किया गया।

सबसे अधिक स्तब्ध एवं निराश कर देने वाला सिद्धांत जनता के जीवन-यापन का सिद्धांत (समाजवाद) था। इस सिद्धांत में आशा के विपरीत चीन की मूलभूत समस्या कृषि संकट तथा चीनी किसानों की दीन हालत को अनदेखा कर दिया गया। चीन की आबादी का विशाल भाग किसान के थे।

उद्घोषित लक्ष्यों में कमजोरी के बावजूद सन यात-सेन तथा तोंग मेंग हुई को व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। सन यात-सेन के राजनीतिक लक्ष्य और उसके प्रति समर्पण की भावना की ओर आंदोलित छात्र काफी बड़ी संख्या में आकर्षित हुए। सन यात-सेन का मत था कि आधुनिक गणतंत्र की स्थापना को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है और इस तरह से चीन की अर्धदासता की स्थिति को समाप्त कर दिया जाएगा। लियांग के आर्थिक क्रमिक परिवर्तन के विचार संभवतः पुराने हो गये प्रतीत होते थे और समय की मांग के अनुरूप रह पाये थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन यात-सेन की भविष्यवादी तथा आशावादी राजनीति ने गणतंत्र स्थापना के लक्ष्य में कुछ बड़ी बाधाएं खड़ी कर दी थीं। चिंग साम्राज्य के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह को एक सामरिक नीति के तहत अनेक प्रांतों में क्रांतिकारी आधारों की स्थापना के लिए अपनाया गया था। 1908 से 1911 के बीच दक्षिण के क्वान तुंग तथा क्वांसी प्रांतों में इस तरह के विद्रोहों को करने के प्रयास किये गये। इन दोनों प्रांतों में गुप्त संस्थाएं सक्रिय थीं और ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि ये दोनों प्रांत हांग-कांग तथा इण्डो-चीन के समीप स्थित थे और वहां पर हथियारों की तस्करी संभव थी। लेकिन इस तरह के सभी प्रयास अन्य कई कारणों से असफल हुए। दोषपूर्ण संगठन, समन्वय का अभाव और इस तरह की चुनौतियों से प्रभावशाली ढंग से निपटने में राज्य की शक्ति को कम करके आंकना इनकी असफलता के कारण थे। राज्य ने उनका भयंकर तरह से दमन किया। इसके साथ-साथ अन्य समस्यायें भी थीं। तोंग मेंग हुई के अंदर भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों का उदय हो चुका था। दल के कुछ सदस्यों में अराजकतावादी विचार पैदा हो गये और वे सन यात-सेन के नेतृत्व पर प्रश्न चिन्ह लगाने लगे।

वह दिन अब दूर न था जब कि इन उग्रवादी गतिविधियों में असंतुष्ट कुलीन एवं निराश अधिकारीगण सम्मिलित होने वाले थे।

17.7 1911 की क्रांति

सन यात-सेन तथा उसके दल का कार्यक्षेत्र दक्षिणी प्रांतों में केन्द्रित था। 1911 की गर्मियों में चांगजी नदी के संग्रहण क्षेत्र में विद्रोह फूट पड़ा और इस विद्रोह ने क्रांति की शक्तियों की गति को और तेज कर दिया। दो ऐसी बड़ी घटनायें हुई जिनके कारण चिंग शासन तुरंत धराशाई हो गया – प्रथम घटना सिच्वान प्रांत में रेलवे अधिकारों के प्राप्त करने के आंदोलन के रूप में घटित हुई और दूसरी घटना वुचंग सेना का विद्रोह थी।

17.7.1 सिच्वान रेलवे की रक्षा

सिच्वान रेलवे की रक्षा के आंदोलन का प्रारंभ मई 1911 में हुआ था और इससे क्रांति की

शुरुआत हुई। 9 मई 1911 को चिंग ने सारी रेलवे के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की। इस घोषणा के साथ चिंग के द्वारा 60,000 पौंड स्टरलिंग का विदेशी ऋण प्राप्त करने का भी निर्णय लिया गया। इस घोषणा तथा ऋण को प्रांतीय कुलीनों ने इसका प्रमाण माना कि चिंग चीनी उद्योगों की सहायता करने में कोई रुचि न रखता था।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि प्रांतीय कुलीनों ने अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के द्वारा अपने आर्थिक हितों को विकसित कर लिया था और रेलवे जैसे निर्माण कार्यों में विशाल धनराशि का निवेश भी कर चुके थे। 1904 में सिच्वान, हांगकुओ प्रांतीय रेलवे कंपनी का निर्माण किया गया। रेलवे निर्माण का कार्य प्रारंभ हो चुका था। कपनी ने भूमि पर कर लगाकर एवं स्वत: योगदानों के द्वारा लगभग एक करोड़ 60 लाख तायल को एकत्रित कर लिया था। इस तरह से कंपनी में बहुत से लोगों के हित निहित थे और राज्य ने जिस मुआवज़े की राशि को देने की पेशकश की, वह अपर्याप्त थी।

राष्ट्रीयकरण का विरोध बहुत से समूहों ने अन्य कई कारणों से किया। देशभक्त लोग विदेशियों पर वित्तीय निर्भरता के कारण नाराज़ थे। वित्तीय सहायता देने वालों एवं कुलीनों के हितों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था और वे इसी कारण से आंदोलन में सबसे आगे थे। प्रांतीय सभा ने, जिसकी स्थापना चिंग द्वारा लागू किए गए संवैधानिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप हुई थी, रेलवे के राष्ट्रीयकरण को न केवल प्रांतीय आर्थिक स्वतंत्रता के लिए खतरा समझा अपितु इसको उन्होंने प्रांतीय राजनीतिक स्वायत्ता के लिए भी खतरा माना।

एक रेलवे सुरक्षा लीग (बौलूतोंग-झीहुई) की स्थापना प्रांतीय सभा एवं कुलीनों की मदद से की गई। याचिकाओं को वितरित किया गया और प्रदर्शनों का आयोजन हुआ। जब इन गतिविधियों का कोई प्रभाव न हुआ, शेयरहोल्डरों की एक बैठक 24 अगस्त 1911 को प्रांतीय राजधानी चेंगदू में संपन्न हुई। इस बैठक में विरोध को तीव्र करने का निर्णय लिया गया, जिसके अंतर्गत स्कूलों और दुकानों को बंद करना, कर न अदा करना तथा किसी भी आपातस्थिति का सामना करने के लिए स्वयंसेवी लड़ाकू जत्थों का गठन करना शामिल था।

जिसका प्रारंभ कुलीनों के हितों की रक्षा के लिए हुआ अब उसने नई दिशा ले ली थी। रेलवे सुरक्षा लीग में संविधानवादी भी शामिल थे और वे अपने विशेषाधिकारों को सुरक्षित करना चाहते थे। अब नई सामाजिक शक्तियां भी संघर्ष में प्रवेश कर गईं। गुप्त संस्थाएं गेलोहुई (भाइयों एवं बड़ों की संस्था) ने विद्रोही कृषकों के गुटों का समर्थन किया और इन कृषक गुटों में वे विद्यार्थीगण भी सम्मिलित हो गए, जो जापान से वापस आए थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरकार ने सिच्वान की घटनाओं से चिंतित होकर नई सेना को सिच्वान की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया, लेकिन सरकार की इस कार्यवाही से संकट और गहरा हो गया। इसी समय सिच्वान की इन घटनाओं पर वूचंग में स्थित सेना की छावनी में फूट पड़े विद्रोह की प्रतिछाया पड़ी।

17.7.2 वूचंग विद्रोह

10 अक्तूबर, 1911 को जिस क्रांति का प्रारंभ हुआ था, उसको परम्परागत रूप से डबल टेन (Double Ten) के उभार के रूप में जाना गया है और इसी को 1911 की क्रांति का प्रारंभ भी माना गया है। यद्यपि इस क्रांति के मूल कारण इससे पूर्व घटित होने वाली अनेक जटिल घटनाओं में थे किन्तु वूचंग छावनी में सेना विद्रोह इस क्रांति के पथ में एक महत्वपूर्ण निर्णायक कदम साबित हुआ।

यह क्रांति नई सेना के सदस्यों का कार्य था। सेना के इन सदस्यों का साहित्यिक अध्ययन संस्था (वेनेक्से शी) के साथ संपर्क था और इनका संपर्क हूनान, हूबई तथा सिच्वान के क्रांतिकारी बुद्धिजीवियों के साथ हो गया और उन्होंने गोंगजिंग हुई (सार्वजनिक प्रगति वाली एसोसिएशन) की स्थापना की। बाद में इस संस्था का संपर्क तोंग मेंग हुई के साथ हो गया, और इसने साहित्यिक अध्ययन संस्था के साथ घनिष्ट तौर पर कार्य किया। इन दोनों संस्थाओं ने अक्तूबर 1911 की क्रांति के लिए साथ मिलकर गुप्त तैयारियां शुरू कर दी थीं।

कॉमन एडवांसमेंट एसोसिएशन के कार्यालय में अचानक एक बम फटा। क्रांतिकारियों ने पुलिस कार्यवाही को रोकने के लिए सक्रिय कार्य करने की योजना बनायी। 10 अक्तबर 1911 की शाम को नई सेना की चार बटालियनों ने विद्रोह किया। उन्होंने शस्त्र भंडार पर अधिकार कर लिया तथा सरकारी भवनों पर आक्रमण किया। भय से गवर्नर रुई-चेंग तथा सेना के कप्तान ने नगर को छोड़ दिया। 11 अक्तूबर की सुबह तक वूचंग क्रांतिकारियों के

हाथों में आ गया। उनके पास कोई लोकप्रिय नेता न था। इसलिए उन्होंने ब्रिगेड कमांडर लि-युआन-होंग पर चीन की गणतंत्रीय सैनिक सरकार के प्रमुख पद को स्वीकार करने के लिए दबाव डाला और प्रांतीय सभा के अध्यक्ष तांग हुआ-लोंग को नागरिक मामलों की देखभल करने वाला मंत्री बना दिया गया। ये दोनों नेता उदार से लेकर रूढ़िवादी विचार रखते थे और अब उनके कंधों पर क्रांति प्रसार का कार्य था।

17.7.3 प्रांतों द्वारा स्वतंत्रता की घोषणा

वुचंग के उदाहरण का अन्य प्रांतों ने भी तेजी के साथ अनुसरण किया और स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। अक्तूबर के महीने में ही हुबई, हुनान युआन, शैन्क्सि और शाक्सी प्रांतों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। नवम्बर के दौरान जियांगसी, जियागसू, झे जयांग, फूजियार, सिच्वान ने स्वतंत्रता की घोषणा का अनुसरण किया। 27 नवम्बर 1911 तक चिंग के नियंत्रण में मात्र मंचूरिया, हेनान, झिली तथा शातुंग थे।

जिन सामाजिक शक्तियों ने इन प्रांतीय स्वतंत्रता की घोषणाओं को किया था – वे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न-भिन्न थी। गुप्त संस्थाओं तथा नयी सेना ने इन गतिविधियों में सक्रिय भूमिका अदा की थी। अधिकतर प्रांतों में नेतृत्व प्रांतीय सभाओं एवं चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स के हाथों में था। प्रांतीय अधिकारीगण या तो भाग चुके थे या फिर कुछ स्थानों पर वे क्रांतिकारियों के साथ हो गये थे। उदाहरण के लिए कुओं तांग तथा जियागली जैसे प्रांतों के गवर्नरों ने स्वयं ही सत्ता पलट की घोषणा कर दी थी। सामान्य तौर पर यह शांतिपूर्ण हस्तांतरण था।

17.7.4 चिंग द्वारा जवाबी कार्यवाही

चिंग सरकार ने बियांग सेना की 12 यूनिटों को लेकर जवाबी कार्यवाही की। लेकिन समस्या यह थी कि सेनायें कमांडर युआन शि-काई के प्रति वफादार थीं और उसको विद्रोहियों को दबाने के लिए सेवा निवृत्ति से वापस बुलाया गया। जाय-फेंग की सेना को युआन की सभी शर्तों को स्वीकार करना पड़ा। युआन ने इस अवसर का उपयोग अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए किया तथा इसी के साथ-साथ उसे विद्रोहियों की सहानुभूति भी प्राप्त हुई। उसने विद्रोहियों के लिए क्षमादान तथा संसद की स्थापना की मांग की। 27 अक्तूबर को राष्ट्रीय सभा के सदस्य भी संविधान निर्माण करने, संसद का अधिवेशन बुलाने तथा माफी घोषित करने की मांग कर चुके थे। स्वयं बियांग सेना की ओर से विद्रोह के भय से चिंग ने 19 धाराओं के संविधान की घोषणा की और साम्राज्यिक सेना के सेनापति युआन शि-काई को प्रधान मंत्री बना दिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युआन शि-काई ने तेजी से प्रति आक्रमण की कार्यवाही की और हांको तथा हायांग पर अधिकार कर लिया। इस आक्रामक कार्यवाही को इस स्तर पर रोक दिया गया। यह सुझाव दिया गया कि युआन ने ऐसा इसलिए किया कि वह अपनी स्वयं की अभिलाषाओं को पूर्ण करना चाहता था। विद्रोही भी पर्याप्त रूप से शक्तिशाली थे। अतः उसने पहली दिसम्बर 1911 को उनके साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। विदेशी शक्तियों ने तटस्था की नीति का अनुसरण किया। ऐसा इसलिए हुआ कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रांतिकारियों ने कोई कार्यवाही नहीं की और नये नेतागण उनके हितों के साथ समझौता करने की इच्छा रखते थे और उनके मूक समर्थन को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे।

17.7.5 चीनी गणतंत्र

जिस समय क्रांति का प्रारंभ हुआ उस समय सन यात-सेन अमेरिका में था। उस समय एक ओर क्रांतिकारी बुद्धिजीवियों में और दूसरी ओर कुलीनों एवं सैनिकों के बीच मतभेद थे। लगातार बहुत सी प्रांतीय बैठकों के बाद यह निश्चय किया गया कि चीन में राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार होगी और सन यात-सेन को एक मत से प्रथम राष्ट्रपति चुना गया। चीनी गणतंत्र का उद्घाटन 1 जनवरी 1912 को नानकिंग में किया गया।

नये गणतंत्र को युआन शि-काई तथा उसकी सेना से बहुत खतरा था। इस स्थिति में इस संकट को टालने और इस अनुभवहीन गणतंत्र को बचाने के लिए सन यात-सेन ने युआन के पक्ष में त्यागपत्र देने की पेशकश इस शर्त के साथ की कि यदि वह नये गणतंत्र का समर्थन करे।

युआन ने नानकिंग सरकार के साथ बात-चीत की और अंतिम मांचू सम्राट को

योजना बनायी। 12 फ़रवरी 1912 को सम्राट श्वान-तोंग (बाद में हेनरी पू यी के नाम से जाना गया) ने "जनता की इच्छाओं में निहित वर्ग के निर्णय" के आगे समर्पण कर दिया और उसने सम्राट के पद का त्याग कर दिया। इस तरह से चिंग वंश और चीन के प्राचीन राजतंत्र का अंत हो गया। अंतिम शाही घोषणा के द्वारा युआन की स्थिति को सुरक्षित करते हुए कहा गया "युआन को एक अस्थायी गणतंत्रीय सरकार को पूरी शक्ति के साथ संगठित करने दिया जाये और एकता के साधनों के तौर पर गणतंत्रीय सेना को प्रदान कर दिया जाये जिसमें जनता के लिए शांतिपूर्ण वातावरण तैयार हो सके। 10 मार्च 1912 को युआन ने संसद का निर्वाचन तथा एक पूर्ण रूपेण सवैधानिक सरकार की स्थापना होने तक अस्थाई राष्ट्रपति के तौर पर कार्य किया।

17.8 परिणाम

यद्यपि मांचू शासन का अंत अपेक्षाकृत सरलता से हो गया था किन्तु क्रांति की मूलभूत कमजोरियां भी स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ने लगीं। युआन राष्ट्रपति था किन्तु वह प्रतिनिधि सरकार के प्रति समर्पित न था और उसने प्रत्येक अवसर का प्रयोग संसदात्मक प्रक्रिया को उलटने के लिए किया। जिस किसी ने उसकी शक्ति को चुनौती दी, उसने इसे सहन नहीं किया।

क्रांति के तुरंत बाद राजनीतिक गुटों ने स्वयं को राजनीतिक दलों के रूप में संगठित किया और वे स्वयं को संसदात्मक चुनावों के लिए तैयार करने लगे। चीनी गणतंत्र में 1913 में प्रथम संसदात्मक चुनाव हुए। इन चुनावों में तीन दलों में कुओ मिंग तांग (Kuo Min Tang) को सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई। लेकिन यह प्रक्रिया बहुत लम्बे समय तक बनी न रह सकी। युआन ने तेजी के साथ कार्यवाही करते हुए क्रांतिकारियों के विरुद्ध दमनात्मक कार्यवाही की और मार्च 1913 में सोंग जिओ-रेन को शंघाई में इस आशय के साथ फांसी दे दी गई जिससे कि उसकी लोकप्रियता से पैदा होने वाले खतरे को रोका जा सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सोंग की इस हत्या ने चीनियों को उत्तेजित कर दिया। युआन ने विपरीत शर्तों पर विदेशी ऋण लिया और इसके कारण भी उसकी कटु आलोचना हुई। युआन ने 2 करोड़ 50 लाख पौण्ड के मूल्य का ऋण ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस, अमेरिका और जापान के बैंकों से प्राप्त किया। इसके बदले में उन्होंने एकमत मांग की और उन्होंने ऋणों पर एकाधिकार तथा गारंटी के तौर पर नमक करों को प्राप्त किया।

युआन के कड़े नियंत्रण के विरुद्ध जुलाई और अगस्त 1913 में कुछ प्रांतीय सरकारों ने स्वायत्तता प्राप्त करने के प्रयास किये। इन प्रांतीय सरकारों ने बिना किसी तैयारी के युआन सरकार से अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी तथा इसको संक्षिप्त जीवन वाली दूसरी क्रांति कहा गया। इस क्रांति का शीघ्रता से दमन कर दिया गया। सन यात-सेन, हुआंग शिंग तथा दूसरे नेता अपनी भविष्य की नीति को तय करने के लिये जापान भाग गये। बियांग सेना के सेनापतियों ने प्रांतों के गवर्नरों के तौर पर अपने नियंत्रण को और बढ़ा दिया। विरोध की अंतिम किरण को भी समाप्त कर दिया गया। युआन ने सभी शक्तियों को स्वयं में केंद्रित करने के लिये सभी साधनों का उपयोग किया और संसदात्मक सभा अर्थहीन हो गई।

इस तरह से क्रांति का काल संक्षिप्त रहा। इसने राजतंत्रीय गणतंत्र की स्थापना की। इस गणतंत्र की आधारशिलायें काफी कमजोर थीं। कुलीन तथा सेना जैसी जिन सामाजिक शक्तियों ने इस क्रांति को सम्पन्न किया उनके पास लम्बे समय के लिये देने को कुछ न था। क्रांतिकारी बुद्धिजीवी एक मजबूत सामाजिक आधार तथा सेना की सहायता के अभाव में प्रभावहीन बने रहे। इस क्रांति की सबसे महत्वपूर्ण कमजोरी यह थी कि इसने चीन की आबादी के मुख्य भाग कृषकों की पूर्ण अवहेलना की। यह क्रांति अपरिहार्य तौर पर समाज के प्रभुत्वशील गुटों के बीच संघर्ष थी। इस संघर्ष में केंद्रीय शक्तियों ने 1911 की क्रांति के मजबूत एकीकृत गणतंत्र के मूल लक्ष्य को कम करके आंका।

बोध प्रश्न 3

1) तोंग मेंग हुई के उद्देश्यों एव लक्ष्यों को लगभग 10 पंक्तियों में बताइए।

....

2) सिच्वान आंदोलन के कारणों पर पांच पंक्तियां लिखिए।

3) 1911 की क्रांति के परिणामों की 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.9 सारांश

इस इकाई में हम देख चुके हैं कि चिंग सरकार ने नव जीवन प्राप्त करने के लिये किस तरह से सुधारों को प्रारंभ किया था। लेकिन ये सुधार जनता की अभिलाषाओं को सन्तुष्ट करने में असफल रहे। विदेशी शक्तियों की लगातार उपस्थिति तथा चीन की अर्थव्यवस्था एवं संसाधनों के शोषण के कारण चिंग की स्थिति और कमजोर हो गई। अब चीन में नवीन सामाजिक शक्तियों का उद्भव हुआ। उदित होते हुए पूंजीपति वर्ग ने चिंग पर आरोप लगाया कि वह उनके व्यापारिक हितों की रक्षा नहीं कर रहा है। अन्य दूसरे तत्कालिक कारणों ने राष्ट्रवादी भावनाओं को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। सुधारवादियों तथा क्रांतिकारियों दोनों ने एक साथ मिलकर जनता के बीच जागरूकता को पैदा किया। सुधारवादियों का नेतृत्व लियांग दी चाओ ने किया तो क्रांतिकारियों का सन यात-सेन ने। तोंग मेंग हुई के निर्माण ने क्रांतिकारी विचारों तथा संगठन को एक सुनिश्चित आकार प्रदान किया।

आपका परिचय क्रांति के दौरान घटित घटनाओं से भी कराया गया। ये घटनायें थीं – सिच्वान रेलवे की रक्षा का आंदोलन, वूचंग विद्रोह तथा प्रांतों के द्वारा घोषित स्वतंत्रता आदि गणतंत्र की स्थापना और इसके बाद जो कुछ घटित हुआ उससे भी आपको अवगत कराया गया है।

17.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें उपभाग 17.2.1.

2) देखें उपभाग 17.2.3.

बोध प्रश्न 2

1) व्यापारियों एवं भू-अभिजात वर्ग के बीच संबंध को शैन-शांग के रूप में उद्धृत किया गया है। उन्होंने चिंग का विरोध इसलिये किया कि वह साम्राज्यवादी शक्तियों के सम्मुख समर्पण कर रहा था। वे स्वयं के आर्थिक हितों की रक्षा करना चाहते थे। अपने उत्तर को भाग 17.4 के आधार पर लिखें।

2) देखें उपभाग 17.5.2.

3) देखें उपभाग 17.5.3.

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 17.6. 2) देखें उपभाग 17.7.1. 3) देखें भाग 17.8.

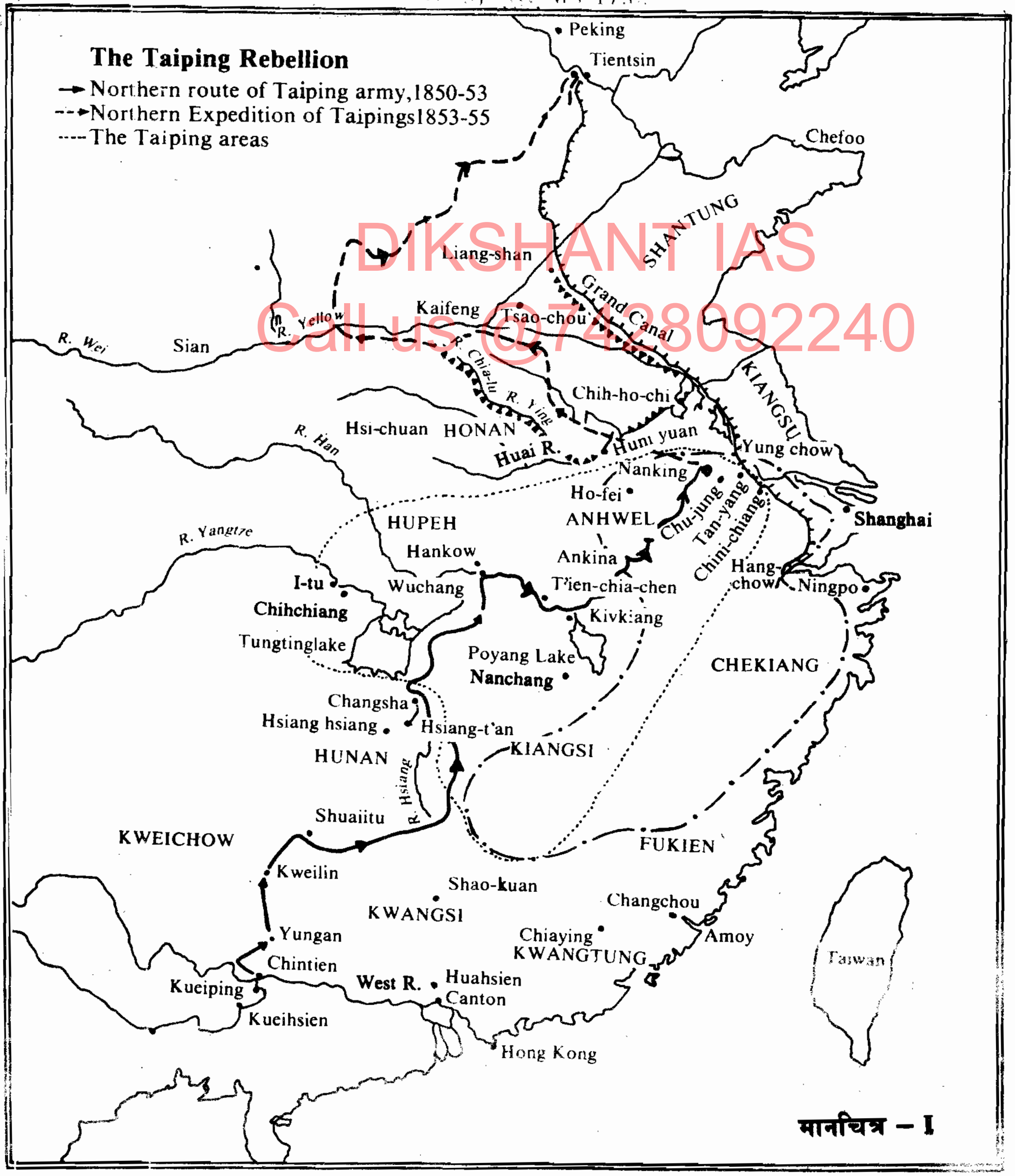

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मानचित्र – I

1) ताइपिंग नेता हुंग स्यू-चुआन की मूर्ति

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

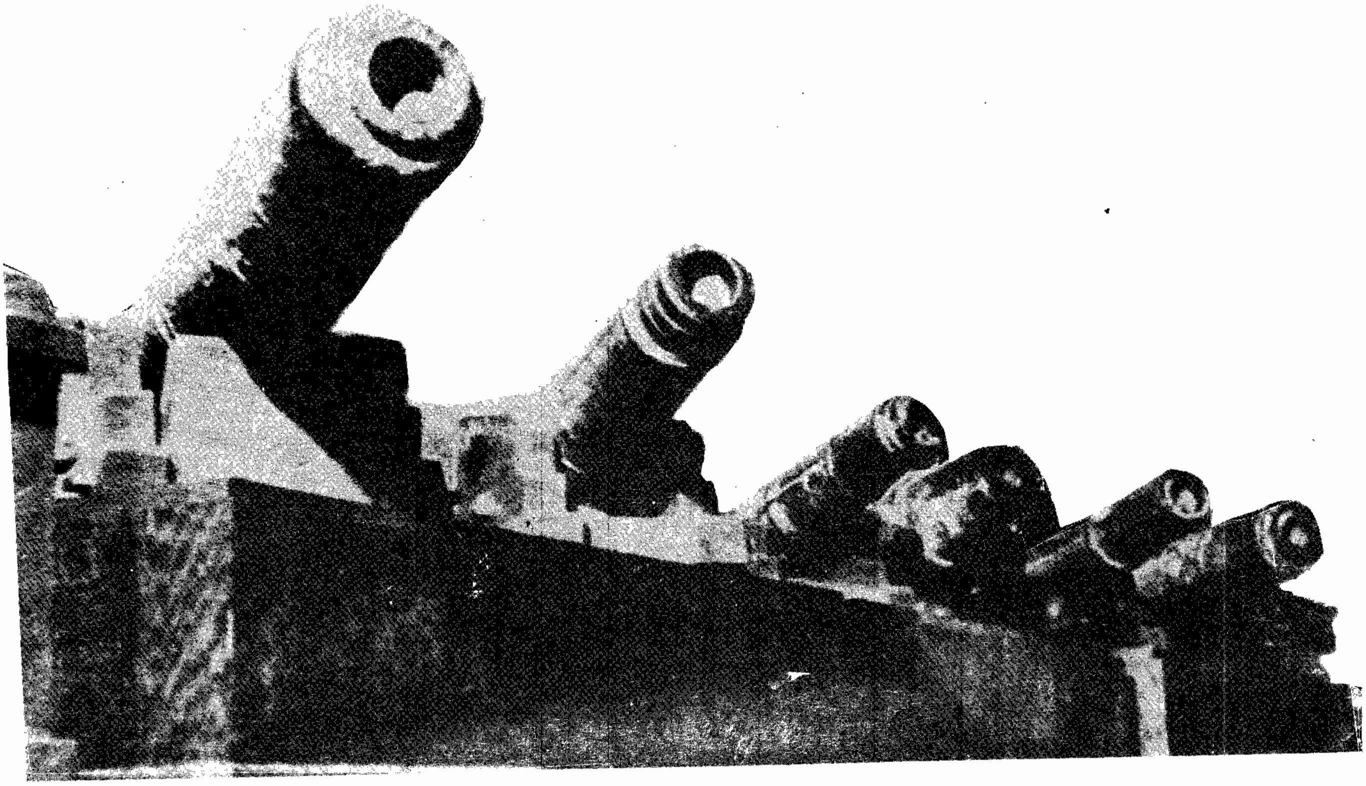

2) ताइपिंग द्वारा प्रयुक्त तोपें

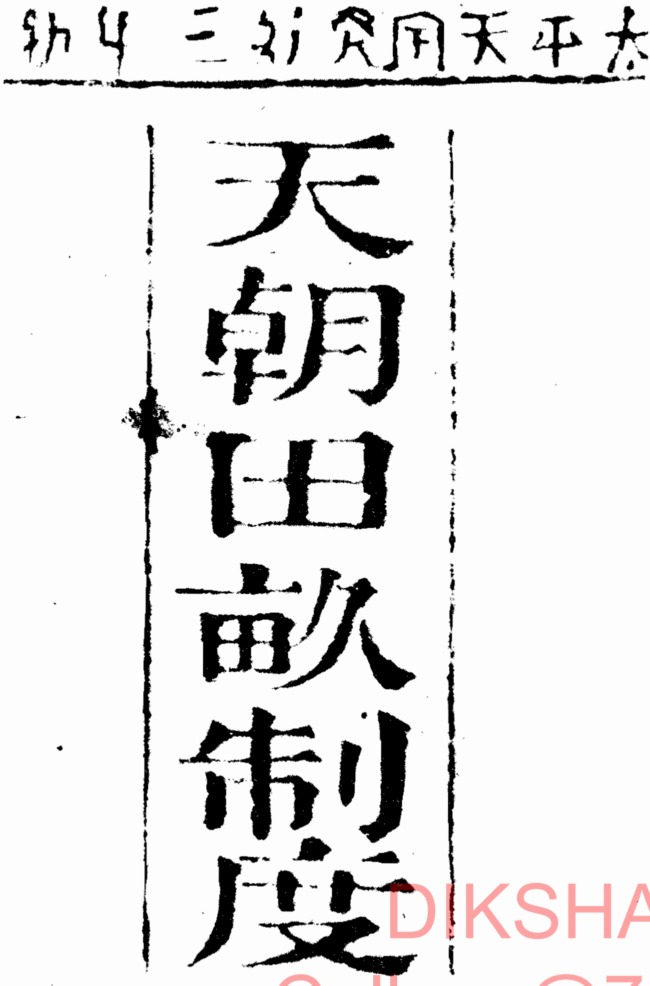

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) *द हैवेनली लैंड सिस्टम* पुस्तक का अग्र-आवरण

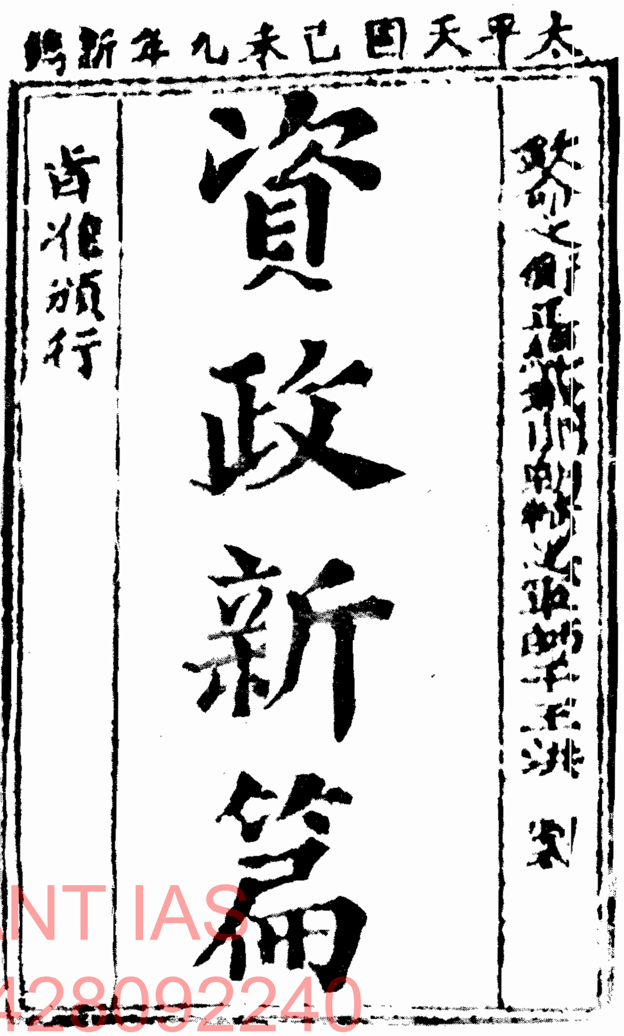

4) ताइपिंग की *न्यू गाइड टू गवर्नमेन्ट* का अग्र-आवरण

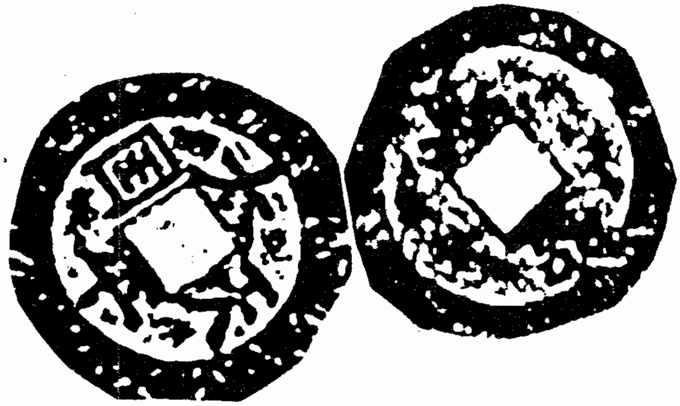

5) ताइपिंग सिक्के

6) ताइपिंग मुहर

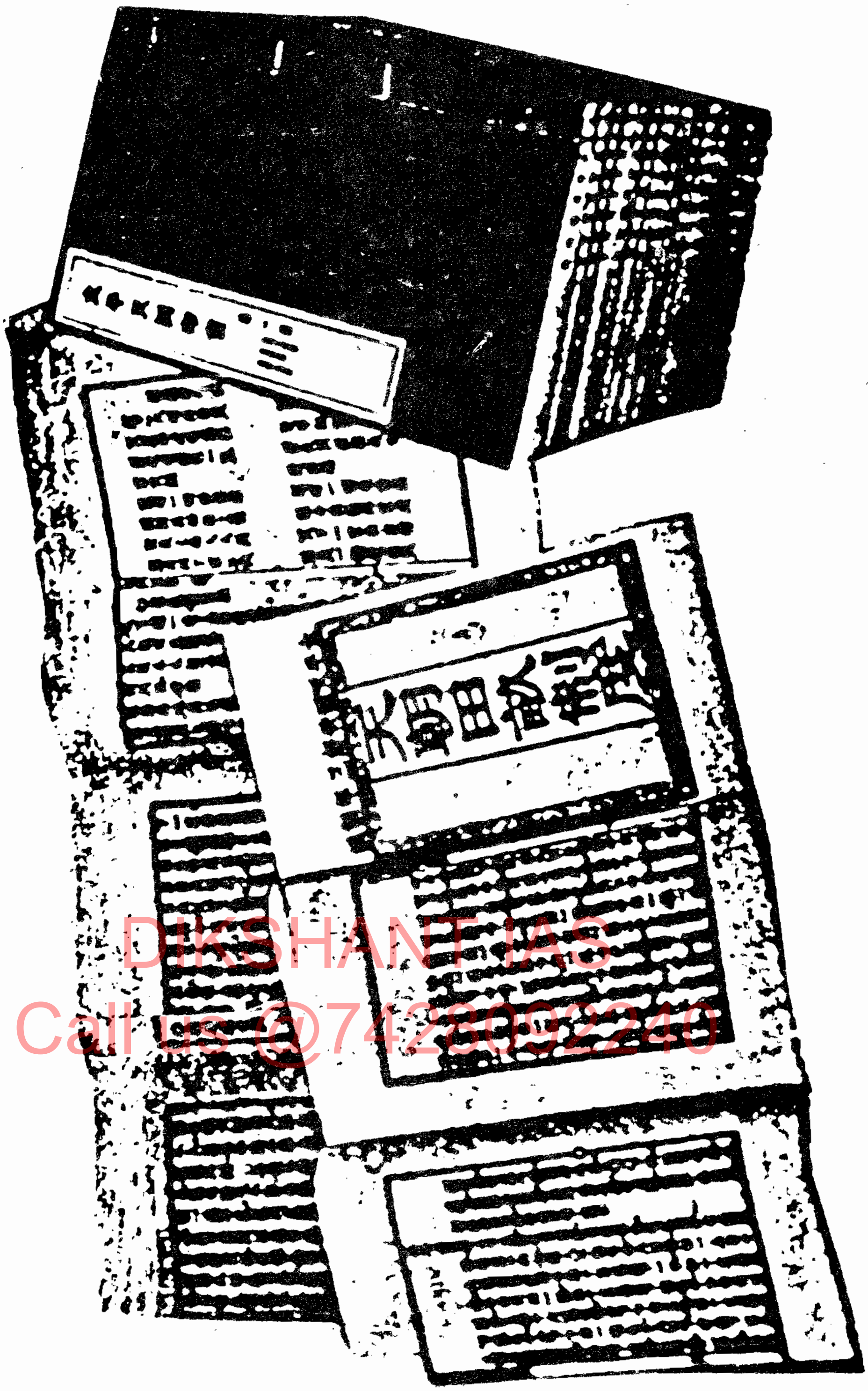

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7) ताईपिंग द्वारा प्रकाशित *द हेवेनली लैंड सिस्टम* और अन्य पुस्तकें

8) ताईपिंग का [illegible] स्थान विद्रोह

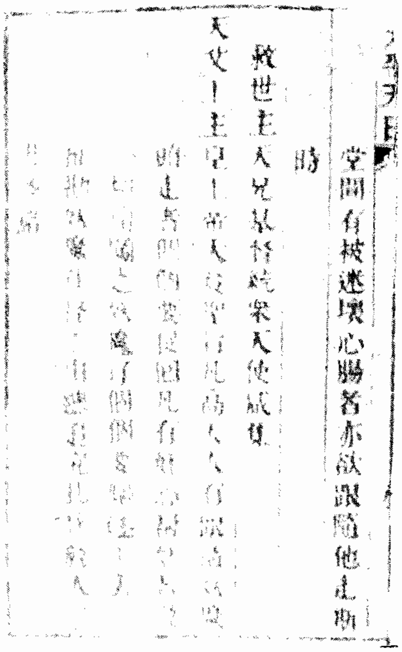

有被迷壞心腸者亦欲跟隨他去
時
救世主天兄基督統衆天使派其

9) *ताइपिंग हैवेनली डेज़* पुस्तक का एक पृष्ठ। इस पुस्तक में कनफ्यूशियस के विचारों को खण्डित किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10) ताइपिंग द्वारा नानकिंग में चिंग युद्ध-पोतों पर दागी गई तोपें।

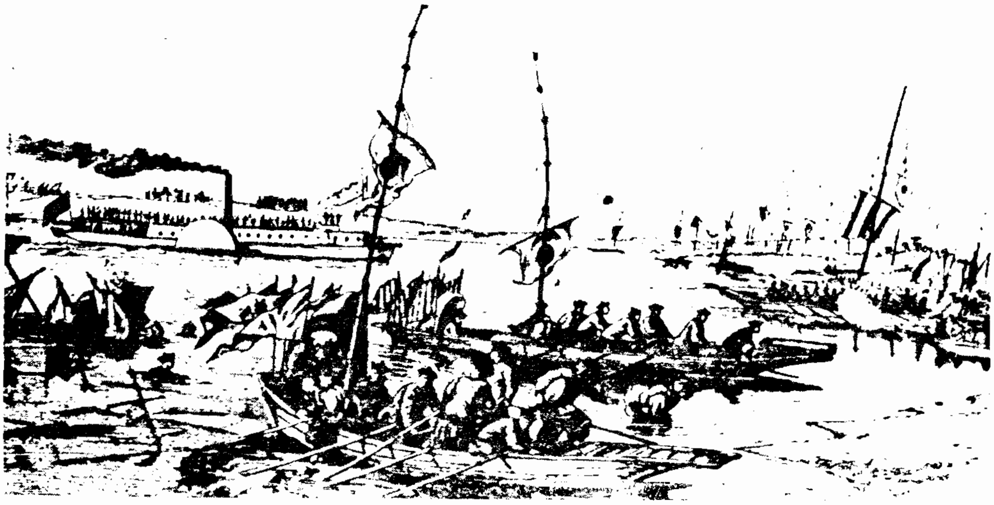

11) ताइपिंग सेना को विदेशियों द्वारा मदद

12) नानकिंग में ताइपिंग के विरुद्ध चिंग सेना का असफल धावा (1853)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13) माओ फू-तीएन – एक यी हो तुआन नेता

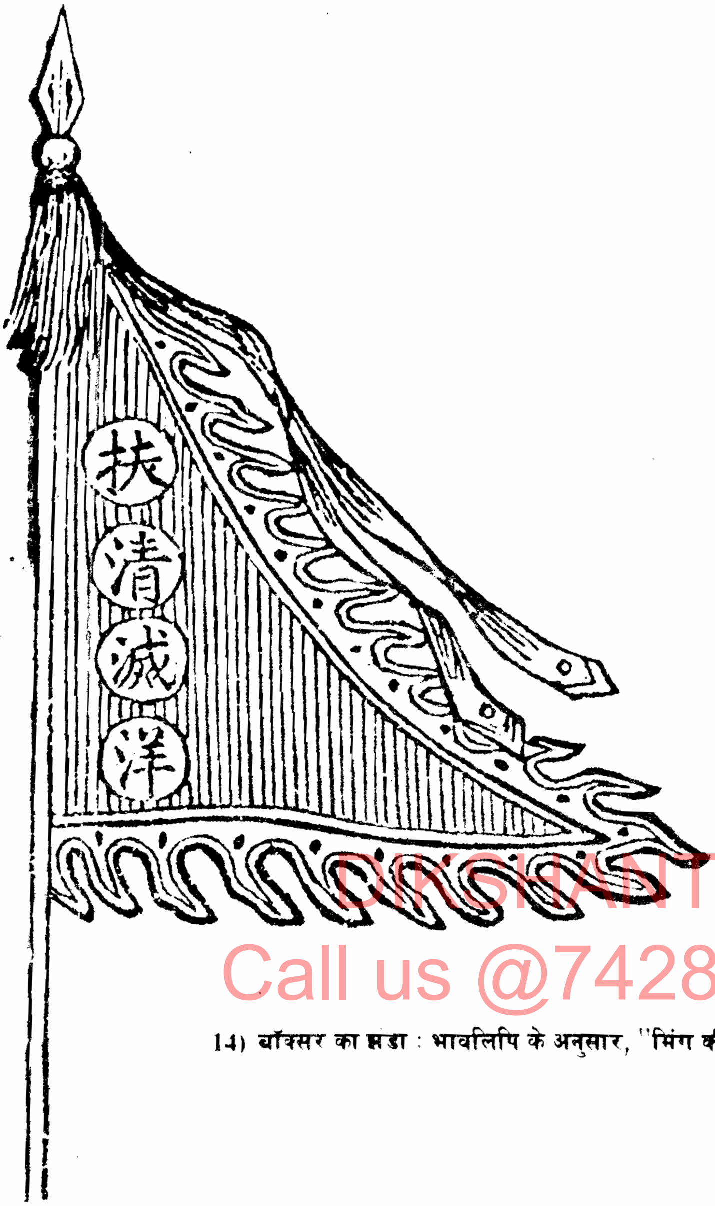

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14) बॉक्सर का झंडा : भावलिपि के अनुसार, "मिंग की सहायता करो, चिंग को बेदखल करो"

15) बॉक्सरों द्वारा जलाया गया एक गिरिजाघर

16) बॉक्सरों से भागते हुए विदेशी

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17) बॉक्सर का घोषणा-पत्र

18) यूरोपीय सेनाओं के विरुद्ध निआनसिन का युद्ध

19) राजकुमार कुंग

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20) सुंगली येमेन (विदेश विभाग) का अन्दरूनी भाग

21) कैंग यू-वी

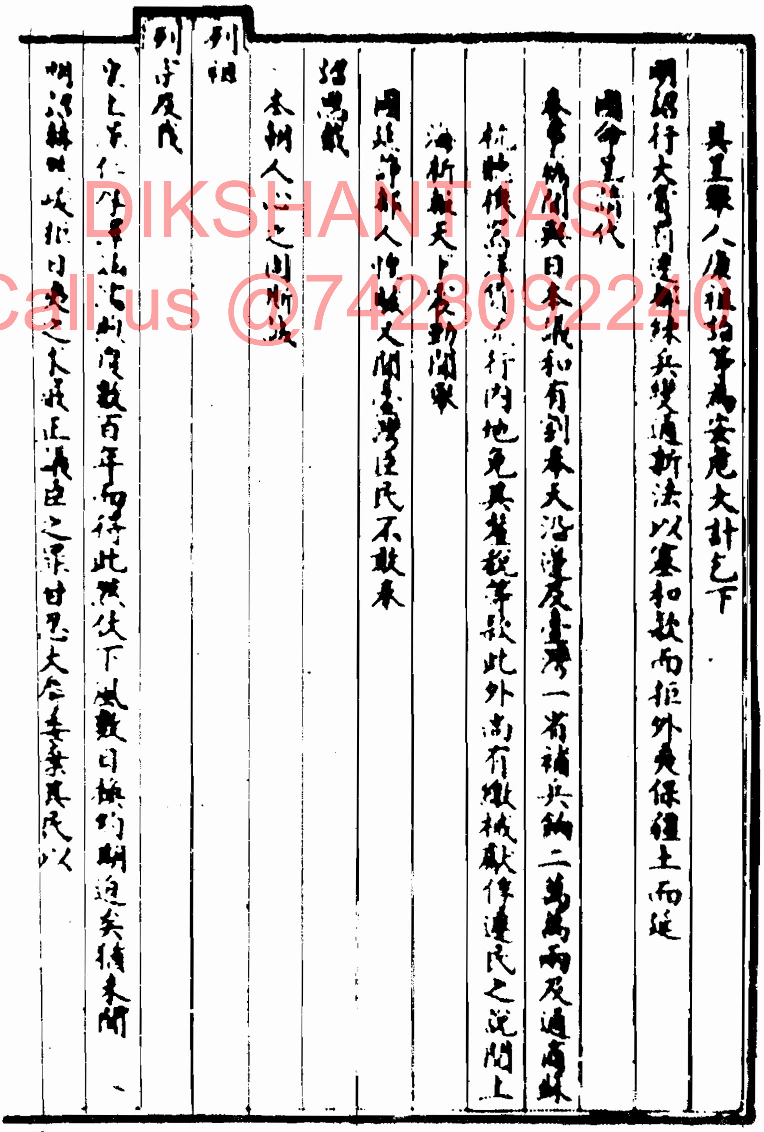
具呈舉人康祖詒等為安危大計乞下
明詔行大賞罰遷都練兵變通新法以塞和款而拒外夷保疆土而延
國命事竊聞
奉天納閱與日本議和有割奉天沿邊及臺灣一省補兵餉二萬萬兩及通商蘇
杭聽機器洋貨流行內地免其釐稅等款此外尚有繳械獻俘遷民之說聞上
海折稿天下震動聞衆
國與臺灣臣民不敢奉
詔思戴
本朝人心之固斯誠
列祖
列宗及我
皇上深仁厚澤涵濡煦覆數百年而得此然伏下風數日換約期迫矣竊來聞
朝議紛紜從日本之大義正責臣之罪甘忍大局棄其民以

22) कैंग यू-वी द्वारा सम्राट को दिए गए मैमोरियल का एक पृष्ठ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

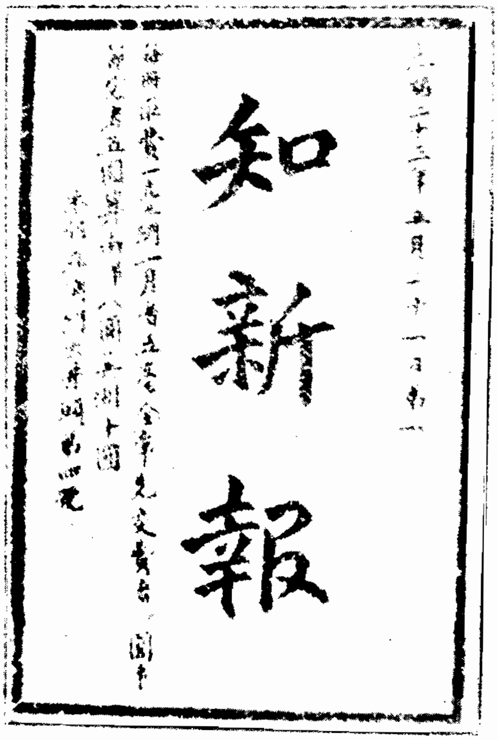

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

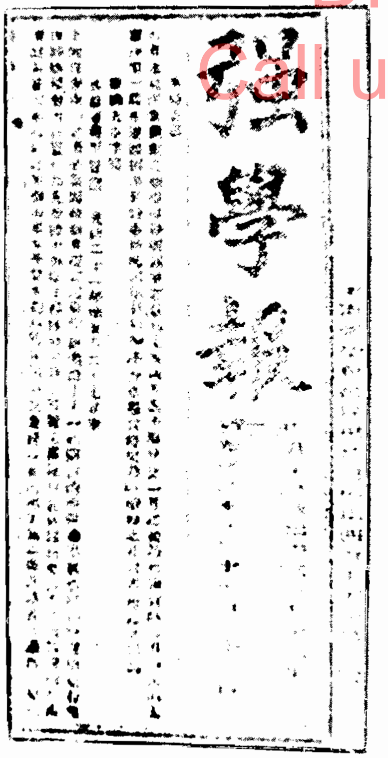

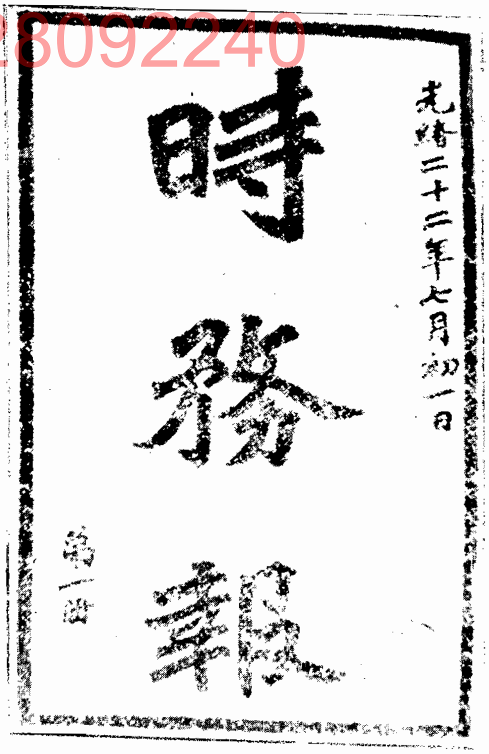

23) 1898 के सुधार आन्दोलन के समय प्रकाशित कुछ पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठ

24) साम्राज्ञी डोवेजर ज्य-त्शी

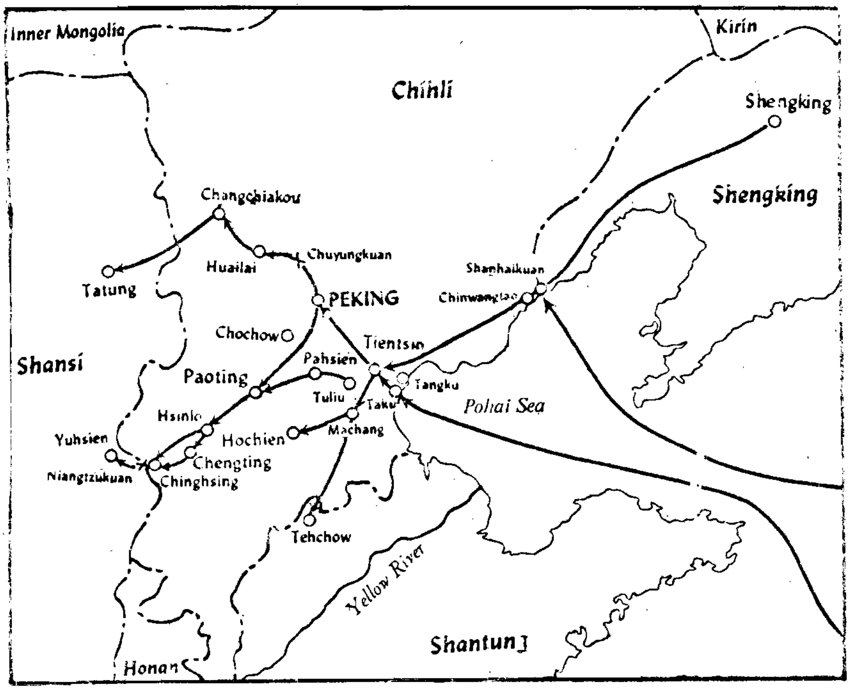

मानचित्र – 2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

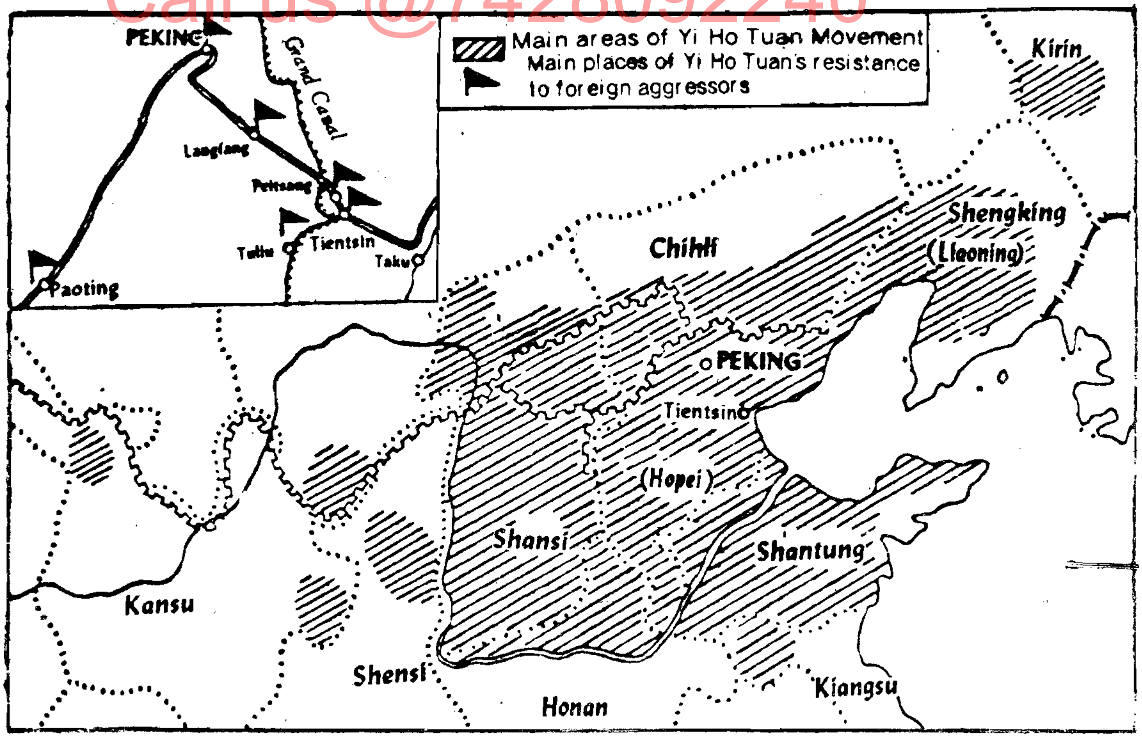

मानचित्र ३ – पश्चिमी ताकतों की सेनाओं द्वारा बॉक्सरों के विरुद्ध अपनाया गया रास्ता

25) ओकूमा शीजीनोब

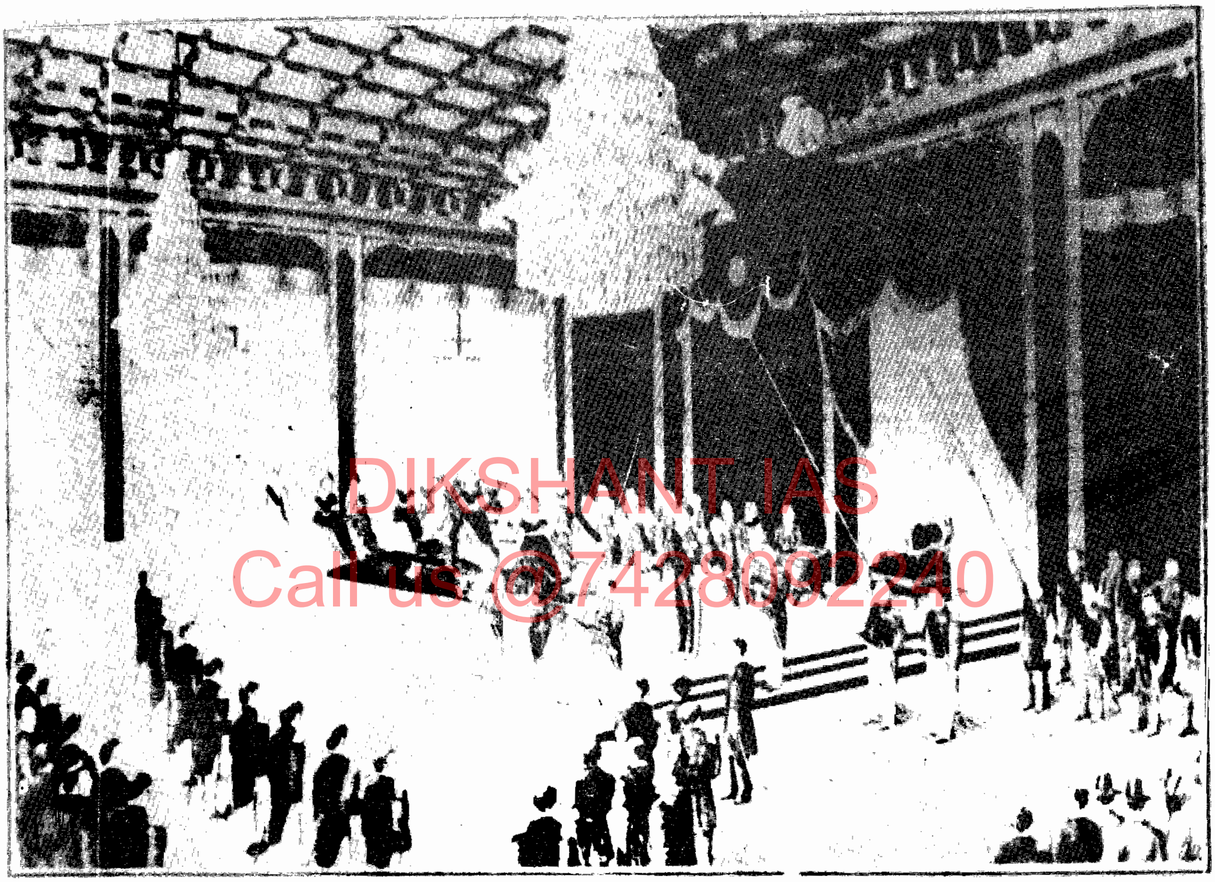

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26) मजी संविधान का लागू किया जाना

27) सन यात सेन

28) सोसाइटी फौर चाइनीस रिवाइवल का घोषणा पत्र

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

29) चिन जिन – जो कि एक स्त्री-योद्धा के नाम से भी जानी जाती है - ने 1911 की क्रांति की भूमिका तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

30) 1911 की क्रांति के दौरान सशस्त्र विद्रोह

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

31) क्रांतिकारों का प्रचार करने वाली किताबें और पत्रिकाएं

32) वुचांग विद्रोह 1911

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

33) 1911 की क्रांति में जनता द्वारा भाग लिया जाना

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 18 मेजी जापान I

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 क्षेत्रीय मुद्दे
    18.2.1 कूरिल द्वीप समूह
    18.2.2 र्‍यूक्यू द्वीप समूह
    18.2.3 बोनिन द्वीप समूह (ओगासावारा)
18.3 कोरिया का मसला
18.4 असमान संधियों में संशोधन
18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम जापान के विदेशी संबंधों के उन मसलों पर विचार विमर्श करेंगे, जिनका सामना मेजी शासन ने 1868-1893 की अवधि में किया। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्न बातों की जानकारी हासिल होगी :

- कूरिल द्वीप समूह, र्‍यूक्यू द्वीप समूह और बोनिन द्वीप समूह से संबंधित क्षेत्रीय मुद्दे,
- कोरिया से चीन का प्रभुत्व समाप्त करने के जापान के प्रयास, और
- असमान संधियों में संशोधन।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.1 प्रस्तावना

मेजी शासन को विरासत में ऐसा देश (जापान) मिला था जो पश्चिमी देशों के लिए ऐसी संधियों के आधार पर खुला था, जिनमें जापान में विदेशी नागरिकों को क्षेत्रातीत (देखिये शब्दावली) अधिकार दिये गये थे, और जापान को शुल्क दरों को तय करने की स्वायत्तता से भी वंचित कर दिया गया था। पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जापान को समानता का दर्जा दिलाने के लिये यह आवश्यक हो गया था कि जापानी प्रभुसत्ता में पैठ करने वाले इन अपमानजनक प्रावधानों को रद्द किया जाये। इसके लिये न केवल आंतरिक पुनर्निर्माण के एक कार्यक्रम की आवश्यकता थी, बल्कि यह भी आवश्यक था कि जापान द्विपक्षीय और बहुपक्षीय स्तरों पर बातचीत में भी निपुण बने रूस के साथ लगने वाली उत्तरी सीमाओं की समीक्षा और जापान के हित में उन्हें निश्चित करना आवश्यक था। जापान ने र्‍यूक्यू द्वीप समूह पर अपनी प्रभुसत्ता कायम करने का प्रयास किया और इसे स्वीकृत भी कराना चाहा। कोरिया खोलने के जापान के प्रयासों को नाकाम करने की कोरिया की जिद को भी ठीक करना था। जिस जापान ने पश्चिमी ताकतों के खतरे का मुकाबला करने के लिये 1871 में चीन के साथ एक मैत्री-संधि की थी, उसी जापान को र्‍यूक्यू द्वीप समूह और कोरिया को लेकर चीन के साथ अपने हित टकराते दिखायी दिये। जिस कोरियन अभियान का साइगो-ताकायोरी ने प्रारंभ में प्रस्ताव रखा था, 1873 में वह अभियान तो शुरू नहीं हुआ, लेकिन जापान ने अपने अधिकारों को कायम करने के लिये कोरिया के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप अवश्य किया। इन दोनों मुद्दों ने चीन और जापान के बीच अविश्वास और शत्रुता पैदा कर दी, जो आने वाले वर्षों में और बढ़ी ही। अमेरिका ने चीन के संदर्भ में जापान के अधिकारों को कायम करने और सामान्य तौर पर जापान के क्षेत्रीय विस्तार के प्रयासों में जापान की अप्रत्यक्ष रूप से मदद की। इस इकाई में इन्हीं कुछ बिंदुओं पर विचार किया गया है।

18.2 क्षेत्रीय मुद्दे

अब हम उन क्षेत्रीय मुद्दों पर विस्तार से विचार विमर्श करेंगे जो जापान के सामने थे। इनमें कूरिल द्वीप समूह, र्‍युक्यू द्वीप समूह और बोनिन द्वीप समूह शामिल हैं।

18.2.1 कूरिल द्वीप समूह

फरवरी 1855 में रूस के साथ जो शिमोदा की संधि हुई वह अमेरिका के साथ हुई संधि से इन अर्थों में कहीं अधिक व्यापक थी कि इसमें कुछ क्षेत्रीयता से संबंधित प्रावधानों को भी शामिल किया गया। इनके अनुसार उरूप्पू के दक्षिण में पड़ने वाला समूचा कूरिल द्वीप तो जापान को मिला, और इसके उत्तर में पड़ने वाले द्वीप रूस के हिस्से में आये। सखालीन को अविभाजित ही रखा गया। लेकिन, इस संधि से भी सीमा का मसला हल नहीं हुआ। 1859 में, एक जहाजी बेड़े के साथ शिनागावा जाने वाले कांउट मुरावीफ ने एक मांग रखी कि ला पेरू जलडमरूमध्य को जापान और रूस की सीमा बनाया जाये। 1861 में, महत्वपूर्ण त्सूशीमा-द्वीप पर रूस ने कब्जा कर लिया। लेकिन ब्रिटेन ने इस द्वीप पर रूस के सारे दावे खत्म करवा लिये। इस तरह, रूस के साथ सीमाओं को उचित ढंग से खींचना नये मेजी शासन की विदेश नीति की एक प्रमुख समस्या बन गयी।

पुनरुत्थान के बाद के वर्षों में उत्तरी सीमा के बारे में नेताओं की राय एक नहीं रही :

1) नेताओं के एक गुट की राय थी कि जापान को समूचे कूरिल द्वीप समूह और सखालीन समेत सभी उत्तरी द्वीपों पर अपना दावा पेश करना चाहिये। 1870 में अमेरिकी विदेश मंत्री, विलियम एच. सेवर्ड, टोक्यो आये। उनका सुझाव था कि जापान सखालीन के उत्तरी आधे भाग को खरीदने की पेशकश कर सकता था। सेवर्ड ने जापान से आग्रह किया कि वह विस्तार की नीति अपनाये। सेवर्ड ने यह सलाह रूस के साथ अपनी बातचीत और अलास्का की खरीद (1887) के आधार पर दी।

ii) होकैडो कोलोनाईजेशन ऑफिस के अध्यक्ष, कुरेदा कियोताका के नेतृत्व वाले एक और गुट का मानना था कि होकैडो पर जापान का कब्जा अभी तक तो मजबूत हुआ नहीं था, इसलिए बड़े दावे करके रूस का बैर मोल लेना अक्लमंदी नही होगी। होकैडो की सैनिक शक्ति उत्तर से होने वाले आक्रमण से द्वीप की रक्षा करने की स्थिति में नहीं थी। प्राथमिकता विस्तार को नहीं, बल्कि इस बात को देनी चाहिए कि होकैडो में जापान की स्थिति को मजबूत किया जाये। कियोताका इस बात की वकालत करता था कि जापान सखालीन पर अपने सभी दावे छोड़ दे। अंत में उसके विचार ही माने गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एडमिरल एनोमोती ताकेयाकी को 1874 में इस निर्देश के साथ सेंट पीटर्सबर्ग भेजा गया कि वह रूसी-जापानी सीमा समस्याओं पर सौहार्दपूर्ण बातचीत करके उनका समाधान करे। लंबी बातचीत के साथ, 1875 में, पीटर्सबर्ग की संधि संपन्न हुई। रूस ने कूरिल द्वीप शृंखला जापान के लिये छोड़ दी। इसके बदले में जापान ने सखालीन पर अपने सारे दावे छोड़ दिये। **जापान की समानता के आधार पर संपन्न होने वाली यह पहली अंतर्राष्ट्रीय संधि थी।** कूरिल द्वीप सामरिक दृष्टि से जापान के लिये अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण महत्वपूर्ण थे और आर्थिक-दृष्टि से इसलिये महत्वपूर्ण थे क्योंकि उसके आसपास के जलक्षेत्र में मछलियों की बहुतायत थी।

कूरिल द्वीपों को होकैडो में मिला लिया गया और उनका प्रशासन होकैडो प्रांत के एक हिस्से के तौर पर होता था। इस संधि का संपन्न होना जापान के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ क्योंकि इसके तहत चिंतनीय सीमा विवाद सौहार्दपूर्ण ढंग से निपट गया। इसके अलावा, जापानी नेताओं के लिये अंतर्राष्ट्रीय बातचीतों के क्षेत्रों में यह एक महत्वपूर्ण अनुभव भी रहा लेकिन, रूस के साथ जापान की मैत्री जल्दी ही कोरिया को लेकर टूट गयी, तथा इसका कारण पूर्व में एक हिममुक्त बंदरगाह हासिल करने की रूसी महत्वकांक्षा भी थी।

18.2.2 र्‍युक्यू द्वीप समूह

र्‍युक्यू द्वीप दक्षिण की दिशा में, क्यूशू के नीचे, 5 मील तक फैले हुए हैं। र्‍युक्यू में रहने वालों की भाषा और रीतियाँ चीनियों और जापानियों दोनों से मेल खाती थीं, लेकिन जापान के अधिक निकट थी। सत्रहवीं शताब्दी तक, ये द्वीप प्रमुख तौर पर चीनी प्रभाव में थे। लेकिन, सत्रहवीं शताब्दी के बाद, उन्हें सत्सुमा हान के दाईम्यो ने जीत लिया। इसका

परिणाम केवल यह हुआ कि र्‍यूक्यू द्वीप समूह का राजा चीन और जापान दोनों को नजराना देने लगा और दोनों के साथ सक्रिय व्यापार करता रहा। लेकिन राजा अपने आपको स्वाधीन ही मानता रहा और उसने अपनी ही ओर से पश्चिमी ताकतों के साथ संधियों पर हस्ताक्षर किये। जापान में जब (1882 तक) हान का खात्मा कर दिया गया तो, र्‍यूक्यू द्वीपों की स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक हो गया। जापानियों ने यह निश्चित करने के लिये कदम उठाये कि र्‍यूक्यू द्वीपों पर चीन के दावे को नहीं माना जाए। राजा को जबरन टोक्यो ले आया गया और 1872 में अमेरिका को सरकारी तौर पर यह सूचना दे दी गयी कि र्‍यूक्यू द्वीपों को जापान में शामिल कर लिया गया था लेकिन राजा ने जो संधियाँ की थीं, उनका जापान सम्मान करेगा।

सन् 1873 में, जापानी सरकार ने चीन की इस स्वीकृति के साथ र्‍यूक्यू वासियों के जापानी नागरिक होने की पुष्टि कर दी कि जापान को दक्षिणी फारमूसा (ताईवान) में एक आदिवासी जनजाति के हाथों कुछ र्‍यूक्यू वासियों की हत्या के लिये हरजाना पाने का अधिकार था। इस स्वीकृति को जापान ने र्‍यूक्यू द्वीपों पर चीन के दावों का परित्याग भी माना। टोक्यो में अमेरिकी मंत्री, दें लोंग, ने भी इस विवेचन को स्वीकार किया। इसलिये जब जापान ने फारमूसा में एक अभियान दल भेजा तो चीन ने उसे सैनिक चुनौती नहीं दी। वास्तव में, अक्तूबर 1874 में, पीकिंग में अंग्रेज मंत्री, टॉमस वेड, की मध्यस्थता से, चीनी विदेश मंत्री ने पीकिंग में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसमें अभियान दल के अधिकारपूर्ण उद्देश्य को स्वीकार किया गया था। इस तरह र्‍यूक्यूवासियों को जापानी नागरिकों के रूप में मान्यता दे दी गयी। इसके अलावा चीन ने हरजाने के तौर पर 500,00 ताएल भी देने का वायदा किया जिसका पाँचवां हिस्सा मारे-गये जापानियों (र्‍यूक्यूवासियों) के परिवारों के लिये तुरंत दे दिया गया। अंग्रेज, मंत्री, टॉमस वेड ने, इस समझौते पर हस्ताक्षर करके यह गारंटी दी कि चीन इस राशि का भुगतान करेगा। समझौते में "जापान के लोग" के अलावा र्‍यूक्यूवासियों का और कोई हवाला नहीं था। इस समझौते पर हस्ताक्षर करते समय चीन को यह आभास नहीं हुआ कि वह इन द्वीपों पर जापान की प्रभुसत्ता को स्वीकार रहा था। 1879 में, चीन ने ओकीनावा प्रांत में इन द्वीपों को शामिल किये जाने का विरोध किया, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत उसकी स्थिति कमजोर थी। चीन ने इस मसले में अमेरिका से मध्यस्थता करने को कहा। राष्ट्रपति ग्रांट ने सुझाव दिया कि चीन और जापान इस मुद्दे पर सीधे बातचीत करें और एक समझौते के समाधान को स्वीकार करें। जापान ने प्रस्ताव रखा कि र्‍यूक्यू द्वीपों के धुर दक्षिणी समूह, अर्थात् साकीशिमा समूह, को चीन को दे दिया जाये। उसके बदले में, जापान ने यह आग्रह किया कि 1871 की संधि में संशोधन करके सबसे अनुकूल राष्ट्र संबंधी प्रावधान को शामिल किया जाये जिससे जापान को वे ही विशेषाधिकार मिलें जो पश्चिमी ताकतों को प्राप्त थे। चीन की प्रतिक्रिया डावांडोल रही, एक बार तो उसने जापान के प्रस्ताव को मान लिया और बाद में यह कहकर उसे अस्वीकार कर दिया कि इस सारे मामले को विदेश मंत्रालय से उत्तरी और दक्षिणी-व्यापार अधीक्षकों को हस्तांतरित कर दिया गया था। यह प्रकट था कि चीन ऐसी किसी संधि पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहता था जिससे कि उन द्वीपों पर प्रभुसत्ता जापान के हाथों में पहुंच जाये। 1881 में, पीकिंग में अमेरिकी मंत्री को सूचित किया गया कि अधिक से अधिक वे ऐसी संधि पर हस्ताक्षर करेंगे जिसमें चीन और जापान दोनों की ओर से र्‍यूक्यू द्वीपों की स्वाधीनता की गारंटी दी जाए। फिर भी, इस मुद्दे को अधर में लटकता छोड़ कर भी, चीन इन द्वीपों पर जापान के वास्तविक कब्जे को नहीं रोक पाया। जापान ने अब दुबारा बातचीत करने से भी इंकार कर दिया था। जापान ने बिना किसी प्रत्यक्ष युद्ध के द्वीपों पर कब्जा कर लिया लेकिन इस सौदेबाजी में उसने चीन की शत्रुता मोल ले ली। चीन को जापानी अधिकारियों की अशिष्टता और अंतर्राष्ट्रीय कानून में पश्चिमी प्रावधानों का पालन करने की उनकी हठ से भी चिढ़ हुई। चीन अब जापान के सैनिक तंत्र के प्रति भी संदेह रखने लगा था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.2.3 बोनिन द्वीप समूह- (ओगासावारा)

टोक्यो से 500 मील दक्षिणपूर्व में स्थित यह द्वीप समूह-जापान का हिस्सा रहा लेकिन इसका उपयोग केवल निर्वासित राजनीतिक अपराधियों के लिये किया जाता था। इन द्वीपों पर 1827 में अंग्रेजों ने और 1853 में अमेरिकियों ने दावा किया। लेकिन, उनमें से किसी ने भी दावे पर जोर नहीं दिया और जापान ने आगे बढ़कर जापानियों को इन द्वीपों पर बसा दिया। 1873 में, अमेरिकी विदेश मंत्री, हैमिल्टन फिश, ने यह स्पष्ट किया कि इन द्वीपों को अमेरिकी क्षेत्र के रूप में कभी मान्यता प्राप्त नहीं रही। फिश ने दूसरी पश्चिमी ताकतों

को भी प्रेरित किया कि वे इन द्वीपों को जापानी क्षेत्र के तौर पर मान्यता दे। बोनिन द्वीपों को 1880 में टोक्यो प्रांत में शामिल कर लिया गया।

बोध प्रश्न 1

1) जापान ने र्‍यूक्यू द्वीपों पर अपनी प्रभुसत्ता को कैसे बढ़ाया? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) बोनिन द्वीपों को जापान में कब शामिल किया गया? दस पंक्तियों में समझाइये कि यह कैसे संभव हुआ।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) शिमोदा की संधि के महत्व को समझाइये। पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

18.3 कोरिया का मसला

कोरिया की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह जापान और एशियाई मुख्यभूमि के बीच भूमि सेतु या जमीनी पुल का काम करता है। उन्नीसवीं शताब्दी में कोरिया एक स्वाधीन देश था। उसका अपना राजा था और अपना अलग शासन था। लेकिन क्योंकि कोरिया चीन और जापान दोनों को नजराना या कर देता था, इसलिये ये दोनों ही राष्ट्र कोरिया में विशेष रुचि रखते थे और एक-दूसरे को वहाँ से अलग करना चाहते थे। लेकिन कई शताब्दियों तक कोरिया ने जापान की अपेक्षा चीन से अधिक निकट के संबंध रखे। 1872 के प्रारंभ

में, जापान ने कोरिया के साथ अपने संबंधों को चीन की बराबरी पर रखना चाहा, लेकिन उसे झिड़क दिया गया। इसके बाद कोरिया में रह रहे कई जापानी नागरिकों पर हमला हुआ। जापान की मान-मर्यादा को बरकरार रखने और जापानी दूतों के साथ अपमानजनक व्यवहार के लिये कोरिया से बदला लेने के उद्देश्य से साइगो ताकामोरी कोरिया में एक अभियान दल भेजना चाहता था। साइगो को विश्वास था कि नयी-नयी भर्ती की गयी सेना को अभियान में सफलता मिलेगी। साइगो इस अभियान को जापान के लिये अपनी सीमाएँ बढ़ाने का एक अवसर भी मान कर चल रहा था। बेदखल सैमुराई वर्ग को भी संभावनाओं की खोज के लिये नये क्षेत्र दिये जा सकते थे। साइगो इस बात को अच्छी तरह जानता था कि ऐसे किसी भी अभियान का नतीजा रूस के साथ बैर होगा, लेकिन वह यह जोखिम भी उठाने को तैयार था। साइगो को अपने नेतृत्व में इस अभियान के लिये अनुमोदन तो मिल गया, लेकिन अभियान दल को भेजा नहीं गया। जो इवाकुरा मिशन यूरोप और अमेरिका गया हुआ था, उसने इस निर्णय को रद्द करवा दिया। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि इस मिशन के सदस्यों ने विदेशों में जो कुछ देखा उसके आधार पर उन्हें विश्वास हो गया था कि प्राथमिकता आंतरिक पुनर्निर्माण को दी जानी चाहिए और उस समय कोई भी विदेशी अभियान हाथ में नहीं लिया जाना चाहिये। वे यह भी महसूस करते थे कि जापान युद्ध का आर्थिक बोझ नहीं उठा पायेगा। इसके अलावा, वे यह भी महसूस करते थे कि यदि जापान ने कोरिया में ऐसा कोई साहसिक अभियान भेजा तो, पश्चिमी ताकतें हस्तक्षेप के लिये आयेंगी और यह स्थिति जापान के हित में नहीं होगी। अभियान दल भेजने के निर्णय को रद्द किये जाने पर साइगो और अन्य नेताओं ने त्याग पत्र दे दिये। इसके और भी परिणाम हुए।

अ) सैगो

इवाकुरा पर भी उस समय हमला हुआ जब वह शाही महल के प्रांगण से बाहर आ रहा था। हमलावरों की पहचान उन लोगों के रूप में हुई। (या हमलावर वे ही लोग निकले) जो कोरिया को अभियान दल न भेजे जाने के सरकार के निर्णय से असंतुष्ट थे। सागा में एतो शिम्पे के नेतृत्व में एक खुला विद्रोह हुआ। शिम्पे सरकार से अलग हो चुका था। विद्रोह को तो जल्दी ही दबा दिया गया, लेकिन सैमुराई के असंतोष को देखकर सरकार चौकन्नी हो उठी। वास्तव में, असंतुष्ट सैमुराई वर्ग को आंशिक रूप से संतुष्ट करने के लिये ही एक अभियान दल फारमूसा में जापानी प्रभुत्व कायम करने के लिये भेजा गया। साइगो ताकामोरी के छोटे भाई साइगो त्सुगुमिची ने फारमूसा अभियान बल का गठन और नेतृत्व किया। फारमूसा अभियान के सफलतापूर्ण परिणामों से नेताओं को यह पता चला कि विदेशी अभियान यदि सही समय पर सावधानी से गणना करके और उचित ढंग से सीमित हो तो और उसे पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय फार्मूला में उचित ठहराया जा सके तो वह अनुचित रूप से जोखिम भरा नहीं होता और उससे देश के आंतरिक मामलों को और भी संभाला जा सकता है।" लेकिन कोरिया में कोई अभियान भेजने का प्रयास करने का समय अभी नहीं आया था और बहुत जोखिम भरा भी था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1875 में, जापान ने कोरिया के साथ वही प्रक्रिया अपनायी जो पश्चिमी ताकतों ने अपनाई थी, अर्थात् कोरियाई तट पर नौसैनिक बल का प्रदर्शन करके और राजनयिक स्तर की बातचीत करके संधि की मांग करो। लेकिन उस वर्ष तो इस उद्देश्य में जापान को सफलता नहीं मिली। अगले वर्ष चीन ने कोरिया को यह सलाह दी कि वह जापान के साथ कूटनीतिक (राजनीतिक स्तर की) बातचीत करे। चीन जापान की सैनिक शक्ति के प्रदर्शन के परिणामस्वरूप पहले ही र्‍यूक्यू द्वीपों में जापान को रियायतें देने को सहमत हो चुका था। जापान और कोरिया के बीच 1876 में हुई कांगवा की संधि में जापान के लिये दो बंदरगाह खोल दिये गये और उसे आंशिक क्षेत्रातीत अधिकार दे दिये गये। उसके बदले में जापान ने कोरिया को ऐसे स्वाधीन प्रभुसत्ता-संपन्न राज्य के रूप में मान्यता दे दी जिसके अधिकार जापान के ही समान थे। लेकिन चीन ने इस संधि से कोरिया का चीनी प्रभुत्व से मुक्त होना नहीं माना। न ही स्वयं कोरिया ने यह स्वीकार किया कि वह एक स्वतंत्र विदेशी नीति चला पाने में सक्षम था। यह बात तब सामने आयी जब अमेरिका ने कोरिया के साथ संबंध शुरू करने का प्रयास किया।

1882 में अमेरिका के साथ कोरिया की जो शूफेल्ट संधि हुई उसमें हर तरह से बराबरी की शर्तें रखी गयीं। लेकिन अमेरिका ने स्पष्ट तौर पर कोरिया को चीन की अधीनता वाला राज्य ही बताया। इस तरह चीन के संदर्भ में कोरिया की स्थिति का मुद्दा ज़ापान के संदर्भ में उसकी स्थिति से भिन्न था। कांगवा की संधि संपन्न करते समय जापान का यह इरादा नहीं था।

कोरिया के आंतरिक षड़यंत्रों ने चीन और जापान के साथ उसके संबंधों को और भी जटिल कर दिया। दो परस्पर विरोधी गुट थे :

- कर्मसिन राजा के पिता और प्रतिशासक (रीजेंट), ताएवोनकुन, के नेतृत्व वाला गुट रूढ़िवादी, विदेश-विरोधी और चीन-समर्थक था।
- सन् 1873 के बाद जब राजा व्यस्क हुआ तो उस पर रानी और मिंग परिवार का नियंत्रण हो गया। इस गुट की स्थिति प्रगतिशील, विदेशी समर्थक और जापान समर्थक थी।

जुलाई 1882 में, ताएवोनकुन ने एक जापानी-विरोधी दंगा भड़काया। इस गड़बड़ी में राजा और रानी की हत्या होते-होते बची। लेकिन जापानी मंत्री को अंग्रेजों की मदद से जापान को भागना पड़ा। जापान ने दूतावास की रक्षा करने के लिये कुमुक भेजी। चीन ने भी ऐसा ही किया। ताएवोनकुन को चीनियों ने पकड़ लिया और इस आधार पर उसे ले गये कि उसने चीनी सम्राट के विरुद्ध विद्रोह किया था। जब स्थिति सामान्य हो गयी और राजा-अस्थायी नियंत्रण स्थापित कर सका तो उसने विद्रोह के लिये जापान से क्षमा मांगी और जापान को हुए नुकसान के लिये हरजाना दिया और दूतावास में गार्ड बढ़ाने की अनुमति भी दे दी। वैसे, दो वर्ष बाद, जापान ने हरजाने की बकाया राशि को रद्द कर दिया।

कोरिया की स्थिति बिगड़ी ही, क्योंकि चीन और जापान दोनों की सेनाएँ इस अंदेशे से मोर्चा संभाले हुई थीं कि राजा पर अधिकार को लेकर कभी भी झड़प हो सकती थी। चीन अपनी भी इस अवधारणा को स्वीकार करने को तैयार नहीं था कि कोरिया एक स्वाधीन और प्रभुसत्ता संपन्न राज्य था। दरबार में षड़यंत्र चलते रहे, क्योंकि एक गुट अभी भी चीन के साथ सहयोग कर रहा था।

ब) फुकूजावा युकुची

स) इतो हीरोबूमी

जापानी उदारवादियों ने कोरिया के मसले में अपने आपको लिप्त रखना जारी रखा। इसका आंशिक कारण था कोरिया में फूट रहे प्रगतिशील आंदोलन और इस आंदोलन के नेताओं के साथ सहानुभूति का होना, और आंशिक कारण था यह आशा कि हमें योगदान करके वे जापान में उदारवादी लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उदारवादियों और जापानी सरकार के बीच कोरिया के मुद्दे को लेकर कोई स्पष्ट मतभेद नहीं था। जापानी सरकार उदारवादी-सिद्धांतों के व्यावहारिक रूप में विस्तार में रूचिशील नहीं थी। वह तो इन्हें ऐसी औषध के रूप में देखती थी जो कोरिया में व्याप्त पिछड़ेपन, अस्थायित्व, बैर और अनिश्चितता की स्थितियों के विष को उतार सकती थी, क्योंकि ये स्थितियाँ जापान की सुरक्षा के लिये खतरा हो सकती थीं।

लगभग 1881 से, फुकुजावा युकिची और अन्य जापानी उदारवादी कोरियाई-सुधारकों के निकट संपर्क में थे। उनकी गतिविधियाँ तब तक बढ़ती गयीं और वे सिओल विद्रोह के दौरान चरम सीमा पर पहुँच गईं। 1884 में कोरिया की इंडिपेंडेंस पार्टी के नेताओं, किम ओंक-किउन और पाक युंग हयो, ने जिन्हें जापान के उदारवादियों और जापानी दूतावास का समर्थन प्राप्त था, रातों-रात सरकार का तख्ता पलट दिया। राजा के कई मंत्रियों को मार डाला गया। इसके बदले में कोरियाईयों ने जापानी दूतावास पर कब्जा करने का प्रयास किया जिससे जापानी नागरिकों और मंत्री को सिओल से इंचोन भाग जाना पड़ा। कोरिया के राजा ने चीनी खेमे मे शरण ली और क्रांतिकारी नेता जापान भाग गये। एक बार फिर, जापान ने कोरिया के साथ अलग-अलग बातचीत करके उससे क्षमा मांगने और हरजाना देने के लिए कहा और, क्रांतिकारी नेताओं को रिहा करने से इंकार कर दिया। इस समय, कोरिया में नियुक्त किये गये चीनी रेंज़िडेंट, युआन शी काई, ने राजा से दोस्ती गांठ ली और जापान का विरोध, करने में कोरियाईयों की मदद की। बिगड़ती हालत को केवल जापान और चीन के बीच बातचीत से या युद्ध के जरिये सुधारा जा सकता था। जापान और चीन दोनों ने ही बातचीत के रास्ते को चुना इतो हिरोबुमी ने चीन जाकर वाइसराय ली हुंग चांग, से बात की। इसके परिणामस्वरूप मार्च 1883 में त्येनजिंग में ली-इतो समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस समझौते के मुख्य बिंदु थे :

1) चीन और जापान दोनों चार महीने के अंदर कोरिया से अपनी सेना हटा लेंगे।

2) यदि कोरिया में किसी गड़बड़ी की स्थिति में इनमें से किसी भी देश के लिये वहाँ सेना भेजना आवश्यक हुआ तो, वह दूसरे देश को इसकी सूचना देने के बाद ही ऐसा करेगा।

3) कोरियाई सेना के गठन या प्रशिक्षण में किसी भी चीनी या जापानी की नियुक्ति नहीं की जाएगी।

जापानी सेनाओं की वापसी से तथा इस समझौते के लागू होने से कोरिया को लेकर चीन और जापान के बीच के तनाव समाप्त हो गये। कोरिया पर चीन का प्रभुत्व होगा या जापान का, इस मसले का समाधान तो नहीं हुआ, लेकिन उसे कुछ समय के लिये ताक पर धर दिया गया। उधर कोरिया के भविष्य में रुचि रखने वाला उस स्थिति को गौर से देख रहा था और स्वयं अपना प्रभाव जमाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। रूस ने यह प्रस्ताव रखा कि वह कोरियाई सैनिकों के प्रशिक्षण के लिये अपने अधिकारी देगा और उसके बदले में वोनसन के गर्म पानी के बंदरगाह का इस्तेमाल करेगा। लेकिन चीन और जापान दोनों के विरोध ने इस प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं होने दिया। रूसी इरादों के प्रतिशोध में, इंग्लैंड ने दक्षिण कोरिया के कुछ छोटे द्वीपों पर कब्जा कर लिया लेकिन 1887 में अपनी सेनाएँ वहाँ से हटा लीं। इसलिये, जापान को एक ओर तो कोरिया में चीन के प्रभाव को समाप्त करने में सफलता मिली, और दूसरी ओर वह कोरिया में रूसी घुसपैठ को रोकने में सफल रहा। लेकिन इसके साथ ही, जापान कोरिया को चीन की ओर से एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में मान्यता नहीं दिलवा सका। फिर भी, एक संकट 1893 तक तो टल ही गया।

18.4 असमान संधियों में संशोधन

पश्चिमी ताकतों को वाणिज्यक संबंधों के अधिकार देने वाली संधियों में उन्हें क्षेत्रातीत अधिकार भी दिये गये थे, अर्थात् विदेशी नागरिकों को ये अधिकार दिये गये थे कि वे जापान की धरती पर जापानियों के जीवन और उनकी संपत्ति को प्रभावित करने वाले जो अपराध करेंगे उनके लिये उन पर उनकी ही अदालतों में और उनके ही कानूनों के अनुसार मुकदमा चलेगा। जापान की आयात-निर्यात पर अपनी शुल्क दरें निश्चित करने की स्वतंत्रता भी 5 प्रतिशत के समान सीमा शुल्क निर्धारित होने से समाप्त हो गयी थी। संधियों में संशोधन को लेकर सरकारी और निजी तबकों में बहस मेजी पुनर्स्थापन के तुरंत बाद ही शुरू हो गयी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन इवाकुरा मिशन ने इस बात को महसूस कर लिया था कि नागरिक और आपराधिक संहिताओं में संशोधन करने के बाद ही पश्चिमी ताकतों को क्षेत्रातीत अधिकार समाप्त करने को प्रेरित किया जा सकता था। लेकिन, जनता इसे समाप्त करने के लिये लगातार मांग कर रही थी क्योंकि यह जापान की प्रतिष्ठा के विरुद्ध था। 1873 में ही, तत्कालीन वित्तमंत्री, ओकुमा शिगेनोबु, यह मान चुका था कि सरकार के पास आयात-निर्यात के शुल्क निश्चित करने का स्वतंत्र अधिकार होना चाहिए।

वास्तव में, 1873 में कोरियाई अभियान योजना का विरोध करते समय, ओकुबो तोशीमिची ने स्पष्ट कहा था : "पहली बात है संधियों में संशोधन करना, कोरियाई व्यापार की बात इसके बाद आती है।" उसका मानना था कि यदि संधियों में संशोधन नहीं किया गया तो, इंगलैंड और फ्रांस आंतरिक असुरक्षित स्थिति का बहाना लेकर सेनाएँ भेज देंगे। जापान ने लगातार कई वर्षों तक बातचीत के जरिये संधियों में संशोधन का प्रयास किया, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। वैसे उसे विदेशी ताकतों के साथ बातचीत करने के ढंग का अनुभव हो गया। 1880 में, विदेश मंत्री इनोवे काओरू, ने क्षेत्रातीत अधिकारों और शुल्क-दरों के आंशिक संशोधन का प्रस्ताव तैयार किया और उसे विदेशी ताकतों के आगे पेश किया। इसका कोई अनुकूल उत्तर नहीं मिला, लेकिन टोक्यो स्थित डच मंत्री ने इस गोपनीय प्रस्ताव को "जापान हेरल्ड" अखबार को दिया, और जनता में इसकी व्यापक सरकार विरोधी प्रतिक्रिया हुई। अंग्रेजी, विदेश मंत्री ने लंदन स्थित जापानी मंत्री, मोरी आरीनोरी, से संपर्क किया और संशोधित-प्रस्तावों को बातचीत के आधार के रूप में स्वीकार करने से इंकार कर दिया। वास्तव में बाहरी देशों में इंग्लैंड ने सबसे कठोर रवैया अपनाया। 1884 में, अंग्रेजी सरकार ने स्पष्ट कह दिया कि संधियों में संशोधन पश्चिमी कानूनी संहिताएँ अपनाने पर आश्रित था। जापान पहले ही संशोधन की प्रक्रिया को तेज करने के प्रयास कर चुका था। एक फ्रांसिसी सलाहकार गुस्ताव बोइसीनादे, की सहायता दंड संहिता और आपराधिक प्रक्रिया-संहिता में संशोधन करने के लिये ली गयी। जर्मन कानून विशेषज्ञ, हर्मन रेसलर, की सहायता से एक वाणिज्य संहिता तैयार की गयी। अमेरिका इन प्रयासों से

प्रभावित हुआ और असमान संधियों में संशोधन के प्रति उसका दृष्टिकोण अनुकूल था, लेकिन दूसरी सरकारों का दावा था कि प्रयास अभी भी अपर्याप्त थे।

पश्चिमी ताकतों के साथ असमान संधियों को समाप्त करने के लिये बातचीत की शुरुआत मई 1, 1886 को हुई। इस बातचीत का जो निष्कर्ष निकला उसकी सामान्य रूपरेखा इस तरह थी :

1) जापान न्यायिक अधिकार मनवाने के लिये संस्थाओं का गठन करेगा। वह यूरोपीय सिद्धांतों के अनुसार एक अपराध संहिता, एक वाणिज्य संहिता और एक वाणिज्यिक प्रक्रिया संहिता भी बनायेगा।

2) विदेशियों से संबंधित दीवानी मुकदमों में अधिकांश न्यायाधीश विदेशी होंगे।

3) अपराधिक मामलों में प्राथमिक जाँच-पड़ताल विदेशी न्यायाधीश करेंगे।

4) जिस विदेशी को किसी जापानी अदालत से मृत्यु दंड मिलेगा, उसे उसके राष्ट्र को सौंप दिया जायेगा, और उस पर उस राष्ट्र के कानूनों के अनुसार मुकदमा चलेगा।

वास्तव में, इनका अर्थ बुनियादी तौर पर यह निकलता था कि क्षेत्रातीत अधिकार वैसे ही बने रहेंगे। संधि संशोधन का मसौदा जैसे ही जनता को पता चल गया, सरकारी तबकों और आम जनता दोनों में इसका विरोध हुआ। विदेशी और जापानी-न्यायाधीशों वाली मिश्रित अदालतों की अवधारणा कतई स्वीकार नहीं की गयी। यह महसूस किया गया कि विदेशियों को भूमि-स्वामित्व और उत्खनन के अधिकार देने से जापान के प्राकृतिक संसाधनों पर विदेशियों का कब्जा हो जायेगा। जापान के किसी भी हिस्से में विदेशियों के बिना किसी पाबंदी के रहने और उनके पूरे जापान में यात्रा करने की स्वतंत्रता का भी विरोध हुआ। स्वयं सरकार के अंदर ही, एक विचार यह था कि संधि में संशोधन को 1890 में राष्ट्रीय विधान सभा की स्थापना के बाद तक स्थगित रखना बेहतर होगा। दूसरों का सोचना था कि संधि संशोधन को स्थगित करने के बजाए रद्द ही कर दिया जाना चाहिये। यहाँ तक कि फ्रांसिसी सलाहकार, बोइसीनादे, ने भी संधि संशोधन विधेयक का विरोध किया। उसका कहना था कि पहले की संधियों में इस तरह संशोधन करने की अपेक्षा उन्हें बरकरार रखना बेहतर होगा। उसका मानना था कि क्योंकि इस विधेयक में विदेशियों को जापानियों की तुलना में बेहतर सुरक्षा दी गयी थी, इसलिये इसे लागू करने से जनता का असंतोष गंभीर गड़बड़ी का रूप लेकर भड़क सकता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरकार के अंदर और जनता में भी, इस विधेयक का इतना जबरदस्त विरोध था कि अंत में, 20 जुलाई 1887, को सरकार ने विदेशी मंत्रियों को संधि संशोधन समझौते को अनिश्चित काल के लिये स्थगित करने की सूचना भेज दी। इस मुद्दे का एक और परिणाम यह हुआ कि विदेश मंत्री इनोवे को त्यागपत्र देना पड़ा।

सरकार ने प्रस्तावों पर बातचीत जारी रखी और उन लोगों के विरुद्ध कड़े-कदम भी उठाये जो परेशानी खड़ी करके सरकार के लिये संधि पर बातचीत करने में अरुचिकर स्थितियाँ पैदा कर रहे थे। फिर भी 1889 में, तत्कालीन विदेश मंत्री, ओकुमा शिगेनोबू, पर उस समय बम फेंका गया जब वह एक बैठक से लौट रहा था। इस हमले में शिगेनोबू की एक टांग जाती रही। इससे मसले का हल कुछ और वर्षों के लिये स्थगित हो गया। फिर भी, विधान सभा में सरकार की इस मामले का हल न ढूंढ पाने के लिये तीखी आलोचना हुई। प्रधानमंत्री इतो हिरोबूमी ने विधान सभा के इस रवैये का बहाना लेकर उसे भंग कर दिया। सरकार ने कानून और व्यवस्था भंग करने वालों के विरुद्ध सख्त कदम उठाये, लेकिन, जनमत ने सरकार को यह अहसास करवा दिया कि उसे असमान संधियों की किश्तवार समाप्ति को नहीं, बल्कि उनकी पूर्ण समाप्ति को अपना लक्ष्य बनाना होगा। अंत में, 1893 में इस मुद्दे पर इंग्लैंड के साथ बातचीत में कुछ प्रगति हुई 1894 में, विदेशी मंत्री, आओकी शुजो, ने लंदन पहुंचकर 16 जुलाई, 1894 को एक संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि में, नयी संहिताओं के लागू होने की दिशा में, क्षेत्रातीत अधिकारों को समाप्त कर दिया गया। इस तरह विदेशी बस्तियों को मिले विशेष अधिकारों का खात्मा हो गया। इन परिवर्तनों को 1899 से प्रभावी होना था। लेकिन, शुल्क दरों का नियंत्रण और बारह वर्षों के लिये ज्यों का त्यों रहना था। इसका अर्थ यह था कि जापान को शुल्क दरों पर पूरी स्वायत्तता फिर 1911 में ही हासिल हो पायी। अन्य ताकतों के साथ भी बाद में ऐसी ही संधियाँ हुई। इस प्रक्रिया से जापान को पश्चिमी ताकतों के साथ समानता हासिल करने के उसके लक्ष्य की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ने में मदद मिली।

बोध प्रश्न 2

1) कांगवा की संधि के पीछे क्या कारण थे? इसके क्या परिणाम हुए? 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) ली-इतो समझौता क्या था 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-से सही (✓) हैं, कौन-से गलत (✗)? निशान लगायें।

i) कांगवा की संधि में जापान के लिये दो बंदरगाहों को खोल दिया गया।

ii) कई शताब्दियों तक कोरिया ने जापान की अपेक्षा चीन के साथ अधिक निकट के संबंध रखे।

iii) 1882 में, ताएवोनकुन ने एक चीन-विरोधी दंगा भड़काया।

18.5 सारांश

इस दौर में विदेश नीति के क्षेत्र में चीन की मुख्य उपलब्धि क्षेत्रातीत अधिकारों को रद्द करना रहा। जापानी प्रभुसत्ता पर लगे प्रतिबंध आंशिक तौर पर हटा लिये गये, लेकिन

उसे शुल्क-दरों की स्वायत्तता 1911 में ही मिल सकी। इस मुद्दे से यह बात सामने आती है कि बाहरी राष्ट्रों के साथ संबंधों ने जापान को पश्चिमी संस्थाओं के अनुरूप अपना आधुनिकीकरण करने की तत्परता और प्रेरणा प्रदान की। विदेशियों को दिये गये विशेष अधिकारों के विरोध में जनता की अप्रसन्नता के खुले प्रदर्शन ने, बातचीतों में उन विशेष अधिकारों की पूर्ण समाप्ति की मांग ने सरकार के हाथ मजबूत किये लेकिन इसके बदले में जनता के साथ सरकार की ओर से सख्ती की गयी। सरकारी नेताओं ने विदेशी ताकतों के साथ द्विपक्षीय और बहुपक्षीय बातचीत की प्रक्रियाओं में अनुभव प्राप्त किया।

जापान को रूस के साथ अपनी सीमाएँ खींचने और र्‍युक्यु और बोनिन द्वीपसमूहों पर अपने अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति दिलवाने में भी सफलता मिली। इस संदर्भ में जापान के दावों को बढ़ावा देने में अमेरिका की सलाह और मदद उल्लेखनीय है। लेकिन र्‍युक्यु द्वीपों के मसले ने जापान और चीन के बीच अविश्वास के बीज बो दिये। इसमें चीन की हार हुई। इसका कारण था जापान का अपनी नवप्राप्त सैनिक ताकत का इस्तेमाल इन द्वीपों पर वास्तविक नियंत्रण के लिये करना, और उसका अपने दावों के समर्थन में पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय कानून का सहारा लेना। लेकिन चीन कोरिया पर अपने अधिकारों को इतनी आसानी से छोड़ने वाला नहीं था। चीन के प्रभुत्व को समाप्त करने की गरज से कोरिया को एक स्वाधीन राष्ट्र घोषित करने के जापान के प्रयासों को सफलता नहीं मिली। कोरिया को लेकर चीन और जापान के बीच झगड़े को 1885 के ली-इतो समझौते के माध्यम से बिना युद्ध के निपटा दिया गया। लेकिन, कोरिया पर अपने-अपने पूर्ण अधिकार के लिये इन दोनों राष्ट्रों ने अपने दावे को कुछ ही समय के लिये छोड़ा था। जैसा कि इकाई 19 में चर्चा की गयी, जापान और चीन के बीच इस मुद्दे पर वास्तव में एक युद्ध हुआ। यह मुद्दा द्विपक्षीय नहीं रह सका, बल्कि इसमें पश्चिमी ताकतों का हस्तक्षेप हुआ जो इस क्षेत्र में जापान के, उसकी सैनिक ताकत के कारण, दावों के प्रति संदेह की दृष्टि रखते थे। जापान ने बहुत जल्दी वास्तविक राजनीति की रोशनी में अपनी विदेश नीतियों को चलाना सीख लिया। यह बात केवल उसकी कोरियाई नीति से ही नहीं, बल्कि सामान्य रूप से भी स्पष्ट हो जाती है। अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संबंध, आंतरिक राजनीतिक मुद्दे और घरेलू अर्थव्यवस्था पर सावधानीपूर्वक चिंतन प्रत्येक कार्यवाही से पहले अनिवार्य थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक के आते-आते जापान को यह विश्वास हो चला था कि एक समान स्तर पाने वाले प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र के रूप में पश्चिमी ताकतों से मान्यता पाने का उसका लक्ष्य चीन के साथ चलकर नहीं पाया जा सकता था। बल्कि चीन के साथ निकट का साथ रखने से पश्चिनी ताकतें उसे भी उन दूसरे एशियाई राष्ट्रों की श्रेणी में डाल देंगी जो पिछड़े हुए थे और अपने आपको आधुनिक बनाने के लिए सकारात्मक कदम उठाने को तैयार नहीं थे। इसलिये, उसे अपने आपको एशिया से "अलग करना" पड़ा ताकि उसके आधुनिकीकरण के प्रयासों को मान्यता मिले।

18.6 शब्दावली

मेजी : जापान के सम्राट मुत्सुहितो का शासकीय नाम

क्षेत्रातीत अधिकार : उस क्षेत्र के स्थानीय कानून का लागू न होना।

प्रतिशासक : वास्तविक राजा के बहुत कमसीन होने या अक्षय होने की स्थिति में राज्य का शासन चलने के लिये नियुक्त व्यक्ति।

ताएल : जापानी मुद्रा।

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) देखिये उपभाग 18.2.2

2) देखिये उपभाग 18.2.3

3) देखिये उपभाग 18.2.1

बोध प्रश्न 2

1) देखिये भाग 18.4

2) देखिये भाग 18.4

3) i) ✓ ii) ✓ iii) ✗

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 19 मेजी जापान II

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 चीन-जापान युद्ध
19.3 सन् 1884 के बाद चीन में जापान की गतिविधियाँ
  19.3.1 खुला द्वार नीति
  19.3.2 रियायतों की मांग
19.4 आंग्ल-जापानी गठबंधन
19.5 रूस-जापान युद्ध
19.6 रूस-जापान युद्ध के परिणाम
  19.6.1 कोरिया का समामेलन
  19.6.2 मंचूरिया में जापान का प्रभाव-क्षेत्र
19.7 सारांश
19.8 शब्दावली
19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इन बातों की जानकारी होगी :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- जापान के 1894-1912 के बीच विश्व की रंगभूमि में एक ताकत के रूप में मान्यता प्राप्त करने के प्रयास,
- चीन-जापान युद्ध के कारण, दिशा और प्रभाव,
- आंग्ल-जापानी गठबंधन के जनक कारक,
- रूस-जापान युद्ध के कारण और प्रभाव,
- वे परिस्थितियाँ जिनकी परिणति जापान द्वारा कोरिया के समामेलन में हुई, और
- मंचूरिया में जापान का प्रभाव-क्षेत्र

19.1 प्रस्तावना

सन् 1894 का वर्ष जापान के विदेशों के साथ संबंधों की दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण वर्ष था। यहाँ से क्षेत्रातीतता का अंत हुआ और सैनिक दृष्टि से चीन से श्रेष्ठ शक्ति के रूप में जापान का उदय हुआ। पश्चिमी ताकतें चौकन्नी हो उठीं और जापान को लेकर उनकी शंकाएँ जापान और चीन के बीच समझौते में हस्तक्षेप के रूप में व्यक्त हुईं। जापान ने यह सबक सीखा कि वह अपने लोगों या उपलब्धियों पर तब तक निर्भर नहीं कर सकता जब तक उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति न प्राप्त हो। हम यह पढ़ेंगे कि रूस को जापान और इंग्लैंड दोनों ने किस प्रकार एक खतरा समझा और इस कारण जापान और इंग्लैंड का गठबंधन हुआ। मेजी की अवधि की समाप्ति पर जापान ने क्षेत्रों पर अपने कब्जे में वृद्धि कर ली थी और वह एशियाई परिदृश्य में एक स्वाधीन साम्राज्यवादी ताकत के रूप में उभरा था। इस इकाई में 1894-1912 के बीच जापान की विदेशी नीति और विदेशों के साथ उसके संबंधों के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है।

19.2 चीन-जापान युद्ध

सन् 1885 में त्येनजिंग में हुआ ली-इतो समझौता कोरिया को लेकर जापान और चीन के

बीच होने वाली मात्र एक अस्थायी संधि थी। सिओल में चीनी रेजीडेंट, युआन शी-काई, ने कोरिया पर चीन के साथ व्यापार बढ़ाने के लिए प्रभाव डाला। इसमें कोई संदेह नहीं कि कोरियाई आयात में मुख्यतौर पर पश्चिम के निर्मित सामान आते थे जिनका फिर से निर्यात चीनी सौदागर संधिगत बंदरगाहों से कर देते थे। लेकिन वे भी 1885 के कुल 19 प्रतिशत कोरियाई आयात से 1892 में बढ़ कर 45 प्रतिशत हो गये थे। इस तरह जापान और चीन की प्रतिद्वंद्विता अब आधुनिक कपड़ा उद्योग विकसित करने में जापान की सफलता के बाद व्यापार के क्षेत्र तक बढ़ गयी। जापान कोरिया को वस्त्रों का निर्यात धीरे-धीरे बढ़ा रहा था। 1892 में इन्होंने काफी हद तक कोरिया को पुन: निर्यात हाने वाले पश्चिमी उत्पादनों का स्थान ले लिया था, और सूती वस्त्रों के निर्माताओं ने सरकार से आग्रह किया कि वह उन्हें कोरिया में चीन की तुलना में अपनी प्रतिद्वंद्विता बनाये रखने में मदद करे। लेकिन, 1893 में भी कोरिया को जापान के निर्यात केवल 17 लाख येन की कीमत के थे, जबकि जापान के कुल निर्यातों का औसत आठ करोड़ 54 लाख येन था। इसलिए आर्थिक हित शत्रुता के लिए पर्याप्त कारण नहीं थे। रूसी खतरे के प्रति सजगता का आधार 1885 से जापान में रह रहे जर्मन सलाहकारों की सिखायी हुई प्रतिरक्षा की नयी अवधारणा थी। जापानी रणनीतिज्ञों ने "प्रभुसत्ता की नीति" के बारे में बात करना शुरू कर दिया जिसमें जापानी द्वीप आते थे। इन रणनीतिज्ञों में विशेष भूमिका जनरल स्टाफ के अध्यक्ष और 1890 में प्रधानमंत्री रहे यामागाता आरितोमो की रही। यामागाता का कहना था कि इसके अतिरिक्त जापान को "लाभ की नीति" भी अपनानी चाहिए जिसमें कोरिया आता था। उसका मानना था कि कोरिया की स्वाधीनता की गारंटी देने के लिए किए जाने वाले उपाय जापान की "लाभ की नीति" के लिए निर्णायक थे। 1887 में ही जनरल स्टाफ के एक विवेचन दस्तावेज में आकस्मिक (परिस्थिति से संबद्ध) योजना भी बना ली गयी थी कि कहीं कोई पश्चिमी ताकत आक्रमण ही कर दे। इसमें यह कहा गया था कि ऐसी स्थिति में जापान की जवाबी कार्यवाही पीकिंग पर उत्तर से चढ़ाई और दूसरा शंघाई पर हमला हो सकता था। शांति समझौते में मांचू वंश के राज वाले स्वाधीन मंचूरिया का निर्माण, अधिकांश उत्तरी चीन और ताईवान का जापान को हस्तांतरण और दक्षिणी चीन में एक जापानी संरक्षित राज्य की स्थापना को शामिल किया जाना चाहिए। इस दौरान इस दस्तावेज से यह संकेत मिलता है कि जापानी सेना की महत्वकांक्षाएँ किस किस्म की थीं और कैसे वे ये मानते थे कि चीन और कोरिया में शांति और स्वाधीनता को दूसरी पश्चिमी ताकतों के किसी हस्तक्षेप के बिना बनाये रखा जाना चाहिए जिससे जापान की स्वाधीनता बरकरार रखी जा सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हथियारबंद विद्रोहियों तंगाकों को कोरिया के न दबा पाने और उनके चीन से सैनिक सहायता मांगने के कारण 1894 की गर्मियों में संकट की स्थिति बन गयी। 1885 के समझौते के तहत, जापान ने तुरंत अपनी सेनाएँ कोरिया में भेज दीं। लेकिन सामरिक कार्यवाहियों का सहारा लेने से पहले एक और कदम उठाया गया, क्योंकि जापानी विदेशी मंत्री मुत्सु मनोमित्सु ने यह महसूस कर लिया था कि पश्चिमी ताकतें इस बात को स्वीकार नहीं करेंगी कि इसके लिए कोई पर्याप्त बहाना मौजूद था। इसलिए, कोरिया में सुधार लागू करने के लिए एक संयुक्त चीनी-जापानी कार्यवाही के प्रस्तावों की रूपरेखा तैयार की गयी, क्योंकि यह माना गया कि कोरिया में अस्थिरता की स्थिति बनाने का कारण कोरियाई व्यवस्था में "गहरी जमी बुराईयाँ" थीं। जापान भी यह चाहता था कि कोरिया में चीनियों को जो विशेषाधिकार मिले हुए थे वे जापानियों को भी दिए जाएँ। प्रतिभावान युवा कोरियाईयों को जापान में अध्ययन के लिए भेजा जाए जिससे कि वे "कोरिया में सभ्यता लेकर आयें।" इन प्रस्तावों को माना नहीं गया। इसके बाद 1894 में सामारिक कार्यवाहियाँ हुईं।

क्या जापान ने युद्ध के लिए इन सुधारों को बहाना बनाया? यह कहना सही नहीं हो सकता। जापान वास्तव में यह चाहता था कि चीन का अनुसरण करने के बजाय कोरिया जापान के आधुनिकीकरण की मिसाल का अनुसरण करे। जब जापान ने 1 अगस्त, 1894 को चीन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की, उस समय तक जापानी सेनाएँ पहले ही सिओल में और उसके आसपास जम चुकी थीं। 16 सितम्बर, 1894 तक प्योंगयांग पर कब्जा किया जा चुका था और अगले दिन नौसैनिक जीत में उन्हें येलो सागर पर कब्जा मिल गया। अक्तूबर में, जापानी सेनाएँ यालू नदी पार करके मंचूरिया में पहुँचीं और लियाओतुंग प्रायद्वीप में भी उतर गयीं। इस तरह जापान का युद्ध के छः महीनों के भीतर पूरे कोरिया और समृद्ध लियाओतुंग प्रायद्वीप पर कब्जा हो गया। उस समय, जापान शांति के लिए

बातचीत को तैयार था। शिमोनोसेकी की संधि 17 अप्रैल, 1895 को संपन्न हुई। उस संधि की शर्तें निम्न थीं :

1) चीन कोरिया की पूर्ण स्वाधीनता और स्वायत्तता को निश्चित मान्यता दे।
2) फारमूसा, उससे लगे हुए पेस्काडोर द्वीपों और लियाओतुंग प्रायद्वीप का स्थायी अधिकार और प्रभुसत्ता जापान को दी जाएगी।
3) चीन जापान को युद्ध में हुए खर्च के एवज़ में 20 करोड़ ताएल (35 करोड़ येन) हरजाने के रूप में देगा।
4) चार अतिरिक्त चीनी शहरों को वाणिज्यिक और औद्योगिक उद्देश्य के लिए खोला जाएगा।
5) शांतुंग प्रायद्वीप के उत्तरी तट पर स्थित वेहाइवे बंदरगाह जापानी सैनिकों के कब्जे में तब तक बने रहेंगे जब तक हरजाने की राशि की अदायगी नहीं हो जाती और चीन और जापान के बीच वाणिज्यिक संधि नहीं हो जाती।

ये शर्तें जापान के पक्ष में थीं। कोरिया से चीन के हटने के बाद, जापान स्वतंत्र होकर कोरिया पर राज्य कर सकता था। लेकिन, यह तुरंत ही संभव नहीं हुआ, क्योंकि जापान को एक और प्रतिद्वंद्वी, रूस से भी टक्कर लेनी थी। इस विषय में हम बाद में पढ़ेंगे। जीत की और उपलब्धियों का लाभ भी चीन की ओर से रूस, जर्मनी और फ्रांस के हस्तक्षेप करने के कारण जापान को नहीं मिल पाया। इसे तिहरे हस्तक्षेप के नाम से जाना जाता है। रूस को एक उष्ण जलीय बंदरगाह की सख्त आवश्यकता थी, इसलिए वह लियाओतुंग प्रायद्वीप को अपने प्रभाव क्षेत्र के रूप में देखने लगा। चीन-जापान युद्ध ने कोरिया में उष्ण जलीय बंदरगाह के उसके अवसरों को क्षीण कर दिया था। फ्रांस और जर्मनी भी रूस के इस दृष्टिकोण से तुरंत सहमत हो गये कि पोर्ट आर्थर और लियाओतुंग प्रायद्वीप का जापान के हाथ में होना सुदूर पूर्व में शांति के लिए खतरा था। इंग्लैंड रूस के आगे बढ़ने को लेकर भयभीत था और वह कोरिया और दक्षिण मंचूरिया में जापान के लाभकारी स्थितियों में होने के कहीं अधिक पक्ष में था। इसलिए उसने हस्तक्षेप में रूस का साथ देने से इनकार कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान को यह तो अपेक्षा थी कि यूरोपीय ताकतों की ओर से कुछ प्रतिकूल प्रतिक्रयाएँ होंगी, लेकिन जब ये प्रतिक्रियाएँ सामने आयीं तो उसे इन्हें स्वीकार करने में कठिनाई हुई। लेकिन, अंततः जापान को लियाओतुंग प्रायद्वीप छोड़ना ही पड़ा, लेकिन उसे तीन करोड़ ताएल की आंतरिक राशि हरजाने के तौर पर मिल गयी। जापान के अंतर्राष्ट्रीय दबाव के आगे झुक जाने के कारण न केवल सरकार की आलोचना हुई बल्कि आक्रामक विदेश नीति का समर्थन करने वाले एक हानिकारक राष्ट्रवाद को भी हवा मिली। हरजाने में मिली राशि का उपयोग करके सेना की डिवीज़नें 7 से 13 कर ली गयीं और नौसेना की शक्ति भी तीन गुना कर ली गयी। रूस ने भी चीन से चीनी पूर्वी रेलपथ के निर्माण का अधिकार ले लिया। यह रेलपथ व्लादीवॉसतौक को साइबेरिया-पार पथ से जोड़ता था। इसके अतिरिक्त रूस ने दक्षिण में जाकर लियाओतुंग प्रायद्वीप (पोर्ट आर्थर) में समाप्त होने वाली एक रेलपथ शाखा के निर्माण का भी अधिकार हासिल किया। इंग्लैंड ने रूस के पोर्ट-आर्थर पर कब्जे को संतुलित करते हुए वेहाइवे को अपने कब्जे में ले लिया जो पहले जापानी सैनिकों के कब्जे में था। जर्मनी ने शांतुंग में विशेष अधिकार ले लिए। फ्रांस को भी अधिकार मिले। ये रियायतें इन ताकतों को विशेष रूप से दी गयीं और चीन उसी क्षेत्र में अन्य ताकतों को इसके बराबर विशेषाधिकार नहीं दे पाया।

19.3 सन् 1894 के बाद चीन में जापान की गतिविधियाँ

इस भाग में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि चीन में अधिक से अधिक प्रभाव जमाने के लिए जापान के लिए कैसे क्या किया।

19.3.1 खुला द्वार नीति

इस तरह एकाधिकारी निवेश अधिकार ऊपर बताये गये विभिन्न प्रभाव क्षेत्रों में जमाये जा चुके थे। लेकिन अमेरिका ने यह प्रयास किया कि ये अधिकार व्यापार के क्षेत्र तक न बढ़ने

पायें। विदेशमंत्री जॉन हे, ने 1899 में खुला द्वार नीति की घोषणा की जिसे अन्य ताकतों ने स्वीकार किया। जापान को चीन में प्रभाव क्षेत्र हासिल करने में सफलता नहीं मिली, लेकिन भविष्य में रूस को चुनौती देने के लिए अपने आपकों तैयार करने की दृष्टि से, उसे इंग्लैंड और अमेरिका के समर्थन की आवश्यकता थी। इसलिए जापान ने भी खुला द्वार नीति स्वीकार कर लेने का फैसला किया।

19.3.2 रियायतों की माँग

चीन-जापान युद्ध के बाद ताईवान पर जो कब्जा किया गया, उसे अनेक प्रभावशाली जापानियों ने, विशेषतौर पर चीन के फ्यूकीएन प्रांत से होते हुए, "दक्षिण की ओर बढ़ने" का एक रास्ता माना। चीन में रियायतो के लिए हुई भागमभाग में जापान ने फ्यूकीएन में विशेष अधिकार हासिल करने का प्रयास किया, लेकिन उसे 1898 में चीन से बस यह आश्वासन मिला कि फ्यूकीएन को किसी और ताकत को नहीं दिया जाएगा। चीन फ्यूकीएन में जापान को रेलपथ की कोई रियायत देने पर भी सहमत नहीं हुआ। 1900 के बॉक्सर विद्रोह में जापान को फ्यूकीएन में चीन से रियायतें हासिल करने का एक और अवसर दिखायी दिया। फिर भी, जापान ने अपने आपको रोके रखा, क्योंकि उसे यह भय था कि इसके जो परिणाम होंगे उससे इंग्लैंड के साथ उसके संबंधों पर आँच आएगी और हो सकता है रूस से भी उसका झगड़ा हो जाए। बॉक्सर विद्रोह में, और उसके बाद चीन की मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा, में, जापान ने कुल मित्र सेनाओं की आधी सेना भेजी और मित्र राष्ट्रों की विजय में योगदान किया। अंतिम समझौते के एक अंग के रूप में, चीन ने 45 करोड़ ताएल (33.4 करोड डालर) का हरजाना देने की पेशकश की, जिसमें जापान को भी हिस्सा मिला। राजनायिक प्रतिनिधियों और उनके नागरिकों की सुरक्षा की गारंटी के तौर पर जिन विशेष विशेषाधिकारों पर सहमति हुई, उसका लाभ जापान को भी मिला। चीन अपने आंतरिक विघटन और विद्रोहियों को दबा पाने में असमर्थ रहने के कारण विदेशी ताकतों की दया पर निर्भर हो गया, जिनमें जापान भी था। जापान को पश्चिमी ताकतों की तरह जो विशेषाधिकार हासिल थे उनके आधार पर चीन में उसकी स्थिति दूसरी पश्चिमी ताकतों के बराबर थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.4 आंग्ल-जापानी गठबंधन

मंचूरिया में रूसी रेलपथ प्रतिष्ठानों पर बॉक्सर विद्रोहियों के हमले के समय, रूस ने अपने हितों की रक्षा के लिए बड़ी तादाद में सैनिक भेजे। यह खतरे का संकेत था, क्योंकि रूस मंचूरिया तक सीमित रहने वाला नहीं था। इंग्लैंड के साथ जापान का गठबंधन होने से रूस को चेतावनी मिल सकती थी। इस गठबंधन से होने वाले वाणिज्यिक लाभ थे : अंग्रेजी उपनिवेशों का जापानी व्यापार के लिए खुल जाना, जापान की वाणिज्यिक साख बढ़ना और इंग्लैंड के वित्तीय संसाधनों तक पहुँच होना। नेताओं में से, इतो हिरोबूमी का यह विश्वास था कि कोरिया में जापान के हितों की पूर्ति के लिए इंग्लैंड के बजाय रूस के साथ गठबंधन करना कहीं अच्छा होगा, लेकिन, इतो सरकार का जून 1901 में पतन हो गया और नया प्रधानमंत्री कत्सुरातारो बना जो यामागाता आरितोमो का आश्रित था। सत्ता में आने के बाद कत्सुरा ने अपने मंत्रिमंडल के लिए एक व्यापक राजनीतिक कार्यक्रम तैयार किया। इस कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएँ थीं :

1) जापान की वित्तीय बुनियाद को मजबूत करना और औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रगति सुनिश्चित करना।

2) किसी एक यूरोपीय देश के साथ समझौता करना, क्योंकि जापान के लिए अकेले अपने बूते पर सुदूर पूर्व की स्थिति की देखभाल करना कठिन था।

3) कोरिया को जापान का संरक्षित क्षेत्र बनाना।

4) नौसेना को 80,000 टन के स्तर तक बढ़ाना।

जापानी राजनेताओं में दो वर्ग थे : एक तो वे जो इंग्लैंड के साथ मित्रता के पक्ष में थे, और दूसरे वे जो रूस के साथ मित्रता के पक्ष में थे। ये वर्ग कट्टर नहीं थे, अर्थात् जो लोग इंग्लैंड के समर्थक थे वे आवश्यक नहीं था कि रूस के शत्रु ही हों, और यही स्थिति दूसरे वर्ग की भी थी।

सेना और नौसेना परंपरा से रूस को एक स्वाभाविक शत्रु मानती आयी थी और वे इंग्लैंड के साथ गठबंधन के पक्ष में थी। सेना नीति को प्रभावित कर सकने की स्थिति में थी। लोगों ने जो संगठन बनाये, उनमें से जन गठबंधन संगठन (कोकुमिन दोमे काई) रूस के प्रति समझौतावादी कूटनीति के विरुद्ध था क्योंकि वह कोरिया और चीन में जापान की शक्ति जमाने के पक्ष में था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, **दोमे काई** ने इंग्लैंड के साथ मित्रता का समर्थन किया। फुकुजावा युकिची या कातो तकाकी जैसे मत नेताओं ने अखबारों में इस गठबंधन का समर्थन करने वाले लेखों का प्रायोजन किया। लेकिन गठबंधन के लिए प्रभावशाली कदम सरकार को ही उठाने थे।

सितम्बर, 1901 से चली आ रही कत्सुरा सरकार के विदेशमंत्री, कोमिरा जुतारो, ने ही पूरे मनोयोग से गठबंधन की बातचीतों को आगे बढ़ाया। गठबंधन के प्रस्तावों को साकार करने की दिशा में मेहनत करने वाला एक और व्यक्ति हयाशी तदासू था, जो लंदन स्थित दूतावास में 1900 से 1906 तक मंत्री था। उसने एक "प्रेरक बिचौलिये" की भूमिका निभायी। सामान्य तौर पर, विदेश मंत्रालय के अधिकारी भी रूस-विरोधी थे और गठबंधन के पक्ष में थे।

नवम्बर, 1901 में ब्रिटेन ने उस समझौते का पाठ प्रस्तुत किया जिसमें गठबंधन का मूल विचार मौजूद था। लेकिन, जापान इस विषय में निश्चित नहीं था कि रूस इस तरह के गठबंधन को किस रूप में लेगा। फिर भी, जापानी उस दिशा में ही आगे बढ़ना चाहते थे जो उनके अपने देश के लिए सबसे अनुकूल हो। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रूस समर्थक वर्ग के सबसे प्रमुख सदस्य यामागाता आरितोमो और कत्सुरातारो थे। कत्सुरा और यामागाता यह मानते थे कि रूस की ओर से मित्रता का प्रस्ताव अस्थायी होगा, क्योंकि वह मंचूरिया में आगे बढ़ने और कोरिया में अपनी स्थिति को बेहतर करने की ठाने हुए था, लेकिन इंग्लैंड के लिए दीर्घकालीन हित की बात यह थी कि वह जापान के साथ मित्रता बनाये रखे। दूसरी ओर, इतो का मानना था कि इंग्लैंड के साथ संपर्क से जापान को बहुत कम लाभ मिलेगा। इतो 18 सितम्बर, 1901 को अमेरिका, यूरोप और रूस की विदेश यात्रा पर निकला। लेकिन, जापान छोड़ने से पहले उसने यह स्पष्ट कर दिया कि वह रूस-जापान के बीच समझ की संभावनाओं को टटोलना चाहता था। इतो के नेतृत्व वाला वर्ग यह मानता था कि इंग्लैंड के साथ गठबंधन होने से रूस, फ्रांस और जर्मनी जापान के विरुद्ध एकजुट हो सकते थे, जैसा कि तिहरे हस्तक्षेप के मामले में हुआ था। दूसरी ओर इंग्लैंड समर्थक वर्ग का मानना था कि रूस के साथ गठबंधन से क्षेत्र में केवल अस्थायी शांति आयेगी, जापान को बहुत कम लाभ मिलेंगे, यह जापान के दूरगामी हितों के विरुद्ध होगा क्योंकि इससे चीन की साख नष्ट होगी, और जापान को इंग्लैंड के बराबर नौसैनिक शक्ति रखने के लिए बाध्य होना होगा। दूसरे शब्दों में, यह वर्ग रूस के साथ गठबंधन करने से इंग्लैंड के साथ संबंधों पर पड़ने वाले प्रभावों से डरता था। इंग्लैंड के साथ संधि करने से जापान रूस पर दबाव डाल सकता था और उससे उसके हितों की पूर्ति भी होती। इतो को अपनी विदेश यात्रा के दौरान संधि के प्रारूप की सूचना मिली, लेकिन उसका अभी भी यही मानना था कि (1) जब तक इस बात का पता नहीं चल जाए कि रूस के साथ समझ बनाने की संभावना थी या नहीं, तब तक संधि को स्थगित रखा जाए, और (2) जर्मनी को संधि में शामिल न करना अक्लमंदी नहीं थी। फिर भी, उसने संधि की निंदा नहीं की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इंग्लैंड के साथ संधि पर पहले से सहमत दूसरे जेनरो (यामागाता आरितोमो, मत्सुकाता मासायोशी, इनोवे कुरू और साइगोत्सुगिमिची) ने भी इतो के विचारों पर विचार-विमर्श किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रूस-जापान के बीच गठबंधन की अभी कल्पना करना संभव नहीं था, और अधिक देरी करने से इंग्लैंड अपने प्रस्तावों को वापस ले लेगा, और जापान इंग्लैंड और रूस की सहानुभूति खो बैठेगा और अलग-थलग पड़ जाएगा। इसलिए उन्होंने यह सिफारिश की कि इंग्लैंड के साथ गठबंधन के लिए कदम उठाये जाने चाहिए। सम्राट ने अंतिम बातचीत के लिए अपनी स्वीकृति को इसलिए रोके रखा था क्योंकि वह इतो के विचार जानना चाहता था। अब सम्राट ने निश्चय किया कि जापान को गठबंधन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहिए। कत्सुरा ने इतो को 11 दिसम्बर, 1901 को यह सूचना दी कि सम्राट ने उसके विचार जानने के बाद ही यह निर्णय लिया था। इस तरह यह घटनाक्रम यह "दिखाता है कि निर्भीक जेनरो नीति निर्माण पर क्या प्रभाव डाल सकते थे और अंतिम निर्णय किस तरह सम्राट के हाथों में था।"

गठबंधन के लिए बातचीत आगे बढ़ी क्योंकि इंग्लैंड और जापान का समान विरोधी रूस

था। दोनों देशों ने 1901 में अलग-अलग समय पर गठबंधन के लिए पहल की थी, लेकिन सामान्यतौर पर इंग्लैंड ने ही विचार-विमर्श की अगुवाई की थी।

आंग्ल-जापानी गठबंधन पर 30 जनवरी, 1902 को हस्ताक्षर हुए, जिसमें कोरिया में जापान के और चीन में इंग्लैंड के विशेष हितों को मान्यता दी गयी। इस बात पर सहमति हुई कि किसी तीसरी ताकत से खतरे की दिशा में,या कोरिया और चीन के भीतर अशांति की स्थिति में, दोनों ही इन हितों की रक्षा के लिए आवश्यक उपाय करेंगे। दोनों देशों में इस बात पर सहमति हुई कि यदि उनमें से किसी को अपने हितों की रक्षा के लिए युद्ध में लगना पड़ा तो दोनों तटस्थ रहेंगे। लेकिन, अगर कोई तीसरी ताकत ऐसे किसी युद्ध में शामिल हुई तो, वे तुरंत एक-दूसरे की सहायता को आगे आएंगे। यह समझौता पाँच वर्ष तक प्रभावी रहना था। एक गुप्त नौसैनिक समझौता भी हुआ जिमसें यह प्रावधान रखा गया कि युद्ध के समय दोनों देश एक-दूसरे के बंदरगाहों का उपयोग कर सकेंगे। इसमें यह भी प्रावधान रखा गया कि दोनों देश ऐसी नौसेना रखेंगे जो सुदूर पूर्व की जल सीमाओं के भीतर मौजूद किसी भी दूसरी ताकत की नौसेना के मुकाबले कहीं अधिक श्रेष्ठ होगी। संधि की शर्तों के तहत और अदला-बदली की गयी। कूटनीतिक टिप्पणियों में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि रूस और जापान के बीच युद्ध की स्थिति में इंग्लैंड बीच में आने को बाध्य नहीं होगा, लेकिन यदि रूस जापान पर चढ़ाई का प्रयास करता है तो जापान अंग्रेजी नौसेना की सहायता पर निर्भर कर सकेगा।

यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि इंग्लैंड के साथ गठबंधन के विकल्प को चुन कर जापान ने अपने मतभेदों को निपटाने के बजाये रूस के साथ युद्ध को प्राथमिकता दी। इंग्लैंड के साथ गठबंधन जापान को खास-खास मतभेदों को निपटाने के लिए रूस से संपर्क करने से रोकता नहीं था।

इस गठबंधन से जापान की प्रतिष्ठा बढ़ी। इससे कोरिया में जापान के विशेष हितों को इंग्लैंड की मान्यता भी मिली, और यह भी सुनिश्चित हो गया कि रूस-जापान युद्ध की स्थिति में फ्रांस रूस की सहायता नहीं करेगा। इंग्लैंड ने जापान-रूस गठबंधन होने से रोक लिया था। रूस ने इससे संकेत पाकर मंचूरिया से अपने सैनिक हटा लिए, जो बॉक्सर विद्रोह के समय से ही मंचूरिया में रह गये थे। चीन मंचूरिया में रेलपथों से संबंधित विशेष विशेषाधिकारों की रूस की योजनाओं का प्रतिरोध करने में समर्थ रहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) शिमोनोसेकी की संधि किन घटनाओं की परिणति थी? इस संधि से किस देश को लाभ पहुँचा? 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) खुला द्वार नीति से आप क्या समझते हैं? 10 पंक्तियों में समझा कर लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) आंग्ल-जापानी गठबंधन क्यों संपन्न हुआ? 15 पंक्तियों में इस गठबंधन के संदर्भ में समझाइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.5 रूस-जापान युद्ध

इंग्लैंड के समर्थन के कारण जापान 1854 के बाद से किसी दूसरे तिहरे हस्तक्षेप से भयमुक्त होकर रूस के प्रति आक्रामक रवैया अपना सका। जापान ने रेलपथों के निर्माण और महत्वपूर्ण बंदरगाहों के आसपास सम्पत्ति पर अधिकार करने समेत कोरिया में अपनी रियायतों को बढ़ा लिया था। व्हेल पकड़ने, मछली पकड़ने और उत्खनन के विशेष अधिकार भी हासिल कर लिये गये थे। लेकिन, जापान उत्तर पश्चिमी कोरिया में रूस को लकड़ी की रियायतें दिए जाने की संभावना को स्वीकार करने को तैयार नहीं था। चीन ने तो मंचूरिया में रूस को और अधिक रियायतें देने का प्रतिरोध किया था, जिससे मंचूरिया रूस का संरक्षित राज्य बन जाता, लेकिन रूस के इरादे स्पष्ट थे।

रूस का यह प्रयास था कि बातचीत के जरिए जापान से यह स्वीकृति ले ली जाए कि मंचूरिया और इसका समूचा तटवर्ती क्षेत्र रूस का विशेष प्रभाव क्षेत्र रहेगा, जिससे रूस को समुद्र के रास्ते दाइरेन और पोर्ट आर्थर से व्लादीवोस्तौक तक संचार का बाधारहित मार्ग मिल जाएगा। इसके बदले में, रूस कोरिया में जापान के विशेष हितों को स्वीकार करेगा,

जिसमें कोरिया को सुधारों के विषय में परामर्श देना शामिल होगा, लेकिन, कोरिया की स्वाधीनता पर कोई आँच नहीं आने दी जाएगी और कोरिया के किसी भी बंदरगाह का प्रयोग रणनीतिक उद्देश्यों के लिए नहीं किया जाएगा और कोरिया में कोई तटरक्षक तंत्र नहीं बनाया जाएगा। उनतालिसवें आक्षांश के उत्तर में स्थित कोरिया का भाग एक तटस्थ क्षेत्र होगा। जापान ने उत्तरी कोरिया के दोनों ओर 50 कि.मी. का प्रतिरोधक (बफर) क्षेत्र बनाने का प्रति प्रस्ताव रखा, लेकिन उसने कोरिया का रणनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग न करने का कोई वचन नहीं दिया। वार्ता में गतिरोध आ गया। जापान के पास दो विकल्प थे, या तो वह :

1) कोरिया पर प्रतिबंधित प्रभुत्व को स्वीकार करे, मंचूरिया से बाहर रहना स्वीकार करे और कोरिया के दोनों ओर पश्चिम में पोर्ट आर्थर और उत्तर पूर्व में व्लादीवोस्तौक में, रूसी नौसैनिक अड्डों के जंजाल को स्वीकार करे, या

2) रूस के साथ इस आशा के साथ युद्ध में उतरे कि वह रूस को उत्तरपूर्वी एशिया से निकाल बाहर करेगा।

जापान ने दूसरे विकल्प को चुना और फरवरी, 1904 में जापान की थल और नौसेना ने कोरिया को अड्डा बना कर मंचूरिया में रूसी ठिकानों पर हमले कर दिए। जापान की नौसेना ने बहुत जल्दी पोर्ट आर्थर और व्लादीवोस्तौक को जाने वाले नौसैनिक पहुँच मार्गों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर ली। यूरोप से भेजा गया रूस का बाल्टिक बेड़ा त्सुशिमा जल उमरूमध्य में पहुँच गया, लेकिन एडमिरल टोगो हेहाचीरो ने उसे हरा दिया। यह हार रूस के शांति के निवेदन के लिए निर्णायक रही। युद्ध में जापान के काफी सैनिक मारे गये और त्सुशिमा की लड़ाई के पहले ही, उसने युद्ध विराम के विषय में गंभीरता से विचार किया था, लेकिन रूस ने बातचीत को इच्छुक होने का कोई संकेत नहीं दिया।

त्सुशिमा की विजय के बाद, राष्ट्रपति थ्योडोर रूज़वेल्ट ने शांति शर्तों को तय करने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करने के निवेदन को स्वीकार कर लिया। पोर्ट्समाउथ, अमेरिका में 10 अगस्त, 1905, में शांति सम्मेलन प्रारंभ होने से पहले ही, राष्ट्रपति रूज़वेल्ट फ्रांस और जर्मनी को यह चेतावनी दे चुके थे कि यदि उन्होंने जापान के विरुद्ध कोई कार्यवाही की तो, वह जापान का साथ देंगे। इसके अलावा, फिलीपीन में अमेरिकी हितों की रक्षा के लिए जुलाई, 1905 में जो टैफ्ट-कत्सुरा समझौता हुआ, उसमें जापान को इस आश्वासन पर कोरिया पर उसके अधिराज्य को अमेरिकी समर्थन का आश्वासन दिया गया कि जापान फिलीपीन के प्रति आक्रामक कार्यवाहियों का विचार नहीं बनाएगा। जापान की एक और कूटनीतिक विजय हुई। आंग्ल-जापानी गठबंधन में 1905 को संशोधन किया गया जिसमें पूर्वी एशिया और भारत के क्षेत्रों को और एक नयी शर्त को भी शामिल किया गया कि यदि इंग्लैंड या जापान में से एक पर इन क्षेत्रों में किसी तीसरी ताकत का आक्रमण होता है तो दूसरा स्वतः उसकी सहायता को आएगा। इंग्लैंड ने कोरिया में जापान के सर्वोच्च हितों और उसके हितों की रक्षा के लिए उपयुक्त उपाए करने के उसके अधिकार को मान्यता दे दी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस तरह, पोर्ट्समाउथ की संधि संपन्न होने से पहले ही जापान को अमेरिका और इंग्लैंड दोनों की ओर से यह मान्यता मिल गयी कि कोरिया उसका प्रभाव क्षेत्र था। जापान ने समूचे सखालीन और हरजाने की मांग की, लेकिन रूस इस बात पर अड़ा रहा था कि वह जापान को कोई भी क्षेत्र या हरजाना नहीं देगा। जापान युद्ध के कारण आर्थिक और वित्तीय संकट का सामना कर रहा था और इस स्थिति में नहीं था कि बातचीत टूट जाने को सहन कर सके या वापस युद्ध का मार्ग अपनाये। इसलिए, वह अपनी मांगों पर अड़ नहीं सका और उसने समझौता कर लिया। पोर्ट्समाउथ की संधि की शर्तों में हरजाने का कोई प्रावधान नहीं था। संधि की शर्तें निम्न थीं।

1) कोरिया की स्वाधीनता और जापान के सर्वोच्च राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक हितों को मान्यता।

2) लियाओतुंग में रूस के अड्डों और अधिकारों का, और दक्षिणी मंचूरियाई रेलपथ का जापान को हस्तांतरण।

3) जापानी रेलपथ गार्डों को छोड़कर मंचूरिया से सभी विदेशी सैनिकों की वापसी।

4) दक्षिणी सखालीन को, और उससे लगी जल सीमा में मछली मारने के विशेष अधिकारों को जापान को देना।

5) मंचूरिया के वाणिज्यिक और औद्योगिक विकास के लिए चीन के संभावी उपायों में रूस और जापान का हस्तक्षेप न करना।

जापान के लोग इन शर्तों से सन्तुष्ट नहीं थे। वे हरजाने की अपेक्षा करते थे जिससे जापान की आर्थिक स्थिति सुधरे और युद्ध के लिए उन्होंने जो बलिदान किये थे वे सार्थक हों। टोक्यो में दंगे भड़क गये। अनेक लोगों की जानें गयीं और मार्शल लॉ की घोषणा करनी पड़ी।

19.6 रूस-जापान युद्ध के परिणाम

रूस-जापान युद्ध के परिणाम के तहत हम यह पढ़ेंगे कि जापान ने कोरिया को किस तरह अपने में मिलाया और मंचूरिया में अपने प्रभाव को बढ़ाया।

19.6.1 कोरिया का समामेलन

लियाओतुंग प्रायद्वीप से संबंधित पोर्टसमाउथ की संधि की शर्तों की पुष्टि के लिए चीन और जापान के बीच हस्तांतरण को वैद्य करने के लिए एक अलग समझौता हुआ।

कोरिया पर जापान के बढ़ते कब्जे को रोकने के लिए कोरिया ने अमेरिका से आग्रह किया, लेकिन उसका कोई अनुकूल परिणाम नहीं निकला। नवंबर, 1905 में, अमेरिका ने सिओल में अमेरिकी दूतावास बंद कर देने का आदेश दिया। अमेरिका कोरिया को जापान का संरक्षित राज्य मानता था। इतो हिरोबुमी नवंबर, 1905 में कोरिया का रेजीडेंट जनरल बन गया, और 25 जुलाई, 1907 के समझौते में कोरिया को रेजीडेंट जनरल के अधीन एक संरक्षित राज्य बना दिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कोरिया के राजा ने 1907 में हेग (नीदरलैंड) से आग्रह किया, जिस पर 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' ने टिप्पणी की कि जापान ने कोरिया में जो कुछ किया उसका अधिकार "उतना ही उचित था जितना रूस, फ्रांस, इंग्लैंड या किसी और ताकत का अपने अधीनस्थ राष्ट्रों के साथ किए गए व्यवहार का अधिकार था"। रूस ने 1907 में जापान के साथ एक गुप्त समझौता किया जिसमें कोरिया के साथ "राजनीतिक एकजुटता" बनाने की जापान की विशिष्ट इच्छा को विशिष्ट मान्यता दी गयी। इसलिए, जापान ने भावी समामेलन के लिए "अंतर्राष्ट्रीय समझ" बना ली। बेशक, इस दिशा में एकमात्र बाधा कोरियावासियों का प्रतिरोध था।

कोरियावासी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं थे कि जापान के प्रायोजन में किये गए सुधार और कार्यपालिका के विभागों में जापानी सलाहकारों और अधिकारियों की नियुक्ति कोरिया के विकास के हित में थी। इतो को आशा थी कि समामेलन को टाला जा सकेगा और सुधारों को कोरिया के राजदरबार और कोरिया की कार्यपालिका के सहयोग से लागू किया जा सकेगा। लेकिन कोरिया के प्रति उसके पैतृकवादी रवैये, कोरियाइयों के प्रति और उनकी परंपराओं और संस्कृति के प्रति उसकी अवमानना और सुधारों को इस आधार पर थोपने का उसका प्रयास कि इनसे जापान आधुनिकीकरण की ओर बढ़ा, इन सबने उसे घृणा का पात्र बना दिया। बाधाओं की एक सजग नीति का पालन किया गया। जब 1909 में इतों ने अपने पद से त्याग पत्र दिया तो, उसे आभास था कि उसकी नीतियां असफल रही थीं।

अक्तूबर, 1909 में हार्बिन में एक निरीक्षण यात्रा के दौरान एक कोरियाई ने इतो की हत्या कर दी। इतो की मृत्यु से कोरिया को जापान में मिला लेने का एक पर्याप्त बहाना मिल गया। इसकी भूमिका के तौर पर कोरिया में जापान-समर्थक भावनाएं तैयार करने का तुरंत प्रयास किया गया। इलचिन हो नाम के एक कोरियाई संगठन ने जापानी राष्ट्रवादी संगठन कोकुर्युकाई की प्रेरणा पर दिसंबर, 1909 में कोरियाई और जापानी अधिकारियों को एक याचिका देकर कोरिया की रक्षा के लिए जापान और कोरिया के विलय की मांग की। इसमें कोई संदेह नहीं कि जापानी सरकार पहले कोरियाई विरोध को दबाने के विषय में कहीं अधिक चिंतित थी। कत्सुरा सरकार में युद्ध मंत्री और उसी समय सिओल में रेजीडेंट जनरल नियुक्त हुए, सेनापति तेराउची मासाताके, को कोरिया के "समामेलन के लिए निवेदन" करने के लिए बाध्य करने में सफलता मिली। 22 अगस्त, 1910 को तेराउची

और कोरिया के राजा ने समामेलन संधि पर हस्ताक्षर किए। तेराउची कोरिया का पहला महा राज्यपाल (गवर्नर जनरल) बन गया और 1916 में प्रधानमन्त्री बनने तक इस पद पर रहा। कोरिया अब देश नहीं रहा। ताईवान के साथ, कोरिया भी उपनिवेश बन गया और जापान ने कोरिया की स्वाधीनता की सारी मांगों को जिस सख्ती से दबाया, उसके कारण वह सदा के लिए कोरियावासियों की घृणा का पात्र बन गया।

19.6.2 मंचूरिया में जापान का प्रभाव क्षेत्र

कोरिया का समामेलन "अंतर्राष्ट्रीय समझ" से हुआ। लेकिन मंचूरिया के मामले में जापान को और सतर्कता बरतनी पड़ी। मंचूरिया चीन का अंग था। जनवरी, 1905 में थ्योडोर रूजवेल्ट ने यह विचार दिया कि मंचूरिया को "चीन को लौटा दिया जाए जिससे उसे महाशक्तियों की गारंटी के तहत तटस्थ क्षेत्र बना दिया जाए।" तब जापान ने तुरंत ये आश्वासन दिये थे कि समान अवसर के सिद्धांत का मंचूरिया में सम्मान किया जाएगा। प्रशासन "सार रूप में" चीन के हाथों में रहेगा। फिर भी, जापान ने यह कहते हुए चीन की क्षेत्रीय अखंडता की मान्यता को सीमित कर दिया था कि यह शांति और व्यवस्था और जीवन और संपत्ति की रक्षा करने के लिए सुधार और अच्छे प्रशासन पर सशर्त थी। इसलिए चीन के साथ दिसंबर, 1905 के समझौते के लिए होने वाली बातचीत में, जापान ने मंचूरिया में जीवन और संपत्ति की रक्षा के लिए सुधारों को वांछनीय शर्तों के तौर पर शामिल करने का प्रयास किया। जापान ने इस का भी प्रयास किया कि वह विदेशों में व्यापार के लिए मंचूरिया में कुछ शहरों के लिए चीन की सहमति ले, चांगचुन और किरिन के बीच रेलपथ का जाल बढ़ाने की अनुमति ले, कोयले की खानों का प्रबंध अपने हाथों में ले और चीन से यह गारंटी ले कि वह मंचूरिया को किसी और ताकत को हस्तांतरित नहीं करेगा। लेकिन चीन ने इसका प्रतिरोध किया और अंत में केवल निम्न बातों के लिए सहमत हुआ :

1) मंचूरिया में विभिन्न स्थानों को व्यापार के लिए खोलना।

2) जापानी ऋण से चांगुचन-किरिन रेलपथ का निर्माण करना।

3) सुधारों को लागू करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान को चीन द्वारा मंचूरिया किसी और शक्ति को हस्तांतरित न करने की मांग को वापस लेना पड़ा। जापान की इस मांग को अंत में संधि में शामिल नहीं किया गया कि चीन ऐसा कोई भी रेलपथ बनाने से पहले जापान से परामर्श लेगा जिसकी दक्षिणी मंचूरिया में जापान के रेलपथों से प्रतिद्वंद्विता हो। वैसे यह मांग सम्मेलन की कार्यसूची का अंग थी।

बातचीतों के रूख से यह स्पष्ट है कि जापान मंचूरिया में अपने आर्थिक हितों को बढ़ावा देने और दूसरी ताकतों की प्रतिद्वंद्विता को रोकने के लिए भी दृढ़प्रतिज्ञ था। मंचूरिया में जमी जापानी सेना ने इस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया। इंग्लैंड और अमेरिका ने इस बात का विरोध किया कि जापानी सेना विदेश व्यापार को बाहर रखने के लिए सैनिक कारणों का उपयोग कर रही थी। इंग्लैंड ने जापान को यह स्मरण कराया कि रूस के साथ उसके युद्ध के लिए अमेरिका और इंग्लैंड ने इस स्पष्ट समझ के तहत धन लगाया था कि जापान खुला द्वार नीति को स्वीकार करेगा। सेना अपनी कार्यवाही को यह कह कर उचित ठहरा सकती थी कि वह "रूसी युद्ध का प्रतिरोध" से बचाव कर रही थी, लेकिन यदि ऐसा कोई युद्ध हुआ तो जापान को एक बार फिर उनके मित्रों का समर्थन मिलेगा, लेकिन इस शर्त पर कि जापान खुला द्वार नीति का सम्मान करे।

जापान के सरकारी हल्कों के भीतर चलने वाली बहसों से यह बात सामने आयी कि दो विचार धाराएं थीं, जो बाद के वर्षों में भी दिखायी दीं। इनमें से विदेश मंत्री के नेतृत्व वाली विचारधारा जापान के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए इंग्लैंड और अमेरिका के साथ सहयोग को प्राथमिकता देती थी। व्यापारी वर्ग भी सामान्यतौर पर इस विचारधारा से सहमत था। इसका अर्थ यह निकलता था कि जापान को मंचूरिया में उससे अधिक दावों के लिए जोर नहीं देना चाहिए जितना इंग्लैंड और अमेरिका सहन करेंगे। सेना और उसके राजनीतिक मित्रों का यह मानना था कि मंचूरिया में जापान के हित रणनीति महत्त्व के थे। इसलिए जापान को यातायात और संचार पर नियंत्रण करने, नागरिक व्यवस्था बनाये रखने और कोरिया की सीमा की रक्षा करने की स्थिति में होना चाहिए। अमेरिका की दृष्टि में, इससे मंचूरिया केवल "क्षेत्र का नाममात्र का अधिराज" बन जाएगा, क्योंकि सारे भौतिक लाभ "अस्थायी स्वामी" (जापान) अपने पास रख लेगा।

सितंबर, 1909 में जापान ने चीन से मंचूरिया की कोयला खानों में उत्खनन के अधिकार और कई रेलपथ संबंधी रियायतें ले लीं। जुलाई, 1910 में, रूस और जापान के बीच हुए एक गुप्त समझौते में क्षेत्रों का विभाजन कर लिया गया। रूस उत्तर मंचूरिया में और जापान दक्षिणी मंचूरिया में। इस समझौते में दोनों देशों के उनके अपने-अपने क्षेत्रों में अपने हितों की रक्षा में हस्तक्षेप करने के अधिकार को भी मान्यता दी गयी। इसमें यह भी प्रावधान रखा गया कि किसी ताकत की ओर से चुनौती मिलने की स्थिति में देश आपस में सहयोग करेंगे। यह समझौता दक्षिणी मंचूरिया और चीनी पूर्वी रेलपथ के राष्ट्रीयकरण के अमेरिकी प्रयासों के जवाब में किया गया।

इंग्लैंड और अमेरिका की इस पर क्या प्रतिक्रिया रही ? इंग्लैड ने 1911 में नवीनीकरण के लिए आने वाले आंग्ल-जापानी गठबंधन में इसे शामिल करके मंचूरिया में जापान के अधिकारों को उससे मान्यता दिलाने के जापान के प्रयासों को निष्फल कर दिया। जापान मंचूरिया में अपनी स्थिति बराबरी भारत में इंग्लैंड की स्थिति की बराबरी से करना चाहता था। संधि के अंतिम प्रारूप में न तो मंचूरिया का उल्लेख था, न भारत का। लेकिन फिर भी, यह स्पष्ट था कि इंग्लैंड को उत्तरपूर्वी एशिया में जापान के रास्ते को रोक पाने की अपेक्षा नहीं थी।

वाशिंगटन की क्या प्रतिक्रिया रही ? क्या उसने भी इतनी आसानी से छोड़ दिया ? जापान मंचूरिया में अमेरिकी व्यापार और निवेशों में वृद्धि में बाधा बन रहा था, विशेषतौर पर रेलपथ के क्षेत्र में। जापानी और रूसी एकाधिकारों और चीन के उनके साथ प्रतिद्वंद्विता करने वाले रेलपथों के निर्माण की मनाही के कारण अमेरिका के लिए रास्ते बन्द हो गये। फिर भी, अमेरिका इस मुद्दे पर जापान के टकराव के लिए तैयार नहीं था। चीन की अपेक्षा जापान में उसके आर्थिक हित कहीं अधिक दांव पर थे। अमेरिका चीन के अपनी सहायता आप करने के प्रयासों से प्रभावित नहीं था। इसके अतिरिक्त, अमेरिका का पहला उद्देश्य जापान को प्रशांत क्षेत्र से दूर रखना था। इस तरह, 1905 और 1910 के बीच के दौर में, मंचूरिया को खुला द्वार नीति से बाहर रखने के जापान के प्रयासों ने इंग्लैंड और अमेरिका के साथ उसके संबंधों को सचमुच क्षति पहुंचायी (पश्चिमी ताकतों ने कोरिया को खुला द्वार नीति का हिस्सा नहीं बनने दिया)। लेकिन 1911 की चीनी क्रांति से लेकर, चीन में पश्चिमी ताकतों का बनाया पूरा ढांचा खतरे की चपेट में था क्योंकि केन्द्र में ऐसी कोई स्थायी सरकार नहीं था जो इन अधिकारों की रक्षा कर सकती थी। जापान और रूस को इस तथ्य के संदर्भ में महाशक्तियों की ओर से और किसी चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा कि मंचूरिया उनका प्रभाव क्षेत्र था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) रूस-जापान युद्ध के कारणों और प्रभाव का संक्षेप में विवरण दें। उत्तर 15 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) जापान ने कोरिया को कैसे अपने में मिलाया (समामेलन किया)? 10 पंक्तियों में समझाइए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) जापान ने मंचूरिया पर अपना प्रभाव कैसे बढ़ाया? 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.7 सारांश

सन् 1912 में मेजी युग की समाप्ति तक जापान एक साम्राज्यवादी ताकत के रूप में उभर चुका था, कोरिया और ताईवान उसके उपनिवेश थे और मंचूरिया उसके प्रभाव क्षेत्र में था। इस क्षेत्र में उसकी स्थिति को दूसरी पश्चिमी ताकतें भी स्वीकारती थीं। बल्कि साम्राज्यवाद की ओर उसके प्रयाण को इंग्लैंड, अमेरिका, और बाद में रूस की सहायता मिली। इन सभी ताकतों ने जापान की महत्त्वाकांक्षाओ को बढ़ावा देना पसंद किया जिससे चीन में उनके अपने हितों की रक्षा हो सके। अमेरिका भी प्रशांत क्षेत्र में फैलती जापान की महत्त्वाकांक्षाओं के बारे में सशंकित था और वह चाहता था कि जापान अपना ध्यान मंचूरिया पर ही लगाये। अधिकारों के साझे को लेकर रूस के साथ उसके झगड़े उसे मंचूरिया में उलझाये रखते। लेकिन, 1912 तक, जापान मंचूरिया को केवल जापान का प्रभाव क्षेत्र बनाने में सफल रहा और रूस और दूसरी ताकतों को अपने पास नहीं फटकने दिया। रूस-जापान युद्ध में जापान की जीत ने एशिया की जनता के लिए एक महान प्रेरणा का काम किया था और उनमें ये अपेक्षाएं जगायी थीं कि जापान उन्हें पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों से मुक्ति का मार्ग दिखाएगा। लेकिन उनकी ये अपेक्षाएं झूठी साबित हुईं। जापान एशियाई राष्ट्रवाद को समझ नहीं सका और उस पर प्रतिक्रिया नहीं कर पाया।

19.8 शब्दावली

उष्ण जल बंदरगाह : कुछ ऐसे बंदरगाह होते हैं जहाँ समुद्र का पानी जाड़ों में जम जाता है तथा जाड़ों में ये बंद रहते हैं, उष्ण जल बन्दरगाह पूरे साल खुल रहते हैं।

जेनरो : सयाने या वरिष्ठ राजनेता

तिहरा हस्तक्षेप : संधि के बाद फ्रांस, इंग्लैड और जर्मनी जापान के लाभ सीमित करने के लिए एक हो गये और उन्होंने जापान को उसके द्वारा चीन में हथियाये गये कुछ विशेषाधिकारों को छोड़ देने को बाध्य किया। इन तीन ताकतों के हस्तक्षेप को ही तिहरा हस्तक्षेप कहा जाता है।

19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर भाग 19.2 के आधार पर लिखें।

2) अपना उत्तर उपभाग 19.3.1 के आधार पर लिखें।

3) अपना उत्तर भाग 19.4 के आधार पर लिखें।

बोध प्रश्न 2

1) अपना उत्तर भाग 19.5 के आधार पर लिखें।

2) अपना उत्तर उपभाग 19.6.1 के आधार पर लिखें।

3) अपना उत्तर उपभाग 19.6.2 के आधार पर लिखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 20 जापान और प्रथम विश्व युद्ध

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 पृष्ठभूमि
20.3 प्रथम विश्व युद्ध
20.4 युद्धोत्तर स्थिति
20.5 अर्थव्यवस्था की स्थिति
20.6 उदारवादी मत
20.7 सारांश
20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको निम्न बातों की जानकारी मिलेगी :

- जापानी अर्थव्यवस्था का परिपक्व होना,
- ताइशो काल का राजनीतिक घटनाक्रम,
- जापान का प्रारंभिक विस्तारवाद,
- विश्व युद्ध के दौरान जापान की भूमिका और उसका रवैया, और
- जापान के विदेशों से संबंध।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध छिड़ जाने से जापान को अपनी कुछ आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को हल करने का अवसर मिला। इस घटनाक्रम को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम 1904-05 के रूस-जापान युद्ध के अंत से घटनाक्रम की छानबीन करें। यह युद्ध जापान के लिए परिवर्तनकारी रहा और वह अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर एक शक्तिशाली अभिनेता या पात्र के रूप में उभरा। इसलिए इस इकाई की शुरुआत विश्व युद्ध से पहले की एशियाई राजनीतिक स्थिति पर चर्चा से की गयी है।

प्रथम विश्व युद्ध हमें इस खोजबीन के लिए एक उपयोगी सूत्र देता है कि जापान अपनी अंतर्राष्ट्रीय भूमिका के स्वरूप में किस ढंग से परिवर्तन कर रहा था, रूस-जापान युद्ध, के समय से ही जापान के सामने यह सवाल था कि वह किन देशों के साथ गठबंधन करे। उसी सवाल से जुड़ा मसला चीन और अन्य पड़ोसी देशों के साथ उसके संबंधों का भी था। इन सवालों पर विद्वानों के स्तर पर तो कोई बहस नहीं हुई, लेकिन ये सवाल जापान के भीतर की राजनीतिक लामबंदी और गुट-संघर्षों से जुड़े हैं। राजनीतिक दलों और नौकरतन्त्र, नौसेना और सेना के भीतर के गुटों ने अलग-अलग रणनीतियां दिखायीं। व्यापक तौर पर ये उन गुटों में आते थे जो एक वृहत्तर जपान की वकालत कर रहे थे और यह चाहते थे कि उसका विस्तार उत्तर की ओर हो। उत्तर की ओर विस्तार से जापान की रूस के साथ लड़ाई होती। लघुत्तर जापान की वकालत करने वाले जापान के विस्तार के लिए दक्षिण को स्वाभाविक क्षेत्र मानते थे।

इन बहसों में जापान के रूस और चीन के साथ संबंध निर्णायक हो गये। इन वर्षों में जापान चीन में अपना प्रभाव बढ़ाता और कब्जे को मजबूत करता लगातार आगे बढ़ता रहा। इससे वह इंग्लैंड और अमेरिका के और निकट आ गया, क्योंकि विश्व युद्ध में जापान मित्र राष्ट्रों की ओर था।

इस विस्तारवादी नीति का जापान के भीतर अर्थ होता था सेना और नौसेना पर खर्चों का बढ़ना। इस आर्थिक बोझ से अर्थव्यवस्था में और विभिन्न राजनीतिक गुटों के बीच भी तनावों की स्थिति पैदा हो गयी 1918 के चावल के दंगे जनता के लिए पैदा हुई समस्याओं की एक ऐसी ही अभिव्यक्ति थे। इस इकाई में इन्हीं कुछ पहलुओं पर विचार किया गया है।

विश्व युद्ध के अंत में वर्सेल्ज व्यवस्था बनी। इस इकाई में इस पर भी विचार किया गया है कि जापान ने नयी व्यवस्था के प्रति क्या रुख अपनाया और उसने विश्व में अपने लिए किस तरह की भूमिका को देखा।

20.2 पृष्ठभूमि

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में यूरोपीय विस्तारवाद विश्व के बड़े हिस्सों में अपना कब्जा और प्रभुत्व जमा चुका था और इसीलिए 1905 में प्रशा पर जापान की जीत को एक बड़ी घटना के रूप में देखा गया है। पहली बार किसी एशियाई ताकत ने एक यूरोपीय देश को मात दी थी। जापान में तो समाजवादियों, शांतिवादियों और दूसरे गुटों ने इस घटना की आलोचना ही की, लेकिन एशिया में आमतौर पर इसे एक श्रेयस्कर घटना माना गया और एशियाई राष्ट्रवादियों ने एक स्वर से इस उपलब्धि के लिए जापान की प्रशंसा की।

दूसरी ओर, जापान अपनी क्षेत्रीय स्वाधीनता को बनाये रखते हुए, अपनी अर्थव्यवस्था को बनाते हुए और पश्चिमी देशों से टक्कर लेते हुए, साथ ही साथ अपने क्षेत्र के भीतर विस्तार की नीति को भी अंजाम देता चल रहा था। फार्मूला (अब ताइवान) दक्षिणी सखालीन, कोरिया और चीन और दक्षिणी मंचूरिया ऐसे क्षेत्र थे जहाँ जापान अपना कब्जा बढ़ा चुका था या विस्तृत विशेषाधिकार हासिल कर चुका था (देखिए इकाई 19)। इस तरह एशियाई हितों के समर्थक के रूप में उभरने के साथ-साथ ही जापान एक साम्राज्यवादी भूमिका निभाना भी शुरू कर रहा था जिसके लिए उसे पश्चिमी ताकतों के समर्थन की आवश्यकता भी थी और तलाश भी। इग्लैंड के साथ जापान के गठबंधन की आधारशिला पर इस विस्तार का निर्माण हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एशिया में जापान के विकास और उसकी शक्ति ने विभिन्न रंगों के राष्ट्रवादियों और गणतंत्रवादियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले प्रकाश स्तम्भ का काम किया जिससे कि वे इस एशियाई आदर्श से सीख लें। 1880 के दशक के अंतिम वर्षों से झुण्ड के झुण्ड चीनी छात्र जापान में ज्ञानार्जन और अध्ययन के लिए आये। बेशक लंदन की जगह टोक्यो जाना कहीं सस्ता पड़ता था, लेकिन माना यह भी जाता था कि जापान ने एक साझा संस्कृति का अंग होते हुए भी एक आधुनिक औद्योगिक समाज का विकास किया था। इसलिए गणतन्त्रवादी जिस प्रकार के भावी चीन का निर्माण करना चाहते थे उसके लिए जापान मूल्यवान शिक्षा दे सकता था। लियांग ची चाओ से लेकर सून यात सेन तक तमाम चीनी सुधारक टोक्यो आये। इतनी बड़ी संख्या में चीनी छात्रों का जापान में आना किसी दूसरे एशियाई देश में छात्रों के भारी संख्या में पहली बार जाने का प्रतीक है।

चीनी और अन्य एशियाई छात्रों (इनमें कुछ भारतीय छात्र भी थे लेकिन उनके बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है) के अनुभवों और जापान की विस्तारवादी नीतियों ने मिलकर जापान की छवि में दोहरापन ला दिया। एक ओर तो वह एशिया और उसकी संस्कृति को बचाये रखने के पोषक पश्चिमी-विरोधी गठबंधन का प्रतिनिधि था, और दूसरी ओर वह अपने लोभी पक्ष को दिखा रहा था और इन देशों की अखंडता और स्वतन्त्रता के लिए खतरा बन रह था। एक डडों चाइनीज राष्ट्रवादी, फान बोई चाऊ ने 1917 में कहा था कि जापान एशिया का सबसे खतरनाक शत्रु था। फान ने रूस-जापान युद्ध के बाद टोक्यो से अपनी गतिविधियों का संचालन किया था। इसी तरह, कोरियाई राष्ट्रवादियों ने भी जापानी समाजवादियों के साथ आम भागीदारी से इंकार कर दिया था।

रूस-जापान युद्ध के बाद जापान के पास विदेशों के साथ व्यवहार के संदर्भ में तीन व्यापक विकल्प थे,

i) वह, पश्चिमी ताकतों की तरह, पूर्वी एशिया के क्षेत्र में अपने अधिकारों और

उत्तराधिकरों के लिए मान्यता प्राप्त करने का प्रयास कर सकता था और पश्चिमी ताकतों के साथ मिल कर, उनके सहयोग से काम कर सकता था।

ii) दूसरी ओर जापान पश्चिमी हितों की अनदेखी कर सकता था और यह तर्क दे सकता था कि उस क्षेत्र में उसके अधिकार सबसे महत्त्वपूर्ण थे।

iii) तीसरी संभावना यह बनती थी कि जापान इस बात को दृढ़ता से रखे कि उसे पश्चिमी प्रभुत्व को नष्ट करके और एशियाई सिद्धांतों पर आधारित एक नयी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की रचना के जरिए एक ऐतिहासिक उद्देश्य को पूरा करना था।

एक एशियाई गठबंधन के विचार (रेतनाई) को अनेक विचारकों ने अलग-अलग विवेचना के साथ उठाया। अपने सबसे विनम्र रूप में यह विचार एशिया के पुनरुद्वार के लिए एक जापानी गठबंधन की मांग करता था। इसका प्रतीक चीन में गणतांत्रिक क्रांति के लिए सून यात सेन के साथ पूरे मनोयोग से काम करने वाला मियाजा की तोतेन था। लेकिन अधिकांश के लिए यह जापान के लिए एशिया का नेतृत्व अपने हाथ में लेने का एक तरीका था। इस नेतृत्व के हाथ में आने से जापान पश्चिमी राष्ट्रों के खतरे और उनकी ताकत से टक्कर लेने के लिए आवश्यक जनसंख्या, संसाधन और क्षेत्र हासिल कर सकता था।

20.3 प्रथम विश्व युद्ध

अगस्त 1, 1914 को जर्मनी ने रूस के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मनी आस्ट्रिया और इटली के साथ एक तिहरे गठबंधन में बंधा हुआ था, जबकि रूस, इंग्लैंड और फ्रांस के साथ तिहरे समझौते का अंग था। जल्दी-जल्दी फ्रांस और इंग्लैंड के विरुद्ध भी युद्ध की घोषणा हो गयी। इससे चीन में जर्मनी के क्षेत्रों का सवाल उठा। जर्मनी के पास चिंगदाओं में रियायती क्षेत्र थे और इंग्लैंड के पास वेहाइवे में, ये दोनों ही शांतुंग प्रायद्वीप में थे। जापान ने 4 अगस्त को यह घोषणा की कि वह तटस्थ रहेगा, लेकिन उसने यह वचन भी दिया कि अगर जर्मनी ने प्रमुख अंग्रेजी अड्डे हांग कांग पर, या वेहाइवे पर आक्रमण किया तो वह इंग्लैंड का साथ देगा। 8 अगस्त को जापान ने चीनी जल-सीमा में जर्मनी के कुछ व्यापारी जहाजों को नष्ट करने का अनुरोध किए जाने पर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान की कार्यवाहियां परिणामों का हिसाब-किताब लगाकर की जाने वाली कार्यवाहियां थीं और उनसे उसके उद्देश्यों की पूर्ति होती थी, और उसका यूरोप में चलने वाले युद्ध, से इतना लेना-देना नहीं था। जापान की दृष्टि में यह "एशिया में उसके अधिकारों और हितों को जमाने" का दुर्लभ अवसर था।

जापान ने अपने औपनिवेशिक क्षेत्र मेजी काल के प्रारंभिक वर्षों में हथियाये थे, और तब से उसकी विशेषतौर पर कोरिया के प्रति आक्रामक नीतियों का वृहतर जापान के समर्थक विचारकों ने समर्थन किया था। अपने साम्राज्य के विस्तार में, प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने से जापान को माइक्रोनेशिया के द्वीपों : मार्शल द्वीप, कैरोलीन द्वीप और मरीना द्वीप (गुआम को छोड़ कर), और चिंगदाओ पर जर्मनी के कब्जे को हथियाने का अवसर मिल गया। जापान ने इंग्लैंड के साथ मिलकर कई सैनिक कार्यवाहियां की और चिगदाओ पर कब्जा कर लिया। जापान ने 29,000 सैनिक दिए जबकि अंग्रेज सैनिकों की संख्या केवल 1,000 थी। अक्तूबर में, जपानियों ने माइक्रोनेशिया के द्वीपों पर कब्जा कर लिया। युद्ध समाप्त होते-होते जापान के 2,000 सैनिक हताहत हो चुके थे और वह 5,000 जर्मन सैनिकों को बंदी बना चुका था।

जापान को साम्राज्य के इस भौगोलिक विस्तार को पक्का करने के लिए इन नये क्षेत्रों पर अपने अधिकारों को हासिल करने और उनके वास्ते समर्थन हासिल करने के लिए एक राजनयिक अभियान छेड़ना आवश्यक हो गया। बाद में राष्ट्र-संघ के अधिदेश (आदेश) पर माइक्रोनेशिया के द्वीप जापान को वर्ग "सी" क्षेत्रों के तौर पर इस शर्त के साथ दे दिये गये कि उसे इन द्वीपों की किलेबंदी करने की अनुमति नहीं होगी। चिंगदाओ केवल कुछ ही समय के लिए जापान के पास रहा क्योंकि इसे हथियाने के विरोध में चीन और अमेरिका में

विरोध हुए। 1922 के वाशिंगटन सम्मेलन में जापान को दबाव में आकर चिंगदाओ को लौटाना पड़ा।

जापान ने अपने औपनिवेशिक क्षेत्रों पर 1920 के दशक के प्रारंभ तक कब्जा कर लिया था, और प्रथम विश्व युद्ध में इसकी इस शक्ति को पश्चिमी राष्ट्रों ने अनिच्छा से ही सही स्वीकृति दे दी। जापानियों ने जो "सम्यीकरण अभियान" बनाया उसका एक लंबा इतिहास था जिसकी अवधारणाएं और पूर्वानुमान उन अवधारणाओं और पूर्वानुमानों से भिन्न थे जिन पर पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने साम्राज्यों का निर्माण किया था। जापान के उपनिवेश पूर्वी एशिया के क्षेत्र में होने के कारण लोगों में प्रजाति और संस्कृति की समानता का बोध था, और जापानियों ने, बहुत कुछ फ्रांसीसी उपनिवेशिकों की तरह "आत्मसातकरण" (दोका) के विचार को आगे रखा जिसके तहत एशियाई अस्मिता (पहचान) के आधार पर इन एशियाईयों को एकजुट करना और उनके बीच के मतभेदों को समाप्त करना था। जब इन विचारों को लागू किया गया तो कई समस्याएँ सामने आईं। इन उपनिवेशित लोगों को प्राप्त अधिकारों जैसे मुद्दों को लेकर समस्याएं उठ खड़ी हुईं।

हारा ताकेशी की सरकार ने उपनिवेशों में जापान के वैधानिक और प्रशासनिक ढांचे को लागू करने का प्रयास किया ताकि वे भी उन्हीं नियमों-विनियमों से शासित हों। इन उदारवादियों ने उपनिवेशों के लिए शिक्षा, नागरिक अधिकारों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व और मतभेद समाप्त करने की वकालत की। उनका तर्क था कि उपनिवेशितों को स्वाधीनता की नहीं समानता की इच्छा थी। 1920 में हारा ताकेशी ने कहा था, "अधिकांश कोरियाइयों की इच्छा स्वाधीनता की नहीं, बल्कि जापानियों के समान समझे जाने की थी।"

जापान के राजनीतिक क्षेत्र में विभिन्न दबाव गुटों या प्रभावशाली समूहों के बीच संघर्ष था। सेना और उसके यामागाता अरितोमों या कत्सुरा तारो जैसे समर्थक कोरिया के पार मंचूरिया में और फिर मुख्य चीन में विस्तारवादी नीति के पक्ष में थे। उनका तर्क था कि इसके लिए सैनिक शक्ति में पच्चीस डिवीजन की वृद्धि आवश्यक थी। यामागाता के एक आश्रित, तनाका गीची, ने 1906 में लिखा कि जापान को" अपनी द्वीपीय स्थिति से मुक्त होना चाहिए, एक महाद्वीपीय राज्य बनना चाहिए, और विश्वासपूर्वक अपनी राष्ट्र शक्ति का विस्तार करना चाहिए।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी महत्त्वपूर्ण नीतिगत स्थिति ताइवान, दक्षिणी चीन होते हुए दक्षिण-पूर्व एशिया में दक्षिणी विस्तार के पक्ष में थी। इसकी समर्थक नौसेना थी जिसके विचारक यह मानते थे कि एक द्वीप के रूप में जापान को अतिक्रमण से डरने की आवश्यकता नहीं थी, बल्कि उसे तो अपने व्यापारिक मार्गों की रक्षा करनी चाहिए।

सरकार इन उद्देश्यों की प्राप्ति को लेकर कुल मिलाकर सतर्क थी। उसे इस बात का अहसास था और उसने स्पष्ट यह कह भी दिया था कि वह केवल पश्चिमी ताकतों के सहयोग से अपने कब्जे का विस्तार कर सकती थी। सेना और यामागाता वाली स्थिति का ही वर्चस्व था, और इसलिए सेना पर बढ़े हुए खर्च के सवाल पर उसका राजनीतिक दलों के साथ संघर्ष हो गया।

सन् 1907 में एक नयी योजना में रूस, अमेरिका, जर्मनी और फ्रांस को इसी क्रम में, संभावी शत्रु माना गया। इन देशों की जापान के लिए खतरा बनने की सामर्थ्य से टक्कर लेने के लिए सेना को पच्चीस डिवीजन तक बढ़ाने की और नौसेना को आठ युद्धपोतों और आठ युद्ध क्रूजरों (युद्धपोतों से अधिक तेज गति वाले पोत) तक बढ़ाने की आवश्यकता थी। यह रूस-जापान के युद्ध स्तर से 150 प्रतिशत की वृद्धि थी। लेकिन, जापान की वित्तीय समस्याओं के कारण यह आसानी से संभव नहीं था।

सेना और नौसेना के बीच प्रतिद्वंद्विता बनने से यह स्थिति और भी जटिल हो गयी। दोनों गुटों के समर्थक उनके उद्देश्यों का समर्थन कर रहे थे। सेना जब सैओतजी सरकार को प्रभावित नहीं कर पायी तो उसने अपने युद्ध मंत्री को हटा लिया और 1912 में, सरकार गिर गयी। इस "ताइशो राजनीतिक संकट" को विस्तार से समझने की आवश्यकता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में राजनीतिक स्थिति यह थी कि हानबत्सु या अल्पतंत्र नौकरशाही गुटों के बीच संघर्ष था। ये दोनों वर्ग एकताबद्ध नहीं थे और उनमें आंतरिक विभाजन थे। 1900 में गठित बड़ी पार्टी सेयुकाई और 1913 में स्थापित दोशिकाई (1916

में उसका नाम केनसेकाई और 1927 में मिनसेतो हो गया) ने यह सुनिश्चित करने में मदद दी कि सरकारों का गठन पार्टियों के समर्थन से होगा।

सन् 1911 में सैओनजी ने अपना दूसरा मंत्रिमण्डल गठित किया था और सेयुकाई के समर्थन से वह जापान की गंभीर वित्तीय स्थिति को स्थिर करने और खर्चों में कमी करने का प्रयास कर रहा था। जब सेना की लीक पर न चलने के कारण उसकी सरकार गिर गयी तो, कत्सुरा तारो ने सरकार गठित करने का आमंत्रण स्वीकार किया। लेकिन कत्सुरा ने शाही घराने में दो महत्त्वपूर्ण पद संभाले, और इसके संविधान के सिद्धांतों के विपरीत होने के कारण व्यापक तौर पर आलोचना हुई। जनता के आक्रोश ने संविधान को समर्थन देने के लिए पहले आन्दोलन को भड़काया। रैलियां भी आयोजित की गयीं क्योंकि कत्सुरा ने एक शाही आज्ञा की मदद से नौसेना को मंत्री देने से वंचित कर दिया, ओर इसके कारण और भी विरोध प्रदर्शन हुए।

दिसम्बर 1912 में संविधान सुरक्षा संघ का गठन किया गया। जल्दी ही इसने एक जनआंदोलन आयोजित किया और सरकार को गिरा दिया। तब दोशिकाई के समर्थन से ओकुमा शिगेनोबु सत्ता में आया और इसके साथ हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स में विभाजित पार्टियों के दौर की शुरुआत हुई। यह स्थिति हानबत्सु के पक्ष में थी।

इस राजनीतिक स्थिति में जापान ने गठबंधनों के एक ऐसे ढाँचे को बनाने का प्रयास किया जो उसके लिए एक स्थायी सरकार सुनिश्चित करेगा और उसे उसके लक्ष्यों को पूरा करने योग्य बनाएगा। जनवरी 18, 1915 में इसने राष्ट्रपति युआन शिकाई के सामने अपनी इक्कीस कुख्यात मांगें रखीं। इन मांगों पर इकाई 21 में विचार किया गया है, लेकिन यहाँ संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विस्तृत अधिकार और विशेषाधिकार मांगे जाने के अलावा पांचवी मांग वर्ग ने चीन को कोरिया की स्थिति में ला दिया होता जहाँ जापानी सलाहकार देश चला रहे होते। इंग्लैंड और अमेरिका के इन मांगों पर आक्रोश व्यक्त करने के फलस्वरूप जापान ने पांचवे मांग वर्ग को वापस ले लिया। लेकिन ये दो ताकतें जापान के इरादों की ओर से सावधान हो गयीं।

DIKSHANT IAS

बाहरी मंगोलिया की स्वाधीनता और पश्चिमी चीन में रूस द्वारा आवागमन की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के साथ चीन का विभाजन चल रहा था। जापानियों ने 1913 के रूस-जापानी समझौते के जरिए पूर्वी आंतरिक मंगोलिया में प्रभाव जमा लिया था।

Call us @7428092240

इक्कीस मांगों को जापानी सरकार के भीतर हर किसी का समर्थन नहीं मिला। विदेश मंत्री मोतोनो इचिरो ने यह माना कि जापान में जन प्रतिरोध के कारण लंबी अवधि के लिए चीन पर अपनी पकड़ बनाये रखने की शक्ति नहीं थी।

सन् 1917 में रूसी क्रांति हो गयी और उसने एक नयी स्थिति को जन्म दिया जिसके प्रभाव विशेषतौर पर इस क्षेत्र में जापानी नीति के लिए, दूरगामी हुए। अब जापान ने साइबेरिया अभियान में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के साथ भागीदारी की। तेराउची मंत्रिमण्डल के अधीन जापान ने सत्तर हजार सैनिकों की सबसे बड़ी टुकड़ी भेजी। ये सैनिक वहाँ अभियान पूरा होने के बाद भी सबसे लंबे समय तक रहे। साम्यवाद के खतरे के कारण जापान ने चीन पर एक संयुक्त रक्षा संधि पर हस्ताक्षर करने का दबाव डाला जिससे उसकी सेनाएं चीन में आजादी से आवागमन कर सकती थीं।

चीन में जापान के लक्ष्यों के पक्ष में न रहने वाला, और अभी भी "खुला द्वार" की नीति का समर्थन करने वाला अमेरिका भी धीरे-धीरे स्वीकृति की स्थिति में आ गया। नवम्बर, 1917 में इशी किकुजीरो और रॉबर्ट लानसिग ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसमें :

दोनों देशों ने चीन की क्षेत्रीय अखंडता और सब के लिए समान व्यापार को मान्यता दी, और अमेरिका ने यह स्वीकार किया कि चीन में जापान के "विशेष हित" थे।

लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद पश्चिमी देशों ने इशी की इस विवेचना से असहमति प्रकट कर दी कि इसका अर्थ चीन पर जापान के विशेष अधिकार होता था।

जापान ने वित्तीय ऋणों के जरिए भी चीन पर अपना प्रभाव बढ़ाया। 1917-18 के बीच कुल जापानी ऋण लगभग 20 करोड़ येन के थे और बदले में जापान को 1915 की संधि के अधिकारों और इसके अतिरिक्त रेलपथ और उत्खनन के अधिकारों की गारंटी मिली।

बोध प्रश्न 1

1) "एशियाई हितों के उद्देश्य का समर्थन करते समय जापान, वास्तव में, अपने विस्तारवादी हितों को ही आगे कर रहा था" क्या आप इस वक्तव्य से सहमत हैं ? लगभग 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

DIKSHANT IAS

2) जापान प्रथम विश्व युद्ध में क्यों शामिल हुआ ? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

Call us @7428092240

....

3) जापान के पास 1905 के बाद पश्चिमी देशों से व्यवहार के लिए कौन से तीन विकल्प थे ?

....

i) ....

ii) ....

iii) ....

20.4 युद्धोत्तर स्थिति

युद्ध के अन्त के फलस्वरूप 1919 मे वर्सेल्ज शांति सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का आधार बनाया जिसका और विकास 1921-22 के वाशिंगटन सम्मेलन में हुआ। बाद के वर्षों की एक उल्लेखनीय बात यह है कि जापान ने इस व्यवस्था से अलग होने का प्रयास किया क्योंकि यह व्यवस्था इंग्लैंड और अमेरिका के हितों की रक्षा करने के लिए बनायी गयी थी।

जापान की वर्सेल्ज और वाशिंगटन सम्मेलनों में दी गयी व्यवस्थाओं से असंतुष्टि का मूल कारण यह था कि उसने युद्ध के दौरान एशिया और प्रशांत क्षेत्र में जो कुछ हासिल किया था उसमें से बहुत कुछ उसे छोड़ना पड़ा था। अमेरिका ने शांतुंग पर जापान के कब्जे को स्वीकार करने वाली पेरिस शांति संधि को नहीं माना था। अंततः प्रथम विश्व युद्ध की इन उपलब्धियों को वाशिंगटन सम्मेलन में रद्द कर दिया गया "शाही या साम्राज्यिक कूटनीति का सार" कहे जाने वाले आंग्ल-जापानी गठबंधन का अंत हो गया और उसका स्थान किसी और ने नहीं लिया। साइबेरियाई हस्तक्षेप के दौरान जापान उत्तर-पूर्व एशिया के जिन क्षेत्रों में घुस गया था वहाँ से उसे हटना पड़ा, विशेषतौर पर समुद्रवर्ती प्रांतों, उत्तरी मंचूरिया और पूर्वी साइबेरिया से। इसके अलावा, नौसैनिक क्षमता पर लगायी गयी सीमा के कारण जापान की क्षमता कम रह गयी। अमेरिका, इंग्लैंड और जापान के बीच युद्धपोतों का अनुपात 5:5:3 रखा गया। चीन में जापान को शांतुंग का रियायती क्षेत्र चीन को लौटाना पड़ा। यह समझौता हुआ कि सिंगापुर के पूर्व या हवाई के पश्चिम में कोई आंग्ल-अमेरिका अड्डा नहीं बनाया जाएगा। 1922 में हुई नौ शक्तियों की संधि के तहत चीन और अन्य ताकतों के साथ सभी संधियां समाप्त कर दी गयीं और "खुला द्वार" सिद्धांतों को लागू किया गया। इस संधि में व्यवस्था को धीरे-धीरे समाप्त कर देने के सिद्धांत को भी रखा गया और चीन की सीमा-शुल्क दरों और क्षेत्रातीतता के संबंध में सम्मेलनों की मांग रखी गयी। इस तरह, युद्ध की समाप्ति और वाशिंगटन सम्मेलन के बीच जापान को यह लगा कि उसके विशेषाधिकारों को उससे अनुचित ढंग से छीन लिया गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन उपायों को तुरंत लागू नहीं किया गया। चिंदाओ वापस कर दिया गया और इंग्लैंड अंततः वेहाइवे से हट गया। शुल्क दर सम्मेलन 1925-26 में जाकर ही हो सका, लेकिन इसमें चीन की शुल्क-दर स्वायत्तता को 1929 तक स्थगित कर देने के अलावा और कोई समझौता नहीं हुआ। चीन की आंतरिक समस्याओं के अलावा 1924 में अमेरिका के पारित किये हुए बहिष्कार अधिनियम जापान-अमेरिका संबंधों के क्षेत्र में एक बड़ी समस्या थी।

युद्ध के बाद के दौर के घटनाक्रम से जापान की असंतुष्टि इस धारणा के कारण थी कि उसके साथ अनुचित व्यवहार हुआ था। 1918 में एक प्रभावशाली राजनयिक, कोनों फ्यूमीमासे, ने यह तर्क दिया था कि वर्सेल्ज व्यवस्था के तहत जापान एक पिछड़ा देश ही बना रहेगा। फिर भी, उसके अलावा और भी नेता और राय बनाने वाले थे जिनका तर्क था कि जापान को वर्तमान घटनाओं को स्वीकार करना चाहिए और राष्ट्रसंघ के गिर्द जो नयी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था बन रही थी उसके साथ अपने आपको समायोजित करते हुए काम करना चाहिए।

वाशिंगटन व्यवस्था में अमेरिका, इंग्लैंड और जापान के बीच एक संयुक्त और सहकारी प्रयास बनाने की संभावना थी। इसकी नीतियों के तहत लागू किए गए उपाय हमेशा जापान के हितों के विरुद्ध नहीं रहे। उदाहरण के लिए, जापान पर लगाये गए प्रतिबन्ध मंचूरिया और मंगोलिया जैसे उन दो क्षेत्रों पर लागू नहीं होते थे जिन्हें जापान अपने हितों के लिए महत्त्वपूर्ण मानता था।

जापान जिन रियायतों को देने के लिए प्रतिबद्ध हुआ उसे एक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में दूसरी ताकतों के साथ भागीदारी करने की एक छोटी-सी कीमत माना जा सकता है। वाशिंगटन

संधि में हथियारों को सीमित करने की जो मांग की गयी थी उससे जापानी राजनीतिकों को हथियारों पर होने वाले खर्च में कटौती करने का और उसके साथ ही सेना की भूमिका को भी कम करने का अवसर मिला जो एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर रही थी। दो भूतपूर्व प्रधान मंत्रियों, ताकेशी और ताकाहाशी कोरेकियो, के पास सेनाध्यक्ष के पद को समाप्त करने की योजना भी थी। लेकिन उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली। इस नये ढाँचे को स्वीकार करने वाला सबसे प्रतिनिधि व्यक्ति, राजनयिक शिदेहारा किजरो था जिसने पाँच मिनसेतो मंत्रिमण्डलों में विदेश मंत्री के रूप में काम किया। उसकी नीति का आधार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, चीन में हस्तक्षेप न करने की नीति और जापान की शक्ति की स्थापना और संरक्षण के लिए आर्थिक कूटनीति से काम लेना था।

औपनिवेशिक साम्राज्य का निर्माण बेशक जापान की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया था और इसके लिए जो नीति बनी वह जापानी अर्थव्यवस्था की बदलती आवश्यकताओं के दबाव में बनी। 1930 के दशक तक जापान का विकास एक कृषि प्रधान समाज से औद्योगिक राष्ट्र की ओर हो रहा था। बढ़ते हुए औद्योगिक क्षेत्र को बाजार चाहिए थे और एक संरक्षित उपनिवेश ये बाजार आसानी से दे सकता था। इसका मतलब यह निकलता था कि उपनिवेशों में से किसी भी प्रतियोगी किस्म के उद्योग की अनुमति न दी जाए और इन देशों के व्यापार को जापान में ले आया जाए।

आबादी बढ़ने से भी खाद्य-सामग्री की आपूर्ति बढ़ाने की आवश्यकता आ पड़ी। ताईवान और कोरिया क्रमशः चीनी और चावल के बड़े वितरक हो गये, लेकिन चावल की कीमत में निरंतर वृद्धि के कारण जापान ने कोरिया में चावल का उत्पादन तेज करने के लिए उपाय लागू कर दिए। इन उपायों के फलस्वरूप तकनीकी सुधार भी हुए और खेती की हुई भूमि की माप में भी वृद्धि हुई।

20.5 अर्थव्यवस्था की स्थिति

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापानी अर्थव्यवस्था में वृद्धि हो रही थी लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के आने तक जापान गंभीर वित्तीय समस्याओं से जूझ रहा था और इससे उसकी वृद्धि दर धीमी हो गयी थी। बाहर के ऋण बढ़ते जा रहे थे और इन समस्याओं का मूल कारण रूस-जापान युद्ध था। अकेले युद्ध पर ही 2 अरब येन से ऊपर खर्च हुए थे और 1854-55 के चीन-जापान युद्ध के बाद हुई संधि की तरह, इस युद्ध के बाद हुई शांति संधि में जापान को कोई हर्जाना नहीं दिया गया। यही कारण था कि पोर्टसमाउथ संधि का हिंसक विरोध हुआ। इस युद्ध का खर्च उठाने के लिए जापान ने विदेशों से ऋण लिया था और उस पर 1907 तक 1.4 अरब येन का कर्ज चढ़ गया था और 1909-13 के बीच चालू अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में उसका घाटा 8 से 9 करोड़ येन प्रतिवर्ष था।

विश्व युद्ध में जापानी अर्थव्यवस्था को यूरोप और एशिया के सभी देशों से और अधिक माल भेजने के प्रस्ताव मिले क्योंकि पश्चिमी प्रतिद्वंद्वी कहीं और उलझे हुए थे। वास्तविक कुल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि से अर्थव्यवस्था की स्थिति में कुछ सुधार हुआ और निजी निवेशों में वृद्धि हुई लेकिन, आय के अंतर बढ़ गये क्योंकि निश्चित आय वालों को युद्ध बाद गरमबाजारी से उतना लाभ नहीं मिला जितना कि सट्टेबाजी करने वालों को। युद्ध ने निजी उद्योग और वाणिज्य को लाभदायक और कहीं अधिक विश्वासपूर्ण बना दिया। इन आधुनिक उद्योगों के अगुआओं ने 1917 में औद्योगिक क्लब की स्थापना की जो उनकी नयी उभरती शक्ति का प्रतीक थी।

अर्थव्यवस्था में वृद्धि का सबसे अच्छा प्रतिनिधित्व निर्माण उद्योग के उत्पादन में वृद्धि देखने को मिला जिसमें 1914-19 के बीच 72 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि मजदूर बल में केवल 42 प्रतिशत बढ़ा। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रम उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई। इस क्षेत्र के भीतर सर्वोच्च वृद्धि का क्षेत्र मशीन उद्योग में था जिसमें पोत निर्माण, वाहन, मशीनी उपकरण आदि आते थे। तालिका–1 में दिये हुए आंकड़े कुछ क्षेत्रों की वृद्धि दर को बताते हैं। पोत निर्माण में भी तेजी से विस्तार हुआ। सामानों की कीमत तो बढ़ी, लेकिन फिर भी मुनाफे की दर में वृद्धि हुई और माल-आपूर्ति के प्रस्तावों में भी बढ़ोत्तरी हुई। इस वृद्धि के कारण निर्माण के तरीकों में भी सुधार हुआ जिससे वही काम आधे समय में होने लगा। विश्व युद्ध के बाद मांग में गंभीर कमी आ गयी जिससे छोटी कंपनियां

प्रभावित हुईं, लेंनक मित्सुबिशी जैसी बड़ी कंपनियों को नौसेना की बढ़ती मांगों का सहारा मिल गया।

तालिका 1

वृद्धि दर (प्रतिशत प्रति दशक)

उद्योग	1906-16	1910-20
रसायन	26.1	64.3
कपड़ा	36.8	39.4
निर्माण	36.6	22.8
मशीनरी	88.8	159.1
निर्माण (उत्पादन)	35.4	55.6
धातु	41.2	71.9

स्रोत : काज़ुशी ओकावा और मियोहे शिनोहारा (सं०) **पैन्टर्स ऑफ जापानीज इकॉनॉमिक डेवलपमेंट, लंदन 1979**

युद्ध के कारण विद्युत शक्ति उद्योग के लिए भाप और जल भट्टियां बनाने जैसे सामान्य अभियान्त्रिकी के विकास में भी तेजी आयी। युद्ध के कारण आयात में जो कमी हुई उससे कुछ छोटे उत्पादकों को अपनी उत्पादन क्षमता को विकसित और बेहतर करने का अवसर मिला। युद्ध के समय के मुनाफे वहाँ भी ऊँचे थे जहाँ गंभीर अभाव था (जैसे इस्पात में)। इस्पात के उत्पादन की जापान की अपनी क्षमता भी सीमित थी और ढलवां लोहे की कीमत 1913 के औसत 49 येन से 541 येन हो गयी। युद्ध के पहले एक करोड़ दस लाख के नुकसान में चल रही सरकारी इस्पात कंपनी, यावाता, ने युद्ध के दौरान कुल 15 करोड़ 10 लाख येन का मुनाफा कमाया।

युद्ध बाद के वर्षों में बड़े और छोटे उद्योगों के बीच के अन्तर में वृद्धि हुई। बड़े उद्योगों ने युद्ध बाद की मंदी से निपटने के लिए मजदूरों में कमी की और उनकी क्षमताओं का और निपुणता से उपयोग किया। छोटे उद्योगों ने श्रम-तीव्रता तरीकों को अपनाना जारी रखा जिससे दोहरे आर्थिक ढांचे का उदय हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि के क्षेत्र में वृद्धि का बड़ा कारण प्रौद्योगिकी का और अधिक विस्तार और बढ़ी हुई स्वदेशी और विदेशी मांग थी। फिर भी, खाद्य सामग्रियों की कीमतों में हुई तेज वृद्धि से कई वर्गों में असंतोष की स्थिति बन गयी—विशेष तौर पर शहरी उपभोक्ताओं में, लेकिन बड़े और छोटे दोनों किस्म के काश्तकारों में भी असंतोष की स्थिति बनी। यह असंतोष 1918 के चावल दंगों के रूप में सामने आया जिसकी शुरुआत गृहणियों ने की। ये दंगे जापान के बड़े हिस्सों में फैल गये और तेराउची सरकार के गिरने का कारण बने।

बढ़ते उदारवादी बुद्धिजीवियों ने इन दंगों को बहुत गंभीरता से देखा। ओरिएंटल इकॉनॉमिस्ट के एक संपादकीय में यह लिखा गया कि ये दंगे यह दिखाते थे कि "दुर्भाग्य से हमारे देश में राजनीतिक प्रक्रिया प्रभावी ढंग से केवल संपत्तिधारी अल्पसंख्यकों के लिए काम करती है, जबकि जिन वर्गों के पास संपत्ति नहीं है उन्हें कोई सुरक्षा नहीं दी जाती। एक अर्थ में यह कहना संभव है कि जिनके पास संपति नहीं उनके पास कोई सरकार नहीं है, यही असली कारण है दंगों का।"

20.6 उदारवादी मत

जापान के भीतर उदारवादी मत रखने वाले युद्ध में जनतन्त्रों की जीत को इस पुष्टि के रूप में देखते थे कि विश्व की प्रवृत्ति जनतांत्रिक सरकार की ओर थी। दूसरी ओर रूसी क्रांति ने समाजवादियों और मार्क्सवादियों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे समाजवादी सिद्धांतों को साकार करने के लिए काम करें। उदारवादियों ने अक्टूबर क्रांति को इस बात का संकेत माना कि वर्ग संघर्ष को कम किया जाना चाहिए और सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

उदारवादी दृष्टिकोण का सबसे अच्छा नमूना योशिनो सकुज़ो के विचारों में देखने को

मिलता है। योशिनो ने 1916 में संवैधानिक सरकार पर एक प्रभावशाली लेख लिखा। योशिनो के सामने मेजी संविधान पर जनतंत्र का आधार बनाने की समस्या थी जो स्वयं इस सिद्धांत पर आधारित था कि प्रभुसत्ता सम्राट के हाथों में थी। इसलिए, योशिनो ने यह तर्क दिया कि पश्चिमी जनतंत्र में दो अवधारणाएं थीं।

- वैधानिक (कानूनी) तौर पर प्रभुसत्ता जन (लोगों) के हाथों में थी, और
- राजनीतिक तौर पर प्रभुसत्ता का इस्तेमाल जन के हाथों में था।

इन दो विचारों को जनतंत्र की पश्चिम की अवधारणा में मिला दिया गया था, जबकि जापान में इनमें से पहला विचार लागू नहीं होता था क्योंकि वहाँ राज्य की प्रभुसत्ता सम्राट के हाथों में थी। दूसरा विचार जापान के संदर्भ में उपयुक्त था क्योंकि वहाँ प्रभुसत्ता का इस्तेमाल लोगों द्वारा किया जा सकता था।

योशिनो ने आगे की जनतंत्र की व्याख्या की, जिसका उसने जापानी में "मिनपोनशुगी" शब्द में अनुवाद किया। लेकिन यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि उसका और उस जैसे चिंतकों का जनतंत्र का विचार सीमित था और उसमें समाज के काम करने के वास्तविक ढंग पर ध्यान नहीं दिया गया था। उसी असफलता के कारण घटनाओं की गति ने इनमें से अनेक चिंतकों को और भी क्रांतिकारी दृष्टिकोण अपनाने को बाध्य कर दिया।

योशिनो की मदद से रेमेकाई संगठन की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य नये राजनीतिक विचारों का प्रचार करना था लेकिन धीरे-धीरे इसके अनेक सदस्यों ने और आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपना लिए। एक जाने-माने जनवादी और उदारवादी चिंतक, ओयामा इकुओ, ने यह तर्क देना शुरू कर दिया कि केवल राजनीतिक अवसर ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता भी आवश्यक थी। एक और प्रभावशाली चिंतक, हासेगावा न्योजेकाम, ने भी ऐसा ही दृष्किोण अपनाया। अब निर्णायक शब्द "पुनःनिर्माण" (काइज़ो) और "मुक्ति" (काइहो) थे, जो उस अपेक्षाकृत समतावादी और न्याय-साम्य रखने वाले समाज की इस खोज का प्रतीक थे जहाँ लोगों को वास्तविक समानता मिलेगी।

DIKSHANT IAS

जो समाजवादी मेजी सम्राट के खिलाफ एक षड्यन्त्र में समाजवादियों को फंसाने वाले (1911 के) महा राजद्रोह मुकद्दमें में षड्यन्त्रकारियों को प्राणदण्ड मिलने के बाद निष्क्रिय हो गये थे, वे 1917 की रूसी क्रांति के बाद अपने को व्यक्त करने लग गए। समाजवाद का प्रसार और मजदूरों का संगठन और मजदूरों की ओर से सीधी कार्यवाही काफी बढ़ गयी। इसी वातावरण में चावल दंगों, को "प्रतिशोधात्मक जब्ती" (ओयामा इकुओ) के रूप में देखना संभव हुआ।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) युद्ध के बाद वर्सेल्ज और वाशिंगटन (सम्मेलन) व्यवस्थाओं से जापान की असंतुष्टि के क्या कारण थे ? लगभग 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) युद्ध ने जापान की अर्थव्यवस्था की वृद्धि में किस प्रकार मदद दी ? लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) जापान में युद्ध के बाद के उदारवादी विचारों का विवेचन कीजिए। लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.7 सारांश

प्रथम विश्व युद्ध ने जापान को मित्र शक्ति के और एक तट्स्थ देश के भी, दोनों तरह के, लाभ लेने का अवसर प्रदान किया। तिहरे गठबंधन के सदस्य के रूप में उसने चीन में शांतुग प्रायद्वीप पर और जर्मनी के नियंत्रण में रहे दक्षिणी प्रशांत के द्वीपों पर भी अपना कब्ज़ा बढ़ा लिया। रूसी क्रांति के फलस्वरूप मित्र राष्ट्रों के अभियान में जापान ने बड़ी भूमिका अदा की और उसका इस्तेमाल उसने उस क्षेत्र में एक लंबे समय तक ठहरे रहने के लिए किया।

जापान के प्रारंभिक साम्राज्यवाद के मूल में कई उद्देश्य थे। काफी भूमि और संसाधन वाली एक महाशक्ति बनने की इच्छा, और अपनी पूँजी की कमी जिसके फलस्वरूप जापान ने संरक्षित क्षेत्र बनाये जिससे वह पश्चिमी ताकतों के साथ होड़ कर सके। उदारवादी मत रखने वालों ने भी जापान को आधुनिक सभ्यता के लाभों का प्रसार करने वाले राज्य के रूप में देखा।

युद्ध में जापान की प्रत्यक्ष भागीदारी भूमध्य सागर में जहाजों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए कुछ सैनिक भेजने तक ही सीमित थी। इस अवसर का लाभ उसने अपने व्यापार को बढ़ाने और अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर करने के लिए उठाया। युद्ध से बने अभावों के कारण जापान को अपनी क्षमताओं का विकास करना पड़ा और इसे पोत-निर्माण, मशीनरी जैसे निर्माण (उत्पादन) क्षेत्र की वृद्धि और अभियान्त्रिकी कौशलों के विकास में देखा जा सकता है।

उद्योग के विकास के साथ मजदूर संगठनों और औद्योगिक कार्यवाहियों में भी वृद्धि हुई। विशेषतौर पर चावल की कीमतों में वृद्धि को लेकर दंगे हुए जो आमदनियों में बढ़ती असमानता और सामाजिक और आर्थिक समानता की बढ़ती मांग के द्योतक थे। विभिन्न धाराओं के चिंतक, राष्ट्रवादी, उदारवादी और समाजवादी इस दृष्टिकोण को बनाने के लिए चिंतित थे कि एक अपेक्षाकृत न्याय संगत समाज की रचना किस तरह की जा सकती थी। इन वर्षों में हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स में बहुमत रखने वाले जनता के चुने दलों की सरकार के पास कहीं अधिक अधिकार होते थे। इसे **"ताइशो जनतंत्र"** का नाम दिया गया है। विद्वान लोग इस बात पर बहस करते हैं कि जनतंत्र किस सीमा तक स्थापित हुआ, और वे संस्थागत और वैचारिक दोनों अर्थों में दलों की कमजोरियों की ओर संकेत करते हैं।

युद्ध की समाप्ति पर उससे मिले कई लाभ भी जापान के हाथों से जाते रहे, लेकिन वर्सेल्ज़ शांति संधि और वाशिंगटन सम्मेलन के बीच बनी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था ने इंग्लैंड, अमेरिका और जापान के बीच सहयोग बनाने का प्रयास किया। जापान ने चीन में अपने विशेषाधिकार बढ़ा तो लिए, लेकिन जापान में अनेक लोग अपनी स्थिति से असंतुष्ट थे। जापानी नेताओं ने उत्तर की ओर या दक्षिण की ओर या दोनों ही दिशाओं में विस्तार करने, या बिल्कुल विस्तार ही नहीं करने के पक्ष और विपक्ष में बहस की।

20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इस प्रश्न के उत्तर में आपको यह बताना है कि कैसे जापान ने एक ओर तो पश्चिमी देशों के विरुद्ध एशिया की एकता के सवाल को उठाया, और फिर चीन, कोरिया और मंचूरिया आदि में अपना प्रभाव बढ़ा कर एक साम्राज्यिक शक्ति के रूप में उभरने के लिए इसका उपयोग किया। जापान के साथ पश्चिमी ताकतें जैसा व्यवहार कर रही थीं, जापान ने अपने पड़ोसी देशों के साथ कोई उससे अच्छा व्यवहार नहीं किया। इस संदर्भ में उदाहरण भी दीजिए। उत्तर भाग 20.2 और भाग 20.3 पढ़ने के बाद लिखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) प्रमुख तौर पर इसलिए क्योंकि जापान को इसमें अपनी औपनिवेशिक चालों को आगे बढ़ाने, अपनी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने और एक बड़ी ताकत के रूप में उभरने का अवसर दिखायी दिया। देखिए भाग 20.3.

3) भाग 20.2 में उल्लेखित रूस-जापान युद्ध के बाद के विकल्पों को गिनायें।

बोध प्रश्न 2

1) जापान को यह लगा कि उसे इन व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप युद्ध के दौरान एशिया और प्रशांत क्षेत्र को लौटाना पड़ा था, युद्ध के बाद उसके लाभों को बांटने की प्रक्रिया में पश्चिमी ताकतों ने उसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया, आदि। उत्तर भाग 20.4 के आधार पर लिखें।

2) युद्ध के दौरान जापान अपने उत्पादनों के लिए बाजार हासिल करने में समर्थ रहा क्योंकि पश्चिमी राष्ट्र मुख्यतौर पर युद्ध से संबंधित उत्पादन में व्यस्त थे। इससे जापान में कुछ वस्तुओं का उत्पादन बढ़ गया। उत्तर भाग 20.5 के आधार पर लिखें।

इकाई 21 चीन और प्रथम विश्व युद्ध

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 प्रथम विश्व युद्ध के ठीक पहले चीन की स्थिति
  21.2.1 युआन की महत्वाकांक्षाओं का विरोध
  21.2.2 युआन की मृत्यु के परिणाम
  21.2.3 बदलता आर्थिक परिदृश्य
21.3 विश्व युद्ध और चीन
  21.3.1 इक्कीस मांगें
  21.3.2 इक्कीस मांगें क्या थीं?
  21.3.3 चीनी और पश्चिमी प्रतिक्रियाएँ
21.4 युद्ध में भाग लेने का निर्णय
  21.4.1 शांति संधि
  21.4.2 चीनी प्रतिक्रियाएँ
21.5 मई 4, 1919
21.6 सारांश
21.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- प्रथम विश्व युद्ध के ठीक पहले की चीन की राजनीतिक स्थिति को समझ सकेंगे,
- युद्ध में चीन के उलझाव को, और यह भी, समझ सकेंगे कि किस तरह पूर्वी एशिया में चीन के प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से जापान ने इक्कीस मांगों के रूप में अपने शत्रुतापूर्ण प्रयास किये,
- यह जान सकेंगे कि चीन ने इक्कीस मांगों की क्या प्रतिक्रिया दी,
- पेरिस शांति संधि सम्मेलन और इसके प्रति चीन की प्रतिक्रिया के विषय में जान सकेंगे, और
- यह समझ सकेंगे कि किस तरह चीनी भावनाओं का विस्फोट 1919 में 4 मई के आंदोलन के रूप में सामने आया।

21.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम प्रथम विश्व युद्ध के ठीक पहले की चीन की राजनीतिक स्थिति की छानबीन करेंगे। इस इकाई में युद्ध में चीन के उलझाव और इक्कीस मांगों के रूप में जापान के आक्रामक क्रियाकलापों पर भी विचार किया गया है। हमने 1919 की 4 मई की घटना की भी चर्चा की है। हमने इस बात पर भी विचार किया है कि शांति सम्मेलन से चीन की क्या अपेक्षाएँ थीं। पेरिस संधि की शर्तों ने चीन की आशाओं को झूठा साबित कर दिया और चीन में इसकी प्रतिक्रियाएँ हुईं। इस इकाई में इस पक्ष पर भी विचार किया गया है।

21.2 प्रथम विश्व युद्ध के ठीक पहले चीन की स्थिति

इकाई 17 में हमने 1911 की क्रांति की पृष्ठभूमि में काम करने वाली सामाजिक शक्तियों

और उसकी प्रमुख खामियों की छानबीन की है। संक्षेप में दोहराया जाये तो, 1911 की क्रांति ने बेशक चीन की राजनीतिक दुनिया का रूप ही बदल दिया था। फिर भी, चीन के सामने जो कुछ बुनियादी समस्याएँ थी उनका हल यह क्रांति नहीं दे पायी। विदेशी साम्राज्यवादी उपस्थिति और गहरी या मजबूत हो गयी। स्थानीय स्तर पर आर्थिक अस्थिरता की स्थिति थी, और अंतिम विश्लेषण में क्रांति ने कोई राजनीतिक स्थिरता भी प्राप्त नहीं की। लगभग क्रांति के समाप्त होते ही उसके बुनियादी सिद्धांत भी समाप्त हो गये।

सन् 1912 में नये गणतंत्र का राष्ट्रपति बनाये गये साम्राज्यिक सेनापति, युआन शी काई, ने तुरंत यह स्पष्ट कर दिया कि उसने नये चीन की जो कल्पना की थी उसमें एक गणतांत्रिक और जनतांत्रिक समाज बनाने की बात शामिल नहीं थी। युआन स्वयं तो माचुओं से छुटकारा पाने को तुरंत सहमत था, लेकिन उसकी अपनी महत्वाकांक्षाएँ राजतंत्रीय ही थीं। क्रांतिकारियों ने उससे इस अपेक्षा से संपर्क किया था कि वे उस पर नियंत्रण रखने में समर्थ होंगे। यूरोपीय ताकतों ने उसे इसलिए मौन समर्थन दिया क्योंकि वे उसे स्थिरता के प्रतीक के रूप में देखते थे। युआन एक नये चीन में काम करने वाला परंपरागत साम्राज्यवादी था, जो एक गणतंत्र का राष्ट्रपति तो था लेकिन उसकी महत्वाकांक्षा सम्राट बनने की थी। इसी कारण कांग याउन्वे ने युआन को उसकी राजतंत्रीय महत्वाकांक्षाओं के लिये लताड़ते हुए, उसे लिखा : "मांचू के शाही घराने के दृष्टिकोण से तुम एक सत्ता हड़पने वाले हो, और गणतंत्र के दृष्टिकोण से तुम एक गद्दार हो।"

इस तरह की आलोचना के बावजूद, युआन ने शाही प्रथा को आधुनिक वैधानिक व्यवहार से मिलाने का प्रयास किया। उसने शाही दरबार बुलाये, मामंतों को खिताब दिये और मतदाता कानून बदलवाकर अपने आपको गणतंत्र का आजीवन राष्ट्रपति बनवा लिया। युआन के संपूर्ण सत्ता हथियाने के प्रयासों को समर्थन देने के लिए जनता की ओर से समर्थन का प्रदर्शन करवा दिया गया। उदाहरण के लिये, प्रतिनिधियों को यह आदेश दिया गया कि वे इस बात पर विचार-विमर्श करें कि चीन में राजनीति का क्या स्वरूप होना चाहिए। जैसा स्वाभाविक ही था, इन पढ़ाए हुए प्रतिनिधियों ने "वर्तमान राष्ट्रपति युआन शी काई से सादर यह आग्रह किया कि वह चीनी साम्राज्य के सम्राट की पदवी ग्रहण करें।" अपने सम्राट बनने की आशा में, युआन ने शाही भट्टी को उसके महल के लिये 40,000 चीनी मिट्टी के पात्र तैयार करने का आदेश दे दिया। लेकिन जापान ने 21 माँगों के रूप में चेतावनी देकर युआन की सम्राट बनने की योजना को बीच में ही काट दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.2.1 युआन की महत्वाकांक्षाओं का विरोध

युआन का शाही राज जनवरी, 1916 को शुरू होना था। जब युआन के इरादों का जनता को पता चला तो उसका विरोध भी खुलकर सामने आ गया। इस तरह 1911 की क्रांति के जनकों को 1913 में युआन की गद्दारी से बहुत निराशा हुई थी। लेकिन, अब जो बात स्पष्ट दिखायी दे रही थी वह यह थी कि जिन सुधारकों ने चिंग के अधीन एक सीमित राजतंत्र के विचार का समर्थन किया था, वे भी अब चीन में राजतंत्र की फिर से स्थापना का समर्थन करने के इच्छुक नहीं थे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस सीमा या अंश तक ही 1911 की क्रांति का प्रभाव स्थायी रहा।

दक्षिणी चीन और विदेश के क्रांतिकारी चौकन्ने हो गये। यहाँ तक कि जिन नरमपंथी रूढ़िवादियों ने युआन का समर्थन किया था वे भी अब उससे अलग हो गये। उनमें सबसे प्रमुख था लियांग की चाओ। उसने युआन सरकार में अपने न्याय मंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया, फिर वह त्येनजिंग चला गया जहाँ से उसने युआन की राजतंत्रीय महत्वाकांक्षा पर प्रहार करना शुरू कर दिया।

दूसरों ने भी अपेक्षाकृत सीधे-सीधे युआन का प्रतिरोध किया। एक युवा सेनापति, त्साई आओ, ने युनान प्रांत में एक राष्ट्रीय सुरक्षा सेना का गठन किया जिसने उसके नेतृत्व में अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। क्वीचाउ, क्वेंगसी, चीचयेंग, सीचुआन प्रांतों ने उसका अनुसरण करते हुए स्वाधीनता की घोषणा कर दी।

सन् 1913 के विपरीत, युआन अब अलगाव की इस धारा पर काबू नहीं कर सका। उत्तरी चीन तक में उसका नियंत्रण हाथ से निकल रहा था। वह जिस सेना पर निर्भर करता था, वह भी अब उसका समर्थन करने की इच्छुक नहीं थी। इस प्रतिरोध के चलते युआन को सेवानिवृत्त होना पड़ा और राष्ट्रपति का पद उप-राष्ट्रपति, ली युआन हुंग, को दे दिया गया। 1916 में युआन की अचानक मृत्यु से यह मुद्दा हमेशा के लिए हल हो गया।

21.2.2 युआन की मृत्यु के परिणाम

युआन की मृत्यु से राजनीतिक विखंडन, अर्थात् "युद्ध नेताओं के राज के दौर की शुरुआत हुई। समूचे चीन या उसके किसी एक भाग पर कब्जे के लिये राजनीतिक और सैनिक खींचतान का एक दौर शुरू हुआ। एक ही प्रांत के भीतर भी कभी-कभी कई युद्ध नेता होते थे। युद्ध नेताओं और राजनीतिकों के बीच सत्ता के लिए और अधिक छल-कपट चलने के कारण राजनीतिक स्थिति और भी खराब हो गयी। यह राजनीतिक संघर्ष कई चरणों में चला।

युआन की मृत्यु के तुरंत बाद, इस बात के प्रयास किये गये कि ली युआन हुंग को राष्ट्रपति और तुआन ची जुई को प्रधानमंत्री के रूप में लेकर संसद का फिर से संयोजन किया जाए। लेकिन समस्याएँ वैसी की वैसी रहीं। संसद का संयोजन तो हुआ, लेकिन पीयेंग सेनापति अपने अधिकारों का इस्तेमाल वैसे ही करते रहे। उत्तर और मध्यवर्ती प्रांतों के सेनापतियों ने एक पुराने मांचू समर्थक, सेनापति चेंग चुन के नेतृत्व में एक अंतर्प्रांतीय संघ बना लिया। दूसरी ओर, प्रधानमंत्री तुआन ची जुई को चीन के विश्व युद्ध में शामिल होने के मुद्दे को लेकर त्याग पत्र देना पड़ा।

सन् 1917 में अंतिम चिंग शासक, शुआन तुंग सम्राट की राजगद्दी पर वापसी के एक थोड़े समय के प्रयास ने राजनीतिक अनिश्चितता को और बढ़ा दिया। (यह स्मरणीय है कि उसने युआन शी काई के इशारे पर गद्दी छोड़ दी थी) सेनापति चेंग शुन और केंग यू वी इस प्रयास में सक्रिय रूप से शामिल थे। सेनापति चेंग ने केंग की मदद से पीकिंग पर कब्जा कर लिया और एक बार फिर अंतिम चिंग सम्राट को गद्दी पर वापिस लाने का प्रयास किया। यह वापसी लगभग दो सप्ताह तक रही क्योंकि दूसरे सेनापतियों ने तेजी से कार्यवाही करके इसे दबा दिया। उन्होंने तुआन ची जुई का साथ दिया और वह एक बार फिर प्रधानमंत्री बन गया। इसके परिणामस्वरूप संसद युद्ध नेताओं के कब्जे में मजबूती से आ गयी। इससे दक्षिण प्रांत और भी कट गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस गहराते हुए संकट के दूसरे चरण में, दक्षिणी प्रांत 1917 में संसद से अलग हो गये। कुओमिनतांग और सून यातसेन ने 1917 में कैंटन में कोई 250 सांसदों को लेकर एक सभा बुलाने का प्रयास किया। यहाँ एक सैनिक सरकार का गठन किया गया जिसका महा सेनापति सून को बनाया गया। लेकिन, इस बार भी असली सत्ताधारी स्थानीय युद्ध नेता ही रहे।

देश वैसे तो तेजी से राजनीतिक विघटन की ओर बढ़ रहा था, लेकिन बीजिंग और उसके आसपास के क्षेत्रों पर नियंत्रण करने वाला गुट अब भी इस भ्रम को बनाये हुए था कि वह चीनी गणतंत्र का प्रतिनिधित्व करता था। अगस्त 14, 1917 को प्रधानमंत्री तुआन ने जर्मनी के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। तुआन स्वयं अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था। बैयांग सेनापति गुटों में बिखर गये थे। (आनहुई और फ्यूजिआन प्रांतों के सैन्यवादियों वाला) आनफू गुट तुआन का समर्थन कर रहा था और जीली गुट एक और सेनापति फेंग कू चेंग का समर्थन कर रहा था। तुआन ने जापान से ऋण लेकर अपनी स्थिति को मजबूत करने का प्रयास किया। प्रकट में तो ये ऋण जर्मनों से लड़ने के लिए लिए गए थे, लेकिन वास्तव में उनका उपयोग उसके शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध के लिए किया गया।

दक्षिण में भी, सून की कैंटन संसद में विभाजन हो गया। सून को मई, 1918 में बाध्य होकर शंघाई चला जाना पड़ा। अब दक्षिण में सैन्यवादियों के क्वेंगसी गुट का वर्चस्व या बोलबाला हो गया।

युद्ध के दौरान जापान की नाटकीय और आक्रामक कार्यवाहियों के कारण चीन का राजनीतिक संकट और गहरा हो गया।

21.2.3 बदलता आर्थिक परिदृश्य

प्रथम विश्व युद्ध जिस समय हुआ, वह चीन में गिरती राजनीतिक स्थिति का समय था, फिर भी इसने चीनी उद्योग को काफी बढ़ावा दिया।

युद्ध के परिणामस्वरूप, पश्चिमी प्रतिद्वंद्विता का दबाव कम हो गया। चीनी उद्यमियों ने इस अवसर का लाभ उठाया। लेकिन औद्योगिक बाढ़ विदेशी प्रशासन वाले उन संधिगत बंदरगाहों में आयी जो संधि व्यवस्था के जरिए युद्ध नेतागिरी से सुरक्षित थे।

कुछ समय से एक नए सौदागर वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी। 1901 के बाद, उन्हें सरकारी नीतियों से पोषण मिला। 1914 तक 1000 से भी ऊपर वाणिज्य मंडल थे जिनकी सदस्यता 200,000 से भी अधिक थी। बड़े स्तर के उद्यमों पर विदेशी कंपनियों का वर्चस्व बना रहा। 1914 तक एक आधुनिक चीनी प्रशासनिक और उद्यमी वर्ग के उदय की शुरुआत हो चुकी थी। (इस आर्थिक वृद्धि के आयामों पर बाद में एक इकाई में विचार किया गया है।)

21.3 विश्व युद्ध और चीन

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, युद्ध का समय चीन में भयंकर राजनीतिक परिवर्तन का भी समय था। जब 1914 में युद्ध छिड़ा तो, चीन ने तटस्थ रहने की घोषणा की। लेकिन विदेशी ताकतों की उपस्थिति के कारण चीन को आवश्यक तौर पर इस अंतर्राष्ट्रीय युद्ध में आना पड़ा। जापान ने मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में शामिल होकर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। जापानी सेनाएँ उत्तरी शांतुंग में उतरीं, जिससे चीन की तटस्थता का निरादर हुआ। नवंबर, 1914 में, जापानियों ने जर्मनी के कब्जे वाले किंगताओं बंदरगाह को अपने नियंत्रण में ले लिया और फिर वे पूरे शांतुंग को अपने अधिकार में करने के लिए आगे बढ़े।

युआन शी काई को गुप्त रूप से इक्कीस माँगे देने के लिए आधार तैयार करने की दशा में जापान की ओर से यह पहली कार्यवाही थी। अगर इन माँगों को हूबहू मान लिया जाता तो, जापान फिर अपने और बड़े साम्राज्यवादी लक्ष्यों को प्राप्त करता।

21.3.1 इक्कीस मांगें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान ने अपने राजनीतिक और आर्थिक हितों को सामान्य तौर पर पूर्व में और विशेष तौर पर चीन में उस समय स्थायी करने का प्रयास किया जब पश्चिमी साम्राज्यिक ताकतें विश्व युद्ध में व्यस्त थीं। चीन-जापान संबंधों में एक बुनियादी समस्या चीन में पश्चिमी ताकतों की तुलना में जापान की भूमिका और शक्ति को लेकर जापान का असंतोष था। अमेरिका और यूरोपीय वित्त समूहों के पास जो रेलपथ और उत्खनन की रियायतें थीं उनमें से अधिकांश के एकाधिकारी स्वरूप के कारण जापान के लिए यह खतरा बन गया था कि उसे विकास प्रक्रिया से पूरी तौर पर बाहर कर दिया जाएगा और वह राजनीतिक लाभों से वंचित हो जाएगा। चार ताकतों के (इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और रूस) संघ के 15 अप्रैल, 1911 के समझौते के अनुसार चीन ने इन चार राष्ट्रों को चीन को कोश और पूँजी उपलब्ध कराने के लगभग विशेष अधिकार दे दिए। इस तरह के समझौतों को जापान ने चीन में जापानी निवेश की संभावनाओं को काटने के चीनी और यूरोपीय प्रयासों के अतिरिक्त प्रमाण के रूप में देखा। जापान ने चीन में अपने हितों की रक्षा और उनके विस्तार के लिए जो राजनीतिक उपाए किए थे वे इक्कीस मांगों के रूप में सामने आये।

जापानी राजनीति की अपेक्षाओं ने भी इस आक्रामक नीति को आकार देने में एक बड़ी भूमिका अदा की। यहाँ हमें जापान के दवाबों में जाने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी इतना कहना पर्याप्त होगा कि पूर्वी एशिया में नेता बनने की महत्वकांक्षा, बढ़ती आबादी के लिए निकासी, बाजारों और संसाधनों तक पहुँचने के लिए पड़ने वाले दबाव, इन सबने इक्कीस माँगों की पृष्ठभूमि तैयार की। विश्व युद्ध ने जापान को उसके हितों की रक्षा करने और नये हितों को प्राप्त करने की उसकी संभावना और क्षमता के सभी संदेहों और असुरक्षाओं को दूर करने का अवसर दे दिया। चीन में जापानी मंत्री ने कथित तौर पर कुछ-कुछ चित्रात्मक और स्पष्ट शब्दों में जापान के इरादों को व्यक्त किया था। "विश्व भर में व्याप्त वर्तमान संकट ने वास्तव में मेरी सरकार को दूरगामी कार्यवाही करने को बाध्य किया है। जब किसी जौहरी की दूकान में आग लगती है तो, पड़ोसियों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे अपनी मदद या बचाव नहीं करेंगे।"

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, **इक्कीस माँगों** में से कई माँगे ऐसी थीं जिनमें यह प्रयास किया गया था कि जापान को चीन में वैसे ही अधिकार मिलें जैसे यूरोपीय ताकतों को एक लंबे समय से मिले हुए थे। इन माँगों के पीछे उत्प्रेरक का काम करने वाली जापान की शांतुंग में जर्मनी पर विजय थी। सवाल अब शांतुंग में जर्मनी को प्राप्त पट्टों के और आर्थिक अधिकारों के निपटारे का था और जापान उन्हें हथियाने को आतुर था।

चीनी राष्ट्रपति, युआन शी काई, को 7 मई, 1915 को इक्कीस माँगों की शक्ल में एक अल्टीमेट्म दिया गया। यह वह दिन था जिसे चीनी छात्र और राष्ट्रवादी राष्ट्रीय अवमानना दिवस के रूप में मनाते थे।

21.3.2 इक्कीस माँगें क्या थी?

इन माँगों में व्यापक मुद्दों को शामिल किया गया था। उन्हें पाँच वर्गों में रखा गया था।

1) पहले वर्ग में शांतुंग प्रांत से संबंधित माँगें थी: इसके तहत चीनी सरकार से यह आग्रह किया गया था कि वे शांतुंग में जर्मन अधिकारों पर जापान के निर्विवाद अधिकार को मान्यता दे। इसके अलावा चीन को इस बात पर सहमत होना था कि वह शांतुंग का कोई भी भाग किसी और ताकत को पट्टे पर या पृथक करके नहीं देगा। चीन से रेलपथ निर्माण के अधिकार देने की भी माँग की गयी थी। इस क्षेत्र में चीनी नगरों को विदेशियों के लिए खोलने की भी माँग की गयी।

2) दूसरे वर्ग में दक्षिणी मंचूरिया और आंतरिक मंगोलिया से संबंधित माँगे थीं। इस वर्ग के तहत जापान ने पोर्ट आर्थर और आंतुंग मुकदेन रेलपथ के पट्टे को निन्यानवे साल के लिए बढ़ाने की माँग की। यह माँग की गयी कि जापानी नागरिकों को वास्तविक संपत्ति को व्यापारिक या वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए पट्टे पर लेने या अपने स्वामित्व में रखने की अनुमति दी जाए, और उत्खनन के विशेष अधिकार दिए जाएँ।

यह माँग की गई कि चीन किसी तीसरी ताकत को रेलपथ निर्माण के अधिकार देने से पहले या इस तरह के निर्माण के लिए वित्तीय ऋण लेते समय जापान की सहमति प्राप्त करे।

इसके अलावा चीन से यह भी माँग की गई कि वह "राजनीतिक, वित्तीय या सैनिक मामलों में निर्देशकों या सलाहकारों की नियुक्ति करने" से पहले जापान से परामर्श ले।

3) तीसरा वर्ग हानयेपिंग कंपनी से संबंधित था। इसमें यह माँग रखी गयी थी कि चीन इस कंपनी में जापानी पूँजीपतियों के विशेष हितों को मान्यता दे, और जापान की इच्छा थी कि चीन इस कंपनी को जापान और चीन के संयुक्त प्रबंधन में रखे। इस वर्ग में भी यह माँग रखी गई कि चीन इस कंपनी से संबंधित किसी भी अधिकार का निपटारा जापान की पूर्व अनुमति के बिना नहीं करे। इसके अलावा चीन से यह भी कहा गया कि वह पड़ोसी खानों में जापानी पूँजीपतियों के हितों की रक्षा करे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) वर्ग चार में चीन के तट को और चीन के तट से हटकर स्थित द्वीपों को पृथक न होने देने संबंधी माँगें थीं। इसके अनुसार चीन किसी तीसरी ताकत को चीन के तट पर या उससे हटकर स्थित कोई बंदरगाह या खाड़ी पट्टे पर या पृथक करके नहीं दे सकता था।

5) वर्ग पाँच सबसे विवादास्पद माँग वर्ग था। इस वर्ग में "विचाराधीन और अन्य सवालों के समाधान से संबंधित प्रस्ताव" कही जाने वाली व्यापक माँगें शामिल थीं और इन्हें जापानी विदेश मंत्रालय माँग न कह कर "इच्छाओं" का मंगल नाम देता था।

वास्तव में, इसमें कई माँगें थी जैसे–

- चीनी सरकार प्रभावशाली जापानी राजनीतिक, वित्तीय और सैनिक सलाहकार नियुक्त करे।
- जापानियों को चीन के आंतरिक भागों में अस्पताल, स्कूल और मंदिर बनाने का अधिकार दिया जाए।
- जापान को पुलिस प्रशासन में और जापान से हथियार और युद्ध सामग्री और विशेषज्ञों की आपूर्ति में हस्तक्षेप करने दिया जाए।
- जापान ने वूचांग को चूजियेंग नानचेंग पथ से जोड़ने वाले एक रेलपथ के निर्माण के अधिकार की माँग की, और
- फारमूसा द्वीप और फ्यूजियान प्रांत के साथ जापान के विशेष संबंधों को देखते हुए, जब कभी इन क्षेत्रों में रेल पथों, खानों, बंदरगाह और गोदी पर कामों के लिए पूँजी की आवश्यकता हो तो, जापान से परामर्श किया जाए।

21.3.3 चीनी और पश्चिमी प्रतिक्रियाएँ

इस अंतिमेत्थम (अल्टीमेटम) की जो प्रतिक्रिया हुई वह मुख्य तौर पर अंतिम वर्ग पाँच पर केंद्रित थी। जापान के इस शब्द जाल ने कि ये माँगें नहीं "इच्छाएँ" थीं, और उसे गुप्त रखने के प्रयासों ने इस अनुमानों और अफवाहों को हवा दी कि जापान वास्तव में चीन में अपना संरक्षित राज्य बनाने की फिराक में था। फिर भी, पश्चिमी ताकतों की प्रतिक्रियाएँ देर से और दोहरेपन लिए आई।

चीन के मुकाबले एक ऐसी सैन्य शक्ति थी जिसका प्रतिरोध वह सैन्य बल पर नहीं कर सकता था। इसलिए उसने जापानियों से टक्कर लेने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रचार को हथियार बनाया। युआन शी काई यह मानता था कि वर्ग पाँच की माँगें चीन में पश्चिमी हितों के लिए चुनौती होंगी, इसलिए उसने जापान को मात देने के लिए पश्चिमी ताकतों का समर्थन पाने की गरज से इनका उपयोग किया।

जापानियों ने चीन की ओर से किसी भी प्रकार के प्रतिरोध की अपेक्षा नहीं की थी। एक संधिगत बंदरगाह से निकलने वाले अखबार "नार्थ चाइना हेराल्ड" ने इन माँगों के विषय में लिखा कि ये "हिसाब-किताब लगाकर रखी गयी माँगें थीं जिन्हें अगर चीन ने मान लिया तो, यह जापान के हाथ में नियंत्रण दे देने के बराबर होगा"। इस अखबार ने गहराई से विश्लेषण करते हुए विदेशी शक्तियों का ध्यान चीन में घटित हो रही नाटकीय घटनाओं की ओर खींचा।

बातचीत का दौर लंबा चला और चीनियों ने इस बात पर जोर दिया कि विभिन्न माँग वर्गों के हर प्रावधान पर लंबी बहस चले। उसका इरादा इस तरह अधिक से अधिक समय निकाल देने का था। जिस युआन शी काई के सम्राट बनने के पहले के प्रयासों ने उसके विरुद्ध जनता को भड़काया था, उसने अब जापान का प्रतिरोध करके अपनी बिगड़ी छवि को सुधारने का प्रयास किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युआन ने चीन में आधुनिक क्षेत्र से जापान को अलग रखने के अपने प्रयासों के लिए भी समर्थन प्राप्त किया। छात्रों और दुकानदारों ने जापानी सामानों के बहिष्कार का आयोजन किया। जापान में रह रहे चीनी क्रांतिकारी जापान के इस आक्रमण से ठगा हुआ महसूस करने लगे और उनका जापान छोड़कर चीन जाने का सिलसिला चालू हो गया। स्मरणीय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से जापान विभिन्न चीनी क्रांतिकारियों के लिए एक सुरक्षित शरणस्थल रहा था। जापान प्रेरणा का स्रोत भी रहा था। अब जापान ने यह सिद्ध कर दिया था कि वह भी पश्चिमी साम्राज्यवादियों से भिन्न नहीं था।

जापान ने एक राजनीतिक गुट को दूसरे राजनीतिक गुट के विरुद्ध उकसाने का प्रयास किया तो, स्थिति और भी जटिल हो गयी। जापान ने यह धमकी दी कि अगर युआन ने सभी माँगें नहीं मानीं तो, वह उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सून यात-सेन जैसे क्रांतिकारियों का समर्थन देना शुरू कर देगा, और अगर युआन ने उसकी माँगें मान लीं तो वह युआन को सत्ता से हटाने के सून के प्रयासों में उसका समर्थन नहीं करेगा। इस अवधि में सून की भूमिका अंतर्विरोधी (या परस्पर विरोधी) भी रही और आपराधिक भी। जैसा कि इकाई 17 में बताया जा चुका है, साम्राज्यिक शक्तियों के प्रति सून यात सेन का रवैया हमेशा दोहरापन लिए रहा, क्योंकि उसने कभी भी एक स्पष्ट साम्राज्यवाद विरोधी रुख नहीं अपनाया। इस दोहरेपन का कारण यह था कि उसे इन्हीं साम्राज्यिक शक्तियों से समर्थन लेना होता था।

जापानी विदेश मंत्रालय को लिखे एक पत्र में, सून ने युआन को सत्ता से हटाने के लिए जापानी सहायता के एवज़ में जापान को युआन के प्रस्तावों से कहीं अधिक अनुकूल शर्तों का प्रस्ताव रखा। सून ने एक स्थायी चीन-जापान गठबंधन की गारंटी दी और भारी वाणिज्यिक विशेषाधिकारों और लाभों का वचन दिया। जापान को ये वचन देने के कारण सून का नेतृत्व कुछ समय के लिए संकट में पड़ गया।

इसके जवाब में युआन ने जापान को मात देने के लिए उन माँगों को सार्वजनिक कर दिया जिसे जापानी गुप्त रखने की आशा किए हुए थे। युआन के इस प्रचार के अनुकूल परिणाम हुए, क्योंकि इंग्लैंड और अमेरिका वर्ग पाँच की माँगों के दूरगामी परिणामों और उनके कारण चीन में उनके हितों के अवरुद्ध होने की आशंका को लेकर चौकन्ने हो गए। इंग्लैंड में जापानी राजदूत, इनोवे ने यह कह कर अंग्रेजों को तुष्ट करने का प्रयास किया कि अखबारों ने तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया था। उसने बिना हिचके यह पुष्टि की

कि "चीन को लेकर ऐसी कोई भी माँग नहीं रखी गई है जिसमें चीनी गणराज्य के राजनीतिक नियंत्रण या ऐसे किसी भी एकाधिकारी रियायत की बात शामिल हो जो महाशक्तियों के अभी तक स्वीकृत समान अवसर के सिद्धांत का अनादर करने वाली हो।"

अमेरिका ने अपने रुख को स्पष्ट कर दिया कि वह "चीन पर किसी विदेशी ताकत के द्वारा राजनीतिक, सैनिक या आर्थिक प्रभुत्व जमाने को उदासीनता से नहीं लेगा।" इस घटनाक्रम पर अमेरिका और इंग्लैंड का चिंतित होना मुख्य तौर पर उनके अपने हितों की रक्षा के उद्देश्य से था। चीन की राष्ट्रीय और क्षेत्रीय अखंडता की बात और तमाम संबंधित बातों से गौण थी। जापान ने तुरंत अमेरिका को फिर यह विश्वास दिलाया कि अमेरिका ने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होते समय प्रत्येक विदेशी ताकत द्वारा दूसरी विदेशी ताकत के हित को मान्यता देने संबंधी जो "खुला द्वार" की नीति पेश की थी उसका उल्लंघन नहीं किया जाएगा।

बहरहाल, वर्ग पाँच की माँगों के संभावित दूरगामी परिणामों को लेकर हर ओर संशय की स्थिति थी। जापान के भीतर ही इसे घपले की कूटनीति कह कर इसकी आलोचना हो रही थी। अंतरिम तौर पर चीन ने बी माँगों को इस प्रावधान के साथ स्वीकार कर लिया कि वर्ग पाँच संबंधी सभी बातचीत भविष्य में किसी समय के लिए स्थगित कर दी जाएगी। 1916 में युआन की मृत्यु होने पर, ऐसा लगा कि जैसे तुआन ची जुई के राज में चीन जापान की माँगें मान लेगा। जापान ने युआन शी काई की मृत्यु के बाद तुरंत चीन की राजनीतिक स्थिति का जायजा ले लिया। जापान ने नीशीहारा ऋण की शक्ल में चीन को आर्थिक सहायता दे कर नये प्रधान मंत्री तुआन का समर्थन प्राप्त कर लिया, जिसे तुआन ने अपना राजनीतिक आधार मजबूत करने की गरज से तुरंत स्वीकार कर लिया। इन ऋणों के बदले में तुआन ने जापान से क्या वादे किए यह बात प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर जाकर सामने आई जब जनता में हुई प्रतिक्रिया के कारण तुआन को प्रधानमंत्री पद से हाथ धोना पड़ा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

सही उत्तरों पर (✓) का निशान लगाएँ–

1) चीन का अंतिम चिंग शासक कौन था?

   क) युआन शी काई

   ख) चेंग चुन

   ग) चुआन तुंग

   घ) कांग यू

2) प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने से चीनी अर्थव्यवस्था में कैसे वृद्धि हुई? लगभग पाँच पंक्तियों में लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) सही वक्तव्य पर (✓) निशान लगाएँ–

   क) जैसे ही प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा, चीन मित्र राष्ट्रों में शामिल हो गया।

   ख) जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा, चीन मित्र राष्ट्रों में शामिल हो गया।

   ग) जैसे ही प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा, चीन ने मित्र राष्ट्रों से लड़ने के लिए जापान के साथ साँठ-गाँठ कर ली।

   घ) जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा, चीन ने तुरंत अपने आपको तटस्थ घोषित कर दिया।

4) इक्कीस माँगें क्या थीं? लगभग 10 पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

21.4 युद्ध में भाग लेने का निर्णय

युद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से चीन के भाग लेने का सुझाव मित्र राष्ट्रों की इस आशा के कारण आया कि उनकी चीनी साज-सामान और मानवशक्ति तक पहुँच हो जाएगी। 10 लाख चीनियों को प्रशिक्षण देने की महत्वाकांक्षी योजनाएँ भी बनीं। चीन ने कोई 100,000 मजदूर भेजे भी।

पीकिंग सरकार पर काबिज़ प्रधान मंत्री तुआन और आनफू सेनापतियों को इस भागीदारी से यह आशा थी कि उन्हें धन और हथियार दोनों मिल सकेंगे, और उन्हें अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए इन दोनों की ही बहुत सख्त आवश्यकता थी। युद्ध में भागीदारी का समर्थन जनता ने इस आशा से किया कि मित्र राष्ट्रों की विजय में योगदान करने से इस विजय की उपलब्धियों में हिस्सेदारी का चीन को अधिकार होगा और शायद वह अपनी नियति पर फिर से नियंत्रण बना लेगा। कम से कम आशा इतनी तो थी ही कि खोए हुए अधिकार और स्वायत्तता तो वापस मिल ही जाएगी और शायद जापानी माँगों को भी समाप्त किया जा सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रीय आत्म निधार्रण और क्षेत्रीय अधिकारों की बहाली के सवालों पर वुडरो विल्सन की घोषणाओं के प्रसार से चीन में आशा का संचार हुआ। युद्ध बाद की व्यवस्थाओं में राष्ट्रीय आत्म-निर्धारण को एक दिशा-निर्देशक सिद्धांत बनाने पर वुडरो विल्सन के जोर देने से चीनी युवाओं में आदर्शवाद की एक नयी भावना बनी। उन्हें यह विश्वास था कि शक्ति सम्मेलन में शातुंग में चीन के अधिकारों को मान्यता मिलेगी और जापानी माँगों को रद्द कर दिया जाएगा।

21.4.1 शांति संधि

शांति संधि में भाग लेने वाले चीनी प्रतिनिधिमंडल में दक्षिण चीन के गणराज्य और पीकिंग सरकार दोनों के प्रतिनिधि शामिल थे।

भविष्य को लेकर चीनी जनता में आह्लाद की जो स्थिति थी वह इस समय चकनाचूर हो गयी जब यह खबर वापस आई कि शांति सम्मेलन चीन की क्षेत्रीय समस्याओं को हल करना तो दूर, उल्टे शातुंग क्षेत्र में जर्मनी के पट्टे वाले क्षेत्र को जापान को देकर जापान की स्थिति को मजबूत कर रहा था। इस कार्यवाही से पश्चिमी ताकतों की साम्राज्यिक हितों की रक्षा करने की प्रतिबद्धता की पुष्टि भी हो रही थी।

यह बात भी सामने आई कि इंग्लैंड, फ्रांस और युद्ध नेताओं की सरकारों के साथ कई गुप्त समझौते करके जापान को जर्मनी के अधिकार दे दिए गए थे। पेरिस में, चीन के प्रतिनिधियों ने अपने आपको दो कारकों के हाथ विवश पाया। पहले, शातुंग क्षेत्र पर जापान के दावों को फरवरी, 1917 में जापान और इंग्लैंड, फ्रांस और इटली के बीच हुई एक गुप्त संधि में मान्यता दे दी गई थी। यह संधि उस समय संपन्न हुई थी जब चीन के युद्ध में प्रवेश के सवाल पर विचार-विमर्श चल रहा था। एक और क्षति पहुँचाने वाला रहस्योद्घाटन नीशीहारा ऋणों के संबंध में जापान और तुआन की रुई की सरकार के बीच

हुए समझौते के बारे में था। जापानी आर्थिक सहायता प्राप्त करने की गरज से, तुआन ने वचन दिया था कि चीन शांतुंग में रेलपथों के प्रबंध के जापानी प्रस्तावों को "सहर्ष स्वीकार" कर लेगा। संक्षेप में, तुआन ने इस समझौते के जरिए शांतुंग में जापान के विशेष हित को मान्यता दे दी थी।

इस तरह, संक्षेप में, संधि के अंतर्निहित सिद्धांत थे साम्राज्यवादी हितों को बनाए और बचाए रखना।

21.4.2 चीनी प्रतिक्रियाएँ

चीनी आशाओं के साथ विश्वासघात हुआ था। प्रभाव क्षेत्र, विदेशी सैनिक, विदेशी डाकघर, तार घर, दूतीय अधिकार क्षेत्र, क्षेत्रातीतता, पट्टे वाले क्षेत्र, विदेशी रियायतें और निश्चित शुल्क दरें सब जैसी की तैसी बनी रहनी थीं। यह लगता था कि चीन ने व्यर्थ ही अपना बड़ा मजदूर बल यूरोपीय मोर्चे पर भेजा था। लगता था जैसे सब कुछ गँवा दिया गया था। निराशा के इस बोध को शायद उस समय एक छात्र के इस विलाप में सबसे अच्छे ढंग से संजोया गया है—

> "हमें बताया गया है कि युद्ध के बाद जो वितरण होगा, उसमें चीन जैसे राष्ट्रों को, उनकी सभ्यता, संस्कृति, उद्योग को निर्बाध विकसित करने का अवसर मिलेगा। हमें बताया गया है कि गुप्त प्रतिज्ञा पत्रों और जबरन समझौतों को मान्यता नहीं दी जाएगी। हमने इस नए युग के उदय की प्रतीक्षा की, लेकिन चीन के लिए ऐसा सूर्य उगा नहीं। यहाँ तक कि राष्ट्र के पालने (चीनी दार्शनिक, कन्फ्यूशियस, की गृहभूमि, शांतुंग) को भी चुरा लिया गया।"

चीनियों ने इसे (संधि को) चीन के साथ विश्वासघात समझा, और उनका देशभक्ति और राष्ट्रीयता के बोध से उपजा रोष जबरदस्त ढंग से फूटा, जो पीकिंग में 4 मई, 1919 के प्रचंड प्रदर्शनों के रूप में सामने आया। इन प्रदर्शनों का लक्ष्य जापान, पश्चिमी साम्राज्यिक शक्तियों और पीकिंग के युद्ध नेता थे जिन्होंने जापानी साम्राज्यवाद के मजबूत होने की प्रक्रिया को सुगम किया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.5 4 मई, 1919

पीकिंग राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के छात्र इस समझौते के विरुद्ध संगठित होने लगे। पेरिस सम्मेलन में गए प्रतिनिधियों से संधि पर हस्ताक्षर न करने का आग्रह करने की योजनाएँ बनीं। चीन के सभी भागों में प्रदर्शनों का भी विचार बनाया गया। पीकिंग के तियेनान मेन चौक में एक विराट प्रदर्शन की योजना बनाई गयी।

4 मई, 1919, रविवार था। स्कूलों और कॉलेजों के 13,000 छात्र जमा हुए। उन्होंने इस समझौते की निंदा की और "घर के गद्दारों" के विरुद्ध कार्यवाही की माँग की। उन्होंने जापान में नियुक्त चीनी मंत्री को पीटा।

इस प्रदर्शन की देखादेखी और प्रदर्शन भी हुए। विरोध-प्रदर्शनों का आकार बढ़ता गया और वे और भी जल्दी-जल्दी होने लगे। नये सामाजिक और आर्थिक वर्गों ने इनका समर्थन किया। चीनी अर्थव्यवस्था का बहुत विस्तार हो गया था, और इसके साथ-साथ मजदूरों, उद्योगपतियों और सौदागरों की संख्या भी बढ़ गयी थी।

साम्राज्यवादियों के विरुद्ध होने वाले प्रदर्शनों से छात्र इन वर्गों के और घनिष्ठ संपर्क में आ गये। 4 मई की घटना ने चीनी समाज के विभिन्न वर्गों में एक ऊँचे स्तर की राजनीतिक चेतना जगा दी और देशभक्ति की एक अभूतपूर्व लहर उनमें उमड़ पड़ी। चीन के लिए यह अब तक की बिल्कुल अभूतपूर्व घटना थी। इस जन-दबाव के आगे प्रधान मंत्री तुआन और उनके मंत्रियों को त्याग पत्र देना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप वर्सेल्ज में चीनी प्रतिनिधियों ने संधि पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया।

अब हम 4 मई, 1919 के महत्व की छानबीन भी कर लें। 4 मई का प्रदर्शन केवल एक आंशिक विजय थी। जनता का विरोध तो गद्दार युद्ध नेता सरकार समझी जाने वाली युद्ध सरकार के पतन का कारण बना, वहीं गुप्त संधियों को न तो रद्द किया गया और न ही जापानी आक्रमण को कम किया गया। हाँ, इसके कुछ दूरगामी लाभ अवश्य हुए।

युद्ध और इसके समझौते ने अंततः और स्पष्ट रूप में इस सच्चाई को रेखांकित कर दिया कि पश्चिमी राष्ट्र मुख्य तौर पर अपने हितों की रक्षा करने में रुचि रखते थे। इस सच्चाई को समझ कर ही चीनी बुद्धिजीवियों को दूसरे वैचारिक और राजनीतिक विकल्पों की ओर मुड़ना पड़ा। उन्हें वह मदद अब अधिक ग्राह्य हो गयी जो बोल्शेविक रूस उन्हें देने का इच्छुक था। इसके अतिरिक्त, सोवियत संघ दूसरे साम्राज्यवादी राष्ट्रों से बिल्कुल अलग था। जुलाई, 1918 में, सोवियत संघ ने मंचूरिया में जार शासन वाले रूस द्वारा हथियायी गयी सारी भूमि और विशेष हितों को छोड़ दिया। उसने चीन के प्रभुसत्तात्मक क्षेत्रीय अधिकारों की बहाली के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की। यह सब पश्चिमी ताकतों और जापान की स्थिति के बिल्कुल विपरीत था।

पहली बार चीन में बड़े पैमाने पर राजनीतिक लामबंदी देखने में आयी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से बन रहा एक नया बुद्धिजीवी वर्ग अब एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति बन गया। विभिन्न सामाजिक समूहों या वर्गों के बीच बने संपर्कों से आने वाले समय में एक अधिक संगठित राजनीतिक दिशा में बढ़ना सुगम हो गया। एक नया राष्ट्रीयता बोध दिखायी देने लगा। इस नये राष्ट्रीयता बोध के साथ ही चीन 1920 के दशक में राष्ट्रीय पुनर्एकीकरण और पुनर्निर्माण की दिशा में बढ़ा। अधिक संगठित राजनीतिक कार्यवाही और विवादास्पद विचारधाराओं और चीन द्वारा चुने जाने वाले निश्चित विकल्पों के लिए आधार तैयार हो चुका था। इन्हें कुओमितांग (चीनी राष्ट्रवादी पार्टी) और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की शक्ल में उभरी दो निश्चित राजनीतिक पार्टियों के गिर्द घूमना था।

बोध प्रश्न 2

1) पेरिस शांति सम्मेलन के दौरान जापान के हित किस प्रकार पूरे हुए? लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) चीन में 4 मई के आंदोलन का महत्व बताइए। पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....

21.6 सारांश

वैसे तो 1911 की चीनी क्रांति अपने ध्येयों और उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रही। आगे चल कर इसकी पैदा की हुई अव्यवस्था और खतरनाक स्थितियों ने चीन में जीवन के अस्तित्व को ही व्यर्थ कर दिया। 1912 के प्रारंभ में चीन पूरी तौर पर गड़बड़ी की स्थिति में था। क्रांति ने समाज की राजनीतिक व्यवस्था और ताने-बाने को नष्ट कर दिया था। राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक मंदी और तानाशाह शक्तियों, इन सबने मिल कर राज्य को भीषण अव्यवस्था और अराजकता की स्थिति में ला दिया था।

युआन शी काई के सत्ता में आने पर चीनी जनता की आशाएँ बहुत अधिक जागृत हो गयीं। एक गणतांत्रिक सरकार और जनतांत्रिक सरकार कायम करने की उसकी महत्वाकांक्षा तो पीछे रह गयी। उसका पहला काम मांचूओं का तख्ता पलटना था। लेकिन चीन का सम्राट बनने की उसकी पुरानी महत्वाकाक्षा उसके दिमाग से कभी नहीं निकली। जब वह गणराज्य का राष्ट्रपति बना तो, सभी तरह की शक्तियाँ उसकी सहायता करने को तैयार थीं। यह सहायता उसे अपनी स्थिति मजबूत करने को समर्थ बनाने के लिए तो काफी थी लेकिन वह चीनी स्वाधीनता और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता के लिए स्थायी तौर पर हानिकारक थी।

अपने पूरे शासनकाल के दौरान उसने संसदीय सरकार बनाकर राजतंत्र को बहाल करने और एक स्थायी, एकताबद्ध चीनी समाज बनाने के लिए प्रयास करके कई प्रयोग किए, लेकिन एक के बाद एक सभी नाकाम हो गये। उसके शासन के इन तमाम वर्षों में निरंकुशता का बोलबाला रहा जो उसके पतन का कारण बना। वह राजनयिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सबसे कट गया। उसके पास कोई अतिरिक्त वित्तीय संसाधन नहीं रहे, और सभी मोर्चों पर उसे समर्थन मिलना बंद हो गया।

जब प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ तो चीन ने पहले अपनी तटस्थता की घोषणा की। जब जापान मित्र राष्ट्रों के साथ मिल गया तो, चीन के राजनीतिक आकाश में खतरे के घने बादल उमड़ने लगे। चीन के प्रति जापान के शत्रुतापूर्ण रवैये और उसकी आक्रामक कार्यवाहियों ने चीन के संकट को और भी गहरा दिया। जापानियों ने जिन इक्कीस माँगों को माँग नहीं इच्छाएँ बता कर पेश किया था उनसे चीनी अर्थव्यवस्था और राजतंत्र को एक और धक्का लगा। जापान चीन में एक संरक्षित राज्य बनाने की जी-जान से आशा कर रहा था।

इक्कीस माँगों के प्रति चीन की प्रतिक्रिया गंभीर किस्म की और दूरगामी थी। जल्दी ही पूरे चीन में सभी किस्मों के जापानी प्रतिष्ठानों के विरुद्ध प्रदर्शन शुरू हो गए। जापान विरोधी भावनाएँ चीन में अपने चरम पर पहुँच गईं। और इसके प्रति पश्चिमी ताकतों की प्रतिक्रिया अस्पष्ट और दोहरी बनी रही। चीन का विश्व युद्ध में शामिल होना मुख्य तौर पर रणनीति के तहत था, क्योंकि यह सोचा गया था कि मित्र ताकतों को समर्थन देने से चीन को मदद मिलेगी या उसे लाभ होगा। राष्ट्रीय आत्म निर्धारण और क्षेत्रीय अधिकारों के सवाल पर वुडरो विल्सन की ऐतिहासिक घोषणाओं से चीनियों के मन में आशा की किरणें फूटीं। चीनियों का विश्वास था कि शांति सम्मेलन में वे अपने अधिकारों को मान्यता दिलवाकर जापान से अपना हिसाब चुकता कर लेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसके ठीक विपरीत पेरिस शांति सम्मेलन चीनियों के लिए एक घोर असफलता सिद्ध हुआ। चीन से संबंधित सभी गंभीर मुद्दे अनसुलझे रहे। बल्कि, जापान ने चीन से बाजी मार ली और सारे प्रावधान साम्राज्यवादी ताकतों के पक्ष में चले गए। इस घटना के बाद पूरा चीनी समाज अत्यधिक कुंठित हो गया और उसका मोह भंग हो गया। इस निराशा के कारण देशभक्ति के संवेगों और भावनाओं का व्यापक रूप से विस्फोट हुआ जिसको व्यापक जन-समर्थन मिला और अंत में उसने 1919 में 4 मई के आंदोलन का रूप ले लिया।

21.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग

2) प्रथम विश्व युद्ध के कारण चीनी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत प्रतिस्पर्धा खत्म हो गई। चीनी उद्यमियों ने अवसर का लाभ उठाया, एक नये सौदागर वर्ग का उदय हुआ। अपना उत्तर उपभाग 21.2.3 के आधार पर लिखें।

3) घ

4) इक्कीस माँगों में कई मुद्दे शामिल थे और वे पाँच वर्गों में विभाजित हैं/अपना उत्तर उपभाग 21.3.2 के आधार पर लिखें।

बोध प्रश्न 2

1) पेरिस शांति सम्मेलन जापान के पक्ष में था। इसने जर्मनी के पट्टे वाले क्षेत्र शांतुंग को जापान को देकर जापान की स्थिति मजबूत कर दी। रेलपथों की व्यवस्था भी जापान को दे दी गयी।/अपना उत्तर उपभाग 21.4.1 के आधार पर लिखें।
2) शांति सम्मेलन में पश्चिमी ताकतों ने जापान की आशाओं को झूठा कर दिया। इससे चीनियों में जबरदस्त क्षोभ पैदा हुआ, जिसके परिणामस्वरूप एक देशव्यापी देशभक्तिपूर्ण आंदोलन हुआ। उपभाग 21.4.2 पढ़कर अपना उत्तर लिखें।
3) यह चीनियों की राजनीतिक जीत थी। इसने युद्ध नेताओं की सरकार का पतन करवा दिया। देखें भाग 21.3

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

E.H. Norman: **Japan's Emergence as a Modern State.**
Bai Shouyi: **An Outline History of China.**
Immanuel C.Y. Hsu: **The Rise of Modern China.**
Jean Chesneaux et al: **China from the 1911 Revolution to Liberation.**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1. चीन-जापान युद्ध के दौरान विदेशी पत्रकार युद्ध सम्बंधी समाचार एकत्र कर रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

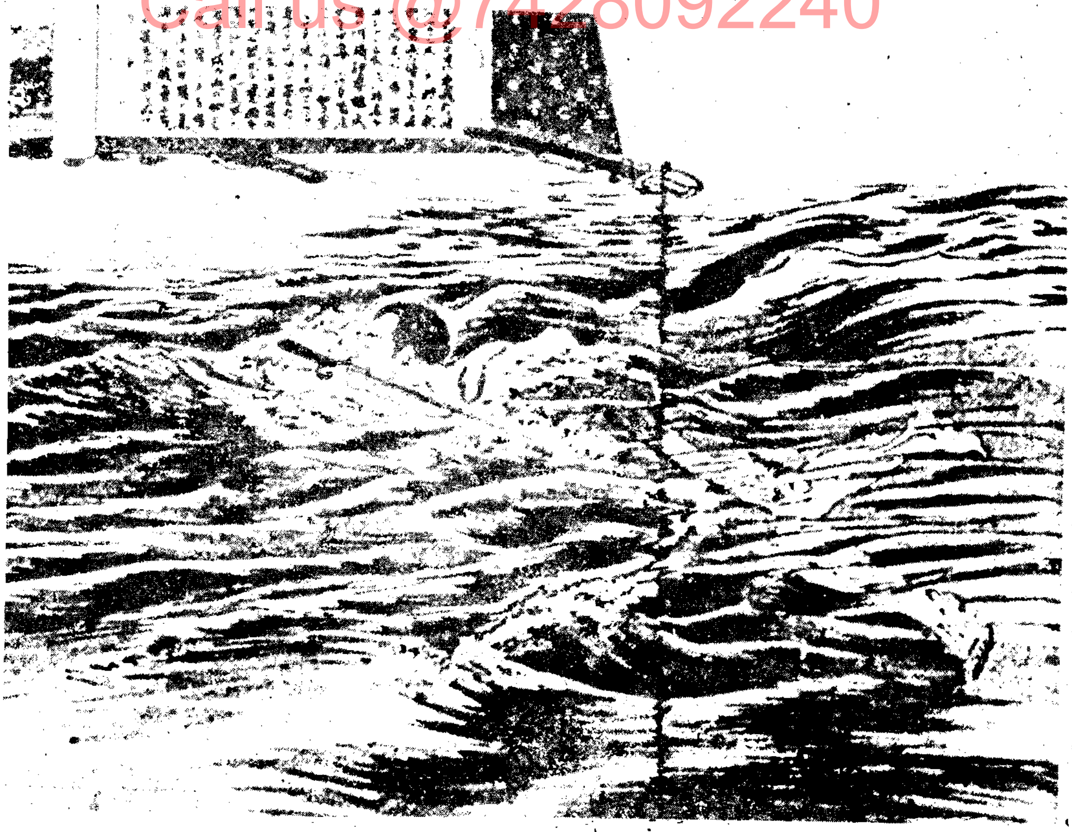

2. चीन-जापान युद्ध के समय कोरीया के मोर्चे पर चीनी सेना की गतिविधियों की जानकारी हासिल करने के लिए नदी में तैरता एक जापानी सैनिक।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

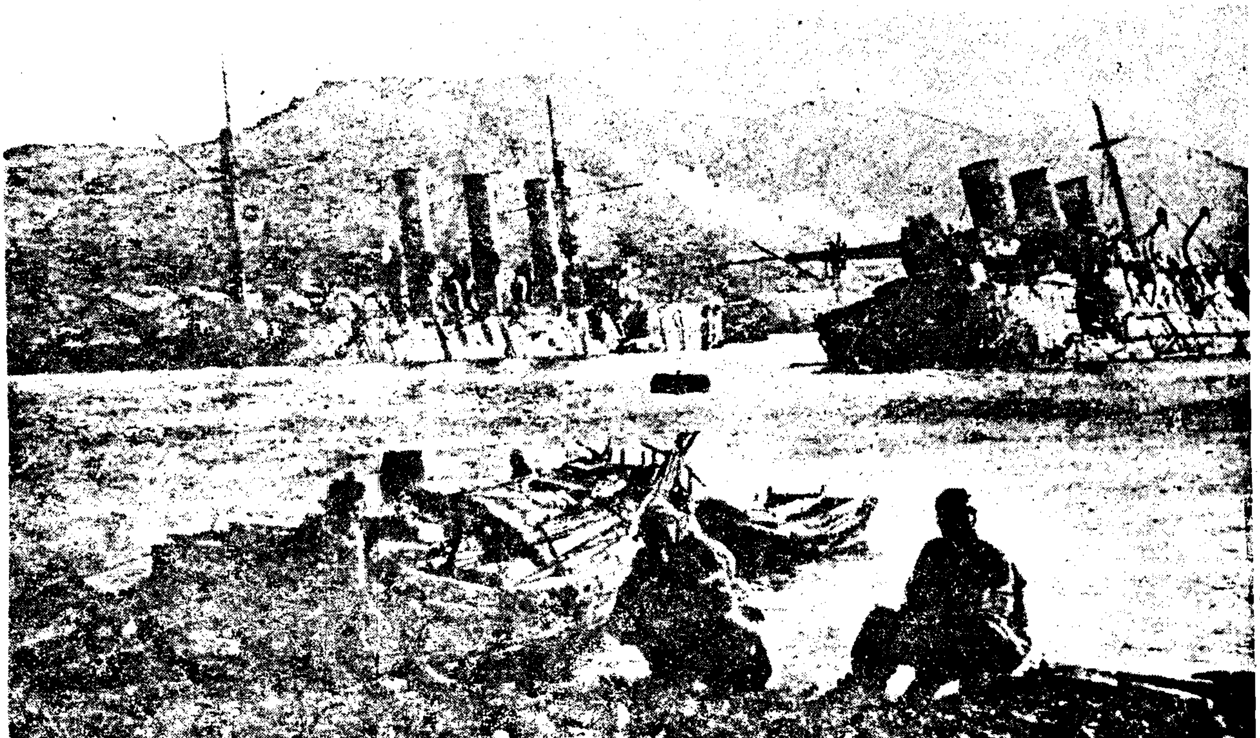

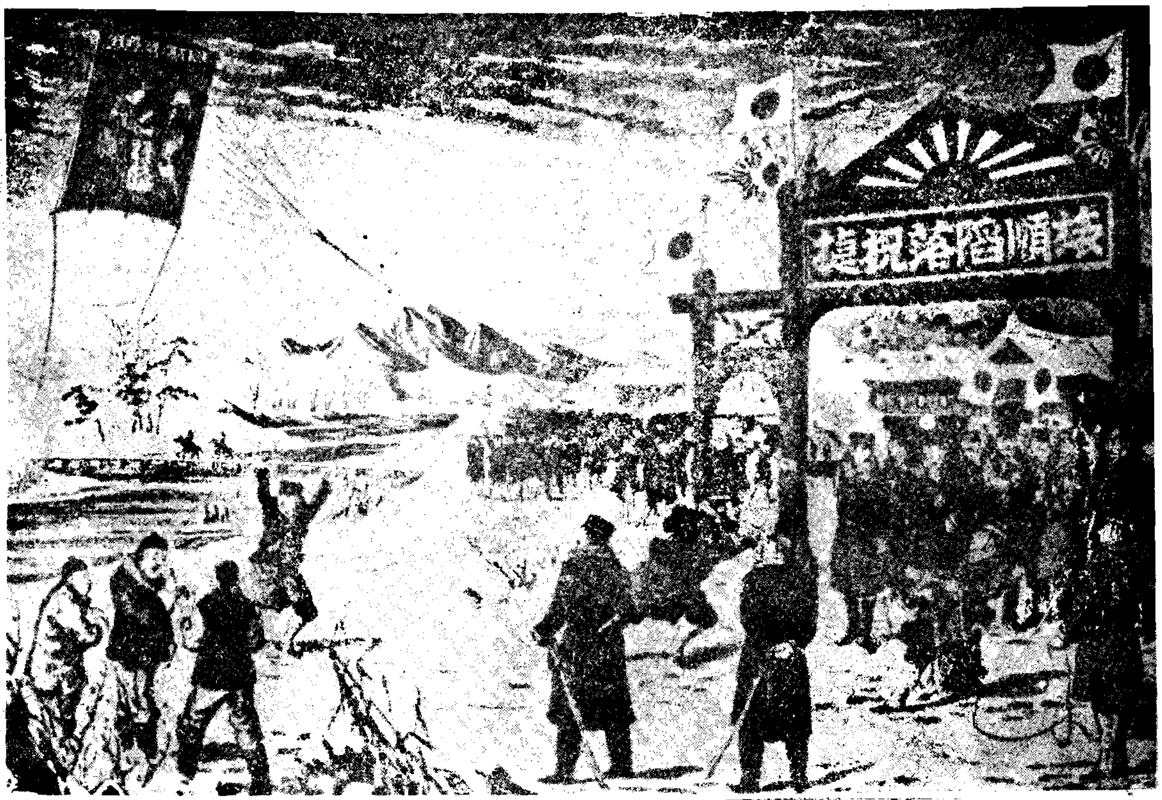

4. रूसीयों द्वारा पोर्ट अर्थर पर आत्मसमर्पण की खुशी में पतंग उड़ाते जापानी सैनिक।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6. सुन यात सेन और उनकी पत्नी सून चिंग लिंग।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 22 राजनीतिक दलों का उदय

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना,
22.2 मेजी शासकों के अधीन संवैधानिक सरकार
    22.2.1 राजनीतिक दलों की स्थापना
    22.2.2 समान स्वार्थ वाले समूह एवं राजनीतिक दल
22.3 कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना
22.4 दल मन्त्रि परिषद की व्यवस्था
22.5 राजनीतिक दलों का पतन
    22.5.1 बाह्य एवं आन्तरिक कारण
    22.5.2 राष्ट्रीय रक्षा राज्य (नेशनल डिफेंस स्टेट)
22.6 सारांश
22.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :

- आपको यह ज्ञान हो जायेगा कि पुनर्स्थापन के बाद कैसे राजनीतिक संगठनों की स्थापना हुई और वे फिर कैसे राजनीतिक दलों में विकसित हुए,
- राजनीतिक दलों की स्थापना तथा संविधान के दायरे में उनकी क्या स्थिति थी—इनकी जानकारी आपको हो जायेगी,
- राजनीतिक दलों तथा मेजी शासकों एवं नौकरशाही तन्त्र के बीच संबंधों का ज्ञान आपको होगा,
- दल सरकार के उत्थान एवं पतन के विषय में भी आप बता सकेंगे, और
- युद्ध पूर्व जापान में आपको राजनीतिक लोकतन्त्र का भी ज्ञान हो जायेगा।

22.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापान में राजनीतिक दलों के उत्थान के विषय में कोई भी विवेचना करते समय हमें उन प्रक्रियाओं पर ध्यान देना होगा जिनके कारण राजनीतिक दलों की स्थापना हुई, और उन संबंधों का भी जो राजनीतिक दलों तथा दूसरे राजनीतिक तौर पर शक्तिशाली गुटों के बीच स्थापित हुए। इन संबंधों की विवेचना करना अपरिहार्य है क्योंकि इन संबंधों ने ही जापान में विकसित होने वाली संवैधानिक व्यवस्था की ताकत एवं सीमा को निश्चित किया। इस तरह से इस इकाई में राजनीतिक दलों की स्थापना के कारणों तथा इन राजनीतिक दलों ने राज्य तन्त्र में जो स्थिति प्राप्त की उसके विषय पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

22.2 मेजी शासकों के अधीन संवैधानिक सरकार

सन् 1889 में मेजी सम्राट ने अपनी जनता के लिये एक ऐसे संविधान का अनुमोदन किया जिसने संवैधानिक सरकार के लिये एक आधारशिला रखी। जिस प्रक्रिया के द्वारा इस संविधान के प्रारूप को तैयार किया गया उसका और इसके विशेष गुणों का विवरण पहले की इकाई में हो चुका है। यहां पर इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि संविधान का निर्माण उस मेजी शासक तन्त्र के द्वारा किया गया था जो अपनी सोच में घोर लोकतन्त्र विरोधी था। मेजी शासक लोकप्रिय निर्वाचित सरकार के विचार के प्रति एक अविश्वास की भावना रखते थे और उनका विचार था कि इस तरह की व्यवस्था को लागू कर दिये जाने से सामाजिक एवं राजनीतिक अराजकता पैदा हो जायेगी। इन सबके बावजूद भी उन्होंने एक संविधान के प्रारूप को तैयार कराया और जिसके अन्तर्गत राजनीतिक दलों ने कार्य किया। मेजी संविधान प्रारूप में जो विरोधाभास विद्यमान था उसका विवरण 1926 में संविधान विशेषज्ञ मिनोबे तात्सुकीशी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है :

"हमारे संविधान का विकास इसके लेखकों की आशाओं के ठीक विपरीत तरीके से हुआ। संस्थात्मक तौर पर मन्त्रि परिषद (Cabinet) की व्यवस्था डायट के प्रति उत्तरदायी थी, लेकिन संविधान में उसका कोई स्थान न था लेकिन परम्परा के रूप में इसकी जड़ें मजबूती से स्थापित हो गई।" इस परिपाटी ने विकसित होने में समय लिया और यह केवल 1924 में उस समय लागू हुई जबकि आम चुनाव में जिस दल ने निचले सदन में बहुमत प्राप्त किया उसी ने मन्त्रि परिषद का गठन किया। इस मन्त्रि परिषद का नेतृत्व कातो काकाकि के द्वारा किया गया और इसे संवैधानिक सरकार की रक्षा करने वाली मन्त्रि परिषद के नाम से जाना गया। इस मन्त्रि परिषद ने दलगत सरकारों के युग का सूत्रपात किया। इस तरह जून 1924 से मई 1933 तक सभी प्रधान मन्त्रियों ने निचले सदन के बड़े दलों का प्रतिनिधित्व किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहां पर ये प्रश्न उठते हैं कि राजनीतिक दलों ने निचले सदन में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल द्वारा सरकार बनाने के सिद्धान्त को अपनाने में इतना अधिक समय क्यों लिया? और फिर इस व्यवस्था का जीवन काल इतना संक्षिप्त क्यों रहा? इन प्रश्नों का जवाब गहराई से तलाशने के लिये हम उन कारणों की विवेचना करेंगे जो राजनीतिक दलों के गठन के लिये जिम्मेदार थे और तब उस स्थिति का जिसको इन दलों ने राज्य तन्त्र में प्राप्त किया।

22.2.1 राजनीतिक दलों का गठन

यह स्वीकार्य तर्क है कि तोकूगावा का शासन काल एक ऐसा अलोकतन्त्रीय ढांचा था जहां पर राजनीतिक सत्ता कड़े नियन्त्रण में थी। फिर भी आजकल विद्वान आधुनिकीकरण में जापान की सफलता के कारणों की तलाश करने में लगे हुए हैं। उनका तर्क है कि पश्चिमी देशों के लिये जापान के खुल जाने से पूर्व जापान ने न केवल आर्थिक कौशल एवं संस्थाओं को विकसित कर लिया था बल्कि एक ऐसे राजनीतिक तन्त्र को विकसित करना प्रारम्भ कर दिया था जिसके अन्तर्गत बहस एवं विवाद एक एकीकृत तत्व बन चुका था। शोगुन ने एक निरकुंश शासक की भांति शासन नहीं किया बल्कि वह गैर-व्यक्तित्ववादी शक्ति के स्रोत का प्रतिनिधित्व करता था। निश्चय ही यह प्रवृत्ति समाज के एक छोटे गुट या वर्ग तक सीमित थी लेकिन सत्ता का उपयोग स्वेच्छाचारी न था और परिणामस्वरूप आधुनिक जापान एक संवैधानिक सरकार को अपना सका।

आइरोकावा दैकीशी जैसे विद्वान लोकतान्त्रिक विचारों के विकास को तोकूगावा काल में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के जनवादी आंदोलनों में खोजते हैं। इन आंदोलनों ने तोकूगावा राज्य के प्रभुत्व को चुनौती दी और राजनीतिक चेतना के प्रारम्भ की स्थितियों को जन्म दिया। इसी के साथ इन आंदोलनों ने उन सम्भावनाओं को जगाया जिनमें एक साथ मिलकर राज्य को दुरस्त करने के तरीकों को खोजा जा सके। यद्यपि ये आंदोलन न तो राजनीतिक तौर पर सफल हो सके और न ही तोकूगावा बाकूफू की सरकार को गिरा सके या इसका कोई विकल्प प्रस्तुत न कर सके। फिर भी इन्होंने उस परम्परा को बनाया

जिसकी बदौलत जनता के अधिकारों का आंदोलन लोकप्रिय निर्वाचित सभा की अपनी मांग के लिये दबाव डाल सका। मेजी पुनर्स्थापन का प्रारम्भ उस समय हुआ जबकि जापानी संस्थाओं तथा परम्पराओं में नाटकीय परिवर्तन हो चुका था। इस पुनर्स्थापन से एक केन्द्रीकृत राजनीतिक तन्त्र का निर्माण हुआ। इस विषय में पहले की इकाइयों में विवरण किया जा चुका है। यहां पर यह याद रखा जाना चाहिये कि राजनीतिक संगठनों एवं गुटों का निर्माण संवैधानिक सरकार की मांगों के लिये किया गया। उदाहरण के तौर पर सन् 1880 में कोची में **कोजूंशा** या गुम्मा में **युशिंशा** जैसी 150 स्थानीय सोसाइटियों ने एक राष्ट्रीय सभा की स्थापना की मांग की।

लेकिन दूसरी ओर मेजी सरकार ने एक ऐसे राजनीतिक तन्त्र के निर्माण को प्राथमिकता दी जिसे केन्द्रीय स्तर से ही चलाया जा सके और जहां पर नीचे से उठने वाले सामाजिक दबाव शासकों की इच्छाओं की सीमाओं में बने रहेंगे। लेकिन इसके बावजूद भी बहस होती रही और भिन्न-भिन्न विचारों का आस्तित्व बना रहा। मेजी शासक तन्त्र सम्राट की संप्रभुता को जनता द्वारा हड़पने से सुरक्षित रखना चाहता था। फिर भी तोकुगावा बाकूफू (बाकूफू सम्राट के नाम पर शासन कर चुका था) जैसी संस्था के, उद्भव को रोकने के प्रयास किये गये, जिसके परिणामस्वरूप राज्य के विभिन्न अंगों के बीच सत्ता का विसर्जन किया गया और उनमें से किसी के पास भी पूर्णरूपेण शक्ति नहीं रहीं। इस तरह से जहां एक ओर मेजी शासन, शाही प्रभुत्व के अधीन बहुत अधिक केन्द्रीकृत राज्य दिखायी पड़ता था वहीं दूसरी ओर प्रत्येक गुट या संस्था को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की गई। सम्राट की प्रत्यक्ष प्रभुसत्ता का उपयोग सेना एवं नौकरशाही के द्वारा भरपूर तरीके से किया गया। हमें यहां पर यह याद रखना चाहिये कि संवैधानिक व्यवस्था का उपयोग जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये नहीं अपितु सम्राट की संप्रभुता के लिये किया गया। राज्य की इन संस्थाओं में सामंजस्य बनाये रखने के लिये व्यवहार में शासक तन्त्र या हंबात्सु का एक शक्तिशाली ताकत के रूप में उदय हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हंबात्सु या शासक तन्त्र मेजी पुनर्स्थापन के नेताओं से मिलकर बना था। ये लोग क्षेत्रीय समझौते से बंधे थे और उन्होंने मेजी काल में हुए रूपांतरण के समय में देश का नेतृत्व किया था। सतसुमा एव चोसू दोनों प्राथमिक महत्व के क्षेत्र थे और इन्हीं क्षेत्रों ने नौकरशाही, सेना, प्रिवी कौंसिल तथा हाउस ऑफ पीर्स के अधिकतर सदस्यों की आपूर्ति की। मेजी शासकों को बड़ा राजनयिक कहा जाता था और **साम्राज्यिक सदन में वे एक** संस्था के रूप में अपनी शक्ति का प्रयोग करते थे।

प्रतिनिधि सभा की रचना मेजी संविधान के अंतर्गत की गई थी और उसके महत्व पूर्ण-सदस्य मेजी शासक तन्त्र का विरोध करते थे। इनमें से कई सदस्य इस शासक तन्त्र के सदस्य रह चुके थे लेकिन वे इससे अलग हो गये थे। उन्होंने जनता के अधिकारों के आंदोलन में भाग लिया था और राजनीतिक दलों को संगठित किया था। मेजी शासक तन्त्र ने अपने-अपने राजनीतिक दलों के निर्माण के विचार का विरोध किया। प्रारम्भ में इतो हिरोबूमि, इन्नो कोरू आदि जैसे नेता अपने स्वयं के दलों को संगठित करना चाहते थे लेकिन बहुमत के द्वारा उनका विरोध किया गया।

संविधान की उद्घोषणा के समय तक अर्थात् 1889 तक ऐसे दो बड़े गुट थे जिनके आस-पास प्रथम राजनीतिक दलों को संगठित किया गया। इनागाकी तैसुके मेजी सरकार काउंसिलर के रूप में शामिल हुआ लेकिन उसने कोरिया पर आक्रमण करने के प्रश्न पर हुए मतभेदों के कारणवश 1873 में त्यागपत्र दे दिया। इतागाकी ने कोरिया पर आक्रमण करने की योजना का समर्थन किया था। उसने और उसके समर्थकों ने देशभक्तों की एक ऐसी पब्लिक पार्टी का गठन किया जिसने लोकतान्त्रिक तरीके से निर्वाचित राष्ट्रीय सभा के लिये अभियान चलाया। बाद में उसने सेल्फ-हेल्प सोसायटी (Self Help Society) के संगठन में भी मदद की। देश भक्तों की सोसायटी ने 1880 में पुनः नामकरण किया और 1881 में यह उदारवादी दल (**जियूतो**) हो गया।

जियतो ऐसा दल था जिसका समर्थन भूतपूर्व सामुराई तथा ग्रामीण प्रबुद्ध वर्ग के द्वारा किया गया लेकिन जनता के अधिकारों के आंदोलन के दौरान बढ़ती हिंसा को लेकर इस दल के नेता चिन्तित थे। जैसा कि पहले की इकाई में उद्धत किया गया कि 1882-1886 के वर्षों में

होंशू के चिचिबू तथा कबासान जैसे केन्द्रीय भाग में हिंसात्मक घटनायें हुई और सरकार ने कठोरता के साथ इसका दमन किया। इसके फलस्वरूप सरकार ने इस दल पर प्रतिबंध लगा दिया तथा फिर 1890 के आमचुनावों के बाद तब इस दल का संवैधानिक उदार दल के रूप में **(रिक्केन जियतो)** सुधार किया गया।

हिजेन के सामंत ओकूमा शिगेनोबू को सन् 1881 में सरकार से त्यागपत्र देने के लिये बाध्य किया गया। उसके त्यागपत्र देने के पीछे अन्य कारणों के अलावा यह भी एक कारक था कि वह अति शीघ्र निर्वाचित सभा का अधिवेशन बुलाना चाहता था। ओकूमा ने ब्रिटिश व्यवस्था पर आधारित संसदात्मक व्यवस्था के प्रारूप का भी समर्थन किया। सरकार छोड़ने के बाद उसने संवैधानिक सुधार दल **(रिक्केन कैशिन्तो)** का गठन किया। इस दल ने शहरी मध्यम वर्ग का समर्थन प्राप्त किया। इस दल ने धीरे-धीरे लोकतांत्रिक सुधार के विचारों का प्रचार किया। ओकूमा ने इतागाकी के उदार दल में विलय करने से इंकार कर दिया लेकिन जैसे ही सरकार ने जनता के अधिकारों के आंदोलन का दमन करना शुरू किया वैसे ही ओकूमा ने दल को छोड़ दिया। आगे चलकर यह दल प्रगतिशील दल **(शिम्पोतो)** बन गया। यह दूसरा महत्वपूर्ण दल था।

इन "जनता के दलों" **(मिन्तों)** का संक्षिप्त रूप में एक ऐसे रूढ़िवादी गुट के द्वारा विरोध किया गया जिसको संवैधानिक साम्राज्यिक दल **(रिक्केन तेजैतो)** कहा जाता था। यद्यपि इसने राजनीतिक तौर पर कोई महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं की लेकिन यह दल उस समय में विद्यमान सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता था।

प्रथम डायट का उद्घाटन नवम्बर 1890 में किया गया 1898 में प्रथम दलीय मन्त्रि परिषद के गठन की यह विशेषता थी कि इस समय में दलों के एक शासक तन्त्र **(हाबत्सू)** के बीच गहमागहमी होती रही। कुछ सरकार समर्थक गुट भी थे और अक्सर इनका गठन होता रहता था। इन दोनों गुटों के द्वारा जिस समस्या का सामना किया गया वह यह थी कि मेजी संविधान के अधीन राजनीतिक दल केवल वार्षिक बजट को पारित होने से रोक सकते थे और इस तरह की स्थिति में पिछले वर्ष का बजट जारी रहता था। इन सबके बावजूद शासक तन्त्र इन राजनैतिक दलों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता था जब तक वे मेजी संविधान को स्वीकार करते थे और इसी कारण से उन दोनों को साथ-साथ कार्य करना सीखना पड़ा। राजनीतिक दल निचले सदन पर नियन्त्रण रख सकते थे लेकिन "पीर्स के ऊपरी सदन पर शासन तन्त्र और उनके समर्थकों के द्वारा नियन्त्रण किया जाता था। चीन-जापान युद्ध के शीघ्र बाद ही इन दोनों गुटों के द्वारा यह महसूस किया गया अर्थात् राजनीतिक दलों एवं शासक तन्त्र ने आपसी गठबंधनों को बनाना शुरू कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.2.2 समान स्वार्थ वाले समूह एवं राजनीतिक दल

शासक तन्त्र का विचार था कि दलीय सरकार किसी गुट विशेष के हितों के प्रतिनिधि के तौर पर कार्य करेंगे और वे चाहते थे कि मन्त्रि परिषद को राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करना चाहिये। इसलिये वे "अतिश्रेष्ठ मन्त्रिमंडलों" **(शोजेन नैकाकू)** की बात करते थे। फिर भी पारस्परिक मेल-मिलाप का तात्पर्य था कि उन विचारों में परिवर्तन हुआ जो शासक तन्त्र के बीच तथा जनता के दलों "के बीच फैले हुए थे और इस तरह से जनता के दलों के बीच शासक तन्त्र की स्थिति के विरोध में फैले हुए विचारों में भी परिवर्तन हुआ। उदाहरण के तौर पर नवम्बर 1895 में सरकार ने उदार दल के साथ यह बंधन किया तथा इतागाकी तैसुके। (उदार दल का अध्यक्ष) सन् 1896 में इतो हिरो भूमि के मन्त्रिमण्डल में गृह मन्त्री बन गया। इस तरह से इसको शासक तन्त्र के समर्थकों के दल के विरुद्ध एक चुनौती माना गया और हिरोबूमि का विरोध करने के लिये वे यानागाता अरितोमों के इर्द-गिर्द एकत्रित हो गये।

जहां तक मन्त्रिमण्डल के गठन का प्रश्न है वह बड़े-बड़े राजनयिकों को लेकर बनाया गया और उन्होंने वैकल्पिक तौर पर या तो चोसू रियासत से या फिर सतसुमा से अपने प्रतिनिधियों को नामजद किया। इस तरह इतो चोसू से तथा मतसुकता मसायोशी सतसूमा से थे। इतो ने पार्टी के समर्थन से एक मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रयास किया लेकिन इसका हाबत्सू के द्वारा विरोध किया गया। जून 1898 में **केनसैतो** नाम के दल का गठन पहले के

अन्य दलों के तत्वों को मिलाकर किया गया और यह एक ऐसी नयी शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था जिसने शासक तन्त्र की ओर से एक भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया को पैदा किया। अन्ततः शासक तन्त्र ने **केनसैतो** को मन्त्रिमण्डल का गठन करने दिया।

इवागाकी एवं ओकूमा ने जून 1898 में केनसैतो के सदस्यों को मिलाकर मन्त्रिमण्डल का गठन किया और यह प्रथम दलीय मन्त्रिमण्डल था। इस दल का निचले सदन में 300 सदस्यों में से 244 सदस्यों के साथ पूर्ण बहुमत था। इस दो तिहाई बहुमत के बावजूद भी यह दल कमजोर स्थिति में था। इसके निम्नलिखित कारण थे—

- नौसेना एवं सेना के लिये जिन मन्त्रियों को नामजद किया गया उन्होंने दल का विरोध किया,
- इस दल का गठन दो ऐसे गुटों के विलय के द्वारा किया गया था जो कर बढ़ाने के प्रश्न पर विभाजित थे।

सैन्य खर्चों को पूरा करने के लिये सरकार को करों में वृद्धि करना आवश्यक हो गया था। जबकि दल ने भूमि करों में वृद्धि का विरोध किया किन्तु व्यापारिक एवं शहरी हितों वाले गुटों ने सरकार के इन प्रयासों का विरोध नहीं किया क्योंकि सरकार ने आर्थिक प्रसार तथा और अधिक सार्वजनिक खर्च की नीति का अनुसरण किया।

चार माह के अन्दर मन्त्रिमण्डल के पतन ने इन राजनीतिक गुटों के द्वारा किये गये गठबंधन के खोखलेपन को स्पष्ट कर दिया। इन गुटों ने कुछ चुनिंदा तथा अस्थायी कारणों से एक दूसरे के साथ गठबंधन किया था। पार्टी सिद्धान्तकारों के बीच अब यह विचार उभर रहा था कि हान्बात्सू तथा होशी तोरू के साथ सहयोग करना जरूरी हो गया था। **केनसैतो** ने हांबात्सू के साथ मिलकर कार्य करने का प्रयास किया। यामागाता ने नवम्बर 1898 में मन्त्रिमण्डल का गठन किया और भूमि कर बढ़ाने को अपना समर्थन दिया। वह दल जो अब तक लगातार भूमि करों में होने वाली वृद्धि का विरोध कर रहा था उसने रेल मार्गों के राष्ट्रीयकरण की मांग की सौदेबाजी की और इसके बदले में भूमि करों में होने वाली वृद्धि का समर्थन करने की पेशकश की। इस सौदेबाजी में शहरी व्यापारिक एवं वाणिज्यिकी हितों ने अधिक भूमिका अदा की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राजनीतिक दलों पर अब तक ग्रामीण हितों का वर्चस्व कायम था और उन्होंने उस तरह की नीति का अनुसरण किया जो उनकी चिन्ताओं तथा हितों को प्रकट करती थीं। जबकि ये दल हांबात्सू के कड़े विरोधी थे लेकिन जब कभी भी आवश्यक हुआ तब उन्होंने इसके साथ समझौता किया। वे क्षेत्रीय एवं व्यक्तिगत वफादारियों को भी लेकर विभाजित थे। उदाहरण के तौर पर इतागाकी तोसा क्षेत्र से तथा दूसरे गुट क्यूशू या कान्तों से थे। इस क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्विता एवं गुटबाजी ने एकता का मार्ग अवरुद्ध किया और गहरे विरोधों को जन्म दिया। दूसरी कमजोरी यह थी कि पीर्स के सदन में राजनैतिक दलों का कोई प्रतिनिधित्व न था और उनका स्थानीय राजनीति पर भी कोई नियन्त्रण न था क्योंकि सभी मुख्य अधिकारियों की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती थी। इस तरह से राजनीतिक दलों में विभाजन हुआ और वे आपसी कलह में व्यस्त हो गए। उनको शासक तन्त्र के विरोध का भी सामना करना पड़ा। इन शासक तन्त्र का मुख्य संस्थाओं पर नियन्त्रण था।

शहरी व्यापारिक गुटों के हितों का महत्व उन चुनावी कानूनों के संशोधन में निहित था जिनके द्वारा मत देने वाले एवं प्रत्याशी के लिये कर देने की योग्यता में कमी कर दी गई थी। इसके कारण मतदाताओं की संख्या में 1898 में 502,000 से 1900 में 989000 तक की बढ़ोतरी हुई। निर्वाचन जिलों के संशोधन का उन शहरी क्षेत्रों को लाभ हुआ जहां पर कुछ लोग ही प्रतिनिधि का चुनाव कर सकते थे। इस तरह से डायट में शहरी प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हुई।

सितम्बर 1900 में इसतो हीरोबूमि ने संवैधानिक सरकारी पार्टी के मित्रों को संगठित किया और इसको जापानी भाषा में **सेयूकाय** के नाम से पुकारा गया। यह इतो के उस लक्ष्य का प्रतिनिधित्व करती थी जिसके अनुसार वह यह तर्क प्रस्तुत करता था कि सरकार को अपनी स्वयं की पार्टी का गठन करना चाहिये जिससे वह निचले सदन पर अपना नियन्त्रण कायम कर सके। इसका विरोध यामागाता तथा गेंरी शासक तन्त्र के दूसरे लोगों द्वारा किया

गया। **केनसैतो** तथा यामागाता के बीच हुआ गठबंधन भी संक्षिप्त साबित हुआ और एक दल ने यह महसूस किया कि शासक तन्त्र के द्वारा कोई विशेष छूट दी जाने वाली नहीं। एक बार होशी तोरू ने यह महसूस किया कि यामागाता के साथ मिलकर काम करने से कुछ लाभ हो सकता है।

वह इतो के पास पहुंचा तथा उसके साथ मिलकर काम करने की इच्छा व्यक्त की। उनके हित एक सिक्के के दो पहलू थे। हांबात्सू तथा उन दलीय तत्वों के द्वारा **सेयूकाय** का गठन किया गया था जो राजनीति में स्थायित्व की तलाश में थे और 1920 के दशक तक इसका वर्चस्व बना रहा।

इतो हिरोबूमि का विरोध यामागाता ऐरितोमो के द्वारा किया गया। ऐरितोमो के राजनीतिक विचार भिन्न प्रकार के थे और उसका गुट शासक तन्त्र या हांबात्सू के अन्दर एक महत्वपूर्ण गुट था। **सेयूकाय**, यामागाता गुट तथा **केनसैहोन्तो** के बीच राजनीतिक सत्ता के लिये संघर्ष था। **कैनसे होन्तो शिम्पोतो** विचारधारा का अनुसरण कर रहा था। 1913 में यामागाता गुट के कातसूरा तारों ने मित्रों की संवैधानिक एसोसिएशन का गठन किया और 1916 में यह **केनसैकाय** संवैधानिक एसोसिएशन हो गई तथा इसने इतो की **सेयूकाय** का विरोध किया।

1904 के रूस-जापान युद्ध से 1912 तक राजनीतिक सत्ता यामागाता गुट के कातसुरा तारो तथा सायओनजी किमोशी के हाथों में बारी-बारी से रही। कानसुरा ने तीन मन्त्रिमण्डलों का नेतृत्व किया और किंमोशी ने **सेयूकाय** का अध्यक्ष बनने पर दो बार मन्त्रिमण्डल का गठन किया।

इस समय **सेयूकाय** का सबसे महत्वपूर्ण नेता हारा ताकेशी था और वह प्रथम प्रधान मंत्री बनने वाला था। वह पार्टी का आदमी था और उसने **सेयूकाय** को एक ऐसी प्रभावशाली पार्टी बनाया कि उसका संगठन सम्पूर्ण जापान में फैल गया। अन्य राजनीतिक दलों के साथ मिलकर काम करने के स्थान पर उसने यामागाता के गुट के साथ राजनीतिक नीति के तहत गठबंधन करना उचित समझा। हारा और उसकी पार्टी **सेयूकाय** ने "सकारात्मक नीति" का अनुसरण किया। चीन-जापान युद्ध से पूर्व अन्य दलों ने सरकारी खर्च को सीमित करने का प्रयास किया जबकि हारा ने रेलवे लाइन निर्माण, बन्दरगाहों को सुधारने तथा सम्पर्क तन्त्र को और अधिक चुस्त बनाने के लिये सरकारी खर्च को बढ़ाने के प्रयास किये। इन खर्चों के कारण वित्त को स्थानीय समुदायों की ओर मोड़ा जा सका और सेयूकाय का प्रभाव बनाने में इस नीति ने मदद की। हारा ने हाऊस ऑफ पीर्स (House of Peers) में भी समर्थन बढ़ाने का प्रयास किया लेकिन इस नीति को 1920 में उस समय सफलता प्राप्त हुई जबकि पीर्स के अन्दर से ही कुछ गुट समर्थन करने के लिये आ गये।

हारा ने जहां एक ओर पार्टी को संगठित किया और उसके प्रभाव को बढ़ाया वहीं पर उसने आम मताधिकार की मांग का समर्थन नहीं किया। इस मांग को पहली बार 1910 में उठाया गया तथा पुनः 1919-20 में फिर उठाया गया और इस बार सारे देश में इस मांग के समर्थन में व्यापक तौर पर प्रदर्शन हुए। बुद्धिजीवियों के साथ-साथ श्रमिक एवं दलों के नेतागण भी इस आंदोलम में सक्रिय थे। हारा को इस मांग का समर्थन करने में सन्देह था क्योंकि उसका विचार था कि इससे जन दबाव बढ़ जायेगा। उसने सोचा कि इस तरह के निर्णय को धीरे-धीरे लागू किया जाये। इस आंदोलन के कारण सदन को भंग कर दिया गया और आम चुनाव में **सेयूकाय** दल सबसे बड़े दल के रूप में उभरा। विरोधी दलों ने शहरी क्षेत्रों में अपनी स्थिति में सुधार किया जिससे यह स्पष्ट हुआ कि सार्वभौमिक मताधिकार की मांग का शहरी क्षेत्रों में अधिक समर्थन था।

सेयूकाय तथा यामागाता गुट के बीच संबंधों में न तो स्थायित्व था और न ही निरंतरता। दबावों एवं खिंचावों के कारण उनके बीच मतभेद उभरते रहते थे। **सेयूकाय** की शक्ति के कारण यामागाता गुट इस पर निर्भर था। यह **सेयूकाय** विरोध गठबंधन को **कैसे होन्तों** के तत्वों एवं अन्य छोटे गुटों के साथ प्रभावशाली ढंग से बनाने मे असफल रहा। **सेयूकाय** के साथ गठबंधन करने के कारण **कैसेहोन्तों** में विभाजन हो गया जबकि अन्य गुटों ने यामागाता के साथ मिलकर काम करने के विचार का समर्थन किया। यह संतुलन 1912-1913 में उस समय टूट गया जबकि **नेशो** का राजनीतिक संकट पैदा हो गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कुछ विद्वानों का मत है कि गठबंधन एवं सहयोग का यह प्रतिमान उस नीति का प्रतिनिधित्व करता था जिसको **जोई तोगो** या दो शक्तियों के बीच अन्तर्निहित पारस्परिक सहमति का नाम दिया गया। इसका तात्पर्य यह था कि सरकार की शक्तियों तथा राजनीतिक दलों के बीच एक अन्तर्निहित सहमति थी और उन्होंने इस सामान्यतः स्वीकृत किये गये मॉडल के अन्तर्गत कार्य किया। फिर भी यहां पर यह जानना अति महत्वपूर्ण है कि शासक तन्त्र दलीय राजनीति में और गहरा उतरता गया और कतसुरा तारो ने **सेयूकाय** के प्रभुत्व को तोड़ने का प्रयास किया और उसने एक राजनीतिक दल का गठन भी किया। जापान में हो रहे परिवर्तनों के माध्यम से भी **हांबात्सू** की शक्ति में हुई कमी की अभिव्यक्ति हुई। मेजी शासन काल के प्रारम्भ में **हांबात्सू** एक ऐसा गुप्त एवं समरूपी गुट था जिसने समान उद्देश्यों के लिये संघर्ष किया और पुनस्थापन में उसने जो योगदान दिया उसके कारण उसे व्यापक समर्थन भी प्राप्त हुआ। लेकिन अब यह बिल्कुल भी सत्य न था और राजनीतिक सत्ता का उपयोग अब उन राजनीतिक दलों के द्वारा किया गया जो विरोधी हितों को जोड़ने एवं उनके बीच समझौता करने के लिये कार्य करते थे।

बोध प्रश्न 1

1) मेजी शासक तन्त्र का राजनीतिक दलों के प्रति क्या दृष्टिकोण था? इसका विवेचन लगभग 10 पंक्तियों में करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) **जियूतो** का गठन कैसे हुआ? पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

22.3 कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

रूस-जापान युद्ध के बाद का काल जापान की आर्थिक सम्पन्नता का काल था। इसके साथ-साथ शहरीकरण तथा शिक्षा प्रसार में हुई वृद्धि के कारण अन्य दूसरे क्षेत्रों में हुई प्रगति के साथ-साथ बुद्धिजीवी वर्ग का भी विकास हुआ। उदाहरण के तौर पर 1905 में जापान में एक समाचार पत्र की 1,50,000 प्रतियाँ प्रकाशित होती थीं और 1922 में यह

संख्या बढ़कर 500,000 हो गई। शिक्षा एवं राजनीतिक चेतना में हुए प्रसार के कारण राजनीतिक विचारों में अभिव्यक्ति भी व्यापक स्तर पर हुई। इसकी पुष्टि लोकतन्त्र के विषय में राजनीतिक विचारों तथा राजनीतिक सहभागिता में हुई वृद्धि से भी होती है।

1882 में औरियंटल समाजवादी पार्टी का गठन किया गया लेकिन इस पर शीघ्र ही प्रतिबंद्ध लगा दिया गया। फिर भी समाजवादी विचारों का प्रसार होता रहा और अध्ययन केन्द्रों का निर्माण किया गया। अन्ततः सन् 1901 में सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक सोसाइटी (**शकाय मिन्शुतो**) का गठन किया गया। इस तरह के विचारों एवं राजनीतिक दलों के उदय पर चिन्ता व्यक्त की गई और इन संगठनों की गतिविधियों का दमन करने के लिये 1900 में शांति बनाये रखने के कानून को पारित कर दिया गया। समाजवादी दलों ने पुनर्गठबंधन किये और 1906 में जापान की समाजवादी पार्टी (**निहोन शकायतो**) का उदय एक मूलगामी दल के रूप में हुआ तथा उसके नेता कोतोकू शूसूई जैसे लोग थे तथा कोतोकू ने सीधी कार्यवाही (Direct Action) की वकालत की। इस दल पर 1907 में प्रतिबंद्ध लगा दिया गया तथा कोतोकू एवं अन्य पर देशद्रोह के आरोप में मुकदमा चलाया गया।

1907 में कातायाम सेन जैसे उदार समाजवादियों ने सोशलिस्ट्स कामनर्स पार्टी का गठन किया लेकिन इस दल पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया क्योंकि सरकार इस तरह के उदार विचारों को भी सहन करने के लिये तैयार न थी। वर्ग संघर्ष में और अधिक चेतना को उत्पन्न करने तथा एक समान समाज की स्थापना करने के लिये उग्रवादी कार्यवाही करने की आवश्यकता पर रूसी क्रान्ति का निर्णायक प्रभाव पड़ा। इसी कारण से 1922 में जापान की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.4 दलीय मन्त्रिमण्डल व्यवस्था

राजनीतिक दलों की शक्ति तथा घटनाओं को प्रभावित करने की उनकी क्षमता को गम्भीर रूप से सीमित कर दिया गया था। क्योंकि राजनीतिक जीवन में ऐसे बहुत से महत्वपूर्ण क्षेत्र थे जो उनके नियन्त्रण में न थे। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित उदाहरण दिये जा सकते हैं:

- नौकरशाही एवं सैनिक सेवा प्रत्यक्ष तौर पर सम्राट के अधीन कार्य करती थी इसलिये वे राजनीतिक दलों के नियन्त्रण से मुक्त थीं।
- 1899 में अधिकतर सरकारी नौकरियों के लिये नागरिक सेवा परीक्षण को कानून के द्वारा अनिवार्य कर दिया गया।
- मेजी संविधान ने मेजी सम्राट को सेना पर नियन्त्रण प्रदान कर दिया था और 1899 से सक्रिय अधिकारी ही सेना एवं नौसेना के मन्त्री हो सकते थे और इस तरह से सैनिक कमाण्ड को अधिक नियन्त्रण प्राप्त था। सन 1912 में सेना ने इस शक्ति का प्रयोग सरकार गिराने के लिये किया। सेना मन्त्री यूहारा यासूकी ने इसलिये त्याग पत्र दे दिया था क्योंकि मन्त्रिमण्डल ने दो अन्य डिविजनों के निर्माण की सेना की मांग को मानने से इंकार कर दिया था। सरकार को इसलिये गिरा दिया गया क्योंकि सेना ने उत्तराधिकारी को नियुक्त करने से इंकार कर दिया।

1921 में हारा ताकेशी की हत्या कर दी गई और इसके बाद गैर-दलीय मन्त्रिमण्डलों का गठन हुआ। हारा के उत्तराधिकारी ने सात माह के बाद त्याग-पत्र दे दिया। कातों तोमासबूरो ने एक अनुभव विहीन मन्त्रिमण्डल का गठन किया और उसके बाद यामातो ने और कियोरा कैगो ने। कियोरा मन्त्रिमण्डल के दौरान **केन्सेकाय, सेयूकाय** तथा सुधार क्लब ने संविधान की रक्षा के लिये दूसरा आंदोलन शुरू किया और मई 1924 में आम चुनाव के समय उन्होंने कातो ताकि के नेतृत्व में एक संविद मन्त्रिमण्डल का गठन किया।

इस समय में कुछ सदस्यों ने **सेयूकाय** को छोड़ दिया और **रिक्केन मिनसैतो** (संवैधानिक

सुधार क्लब के सदस्य **सेयूकाय** में शामिल हो गये थे। इन दोनों दलों ने अर्थात **सेयूकाय** एवं **केन्सेकाय** ने मई 1932 तक वैकल्पिक तौर पर मन्त्रिमण्डलों का गठन किया जबकि 15 मई की घटनाओं में **सेयूकाय** प्रधान मन्त्री सूयोशिक की हत्या कर दी गई थी। इस काल को "दलीय शासन" कह कर उद्धृत किया गया है और यह "तैशो लोकतन्त्र" के पनपने का प्रतिनिधित्व करता है।

इस समय तक सैन्जी किन्मोशी को छोड़ कर बाकी उन सभी जेनरो का देहान्त हो चुका था जो राजनीतिक निर्णय करने वाले एवं सरकारों को तोड़ने वाले थे। राजनीतिक दलों ने अपनी शक्ति एवं अपने नियन्त्रण का विस्तार कर लिया था। मितानी तैशिरों ने तर्क दिया है कि ऐसी छः परिस्थितियां थी जिनके अन्तर्गत 1924-1932 तक दलीय मन्त्रिमण्डल का कार्य करना सम्भव हो सका। ये छः परिस्थितियां निम्नलिखित थीं:

i) 1924 तक डायट का निचला सदन मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण करने वाली मुख्य शक्ति बन चुका था और यह "हाऊस ऑफ पीर्स" से कहीं अधिक शक्तिशाली था।

ii) संवैधानिक विशेषज्ञ मिनोबे तात्सूकिशि के विचारों ने दलीय शासन के लिये आधार उपलब्ध कराया। उसका कहना था कि साम्राज्यिक डायट राज्य का ऐसा अवयव नहीं है जिसको सम्राट के द्वारा शक्ति प्रदान की गई हो बल्कि "वह जनता की प्रतिनिधि है।" इस अवधारणा का अन्त करने के लिये उसने हाउस ऑफ पीर्स का चुनाव किया। मिनौबे के विचारों को नौकरशाही ने स्वीकार किया और उसके सिद्धान्तों को न्यायिक तथा नौकरशाही की सेवाओं के लिये होने वाली प्रवेश परीक्षा में शामिल कर लिया गया।

iii) 1888 में स्थापित की गई प्रिवी कौंसिल ने एक निर्णायक भूमिका अदा की और राजनीतिक दलों की शक्ति में होने वाली वृद्धि के विरुद्ध एक सुरक्षा का कार्य किया। यामागा कौंसिल का अन्तिम शक्तिशाली अध्यक्ष था और 1924 के बाद इसकी भूमिका में कमी आयी। अन्तिम जेनरो सैओंजी ने प्रिवी काउसिंल की भूमिका को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iv) राजनीतिक दलों तथा नौकरशाही के बीच एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी और दलों का नेतृत्व का तो तकाकी, तनाका गिशी, आदि जैसे भूतपूर्व नौकरशाहों द्वारा किया गया। इन नीति का प्रारम्भ हारा तकेशी के गम्भीर प्रयासों के कारण हुआ था तथा उसने दल—नौकरशाही संबंधों को और मजबूत किया।

v) न्यायपालिका पार्टी विरोधी थी लेकिन जूरी (न्यायपालिका) की व्यवस्था की स्थापना के द्वारा उस पर पार्टी का नियंत्रण हो गया। हारा ने न्यायपालिका के अधिकारियों से भी प्रगाढ़ संबंध बनाये और संरक्षण के द्वारा सैयूका के लिये उनके समर्थन को प्राप्त कर लिया और उन्होंने भी जूरी व्यवस्था का समर्थन किया जो 1923 में हारा की मृत्यु के बाद कानून बन गया।

vi) सेना तथा दलों के बीच के रिश्ते निर्णायक तौर पर महत्वपूर्ण थे। 1921-22 के वाशिंगटन सम्मेलन के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हथियारों को कम करने के एक युग का प्रारम्भ हुआ और इसने सेना की प्रसार योजना पर एक कुठाराघात किया। इस सन्दर्भ में सैनिक अधिकारियों ने राजनीतिक दलों के सहयोग करने में अपना लाभ समझा। 1919 में तरोशी तथा 1922 में यामागाता जैसे नेताओं की मृत्यु के बाद तनाका गिशी जैसे सेना के नेताओं ने एक आधुनिक एवं तकनीकी तौर पर सर्वोच्च सेना के निर्माण के लिये सैयूका तथा हारा के साथ सक्रिय सहयोग करना शुरू कर दिया। इसी के साथ उन्होंने सुरक्षित की गई सेना की एसोसिएशनों के महत्व को बढ़ाने में मदद की। तनाका स्वयं सेयूका के काफी नजदीक हो गया तथा 1929 में अपनी मृत्यु तक इस पद पर बना रहा।

तनाका गिशी ही एकमात्र ऐसा नेता न था जो सेना के साथ मिल कर कार्य करना चाहता था। अन्य दूसरे नेता भी इस तरह की कार्यवाही का समर्थन करते थे और कई दूसरे ऐसे भी थे जो इस तरह की कार्यवाहियों का विरोध करते थे। उहारा युसाकू जैसे सेनापति इस तरह के सहयोग के विरोधी थे। वे सेना की निष्पक्ष और उसकी

महाद्वीप में आगे बढ़ने की नीति का समर्थन किया। इन विरोधों को नियन्त्रण में रखा गया और ये उसी समय अभिव्यक्त हो पाये जब कि 1930 में लन्दन नौसेना संधि को लेकर विवाद हुआ। मितानी तार्याशिरो के अनुसार इन सभी परिस्थितियों के कारण 1932 तक राजनीतिक दलों के द्वारा कार्य करना सम्भव हो सका, लेकिन एक बार जैसे ही इन परिस्थितियों में परिवर्तन होना शुरू हुआ, वैसे ही सरकार चलाना असम्भव हो गया।

22.5 राजनीतिक दलों का पतन

बहुत कारणों से राजनीतिक दलों का पतन हुआ और उनमें कुछ विशेष महत्वपूर्ण कारणों का हम इस भाग में विवेचन करेंगे।

22.5.1 बाह्य एवं आन्तरिक कारण

राजनीतिक दलों के प्रभाव में कमी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हुए बदलाव एवं उन घरेलू दबावों के कारण आयी थी जिनसे सैन्यवादियों के हाथ मजबूत हुए। बाहय तौर पर आर्थिक मंदी ने जापान में सामाजिक तनावों को बढ़ावा दिया और बढ़ते चीनी राष्ट्रवाद ने भी जापानी हितों पर दबाव डाला। चीन में च्यांग काई शेक की ताकत में वृद्धि हो रही थी और जापान ने महसूस किया कि मंचूरिया में उसके हितों को खतरा हो गया था। वाशिंगटन की व्यवस्था ने बड़ी शक्तियों के बीच सहयोग एवं मेल-मिलाप के वातावरण को पैदा किया, लेकिन इसके महत्व को कम करके आंका गया और जापान ने पुनः सोचा कि उसके हितों की पर्याप्त तौर पर सुरक्षा नहीं की गई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सेना के प्रभाव एवं शक्ति का प्रसार हो रहा था और इससे राजनीतिक दलों के प्रभाव में कमी आई।मंचूकुओ की स्थापना ने सेना की स्वतन्त्रता को स्पष्ट कर दिया। कृषि में आयी मंदी के कारण आन्तरिक स्थिति और जटिल हो गई तथा इसी के साथ-साथ यह भावना भी बलवती होती जा रही थी कि धनी एवं बड़े व्यापारियों को आर्थिक नीतियों से लाभ हो रहा था।

इन घटनाओं ने व्यापक आलोचना एवं वाद-विवाद को जन्म दिया। आलोचना सीधे-सीधे राजनीतिक दलों की कमजोरी एवं उनके भ्रष्टाचार के विरुद्ध थी। लेकिन जिस संकट का सामना राष्ट्र कर रहा था तथा इसका हल कैसे किया जा सकता था– इन पर अधिकतर वाद-विवाद केन्द्रित था। मई 1932 में राजनीतिक दलों ने प्रधानमंत्री के पद को खो दिया और 1941 तक उनको मन्त्रिमण्डल में कोई स्थान न मिला। दलीय शासन में तेज़ी से आई गिरावट और उसका अन्त इन बाहय एवं आन्तरिक परिवर्तनों की उपज था। जहां एक ओर इस दशक में एक नये व्यापारिक प्रबुद्ध वर्ग की शक्ति का उदय हुआ वहीं इसी के साथ-साथ नागरिक एवं सैनिक नौकरशाही की शक्ति में भी वृद्धि हुई। इसी दशक में राष्ट्रीय नीति का निर्माण करने के प्रयासों के कारण भी तनाव पैदा हुए।

1926 में जापान में घरेलू अर्थव्यवस्था में मंदी व्याप्त थी और इसी के साथ-साथ 1927 में बैंक संकट पैदा हो गया। इनके कारण सरकार को बाध्य हो कर निम्नलिखित कदमों को उठाना पड़ा:

- सरकार के खर्चों में कटौती की गई,
- स्वर्ण स्तर की ओर वापस लौटा गया, और
- उद्योग को व्यवस्थित एवं मशीनीकृत किया गया।

1929 की मंदी के साथ स्थिति और बिगड़ गई क्योंकि इसके कारण आमदनी में कमी आयी और बेरोजगारी बढ़ी। ग्रामीण क्षेत्रों को जबरदस्त आर्थिक भार का सामना करना पड़ा और 1934 में कुछ क्षेत्रों में खराब फसल हो जाने से संकट और गहरा हो गया।

हामागुशी के नेतृत्व में **मिसेटो** की सरकार की असफलता तथा लन्दन में नौसेना सम्मेलन में इसकी असफलता (जापान अपनी नौसेना के जहाज माल पर कोई सीमांकन स्वीकार नहीं करना चाहता था लेकिन इसको स्वीकार करने के लिये उसे बाध्य किया गया) के कारण 1930 में हामागुशी की हत्या कर दी गई। आगामी वर्षों में प्रतिक्रियावादी गुट का राजनीति में महत्व बढ़ गया और उनकी आतंकित करने वाली नीतियों का वर्चस्व कायम हो गया। ये गुट उस संकट की अभिव्यक्ति मात्र थे जिसका सामना राष्ट्र कर रहा था और ये राजनीतिक दलों की नीतियों से उपजे असन्तोष की अभिव्यक्ति भी थे। उनके द्वारा राष्ट्र हित में किये गये निःस्वार्थ कार्यों की प्रशंसा की गई थी किन्तु उन्होंने इनकी भी अवमानना की।

इस वातावरण में सेना के अधिकारियों ने क्वांग तुग सेना का नेतृत्व किया तथा 1931 में मंचूरिया की घटना को उकसाया। उन्होंने सोचा कि मंचूरिया में जापान के हितों को खतरा था। 1932 में मंचूरिया एक स्वतन्त्र राज्य हो गया तथा इस पर एक तरह से जापान का अधिकार हो गया। संयुक्त राष्ट्र लीग ने इस के अधिग्रहण का विरोध किया। लेकिन वाकात्सूकी मन्त्रिमण्डल इस विषय में कुछ भी करने में असमर्थ था बल्कि इस मन्त्रिमण्डल के कई सदस्यों ने सेना की इस कार्यवाही का समर्थन किया। इनूकाय त्यूसोशी वाकात्सूरी का उत्तराधिकारी बना। इनूकाय सेयूकाय का अध्यक्ष था तथा वह अन्तिम दलीय प्रधान मन्त्री था। इनूकाय के द्वारा चीनियों के साथ बातचीत तथा बिगड़ती आर्थिक स्थिति ने जापान में आतंकवाद के लिये माहौल को परिपक्व किया और 15 मई, 1932 को इनूकाय की हत्या कर दी गई।

राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति में अगले मन्त्रिमण्डल का गठन हुआ और इसका गठन एडमिरल सेतो मकोतो के द्वारा किया गया। सेतो का चुनाव अन्तिम **जेनरो** सायओजि के द्वारा किया गया। राजनीतिक दलों ने इस आशा के साथ नये मन्त्रिमण्डल का समर्थन किया कि वे अपनी स्थिति को पुनः प्राप्त कर लेंगे। लेकिन उसका अनुसरण 1934 में एडमिरल ओकाडा कैसूके ने किया। राजनीतिक दलों की असफलता का कारण नौकरशाही एवं सेना का बढ़ता प्रभाव था। नौकरशाही तथा विशेषकर गृह मंत्रालय ने अर्थव्यवस्था को दुरस्त करने के कार्यक्रम का संचालन किया और इसके कारण इसका जनता पर भी प्रभाव बढ़ने लगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन घटनाओं से सेना को भी लाभ हुआ। सेना के योजनाकर्ता अब देश की सामाजिक-आर्थिक ताकत के महत्व के प्रति सजग थे और युद्ध की स्थिति में वे देश की सम्पूर्ण शक्ति एवं संसाधनों को गतिशील कर सकते थे। इस तरह से उन्होंने "राष्ट्रीय गतिशीलता" पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इन बहुत से उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सरकार ने ऐसी एजेंसियों का निर्माण किया जिन्होंने मन्त्रालयों की सभी सीमाओं को लांघ दिया। सन् 1933 में मन्त्रिमण्डल शोध ब्यूरो का निर्माण नागरिक सेवाओं तथा सेना के विशेषज्ञों को मिलाकर किया गया। इन नये संबंधों के कारण दलों के हितों को नुकसान पहुंचा।

राजनीतिक दलों के महत्व के पतन की अभिव्यक्ति उद्योग तथा नौकरशाही से होने वाली नयी भर्ती की कमी में भी हुई। पुराने नेताओं की हत्या कर दी गई थी और नया कोई आगे आ नहीं रहा था। **सेयूकाय** में अपने स्वयं के विरोध के कारण भारी पतन हुआ और फरवरी 1926 में हुए चुनाव में उसके केवल 176 सदस्य निर्वाचित हो पाये और 126 पराजित हो गये। गोर्डन बर्गर का कथन है कि फरवरी 1936 से जुलाई 1937 के बीच मेजी राजनीतिक व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिये जबरदस्त दबाव डाले गये। संघर्षों को हल करने तथा एक दूसरे के प्रतियोगी हिस्से में सहयोग करने के प्रयासों को राजनीतिक दलों के द्वारा सम्पन्न किया जाता था लेकिन अब ऐसा करने की शक्ति उनके पास न थी। इस तरह की स्थिति में अन्य गुटों ने ऐसी संस्थाओं को बनाने का प्रयास किया जो इन तरह के कार्यों को पूरा कर सकें।

22.5.2 राष्ट्रीय रक्षा राज्य (नेशनल डिफेंस स्टेट)

"राष्ट्रीय रक्षा राज्य" (**कोकूबो कोक्का**) बनाने से तात्पर्य देश को एक पूर्ण युद्ध के लिये तैयार करना था और इस योजना का अनुमोदन सेना तथा नौकरशाही के द्वारा किया गया।

मंत्रिमण्डल शोध ब्यूरो—मन्त्रालयों से ऊपर सर्वोच्च संगठन को बनाने के उनके प्रयास जबरदस्त विरोध के कारण सफल न हो सके। अगली सरकार ने व्यापारी वर्ग एवं सेना के मध्य कुछ सहयोग करने का समय समझा और उस समय उसको "वित्त के साथ गठबंधन" का नाम दिया गया। इस गठबंधन में राजनीतिक दलों को पूर्णतः अलग रखा गया और जब भी राजनीतिज्ञ मन्त्रिमण्डल में शामिल हुए तभी उनको दल से त्यागपत्र देना पड़ा।

राजकुमार कोनोइ फूमीमारो के मन्त्रिमण्डल ने अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिये नयी आर्थिक नीतियों को लागू करने के कार्य को जारी रखा। इस स्थिति में उन्हें असमंजस का सामना करना पड़ा। क्योंकि विकास कार्यों के लिये धन जुटाने हेतु कर लगाना आवश्यक था लेकिन मंदी के कारण इस तरह के करों का जनता के द्वारा विरोध किया जाता। इसलिये उन्होंने जनता को गतिशील करने या राज्य की सुरक्षा पर जोर देने के लिये सरकारी दलों का उपयोग किया। उन्होंने किसी भी प्रकार की असहमति का दमन किया।

1937 में जापान चीन के साथ युद्ध करना चाहता था और जापान के कई नेताओं ने सोचा कि चीनी राष्ट्रवाद को कुचलने का यह सुअवसर है। आन्तरिक तौर पर इस योजना के समर्थन में जनता को गतिशील किया गया तथा इसके विरोध को और कम कर दिया। मन्त्रिमण्डल ने इस एकता का उपयोग अपनी नीतियों को जारी रखने के लिये किया लेकिन संसाधनों को युद्ध की ओर अग्रसर कर दिये जाने से आर्थिक योजनाओं को लागू कर पाना असम्भव हो गया। अब बहुत से प्रबुद्ध वर्गों के बीच संघर्ष और गहरा हो गया। कोनोइ का उत्तराधिकार हिरोमा किशीरा और उसके बाद थोड़े समय के लिये एबे नोबूयूकी मन्त्रिमण्डल द्वारा किया गया। इस मन्त्रिमण्डल को भी निचले सदन के द्वारा हटाया गया क्योंकि निचले सदन में स्थापित दलों के खिलाफ असन्तोष बढ़ रहा था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

घरेलू राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले सुधारों की प्रवृत्ति पर सेना का वर्चस्व था तथा सेना भी अपने राजनीतिक सहयोगी की तलाश में थी। अन्ततः उन्होंने कोनो फूमिमारो के साथ समझौता कर लिया। कोनो ने एक ऐसी योजना को तैयार किया जिसके द्वारा बजट घाटे से ग्रस्त मेजीराज्य बाहर निकल जायेगा और "राष्ट्रीय लामबंद राज्य" (नेशनल मोबिलाइजेशन स्टेट) की स्थापना करना सम्भव हो सकेगा। 26 जुलाई 1940 को उसके नेतृत्व में सरकार ने "मूलभूत राष्ट्रीय नीतियों के प्रारूप" को अपनाया। यह नीति एक नियन्त्रित अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक तौर पर वफादार जनता को तैयार करने के लिये थी। सरकार ने अपनी प्रसारवादी नीतियों को और अधिक निश्चय के साथ जारी रखा क्योंकि उनको लगातार आर्थिक नाकेबंदी का भय था। 12 अक्टूबर 1940 को इम्पीरियल रूल एसिसटेन्स एसोशियसन (आई.आर.ए.ए.) का गठन किया गया और ऐसा एक नई व्यवस्था के लिये एक राजनीतिक दल के रूप में किया गया। जबकि राजनीतिक दलों को भंग कर दिया गया था तब आई.आर.ए.ए. एक सही अर्थों में राजनीतिक दल न बन सका और यही जनता को लामबद करने वाली एक सरकारी एजेन्सी बन गई। जापान को एक प्रसारवादी शक्ति बनाने के उद्देश्य को पूरा करने हेतु बनायी गयी बहुत सी संस्थायें सफल न हों पायी तथा मेजी सरकार के अधीन पुरानी संस्थाओं एवं मन्त्रालयों की स्थापना का कार्य जारी रहा। दूसरे विश्व युद्ध का उपयोग एक सार्वभौमिक विचारधारा को बनाने तथा असहमति को दबाने के लिये होना था लेकिन गोर्डन बर्नर के अनुसार वे नयी केंद्रीय व्यवस्था को बनाने में असफल रहे। जनरल तोजो के मन्त्रिमण्डल के अधीन राजनीतिक प्रतियोगिता विद्यमान थी और यह पहले की तरह थी। 1945 में आत्मसमर्पण करने का निर्णय इस व्यवस्था के धराशायी होने का प्रतीक था। राजनीतिक प्रबुद्ध वर्ग ने सम्राट से हस्तक्षेप की मांग की। सम्राट राजनीतिक व्यवस्था से पृथक बना रहा था।

बोध प्रश्न 2

1) जापान में समाजवादी विचारों के विकास का वर्णन कीजिये। उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....
....
....
....
....
....
....
....

2) वे कौन सी छः परिस्थितियां थीं जिनके कारण 1924-1932 तक दलीय मन्त्रिमण्डल के लिये कार्य करना सम्भव हो सका? 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) जापान में दलीय मन्त्रिमण्डल के पतन के कारणों को बताइये। उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

22.6 सारांश

जापान में दलीय सरकार का उत्थान एवं पतन एक जटिल प्रक्रिया थी। यह जानना

महत्वपूर्ण है कि मेजी शासन तन्त्र द्वारा निर्मित संवैधानिक सरकार को दलीय सरकार का मूलरूप से विरोध करना पड़ा। इस तरह के शत्रुतापूर्ण वातावरण में राजनीतिक दलों तथ उनके समर्थकों को जहां एक ओर अपनी देशी परम्पराओं से शक्ति प्राप्त करनी पड़ी वहीं पर उन्होंने पश्चिमी विचारों का भी सहारा लेते हुए एक ऐसी व्यवस्था को बनाया जिसके अन्तर्गत वे कुछ शक्ति का उपयोग कर सके। लेकिन वे ऐसा तभी कर पाये जबकि उन्होंने मेजी शासन तन्त्र के साथ समझौता किया।

मेजी शासन तन्त्र ने यह भी समझ लिया था कि यदि वे संवैधानिक ढांचे के अन्तर्गत सरकार का संचालन करेंगे तब उनको राजनीतिक दलों की सहमति प्राप्त करनी होगी। इस तरह दलीय सरकार मूलभूत परिवर्तनों को न ला सकी और उनको मेजी व्यवस्था के अन्तर्गत ही काम करना पड़ा।

समाजवादी, साम्यवादी और अन्य उग्रवादी गुट कोई व्यापक आधार वाला जन आंदोलन संगठित करने में असफल रहे। लेकिन उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया और सफलतापूर्वक उन लोगों की समस्याओं को उठाया भी जो औद्योगिक विकास के कारण समस्याओं का सामना कर रहे थे।

सेना डायट के नियन्त्रण से मुक्त थी और इसका स्वतन्त्र अस्तित्व था। जापान के सुरक्षा हितों के प्रति सेना का जो दृष्टिकोण था उसके फलस्वरूप सेना ने धीरे-धीरे लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के महत्व को कम किया और उन दलीय मन्त्रिमण्डलों को हटा दिया जिन्होंने सेना के विचारों को मानने से इंकार किया। लेकिन इन सबके बावजूद वास्तविक तौर पर सर्व-सत्तावाद की व्यवस्था को न लादा जा सका और इसके चरमोत्कर्ष के समय में भी राजनीतिक प्रतियोगिता निरन्तर जारी रही। ऐसा इसलिये हुआ कि जापानी "फासीवाद" का चरित्र यूरोप में स्थापित फासीवाद से भिन्न था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान में "फासीवाद" था या नहीं यह एक बड़ी बहस का विषय है और अधिकतर पश्चिमी विद्वान इस विचार का अनुसरण नहीं करते। (देखें इकाई 25) न यह ही कहा जाता है कि यह व्यवस्था लोकतन्त्रवादी नहीं थी और जापान विदेशों के साथ सैन्यवाद दु:स्साहस की नीति का अनुसरण नहीं कर रहा था। अन्ततः यह समझा जाना चाहिये कि मेजी ढांचे में दलीय व्यवस्था एकीकृत हो चुकी थी और इतने प्रतियोगी हितों को अपनी प्रतियोगी मांगों के लिये बात चीत करने की अनुमति प्रदान की।

22.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 22.2
2) अपने उत्तर का आधार भाग 22.2 को बनायें

बोध प्रश्न 2

1) भाग 22.3 को उद्धृत करें
2) देखें उपभाग 22.3.1
3) देखें भाग 22.4

इकाई 23 सैन्यवाद का उदय

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 शासन का चरित्र
23.3 सेना एवं सरकार
23.4 राजनीतिक दलों के साथ सेना की नाराज़गी
23.5 शिक्षा एवं राष्ट्रवाद
23.6 विचारों एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुठराघात
23.6.1 सेना का विरोध
23.6.2 1930 के बाद के अधिनियम
23.7 सेना के अंदर विभाजन
23.8 सेना की तानाशाही
23.9 युद्ध एवं आर्थिक नीतियां
23.10 युद्ध एवं सेना का व्यवहार
23.11 सारांश
23.12 शब्दावली
23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको जानकारी हो सकेगी:

- 1930 के बाद जापान में सैन्यवाद के उदय के बारे में,
- सेना की शक्ति बढ़ाने में शिक्षा एवं देशभक्त संगठनों की भूमिका के बारे में,
- उन साधनों एवं विधियों के विषय में जिनके द्वारा सेना ने राज्य के मामलों का संचालन किया, और
- स्वयं सेना के अंदर होने वाले संघर्षों के विषय में।

23.1 प्रस्तावना

प्रशान्त महासागरीय युद्ध प्रारंभ होने के ठीक पहले के दशक (1931-1941) तक के समय को जापानियों के द्वारा "कूराइ जनिमा" (अंधेरी घाटी) कहकर उद्धृत किया गया है। यही वह समय था जबकि जापान में "सैन्यवाद" एवं "उग्र राष्ट्रवाद" का अभूतपूर्व तौर पर उदय हुआ।

इसी समय के दौरान सेना ने राजनीति, अर्थव्यवस्था एवं विदेशी संबंधों के क्षेत्र में अपनी सर्वोच्चता को स्थापित किया। इस समय के शासन के चरित्र की जांच-पड़ताल से इस इकाई का प्रारंभ किया गया है। इस इकाई में सैन्यवाद के उदय के कारणों के साथ-साथ इस संदर्भ में देश भक्त संगठनों एवं साहित्य द्वारा किए गए योगदान का विवेचन किया

विवेचना की गई है। अंत में, युद्ध के दौरान की आर्थिक नीतियों तथा युद्ध के प्रति सेना के दृष्टिकोण का भी उल्लेख किया गया है।

23.2 शासन का चरित्र

जापान में इस दौरान (1930 के दशक एवं 1940 के दशक) जो शासक वर्ग सत्ता में था उसके चरित्र को लेकर विद्वानों के बीच काफी बहस हो चुकी है। जिस प्रश्न के इर्द-गिर्द बहस होती है, वह यह है कि क्या यह शासन फासीवाद या फिर सैन्यवादी था? पहले हम इन दोनों व्यवस्थाओं की विशेषताओं का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत करेंगे :

i) फासीवाद की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं:
   - ऐसा राष्ट्रवाद जो जनता के एक समूह की नैसर्गिक सर्वोच्चता पर आधारित होता है।
   - कड़ा अनुशासनबद्ध तानाशाहीपूर्ण राजनीतिक राज्य; और
   - एक नेता ही राज्य का प्रतीक होता है।

ii) सैन्यवाद से तात्पर्य उस राज्य से है :
   - जिस राज्य के अंतर्गत सेना देश के प्रशासन में निर्णायक भूमिका अदा करती है,
   - जिसके अंतर्गत आर्थिक एक राजनीतिक नीतियों की मुख्य निर्माता सेना ही होती है, और
   - जहां सेना के अधीन विदेशी संबंधों में एक आक्रामक एवं प्रसारवादी नीति का अनुसरण किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

फासीवादी राज्य का सबसे अच्छा उदाहरण 1922-1945 के मध्य बेनितो मुसोलिनी के अधीन इटली और एडोल्फ हिटलर के अधीन जर्मनी का दिया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने जापान को इन दोनों फासीवादी राज्यों के अनुरूप ही माना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय जापान में भी फासीवाद की प्रवृत्तियां मौजूद थीं और जो निम्न प्रकार से हैं:

- विदेशी संबधों में आक्रामकता,
- अन्य एशियाई देशों से ऊपर सर्वोच्चता की भावना, और
- घरेलू मामलों में विरोध-दमन की नीति।

लेकिन जापान का मामला इन दोनों यूरोपीय देशों से अलग था। जापान में कोई सैनिक क्रांति नहीं हुई थी। परंतु इटली में 1922 में सत्ता को पलट दिया गया था और 1933 में जर्मनी में हिटलर के द्वारा ऐसा किया गया। जापान में जर्मनी की नाजी पार्टी की भांति कोई जनआधार वाला फासीवादी दल नहीं था। न ही जापान में हिटलर या मुसोलिनी की तरह का कोई ऐसा नेता था, जिसका राजनीतिक वातावरण पर पूर्णरूपेण वर्चस्व कायम हो गया था। सेना एकमात्र ऐसा संगठन था, जिसके पास व्यापक एवं निर्णायक शक्तियां थीं। यद्यपि राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी सम्राट था, लेकिन वास्तविक शक्तियां सेना के पास ही थीं। फिर भी सेना ने सम्राट के सम्मान को पुनर्स्थापित करने के लिए कड़ा संघर्ष किया। जापान के संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि राज्य का शासन सैन्यवाद के द्वारा संचालित किया गया। यहां पर यह उद्धृत करना भी उचित है कि समाज के एक बड़े भाग का जापान की एक "विशिष्टता" में विश्वास था और ऐसा सोचने वाले लोग नौकरशाही, कृषि वर्गों, सैन्यवादियों, एशियाई स्वतंत्रतावादी "राष्ट्रीय समाजवादियों", बड़े नेतागण तथा विद्वानों में थे। राष्ट्रवादी भावनाओं ने जापानी जनता को अति जागरूक बनाया। यद्यपि जापान ने

पश्चिमी तरीकों के आधार पर आधुनिकीकरण के मार्ग को अपनाया, फिर भी जापान ने राजतंत्र, कन्फ्यूशियस नैतिक मूल्यों तथा सेवा की सामुराइ परंपरा जैसे अपने समाज के मौलिक पक्षों को बनाए रखा।

जनता की राष्ट्रवादी भावनाओं ने 1930 के दशक में उग्रवादी स्वरूप अर्थात् "उग्र-राष्ट्रवाद" का रूप धारण कर लिया। 1930 तथा 1940 के प्रारंभिक वर्षों में सैनिक नेताओं ने जनता को राजनीतिक तथा व्यापारिक नेताओं के प्रभाव से मुक्त कराने एवं सम्राट के सम्मान को पुनर्स्थापित करने के कार्य को अपने हाथ में ले लिया। सैनिक नेताओं ने महसूस किया कि राजनीतिक एवं व्यापारिक नेताओं ने समाज के "जापानीवाद" को संशय में डाल दिया था।

23.3 सेना एवं सरकार

मेजी शासन के प्रारंभ से ही सेना राज्य के मामलों एवं प्रशासन में विशेष स्थान रखती थी। सैनिक नेताओं ने सरकार के निर्णय करने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। वास्तविकता यह है कि 1885 से 1945 तक लगभग आधे प्रधानमंत्री सैनिक नेता रह चुके थे। इसी के साथ-साथ अक्सर सेना के बड़े अधिकारी, गृहमंत्री एवं विदेश मंत्री जैसे महत्वपूर्ण पदों पर भी रहे। किसी बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल के द्वारा मंत्रिमंडल का गठन कर लिए जाने पर भी सैनिक मंत्रालय पर किसी न किसी तरह से सेना के बड़े अधिकारी का ही नियंत्रण रहता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1889 में लागू किए गए मेजी संविधान में एक ऐसी संसदात्मक सरकार की व्यवस्था की गई थी, जिसके अंतर्गत डायट में निर्वाचित प्रतिनिधिगण सरकारी निर्णयों में भाग लेते थे। लेकिन वे निर्णायक भूमिका अदा नहीं कर पाते थे क्योंकि सम्राट के पास व्यापक शक्तियां थी। ऐसे सभी कार्यपालिका अंग जो सम्राट के लिए कार्य करते थे, डायट की अनुमति के बगैर उनको लागू कर सकते थे और डायट का सेना पर भी कोई नियंत्रण न था। इस संदर्भ में संविधान की धारा XI को उद्धृत किया जा सकता है : "सम्राट सेना एवं नौसेना का सर्वोच्च अधिकारी है," और धारा XII के अनुसार "सम्राट सेना तथा नौसेना की सहमति के साथ संगठन एवं शांति को सुनिश्चित करता है।"

इस तरह से सम्राट के सर्वोच्च अधिकारी होने के कारण उसको सेना एवं नौसेना के अधिकारियों के द्वारा सलाह दी जाती थी। सेना के अधिकारीगण ऐसी नीतियों का निर्माण एवं लागू कर सकते थे, जिन पर सरकार की अनुमति लेना आवश्यक न था। न ही उनके लिए यह आवश्यक था कि अपने निर्णयों के लिए सरकार को सूचित तक करें। ऐसा संविधान की धारा VII के कारण था क्योंकि उसमें कहा गया था, "सेना के गुप्त एवं नियंत्रण संबंधी मामलों को सेना का मुख्य सेनापति प्रत्यक्ष तौर पर सम्राट को सूचित करता था और सेना तथा नौसेना का मंत्री उन्हीं मामलों की सूचना प्रधानमंत्री को दे सकता था, जिनकी सूचना सम्राट मंत्रिमंडल को देता था।"

हम पहले भी उद्धृत कर चुके हैं कि केवल सैनिक अधिकारी ही रक्षा मंत्रालय का मंत्री बन सकता था। परिणामस्वरूप सेना ऐसी किसी भी सरकार को गिरा सकती थी जो इसे स्वीकार्य न थी। सरकार को गिराने का काम सेना ने अपने किसी अधिकारी द्वारा त्यागपत्र दिलवाकर या किसी पद के लिए कोई अधिकारी न नियुक्त करके करती थी। जैसा कि हम आगामी भागों में देखेंगे कि सेना ने अपनी इस शक्ति का प्रयोग अपने लाभ के लिए किया।

23.4 राजनीतिक दलों के साथ सेना की नाराज़गी

जेनरो या बड़े राजनेताओं ने मेजी शासन के पुनर्स्थापन तथा देश के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान किया था। उनको समाज में ऐसा विशेष स्थान प्राप्त था, जो सरकार एवं सेना दोनों से उच्च था। **जेनरो** का सम्राट के साथ प्रत्यक्ष संपर्क था और सम्राट अक्सर उनके विचारों का अनुसरण करता था। जब तक बड़े राजनेता जीवित रहे, तब तक नागरिक एवं सैनिक नीतियों के बीच कम से कम टकराव हुआ। लेकिन 1922 तक अधिकतर बड़े नेतागणों की मृत्यु हो चुकी थी या जो कुछ जीवित बचे उन्होंने राजनीति से सन्यास ले लिया था। इस समय तक राजनीतिक दलों का राजनीति में दबदबा कायम हो चुका था और अब राजनीतिक दलों तथा सेना के मध्य होने वाला संघर्ष काफी गंभीर हो गया था।

राजनीतिक दलों ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद जिन सरकारों का गठन किया, उनके द्वारा किए गए कार्यों से सेना काफी नाराज थी। सेना ने राजनीतिक दलों के उस दृष्टिकोण का विरोध किया, जिसके अनुसार उन्होंने सेना के बजट में बढ़ोत्तरी एवं सैनिक डिवीज़नों के प्रसार का विरोध किया। उदाहरण के रूप में, प्रधानमंत्री कातो तक्काकी की सरकार ने सेना की 21 डिवीजनों में कमी करके उनको 17 कर दिया। राजनीतिक दलों की चीन के प्रति जो नीति थी, उसको लेकर भी सेना नाराज थी। 4 फरवरी 1922 को चीन तथा जापान के बीच जो आपसी समझौता हुआ उसके अनुसार चीन को शांतुंग प्रदेश की संप्रभुता वापस लौटा दी गई और उस क्षेत्र में जापान के आर्थिक विशेषाधिकारों को मान्यता प्रदान कर दी गई। तभी से चीन के प्रति संचालित होने वाली जापानी नीति का मुख्य लक्ष्य सैन्य प्रसार के स्थान पर आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करना हो गया। इस नीति को "नरम" चीन नीति का नाम दिया गया तथा यह नीति प्रधानमंत्री शिदेहारा किजूरो की नीति थी, जो जून 1924 से अप्रैल 1927 तथा पुनः जुलाई 1929 से दिसम्बर 1931 तक जापान का प्रधानमंत्री रहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सेना चीन के प्रति नरम नीति की कटु आलोचक थी, क्योंकि जापान ने मुख्य भूमि पर जो उपलब्धियां प्राप्त की थी उनको साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के उफान से भारी जोखिम पैदा हो गया था। यह आंदोलन कुओमिंतांग (KUOMINTANG) दल के नेता च्यांग काई शेक के नेतृत्व में और अधिक शक्तिशाली होता जा रहा था। उसने जापान सहित सभी समझौतों के पुनरावलोकन की मांग की और दक्षिण मंचूरिया में जापान की प्रमुख भूमिका के जारी रहने पर भी प्रश्न उठाए।

राजनीतिक दलों ने भी व्यापारिक घरानों **(जैबात्सू)** के साथ उनके घनिष्ठ संबंध की आलोचना की। किसानों ने विशेष रूप से यह विश्वास किया कि राजनीतिक दलों के प्रभुत्व वाली सरकारों ने **जैबात्सू** के हितों की रक्षा की और कृषि की अपेक्षा व्यापार एवं उद्योग को अधिक महत्व दिया। इस संदर्भ में कोरिया एवं ताइवान से आयात किए जाने वाले सस्ते चावल का उदाहरण दिया जा सकता है क्योंकि इस व्यापार से व्यापारियों को लाभ हुआ और इसने किसानों की आमदनी पर विपरीत प्रभाव डाला (देखें इकाई 24) व्यापारिक घरानों के साथ-साथ राजनीतिक दलों पर भी भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए। विदेशी विचारों के आगमन के लिए भी राजनीतिक दलों को जिम्मेदार ठहराया गया, क्योंकि इन विचारधाराओं को खतरनाक एवं सम्राट के प्रभुत्व को और अधिक सुदृढ़ करने वाली समझा गया। राजनीतिक दलों के विरुद्ध व्याप्त इस तरह की भावनाओं का लाभ सेना ने उठाया।

इस पृष्ठभूमि में नौसेना ने उस लंदन नौसेना संधि (1930) का कड़ा विरोध किया, जिसमें हथियारों में कटौती का आह्वान किया गया था। लेकिन उस समय के प्रधानमंत्री हामागुशियाको ने इसे डायट से पारित कराने में सफलता प्राप्त कर ली थी। सरकार की कड़ी आलोचना की गई और टोकियो में हिंसात्मक विरोध हुआ। बाद में हामागुशि की हत्या कर दी गई। अंतिम प्रधानमंत्री इनूकाय त्सूयोशि भी सेना में लोकप्रिय न था और सेना ने मंचूरिया में जो सैनिक कार्यवाही की उसके विषय में सेना के अधिकारियों ने सरकार को सूचित तक करना आवश्यक न समझा। इनुकाय ने सैन्य प्रसार का विरोध किया और

सेना में अनुशासन कायम करने का आह्वान किया। मई 1932 में छोटे सैनिक अधिकारियों के द्वारा उसका भी वध कर दिया गया। इसी के साथ जापान में राजनीतिक दलों की सरकार के काल का अंत हो गया।

हमें यहां पर यह उद्धृत करना होगा कि जापान में सैन्यवाद ने उग्र राष्ट्रवाद की भावनाओं के कारण गति पकड़ी। ये उग्र राष्ट्रवाद की भावनाएं जापान में काफी पहले से उत्पन्न हो चुकी थीं। इन भावनाओं के विकास में निश्चय ही कुछ अन्य कारकों ने अपनी भूमिका अदा की।

बोध प्रश्न 1

1) फासीवाद एवं सैन्यवाद की विशेषताएं बताइए। 1930 तथा 1940 के दशकों में जापान को आप इनके बीच कहां पर रखेंगे? उत्तर लगभग 15 पंक्तियों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) सेना की राजनीतिक दलों के प्रति शत्रुता क्यों थी? लगभग दस पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

23.5 शिक्षा एवं राष्ट्रवाद

जनता के मस्तिष्क में राष्ट्रवादी भावनाओं को जगाने के लिए जापान ने शिक्षा का एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रयोग किया। मेजी शासन के दौरान जिस शिक्षा व्यवस्था को

लागू किया गया, उसकी प्रेरणा जर्मनी से ली गई थी। जापानियों का जर्मनी की भांति विचार था कि,

> "युद्धों को कक्षा कमरों में जीता जा सकता है।"

प्राथमिक स्कूलों को राष्ट्रवादी विचारों का बीजारोपण करने के लिए सबसे अधिक उर्वरक समझा गया। मेजी शासन के प्रारंभिक समय में शिक्षा व्यवस्था के प्रारूप को तैयार करने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान मोरू ऐरिनोनी का था और उसने एक बार कहा कि:

> "सभी स्कूलों के प्रशासन को संचालित करते समय मस्तिष्क में यह रोपित किया जाना चाहिए कि जो कुछ भी किया जाता है, वह विद्यार्थियों के लिए नहीं बल्कि देश के लिए किया जाना है।"

एक अन्य अवसर पर उसने कहा :

> "हमारे देश को तीसरे स्थान से दूसरे स्थान के लिए तथा फिर प्रथम स्थान के लिए आगे बढ़ना है और तब उसको विश्व के सभी देशों में प्रथम स्थान को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना है।"

इस तरह की भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि स्कूल के पाठ्यक्रमों में नैतिक शिक्षा को प्राथमिकता दी गई।

अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए जिन नार्मल स्कूलों को खोला गया, उनको इस तरह से योजनाबद्ध किया गया था कि वे अध्यापकों को विद्यार्थियों के लिए आज्ञाकारिता, समर्पण, देश-प्रेम, सम्राट के प्रति वफादारी एवं भक्ति में एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। एक सेवा निवृत्त सैनिक अधिकारी को उनमें मानसिक एवं शारीरिक अनुशासन पैदा करने के लिए रखा जाता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मेजी शासन के दौरान शिक्षा ने जिन दोहरे उद्देश्यों को प्रोत्साहित किया गया वे इस प्रकार थे: "देशप्रेम एवं वफादारी और इंजीनियरों, मैनेजरों तथा वित्त अधिकारियों आदि के एक नए वर्ग को तैयार करना।"

जनता में राष्ट्रवादी भावना को और गहरा बनाने के लिए शिक्षा का एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया गया। 1937 में चीन के साथ दूसरे युद्ध के बाद संपूर्ण देश को युद्ध की स्थिति में रखा गया। इसके फलस्वरूप युद्ध के समय देश की जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षा कौंसिल के द्वारा व्यवस्था में कुछ परिवर्तनों का सुझाव दिया गया। प्राथमिक स्कूलों का नाम बदलकर "राष्ट्रीय स्कूल" कर दिया गया। इसका उद्देश्य जनता को "जापानी साम्राज्य के उन नैतिक सिद्धांतों के अनुरूप प्रशिक्षित करना था, जिनका तात्पर्य जनता को सम्राट के प्रति वफादार बनाना था।"

जैसे-जैसे जापान युद्ध की गहराई में धंसता गया, वैसे-वैसे शिक्षा में राष्ट्रवादी तत्व और अधिक बढ़ता गया। 1941 के शैक्षिक सुधार तथा 1943 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा जारी की गई माध्यम संबंधी नीति में युवकों को "साम्राज्य के तरीके के अनुरूप" प्रशिक्षित करने की जरूरत पर बल दिया गया। इस तरीके में "वफादारी, निष्ठा, सुरक्षा तथा साम्राज्यिक सिंहासन की सम्पन्नता को बनाए रखने, देवताओं एवं पूर्वजों के प्रति भक्ति भाव रखने" पर जोर दिया गया था। इसके द्वारा पूर्वी एशिया तथा विश्व में जापान के लक्ष्यों को विद्यार्थियों को समझाने की आवश्कता पर भी बल दिया गया। जापानी साहित्य, साम्राज्य की परंपराओं के ज्ञान तथा जापानी जीवन शैली एवं संस्कृति के अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया जाने लगा।

जापान के लक्ष्य तथा बृहत् पूर्वी एशिया के सह-सम्पन्नता के क्षेत्र की नीति के महत्व को जापानियों को समझाने के लिए उनको पूर्वी एशिया के देशों के विषय में तथा वहां पर यूरोपीय देशों के शासन के दौरान पैदा की गई दुर्दशा के विषय में शिक्षित करना आवश्यक था। इस प्रकार से सरकार ने उस तरह से जनता के मन को तैयार किया जिस तरह से वे चाहते थे क्योंकि शिक्षा के द्वारा उन्होंने जनता के बीच राष्ट्रवादी भावनाओं को

भरपूर तौर पर पैदा किया था। इस तरह के सभी विचारों का प्रसार करने में सेना ने महत्वपूर्ण योगदान किया। इसके द्वारा ऐसी राष्ट्रव्यापी भावनाओं को उभारा गया, जिन्होंने सेना के उद्देश्यों को पूरा करने में भरपूर मदद की।

23.6 विचारों एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती

राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए उस असंतोष का दमन करना आवश्यक था, जो देश के राजनीतिक एवं आर्थिक तंत्रों में हुए परिवर्तनों से पैदा हुआ था।

औद्योगीकरण के कारण एक ऐसी जनसंख्या उभर कर आई, जिसमें जापान में पारिवारिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। औद्योगीकृत पश्चिम से आए नए सामाजिक मूल्य और धारणाओं ने जापानी समाज में प्रवेश किया, जिसके कारण कन्फ्यूशस के सिद्धांतों पर आधारित जापानी सामाजिक व्यवस्था का आधार टूटने लगा।

विचारों तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती करने के लिए मेजी सरकार द्वारा अनेकों सुरक्षा कानूनों तथा प्रकाशित अधिनियमों को लागू किया गया। इन कानूनों के द्वारा केवल सरकार का पक्ष लेने वाले साहित्य को प्रकाशित होने की अनुमति प्रदान की गई।

1870 तथा 1880 के दशकों में जापान में जनता के अधिकारों का आंदोलन (देखें इकाई 16 से 22 तक) व्यापक तौर पर फैला था। कैद करने, नेताओं को खरीदने तथा मनोबल तोड़ने जैसे तरीकों सहित सरकार ने इस तरह के अधिनियमों को भी बनाया, जिनके द्वारा सभा करने पर पाबंदी (1880) लगा दी गई तथा आंदोलनों को कुचलने के लिए किसी भी समाचार-पत्र को सरकार की प्राथमिक अनुमति के बिना प्रकाशित करने से (1983) रोक दिया गया। यहां तक कि नाटकों तथा चलचित्रों को साधारण जनता को दिखाने से पूर्व सरकार की अनुमति लेनी होती थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन सभी दमनकारी उपायों के बावजूद जनता के अधिकारों के आंदोलन को जापान में संसदात्मक सरकार स्थापित कराने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। लेकिन संविधान के द्वारा "कानून की सीमाओं के अंदर" जनता को सीमित स्वतंत्रता प्रदान की गई थी और जिसको आगामी वर्षों में पारित होने वाले कानूनों ने और सीमित कर दिया।

23.6.1 सेना का विरोध

जापान में बढ़ते सैन्यवाद के विरुद्ध प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एवं बाद में कड़ा प्रतिवाद किया गया। सबसे अधिक संगठित एवं व्यवस्थित युद्ध-विरोधी आंदोलन साम्राज्यवादियों एवं साम्राज्यवादियों एवं साम्यवादियों के द्वारा चलाया गया। कई युद्ध-विरोधी लेखों के द्वारा सेना की बुराई को उजागर किया गया। कोबायाशी ताकिजी ने अपने लेख **कानी कोसेन** (कैनेरी नाव, 1929) में दिखाया कि सेना हड़ताल का कैसे दमन करती थी। कुरोशिमा देनजी द्वारा लिखित **बुसो सेरू शिगाय** (हथियारों के अधीन शहर) में साइबेरिया अभियान के दौरान सैनिकों की मुसीबतों को दर्शाया गया। इस तरह की साहित्यिक कृतियों पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था। साम्यवादी दल पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था, क्योंकि वह सैनिक अभियानों का जबरदस्त विरोधी था। इस दल के अनेक नेताओं को जेल की सजा दी गई और बहुत से भूमिगत हो गए।

सेना ने राष्ट्रवादी भावनाओं का इस्तेमाल ऐसे मज़दूर वर्ग को पैदा करने के लिए किया, जो कड़ा परिश्रमी, अनुशासनिक तथा मांग न करने वाला था। यह सेना एवं पूंजीपति दोनों के लिए लाभदायक साबित हुआ।

23.6.2 1930 के बाद के अधिनियम

1930 तथा 1940 के वर्षों में जैसे जापान युद्ध में शामिल होता गया, वैसे-वैसे विचारों तथा

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कड़ा नियंत्रण कसता चला गया। विद्यमान अधिनियमों के क्षेत्रों को विस्तृत करने के लिए उनमें संशोधन किया गया। 1925 में शांति बनाए रखने के लिए पारित किए गए अधिनियम को 1928 में एक विशेष शाही अध्यादेश के द्वारा संशोधित कर दिया गया। इस अधिनियम को पुनः 1941 में संशोधित किया गया जिससे कि किसी भी राजनीतिक कार्यकर्ता को गिरफ्तार कर उसे अनिश्चित समय के लिए जेल में रखा जा सके।

1941 के राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के साथ-साथ दूसरे प्रतिबंधित अधिनियमों को बनाया गया। इनके अनुसार लायजन सम्मेलन तथा मंत्रिमंडल की बैठकों में हुई बहस को "अति गुप्त" रखा जाना था। जो कोई भी इनसे संबंधित सूचना प्राप्त करने या देने या प्रयास करता पाया जाएगा उसको कड़ी सजा दी जाएगी। युद्ध के दौरान होने वाले अपराधों से संबंधित कानूनों में 1942 में संशोधन कर सरकारी प्रशासन में हस्तक्षेप करने को भी अपराध घोषित कर दिया गया।

युद्ध में जुड़े सवालों पर आम बहस करना या बातचीत करना विद्यमान कानूनों के कारण असंभव सा हो गया। आम लोगों के लिए युद्ध की वास्तविकताओं को जानना भी असंभव हो गया था क्योंकि समाचार-पत्र सामान्य जनता को वही बता सकते थे, जो सरकार चाहती थी। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य न था यदि जनता सैनिक सरकार की नीतियों का समर्थन करने को बाध्य थी, बल्कि सेना के लिए बहुत-सी स्थापित देश भक्त संस्थाओं तथा संगठनों के प्रचार ने और सरल बना दिया था क्योंकि इनका अस्तित्व मेजी सरकार के समय ही बना हुआ था (इनके विषय में आप इकाई 25 में पढ़ेंगे)। इन संस्थाओं तथा संगठनों ने "उग्र-राष्ट्रवादी" साहित्य को तैयार किया जिसने सेना को ताकत प्रदान की। बहुत से सैनिक अधिकारी न केवल इस तरह की संस्थाओं एवं संगठनों के सदस्य थे, बल्कि उनका इनकी विचारधारा में कड़ा यकीन था और उसको लागू करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। इनमें अधिकतर नौजवान अधिकारी थे। अधिकतर नौजवान अधिकारी साधारण मध्यम वर्गीय परिवारों, छोटे व्यापारियों के पुत्रों तथा कार्यालयों में बाबूओं से संबंधित थे। एक बड़ी संख्या उन ग्रामीण अंचलों से भी आती थी जहां पर आर्थिक संकट का गहरा प्रभाव हुआ था। इनमें से कई अधिकारियों ने शहरों में स्थित सम्पन्न धनी लोगों का विरोध भी किया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित होकर ये नौजवान अधिकारी यातो किता इक्की जैसे नेताओं के साथ हो गए थे या फिर ऐसे संगठनों के सदस्य बन गए थे, जिनमें केवल सेना एवं नौसेना के सदस्य शामिल थे। ओकावा शूमई के साथ-साथ किता इक्की ने **यूज़ोन्शा** (राष्ट्रीय भावनाओं को बनाए रखने के लिए संस्था) का गठन किया। ओकावा औप निवेशीकरण अकादमी में प्रवक्ता था और इन दोनों ने संयुक्त रूप से विदेशों में सैनिक प्रसार तथा सेना के द्वारा सत्ता प्राप्त करने की वकालत की। दूसरी प्रसिद्ध संस्था **सकूराकाय** (चेरी ब्लॉसम) थी और इसकी स्थापना 1930 में लेफ्टीनेंट कर्नल हाशिमोते किंगोरो ने की थी।

मेरिन्का (ऊंची नैतिकता की संस्था) के अंतर्गत भी सेवा निवृत्त सेना एवं नौसेना अधिकारी थे। **कोदोकाय** (साम्राज्यिक मार्ग की संस्था) की स्थापना 1933 में पूंजीवादी ढांचे और राजनीतिक दलों को समाप्त करने के लिए की गई थी और इसने राज्य के द्वारा नियंत्रित अर्थव्यवस्था की-स्थापना का समर्थन किया। इन संस्थाओं पर सैनिक अधिकारियों का वर्चस्व था और ये 1931 के मंचूरिया संकट के बाद विशेष तौर से लोकप्रिय हो गई।

1930 के वर्षों में जो अनेकों षड़यंत्र रचे गए, उनसे स्पष्ट है कि आला कमान स्वयं अपने अधिकारियों पर नियंत्रण करने में सक्षम न थी। इसका प्रथम प्रमाण मंचूरिया की वह सेना थी, जिसका इस क्षेत्र के मामलों एवं योजनाओं को बनाने पर नियंत्रण था और इसने टोकियो में उच्च अधिकारियों की पीठ पीछे कार्यवाहियों को लागू किया। सेना के नेतागण राजधानी में आगे होने वाली घटनाओं पर अपना नियंत्रण कायम न रख सके लेकिन उन्होंने उनकी कार्यवाहियों को उचित ठहराया। छोटे अधिकारियों ने अधिनियमों को तोड़ा। सेना की जो टुकड़ियां विदेशों में तैनात थी उन्होंने टोकियो की नीतियों का अनुसरण नहीं किया। समय-समय पर सेना ने सर्वोच्च कामण्डर अर्थात् सम्राट की आज्ञाओं का भी पालन नहीं किया।

बोध प्रश्न 2

1) सैन्यवाद के राष्ट्रवादी विचारों को विकसित करने में शिक्षा ने कैसे योगदान किया? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन गलत या सही है। गलत (x) या सही (/) का चिह्न लगाइए।

i) किता इक्की ने लोकतांत्रिक सरकार का समर्थन किया।

ii) राष्ट्रीय भावना का इस्तेमाल मांग न करने वाले अनुशासित मज़दूर वर्ग को पैदा करने के लिए किया गया।

iii) साम्यवादियों ने सैन्यवाद का विरोध किया।

iv) किसी सीमा तक सेना ने सरकार की शिक्षा नीति को निर्देशित किया।

v) जिन लेखों के द्वारा सेना की बुराई को उजागर किया गया, उनको प्रोत्साहित किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.7 सेना के अंदर विभाजन

आर्थिक एवं राजनीतिक संकट के कारण जो स्थिति पैदा हुई, उससे निपटने के लिए क्या नीति अपनाई जाए–इसे लेकर सेना उच्च स्तर पर दो खेमों में विभाजित थी। ये दोनों मुख्य गुट निम्न प्रकार से थे :

i) एक **कोदोहा** (साम्राजिक मार्गी गुट) था और इस गुट में अकारी सदाओ तथा माजाकी जिंजाबुर जैसे सेनापति शामिल थे।

ii) दूसरा गुट **तोसेई** (नियंत्रण गुट) था और इस गुट में सामान्य स्टाफ के नागाता तेत्सूजन, ताजो हिदेकी तथा इशिवारा कांजी जैसे उच्च अधिकारी शामिल थे।

कोदोहा गुट ने वफादारी तथा नैतिकता पर बल दिया और तंत्रीय परिवर्तनों में कोई विशेष योगदान न किया। **तोसेई** गुट ने पूंजीवाद तथा संसदात्मक व्यवस्था का विरोध नहीं किया। इसने राज्य नियंत्रण की स्थापना एवं इसके लागू करने पर ज़ोर दिया जिससे जापान को युद्ध के लिए तैयार किया जा सके। **तोसेई** गुट को व्यापारियों, नौकरशाहों तथा बुद्धिजीवियों से समर्थन प्राप्त हुआ।

सत्ता के लिए सेना के अंदर संघर्ष काफी गंभीर था। **कोदोहा** गुट उस समय वर्चस्व की स्थिति में था, जबकि 1931 में अराकी युद्ध मंत्री एवं मजाकी उप सेनापति बना। लेकिन मंचूरिया में तोसेई गुट का ही अधिक प्रभाव था।

1934 में अराकी ने त्याग-पत्र दे दिया तथा उसका उत्तराधिकारी हायाशि सेन्जूरो बना और सेन्जूरो धीरे-धीरे नागाता तेत्सूजान के प्रभाव में आ गया। माजाकी ने उप सेनापति के रूप में कार्य करने के बाद सैनिक शिक्षा के डायरेक्टर जनरल का पद प्राप्त किया। लेकिन नागाता ने किसी तरह से 1935 में उसको इस पद से हटाने में सफलता प्राप्त की। बदले की भावना से काम करते हुए माजी समर्थकों ने आगे चलकर नागाता की हत्या कर दी। इन वर्षों के दौरान यह समझा गया कि **कोदोहा** के सदस्य लगातार **समस्या** पैदा करते रहते थे और इसी कारण से उनमें से अधिकतर को मंचूरिया भेज दिया गया।

लेकिन **कोदोहा** के सदस्य सत्ता पर अधिकार करने के लिए कृत-संकल्प थे। 26 फरवरी, 1936 में एक प्रयास उस समय किया गया, जबकि इस गुट के युवा अधिकारियों ने टोकियो केन्द्र पर अधिकार कर लिया तथा वित्त मंत्री, प्रिवी कौंसिल के लॉर्ड एवं सैनिक शिक्षा के इंस्पेक्टर जनरल जैसे बड़े नेताओं की हत्या कर दी गई। इन युवा सैनिक अधिकारियों ने माजाकी के अधीन एक नए तंत्र की स्थापना की मांग की। लेकिन बड़े अधिकारियों के दबाव में उन्हें अंततः आत्म-समर्पण करना पड़ा। इनमें से लगभग 13 अधिकारियों पर मुकदमा चलाया गया और उनको फांसी की सजा दे दी गई। यद्यपि किता इक्की इस घटना में प्रत्यक्ष तौर पर शामिल न था, किन्तु 1937 में उसे भी फांसी दे दी गई। अराकी एवं **माज़ाकी को भी हटा दिया गया। इस तरह से अधिकारियों को अलग-अलग करके कोदोहा** की शक्ति को क्षीण कर दिया गया। उनमें कुछ का हस्तांतरण करके देश से दूर मंचूरिया भेज दिया गया। इस तरह दोनों गुटों के बीच सत्ता के लिए हुए संघर्ष में **तोसेई** गुट को विजय प्राप्त हुई। लेकिन इस आंतरिक संघर्ष के कारण सेना किसी भी तरह से कमजोर न हुई।

DIKSHANT IAS

23.8 सैनिक तानाशाही

Call us @7428092240

मंत्रिमंडल के गठन में सेना ने जिस तरह विघ्न डाला उससे सेना की तानाशाही की अभिव्यक्ति हुई। यदि प्रधानमंत्री या मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में नियुक्त होने वाला नेता सेना को स्वीकार्य न था, तब सेना सेवा पद पर एक अधिकारी को नियुक्त करने से इंकार कर सकती थी। इसके कारण मंत्रिमंडल का गठन करना असंभव हो गया। जैसे-जैसे सेना का हस्तक्षेप बढ़ता गया, वैसे-वैसे राजनीतिक नेताओं के पास इसके सिवाय कोई विकल्प न रह गया था कि वे सेना की सभी बातों को माने।

26 फरवरी 1930 की उस घटना के बाद जबकि आंकुदा केसूके मंत्रिमंडल का पतन हो गया था, हिरोता कोकी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया। जब तक सेना के द्वारा मंत्रिमंडल के सदस्यों के नामों का अनुमोदन नहीं कर दिया गया, तब तक वह उनको मंत्रिमंडल में शामिल न कर सका।

हिरोता मंत्रिमंडल को भी सेना ने त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य किया। इसका कारण यह था कि डायट में हामाद कुनिमात्सू ने एक ऐसा प्रश्न किया, जिसको सेना ने अपने विरुद्ध माना। सेना ने उसके निकाले जाने की मांग की अन्यथा उसे सेना का सहयोग प्राप्त नहीं होगा।

सेना उगाकी काज़ूशिजे के पक्ष में भी न थी। उगाकी को न तो मंत्रिमंडल का गठन करने के लिए बुलाया गया और उसको मंत्रिमंडल में मंत्री का पद देने से भी इंकार कर दिया गया। वास्तव में सेना ने उगाकी को बड़े ही असंदिग्ध तरीके से प्रधानमंत्री बनने से रोका। जिस समय उगाकी टोकियो को जा रहा था उसे उस समय सेना पुलिस के कप्तान द्वारा टोकियो की सीमा के बाहर कांगवाय मोड़ पर रोक लिया गया। उगाकी को कार में बैठा लिया गया और पुलिस कप्तान ने बताया कि युवा सैनिक अधिकारियों में काफी असंतोष फैला हुआ है। इसलिए सेना मंत्री का आदेश है कि आप प्रधानमंत्री के पद को स्वीकार करने से इंकार कर दें। युवा सैनिक अधिकारियों की नाराजगी का कारण यह था कि

मई 1936 में अधिनियमों में संशोधन कर यह व्यवस्था कर दी गई कि जो अधिकारी सक्रिय रूप से कार्यरत थे, केवल वे ही सेना एवं नौसेना के मंत्री पदों को ग्रहण कर सकते थे। अब प्रधानमंत्री सेना के रिटायर्ड अधिकारियों की इस पद पर नियुक्ति नहीं कर सकता था।

राजनीतिक दलों का महत्व इस तथ्य में निहित था कि डायट में वे जनता का प्रतिनिधित्व करते थे और नीतियों के प्रति उनकी सहमति का तात्पर्य था कि जनता भी उन नीतियों का समर्थन करती थी।

अक्तूबर 1940 में राजनीतिक दलों का स्थान **तैसेई याकूसन काय** (इम्पीरियल रूल एसिस्टेंस एसोसिएशन) ने ले लिया। राजनीतिक दल भी इस संस्था में शामिल हो गए और राष्ट्रीय नीतियों का समर्थन करने के लिए जनमत तैयार करने की प्रतिज्ञा की। अब निर्णय लेने की प्रक्रिया में राजनीतिक दलों की भूमिका बिल्कुल ही नगण्य हो गई।

23.9 युद्ध और आर्थिक नीतियां

1937 में चीन के साथ युद्ध छिड़ जाने के बाद से जापान इस देश के आंतरिक मामलों में गहरी रुचि लेने लगा। युद्ध चीन के बहुत से भागों में फैल गया और जापान को जान-माल का भारी नुकसान हुआ। महाद्वीप में जो घटनाक्रम घटित हुआ उनका प्रभाव घरेलू नीतियों पर भी हुआ। सेना ने युद्ध में व्यापक तौर पर भाग लेने के लिए देश के अंदर और अधिक तैयारियां की। इसके कारण आर्थिक व्यवस्था पर सरकार का नियंत्रण और बढ़ गया। अब हथियारों एवं भारी उद्योगों पर अधिक बल दिया जाने लगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जून, 1937 में जैसे ही कोनोइ फुमिमारो ने प्रधानमंत्री का पद संभाला, वैसे ही नागरिक उड्डयन तथा तेल वितरण को सरकार के नियंत्रण में कर लिया गया। आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए मंत्रिमंडल नियोजन बोर्ड का गठन किया गया।

यह भी निर्णय लिया गया कि लॉयजन सम्मेलनों का आयोजन प्रधानमंत्री, विदेश मंत्री तथा सेना एवं नौसेना मंत्रियों के बीच होगा और उसी के अंदर महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाएंगे। इन कार्यवाहियों में अन्य मंत्री भाग न ले सकेंगे और इस तरह से सभी महत्वपूर्ण निर्णयों के विषय में मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यगण अनभिज्ञ बने रहे।

सन् 1938 में एशिया विकास बोर्ड का गठन किया गया और इसका उत्तरदायित्व चीन से संबंधित मामलों का संचालन करना था। 1942 में निर्मित बृहत् पूर्वी एशिया मंत्रालय में एशिया विकास बोर्ड का उसी वर्ष विलय कर दिया गया।

1929 में डायट के द्वारा गतिशील कानून को पारित किया गया और इसके द्वारा श्रम, कच्चे माल आदि पर सेना के प्रभुत्व को और कड़ा कर दिया गया। ऐसे उद्योगों को प्रोत्साहित किया गया, जो युद्ध की मशीनरी का प्रसार करने में सहायक थे। मंचूकाओ प्रदेश पर सेना का पूरा नियंत्रण था और वहां पर भी सभी प्रयासों को कोयला, लौह एवं स्टील उद्योगों, आटोमोबाइल एवं युद्ध विमानों के निर्माण के विकास की ओर निर्देशित किया गया।

23.10 युद्ध एवं सेना का व्यवहार

जैसे-जैसे युद्ध फैलता गया, वैसे-वैसे जापान ने 1942 के मध्य से 1944 के मध्य तक अपने साम्राज्य को विकसित एवं प्रसारित करने के प्रयास किए और इसका आर्थिक तौर पर शोषण भी किया। जापान ने नवम्बर, 1941 में एक योजना का प्रारूप तैयार किया, जिसके

अनुसार संपूर्ण पूर्वी एशिया को बृहत् पूर्वी एशिया के रूप में परिवर्तित कर जापान के साथ एक सह-सम्पन्न क्षेत्र बनाना था। चीन तथा मंचूरिया को भी अपना औद्योगिक आधार बनाना था।

यद्यपि सह-सम्पन्न क्षेत्र बनाने के विचार का तात्पर्य एशिया के देशों को पश्चिमी देशों के नियंत्रण से "मुक्त" कराना था, किन्तु जापान का मुख्य उद्देश्य इन देशों को एशिया क्षेत्र से हटाकर अपना प्रभाव कायम करना था।

मार्च, 1941 में इम्पोरियल रूल एसिसटेंस एसोशियसन ने "बृहत् पूर्वी एशिया के सह-सम्पन्न क्षेत्र की मूल अवधारणाओं" को प्रकाशित करते हुए कहा, "यद्यपि हमने "एशियाई सहयोग" शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन इससे इस वास्तविकता को नहीं भुलाया जा सकता है कि जापान को ईश्वर के द्वारा स्वत:जातीय समानता के लिए बनाया गया है।" इसका तात्पर्य यह था कि समानता के बावजूद कुछ एशियावासी (जैसे जापान) दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठतर थे।

जापान ने 7 दिसम्बर, 1941 को पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया और संयुक्त राज्य अमेरिका पर शीघ्रता के साथ विजय दर्ज की। इसके बाद जापान ने शीघ्रता से दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा प्रशान्त महासागर के क्षेत्रों पर अपना शासन कायम कर लिया।

जिन देशों पर जापान ने युद्ध के दौरान अधिकार कर लिया था उनके साथ सेना का व्यवहार काफी असभ्य रहा। इन क्षेत्रों में जापानी सेनाओं ने जो ज्यादतियां की उनमें नृशंसता, लूट, बलात्कार तथा हत्या का बोलबाला था।

कोरिया तथा ताइवान जैसे देशों पर जापान के लम्बे शासन काल में इन देशों की जनता के साथ जापान ने दूसरे दर्जे के नागरिकों जैसा व्यवहार किया। सम्मिश्रण की एक कठोर नीति को लागू किया गया, जिसके अनुसार इन देशों की जनता को जापानी भाषा सीखने तथा जापानी नामों को अपनाने के लिए बाध्य किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जैसे-जैसे युद्ध आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे जापान को लड़ाकू सेना तथा श्रमिकों की और अधिक आवश्यकता होने लगी। कोरियाई लोगों को कल-कारखानों में काम करने के लिए लाया गया। ऐसे विशेष कानूनों को लागू किया गया, जिससे वे लोग बाध्य होकर जापानी सेना में शामिल हो जाएं।

मलाया, फिलीपीन्स, बर्मा, इण्डोनेशिया, वियतनाम, कम्बोडिया एवं लाओस जैसे दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों ने जापानी शासन का विरोध यूरोपीय शासकों से अधिक किया। इस असंतोष के निम्नलिखित कारण थे:

- जापानियों ने अपनी जातीय श्रेष्ठता की मान्यताओं के कारण विजित देशों की स्थानीय रीतियों एवं लोगों का अपमान किया,
- राजनीतिक अधिकारों में कटौती की, और
- उन देशों की अर्थव्यवस्था को नष्ट किया और उनमें जापान की जरूरतों के मुताबिक परिवर्तन किया।

प्रारंभ में बर्मा, इण्डोनेशिया तथा फ्रेंच इण्डो चीन जैसे देशों ने जापानियों को अपना "मुक्तिदाता" समझा। उन्होंने जापान को एशिया की ऐसी प्रथम शक्ति माना, जिसने 1904-05 के रूस-जापान युद्ध के दौरान एक यूरोपीय शक्ति को पराजित किया और उनके दिमागों में उसी जापान की याद अभी तक तरोताजा दी। लेकिन जापान के वास्तविक रूप को समझने में उन्हें अधिक समय न लगा और वे जापानियों तथा सेना द्वारा थोपे गए शासन से घृणा करने लगे। शीघ्र ही इन देशों में जापान के विरोध में एक संगठित एवं व्यापक आंदोलन का उद्भव हुआ।

बोध प्रश्न 3

1) जापानी सेना में कौन से गुट थे तथा उनके दृष्टिकोण क्या थे? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़े तथा सही (√) और गलत (x) के निशान लगाएं।

i) 1940 के दशक के प्रारम्भ में राजनीतिक पार्टियों ने नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

ii) सेना के दबाव के कारण अधिक धन का इस्तेमाल हथियारों के उत्पादन में किया गया।

DIKSHANT IAS

iii) मंचूकों के आर्थिक संसाधनों का इस्तेमाल युद्ध उद्योगों के प्रसार के लिये किया गया।

Call us @7428092240

iv) जापान द्वारा जीते गये देशों में सेना का व्यवहार काफी अच्छा था।

23.11 सारांश

1930 के बाद सेना के स्थापित होने वाले वर्चस्व एवं सत्ता की जड़ें वास्तव में संविधान में ही निहित थी।

जिन मेजी शासकों को "उदार" समझा जाता था, वे वास्तव में काफी अनुदार थे और वे एक सीमा से आगे जनता को शक्ति देने के लिए तैयार न थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जिस लोकतांत्रिक व्यवस्था को 1889 में लागू किया गया था, उसके अंतर्गत जन प्रतिनिधियों के पास बहुत सीमित अधिकार थे। हम देख चुके हैं कि सेना ने किसी तरह से मंत्रिमंडलों को सत्ता से हटाकर अपने प्रभुत्व को कायम किया।

सैन्यवाद के उदय के लिए यहां पर प्रारंभ से ही पृष्ठभूमि तैयार थी। मेजी शासकों ने प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व विदेशों में प्रसारवादी नीति को लागू करने की रूपरेखा को तैयार कर लिया था। घरेलू मोर्चे पर भी कई सारे अधिनियमों को लागू करके संचार माध्यमों पर नियंत्रण किया गया और एक बिन्दु से परे किसी भी प्रकार असहमति को सहन नहीं किया गया। बड़े राजनेताओं की उपस्थिति के कारण सेना पर नियंत्रण बनाए रखा जा सका।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद आर्थिक संकट को हल करने तथा देश के अंदर राजनीतिक स्थायित्व स्थापित करने के लिए राजनीतिक दलों को अवसर प्रदान किया गया। लेकिन जहां तक सेना का संबंध था, उसपर नियंत्रण करने में राजनीतिक दल असफल रहे। सेना ने राजनीतिक दलों के प्रति कोई मित्रता नहीं दिखाई क्योंकि इन दलों को सशस्त्र सेनाओं के विकास में बाधक समझा जाता था।

राष्ट्रवाद का इस्तेमाल प्रसार की नीति तथा सैनिक शासन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। कुछ राजनीतिक संगठनों एवं शिक्षा नीति ने जनता के बीच इस तरह की भावनाओं को उभारने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

यद्यपि सेना के बीच गुटबंदी थी, लेकिन सेना के मध्य होने वाले आंतरिक संघर्ष ने किसी भी तरह से राजनीति एवं प्रशासन पर उसके नियंत्रण को कमज़ोर नहीं किया। आर्थिक संसाधनों को उस युद्ध तंत्र को बनाने की ओर मोड़ दिया गया, जिसको द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की पराजय के बाद ही तोड़ा जा सका।

23.12 शब्दावली

मंचूको : जापान ने मंजूरिया पर अधिकार करने के बाद उसका नामकरण मंचूको कर दिया था।

सैन्यवाद : इस व्यवस्था के अंतर्गत देश के आंतरिक प्रशासन एवं देश की विदेशी मामलों में सेना के द्वारा निर्णायक भूमिका अदा की जाती है।

देशभक्त संस्थाएं : देशभक्त संस्थाओं की स्थापना राष्ट्रवादी विचारों को फैलाने के लिए की गई थी। अन्य बातों के साथ-साथ उन्होंने प्रसारवादी नीतियों का समर्थन किया।

उग्र राष्ट्रवाद : अत्यंत उग्र देश-प्रेम की भावना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर का आधार भाग 23.2 को बनाएं। जापान की स्थिति की तुलना जर्मनी एवं इटली के साथ करें।

2) बहुत से कारण थे, जैसे कि राजनीतिक दलों के विरोध में वृद्धि, सेना के बजट में बढ़ोत्तरी होना, सेना के आकार में कमी आदि। सैन्यवादियों ने सोचा कि जापान विदेशी नीति में विनम्रता की नीति का अनुसरण कर रहा था। देखें भाग 23.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 23.5

2) (i) ✓ (ii) ✓ (iii) ✓ (iv) ✓ (v) ✓

बोध प्रश्न 3

1) **कोदोहा** तथा **तोसेई** जैसे गुटों एवं उनके दृष्टिकोणों को उद्धृत करें। देखें भाग 23.7

2) (i) X (ii) X (iii) X (iv) X

इकाई 24 प्रथम विश्व युद्ध के बाद की अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 युद्ध के कारण अर्थव्यवस्था का उत्थान
24.3 अंतर्युद्ध काल में औद्योगिक विकास
    24.3.1 विद्युत उद्योग
    24.3.2 भारी एवं रसायन उद्योग
    24.3.3 सूती कपड़ा उद्योग
24.4 अंतर्युद्ध काल में कृषि
    24.4.1 पृष्ठभूमि
    24.4.2 रेशम उत्पादन
24.5 दोहरे ढाँचे का निर्माण
24.6 औद्योगिक केंद्रण तथ जैबात्सू
24.7 अंतर्युद्ध समय में विदेश व्यापार
24.8 सारांश
24.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :

- अंतर्युद्ध काल में कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों में हुई अधिक प्रगति के विषय में आपको ज्ञान होगा,
- आप उस कारण की व्याख्या कर सकते हैं जिससे इस काल में कृषि ठहराव आया और "चावल दंगों" के प्रति सरकार की प्रतिक्रिया की भी,
- आप जापान में दोहरी संरचना के निर्माण को समझ जाएंगे, और
- इस काल में आपको वित्तीय जमाव, बड़े व्यापारिक घरानों तथा जापान के विदेशी व्यापार का भी बोध हो जाएगा।

24.1 प्रस्तावना

दोनों विश्व युद्धों के बीच के समय को अर्थात् 1918 से 1937 तक के समय को अंतर्युद्ध काल समय कहा गया है।

जापान की जिस अर्थव्यवस्था का 1885 से आधुनिकीकरण शुरू हुआ था, वह अंतर्युद्ध के समय में आर्थिक विकास के कुछ सुनिश्चित पक्षों के दृष्टिकोण से भटकती प्रतीत होती है। प्रथम विश्व युद्ध ने औद्योगिक विकास को काफी प्रोत्साहित किया था लेकिन यह काफी संक्षिप्त था। शीघ्र ही जापान में कृषि में ठहराव पैदा हो गया। विदेश व्यापार में भी संकट आ गया। ऐसा इसलिए हुआ कि सरकार पर सेना का नियंत्रण था और इस कारण से जारी की गई आर्थिक नीतियों में जनता के हितों को ध्यान में नहीं रखा गया था। यही वह समय

था जबकि अर्थव्यवस्था का दोहरा ढांचा अस्तित्व में आया और जापान में अर्थव्यवस्था का यह तंत्र आज तक जारी है। इस इकाई में ऐसी कई समस्याओं का विवेचन किया गया है जो अंतर्युद्ध के दौरान जापान में आर्थिक विकास से जुड़ी थीं। औद्योगिक विकास **जैबात्सू** की भूमिका, विदेशी व्यापार तथा कृषि की स्थिति—ऐसे कुछ विषय हैं जिनका विवेचन इस इकाई में किया गया है।

24.2 युद्ध के कारण अर्थव्यवस्था का उत्थान

इकाई 20 में हम पहले ही, जापान तथा प्रथम विश्व युद्ध के विषय में विवेचन कर चुके हैं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जापान की अर्थव्यवस्था के मुख्य पक्षों की हम संक्षिप्त विवेचना करेंगे क्योंकि ये पक्ष अंतर्युद्ध काल के दौरान के औद्योगिक विकास से आंतरिक तौर पर संबंधित हैं। प्रथम विश्व युद्ध ने जापान के लिए कुछ समस्याएं पैदा कर दी थीं। जैसे कि विदेश व्यापार में रुकावटें पैदा होने लगी तथा ऋणों का आदान-प्रदान भी प्रभावित हुआ क्योंकि यह सब लंदन संचालित होता था। ब्रिटेन के पूंजी बाजार में भी अव्यवस्था फैल गई जिसके कारण एक संकट पैदा हो गया। लेकिन जहां तक जापान का प्रश्न है, उसके हित में कुछ चीजों में तेजी के साथ परिवर्तन हुआ। उसकी अर्थव्यवस्था में एक ऐसे आर्थिक विकास का उत्कर्ष हुआ जो 1920 तक चला। प्रथम विश्व युद्ध में जापान मित्र राष्ट्रों के साथ था। लेकिन यह युद्ध एशिया में बहुत अधिक नहीं लड़ा गया और इसी कारण से जापान को अधिक सैन्य व्यय नहीं करना पड़ा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युद्ध के कारण जापान ने अचानक महसूस किया कि वह अपने निर्यातों को बढ़ा सकता है। यूरोप के उद्योगों में युद्ध की आवश्यकताओं के लिए उत्पादन किया जा रहा था और जापान युद्ध में प्रत्यक्ष तौर पर बहुत कम शामिल था, इसलिए जापान ने बहुत से निर्यात अवसरों का लाभ उठाया। उदाहरणार्थ, जापान युद्ध सामग्री की आपूर्ति करने वाला प्रमुख देश हो गया। जापान के जहाजों की मांग भी काफी बढ़ गई। यही वे दिन थे जबकि जापान के सूती वस्त्रों ने भारत में अपना मजबूत आधार बना लिया।

वास्तव में इस समय जापान में विदेशी बाजारों का बहुत अधिक प्रसार हुआ था। निर्यात में वृद्धि हुई, लेकिन उत्पादन मांग के अनुरूप नहीं हो रहा था। यहां तक कि संपूर्ण श्रम एवं उत्पादन क्षमता को गतिशील कर दिए जाने के बावजूद भी निर्यात की बढ़ती मांग को पूरा नहीं किया जा सका।

जापान के निर्यात व्यापार में होती अपार वृद्धि के कारण भारी माल तथा मशीनों के आयात की मांग बढ़ी। लेकिन, जिन देशों से ये आयात किए जाते थे, वहां पर युद्ध के कारण निर्यात पर प्रतिबंध था और इस तरह से जापान में आयात-निर्यात के समक्ष न हो सका। इसके फलस्वरूप निर्यात का विशाल लाभ एकत्रित हो गया। उदाहरण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि 1911 से 1914 के बीच के वर्षों में आयात में निर्यात की अपेक्षा 6 करोड़ 50 लाख येन प्रति वर्ष वृद्धि हो रही थी। लेकिन बाद के वर्षों में निर्यातों में बढ़ोत्तरी के कारणवश, जापान के निर्यात में आयात की अपेक्षा 35 करोड़ 20 लाख येन की प्रति वर्ष वृद्धि हुई। कुल मिलाकर निर्यात 1913 की अपेक्षा 1918 में तीन गुना हो गया।

इस समय में जापान के जहाजों की मांग बढ़ गई और माल भाड़े में भी तेजी के साथ वृद्धि हुई, जिससे और अधिक मुनाफा हुआ। जहां जापान के जहाज 1914 में मात्र 15 लाख टन माल की ढुलाई करते थे वे 1918 में 30 लाख टन माल की ढुलाई करने लगे। ठीक इसी समय में भाड़े से होने वाली आमदनी 4 करोड़ येन से बढ़कर 45 करोड़ येन हो गई। लेकिन 1920 के आते-आते युद्ध से होने वाले इस अथाह मुनाफे में कमी होने लगी।

24.3 अंतर्युद्ध काल में औद्योगिक विकास

औद्योगिक उत्कर्ष के अंत के बावजूद भी जापान में कुछ ऐसे निश्चित उद्योग थे जिनका लगातार विकास होता रहा। आगामी उपभागों में हम कुछ उद्योगों के विषय में विवरण करेंगे।

24.3.1 विद्युत उद्योग

जापानी उद्योग में उत्पादक क्षमता में पर्याप्त वृद्धि को केवल उसी समय महसूस किया गया जिस समय प्रथम विश्व युद्ध के बाद मशीनों के आयात की आवश्यकता हुई। अंतर्युद्ध के दौरान औद्योगीकरण की प्रक्रिया में विद्युत उद्योग ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। विद्युत के विशाल ट्रांसमिशन तथा जेनरेटर 1907 से ही कार्यरत थे। विद्युत प्रयोग के द्वारा उत्पन्न की जाने वाली शक्ति का मूल्य के द्वारा उत्पन्न की जानेवाली शक्ति से आधा था। इसी कारणवश विद्युत शक्ति के लिए उद्योगों की ओर से भारी मांग की जा रही थी। और प्रथम विश्व युद्ध शुरू होने से पूर्व ही विद्युत शक्ति उद्योग भलीभांति स्थापित हो चुके थे। विद्युत शक्ति उद्योग का विकास तकनीकी प्रगति तथा युद्ध के दौरान बढ़ती विद्युत शक्ति की मांग के कारण संभव हो सका।

तालिका 1 में सन् 1914 से 1940 तक उत्पादित की गई विद्युत शक्ति के आंकड़े दिए गए हैं। हम देखते हैं कि विद्युत उत्पादन बड़ी तेजी के साथ बढ़ा। तालिका के दूसरे भाग में विद्युत की सापेक्ष कीमतों को दिया गया है। जिस समय हम विद्युत शक्ति के दाम को कोयले के दाम से विभाजित करते हैं तब हमें विद्युत की सापेक्ष कीमतों का पता चलता है। उद्योग में गति शक्ति को विद्युत या कोयले के प्रयोग के द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। तालिका को देखने पर हमें यह भी मालूम पड़ता है कि विद्युत की सापेक्ष कीमतों में वर्ष प्रति वर्ष कमी होती गई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका-1 : अंतर्युद्ध काल में जापान मे विद्युत उत्पादन तथ मूल्य

वर्ष	उत्पादित विद्युत (मिलियन किलोवाट)	सापेक्ष मूल्य (विद्युत शक्ति मूल्य) कोयले का मूल्य
1914	1,791	2.58
1915	2,217	2.23
1920	4,669	1.58
1925	7,093	1.81
1930	15,773	1.43
1935	24,698	0.95
1940	34,566	0.83

अंतर्युद्ध के दौर की समाप्ति पर जापान में विद्युत का घरेलू उपयोग 90 प्रतिशत घरों में होने लगा था। लेकिन इसके वास्तविक प्रभाव को उद्योगों में देखा जाना चाहिए। विद्युत के कुल उत्पाद का दो-तिहाई भाग खान एवं निर्माण उद्योगों में उपयोग होता था। 1926 तथा 1936 के बीच के वर्षों में उद्योगों में खपत होने वाली विद्युत की मात्रा में तीन गुना वृद्धि हुई। सबसे अधिक विद्युत की खपत रसायनिक उद्योगों में और फिर हथियार निर्माण, खान एवं कपड़ा उद्योगों में होती थी।

विद्युत के प्रसार एवं सुगम उपलब्धि ने उद्योग पर कई प्रभाव डाले। जैसे-जैसे लंबी दूरी के शक्ति ट्रांसमिशनों की तकनीक में सुधार हुआ वैसे-वैसे विद्युत के मूल्यों में कमी आती गई। अब विद्युत मात्र प्रकाश का साधन न रह गई थी बल्कि अब यह उन मशीनों को

संचालित करने का मुख्य साधन बन गई थी जो ऊर्जा के बहुत से स्रोतों को कई उद्योगों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली यांत्रिकी ऊर्जा में परिवर्तित करती थीं। विद्युत मोटरों पर निर्भरता बढ़ने लगी। विद्युत का मुख्य गतिशीलकर्ता के तौर पर तेजी के साथ प्रसार हुआ। 1929 तक लगभग 87 प्रतिशत फैक्ट्रियों में विद्युत मोटरों का उपयोग होने लगा। विद्युत लागू कर दिए जाने से उत्पादन के ऐसे परंपरागत साधनों को परिवर्तित करने के अवसर प्राप्त हुए जिससे बहुत से सामानों के लिए बढ़ती मांग की कोई जरूरत न रह गई थी। उदाहरण के तौर पर हाथों से संचालित किये जाने वाले हथकरघे को अब बिजली के द्वारा चलाया जाने लगा। सस्ती विद्युत तथा विद्युत मोटरों के विसर्जन के कारण विदेशी मशीनों को लागू करना संभव हो सका। उस समय के विकसित देशों में औद्योगिक क्रांति उपभोग की वस्तुओं को पैदा करने वाली मशीनों की खोज के कारण संभव हो सकी थी। जापान के संदर्भ में यह विद्युत प्रसार ही था जिसके कारण उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन के लिए नवीन तरीकों का प्रयोग किया जा सका और इस तरह से जापान का एक औद्योगिक रूपांतरण संभव हुआ।

विद्युतीकरण के प्रसार का दूसरा प्रभाव यह था कि जिन उद्योगों ने विद्युत का उपयोग प्राथमिक उत्पाद के तौर पर किया उनकी संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई। विद्युत रसायन उद्योग तथा विद्युत पर आधारित तेल शोधक उद्योग इसके उदाहरण हैं। अक्सर ऐसा कहा जाता है कि यदि जल विद्युत स्टेशनों का निर्माण किया जाए तब काफी बड़ी मात्रा में विद्युत शक्ति उपलब्ध होगी। फिर इस तरह से उत्पादित की गई अधिक विद्युत शक्ति की खपत करने के लिए उद्योगों का निर्माण किया जाएगा। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान रसायन उद्योग के उत्पाद का आयात करना असंभव हो गया। इसी कारण से जापान में इस समय में विद्युत शक्ति का प्रयोग करने वाले सोडा, कार्बाइड तथा अमोनियम सल्फेट जैसे रसायनिक उद्योगों की स्थापना की गई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.3.2 भारी एवं रसायन उद्योग

भारी उद्योग के अंतर्गत स्टील, गैर-लौह धातु तथा मशीनी उद्योग आते हैं। सन् 1915 में कुल औद्योगिक उत्पादन का 29 प्रतिशत भारी एवं रसायन उद्योग का उत्पादन था और सन् 1920 में बढ़कर यह 33 प्रतिशत हो गया। 1925 में इस उत्पादन में 25 प्रतिशत तक गिरावट आई और 1930 में फिर एक बार यह 33 प्रतिशत हो गया। इस उत्पादन वृद्धि की यह दर जारी रही, 1935 में यह 44 प्रतिशत था तो 1940 में इसका भाग 59 प्रतिशत हो गया। भारी तथा रसायन उद्योग में युद्ध के दौरान तथा बाद में आई इस संपन्नता का कारण आयातों में पैदा हुई रुकावटें थीं। युद्ध के बाद पुनः प्रारम्भ हुए व्यापार के कारण ह्रास हुआ। 1925 में 24 प्रतिशत की कमी आई।

तालिका-2 : भारी और रसायन उद्योग में कुल उत्पादन

औद्योगिक उत्पादन (मिलियन में)

वर्ष	कुल औद्योगिक उत्पादन	भारी तथा रसायन उद्योग उत्पादन	कुल औद्योगिक उत्पादन में भारी तथा रसायन उद्योग का भाग (प्रतिशत में)
1915	2,880	840.5	29.2
1920	9,579	3,202.7	33.4
1925	10,100	2,390.5	23.7
1930	8,838	2,896.0	32.8
1935	14,968	6,516.0	43.5
1940	33,252	19,569.0	58.8

भारी तथा रसायन उद्योगों के लिए रसायनिक खादों के निर्माण कार्यों में उपयोग किए जाने

उदाहरण भारी एवं रसायनिक उद्योगों की प्रगति के रूप में दिया जा सकता है। हम इसके विषय में विस्तृत तौर पर विवेचन करेंगे। 1920 के दशक में स्टील की वस्तुओं के घरेलू उत्पादन में चार गुना वृद्धि हुई। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के प्रारंभ के साथ ही स्टील की वस्तुओं के आयातों में तेजी से गिरावट आई लेकिन स्टील के उत्पादन में निरंतर वृद्धि होती रही। इसके कारणवश स्टील क्षेत्र की मूलभूत निर्माण उत्पाद के उपलब्धकर्ता के तौर पर स्थापना हुई। इसी के साथ-साथ आयातित स्टील पर निर्भरता भी कम होने लगी। विशाल निर्माण कार्यों तथा रेलवे लाइन के बिछाने के काम ने लगातार स्टील की मांग को बनाए रखा लेकिन, इस तरह की मांग मशीन उद्योग के लिए बरकरार न रह सकी।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जापान ने भारी तथा रसायन उद्योग में जो निवेश किया था उसके परिणाम युद्ध के बाद प्राप्त होने शुरू हुए। युद्ध के दौरान आयात में आई रुकावटों के कारण नए भारी तथा रसायन उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। इस क्षेत्र में विशाल स्तर पर पूंजी निवेश हुआ और 1920 के दशक में भारी तथा रसायन उद्योगों को मजबूती के साथ स्थापित कर दिया गया था।

इस संदर्भ में हम विद्युत शक्ति उद्योग, रसायन तथा हल्के मशीन उद्योगों के मध्य एक घनिष्ठतम संबंध देखते हैं। विद्युत शक्ति की भरपूर मात्रा सस्ते दामों पर उपलब्ध थी और इसी के कारणवश विद्युत रसायन तथा स्टील उद्योगों का विकास संभव हुआ।

इस समय के दौरान जापान का **औद्योगिक** विकास केवल पहले से सुनिश्चित किए गए क्षेत्रों तक सीमित न था। धातु एवं मशीन उद्योग अन्य दूसरे उद्योगों की विशाल स्तर पर सहायता करते थे और इन उद्योगों का विकास भी कुछ सुनिश्चित क्षेत्रों में हुआ। अन्य दूसरे ऐसे उद्योग जिनका विकास बाद में हुआ–इनके साथ घनिष्ठ तौर पर जुड़े थे। 1920 के दशक के दौरान हम जापान में औद्योगिक क्षेत्रों के निर्माण को पाते हैं। टोकियों–याकोहामा तथा ओसाका–कोबे को इस तरह के औद्योगिक क्षेत्रों के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारी तथा रसायन उद्योग का विकास 1930 के वर्षों में भी बराबर जारी रहा। 1920 के दशक में भी भारी तथा रसायन उद्योगों का प्रसार जारी रहा तथा आर्थिक मंदी के दौरान भी इन उद्योगों में भारी उत्पादन हुआ। 1935 तक उत्पादन में वृद्धि **विद्यमान** क्षमताओं के द्वारा स्वयं ही होती रही। लेकिन भारी तथा रसायन उद्योगों के उत्पादनों की मांग लगातार बढ़ती रही। उनकी मांग सिविल इंजीनियरिंग निर्माण तथा मशीन, जहाज निर्माण आदि जैसे उद्योगों से आती थी। इसके कारण पुनः भारी एवं रसायन उद्योगों के प्लांट का विकास हुआ और इस उद्योग में वृद्धि निम्नलिखित कारणों से हुई–

1932 तथा 1937 के बीच में ऐसे जहाजों को नष्ट कर दिया गया जो 25 वर्ष से अधिक पुराने थे। नए जहाजों के निर्माण के फलस्वरूप उनके उत्पादों की पुनः मांग हुई।

1936 तक इस उद्योग से की जाने वाली सैनिक मांग उनकी कुल मांग का मात्र 10 प्रतिशत थी। लेकिन इस उद्योग से सैनिक मांग उस समय बढ़ी जबकि सैनिक आवश्यकता के लिए युद्ध विमानों आदि से संबंधित वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हुई।

24.3.3 सूती कपड़ा उद्योग

यद्यपि सूती कपड़ा उद्योग प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व भी महत्वपूर्ण था, लेकिन युद्ध के बाद इसमें महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। युद्ध के तुरंत बाद के वर्षों में सूती कपड़ा मिलों की संख्या में वृद्धि हुई। क्षमता की वृद्धि का संकेत मिलों एवं कंपनियों की संख्या में हुई वृद्धि से मिलता है और इसके बाद इनके सुदृढ़ीकरण की प्रवृत्ति का भी आभास होता है। 1929 के आसपास तकवों का 50 प्रतिशत स्वामित्व मात्र सात कंपनियों के पास था। लेकिन सूत कताई का कार्य कपड़ा मिलों ने प्रारंभ कर दिया जबकि इससे पूर्व जुलाहे अलग-अलग इस कार्य को करते थे। संयुक्त तौर पर कताई-बुनाई की मिल सूती कपड़ा उद्योग की एक जटिल विशेषता हो गई। इस समय कपड़ा उद्योग में महत्वपूर्ण घटना हुई। वह व्यापक विशेष प्रकार के कारखानों (पचास लूमों से ऊपर के) का प्रकट होना था और इन कारखानों में बिजली से चलने वाले करघे लगे थे तथा विदेशी बाजार के लिए कपड़े का उत्पादन करते थे।

बोध प्रश्न 1

1) जापान के औद्योगीकरण पर प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव की लगभग 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) शक्ति उत्पादन में हुई वृद्धि ने औद्योगीकरण में कैसे सहायता की? उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.4 अंतर्युद्ध काल में कृषि

अंतयुर्द्ध काल के दौरान जापानी कृषि में ठहराव आ गया था। कृषि में वृद्धि दर तथा कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न हो सकी। ग्रामीण जनता के आमदनी स्तर में भी एक ठहराव पैदा हो गया था। इसी कारण उनके रहने का स्तर काफी कम था। लेकिन कृषि में आए इस ठहराव का एक सकारात्मक पक्ष भी था, कृषि तकनीकी की एक नई क्षमता का विकास हो रहा था। इसके परिणाम 1950 के बाद दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर ही प्राप्त हो सके।

24.4.1 पृष्ठभूमि

प्रथम विश्व युद्ध से पहले के 25 वर्षों में जापान में कृषि में तेजी के साथ विकास हुआ। स्थानीय विशेषता के साथ कृषि तकनीक में आई बहुत सी प्रगतियों का प्रसार संपूर्ण देश में हुआ। राज्य के संरक्षण में किसानों, कृषि वैज्ञानिकों तथा कृषि उत्पादनों की आपूर्ति करने वाली कंपनियों के बीच अंतःक्रिया थी और उन्होंने पहले से ही उपलब्ध तकनीक का भरपूर उपयोग किया।

लेकिन 1910 के दशक में इस स्थिति में परिवर्तन हुआ। ऐसे जमींदार जो कृषि की प्रगति में सक्रिय भूमिका अदा कर रहे थे, उन्होंने उद्योग में तेजी से हुए विकास के कारण कृषि में रुचि लेना बंद कर दिया। उनमें से बहुत से जमींदार ऐसे थे जो आमदनी का कृषि में पुनः निवेश करते रहते थे, किंतु अब उन्होंने इसके स्थान पर यह देखा कि अगर इस आमदनी का उन बहुत से उद्योगों में निवेश किया जाना जिनका तेजी के साथ विकास हुआ था—अधिक लाभदायक होगा। इसके फलस्वरूप कृषि में होने वाले सुधारों को एक धक्का लगा। पहले जमींदार लोग बहुत से प्रकार के कृषि सुधारों में रुचि लेते थे और इन सुधारों में योगदान भी करते थे। लेकिन उनकी इस निवेशात्मक भूमिका का स्थान एक दूसरी प्रक्रिया ने ले लिया। अब ऐसा प्रतीत होता था कि कृषि के उत्थान में कोई योगदान किए बगैर जमींदार लगान एकत्रित करने में रुचि रखते थे। इस तरह वह पूंजी जिसको कृषि से एकत्रित किया गया था किसी अन्य मद में निवेश कर दिया जाता।

इस समय से पूर्व पिछले दो सौ वर्षों में जिस कृषि तकनीक का विकास हुआ था, वह अपने विकास के चरम बिन्दु पर पहुंच चुकी थी और उसके द्वारा अब कृषि उत्पादन में वृद्धि करना संभव न था। उत्पादन को बढ़ाने के लिए एक नई तकनीकी की आवश्यकता थी। परंतु सरकार के कृषि अनुसंधान के केंद्र इस बिंदु तक विकसित न थे जहां पर वे पहले से ही शोध कार्यों के स्तरों को विकसित कर सकते थे। कृषि की नवीन प्रौद्योगिकी को विकसित न कर पाने की इस अयोग्यता के साथ-साथ जमींदारों के द्वारा कृषि में निवेश किए जाने वाले धन की कमी के कारण 1910 के दशक में स्वयं ही जापान की कृषि में गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई।

24.4.2 1918 का चावल दंगा और इसके परिणाम

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

औद्योगीकरण की द्रुत गति के फलस्वरूप शहरी केंद्रों में श्रम शक्ति की मांग भी बढ़ने लगी। बेहतर परिवहन तथा संचार की सुविधाओं के कारण शहरी केंद्रों के पास ही अधिकतर उद्योगों की स्थापना हुई। उद्योगों में कृषि की अपेक्षा अधिक मजदूरी होने के कारण उद्योगों में काम करने के लिए सैकड़ों लोगों ने अपने ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़ दिया। प्रथम विश्व युद्ध का उत्कर्ष—व्यापारिक परिस्थितियों में औद्योगिक श्रमिकों द्वारा अधिक खाद्य पदार्थों की मांग की जाने लगी और यह मांग इससे पूर्व भी बढ़ चुकी थी लेकिन इस समय इस मांग ने एक विशेष स्वरूप ग्रहण कर लिया। लेकिन इसी के साथ-साथ यह वह समय भी था जबकि जापान में कृषि उत्पादनों में कमी भी हो रही थी। खाद्य पदार्थों का उत्पादन इतना अधिक था कि वह इनकी बढ़ती मांग को पूरा कर सके। खाद्य पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि मजदूरी से अधिक थी। इसके परिणामस्वरूप उस सामाजिक असंतोष की अभिव्यक्ति 1918 के चावल दंगों के रूप में हुई। यह दंगा मात्र एक छोटी सी घटना अर्थात् चावल के उच्च दामों के विरुद्ध विरोध के तौर पर शुरू हुआ। लेकिन जैसे ही इसका प्रारंभ हुआ वैसे ही यह द्रुत गति से संपूर्ण जापान में फैल गया।

विशाल भीड़ ने अनाज के भंडारों को तोड़ डाला और धनी व्यापारियों की दुकानों को लूट लिया। वास्तव में यह सामाजिक न्याय की वह लोकप्रिय अभिव्यक्ति थी जिसने दंगों को और अधिक सक्रिय बनाया। ओचामा इको ने इसकी विशेषता बताते हुये लिखा है कि—यह "कानून की आड़ में लूट के विरुद्ध प्रतिकारात्मक" कार्यवाही थी। जब यह समझ लिया गया कि सामाजिक समस्याओं के निदान का और कोई तरीका शेष न रह गया है तब इन दंगों का इनके समाधान के तौर पर प्रारंभ हुआ।

आमदनियों में जो विशाल असमानताएं थी उनके विरुद्ध भी जापान में आवाज को बुलंद किया गया। उस संदर्भ में जापान के एक उदार बुद्धिजीवी कावाकामी हैजूने का नाम उद्धृत किया जा सकता है। उसने यह प्रश्न उठाया कि उद्योग एवं तकनीक में हुए विकासों के बावजूद भी देश में इतने अधिक गरीब लोग क्यों हैं? ऐसा महसूस किया गया कि चावल के मूल्यों में आई तेजी का कारण शासकों का सामान्य जनों की दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी के प्रति भावनाविहीन होना था। सरकार की इस बात के लिए आलोचना की गई कि वह संपन्न लोगों के स्वार्थों की रक्षा कर रही थी। **तोक्यो के जाय शिम्पो** नाम समाचार पत्र ने साम्यवादियों के विचारों को अभिव्यक्त करते हुए अपने संपादकीय में लिखा—

"कुछ लोग संपत्ति स्वामी तथा संपत्तिविहीनों के मध्य वर्ग संघर्ष के कारण के रूप में किसी लेबर समस्या को न देखकर सिर्फ दंगों को ही देखते हैं।"

निश्चय ही इस तरह के विचार लोगों के बीच विद्यमान थे। चावल दंगों का समाचार जैसे ही न्यूयार्क पहुंचा वैसे ही जापान के विशेषज्ञों ने यह विश्वास किया कि जापान में क्रांति होने वाली थी। लेकिन कोई घटना घटित न हुई और सरकार ने स्थिति पर नियंत्रण करने में सफलता प्राप्त कर ली। ये दंगे आर्थिक मुश्किलों तथा निर्धनता के विरुद्ध विरोध मात्र बने रहे। वे इस राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती न दे सके तो इसके लिए उत्तरदायी थी। फिर भी उदारवादी बुद्धिजीवियों ने संवैधानिक प्रक्रिया में लोकप्रिय भागीदारी को विस्तृत करने की मांग की। अभी सरकार को अपनी नीति में परिवर्तन करना था। अब कृषि मंत्रालय को अकेले बिना किसी पक्षपात के किसानों से जूझना पड़ा। शहरी केंद्रों में श्रमिकों की सहायता के लिए भी प्रयास इस आशय के साथ किए गए जिससे कि उनको मजदूर संघों में शामिल होने से रोका जा सके।

चावल दंगे के जवाब में सरकार ने चावल का आयात अपने उपनिवेशों कोरिया एवं ताइवान से शुरू कया। ऐसा करने लिए कोरिया तथा ताइवान वासियों को चावल से बिम्न स्तर के खाद्य पदार्थों को खाने के लिए बाध्य किया गया जिससे कि वे अपने चावल को जापान को निर्यात कर सकें। अधिक चावल को प्राप्त करने के लिए इन उपनिवेशों में जापान की उच्च पैदावार वाली चावल की किस्मों को लागू किया गया तथा सिंचाई एवं जल नियंत्रण में पूंजी निवेश भी किया गया। इस कार्यक्रम के सकारात्मक परिणाम हुए। सन् 1915 तथा 1925 के बीच कोरिया से जापान को आयात किए जाने वाले चावल में 170 से 1,212 हजार मैट्रिक टन की वृद्धि हुई। इन उपनिवेशों से आयात किया जाने वाला चावल जहां 1915 में घरेलू उत्पादन का 5 प्रतिशत था वहीं पर वह 1935 में बढ़कर 20 प्रतिशत हो गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन इन उपनिवेशों से आयात किए जाने वाले जिस चावल ने उस संकट की घड़ी में जापान की मदद की बाद में चलकर वह जापान के लिए एक समस्या बन गया। प्रथम युद्ध की समाप्ति पर व्यापार उत्कर्ष का अंत हो गया और खाद्य पदार्थों की मांग में भी कमी आई। लेकिन औपनिवेशिक चावल ने जापान के बाजारों को भर दिया। इसके कारण घरेलू उत्पादित चावल के दामों में गिरावट आई। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि आमदनी में भी गिरावट आई। अंततः विश्वव्यापी आर्थिक मंदी ने जापान के कृषि संकट को और गहरा कर दिया। कृषि की आमदनी में आई गिरावट ही मुख्य समस्या थी। इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार ने अनेक उपाय किए--

i) प्रथमतः सरकार ने कृषि उत्पादनों के समर्थन मूल्य को लागू किया। जिसका तात्पर्य यह था कि उत्पादनों को कम से कम मूल्य की गारंटी प्रदान की गई और कृषि उत्पादनों के मूल्यों को इनसे नीचे नहीं गिरने दिया जाएगा।

ii) दूसरे, सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में भौतिक बुनियादी ढांचे का निर्माण शुरू किया जिससे कि ग्रामीण जनता को अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें।

iii) तीसरे, सरकार ने उन किसानों को कर्ज दिया जो पहले से ही ऋण-ग्रस्त थे। सरकार इस कर्ज पर जो ब्याज वसूल करती वह ग्रामीण महाजनों की तुलना में काफी कम था। इसका तात्पर्य यह था कि ब्याज तथा ऋण की पुनः अदायगी के भार को काफी कम कर दिया गया।

iv) चतुर्थ, सरकार ने कृषि सहकारी समितियों के निर्माण का समर्थन किया जिससे किसानों का शोषण बहुत से बिचौलियों के द्वारा न किया जा सके।

सरकार के इन सभी प्रयासों के बावजूद भी कृषकों की आमदनी में पर्याप्त वृद्धि न हो सकी। ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे निर्धन वे कृषक थे जो जमींदारों से भूमि को लगान पर प्राप्त करते थे। काश्तकारी किसान जिस भूमि पर खेती करते उन्हें उसका अधिक लगान वस्तु में देना होता था। जिस समय कृषि की आमदनी के स्तरों में ठहराव आ रहा था, तब उनके लिए इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा करना कठिन हो रहा था। इसलिए उन्होंने जमींदारों द्वारा वसूल किए जाने वाले लगान में कमी करने की मांग की। दूसरे, अब जमींदारों का

माई-बाप वाला दृष्टिकोण भी न रह गया था। उन्होंने लगान में कटौती करने से इंकार कर दिया। इसके फलस्वरूप काश्तकार अपना संगठन बनाने के लिए इकट्ठा होने लगे जिससे कि वे मजबूत स्थिति में होकर अपनी मांगों को मनवाने के लिए सौदेबाजी कर सकें। इसके फलस्वरूप जमींदारों ने इसका उत्तर काश्तकारों को उनकी जमीनों से बेदखल करके देना शुरू किया। इस समय में जापान में अनेकों हिंसा की घटनाएं हुई और काश्तकारी झगड़ों में भी व्यापक तौर पर वृद्धि हुई।

सरकार ने काश्तकारों की सहायता करने के लिए सस्ती ब्याज दरों पर भूमि को खरीदा किंतु उनकी समस्या को हल करने के लिए ये प्रयास अपर्याप्त थे।

अंतर्युद्ध के दौरान किसान परिवारों की संख्या लगभग 55 लाख पर ही स्थिर बनी रही। जमीन के वितरण का आकार भी लगभग एक समान बना रहा। छोटी जमीनों तथा बड़ी जमीनों की संख्या में थोड़ी कमी आई। पहले अन्य सभी समयों की भांति इस समय भी चावल ही मुख्य फसल थी। जापानी कृषि में जो वृद्धि स्पष्ट हुई वही चावल के उत्पादन में हुई वृद्धि के रुझानों को स्पष्ट करती हैं। आधे से अधिक कृषि योग्य भूमि पर चावल की खेती ही की जाती थी।

इस समय में कृषि में उत्पादनों की किस्मों में भी वृद्धि हुई। सब्जी की अधिक किस्मों को लागू किया गया। फलों की खेती तथा मुर्गी पालन में भी वृद्धि हुई। इससे शहरी आबादी की आमदनी में हुई वृद्धि की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि वे ही ऐसे प्रमुख लोग थे जो इन क्षेत्रों में पूंजी निवेश करते थे। उर्वरक के प्रयोग में भी वृद्धि हुई। कई प्रकार की रसायनिक खादों का आयात किया जाता था। उदाहरण के लिए, पश्चिमी देशों से अमोनियम सल्फेट का आयात होता था।

24.4.2 रेशम उत्पादन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस समय के दौरान कृषि में चावल के बाद सबसे महत्वपूर्ण उत्पादन कच्चे रेशम का था। रेशम के उत्पादन के कार्य का विकास कृषि में अन्न उत्पादन के बाद एक प्रमुख दूसरे कार्य के रूप में हुआ। रेशम की बढ़ती विश्वव्यापी मांग के कारण रेशम-उत्पादन उद्योग का विकास द्रुत गति के साथ हुआ और 1914 तथा 1929 के बीच रेशम उत्पादन में तीन गुना वृद्धि हुई।

रेशम के कीड़ों का उत्पादन बसंत ऋतु अर्थात् जापान में अप्रैल से जून तक किया जाता था। लेकिन इसी के साथ-साथ चावल एवं अन्य फसलों के उत्पादन का कार्य भी चलता रहता था। दोहरी श्रम मांग होने के कारण रेशम के कीड़ों के उत्पादन को अधिक समय नहीं दिया जा सकता था, इसलिए गर्मी में रेशम का उत्पादन करने वाले कीड़ों पर (रेशम के कीड़ों की ऐसी किस्म जो गर्मी एवं शरद ऋतु में रेशम की उत्पादन कर सकते हों) अन्वेषण निरंतर होता रहा–

- एक ऐसी नवीन युक्ति को तैयार किया गया जिसके अंतर्गत रेशम के कीड़ों के जनन को इच्छानुसार बढ़ाया जा सके।
- रेशम के कीड़ों के जनन की एक कृत्रिम विधि को विकसित किया गया।
- कम मृत्यु दर वाली कीड़ों की उच्च किस्मों को लागू किया गया।

इन सभी विधियों को संयुक्त तौर पर गर्मी आगमन तकनीक का नाम दिया गया और इससे उत्पादन में काफी वृद्धि हुई।

इस नई तकनीक ने किसानों को अनेक प्रकार के लाभ प्रदान किये। इन सब में महत्वपूर्ण यह था कि जो श्रमिक गर्मी एवं शरद ऋतुओं में, बेकार घुमते रहते थे, उनको इस नई तकनीक ने काम उपलब्ध कराया। इस यंत्र का वर्ष में दो बार उपयोग किया जा सकता था। इस तकनीक ने निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और इस वास्तविकता को इस तरह से देखा जा सकता है कि 1920 में रेशम के उत्पादन का आधा इस विधि के द्वारा ही किया जाता था।

1929 में खेती करने वाले सभी परिवारों का 40 प्रतिशत द्वितीय रोजगार के तौर पर रेशम

उत्पादन के कार्य में लगा रहता था। कताई मिलों के कारण महिला श्रमिकों की मांग भी की जाने लगी। इस कार्य की पूर्ति मूल तौर पर कृषक परिवारों की महिलाओं के द्वारा ही की जाती थी। रेशम उत्पादन के द्वारा होने वाली आमदनी तथा महिलाओं के द्वारा कताई मिलों में कार्य करके प्राप्त की जाने वाली मजदूरी किसान की नकद आमदनी का मुख्य भाग हो गयी। रेशम उत्पादन की मुख्य विशेषता यह थी कि इसने धन के निवेश को अपरिहार्य नहीं बनाया। इस दूसरे कार्य के द्वारा किसानों को जो आमदनी हुई उससे वे गरीबी का शिकार होने से बच गए। इसके फलस्वरूप अब रेशम उत्पादन पर अधिक जोर दिया जाने लगा।

जहां तक रेशम के मूल्यों का प्रश्न है वे युद्ध के दौरान काफी ऊंचे बने रहे परंतु युद्ध के बाद आई मंदी में उनमें कमी आई और बाद में पुनः उनमें वृद्धि हुई। 1930 में जापान के निर्यातों का अमेरिकी बाजार धराशायी हो गया। दुर्भाग्यवश जापानी किसानों के लिए रेशम के दामों में भी उसी समय भारी गिरावट आई जबकि चावल के मूल्यों में भी कमी हुई। जिसका कुल परिणाम यह हुआ कि किसानों ने अपनी मुश्किलों के लिए राजनीतिज्ञों तथा जैबात्सू को उत्तरदायी ठहराया। इस विश्वास के कारण सेना में ग्रामीण क्षेत्रों से खूब भर्ती की गई। इस तरह की भावनाओं ने सैन्यवाद की वृद्धि की प्रवृत्ति को खूब बढ़ावा दिया जिनको सेना पसन्द नहीं करती थी। (देखें इकाई 23)।

बोध प्रश्न 2

1) 1918 के चावल दंगे के बाद सरकार के दृष्टिकोण की लगभग 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिए। चावल की कीमतों को कम करने के लिए क्या प्रयास किए गए?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) रेशम उत्पादन में क्या-क्या तकनीकी सुधार किए गए? उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

24.5 दोहरे ढांचे का निर्माण

दोहरे ढांचे से तात्पर्य है कि अर्थव्यवस्था में आधुनिक तथा परंपरागत क्षेत्रों का साथ-साथ विद्यमान होना। आधुनिक क्षेत्र में उन उद्योगों से तात्पर्य है जिनमें माल का उत्पादन करने में आधुनिक तकनीकी के प्रयोग के साथ-साथ श्रम की अपेक्षा अधिक पूंजी का उपयोग किया जाता है। परंपरागत क्षेत्र में उन उद्योगों को रखा जाता है जो अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और ये उत्पादन विधि के तौर पर अधिक पूंजी के प्रयोग के स्थान पर श्रम का अधिक उपयोग करते हैं। परंपरागत क्षेत्र में आधुनिक क्षेत्र की अपेक्षा मजदूरी बहुत ही कम होती है। यह दोहरा ढांचा उन देशों में पाया जाता है जिनका अभी हाल में औद्योगीकरण हुआ है या जिनको हम विकासशील देश कहते हैं। आधुनिक क्षेत्र में जिन नई तकनीकों को लागू किया जाता है उनमें पूंजी की अधिकता होती है अर्थात उनको श्रम की अपेक्षा पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। लेकिन पूंजी तथा श्रम के निश्चित किए गए संयुक्त स्वरूप को उस देश के लिए भी परिवर्तित करना संभव नहीं है जिस देश के पास पूंजी की तुलना में अधिक श्रम है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि औद्योगीकरण के जापान के कार्यक्रम को आधुनिक तकनीकी के आधार पर किस ढंग से बनाया गया था। लेकिन ठीक उसी के साथ-साथ विकास के जापानी अनुभव में परंपरागत क्षेत्र ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस संदर्भ में रेशम के उद्योगों को उद्धृत किया जा सकता है। जो कि 1930 के दशक तक विदेशी मुद्रा को कमाने का यह एक महत्वपूर्ण साधन था। इसके बाद 1960 के दशक के वर्षों तक श्रम प्रधान कुटीर स्तर के उद्योग विदेशी मुद्रा को कमाने का महत्वपूर्ण साधन थे। जापानी अर्थव्यवस्था में दोहरे ढांचे की स्थापना अंतर्युद्ध काल में की गई। अब हम दोहरे ढांचे के निर्माण के कारणों तथा दोहरे ढांचे की निरंतरता की विवेचना करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद कृषि आमदनी में एक ठहराव पैदा हो गया था। जबकि 1920 के दशक में उसमें कुछ सुधार हुआ किंतु एक बार फिर 1927-28 के वर्ष में कृषि आमदनी में कमी आई। तब से उसमें तेजी से गिरावट आई। अगर हम महिला एवं पुरुषों की औद्योगिक मजदूरी की तुलना करें तब हम इन दोनों की मजदूरी में काफी अंतर पाते हैं। महिलाओं को उद्योग मे केवल संक्षिप्त समय के लिए कार्य करना होता था और बाद में उनको इस कार्य को छोड़ना पड़ता था। उनकी मजदूरी सामान्यत: कम ही होती थी और उनमें से अधिकतर कृषि क्षेत्र से आती थीं। महिला श्रमिकों का उद्योग में काम करने के लिए सतत प्रवाह बना रहता था और वे उन पुरुष श्रमिकों का स्थान ग्रहण करती जो वापस अपनी खेती करने के लिए लौट जाते। उद्योग उनको कम मजदूरी देते थे लेकिन इसके बावजूद भी उनके द्वारा यह सुनिश्चित किया गया कि श्रमिकों की कोई कमी न होगी। फिर भी महिला श्रमिकों की आमदनी **पुरुषों की आमदनी की सहायक की बनी रही।**

पुरुष श्रमिकों की स्थिति भिन्न थी। उद्योग में वे लम्बे समय तक रहकर कार्य करते। उन्होंने कृषि के साथ अपने संबंधों को पूर्णत: तोड़ दिया था और औद्योगिक मजदूर बनकर अपनी आजीविका को चलाते थे। उनकी मजदूरी महिला श्रमिकों की अपेक्षा अधिक थी। लेकिन कृषि में ठहराव की स्थिति के कारण कृषि क्षेत्र में पुरुष बेरोजगारों की संख्या बहुत अधिक थी। न तो कृषि में उनको रोजगार मिल पाया और न ही बड़े उद्योग उनको रोजगार उपलब्ध करा पाए। छोटे तथा परंपरागत उद्योगों का तेजी के साथ प्रसार हुआ क्योंकि उनको सरलता से श्रमिक उपलब्ध हो जाते थे। इसलिए प्रथम विश्व युद्ध के बाद आधुनिक उद्योग बढ़ती श्रम शक्ति की खपत न कर सका। इसके कारणवश परंपरागत क्षेत्र में रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई। 1920 के दशक में इसके दो परिणाम हुए—

1) प्रथम थोक व्यापार, खुदरा तथा सर्विस क्षेत्रों जैसे—परंपरागत क्षेत्रों का प्रसार हुआ। हम देखते हैं कि इन क्षेत्रों में किराए के मजदूरों, मालिकों एवं परिवार सेवकों की संख्या में वृद्धि हुई। इन लोगों के पास कोई स्थायी रोजगार न होने से वे परंपरागत क्षेत्र की ओर चले गए। यह सत्य था कि परंपरागत क्षेत्र में कम मजदूरी थी फिर भी

2) दूसरा परिणाम यह था कि परिवहन संचार एवं सार्वजनिक उपयोगिताओं का प्रसार हुआ। ऐसा इस कारण से हुआ क्योंकि इस समय में विद्युत शक्ति तथा रेलवे जैसी बड़ी कंपनियों का पर्याप्त विकास हुआ। इसके साथ-साथ हम देखते हैं कि वाणिज्य तथा सर्विस उद्योगों में मजदूरों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई। रोजगार के विशेष क्षेत्र उपभोग वस्तुओं की बिक्री, फुटकर वस्तुओं की बिक्री, सराय, सार्वजनिक स्नान गृह, शौचालय, घरेलू सेवाएं, शिक्षा, दवाई तथा नर्सिंग थे।

इसी के कारण श्रम बाजार में दोहरा ढांचा बना। आधुनिक तथा परंपरागत क्षेत्रों में प्राप्त की जाने वाली मजदूरी में काफी अंतर था। जापान में प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व मजदूरी के अंतर पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह अंतर काफी गहरा होने लगा और 1924 के बाद आधुनिक क्षेत्र तथा परंपरागत क्षेत्र में यह अंतर और तेजी के साथ फैला।

24.6 औद्योगिक केंद्रण तथा जैबात्सू

अंतर्युद्ध वर्षों के दौरान जापान में औद्योगिक एकाधिकार में काफी वृद्धि हुई। एकाधिकार से तात्पर्य उस स्थिति से है जबकि किसी विशेष उपभोग की वस्तु के उत्पादन में कुछ ही उत्पादनकर्ता शामिल हों। प्रतियोगिता के अभाव में कई बार उत्पादित वस्तु के दाम बहुत अधिक होते हैं। इन वर्षों के दौरान **जैबात्सू** की भूमिका औद्योगिक केंद्रण की थी। **जैबात्सू** से अभिप्राय विशाल व्यापारिक घरानों से है, लेकिन इन व्यापारिक घरानों के कार्य क्षेत्र एवं स्वार्थ अलग-अलग थे। इन वर्षों में जापान में **मित्सुई, मित्सुबिशी, सुमितोमो**, तथा **यासूदा** जैसे चार बड़े **जैबात्सू** थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1920 के दशक की कुछ वित्तीय मुश्किलों के कारण सरकार ने कुछ निश्चित उपायों को लागू किया। इसका परिणाम यह हुआ कि बैंकों की संख्या में गिरावट आई। 1918 में बैंकों की संख्या 2285 थी वह 1930 में 1913 रह गई। 1928 में **मित्सुई, मित्सुबिशी, दादू इची, सुमी तोमो** तथा **यासुदा** जैसी "बड़ी पांच" बैंकों के पास सभी सामान्य बैंकों की 34 प्रतिशत पूंजी जमा थी। इन पांच बड़े बैंकों में से चार पर **जैबात्सू** का नियंत्रण था। सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया में **जैबात्सू** की वित्तीय शक्ति में काफी वृद्धि हुई। **जैबात्सू** द्वारा औद्योगिक नियंत्रण करने के लिए बैंकिंग एवं वित्त सामरिक तौर पर महत्वपूर्ण आधार बन गए थे।

पांच बड़े बैंकों में जमा पूंजी के केंद्रण का परिणाम धन आपूर्ति की एक पूर्णरूपेण नई स्थिति के रूप में हुआ—

1) ये बड़े बैंक शायद ही छोटी या मध्यम कंपनियों को ऋण देते थे। ये विशेष प्रकार के बड़े उद्योगों को ही ऋण देते थे। बैंकों के केंद्रण के साथ ही इन नीतियों को लागू किया गया, कमजोर छोटी कंपनियों को ऋण सुविधा न थी और उनको मुश्किलों का सामना करना पड़ा। बड़े बैंक अपनी विशाल वित्तीय शक्ति के बल पर जिस भी कंपनी पर अपना नियंत्रण कायम करने की सोचते उसको अपने नियंत्रण में ले सकते थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये बड़े बैंक **जैबात्सू** से जुड़ी कंपनियों की देखभाल करते और उन्हीं को प्राथमिकता प्रदान करते।

2) दूसरे, कोई एक विशेष **जैबात्सू** समूह के नियंत्रण तंत्र को विस्तृत करने के लिए बैंक के धन का उपयोग कर सकता था। इस तरह से बैंकों में जो जमा पूंजी थी उसका उपयोग **जैबात्सू** की ताकत को बढ़ाने में किया गया। **जैबात्सू** ने विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न कंपनियों की स्थापना की।

3) तीसरे, **जैबात्सू** से संबंधित कंपनियों के पास नियंत्रण की ऐसी शक्तियां थी जो उनकी वित्तीय पूंजी की भागीदारी से कहीं अधिक थीं। **जैबात्सू** की शक्तियां 1920 तथा 1930 के दशकों में अपने चरमोत्कर्ष पर थी किंतु इसके बाद उनका पतन शुरू हो गया।

जैबात्सू की शक्तियां केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित न थी। इसका राजनीति में भी काफी प्रभाव था। ये व्यापारिक घराने पिछले 50 वर्षों से शक्तिशाली थे। जापान की सरकार अपनी कुछ निश्चित आर्थिक गतिविधियों के लिए इन घरानों की वित्तीय मदद पर निर्भर करती थी। **जैबात्सू** ने उन **राजनीतिज्ञों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किए जो नीतियों** का निर्धारण करते थे। नीतियों को लागू करने के लिए वे संसाधनों तथा सहायता को उपलब्ध कराते थे। राज्य उनकी सहायता उनको महत्वपूर्ण ठेके प्रदान करके तथा राज्य की संपत्ति को उन्हें कम दामों पर बेचकर करता था। **जैबात्सू** के राजनीतिज्ञों के साथ घनिष्ठतम संबंध होने के कारण उसकी नीतिगत मामलों पर सलाह महत्वपूर्ण होती थी और ये संबंध उनके इस स्तर पर होते थे कि जहां वे सरकार के ऊपर अपने विचारों को थोप सकते थे।

इन सबका यही पर अंत नहीं हो जाता। विश्वव्यापी मंदी के दौरान किसानों एवं छोटे उत्पादनकर्ताओं को भारी नुकसान हुआ। उन्होंने अपनी कठिनाइयों के लिए **जैबात्सू** को उत्तरदायी ठहराया। सेना सरकार के द्वारा विदेशी मामलों में लिए गए कार्यों तथा सेना को आवंटित किए गए बजट को लेकर नाराज थी और वह **जैबात्सू** को भी पसंद नहीं करती थी। फिर **जैबात्सू** की जबर्दस्त आलोचना की जाने लगी। **जैबात्सू** पीछे हट गई और उसकी महत्वपूर्ण स्थिति में कमी आई। यद्यपि राष्ट्र के प्रति वफादारी के लिए उन्होंने बहुत से योगदान किए, लेकिन इस **समय से उसका द्रुत गति से पतन होने लगा।**

24.7 अंतर्युद्ध के समय में विदेश व्यापार

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एवं तुरंत बाद जापान के निर्यातों में काफी तेजी से वृद्धि हुई। 1913 तथा 1929 के बीच विदेशी व्यापार में तीन गुणा वृद्धि हुई। अगर हम जापान तथा उसके उपनिवेशों के बीच होने वाले व्यापार को शामिल करते हैं तब यह वृद्धि और भी अधिक होगी। 1914 से पूर्व औपनिवेशिक व्यापार इतना महत्वपूर्ण न था। लेकिन जैसे ही विश्व युद्ध का समापन हुआ वैसे ही यह व्यापार विदेशी व्यापार का 12 प्रतिशत हो गया और 1929 में 20 प्रतिशत। जापान का अपने उपनिवेश कोरिया एवं ताइवान के साथ व्यापार वैसे ही था जैसा कि भारत एवं इंग्लैण्ड के बीच था। जापान अपने उपनिवेशों को औद्योगिक उत्पादनों का निर्यात करता था और उनसे खाद्य सामग्री एवं कच्चे माल के आयात।

जापान का बाह्य विश्व के साथ होने वाला व्यापार इस वास्तविकता का द्योतक था कि इसका तेजी से औद्योगीकरण हो रहा था। जापान के निर्यात में औद्योगिक उत्पादन का प्रतिशत 1913 में 29 प्रतिशत था, वह 1944 में बढ़कर 44 प्रतिशत हो गया। 1913 में निर्यात में कपड़े की भागीदारी अच्छी थी। 1913 के निर्यातों में सूती धागा तथा कपड़ा, कच्ची रेशम तथा रेशम के उत्पादनों की संयुक्त भागीदारी 53 प्रतिशत हो गई। जहां 1913 में इस निर्यात में कच्ची रेशम का भाग 30 प्रतिशत था वह 1929 में 37 प्रतिशत हो गया।

क्षेत्रानुसार चीन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका को होने वाला निर्यात 1913 में 64 प्रतिशत था और वह 1929 में 67 प्रतिशत हो गया। ब्रिटिश भारत को भी 1929 में 9 प्रतिशत निर्यात होने लगा।

1929 में जापान का निर्यात 2149 मिलियन येन था और वह 1933 में वह गिरकर 1,147 मिलियन येन रह गया लेकिन 1936 में उसमें पुनः वृद्धि हुई और वह 2,693 मिलियन येन हो गया। आयातों से भी इस तरह के रुझानों का पता लगता है। तैयार औद्योगिक माल का निर्यात 1929 में कुल निर्यात का 44 प्रतिशत तथा 1936 में 59 प्रतिशत तक बढ़ गया। ठीक इसी समय में अर्ध-औद्योगिक उत्पादनों का निर्यात 43 प्रतिशत से कम होकर 27 प्रतिशत रह गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कच्ची रेशम का निर्यात 1929 में 37 प्रतिशत से कम होकर 1936 में 15 प्रतिशत रह गया। कपास से तैयार माल निर्यात में

अपनी हिस्सेदारी को बनाए रख वस्त्रों का निर्यात 13 प्रतिशत से बढ़कर 18 प्रतिशत हो गया। छोटे स्तर के उद्योगों के उत्पादन के निर्यात में वृद्धि हुई। अमेरिका जहा 1929 में कुल निर्यात का 43 प्रतिशत प्राप्त करता था वहीं 1936 में गिरकर वह 22 प्रतिशत रह गया और यह कमी कच्ची रेशम के निर्यात में आई कमी के कारणवश हुई। चीन को 1929 में कुल निर्यात का 25 प्रतिशत किया जाता था और 1936 में 27 प्रतिशत जापान की सामरिक योजनाओं के कारण उसके धातु एवं मशीन निर्यात में भी वृद्धि हुई।

जापान के बढ़ते इस निर्यात का विरोध 1930 के दशक में अन्य देशों के द्वारा किया गया। 1929 में जापान के निर्यात का बड़ा भाग अन्य दूसरे विकसित देशों के उत्पादों के साथ प्रतियोगिता नहीं कर पाया। 1930 के दशक में उसने कच्ची रेशम के स्थान पर तैयार माल का निर्यात करना शुरू कर दिया। सूत से निर्मित कुछ माल ने अन्य दूसरे विकसित राष्ट्रों के निर्यातों को हटा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि अंतर्युद्ध के वर्षों के दौरान ब्रिटिश कपड़ा उद्योग का लगातार पतन हो रहा था और ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भारत इस क्षेत्र में अपनी जरूरतों के लिए उत्पादन करने लगा था। इस तरह के विश्व व्यापार में मंदी के दौर में सूत से निर्मित सामानों ने जापान के निर्यातों में स्थान ग्रहण किया और इस समय ब्रिटेन का सूती कपड़ा उद्योग भयंकर तौर पर मंदी की चपेट में था।

कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि जापान ने 1930 के दशक के प्रारंभ एवं मध्य में विश्व व्यापार में होने वाले हिंसात्मक परिवर्तनों में अपने विदेश व्यापार को पर्याप्त सफलतापूर्वक समायोजित किया। अपने बाजारों एवं प्रारंभिक उपभोग वस्तुओं में आई गिरावट की कुछ भरपाई करने के लिए जापान ने नए-नए ग्राहकों तथा वैकल्पिक उपभोग वस्तुओं को प्राप्त किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापानी हितों के लिए उदार स्वतंत्र व्यापार की स्थिति लाभदायक रही होगी। जापान को ऐसे निर्मित सामानों का निर्यात तथा कच्चे माल का आयात करना पड़ सकता था जिनकी वह अब गुणवत्ता को लगातार सुधारना चाहता था। लेकिन विश्व एक ऐसी स्थिति की ओर अग्रसर हो रहा था जहां पर कि स्थापित आपूतिकर्ताओं के बीच प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित होने वाला था। यह स्थिति जापान की प्रसारवादी आर्थिक नीतियों के लिए फिट न थी। इस कारण से वह स्थिति पैदा हो गई जिसके अंतर्गत जापान में कुछ राजनीतिक समूहों ने क्षेत्रीय प्रसार की वकालत की जिससे कि जापान को एकाधिकारवादी लाभ प्राप्त हो सकते थे। जापान को अपने व्यापारिक प्रसार के लिए जिन अवरोधों का सामना करना पड़ रहा था उनके कारणवश ही राजनीतिक क्षेत्रों में प्रसारवादी विचारों को ताकत मिलने लगी।

1930 के वर्षों में सैन्यवादियों का दबाव बढ़ने लगा, (देखें इकाई 23) और सेना की मांग भी बढ़ गई। सेना के कुछ भाग अपनी मांगों को मनवाने के लिए सरकारी अधिकारियों को आतंकित करके बाध्य कर रहे थे। ऐसे प्रमुख अधिकारी जिनके विचार सेना से भिन्न थे उनकी सेना के द्वारा हत्या कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ अधिकारी शांत हो गए और कुछ ने सेना की मांगों को मान लिया। हथियार उद्योग या उससे संबंधित शाखाओं में भारी मात्रा में निवेश किया गया।

1930 के दशक में कृषि में मंदी का दौर जारी रहा। कृषि को छोड़कर काफी बड़ी संख्या में श्रमिक उद्योगों में जाने लगे जिसके कारण उद्योगों में मजदूरी में और गिरावट आई। संपूर्ण अर्थव्यवस्था को युद्ध की तैयारी में लगा दिया गया जिससे मंहगाई में वृद्धि हुई। जिस समय 1937 में चीन के साथ युद्ध हुआ उस समय उद्योगों को इसके लिए बाध्य किया गया कि वे युद्ध प्रयासों की पूर्ति के लिए उत्पादन करें। लोगों से यह आशा की गई कि वे युद्ध को जारी रखने के लिए अतिरिक्त समय में भी कार्य करें। खाद्य पदार्थों की आपूर्ति कम थी। आम जनता की कठिनाइयां द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति 1945 तक जारी रही।

बोध प्रश्न 3

1) आप दोहरे ढांचे से क्या समझते हैं? जापान की अर्थव्यवस्था में परंपरागत क्षेत्र की भूमिका की विवेचना कीजिए। उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) धन की आपूर्ति पर **जैबात्सू** के नियंत्रण की लगभग 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) अंतर्युद्ध के वर्षों के दौरान जापान के विदेशी व्यापार की विशेषताओं की सूची लगभग 10 पंक्तियों में बताइए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

24.8 सारांश

इस इकाई में हमने यह बताया है कि जापान ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अपने आर्थिक विकास को कैसे प्रोत्साहित किया लेकिन आर्थिक उत्कर्ष का यह दौर काफी लम्बें समय

तक न चल सका और निश्चय ही कुछ उद्योगों में मंदी आ गई। इस संदर्भ में कृषि क्षेत्र को उद्धृत किया जा सकता है। यद्यपि सरकार ने कृषि में आए ठहराव को समाप्त करने के लिए कुछ प्रयास किए लेकिन उसे सफलता न मिली। चावल दंगे के कारण अपने उपनिवेशों से चावल का आयात करना पड़ा। यद्यपि इस आयात के द्वारा तात्कालिक मूल्यों में होने वाली वृद्धि को रोकने में मदद मिली किंतु इसके दूरगामी परिणाम भी हुए। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के बावजूद जापान उद्योग के कुछ निश्चित क्षेत्रों जैसे कि भारी एवं रसायन उद्योग, सूती कपड़ा उद्योग तथा शक्ति उद्योग में निरंतर वृद्धि होती रही। रेशम उत्पादन में भी सुधार किए गए और यह कृषक परिवारों की आर्थिक आमदनी का एक दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र हो गया।

हमने जापान में दोहरे ढांचे की अर्थात् परंपरागत एवं आधुनिक क्षेत्रों के उत्थान एवं निरंतरता का भी विवेचन किया है। **जैबात्सू** ने प्रारंभ में उत्पादन की शक्तियों तथा वित्तीय पूंजी पर अपना नियंत्रण कायम किया। उसकी इन गतिविधियों ने समस्याओं को पैदा किया और जहां एक ओर उनकी आलोचना कृषकों ने की वहीं पर सैन्यवाद के समर्थकों ने भी उनका विरोध किया। विदेश व्यापार भी इस अंतर्युद्ध समय के दौरान फला-फूला। यद्यपि सैनिक प्रसारवादियों ने आक्रामक नीतियों का अनुसरण न केवल विदेशी मामलों में किया बल्कि देश के अंदर भी उन सभी प्रकार के विरोधों का दमन कर दिया जिन्होंने सरकार के कार्यों में सेना के हस्तक्षेप का विरोध किया। इसके बावजूद भी जापान ने आर्थिक क्षेत्र के विकास में उच्चतम बिन्दुओं को प्राप्त किया किंतु गरीब मजदूरों एवं किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ा।

24.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर का आधार भाग 24.4 को बनाइए।
2) आप अपने उत्तर का आधार उपभाग 24.3.1 को बनाते हुए शक्ति निर्माण एवं उत्पादन के बीच संबंध को भी दिखाएं।

बोध प्रश्न 2

1) चावल दंगे का संक्षिप्त में विवरण करें, कृषि क्षेत्र में किए गए सुधारों के साथ चावल के आयात को भी शामिल करें। देखें उपभाग 24.4.2

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 24.5
2) देखें भाग 24.6
3) देखें भाग 24.7

इकाई 25 दूसरे विश्व युद्ध तक जापानी साम्राज्यवाद

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 साम्राज्यवाद : परिभाषा एवं बहस
25.3 जापानी प्रसार का ढांचा

25.3.1 प्रारंभिक दौर
25.3.2 जापान का औपचारिक साम्राज्य
25.3.3 औपनिवेशिक प्रशासन
25.3.4 उपनिवेशों से आर्थिक संबंध

25.4 प्रसार की विचारधारा
25.5 औपनिवेशिक नीति : मान्यताएं एवं आमुख
25.6 1931 के बाद की प्रसारवादी नीति

25.6.1 मंचूको की स्थापना
25.6.2 चीन में आक्रमण का जारी रहना
25.6.3 जापान का धुरी शक्तियों के साथ शामिल होना
25.6.4 दूसरा विश्व युद्ध

25.7 सारांश
25.8 शब्दावली
28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

25.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको :

- जापानी साम्राज्यवाद की मुख्य विशेषताओं की जानकारी होगी,
- जापान के द्वारा अपने अनौपचारिक एवं औपचारिक साम्राज्य पर उपयोग किए गए नियंत्रण के प्रसार एवं प्रकृति का ज्ञान होगा,
- सर्व-एशियावाद के उद्देश्यों एवं विचारधारा का ज्ञान होगा, और
- जापानी प्रसारवाद के पीछे सामाजिक एवं राजनीतिक गुटों का ज्ञान भी हो सकेगा।

25.1 प्रस्तावना

19वीं सदी के मध्य में जापान के रूपांतरण के साथ-साथ दूसरे देशों के साथ संबंधों के एक ढांचे का भी निर्माण किया गया। सापेक्ष तौर पर जापान बाकी विश्व से अलग-थलग था और उसने एक "बंद देश" **(साकोकू)** की नीति का अनुसरण किया था। फिर भी इसका अर्थ यह न था कि तोकूगावा जापान का अन्य देशों के साथ संपर्क न था। तोकूगावा जापान ने पश्चिमी देशों के साथ अपने संबंधों को तोड़ लिया था किंतु उसने कोरिया के साथ अपने कूटनीतिक संबंधों को बनाए रखा और समानता के आधार पर चीन के साथ भी अपने संबंधों को स्थापित करने के प्रयास किए। जापान इस अनुभव से उस समय पश्चिमी देशों के साथ सशर्त लाभ उठा सका, जब उन्होंने जापान को कूटनीतिक संबंध स्थापित करने तथा स्वयं को विदेशी व्यापार के लिए खोलने हेतु बाध्य किया।

विश्व के साथ जापान के संबंधों के प्रतिमान का निर्धारण उस पश्चिमी साम्राज्यवाद की पृष्ठभूमि ने किया जिसने संकट की एक भावना को उत्पन्न किया। यह संकट की भावना दासत्व की थी और दासत्व के इस भय ने जापानी शासक तंत्र को राष्ट्र का निर्माण करने के योग्य बनाया। दूसरी ओर इस भय ने उसकी सीमाओं के प्रसार को तर्कसंगत भी बनाया तथा इस प्रसार ने सुरक्षा के हितों या बाजारों पर अधिकार करने या उस कच्चे माल की आपूर्ति को सुनिश्चित किया जो इसके विकास के लिए निर्णायक था। जापान के प्रसार के कारणों की व्याख्या कई प्रकार से की गई है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस नीति का अनुसरण सामंती सैन्यवादी मूल्यों को जारी रखने के लिए किया गया, परंतु कुछ विद्वानों का तर्क है कि इस नीति को पूंजी की कमी के कारण अपनाया गया और जापान के लिए यही एक ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा वह विकास के लिए आवश्यक संसाधन संग्रहित कर सकता था। लेकिन कुछ अन्य विद्वानों ने जापान की इन प्रसारवादी नीतियों के पीछे राजनीतिक एवं राष्ट्रवादी भावनाओं को देखा है। इस इकाई में जापान की प्रसारवादी नीतियों का विशुद्ध विवरण किया गया है। साम्राज्यवाद के सिद्धांत से बहस को प्रारंभ करते हुए इसके अंदर यह विश्लेषण किया गया है कि जापान क्यों और कैसे एक साम्राज्यवादी शक्ति बन गया। जापान ने जिन साम्राज्यवादी नीतियों को अपनाया और उनका उपनिवेशों पर जो प्रभाव हुआ—इस इकाई में इस दूसरे पक्ष का भी विवरण किया गया है।

25.2 साम्राज्यवाद : परिभाषा एवं बहस

साम्राज्यवाद की प्रकृति का परीक्षण कई विद्वानों के द्वारा किया गया है और जापान की स्थिति पर कुछ लिखने से पूर्व यह काफी उपयोगी होगा कि इन विद्वानों के तर्कों का संक्षेप में विवरण किया जाए। साम्राज्यवादी प्रसार के कारणों पर सबसे अधिक प्रभावशाली तर्क 1902 में जे.हॉब्सन के द्वारा दिये गये। उसका कहना था कि ग्रेट ब्रिटेन जैसे देशों के पास बहुत अधिक औद्योगिक उत्पादन क्षमता तथा ऐसी अतिरिक्त पूंजी थी जिसका निवेश देश के अंदर नहीं किया जा सकता था और इन सभी ने इन देशों को नए क्षेत्रों की तलाश के लिए बाध्य किया। बैंकर्स एवं रोकड़ियों (फाइनेन्सर्स) की आवश्यकता के पीछे ऐसी राजनीतिक नीतियां थीं जिन्होंने नियंत्रण का प्रसार कर साम्राज्यवाद की स्थापना की। इस तर्क की वी. लेनिन ने और सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए दिखाया कि साम्राज्यवाद एकाधिकार पूंजीवाद का एक ऐसा चरण है जब घरेलू बाजार में अतिरिक्त पूंजी की खपत नहीं हो पाती और तब पूंजीपति उपनिवेशों पर प्रभाव के उन क्षेत्रों में अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जो राजनीतिक तौर पर संरक्षित बाजार होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन तर्कों पर बहस की गई और इनको संशोधित किया गया। 1953 में गालाघर तथा रोबिंसन ने अपने लेख "मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद" में विकास के तीन चरणों को बताया। प्रथम चरण व्यापारिक साम्राज्यवाद का था जब साम्राज्यवादी देश अपने राजनीतिक प्रभुत्व का उपयोग उपनिवेशों के आर्थिक लाभों को सुरक्षित करने के लिए करता है। तीसरा चरण वही था जिसकी पहचान हॉब्सन ने की। लेकिन दूसरा चरण मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद था और इस चरण में व्यापार पर पूर्णाधिकार ही सबसे महत्वपूर्ण था। इस चरण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन हो सकता है। इस काल में चीन तथा दक्षिण अमेरिका में संरक्षित एवं प्रभाव क्षेत्रों की स्थापना की गई। यही वह समय था जबकि साम्राज्य का अधिकतम प्रसार हुआ।

जोसेफ शुम्पीटर तथा दूसरे विद्वानों ने साम्राज्यवाद के प्रसार के लिए आर्थिक कारणों की अपेक्षा अन्य कारणों पर अधिक बल दिया है। कार्लटन हेज का कथन है कि राष्ट्रों का प्रसार इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने राष्ट्रीय सम्मान को बढ़ाने की इच्छा की। शुम्पीटर ने तर्क दिया कि पूंजीवाद एक तर्क संगत व्यवस्था है इसलिए प्रसार का पूंजीवाद के साथ कोई संबंध नहीं है बल्कि इसका प्रतिनिधित्व पूंजीवाद से पूर्व की शक्तियों के द्वारा किया गया। प्रसार का समर्थन सैन्यवादियों, भूस्वामी कुलीनों के द्वारा किया गया और इससे स्पष्ट है कि पूंजीवाद अभी भी अविकसित था। शुम्पीटर निश्चित रूप से जर्मनी को अपने मस्तिष्क में रखते हुए इन तर्कों को प्रस्तुत कर रहा था।

जापान के प्रसारवाद की नीति का विश्लेषण विद्वानों द्वारा भिन्न दृष्टिकोणों से किया गया। इस संदर्भ में सबसे अधिक प्रभावशाली मार्क्सवादी विश्लेषण ओ. लेनिन तथा ई. योहान के द्वारा प्रस्तुत किया गया। इन दोनों ने कहा कि जापान ने अपने क्षेत्र का प्रथम बार प्रसार 1894 के बाद किया क्योंकि सामुराइ चीन की मुख्य भूमि पर नियंत्रण **स्थापित करना और** "श्वेत साम्राज्यवाद" के विरुद्ध संघर्ष करना चाहते थे। जापान के पास एक स्वतंत्र प्रसार को जारी रखने की ताकत की कमी थी और इसी कारणवश उसने ब्रिटेन के साथ एक असमान गठबंधन किया। रूस-जापान युद्ध तक जापान अपनी आर्थिक शक्ति को बढ़ाने के लिए "प्रारंभिक पूंजीवादी संचयन" करने के लिए प्रयासरत था और उसका प्रसार "वित्तीय पूंजीवाद" की उपज न था। लेकिन रूस-जापान युद्ध के बाद जापान एक पूंजीवादी समाज अधिक बन गया किंतु उसकी प्रसारवादी नीतियों का सामाजिक आधार सम्राट के अधीन सेना तथा उदित होते पूंजीपति वर्ग के बीच का गठबंधन निरंतर जारी रहा। यह गठबंधन **मेजी पुनर्स्थापन** के साथ मिलकर बना था और मेजी पुनर्स्थापन अधूरी बुर्जुआ क्रांति थी। कृषि में विशेष तौर पर सामंती संबंधों के जारी रहने ने घरेलू अर्थव्यवस्था पर एक **दबाव** का कार्य किया और जिसके कारण खरीदने की शक्ति बनी रही तथा उद्योगों को विदेशों में बाजार तलाश करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस तरह से जापानी साम्राज्यवाद की मुख्य चिंता व्यापार एवं कच्चा माल थी न कि पूंजी का निर्यात।

मार्क्सवादी परंपरा के अंतर्गत जापानी इतिहासकारों ने इस विश्लेषण का अनुसरण किया। इनोई कियोशी जैसे विद्वानों का कहना है कि मेजी सरकार एक "निरंकुश" सरकार थी। किसी एक वर्ग का राज सत्ता पर आधिपत्य न था और इसलिए नौकरशाही भूस्वामियों तथा उदित होते पूंजीपति वर्ग के एक गठबंधन ने सम्राट व्यवस्था की विचारधारा का उपयोग करके जनता के ऊपर नियंत्रण बनाए रखा। देश के अंदर प्रभुत्व का यह तंत्र इस आधिपत्य को देश के बाहर फैलाने के लिए भी उत्तरदायी था। रूस-जापान युद्ध इतिहास के उस दौर को स्पष्ट तौर पर रेखांकित करता है जबकि जापान ने आधुनिक पूंजीवाद के युग में पदार्पण किया। इस स्थिति में जापान पश्चिमी दबाव की प्रतिक्रिया मात्र नहीं था बल्कि उसका उद्भव अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों के सहयोगी के रूप में हुआ था। रूस-जापान युद्ध को जापान के द्वारा आंशिक तौर पर पश्चिमी शक्तियों के लिए लड़ा गया जिससे कि और अधिक शोषण के लिए एशिया को खोला जा सके। प्रसारवादी नीतियों का समर्थन सेना के द्वारा किया गया और उसके कारण वह अपना प्रभाव बढ़ाने में सफल हुई। व्यापारिक घरानों या **जैबात्सू** ने भी इस नीति से लाभ उठाया लेकिन वे सदैव ऐसा न कर पाए। डब्ल्यू.जी. बीजली ने इस तर्क का उपयोग करते हुए लिखा "दाई के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष के साथ जापानी साम्राज्यवाद पश्चिमी साम्राज्यवाद की अवैध संतान हो गया।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मैरियस जानसेन का तर्क है कि 19वीं सदी में साम्राज्यवाद एक सामाजिक मानक था और इस कारण से इसकी कोई आलोचना नहीं होनी चाहिए। जापानियों ने डार्विन के उन विचारों को स्वीकार किया था जिनके अनुसार जीवित रहने के लिए एक सतत संघर्ष अपरिहार्य प्रक्रिया है और जापान को अपने को जीवित बनाए रखने के लिए अपनी सीमाओं के प्रसार को जारी रखना चाहिए था। अकिरा इरिई ने ऐसे कई कारणों का उल्लेख किया है जो इसके पीछे संवाहक का कार्य कर रहे थे। उसका कहना है कि जापानी साम्राज्यवाद के प्रारंभिक दौर में आर्थिक एवं सैनिक प्रतिबद्धताएं अविभाज्य तौर पर जुड़ी थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापानी उद्योगों की प्रतियोगिता पश्चिमी कंपनियों के साथ होने लगी और जापान के प्रसार में आर्थिक कारण काफी महत्वपूर्ण हो गए। जापान ने अंतर्राष्ट्रीय ढांचे को स्वीकार तो कर लिया परंतु 1929-30 में व्यापार एवं अर्थव्यवस्था में आई रुकावटों के कारण जापान ने पश्चिमी देशों के साथ सहयोग करने के विचार का परित्याग कर दिया। जापान ने यह भय महसूस किया कि उसको बाजार एवं कच्चे माल के स्रोतों से अलग कर दिया जाएगा और उसके लिए अपनी अतिरिक्त जनसंख्या के लिए कोई क्षेत्र न बचेगा। इसी भय ने जापान को सह-संपन्न क्षेत्र को बनाने के लिए बाध्य किया और जिसके कारण उसको युद्ध भी करना पड़ा।

सह-संपन्न क्षेत्र का अध्ययन एफ.सी.जोन्स के द्वारा किया गया और उसका कहना था कि इसके निर्माण का कारण एशियाई एकता की इच्छा के साथ-साथ साम्राज्यवादी नीतियाँ भी

थी। 1920 के दशक में नीतियों के निर्माण में सेना का महत्व कम होने लगा था लेकिन उसने पुनः अपनी ताकत का प्रयोग करते हुए इनके निर्माण में हस्तक्षेप करना शुरू किया और इसको जहां एक ओर विद्यमान सामंती दृष्टिकोणों से मदद मिली वहीं पर इसकी सहायता उस संस्थागत ढांचे ने भी की जिसने सेना को डायट के नियंत्रण के बगैर काम करने दिया। विशेष तौर पर सामाजिक उथल-पुथल औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में हुई और यह भी असंतोष को उत्पन्न करने में निर्णायक थी और इस असंतोष की इच्छा "शोवा पुनर्स्थापन" की थी। इन अभिलाषाओं के कारण नौजवान सैनिक अधिकारियों तथा देशभक्त संस्थाओं ने जापान को प्रसार तथा युद्ध की ओर जाने के लिए अपने प्रभाव को और व्यापक एवं गहरा किया।

25.3 जापानी प्रसार का ढांचा

जापान की प्रसारवादी नीतियों के कारणों को 16वीं सदी से देखा जा सकता है जबकि हिदेयोशी ने कोरिया को जीतने का प्रयास किया। लेकिन यह मानना उचित होगा कि आधुनिक जापान ने संपत्ति एवं सुरक्षा की तलाश के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक साम्राज्य के निर्माण के प्रयास किए। पश्चिमी देशों के दबाव के अंतर्गत रूपांतरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप मेजी शासक तंत्र "धनी देश शक्तिशाली सेना" **(फूकोकू क्यो हेई)** पर आधारित नीति को अपनाने के लिए तर्क देने में सफल हुआ। यही सर्वोच्च लक्ष्य था और अन्य मांगों की या तो अनदेखी कर दी गई या फिर उनका दमन कर दिया गया। राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक व्यवस्था के लिए एक खतरा माना गया और असंतोष को दबाए रखने के उद्देश्य से बड़े प्रतिबंधित ढंग से संसदात्मक प्रणाली को लागू किया गया। राजनीतिक व्यवस्था के वास्तविक स्तम्भ सेना एवं नौकरशाही थे और वे सम्राट के अधीन कार्य करते थे तथा उनको राजनीतिक दबाव से लगभग पूर्णतः अलग रखा गया था। शिक्षा व्यवस्था का उपयोग उन विचारों के प्रचार एवं प्रसार के लिए किया गया जिन्होंने संस्थात्मक तंत्र को उद्देश्यविहीन बनाने का कार्य किया (देखें इकाई 23)। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि राष्ट्र तथा सम्राट के प्रति वफादारी एवं मेजी राजनीतिक दलों को विभिन्न गुटों के हितों का प्रतिनिधि समझा गया और इसी कारण से सेना तथा उग्र राष्ट्रवादियों के द्वारा उन्हें विघटनकारी समझा गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पश्चिमी साम्राज्यवाद के भय ने "एशियाई चेतना" को बढ़ावा दिया। इस विचारधारा के प्रतिनिधि विभिन्न पृष्ठभूमियों के लोग थे। सामान्यतः उन्होंने यह तर्क दिया कि पश्चिमी खतरे से जापान स्वयं को एक ही तरीके से सुरक्षित कर सकता था कि वह अन्य ऐसे एशियाई देशों के साथ अपनी एकता को कायम करे जो एक समान सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा थे। इस गठबंधन का तात्पर्य था कि जापान को इन देशों के आधुनिकीकरण तथा विकास में सहायता करनी चाहिए।

25.3.1 प्रारंभिक दौर

जापान की प्रारंभिक प्रसारवादी नीति का मूल तत्व जनता के अधिकारों के उस आंदोलन से जुड़ा था जो जापान में एक लोकतांत्रिक ढांचे की मांग कर रहा था। इसके कुछ समर्थकों ने कोरियाई राष्ट्रवादियों की मांगों का समर्थन करना शुरू कर दिया जबकि दूसरों ने कोरिया पर आक्रमण करने की मांग की। कोरिया पर आक्रमण किया जाए या नहीं इस बहस **(सैकनरॉन)** के पीछे बहुत से उद्देश्य थे। जिस महत्वपूर्ण तर्क को आक्रमण करने के लिए लिया गया वह यह था कि ऐसा करने से बेरोजगार सामुराइयों को रोजगार प्राप्त होगा। अनिवार्य सैनिक भर्ती कानून के कारण सामुराइयों का सैनिक कार्यों पर स्थापित वर्चस्व समाप्त हो जाने से वे बेरोजगार हो गए थे। इसी के साथ एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण यह था कि जापान को आधुनिक विश्व में प्रवेश करने हेतु कोरिया की मदद करने का अधिकार था। जापान द्वारा इस कार्य को एक सहयोगी के तौर पर संपन्न किया जाना था। लेकिन एक नेता के रूप में कार्य करने की जापान की इस स्थिति में धीरे-धीरे बदलाव आया और

अंततः वह एक औपनिवेशिक शक्ति बन गया। जिस प्रक्रिया के द्वारा सर्व-एशियाई विचारों का एशिया की एकता के स्वप्न में रूपांतरण हुआ वह वास्तव में जापान के एशिया पर कायम होने वाले प्रभुत्व में परिवर्तित हो गया। इस विषय पर काफी गर्म बहस हुई। किंतु जापान के विद्वान निश्चय ही इस पर सहमत होंगे कि 1900 तक जापान के सर्व-एशियाई विचारों में प्रसारवाद का अस्तित्व नहीं था किंतु इसके बाद ये विचार सेना जैसे गुटों की जापान की सुरक्षा एवं धन की मांगों को पूरा करने के लिए जापान की क्षेत्रीय प्रसार की नीति का वैचारिक आधार बन गए।

25.3.2 जापान का औपचारिक साम्राज्य

जापान के औपचारिक साम्राज्य में ताइवान, कोरिया, सुखालीन, कुआंकतुंग क्षेत्र तथा प्रशांत महासागर के द्वीप शामिल थे। चीन-जापान युद्ध के बाद 1895 में जापान द्वारा प्राप्त किए जाने वाला ताइवान उसका प्रथम उपनिवेश था। ताइवान ने जापान को केवल उपनिवेशों का प्रबंधन करने के लिए सुअवसर उपलब्ध कराया अपितु चावल एवं चीनी की आपूर्ति भी की। ताइवान बहुत अधिक लाभदायक साबित हुआ और इस पर अधिकार करने के पांच वर्षों के अंदर ही यह उपनिवेश आर्थिक आधार पर आत्मनिर्भर बन गया। रूस-जापान युद्ध के बाद 1905 में काराफूतों पर अधिकार कर लिया गया। इस उपनिवेश में अधिकतर निवासी जापानी एवं देशी **एइनु** थे। कुछ कोरियाई मूल के भी निवासी थे परंतु उनकी संख्या में लगातार कमी आ रही थी। इस उपनिवेश का प्रशासन जापानी प्रशासन के अधिक समीप था। 1907 में इस पर से जापान का शासन समाप्त हो गया और 1943 में यह जापान का एक भाग बन गया।

कोरिया जापान का सबसे महत्वपूर्ण उपनिवेश **(गैशी)** था और इसका अधिग्रहण 1910 में उस संधि के द्वारा किया गया जिसमें कोरियाइ वासियों के साथ समान व्यवहार करने का वचन दिया गया था। कोरियाई जनता जापानियों के दबाव एवं उपस्थिति से दास बनी हुई थी लेकिन उनकी सांस्कृतिक परंपरा शक्तिशाली एवं विरोध करने वाली थी। उन्होंने जापान के साथ विलय करने के जापानी प्रयासों का कड़ा प्रतिरोध किया। इस तरह से जहां एक तरफ नागरिक एवं पुलिस प्रशासन में कोरियाइयों की काफी बड़ी संख्या थी वहीं पर दूसरी ओर कोरिया में स्वतंत्रता के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन भी था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लिया ओतुंग प्रायद्वीप पर स्थित क्वांगतुंग क्षेत्र पर जापान ने 1895 में अधिकार कर लिया। लेकिन तीन देशों के हस्तक्षेप के कारण (त्रि-पक्षीय हस्तक्षेप) यह चीन को वापस प्राप्त हो गया और बाद में इसे लीज पर रूस को दे दिया गया। 1905 में रूस की पराजय के कारण इस क्षेत्र को प्राप्त करने के साथ-साथ उसने दक्षिण मंचूरिया की रेलवे को प्राप्त कर लिया। क्वांगहुंग स्थित जापानी सेना ने मंचूरिया में अपने नियंत्रण का प्रसार करने के लिए इस रेलवे लाइन का प्रयोग किया और 1934 में क्वांगहुंग के गवर्नर जनरल को जापानियों के अधीनस्थ मंजूकुओं राज्य का राजदूत नियुक्त कर दिया गया।

जापान का नियंत्रण एक छोटे से द्वीप समूह माइक्रोनेशिया पर भी हो गया। इस द्वीप समूह पर स्पेन का नियंत्रण था और इन्हें स्पेन से जर्मनी ने खरीद लिया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद इन पर जापान की नौसेना ने अधिकार कर लिया। राष्ट्र संघ ने उनके तीसरे दर्जे का क्षेत्र (C Class Territory) घोषित किया और **इसका प्रशासन चलाने की अनुमति जापान** को प्रदान कर दी। जापान 1933 में राष्ट्र संघ से अलग हो गया किंतु इन द्वीपों का प्रशासन उसने अपने हाथों में ही रखा। स्थानीय सरदारों के द्वारा यहां की देशी जनता पर शासन किया जाता था और जापानी प्रशासन ने इनको अपने अधीन रखा।

25.3.3 औपनिवेशिक प्रशासन

औपनिवेशिक प्रशासन एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में भिन्न था। कोरिया स्थित प्रशासनिक अधिकारियों को उच्च स्थान प्राप्त था। कोरिया का गवर्नर जनरल या तो सेना का सेनापति या फिर नौसेना अध्यक्ष होता था तथा 1919 तक वह अपनी रिपोर्ट सीधे-सीधे सम्राट को भेजता था किंतु इसके बाद से वह अपनी रिपोर्ट प्रधान मंत्री को भेजने लगा। अन्य सभी उपनिवेशों के अधिकारी मंत्रिमंडल के स्तर के अधिकारियों को उपनिवेशों की

बने। ऐसा इस कारण से हुआ कि जापान में लोकतांत्रिक विचारों का महत्व बढ़ रहा था और इसी कारण से अब "नागरिक" तथा "सैन्य" कार्यों को अलग-अलग किया जाने लगा था। लेकिन कोरिया इसका अपवाद बना रहा और कोरिया के गवर्नरों को सैनिक अधिकारियों में से ही नियुक्त किया जाता रहा।

जापान के उपनिवेशों का संचालन 1895-1929 तक एक ब्यूरो के द्वारा किया जाता था और यह ब्यूरो प्रधानमंत्री या गृह मंत्री के कार्यालय से जुड़ा था। 1929 में एक औपनिवेशिक मामलों के मंत्रालय का गठन किया गया जिससे कि औपनिवेशिक प्रशासन की एकरूपता कायम की जा सके। फिर भी औपनिवेशिक गवर्नरों के पास पर्याप्त शक्ति बनी रही। जिस समय 1934 में मंचूकुओं को बनाया गया तब प्रधानमंत्री कार्यालय में इस उपनिवेश के संचालन के लिए विशेष ब्यूरो का गठन किया गया और यह ब्यूरो **क्वांगतुंग** क्षेत्र के मामलों की भी देखभाल करता था।

नवम्बर, 1942 में मंचूरियाई ब्यूरो तथा औपनिवेशिक मामलों के मंत्रालय का स्थान ग्रहण करने के लिए वृहत् पूर्वी एशिया मंत्रालय का गठन किया गया। यह मंत्रालय **क्वांगतुंग** क्षेत्र, मंचुकुओ, प्रशांत महासागर के द्वीपों तथा अन्य अधीनस्थ क्षेत्रों के मामलों की देखभाल करता था। गृह मंत्रालय कोरिया, ताइवान तथा काराफूतो के लिए उत्तरदायी था। अन्य मंत्रियों को भी यह अनुमति प्रदान कर दी गई कि वे भी उपनिवेशों के अन्य मामलों में स्वयं को शामिल करें जिससे मुख्य जापान में उनके एकीकरण को सरल बनाया जा सके।

25.3.4 उपनिवेशों के साथ आर्थिक संबंध

पिछली कुछ इकाइयों में जापान के विदेश व्यापार के विषय में विवरण दिया जा चुका है। जापान के औपनिवेशिक व्यापार का विवरण करने से पहले यह स्पष्ट हो जाएगा कि जापान के लिए उपनिवेशों का कितना महत्व था। मंचूरिया वास्तव में एक उपनिवेश न था और 1910 तक कोरिया भी जापान का एक उपनिवेश न था। लेकिन 1907 के बाद से जापान के प्रमाणों में मंचूरिया के व्यापार को शेष चीन के साथ होने वाले व्यापार से अलग उद्धृत किया जाने लगा। जापान के आयातों का 18 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक 1910 से 1914 के मध्य ताइवान, कोरिया तथा **क्वांगतुंग** –मंचूरिया के द्वारा उपलब्ध कराया जाता था। मंचूरिया सोयाबीन, मोटा अनाज, कोरिया चावल एवं ताइवान चावल तथा चीनी का निर्यात करता था। इन सामानों के बदले ये जापानी सूती कपड़ा एवं अन्य उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त करते थे। इन क्षेत्रों ने जापान की शहरी आबादी को सस्ता खाना उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विदेशी निवेश के क्षेत्र में जापान की स्थिति ने इसकी अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तन को भी अभिव्यक्त किया। ब्रिटेन-जापानी गठबंधन के कारण जापान को चीन तथा कोरिया में रेलवे में निवेश करने के लिए विदेशों से ऋण प्राप्त हुआ। जिस समय चीन में बैंकों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के युग का सूत्रपात हुआ तब भी जापान एक महत्वपूर्ण योगदान करने की स्थिति में था यद्यपि इसने अधिक निवेश नहीं किया। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बैंक का सदस्य होने के बावजूद भी जापान ने कुल ऋण का मात्र 1.8 प्रतिशत ऋण प्रदान किया।

दक्षिण मंचूरियाई रेलवे (**मंतेत्सू**) एक अच्छा उदाहरण है कि जापान सरकार ने निवेश करने को कैसे गारंटी प्रदान की जिससे बैंक विदेशों से धन प्राप्त कर उसे रेलवे निर्माण की ओर मोड़ सके। 1914 में जापान ने जिस रेलवे निर्माण में 55 प्रतिशत पूंजी का निवेश किया उससे उसको 810 करोड़ येन प्राप्त होते थे। इसके अलावा सरकार की सहायता से जापान की वित्तीय कंपनियों ने निवेश करने वाली योजनाओं को शेष चीन में संचालित किया। ये वित्तीय कंपनियां कभी-कभी एक दूसरे के साथ सहयोग करती थीं जैसे 1908 में मितसुई, मितसुबिशी तथा ओकूरा ने संयुक्त रूप से विदेशों को हथियारों की आपूर्ति करने के लिए ताइपिंग कंपनी का गठन किया। हैनीफिंग कोल एवं आयरन कंपनी जापानी निवेश का एक बड़ा क्षेत्र थी। जापान इसको ऋण एवं उधार देता था और इसके बदले वह निश्चित किए गए दामों पर लौह एवं कोयला प्राप्त करता। जापान की सबसे बड़ी स्टील उत्पादक कंपनी यावता को कच्चे एवं खनिज लोहे की सप्लाई हैनीफिंग के द्वारा की जाती

1914-1930 के बीच जापान के पास निवेश करने के लिए अधिक पूंजी थी और चीनी सरकार को प्रदान किए जाने वाले ऋण में इसने काफी वृद्धि की। मितसुई तथा ओकरा जैसी कंपनियों ने विशाल परियोजनाओं को स्थापित किया और सूती कपड़ा उद्योग का भी विस्तार हुआ। चीन में निवेश किए जाने वाली पूंजी अब पश्चिमी देशों की पूंजी के समक्ष हो गई थी और जिसके फलस्वरूप संघर्ष में भी वृद्धि हुई। जापान के हितों का आधार उसके आर्थिक हित हो गए और इसी के साथ-साथ 1930 तक चीन में जापानवासियों की संख्या भी 2,70,000 तक पहुंच गई।

बोध प्रश्न 1

1) जापान के औपचारिक साम्राज्य पर एक टिप्पणी लिखिए। इसका उत्तर लगभग 15 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) औपनिवेशिक प्रशासन की क्या मुख्य विशेषताएं थीं? उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) उपनिवेशों के साथ जापान के आर्थिक संबंधों की रूपरेखा बताएं। उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....

25.4 प्रसार की विचारधाराएं

जापानी साम्राज्यवाद को उन विचारधाराओं के द्वारा प्रेरित किया गया जिनको "उग्र राष्ट्रवादी" तथा "फासीवादी" कहा गया। इन विचारों में समानता इस विश्वास में थी कि जापान को विशेष तौर पर पूर्वी एशियाई देशों तथा एशियाई देशों के साथ-साथ अपनी परंपराओं एवं संस्कृति की रक्षा करने की आवश्यकता थी। इस तरह के विचारों का प्रचार भिन्न-भिन्न समयों पर बहुत से राजनीतिक दलों के द्वारा किया गया। इस संदर्भ में निम्नलिखित उदाहरण दिया जा सकता है—

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- सैगो ताकामोरी (इसने 1877 में सतसुमा के विद्रोह का नेतृत्व किया था) के समर्थकों ने **जेनयोशा** (अंधकारमय समुद्र संस्था) का गठन किया। इस संस्था ने प्रसारवादी नीतियों का समर्थन किया और इसी के साथ-साथ इन नीतियों का समर्थन सरकार में बैठे कई नेताओं ने भी किया।

- **कोकूरूकाय** (काले ड्रैगनों की संस्था) की स्थापना 1901 में उशीदारयोह के द्वारा की गई थी। यह भी एक उग्र राष्ट्रवादी संस्था थी। इसने जापान के नेतृत्व में अन्य एशियाई देशों को पश्चिमी शासन से मुक्त कराने की वकालत की। आंतरिक मामलों में इसने नैतिकता एवं परंपराओं को मजबूत करने पर बल दिया।

- प्रथम विश्व युद्ध के बाद **काकू सुकाय** (1919 में गठित जापान की राष्ट्रीय संस्था) तथा **कोकूहोन्शा** (1924 में गठित राष्ट्रीय स्थापना संस्था) महत्वपूर्ण संस्थाएं थीं। इन संस्थाओं का मुख्य लक्ष्य जापान को समाजवाद से बचाना था। कई सैन्य अधिकारी उनके सदस्य थे। जैसा इकाई 23 में बताया गया है कि किता इक्की तथा ओकावा शुमई ने **यूजोन्शा** का गठन किया और इस संगठन ने विदेशों में प्रसारवादी नीति और देश के अंदर सैनिक शासन की वकालत की।

किता इक्की (1883-1937) प्रारंभ में एक समाजवादी था लेकिन बाद में "शोवा पुनर्स्थापन" तथा प्रत्यक्ष साम्राज्यिक शासन को स्थापित करने के प्रयास हेतु वह सेना के बहुत से देशभक्त अधिकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। 1919 मे उसने जापान के पुनर्निर्माण की योजना की एक रूपरेखा के नाम से एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने विदेशी संबंधों के साथ-साथ आंतरिक नीतियों से जुड़ी योजनाओं को प्रस्तुत किया। किता का कहना था कि जापान को ब्रिटेन एवं रूस के विरुद्ध एशिया का नेतृत्व करना चाहिए क्योंकि उन दोनों देशों का एशिया के एक बड़े भू-भाग पर अधिकार था। जापान स्वयं को सुधारने के बाद चीन एवं भारत सहित दूसरे एशियाई देशों के परिसंघ का नेतृत्व कर सकता था। किता इक्की के आंतरिक सुधार जापान के औद्योगिक विकास पर आधारित थे लेकिन यह एक ऐसा औद्योगिक विकास होना था जिसमें पूंजीपतियों की शक्ति पर नियंत्रण होगा। उसने सैनिक विद्रोह के द्वारा राजसत्ता को बदलने की भी वकालत की जिससे मेजी पुनर्स्थापन के वास्तविक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

कुछ ऐसे प्रसारवादी भी थे जिनकी परिकल्पना जापान के कृषि विकास पर आधारित थी। और इसकी प्रेरणा उन्होंने जापान के विकसित कृषि अतीत से प्राप्त की थी। लेकिन दोनों ही प्रवृत्तियों ने जापान की दलगत राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उन आर्थिक समस्याओं की जिनका विशेष तौर पर जापान के ग्रामीण क्षेत्रों ने सामना किया-कटु आलोचना की। 1930 के दशक के प्रारंभ में ही डायट नौकरशाही एवं व्यवसायिक नेताओं के विरुद्ध एक माहौल सा बन गया और इस व्यवस्था में परिवर्तन करने की मांग की जाने लगी। ठीक उसी तरह से जैसे कि मेजी पुनर्स्थापन ने जापान को एक नवीन दिशा तथा रूपांतरण का क्रांतिकारी कार्यक्रम प्रदान किया था, वैसे ही प्रसारवादियों ने यह महसूस किया कि अब जापान को समय की मांग को पूरा करने के लिए एक "शोवा पुनर्स्थापन" की आवश्यकता थी।

कोनोई फूमियारो 1918 में प्रधान मंत्री रह चुका था और उसका पश्चिमी देशों के साथ मोह भंग हो गया था। उसने 1938 में एक ऐसी नई व्यवस्था की घोषणा की जिसके द्वारा जापान एक ऐसी स्थिति को बदलने का प्रयास करेगा जिसके अंतर्गत जापान को समान अवसरों के लिए नकार दिया गया था। उसने लिखा कि जापान को आत्म-संरक्षण के लिए यथास्थिति को समाप्त करना होगा। सेना के अंदर देशभक्त संस्थाओं नें भी इन प्रश्नों पर बहस की और स्थिति को बदलने के लिए योजना बनाई। मुख्य गुटों को साम्राज्यिक गुट **(कोदो हा)** तथा नियंत्रण गुट **(तोसेई हा)** के नाम से जाना जाता था (देखें इकाई 23)।

साम्राज्यिक गुट का नेतृत्व अराकी सदाओ के द्वारा किया गया तथा उसने सम्राट के महत्व, चीन के साथ सहयोग तथा रूस के विरुद्ध युद्ध पर बल दिया। सहयोग का तात्पर्य निश्चय ही जापान के अधीन दिशा निर्देशन से ही था। साम्राज्यिक गुट ने सर्व-एशियाई सिद्धात के अनुरूप ढांचे की वकालत भी की। नियंत्रण गुट का वर्चस्व 1936 के बाद स्थापित हुआ और इस गुट का नेतृत्व नागाता तेत्सुजान तथा तोजे हिदेकी के द्वारा किया गया। इस गुट का तर्क था कि आने वाले युद्ध हेतु जापान को गतिशील किया जाए। इसका यह तात्पर्य था कि अर्थव्यवस्था एवं जनता को तैयार किया जाए तथा क्षेत्र का भी प्रसार हो जिससे कि चुनौती का सामना किया जा सके। इसकी योजनाओं तथा विचारों के निर्माण में इशिवारा कंजी ने महत्वपूर्ण योगदान किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इशिवारा का तर्क था कि जापान को निश्चित तौर पर पहले रूस के, फिर ब्रिटेन के और बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध युद्धों की श्रृंखला को लड़ने की तैयारी करनी चाहिए। जापान एशिया का सर्वोच्च कमांडर होगा। इस भूमिका को प्रभावशाली ढंग से निभाने के लिए केवल एकता पर्याप्त न होगी बल्कि जापान को पूर्णत: युद्ध की तैयारी में व्यस्त हो जाना चाहिए। उसने कहा कि राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों को जापान की सुरक्षा के लि एकीकृत किया जाना चाहिए और उसके लिए सेना की भूमिका राष्ट्रीय नीति को गतिशील बनाने वाली होगी।

25.5 औपनिवेशिक नीति : मान्यताएं एवं आमुख

जापान की औपनिवेशिक नीति का निर्धारण इस मान्यता पर आधारित था कि जहां एक ओर उसके अंदर यूरोपीय औपनिवेशिक विचारों के साथ समानता थी वहां दूसरी ओर भिन्नताएं भी थीं। जापान ने ऐसी किसी सुस्पष्ट नीति का प्रारंभ नहीं किया था कि उसको अपने उपनिवेशों के प्रति किस नीति का अनुसरण करना चाहिए था। वास्तव में उसके उपनिवेशवादी विचारों का विकास समय के साथ हुआ। यूरोपीय विचार के साथ उनकी यह मान्यता समान थी कि भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार की क्षमताएं होती हैं और ये पैतृक गुण है।

यूरोपीय शक्तियों का बहुत अलग सांस्कृतिक क्षेत्रों पर नियंत्रण था और इस तरह के विचारों का विकास उनके शासन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। जापानियों ने भी औपनिवेशीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जिसके द्वारा वे

अपने उन पड़ोसियों को सभ्य बना देंगे जो उनके समक्ष विकसित न हो सके थे। इस तर्कसंगत अनुदार तथा पैतृक विचार का नितोबे इनाजो तथा गोतो शिम्पई जैसे बुद्धिजीवियों एवं प्रशासकों द्वारा स्वीकृत एवं प्रचारित किया गया।

फिर भी, जापानी औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रसार ऐसे लोगों के बीच हुआ जिनके साथ उनकी सांस्कृतिक एवं प्रजातीय समानता थी और यह ताइवान एवं कोरिया के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय था। इसी कारण से यह विचार पैदा हुआ कि इन देशों का जापान के साथ एकीकरण कर दिया जाएगा। एकीकरणवादी विचार ने इन देशों में समग्र सांस्कृतिक धरोहर विशेषकर कन्फ्यूशियसवादी मूल्यों पर जोर दिया। जापानी जनता तथा साम्राज्यिक परिवार के बीच के इस कोप कल्पित संपर्क का उन दूसरे लोगों को शामिल करने के लिए प्रसार किया गया जो इस तरह से "साम्राज्यिक जनता" बन गए थे। इस तरह के विचार कई बार सतही एवं विरोधाभास से पूर्ण होते थे, जिसके कारण इनका उपयोग कई तरह की स्थितियों के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। उन्होंने अपनी भरपूर कोशिश के साथ उन नीतियों को प्रोत्साहित किया जिनसे कानून एवं संस्थाओं का प्रसार करके उपनिवेशों को जापान के साथ एकताबद्ध करने का प्रयास किया गया। इन जापानी नीतियों के द्वारा इन उपनिवेशों की जनता को जापानी भाषा को सीखने तथा जापानी तरह के रहन-सहन एवं पहनावे को अपनाने के लिए बाध्य किया गया। जापानी उपनिवेशवाद की उदार नीतियों का प्रतिनिधित्व हारा ताकेशी के द्वारा किया गया और हारा ताकेशी ने प्रधान मंत्री के रूप में एकीकरण को शिक्षा एवं नागरिक स्वतंत्रताओं के प्रसार के माध्यम से प्राप्त करने की वकालत की। उसने कहा कि अधिकतर कोरियाई स्वतंत्रता को नहीं अपितु जापानियों के साथ समानता को चाहते थे।

1930 के दशक में इस क्रमिक एकीकरण नीति को एक कठोर नीति में रूपांतरित कर दिया गया और इस नीति के अंतर्गत इन उपनिवेशों की जनता को जापानी प्रभुत्व के अधीन करने का प्रयास किया गया। इस नीति के द्वारा इस तरह के अनुबंधों पर बल दिया गया जिससे कि वे स्वयं को जापान का ऋणी समझें। इसकी अभिव्यक्ति उस भाषा से भी हुई जिसमें जापान के आधिपत्य के लिए "आंतरिक क्षेत्र" तथा "बाह्य क्षेत्र" जैसे शब्दों का प्रयोग भाषा में किया गया। इस वर्गीकरण के अंदर राष्ट्रीय पहचान को बहुत कम महत्व दिया गया था और जापान ने अपने उस अधिकार को अपने पास सुरक्षित रखा जिसके अनुसार वह इन अधीनस्थ देशों पर एक श्रेष्ठ जाति की तरह शासन करता था।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

25.6 1931 के बाद की प्रसारवाद नीति

इकाई 23 में हम देख चुके हैं कि सैन्यवादियों ने किस तरह से जापान में सरकार पर अपना अधिकार कर लिया था। 1930 के बाद से तथा द्वितीय विश्व युद्ध के अंत तक देश की नीतियों के निर्धारण की प्रक्रिया में सेना ने निर्णायक भूमिका अदा की। सेना इस बात से सहमत थी कि जापान ने चीन के प्रति जिस "उदार" नीति का अनुसरण किया वह उस देश में जापान के आर्थिक हितों के लिए खतरनाक थी। जापान लगातार यह महसूस कर रहा था कि पश्चिमी ताकतें जापान की प्रगति को चीन में रोकना चाहती थीं और वे उसके साथ सहयोग नहीं कर रही थीं। वास्तव में जापान का अमेरिका के साथ मोह भंग हो गया था क्योंकि उसने 1924 में निष्कासन कानून को स्वीकार कर लिया था और महान आर्थिक मंदी के बाद उसने अधिक कर लगाने की नीति का भी अनुसरण किया। ब्रिटेन ने भी चीन में "जापान के हितों" का विरोध किया। अब जापानी नेताओं को यह स्पष्ट हो चुका था कि पश्चिमी ताकतों के साथ सहयोग करने के बजाय एशियाई जमीन पर अपनी स्थिति को सुदृढ़ एवं प्रसारित करके, अधिक लाभ प्राप्त कर सकता था।

देश के अंदर बढ़ता असंतोष आर्थिक राजनीतिक दोनों प्रकार के संकटों का परिणाम था। इसी कारण इस समय यह महसूस किया गया कि संपन्नता की आशाओं को विदेशी प्रसार के माध्यम से पूरा किया जाए।

25.6.2 मंचूको की स्थापना

चीन में विशेषकर मंचूरिया में जापान के आर्थिक हित बढ़ते जा रहे थे और इसी कारण से यहां पर जापानी हितों तथा रेलवे मार्गों को सुरिक्षत रखने के लिए क्वांगतुंग सेना को रखा गया। यह भी महसूस किया गया कि मंचूरिया में जापान की विशेष स्थिति को प्राप्त करने तथा बनाए रखने के लिए आक्रामक नीति का अनुसरण करना अपरिहार्य था। अन्य लोगों के द्वारा इस विचार को स्वीकृत किया गया।

18 सितम्बर, 1931 को क्वांगतुंग सेना के अधिकारियों ने दक्षिणी मंचूरिया को रौंद डाला। इस कार्यवाही के लिए बहाना यह बनाया गया कि समीप रेलवे लाइन मे एक विस्फोट से जापानी रेलवे लाइन मामूली तौर पर क्षतिग्रस्त हो गई। क्वांगतुंग सेना इस तरह के अवसर की खोज में काफी दिनों से लगी थी किंतु टोकियो सरकार ने उसे ऐसा करने से रोके रखा था। क्वांगतुंग सेना को मंचूरिया में कार्यवाही करने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने मंचूरिया में चीन से स्वतंत्र एक कठपुतली सरकार की स्थापना की। मांचू साम्राज्य के अंतिम भूतपूर्व सम्राट पू यी को इस स्वतंत्र राज्य का मुखिया बना दिया गया एवं अब इसको मंचूको राज्य कहा जाने लगा। अब जापानी सरकार को एक निर्विवाद तथ्य का सामना करना पड़ा और अंततः मंत्रिमंडल को मंचूरिया में कठपुतली सरकार की स्थापना का अनुमोदन करना पड़ा।

25.6.2 चीन में आक्रमण का जारी रहना

मंचूरिया में आक्रमण की गतिविधियों के कारण जापान की विश्व समुदाय के द्वारा कड़ी आलोचना की गई और परिणामस्वरूप उसने स्वयं को राष्ट्र संघ से अलग कर लिया। उसकी इस कार्यवाही से यह स्पष्ट हो गया कि वह पश्चिमी देशों से भिन्न प्रकार से कार्य करेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन पश्चिमी देशों ने जापानी आक्रमण के विरुद्ध चीन की कोई सहायता नहीं की और जापान ने शीघ्र मंचूरिया में विजय प्राप्त कर 1933 में चीन के उत्तरी प्रांतों में अपनी सैनिक कार्यवाही को और तेज कर दिया तथा जैहोल को मंचूको में शामिल कर लिया गया।

जापान अंतरालों में चीन में आगे बढ़ता ही चला गया। उसने विशेषकर उत्तर के उन प्रांतों की राजनीति में हस्तक्षेप किया और उन राजनीतिक आंदोलनों का समर्थन किया जो जापान के संरक्षण में राजनतिक "स्वायत्तता" को प्राप्त करने की इच्छा रखते थे।

लेकिन चीन के अंदर जापान का चीनी जनता द्वारा विरोध लगातार बढ़ता गया और यह विरोध उस समय और भी शक्तिशाली हो गया जबकि 1936 में च्यांग काई शेक तथा साम्यवादियों के बीच जापान के विरुद्ध समझौता हो गया।

जापान के सैन्यवादी नेता इस बात से पूर्णतः सहमत थे कि चीन पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने के लिए एक व्यापक स्तर का युद्ध अपरिहार्य था। सेना पर ऐसे लोगों का वर्चस्व कायम था जो मुख्य भूमि पर जापान के प्रसारवाद में विश्वास करते थे। इसके साथ-साथ जापान की चीन में होने वाली सैनिक कार्यवाही के पीछे यह भी समझ थी कि यदि चीन के अंदर सेना किसी तरह की विशेष उपलब्धि प्राप्त कर लेती है और जनता को उनसे यह आशा थी भी। तब देश के अंदर बढ़ते राजनीतिक असंतोष को शांत किया जा सकता था।

7 जुलाई, 1937 को जापानी एवं चीनी सेना के बीच मार्को पोलो पुल के पास लड़ाई छिड़ गई और शीघ्र ही यह लड़ाई दोनों देशों के बीच एक व्यापक युद्ध में बदल गयी। अगस्त तक पेकिंग तथा त्येनसिन पर जापान का अधिकार हो गया। दोनों के बीच युद्ध बढ़ता चला

गया और जापानी सेनाओं ने च्यांग काई शेक की राजधानी नानकिंग पर दिसम्बर, 1937 में अधिकार कर लिया। जापानी सेना ने बड़े स्तर पर हत्याएं कीं, लूट तथा बलात्कार किए और 12000 चीनी नागरिकों की हत्या कर दी गई।

1938 तक जापानी सेना ने हांको (नानकिंग के पतन के बाद च्यांग अपनी राजधानी को हांको ले गया था) एवं कैंटन पर अधिकार कर लिया। हांको के पतन के बाद च्यांग अपनी राजधानी को चुंगकिंग ले गया।

1938 तक जापानी सेना ने बहुत से बड़े नगरों तथा कई रेलवे मार्गों पर अधिकार कर लिया लेकिन अभी तक भी इसने अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ न किया था। जापानी सेना को चीन के छापामार सैनिकों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। चीन में अपनी उपलब्धियों को बनाए रखने तथा छापामारों से युद्ध करने में जापान पर आर्थिक तौर पर काफी दबाव बढ़ा।

जापान धीरे-धीरे अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के चक्रों में फंसता चला गया, जिसके कारण जहां देश के अंदर उग्र राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला वहीं विश्व स्तर पर इसका अलगाव हुआ औ अंततः अमेरिका के साथ इसका युद्ध हो गया।

25.6.3 जापान का धुरी शक्तियों के साथ शामिल होना

1939 में यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारंभ हो चुका था। 1940 में फ्रांस में नीदरलैंड पर जर्मनी का नियंत्रण कायम हो जाने से जापान ने धुरी राष्ट्रों (जर्मनी एवं इटली) की विजय को सुनिश्चित मान लिया। 1940 में जापान ने जर्मनी एवं इटली के साथ इस घोषणा सहित यह त्रि-पक्षीय समझौता किया कि वह पश्चिमी देशों का विरोध करेगा। 1941 में जापान ने सोवियत संघ के साथ आक्रमण न करने की संधि पर हस्ताक्षर किए। इस तरह से जापान ने चीन में स्थित अपनी उत्तरी सीमाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित कर लिया और अब वह दक्षिण की ओर फ्रांसीसी, डच एवं अंग्रेजों के उपनिवेशों की ओर उन्मुक्त तरीके से अग्रसर हो सकता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान की प्रसारवादी नीतियों को लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत असंतुष्ट था। 1940 में जापान-अमेरिकी व्यापार संधि को समाप्त होने दिया गया। त्रिपक्षीय संधि हो जाने के बाद जापान 1941 मे इंडो-चीन की ओर बढ़ा। अमेरिका, ब्रिटेन तथा हालैंड ने जापान को होने वाले निर्यातों पर पूर्ण नियंत्रण लागू कर दिया। इस निर्णय के कारण जापान को तेल एवं रबर की आपूर्ति पर विकट प्रभाव पड़ा। अमेरिका ने जापान को निर्यात किए जाने वाले सामरिक महत्व के सामानों पर भी प्रतिबंध लगा दिया क्योंकि इन सामानों पर ज़ापान के युद्ध एवं भार उद्योग निर्भर करते थे। ये सामान लोहा एवं तेल थे।

पश्चिमी राष्ट्रों ने जिन प्रतिबंधों को लागू किया था उनसे निकलना सेना के लिए आवश्यक था। 1841 में जापान एवं अमेरिका के बीच बातचीत हुई लेकिन इस बातचीत में गतिरोध बना रहा क्योंकि कोई भी पक्ष समझौता करने के पक्ष में न था। अमेरिका ने मांग की कि जापान को न केवल इंडो-चीन क्षेत्र को खाली करना चाहिए अपितु वह चीन से भी हट जाए। लेकिन जापान भी इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था कि अमेरिका तेल की आपूर्ति पर से प्रतिबंध उठाए। सुदूर पूर्व में जापान के आधिपत्य को मान्यता प्रदान करे और च्यांग काइ शेक को अपना समर्थन देना बंद करे।

जापानी सैन्य अधिकारी इस बात से सहमत थे कि अंततः अमेरिका के साथ युद्ध होना अपरिहार्य था और इस दिशा में अब योजना बनाई जाए। युद्ध को अपरिहार्य मानकर अक्तूबर 1941 में तोजो हिदेकी को जापान का प्रधान मंत्री बनाया गया। जापान ने चीन को छोड़ने के स्थान पर युद्ध के विकल्प को अपनाना बेहतर समझा। अब युद्ध जापान के लिए मात्र शक्ति प्रदर्शन का स्रोत ही नहीं बल्कि आर्थिक अनिवार्यता भी बन चुका था।

इस समय तक जापान ने संपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया को एक बृहत् पूर्वी एशिया सह-संपन्न क्षेत्र में परिवर्तित करने की योजना भी तैयार कर ली। इस योजना में दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी एशिया दोनों को शामिल किया गया। धुरी राष्ट्रों में शामिल होने के बाद जापान अपनी योजना को लागू करने के लिए पूरा उत्सुक था।

25.6.5 द्वितीय विश्व युद्ध

युद्ध को टालने के लिए अंतिम प्रयास किए गए। जापान ने अपने आक्रमण को रोकने के लिए अमेरिका से यह मांग की कि वह चीन से हट जाए और उसे विशाल आर्थिक छूटें प्रदान करें। अमेरिका ने उसकी मांगों को मानने से इंकार कर दिया और। दिसम्बर, 1941 को नागरिक एवं सेवाओं के नेताओं के जापानी साम्राज्यिक सम्मेलन ने अमेरिका पर युद्ध की घोषणा कर दी। 7 दिसम्बर, 1941 को जापान ने पर्ल हार्बर में आश्चर्यचकित आक्रमण कर उस पर विजय प्राप्त कर ली। जापान ने फिलीपीन्स को रौंद डाला और हांगकांग, सिंगापुर तथा इंडोनेशिया पर अधिकार कर लिया। जापानी सेनाएं बर्मा पहुंची और इस पर अधिकार कर लिया तथा जापान भारत पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। 1942 के मध्य तक जापान ने रंगून से प्रशांत महासागर के बीच तक तथा तिमोर से मंगोलिया की मरुभूमि को अपने नियंत्रण में ले लिया था।

इस प्रशांत महासागर के युद्ध में 1945 तक जापान को माल, जान तथा धन का अपार नुकसान हुआ। पर्ल हार्बर की पराजय के बाद अमेरिका ने जापान को कुचल देने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

जनवरी 1943 में मित्र राष्ट्रों के नेतागणों ने कासा ब्लांका में बैठक की और जापान के विरुद्ध अपने प्रयासों को और अधिक मजबूत करने का निर्णय किया। जापान ने शीघ्र ही गिलबर्ट एवं मार्शल द्वीपों में कई सामरिक महत्व के बिंदुओं को खो दिया। मित्र राष्ट्रों ने जापान के विरुद्ध दो शक्तिशाली सैनिक कमानों को लगाया और एक ने जून में मैरियाना में सैयान पर अधिकार कर लिया और मार्च, 1945 में जिमा पर। दूसरी ने फरवरी 1945 में फिलीपीन्स पर अधिकार किया। यहां से दोनों कमानों ने संयुक्त तौर पर जापान के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की और अब उनका लक्ष्य ओकीनावा था, जिस पर उन्होंने जून, 1945 में नियंत्रण कर लिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मित्र सेनाओं ने जापान के दरवाजे पर दस्तक दी और वे ऐसे क्षेत्र में पहुंच गए जहां से जापान पर बमबारी की जा सकती थी। 1944 से मित्र सेनाएं लगातार जापान पर बमबारी कर रही थी और जिनके कारण अनेक जापानी नगरों पर बमबारी की गई और हजारों नागरिक मारे गए तथा अरबों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ।

26 जुलाई, 1945 की पौट्सडेम घोषणा के अनुसार जापान को बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण करने की घोषणा की गई और इसके उपरांत उसकी सेना पर अधिकार, उसका असैन्यीकरण और उसको अपने क्षेत्र को खाली करने का प्रावधान था। 6 और 9 अगस्त को नागासाकी तथा हिरोशिमा पर एटम बमों को गिरा दिया गया और जापान ने अपनी हार को स्वीकार करते हुए 15 अगस्त, 1945 को आत्मसमर्पण कर दिया।

बोध प्रश्न 2

1) प्रसार की विभिन्न विचारधाराओं की लगभग 15 पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) औपनिवेशिक नीति के "एकीकरण संबंधी विचार" की व्याख्या लगभग 10 पंक्तियों में करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) मंचूको की स्थापना पर लगभग पांच पंक्तियों में एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

25.7 सारांश

जापानी साम्राज्यवाद का उत्थान पश्चिमी प्रसार एवं संघर्ष के दौर में हुआ। जापान को पश्चिमी देशों के समक्ष समानता के आधार को स्थापित करने के लिए दोहरे कार्यों को पूरा करना पड़ा। प्रथम उसने असमान संधि व्यवस्था को समाप्त किया और ठीक उसी समय उसने अपने नियंत्रण एवं प्रभुत्व का प्रसार कर इस कार्य को कार्यान्वित किया। पश्चिमी राष्ट्रों ने जापान के सम्मुख चुनौती प्रस्तुत की थी, जापानी नेतृत्व उसके प्रति भलीभांति सजग था और इसके बदले में उसका यह विश्वास था कि जापान की संपन्नता के लिए उसका चीन के बाजारों एवं संसाधनों पर नियंत्रण करना अपरिहार्य था। जापान के चीन में जो हित थे उनके कारण उसका ब्रिटेन एवं अमेरिका के साथ संघर्ष हुआ लेकिन जापान ने भी इन दोनों देशों के साथ अपने व्यापारिक एवं सामाजिक संबंधों को बनाए रखा। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि जापान एवं रूस के हित भी एक समान थे परंतु उनमें इनके लिए संघर्ष हुआ। जापानी नीति निर्माता समय-समय पर अपनी नीतियों की मूलभूत भावना

के विषय में भिन्न-भिन्न मत रखते थे। जापान ने प्रारंभ में ब्रिटेन के साथ गठबंधन किया और वह मुक्त द्वार (Open Door) की नीति में शामिल हो गया। लेकिन 1905 के बाद उसने मंचूरिया में अपने स्वतंत्र प्रभाव क्षेत्र की स्थापना के लिए प्रयास करने शुरू कर दिए। इसके औचित्य को कोरिया की सुरक्षा के नाम पर उचित ठहराया गया तथा कोरिया के अधिग्रहण को जापान की सुरक्षा की आवश्यकताओं के लिए सही बताया गया। तब जापान ने चीन में अपने विशेषाधिकारों में वृद्धि एवं प्रसार किया। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी विचारक थे जिन्होंने पश्चिम की घुसपैठ के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए चीन तथा जापान के सहयोग की बात की। ऐसा करने के लिए जापान को चीन के बाजारों एवं संसाधनों की आवश्यकता थी।

इस तरह से जापानी साम्राज्यवाद किसी एक लक्ष्य से प्रेरित न होकर दो तत्वों पर आधारित था :

i) जापान के उपनिवेशों का एक ऐसा औपचारिक साम्राज्य था, जिनसे उसको खाद्य संसाधन एवं सामरिक लाभ प्राप्त होता था।

ii) जापान उस अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का एक सदस्य था, जिसने उसको चीन में संधि करने के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को प्रदान किया। इन विशेषाधिकारों का प्रसार उसकी आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्रगति के साथ हुआ। ये लाभ जापान के आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान एवं विकास के लिए महत्वपूर्ण थे।

1929 की आर्थिक मंदी के कारण व्यापार में हुए पतन से इस व्यवस्था में गंभीर व्यवधान आ गया और जापान को अपने हितों की सुरक्षा के लिए गतिशील होना पड़ा। इसके द्वारा न केवल सामरिक हितों की रक्षा करना आवश्यक समझा गया बल्कि उन बाजारों एवं क्षेत्रों की सुरक्षा करनी आवश्यक थी जहां से जापान को कच्चा माल एवं संसाधन उपलब्ध होते थे। इस नीति को कार्य रूप देने की जरूरत के कारणवश अंततः वृहत् पूर्वी एशिया सह-संपन्न क्षेत्र का निर्माण हुआ। इस क्षेत्र में जापान, कोरिया, मंचूको, उत्तरी चीन तथा ताइवान आंतरिक औद्योगिक क्षेत्र का निर्माण करते थे जबकि दक्षिण पूर्वी एशिया तथा प्रशांत महासागर के द्वीप समूह एवं चीन का शेष भाग संसाधनों की आपूर्ति के लक्ष्य को पूरा करने वाले थे। जापानी साम्राज्यवाद ने जापान के लिए एक प्रभाव क्षेत्र की स्थापना की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापानियों ने पश्चिमीवाद के विरोध की भावना का उपयोग किया और सावधानीपूर्वक औपनिवेशिक विरोधी आंदोलनों की एशिया मे सहायता की। जापानियों ने फ्रांसीसियों, डचों तथा अंग्रेजों को इस क्षेत्र से बाहर करने में मदद की। चीन में जापान की कार्यवाहियों के कारण चीनी साम्यवादियों की स्थिति मजबूत हुई। युद्ध की समाप्ति पर ताइवान एवं मंचूरिया का चीन में विलय कर दिया गया जबकि 1950 के युद्ध द्वारा कोरिया का विभाजन हो गया। जापानियों का "सभ्य करने का लक्ष्य" संक्षिप्त एवं असफल साबित हुआ। जापान और इस क्षेत्र के देशों के बीच स्थापित कड़वाहट अब भी इस तथ्य का जीवित दृष्टांत है। यह भी एक वास्तविकता है कि दक्षिण कोरिया एवं ताइवान एक समय में जापान के उपनिवेश थे और आज वे सफलतम औद्योगिक देश हैं। और मंचूरिया चीन के भारी उद्योगों का एक बड़ा केंद्र है।

25.8 शब्दावली

सह-संपन्न क्षेत्र : इस शब्द का प्रयोग जापान के द्वारा पश्चिमी शक्तियों के आर्थिक हितों के विरुद्ध एशियाई देशों को जोड़ने के लिए किया गया। यद्यपि बाद में इसका प्रयोग जापान ने स्वयं अपने हितों के लिए किया।

शोवा पुनर्स्थापना : 1926 में शोवा जापान के सम्राट हो गए। उग्र राष्ट्रवादियों तथा सेना के नौजवान अधिकारियों ने अपने विचारों को कार्यरूप देने के लिए शोवा पुनर्स्थापना की वकालत की।

माइक्रोनेशिया : प्रशांत महासागर के द्वीप।

अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग सहयोग : बहुत से बैंकों का गठबंधन।

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जापान के औपचारिक साम्राज्य में ताइवान, कोरिया, सखालिन, क्वांगतुंग के क्षेत्र तथा प्रशांत महासागर के द्वीप शामिल थे। आप अपने उत्तर का आधार उपभाग 25.3.2 को बनाएं।

2) औपनिवेशि के प्रशासन एक उपनिवेश से दूसरे में भिन्न था किंतु कोरिया को सर्वोच्च दर्जा प्राप्त था। आप अपने उत्तर में गृह मंत्रालय से जुड़े ब्यूरो की भूमिका को भी शामिल करें। देखें उपभाग 25.3.3

3) देखें उपभाग 25.3.4

बोध प्रश्न 2

DIKSHANT IAS

1) देखें भाग 25.4

2) आप अपने उत्तर का आधार भाग 25.5 को बनाएं।

Call us @7428092240

3) आपका उत्तर उपभाग 25.6.1 पर आधारित होना चाहिए।

इकाई 26 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् का जापान

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 पृष्ठभूमि
26.3 मित्र राष्ट्रों का कब्जा
26.3.1 राजनीतिक निहितार्थ
26.3.2 आर्थिक निहितार्थ
26.3.3 कब्जे पर जापान की प्रतिक्रियाएं
26.4 उच्च वृद्धि का काल (1552-73)
26.4.1 राजनीतिक घटनाक्रम
26.4.2 आर्थिक वृद्धि
26.5 तेल आघात और उसके पश्चात् की स्थितियां
26.6 सारांश
26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान में होने वाले आर्थिक और राजनीतिक घटनाक्रम के विषय में चर्चा की गयी है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न बातों को समझ सकेंगे:

- युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों के जापान पर कब्जे का स्वरूप,
- जापान के तेज आर्थिक विकास के कारण,
- युद्ध पश्चात् की राजनीतिक व्यवस्था और उदारवादी प्रजातांत्रिक दल (लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी) का प्रभुत्व, और
- जापान के विदेश संबंधों का आधार और अमेरिकी गठबंधन का महत्व।

26.1 प्रस्तावना

जापान ने 14 अगस्त, 1943 को मित्र शक्तियों के आगे घुटने टेक दिये और दो सप्ताहों में मित्र सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति (जिसे स्कैप के नाम से जाना जाता था। SCAP से अभिप्राय था Supreme Commandar of the Allied Porces) जनरल डगलस मैक आर्थर, ने जापान पहुंच कर उसके कब्जे का काम शुरू कर दिया। यह कब्जे की कार्यवाही अप्रैल 1952 में सान फ्रांसिस्को संधि के प्रभावी होने तक चली। लेकिन कब्जा करने वाली प्रभुत्वशाली शक्ति अमेरिका ही रहा। उसी ने जापान की राजनीतिक और आर्थिक नीतियों का निर्धारण किया। जनरल आर्थर के माध्यम से जापान को सुधारने और उसे फिर एक प्रसारवादी ताकत बनने से रोकने के लिये कुछ उपाय किये गये। इस इकाई में न केवल जापान के समर्पण, बल्कि इस पर मित्र सेनाओं के कब्जे से संबंधी विभिन्न मसलों पर भी गौर किया गया है। जापान की प्रतिक्रिया का भी विवेचन किया गया है। जापान के आर्थिक

विकास का आकलन करने के लिये हमने अपने विषय से आगे के काल को भी ले लिया है। ऐसा हमने इस उद्देश्य से किया है जिससे उच्च आर्थिक वृद्धि के काल (1952-73) पर हमारे विषय के काल के प्रभाव को और उसके बाद उठने वाली समस्याओं को समझा जा सके। दरअसल, यह जापानी इतिहास पर हमारे पाठ्यक्रम की अंतिम इकाई है। जिसमें अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य में जापान की भावी भूमिका पर भी टिप्पणी की गयी है। 1945 में जापान युद्ध के हाथों ध्वस्त हो गया था और उसकी अर्थव्यवस्था और उसका समाज जर्जर हो गये थे। भविष्य अंधकारमय और निराशाजनक दिखायी देता था। फिर भी, 1971 तक स्थिति यह थी कि रिचर्ड हैलोरन न्यू यार्क टाइम्स में यह लिख रहा था कि जापान "एशिया का सबसे बढ़िया वस्त्र पहनने वाला, सबसे लंबी आयु वाला, और सबसे संपन्न राष्ट्र" था।

26.2 पृष्ठभूमि

यह बदलाव कैसे आया और किन शक्तियों ने इसमें मदद की, यह एक ऐसा सवाल है जिस पर न केवल शैक्षिक पत्रिकाओं में, बल्कि लोकप्रिय कृतियों, पत्रिकाओं और अखबारों में भी बहस चली है। जापान की बढ़ती औद्योगिक शक्ति का आभास पूरी दुनिया ही करती रही है, इसलिये लोग एक एशियाई देश की सफलता को लेकर असमंजस में रहे और उन्होंने इसकी अनेक ढंग से व्याख्या करने का प्रयास किया है:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- कुछ का तर्क है कि यह जापान की कन्फ्युशसी विरासत और "पारंपरिक" मूल्यों पर उसका जोर था जिसके चलते उसकी सामाजिक व्यवस्था सुरक्षित रही और उसके लिये राष्ट्रीय वृद्धि के लिये आवश्यक नीतियां अपनाना संभव हुआ।
- कुछ लोग युद्ध के पश्चात् जापान के पुनर्निर्माण के लिये अमेरिका की भारी सहायता और कोरियाई युद्ध और वियतनामी युद्ध को जापानी अर्थव्यवस्था को उछाल देने वाला और उसकी वृद्धि को बढ़ाने वाला मानते हैं।
- कुछ समीक्षकों के अनुसार आर्थिक चमत्कार संभव होने का कारण जापान की वे भीतरी प्रतिबंधकारी नीतियां थीं जिन्होंने सामाजिक सुविधाओं को नीचे स्तरों पर रखा।
- यह भी कहा जाता है कि जापान ने एक आक्रामक आर्थिक नीति अपनायी। अपने बाजार को अत्यधित सुरक्षित रखते हुए और अपने उद्योग को आर्थिक सहायता देते हुए, उसके लिये एक नियोजित ढंग से होड़ करना संभव हुआ।
- कुछ विद्वान जापान को एक उन्नत विकसित देश के स्तर पर लाने की दिशा में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय (एम आई टी आई) की भूमिका को निर्णायक मानते हैं।

जापान के विकास का श्रेय किसी एक कारक को देना गलत होगा। और, जापान की सफलता के रहस्यों को खोलने के लिये किसी एक "कुंजी" की तलाश निरर्थक है। क्योंकि, ऐसा करते समय हम इस सच्चाई को नजरअंदाज कर जाते हैं कि जापानी वृद्धि कुछ "अप्रत्याशित" और "अचानक" के अर्थ में "चमत्कार" नहीं था जैसा कि हम इससे पहले की इकाइयों में देख चुके हैं, जापानी सफलता का मूल इसके इतिहास में कम से कम सत्रहवीं शताब्दी तक जाता है। दूसरे शब्दों में जापान ने एक लंबे अरसे में अपनी संस्थाओं और कौशलों का विकास किया है। युद्ध के कौशलों के बाहरी परिणामों—कारखानों और इमारतों—को नष्ट कर दिया, और उसकी कीमती जिंदगियां खत्म हो गयी। लेकिन, प्रयासों और असरकारी नीतियों के जरिये जापान ने उन्हीं कौशलों के बूते पर पुनर्निर्माण कर लिया जो उसके पास बचे रह गये थे। जापानी लोग कोई नयी शुरुआत नहीं कर रहे थे, बल्कि पुनर्निर्माण कर रहे थे।

युद्ध पश्चात् के काल को बहुत स्वाभाविक तौर पर मित्र राष्ट्रों के कब्ज़े के साढ़े छह वर्षों (1845-1952) में, और फिर 1952-1973 के उस काल में बांटा जा सकता है जब जापान ने अपनी अर्थव्यवस्था और समाज के पुनर्निर्माण का काम किया और वह एक समृद्ध और स्थिर राष्ट्र के रूप में उभरा। इस दौर का समापन उस तेल संकट के साथ होता है जिसके चलते जापान समायोजन करने को बाध्य हो गया। 1973 से आज तक की स्थिति यह है कि जापान न केवल एक शक्तिशाली आर्थिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है, बल्कि उसने एक राजनीतिक भूमिका भी निभानी शुरू कर दी है। यह और बात है कि वह यह काम बहुत सीमित तौर पर और संकोच के साथ कर रहा है।

जापान की विदेश नीति का आधार अमेरिकी गठबंधन रहा है जिसके कारण जापान की सुरक्षा सुनिश्चित होती है। इसी के कारण जापान के लिये यह संभव हुआ है कि वह अपनी शक्ति को आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में लगा सके। आज इन में से कुछ मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगाया जा रहा है। क्योंकि जापान की इच्छा विश्व के मामलों में कहीं अधिक सक्रिय और स्वतंत्र भूमिका निभाने की है, और अमेरिका भी, आर्थिक कारणों से यह चाहता है कि जापान प्रतिरक्षा के व्यय का अधिकांश भार स्वयं वहन करे।

26.3 मित्र राष्ट्रों का कब्ज़ा

जापान पर मित्र राष्ट्रों का कब्ज़ा 28 जुलाई 1945 की पौट्सडेम घोषणा के प्रावधानों के तहत हुआ। फिर भी, वास्तव में कब्ज़े का काम अमेरिका ने किया। अंग्रेज़ी और अन्य राष्ट्र कुल देशों की सेनाओं की एक छोटी सी टुकड़ी ही इसमें शामिल थी। जनरल डगलस मेक आर्थर को अमेरिकी राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन ने मित्र राष्ट्रों का सर्वोच्च सेनापति (स्कैप) नियुक्त किया था। लेकिन, वास्तविकता यह थी कि मैक आर्थर जापान का शासक बन गया था। वैसे यह जापानी सरकार के जरिये ही हुआ था जो भंग नहीं हुई थी। जापानी विदेश मंत्रालय ने एक केंद्रीय संपर्क कार्यालय की स्थापना की जिसका काम स्कैप के निदेशों को निपटाना और संसाधन करना था। इसके कारण जापानियों के लिये स्कैप की नीति को संशोधित करना, या बदलना, यहां तक कि उसके क्रियान्वयन में विलम्ब करना भी संभव हो गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस नीति के बुनियादी प्रारूप का निर्धारण जापान के लिये अमेरिका की शुरूआती आत्म-समर्पण पश्चात् की नीति में हो गया था, जिसकी घोषणा 29 अगस्त, 1945 को की गयी। इस नीति के दो प्रमुख उद्देश्य थे:

एक, उसकी इच्छा वह सुनिश्चित करने की थी कि जापान फिर कभी अमेरिका या विश्व की सुरक्षा के लिये खतरा न बन सके।

दो, एक जनतांत्रिक और जिम्मेदार सरकार की स्थापना करना।

इन उद्देश्यों को पूरा करने के वास्ते अमेरिका सैन्यवाद और विस्तारवाद के उस ढांचे को नष्ट करना चाहता था जिसके कारण जापान ने अपने आपको युद्ध में झोंका और अपनी जनता का ही दमन किया। अमेरिका यह महसूस करता था कि बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों और सेना का व्यवस्था पर आवश्यकता से अधिक नियंत्रण था, और उन्होंने सरकार के नियंत्रण के जरिये एक ऐसी सम्राट आधारित विचारधारा का प्रसार कर दिया था जिससे देश की जनता भीरू और दब्बू बन गयी थी। इसलिये यह आवश्यक था कि इस नीति का पालन करने वाले लोगों को शुद्ध किया जाये, और व्यवस्था को मुक्त और अधिक जनतांत्रिक और कम केंद्रित बनाया जाये।

बदलाव का आधार बनाने के लिये कब्ज़ा करने वाली (या, अधिपत्य) सेनाओं ने सफाई करना शुरू किया और उन्होंने पहले की सरकार के अधिकारियों को शुद्ध किया और कई

को समाप्त कर दिया गया। स्कैप के पहले निर्देश में यह आदेश दिया गया कि तमाम जापानी सेनाओं की लामबंदी समाप्त की जाये।

अक्टूबर, 1945 तक विशेष राजनीतिक पुलिस और सार्वजनिक शांति रख-रखाव कानून को समाप्त कर दिया गया। न्यूरेनबर्ग की तरह युद्ध अपराधियों पर मुकद्मा चलाने के लिये गठित, सुदूर पूर्व के अंतर्राष्ट्रीय सैनिक ट्रिब्यूनल (अदालत) ने लगभग छह हजार पर मुकद्मा चलाया और 920 को सजा सुनायी। 200,000 से अधिक को, पिछली सरकार के अपराधों में उसका साथी होने के कारण, शुद्ध किया गया। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि चोटी के जिन 28 नेताओं पर मुकद्मा चलाया गया उन पर अभियोग लगाने के लिये हिरोहितो के जन्मदिन 29 अप्रैल 1946 को चुना गया, और उनके मृत्यु दंड को पूरा करने के लिये उसके पुत्र (आज के सम्राट) अकीहितो के जन्मदिन 23 दिसम्बर को चुना गया।

26.3.1 राजनीतिक निहितार्थ

पहली समस्या सम्राट की स्थिति की थी। इस बात पर विवाद था कि उसे युद्ध के लिये उत्तरदायी ठहराया जाये या नहीं। अनेक जापानी नेताओं पर तो मुकद्मा चलाया गया और उन्हें मृत्यु दंड भी दिया गया, लेकिन सम्राट पर कभी मुकद्मा नहीं चला। मित्र राष्ट्रों के अनेक संगठन चाहते थे कि सम्राट हिरोहितो पर मुकद्मा चले। वे सम्राट को मित्र राष्ट्रों के हजारों सैनिकों की मृत्यु और उनके साथ हुए दुर्व्यवहार के लिये जिम्मेवार मानते थे। जापान के वामपंथी भी यह चाहते थे कि जापान को फासीवाद की ओर ले जाने वाली सम्राट व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाये।

जापान के रूढ़िवादी और जनरल मैक आर्थर भी, यह चाहते थे कि सम्राट को बनाये रखा जाये। उनका मानना था कि उसके खिलाफ कोई कार्यवाही करने से सामाजिक अव्यवस्था की स्थिति बन सकती थी। फिर भी, सम्राट को अपनी दिव्यता त्याग देने के लिये बाध्य कर दिया गया। जापान से सम्राट को सूर्य देवी का सीधा वंशज होने के मिथक को शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से प्रसारित किया गया था और उसे जापान के अनूठे होने का आधार बनाया गया था। हिरोहितो ने, 1946 के नव वर्ष दिवस पर एक रेडियो प्रसारण में, यह कहकर अपनी दिव्यता का त्याग किया कि जिन बंधनों ने उसे उसकी जनता के साथ जोड़ा हुआ था उनका आधार ''आपसी भरोसा प्रेम और आदर था। वे केवल दंत कथाओं या अंधविश्वास पर नहीं टिके थे।''

अधिपत्य (या कब्जा करने वाले) अधिकारियों ने जो अगला कदम उठाया, वह था नये संविधान का प्रारूप तैयार करना। इस प्रक्रिया में अनेक प्रारूपों का निर्माण शामिल था। पहला प्रारूप एक राजनयिक शिदेहारा किजुरो, की अध्यक्षता वाली जापानी सरकार की एक समिति ने तैयार किया। लेकिन मैक आर्थर के विचार में प्रारूप में अत्यधिक सतर्कता बरती गयी थी। उसने अपने सदस्यों से ही एक प्रारूप तैयार करवाया जिसमें एक जनतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना करने के लिये आवश्यक स्थितियों की मांग को पूरा करने का प्रयास किया गया। जनरल मुख्यालय के सरकारी अनुभाग ने 1946 के प्रारंभ में जो प्रारूप तैयार करके दिया उसे नवम्बर 1946 में लागू किया गया।

नये संविधान ने सम्राट के हाथों से प्रभुसत्ता लेकर जनता के हाथों में सौंप दी। सम्राट ''जनता की एकता और राज्य का प्रतीक'' बन गया। मेजी संविधान के सिद्धांतों से यह बहुत दूरगामी बदलाव था। डायट में दो सदन ही बने रहे, लेकिन पहले की अभिजात सभा को एक निर्वाचित पार्षद सभा में बदल दिया गया। मुख्य विधायी अधिकार निम्न प्रतिनिधि सभा के पास थे। संसद सामूहिक रूप से डायट के प्रति उत्तरदायी थी। न्यायपालिका संवैधानिक दृष्टि से स्वाधीन हो गयी। मेजी संविधान से भिन्न जिन अन्य प्रमुख बातों को लिया गया, वे थीं:

i) महिलाओं को मतदान का अधिकार और पुरुषों के साथ कानूनी समानता दी गयी।

ii)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) सबसे मौलिक या क्रांतिकारी परिवर्तन अनुच्छेद 9 के रूप में था जिसमें जापान के युद्ध छेड़ने के अधिकार को त्याग दिया गया।

इस अनुच्छेद में लिखा है कि "जापानी लोग एक प्रभुसत्तात्मक अधिकार के रूप में युद्ध का और अंतरराष्ट्रीय झगड़े निपटाने के साधन के रूप में बल प्रयोग या बल प्रयोग की धमकी का हमेशा के लिये त्याग करते हैं"। इसमें आगे लिखा है कि थल, नौ और वायु सेनाओं को कभी नहीं रखा जायेगा और राज्य के झगड़े के अधिकार को मान्यता नहीं दी जायेगी। इस अनुच्छेद के दूरगामी प्रभाव हुए। वैसे इसमें संशोधन भी किया गया, क्योंकि अमेरिका की नीति के कारण जापान को अपनी सैनिक क्षमता का विकास करना पड़ा।

नये राजनीतिक ढांचे में, जनता पर निकट का नियंत्रण रखने वाले गृह मंत्रालय और पुलिस को छोटी-छोटी इकाइयों में बांट दिया गया और उनके अधिकारों में कमी कर दी गयी। श्रम कानूनों में मजदूरों के संगठित होने और सामूहिक कार्यवाही करने के अधिकार को सुनिश्चित किया गया, और जिन साम्यवादियों या अन्य प्रगतिशील तत्वों को सरकार की नीतियों का विरोध करने के कारण जेल में डाल दिया गया था, उन्हें रिहा कर दिया गया। युद्ध के पश्चात् का पहला आम चुनाव अप्रैल 1946 में संपन्न हुआ। उस समय तक मंत्रिमंडलों का गठन चुनावों के आधार पर नहीं, बल्कि नियुक्ति के आधार पर हुआ था। आम चुनावों ने जनता द्वारा नये संविधान की स्वीकृति का काम किया। फिर भी, कोई एक दल स्पष्ट बहुमत लेकर नहीं निकला, और प्रधानमंत्री बनने वाला योशिदा शिगेस एक अस्थिर सरकार का नेता रहा।

जिस कुलीनवादी शिक्षा व्यवस्था को अधिपत्य शक्तियों ने अधिकारियों के प्रति अंध-आज्ञाकारिता और समर्पण का भाव पैदा करने वाली व्यवस्था के रूप में देखा था, उसमें आमूल-चूल परिवर्तन करने की मांग हुई। यह तर्क दिया गया कि सम्राट के प्रति श्रद्धा और जापानियों के अनूठे होने के विचारों को अत्यधिक नियंत्रित शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से फैलाया गया था। अधिपत्य (या, कब्जा करने वाली) शक्तियों ने शिक्षा मंत्रालय के अधिकारों को कम कर दिया और अमेरिकी व्यवस्था पर आधारित एक व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था में छह वर्ष की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और उसके बाद क्रमशः तीन वर्ष की माध्यमिक शिक्षा और तीन वर्ष की उच्च शिक्षा और फिर चार वर्ष की विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का प्रावधान रखा गया। सह-शिक्षा को लागू किया गया। शिक्षा का विकेंद्रीकरण और स्थानीय परिषदों का गठन व्यवस्था के जनतंत्रीकरण में निर्णायक रहे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26.3.2 आर्थिक निहितार्थ

अधिपत्य शक्तियों ने अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। जिस समय जापान ने आत्म-समर्पण किया, उस समय तक उसे लगभग 20 प्रतिशत संसाधनों की क्षति हो चुकी थी। औद्योगिक उपकरणों की तो भारी क्षति हुई और कई कारखाने भी नष्ट कर दिये गये, लेकिन भारी और रासायनिक उद्योग की काफी उत्पादन क्षमता बरकरार रही। युद्ध सामग्री के उत्पादन की ओर अर्थव्यवस्था को मोड़ दिये जाने के कारण नागरिक (या, गैर-सैनिक) उपयोग के सामान की भारी कमी हो गयी। शहरों में खाद्य सामग्री की कमी और मुद्रास्फीति के कारण लोगों के लिये जीना कठिन हो गया, वैसे भुखमरी उस तरह की नहीं थी जैसी कि जापानी शासन के अधीन फिलीपीन या फिर चीन ने देखी थी।

प्रारंभ में स्कैप ने दंड देने वाले की भूमिका अदा की। यह माना गया कि जापान की औद्योगिक क्षमता इसकी आक्रामकता के लिये जिम्मेवार थी, इसलिये उसे एशिया का प्रमुख औद्योगिक देश बनाने वाली इस क्षमता को कम किया जाना चाहिये। इस उद्देश्य से, **जैबात्सू** को भंग कर दिया गया और विकेंद्रीकरण और जनतंत्र लागू करने के उद्देश्य से व्यापक भूमि सुधार किये गये।

जैबात्सू ऐसे बड़े-बड़े गुट थे जो पिन से लेकर विमान तक से संबंधित विविध प्रकार के व्यापारों से जुड़े थे। प्रमुख गुट थे:—**मित्सुई मित्सुबिशी, सुमितोमो** और **यासुदा** प्रत्येक गुट के संगठन का केन्द्र एक नियंत्रक कंपनी होती थी और अधिकांश नियंत्रण अब भी परिवार

कंपनियों को भंग कर दिया। भूमि सुधार ने जापान के गांवों में संकट की स्थिति टालने में मदद की, जहां लौटने वाले सिपाहियों के कारण आबादी बढ़ गयी थी, जिसके परिणामस्वरूप उन छोटे किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ गया जिनकी संख्या ग्रामीण आबादी का सत्तर प्रतिशत थी। भूमि-परिसीमन और बड़े भूस्वामियों से भूमि जब्त किये जाने और कृषि सहकारिताओं के गठन ने ग्रामीण क्षेत्रों को स्थिरता प्रदान करने में मदद की।

स्कैप की नीति में बदलाव आना तब शुरू हुआ जब 1946 में जापान को खाद्य सहायता दी गयी। 1948 के मध्य तक लक्ष्य स्पष्ट तौर पर एक मजबूत और आत्मनिर्भर जापान के पुनर्निर्माण का हो गया था। युद्ध समाप्त होने से भी पहले, कई अमेरिकी नियोजक यह देख चुके थे कि चीन में साम्यवाद की उभरती शक्ति के विरुद्ध जापान को एक मित्र देश के रूप में लिया जा सकता था। उन्हें डर था कि चीन सोवियत संघ के साथ गठबंधन कर सकता था। जापान में भी कई नेताओं को इस बात का डर था कि युद्ध में हार के कारण सामाजिक क्रांति हो सकती थी, और उन्होंने जिस तेजी के साथ आत्म-समर्पण किया उसके पीछे एक कारण यह भी था।

इस दिशा में परिवर्तन को अक्सर "उल्टा मार्ग" कहा जाता है, और 1953 में कोरियाई युद्ध छिड़ने के बाद यह स्पष्ट भी हो गया। अगस्त 1950 में, एक राष्ट्रीय पुलिस आरक्षी का गठन किया गया और 1954 तक एक आत्म-रक्षा अभिकरण और आत्म रक्षा बलों का गठन कर लिया गया था। सितम्बर 1951 की सान फ्रांसिस्को संधि में एक द्विपक्षीय आपसी सुरक्षा संधि संपन्न हुई जिसमें यह स्पष्ट कर दिया गया कि जापान अपनी प्रतिरक्षा की अधिकाधिक जिम्मेदारी अपने ऊपर लेगा। इसी तरह अधिपत्य शक्तियों, और जापान के स्वाधीन हो जाने के बाद नयी सरकार दोनों ने कई और परिवर्तन किये। इस तरह "उल्टे मार्ग" का काल क्षेत्र आधिपत्य काल और नयी सरकार के शासन के प्रारंभिक वर्षों तक जाता है। बदले हुए उद्देश्यों के कारण जापान को अमेरिकी पूंजी, प्रौद्योगिकी और बाजार तक पहुंच का फायदा मिला।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26.3.3 कब्ज़े पर जापान की प्रतिक्रियाएं

कब्ज़े को लेकर जापान की प्रतिक्रियाएं वैचारिक न होकर व्यावहारिक आवश्यकता से प्रेरित थीं। जापान में प्रवेश के समय अमेरिका सेनाओं ने प्रतिरोध की अपेक्षा की थी, लेकिन अपना आम स्वागत देखकर वे चकित रह गये। इसका कारण यह था कि अधिकांश जापानी युद्ध से तंग आ चुके थे। इसके अतिरिक्त, जन संचार माध्यमों पर स्कैप का नियंत्रण था जो बिना किसी विवाद के अपने दृष्टिकोणों और विचारों का प्रसार कर सकती थीं। अंतिम बात यह कि, स्कैप ने जो सुधार किये उससे जापानी समाज के व्यापक वर्गों को फायदा पहुंचा। उन्हें ऐसे अधिकार दिये गये जिनसे उन्हें अब तक वंचित रखा गया था। उदाहरण के लिये, महिलाओं को जो नये अधिकार दिये गये वे किसी आंदोलन की देन नहीं थे। वस्तुतः सर्वेक्षणों के अनुसार, अधिकांश महिलाओं की इन अधिकारों में दिलचस्पी नहीं थी।

इसलिये, कुछ विद्वानों ने अमेरिकी आधिपत्य को जापान में जनतंत्र की शुरुआत माना है। उन्हें इसमें जापानी इतिहास के प्रवाह में एक तोड़ दिखायी देता है, जब अत्यधिक नये विचारों और प्रथाओं को जबरन जापानी समाज में लागू किया गया। आज, अनेक जापानी विद्वान युद्ध पूर्व के घटनाक्रमों का पुनरावलोकन कर यह तर्क दे रहे हैं कि आधिपत्य सुधारों के लिये आधार पहले ही तैयार किया जा रहा था, और जापानी जनतंत्र के मूल की तलाश के लिये हमें मेजी काल के लोकप्रिय आंदोलनों तक लौटना चाहिये। इन भिन्न विचारों के बावजूद आधिपत्य काल एक ऐसे महत्वपूर्ण अंतराल का द्योतक है जिसके दौरान आंतरिक बदलावों की शुरुआत की गयी। जापान का घनिष्ठ संबंध अमेरिकी विदेश नीति के उद्देश्यों से था। अंत में, यह उल्लेख करना होगा कि आधिपत्य के दौरान जापान के आंतरिक बदलावों की शुरुआत की गयी।

राजनीतिक परिदृश्य में दो अत्यधिक शक्तिशाली विभूतियां उभर कर सामने आयीं। एक था–जनरल डगलस मैं आर्थर जिसने आधिपत्य नीतियों को गढ़ने और निर्देशित करने में

संविधान के तहत चुना जाने वाला पहला प्रधानमंत्री बना। उसने युद्धोत्तर जापान के ढांचे के लिये आधार तैयार किया। प्रधानमंत्री बनने के समय योशिदा साठ वर्ष का था। वह 1930 के दशक में इंग्लैंड में जापान का राजदूत रह चुका था। वैसे तो उसने चीन में जापान की कार्यवाहियों का समर्थन किया था, लेकिन जर्मनी के साथ गठबंधन का उसने विरोध किया था। रूढ़िवादी योशिदा ने देख लिया था कि जापान का भविष्य अमेरिका के साथ गठबंधन और आर्थिक विकास पर ध्यान केंद्रित करने में निहित था। ये वे दो स्तंभ थे जिन पर जापान के विकास का ढांचा खड़ा किया गया।

बोध प्रश्न 1

1) लगभग 15 पंक्तियों में आधिपत्य करने वाले अमेरिकी अधिकारियों के लक्ष्यों का वर्णन कीजिये।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) लगभग 10 पंक्तियों में आधिपत्य के आर्थिक निहितार्थ की रूपरेखा स्पष्ट कीजिये।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) लगभग 10 पंक्तियों में आधिपत्य पर जापान की प्रतिक्रिया पर टिप्पणी लिखिये।

....
....
....

26.4 उच्च वृद्धि का काल (1952-1973)

जैसा कि हमने प्रस्तावना में कहा था, जापान के विकास को पूरी तौर पर समझने के लिये, हम इस भाग में प्रमुख आर्थिक और राजनीतिक घटनाक्रमों की चर्चा करेंगे।

26.4.1 राजनीतिक घटनाक्रम

जिस काल में जापान ने अपनी राजनीतिक स्वाधीनता को फिर से हासिल किया, उसमें आर्थिक वृद्धि के एकाकी प्रयास देखने में आये। शुरू के वर्ष वास्तव में पहले के दौर का ही विस्तार थे, लेकिन 1955 तक युद्ध पश्चात् की व्यवस्था की बुनियादी रूपरेखा तैयार हो गयी थी। 1955 में समाजवादी पार्टी की दोनों शाखाओं का अक्टूबर में विलय होकर जापान समाजवादी पार्टी बन गयी और नवम्बर में दो रूढ़िवादी दलों का विलय होकर उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी का गठन हो गया। आगे चलकर, युद्ध पश्चात् के जापान की राजनीति में इसी उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी का बोलबाला रहा। ये दोनों पार्टियां उस व्यवस्था का अंग बन गयीं जिसे डेढ़ पार्टी की व्यवस्था कहा जाता था, क्योंकि समाजवादी सबसे बड़ा प्रतिपक्ष होते हुए भी इतना बड़ा पक्ष नहीं था कि राज्यतंत्र को प्रभावित कर सकता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी चुनावी प्रक्रिया पर हावी रही और छठवें प्रतिनिधि सभा आम चुनावों में जीत कर वह सत्ता में आ गयी। समाजवादी विपक्ष में आये, और जो दक्षिण और वाम गुट एक हुए थे उनमें प्रायः असहमति रहती थी। 1955 में उनमें विभाजन हो गया, जिसमें दक्षिणपंथी गुट ने जनतांत्रिक समाजवादी पार्टी बना ली।

युद्ध समाप्त होने के बाद के वर्षों में नये धार्मिक पंथों का उदय हुआ। इनमें से अनेक की स्थापना युद्ध से पहले के वर्षों मे हुई थी, लेकिन वे लोकप्रिय युद्ध पश्चात् के उन कठिनाइयों वाले वर्षों में ही हुए जब लोगों ने उसके उपदेश में सांत्वना और शांति ढूंढनी चाही। इनमें से **सोक्कागक्काई** या मूल्य सर्जक समाज अपनी व्युत्पत्ति तेहरवीं शताब्दी के बौद्ध पुरोहित निचीरेन से बताता था। निचीरेन ने एक राष्ट्रवादी बौद्ध पंथ की स्थापना की थी और वह इस बात के लिये विख्यात था कि उसने अपनी प्रार्थना के बल पर तूफान उठा कर आक्रमणकारी मंगोल बेड़े को नष्ट कर दिया था। इस दैवीय हवा या **कामीकाज़े** शब्द का उपयोग युद्ध के दौरान आत्मघाती बमवर्षकों के लिये भी किया गया था। बौद्ध संगठन **सोक्कागक्काई** बहुत प्रभावशाली हो गया और 1964 में उसकी सहायता से एक राजनीतिक दल का गठन हुआ। कोमेतो अथवा स्वच्छ शासन पार्टी कुछ समय के लिये एक बड़ी शक्ति बन गयी। वैसे इसकी शक्ति शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित थी। जापान साम्यवादी पार्टी पर युद्ध के पहले वाली सरकार ने पाबंदी लगा दी थी, लेकिन अमेरिकी आधिपत्य ने उसे सक्रिय होने की अनुमति दे दी, और इस पूरे दौर में इसे डायट में अल्पमत का स्तर मिला रहा। लेकिन इसका दैनिक पार्टी अखबार **अकाहाता** (लाल ध्वज) खूब बिकता था।

विशेषकर इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि शुरुआती दौर में गठबंधन बदलते रहे और विवाद खड़े होते रहे, जिनका प्रायः यह परिणाम हुआ कि डायट के अंदर अव्यवस्था

हो गयी और बाहर प्रदर्शन हुए। सरकार ने अपनी शक्ति बढ़ाने और अपने नियंत्रण का विस्तार करने का प्रयास किया। शिक्षा मंत्रालय ने स्कूल अध्यापकों और पाठ्य-पुस्तकों पर अपने निरीक्षण के अधिकारों को और बढ़ा लिया। पुलिस के अधिकार बढ़ा दिये गये और आत्म-रक्षा बलों में भी लगातार वृद्धि हो रही थी। विवाद का एक प्रमुख मुद्दा 1951 की अमेरिका-जापान परस्पर सुरक्षा संधि थी। इस संधि की 1960 में समीक्षा होनी थी, और इसके संशोधन को लेकर एक बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया।

इस संधि पर 1951 में योशिदा ने हस्ताक्षर किये थे, जिसमें उसने अमेरिका को जापान में व्यापक विशेषाधिकार दे दिये थे। अमेरिका ने जापान में अड्डे बना लिये और ओकिनावा पर आधिपत्य कर लिया था। समाजवादियों और दूसरे गुटों ने इसे "असमान संधि" बताते हुए इसका विरोध किया। समाजवादी पार्टी में दोफाड़ इस संधि का समर्थन करने के सवाल पर हुआ। समाजवादियों का तर्क था कि इस संधि के चलते जापानियों को अग्रिम पंक्ति की सेनाओं के रूप में काम करना पड़ेगा और अगर अमेरिका ने कोई दूसरी जंग लड़ी तो उसमें जापान को भी घसीटा जायेगा। अमेरिका कोरिया में यह कर ही चुका था।

इस संधि के संशोधन से पहले व्यापक प्रदर्शन हुए। 19 मई 1960 को डायट के विपक्षी सदस्यों ने सदन के अध्यक्ष (स्पीकर) को पकड़ लिया और उसे डायट में भवन के तलघट में बंद रखा। इससे झगड़े हो गये और संशोधन का काम विपक्षी सदस्यों की अनुपस्थिति में ही कर दिया गया। इससे जनता भड़क गयी और कुछ और प्रदर्शन हुए जिनका नेतृत्व छात्र संघों के परिसंघ **जेंगाकुरेन** जैसे उग्र छात्र संगठनों ने किया। सबसे बड़ा प्रदर्शन 15 जून को हुआ जिसमें डायट को घेर लिया गया और झड़प में टोक्यो विश्वविद्यालय की एक युवा छात्रा मारी गयी। संधि 23 जून को प्रभावी हुई और प्रधानमंत्री किशी नोबुसुके ने अगले महीने जुलाई में त्यागपत्र दे दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सुरक्षा संधि विरोधी प्रदर्शन और उनकी विफलता युद्धोत्तर काल की महत्वपूर्ण घटना थी। अनेक विद्वान इन्हें भागीदारी जनतंत्र का प्रमाण मानते हैं। प्रदर्शन होने का कारण संधि का मसौदा ही नहीं थी, बल्कि किशी का इस स्थिति से निपटने का तरीका भी रहा। अनेक लोगों का यह मानना था कि सत्तारूढ़ एल डी पी ने जो ज़ोर ज़ुल्म किये उनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। लाखों लोगों ने इसलिये आम चुनावों की मांग करने वाली याचिका पर हस्ताक्षर किये। लेकिन, यह भी याद रखना चाहिये कि 1962 में एस डी एफ ने जमीन से हवा में मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र हासिल कर लिये थे, और जब अमेरिका ने यह वक्तव्य दिया कि एक नाभिकीय जलपोत जापान भेजा जायेगा तो, इसे लेकर कोई प्रदर्शन नहीं हुआ। जापान उच्च वृद्धि के काल में अपने पांव जमा रहा था और अपनी शक्तियों को विकास के कार्यों में लगा रहा था।

26.4.2 आर्थिक वृद्धि

सन् 1854 से लेकर 1971 तक जापान ने दस प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि की, जिसे "चमत्कार" बताया गया। इस दौरान औद्योगिक सुविधाएं कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 36 प्रतिशत तक बढ़ गयीं, और जापान का वैसे ही तेजी से रूपांतरण हुआ जैसे मेजी पुनरुत्थान के बाद के वर्षों में हुआ था। बहुत से लोगों के मन में जो सबसे पहला सवाल उठता है वह यह है कि जापान ने यह सब हासिल कैसे किया। क्या यह चमत्कारी वृद्धि सुविचारित और सुनिष्पादित नीतियों का ही एक अंग थी? अनेक विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि जापान को ये परिणाम उसकी सोच-विचार कर अपनायी गयी नीतियों के कारण हासिल हुए। उदाहरण के लिये इतिहासकार चामर्स जॉनसन ने जापान के आर्थिक विकास को दिशा और नेतृत्व देने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले शक्तिशाली संगठन (MITI) की भूमिका के विषय में लिखा है। अनेक कृतियों अथवा लेखों में ध्यान का केन्द्र सरकार-व्यापार-उद्योग के बीच के घनिष्ठ संबंध रहे हैं, और तर्क यह दिया गया है कि इसी घनिष्ठता के साथ काम करने के कारण आर्थिक लक्ष्यों पर और इन आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक नीतियों पर सहमति अथवा एकमत बनाना संभव हुआ।

युद्ध पश्चात् के जापान में आर्थिक उछाल प्रधानमंत्री इकेदा के "आय दुगनी करने" की

का प्रतीक बनी। 1960 तक जापान का कुल राष्ट्रीय उत्पाद दुनिया में पांचवें स्थान पर आ गया था, और 1968 तक उसका स्थान अमेरिका के बाद दूसरा हो गया था। जापानी अर्थव्यवस्था को सरकारी नियंत्रणों और नेतृत्व में रखा गया, लेकिन प्रतिस्पर्धा को हतोत्साहित नहीं किया गया, बल्कि वह जबरदस्त थी और सरकार के दृष्टिकोण में भी लोच रही।

इस्पात उद्योग की ओर 1950 के दशक में विशेष ध्यान दिया गया। उसका विस्तार करने के लिये ऋणों और कोष की व्यवस्था की गयी। इसके परिणामस्वरूप 1970 के दशक के मध्य तक जापान उत्पादन के मामलों में पश्चिम की इस्पात फर्मों से आगे निकल चुका था। MITI ने प्रारंभ में तो कड़ा नियंत्रण रखा और लक्ष्य निर्धारित किये, लेकिन जब इस्पात फर्मों की वृद्धि हो चली तो, उसने उनके नियोजन का काम उन्हीं पर छोड़ दिया। लेकिन "प्रशासनिक नेतृत्व" का काम उसने अपने पास ही रखा। इस नेतृत्व को कानूनी समर्थन नहीं था, लेकिन कंपनियों के लिये भी इस नेतृत्व को नहीं मानना असंभव नहीं तो अत्यधिक कठिन तो था ही। ऐसे ही कदम पोत-निर्माण जैसे उद्योगों में भी उठाये गये।

जापान की प्रारंभिक सफलता ने इसके व्यापारी सहभागियों के लिये समस्याएं खड़ी कर दीं। इन व्यापारियों को सीमित बाजारों और सस्ते निर्यातों को लेकर शिकायत हो गयी। जापानी वस्त्र, जूते आदि यूरोपीय और अमेरिकी बाजारों में अपनी पैठ कर रहे थे। जापान ने विदेशी फर्मों को प्रवेश की कुछ अनुमति तो दी, लेकिन जापानी कंपनियों के विदेशी स्वामित्व को 25 प्रतिशत तक सीमित कर दिया। बुनियादी तौर पर यह नीति अत्यधिक प्रतिबंध लगाने वाली रही, और 1980 के दशक में भी विदेशी स्वामित्व 2 प्रतिशत से नीचे ही रहा।

अनेक जापानी विद्वानों ने जिस आम विचार पर तर्क किया वह यह था कि जापान की वृद्धि का श्रेय सीमित बाजारों को नहीं, जापानी व्यवस्था को जाता है। इस व्यवस्था का केन्द्र आजीवन रोजगार, वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति और उद्यम संघ थे। जापानी कंपनियों में मजदूरों की नियुक्ति उनके कार्यजीवन के लिये होती थी, और कंपनी उनकी आवास, चिकित्सा और अवकाश जैसी अनेक आवश्यकताओं को पूरा करती थी। कर्मचारी को इस आधार पर वेतन दिया जाता था कि उसने कितने वर्ष काम किया और उसी के अनुसार उसे पदोन्नति दी जाती थी। इसका अर्थ यह होता था कि कर्मचारी को नौकरी बदलने की आवश्यकता नहीं होती थी। "योग्यता" से अधिक जोर निष्ठा और समर्पण की भावना पर रहता था। संघों का गठन विभिन्न उद्योगों के बीच नहीं, बल्कि फर्म या उद्यम के स्तर पर होता था। इसका अर्थ यह था कि बाहरी हस्तक्षेप के लिये कोई गुंजाइश नहीं थी और कंपनी और श्रमिक संघ साथ-साथ मिल कर उत्पादकता बढ़ा सकते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन यह आदर्श व्यवस्था व्यापक तौर पर बड़ी फर्मों में ही लागू थी, जबकि अधिकांश मजदूर छोटी फर्मों में थे। जापान में एक दूसरा ढांचा था। कुछ ऐसी बड़ी कंपनियां थीं जो मुनाफे की सुनिश्चितता देती थीं और उनका उत्पादन भी अधिक था। लेकिन 53 प्रतिशत मजदूर ऐसी फर्मों में काम करते थे जिनमें, 1965 में, सौ से कम लोग काम करते थे। इन मजदूरों के बीच का अंतर उनके वेतन में और काम की दशाओं में दिखायी देता था। वैसे, 1970 के दशक में यह अंतर कम होने लगा। इसके अतिरिक्त, छोटी फर्मों के मजदूर बहुत कम संगठित होते थे। अंतिम बात यह कि, वेतन और काम की किस्म को लेकर महिला मजदूरों के साथ भेदभाव किया जाता था। इसके परिणामस्वरूप आजीवन व्यवस्था के तहत स्थायी महिला कर्मचारियों की संख्या न के बराबर थी। स्त्रियों और पुरुषों के वेतनों के बीच का अंतर 1970 के दशक में कुछ कम हुआ, लेकिन न्यूनतम वेतन पाने वालों में महिलाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी।

उन्नीस सौ साठ के दशक की आर्थिक वृद्धि ने सामाजिक परिदृश्य को बदल कर रख दिया। गांवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ गया और शहरी केंद्रों में आबादी का जमाव अधिक हो गया। ऐसा विशेषकर ओसाका-टोक्यो पट्टी में हुआ। उद्योग और आबादी का जमाव इस क्षेत्र में होने के कारण घिचपिच आवास और औद्योगिक प्रदूषण की स्थिति बन गयी। नागरिक संगठनों और निवासी संघों ने पर्यावरण को खराब करने का विरोध और बेहतर रहन-सहन की मांग शुरू कर दी। आर्थिक वृद्धि के मुनाफों से देश तो संपन्न हो रहा था, लेकिन जापानी जनता को पश्चिमी देशों की जनता की तरह सामाजिक लाभों का फायदा

नहीं मिल रहा था। टेलीविजन, वाशिंग मशीन और रेफ्रिजरेटर ने लोगों के जीवन को बदल डाला और सफलता के ये प्रतीक तेजी से पूरे जापान में फैल गये।

सन् 1953 में **मिनामाता** रोग पहली बार प्रकाश में आया। इस रोग का प्रभाव यह होता था कि इसके रोगी अपनी शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण खो बैठते थे। इस रोग का कारण औद्योगिक प्रदूषण था, जिसका पता 1959 में चला। लेकिन, 1973 में जाकर इसके रोगियों को अदालती हर्जाना मिल पाया। दूसरे रोगों में निर्बाध औद्योगिक विकास के खतरों को समझ पाने की कमी दिखायी दी। 1967 में प्रदूषण पर रोक लगाने के लिये एक कानून पारित किया गया, और 1970 के दशक में सरकार ने प्रदूषण रोकने के लिये गंभीर उपाय किये।

26.5 तेल आघात और उसके पश्चात् की स्थिति

सन् 1973 में ओपेक (तेल उत्पादक) देशों ने यह धमकी दी कि जो देश उनके प्रति मैत्री भाव नहीं रखते, वे उन्हें तेल देना बंद दर देंगे। यह "तेल आघात" की स्थिति थी। इस धमकी से जापान भयभीत हो गया। जापान तेल के आयात पर आश्रित था, और उसमें कटौती होने से उसकी अर्थव्यवस्था तहस-नहस हो जाती। लेकिन जो उपाय किए गए, उनसे अर्थव्यवस्था के लचीलेपन और उसकी मजबूती का पता चलता है। जापान में ऊर्जा की मांग का सत्तर प्रतिशत तेल पर आधारित था, और उसके नीति-निर्माताओं ने ऊर्जा के उपभोग में कटौती का लक्ष्य सामने रखा। उन्हें इसमें इतनी सफलता मिली कि जहां अन्य उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में 1973 से 1980 तक 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई, वहीं जापान की अर्थव्यवस्था में 1975 में 3.2 प्रतिशत की, 1976 में 5.3 प्रतिशत की और फिर 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अर्थव्यवस्था, प्रधान मंत्री फुकुदा ताकेओ के शब्दों में, "इतनी ऊंचाइयां" छूने लगी जितनी कि "फ्यूजी पर्वत"।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1972 में सातो इसाकू के बाद प्रधानमंत्री बनने वाले तनाका काकुए ने जापान की राजनीतिक रीतियों को बदलने का राजनीतिक काम शुरू किया। उससे पहले भ्रष्टाचार रहा था और ऐसे बदनामी वाले प्रकरण उभर आए थे जिनके कारण राजनीतिक नेताओं को लज्जित होना पड़ा और कई राजनीतिक जीवन चौपट हो गए। अधिकांश जापानी प्रधान मंत्रियों और राजनीतिकों की तरह तनाका कभी टोक्यो विश्वविद्यालय में नहीं पढ़े थे, न ही शक्तिशाली लोक सेवक रहे थे, वह तो अपने बूते पर इस स्थिति पर तक पहुंचे थे। तनाका ने किनकेन सेजी अथवा धन की राजनीति की स्थापना की। तनाका ने **मित्र और** चुनाव क्षेत्र बनाए और व्यापक संरक्षण के माध्यम से एक शक्तिशाली राजनीतिक तंत्र खड़ा कर लिया।

सत्तारूढ़ उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी कुछ गुटों का मिश्रण था। ये गुट चंदा इकट्ठा करने और चुनाव लड़ने में स्वाधीन होकर काम करते थे। इसलिए उनमें निरंतर प्रतिस्पर्धा बनी रहती थी लेकिन उनके व्यवहार रीति और सहयोग से भी प्रभावित थे। वे एक स्वीकृत ढांचे के अंदर काम करते थे। तनाका के समर्थन और विवादास्पद सौदे प्राप्त करने की आदत का भंडाफोड़ एक पत्रिका में छपे लेख में हुआ। इससे जो विवाद खड़ा हुआ उसके कारण तनाका की सरकार गिर गई। तनाका ने भ्रष्ट आदतों के अतिरिक्त पार्टी के अधिकार को भी नौकरशाही पर हावी रखा।

नौकरशाही ने राजनीतिक दलों से उन्नित स्वाधीनता बनाए रखकर काम किया था और प्रायः ही राजनीतिकों को विशिष्ट राय उपलब्ध कराई थी। लेकिन, तनाका ने अपने विशेषज्ञ तैयार किए और अपनी विशेष समितियां गठित कीं। तनाका के बाद मिकी ताकेओ आया जिसकी ईमानदार प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठा थी। लेकिन, मिकी ताकेओ राजनीति में धन की भूमिका को कम करने और गुटबंदी को समाप्त करने के अपने घोषित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाया।

सन् 1976 में, जापान लॉकहीड कांड (Lockheed Scandal) में डूब गया। लॉकहीड कंपनी ने अपने विमान बेचने के लिए कुछ जापानियों को धन दिया था। इनमें तत्कालीन प्रधान मंत्री तनामा काकुए भी शामिल था। 1976 में तनाका को गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में उस पर लंबा मुकदमा चला। लेकिन,इन अभियोगों के बावजूद तनाका पर्दे के पीछे से अपनी शक्ति का इस्तेमाल करता रहा, और अपनी गुट शक्ति के कारण वह जापानी राजनीति में राजा बनाने वाला असली कर्णधार रहा। तनाका का डायट के दोनों सदनों के 400 सदस्यों में से 120 पर नियंत्रण था और मंत्रिमंडल का गठन उसकी इस "सेना" के हाथ में होता था। नीतियों के निर्माण पर भी उसकी "सेना" का नियंत्रण था और वह महत्वपूर्ण मंत्री पदों पर हावी रहती थी। 1983 में तनाका को दोषी पाया गया। उसने अपील की। लेकिन अभी तक यह मामला सुलझा नहीं है।

सन् 1971 में MITI ने नव अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं औद्योगिक नीति की आधारभूत दिशा नाम की एक योजना का प्रकाशन किया। यह योजना 1970 के दशक के लिए एक दृष्टि के रूप में रख गई थी जिसका यह तर्क था कि जापान को औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन से हटकर ज्ञान आधारित उद्योगों की ओर आ जाना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने अनेक उपाय किए। जापान ने टी वी ट्यूबों और वी सी आर के अपने उत्पादन को आधुनिक बनाया। और 1978 में उसने अपने कंप्यूटर उद्योग को अमेरिका की बराबरी पर लाने का प्रयास किया। ज्ञान आधारित उद्योग पर जोर के संदर्भ में पहले उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स पर जोर दिया गया और रोबोट तक उसका विस्तार किया गया। वाहन उद्योग के क्षेत्र में, जहां 1950 में जापान ने कुल 1,600 कारें बनाई थीं, वहीं 1980 तक वह अमेरिका से एक करोड़ 10 लाख अधिक कारों का निर्माण कर रहा था।

जापान ने चुनिंदा सुरक्षा और आर्थिक सहायता की मदद से इस वृद्धि को प्राप्त किया। प्रारंभ में विदेशी कारों के लिए शुल्क दरें हुआ करती थीं। जब इस पर आपत्ति की गई तो, उसने उन बड़ी कारों और तिपहिया वाहनों की अनुमति दे दी जिनकी मांग नहीं थी। साथ ही साथ, उसने "छोटी कार" की परिभाषा को विस्तृत कर 2,000 सी.सी. तक की कारों को उसमें शामिल कर लिया। शुल्क दरों को 1970 के दशक में ही हटाया गया, और 1980 तक बाजार में विदेशी कारों का अंश केवल 1 प्रतिशत था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1982 में नाकासोने यासुहिरो प्रधान मंत्री बना, और आने वाले वर्षों में उसने एक नयी कार्य शैली बनाई। नाकासोने की राजनीति का मूलभूत आधार युद्ध पश्चात् के हिसाबों को चुकता करना था जापान ने प्रधान मंत्री सातो के नेतृत्व में ओकीनावा पर फिर से नियंत्रण कर लिया था, और तनाका के शासन काल में चीन के साथ संबंध शुरू कर दिए थे। नाकासोने जापान को पश्चिमी गठबंधन का एक मजबूत और सक्रिय सदस्य बनाना चाहता था। उसकी सक्रिय कूटनीति इसी आकांक्षा का एक अंग थी उसने दक्षिण कोरिया को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराके और उसके साथ व्यापारिक अनुबंध करके उसके साथ और भी मजबूत संबंध बना लिये। उसने अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रेगन के साथ व्यक्तिगत मित्रता भी कर ली।

जापान के अंदर नाकासोने ने प्रशासनिक सुधार लागू करने का काम किया। नीति निर्माण के लिए उसने कुछ विशेषज्ञ समितियां गठित कीं, जिनके विषय में आलोचकों ने यह कहा कि इन समितियों ने डायट की अवहेलना करके जनतांत्रिक प्रक्रिया को नष्ट किया। नाकासोने ने जो कदम उठाए, उनमें से 1985 में उसकी यासुकुनी स्थल की सरकारी यात्रा ने जापान के अंदर भी और चीन जैसे बाहरी देशों में भी विवाद खड़ा कर दिया। यासुकुनी स्थल वह स्थल था जहां 1894-95 के चीन-जापान युद्ध से युद्ध में मृत लोगों को समाधिस्थ किया जाता था। नाकासोने की इस यात्रा को सैन्यवाद की वापसी के रूप में देखा गया क्योंकि इससे राज्य और धर्म की पृथकता का उल्लंघन होता था। लेकिन अनेक गुटों ने इसे एक अत्यधिक स्वाभाविक राष्ट्रभक्ति की अभिव्यक्ति भी माना।

शिक्षा के क्षेत्र में भी नाकासोने का जोर केवल रचनात्मकता बनाने पर नहीं, बल्कि राष्ट्रभक्ति की भावना का निर्माण करने पर भी रहा। राष्ट्रभक्ति पर इस जोर का उदारवादियों ने विरोध किया, क्योंकि वे उसे युद्ध-पूर्व के उन राष्ट्रीय उद्देश्यों की वापसी मानते थे, जिसने जापान को युद्ध और विस्तारवाद में झोंका था।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में, जापान के उसके व्यापारी सहभागियों के साथ बढ़ते असंतुलनों ने जापान को कड़ी आलोचना का केंद्र बना दिया। 1986 में माएकावा प्रतिवेदन में अर्थव्यवस्था को उदार बनाने के उपाय निश्चित किए गए। इस समिति का अध्यक्ष जापानी बैंक का एक भूतपूर्व गवर्नर था। इस प्रतिवेदन में यह भी सुझाव दिया गया कि अधिक जोर लोगों के रहन-सहन के स्तर को सुधारने के लिए सामाजिक पूंजी बनाने पर दिया जाए। जापान का व्यापार अधिशेष एक समस्या बनता जा रहा था। 1987 में येन के बढ़े मूल्य के कारण व्यापार अधिशेष 96 अरब डालर तक पहुंच गया, जिस पर अमेरिका की प्रतिक्रिया हुई।

अमेरिकी प्रतिक्रिया इस तर्क पर आधारित थी कि जापान ने "उन्मुक्त व्यापार" अपना लिया था। दूसरे शब्दों में, जापान ने अपनी सुरक्षा के लिए कोई धन खर्च नहीं किया था, और इस बचत को आर्थिक वृद्धि और व्यापार की दिशा में लगा दिया था। अमेरिकी आलोचकों का तर्क था कि जापान को अपने बाजारों को मुक्त कर देना चाहिए और रूढ़ वितरण व्यवस्था जैसे गैर शुल्क दर बंधनों को हटा देना चाहिए जिनके चलते विदेशी कंपनियों के लिए जापान में बिक्री करना कठिन हो रहा था। इन आलोचकों के अनुसार जापान को अपने प्रतिरक्षा व्यय का एक बड़ा अंश स्वयं वहन करना चाहिए था।

नाकासोने ने दूर संचार और जापान राष्ट्रीय रेल मार्ग जैसी सरकारी एकाधिकार संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण समाप्त करने के लिए भी कदम उठाए। रेल मार्ग को छह क्षेत्रीय समूहों में बांट दिया गया, और स्वदेशी टेलीफोन कंपनी, एन टी टी का निजीकरण कर दिया गया। नाकासोने का प्रभाव जबरदस्त था। उसी के बूते पर उसने 1986 में अपने एल डी पी की अध्यक्षता की दो अवधियां समाप्त होने के बाद एक अतिरिक्त वर्ष ले लिया। लेकिन उसके अंतिम वर्ष में पार्टी की लोकप्रियता में गिरावट आई जिसका कारण अलोकप्रिय कर संबंधी कदम थे। लेकिन, नाकासोने के अपने उत्तराधिकारी ताकेशिता नोबोरू के चयन में भी प्रमुख भूमिका निभाई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नाकासोने मंत्रिमंडल का दौर, वह दौर था जब जापान ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों में कहीं अधिक स्पष्ट भूमिका निभानी शुरू की। जापान के अंदर नाकासोने ने जो मुद्दे खोले और कार्यक्रम रखे वे आज भी राजनीतिक कार्यक्रमों का अंग हैं। लेकिन, चुनाव प्रक्रिया में सुधार और राजनीतिक कोषों को विनियमन के मामले में बहुत सफलता नहीं मिली, और ये समस्याएं जापानी राजनीति के लिए आज भी बनी हुई हैं।

जापान के विदेशी संबंधों का संचालन उसकी सुरक्षा की सुनिश्चितता देने वाले अमेरिका के साथ गठबंधन के ढांचे के अंदर हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि 1970 के दशक तक जापान ने अपने पड़ोसी देशों के साथ फिर से संबंध बनाने की दिशा में लगभग कोई भी कदम नहीं उठाए। युद्ध की समाप्ति पर जापान के हाथों नुकसान उठाने वाले देशों को क्षतिपूर्ति का मामला सुलझा लिया गया था, लेकिन सोवियत संघ के साथ कोई शांति समझौता नहीं किया गया। चीन के साथ भी जापान ने अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन की चीन यात्रा के बाद ही संबंध सामान्य किए।

जापान ने अपनी युद्ध काल की विरासत से मुक्ति पा ली और 1965 में दक्षिणी कोरिया के साथ अपने संबंध सामान्य कर लिए, लेकिन जो कोरियाई जबरन जापान से आए थे उनकी समस्या जैसी की तैसी बनी रही। अमेरिका के साथ गठबंधन के कारण होकैडो के उत्तर में स्थित द्वीपों के आधिपत्य को लेकर जापान के सोवियत संघ के साथ संबंध गड़बड़ रहे।

जापान की विदेश नीति अब और भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का प्रयास कर रही है, क्योंकि जापान ने आर्थिक शक्ति अर्जित कर ली है, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह विकासशील देशों को अपनी आर्थिक सहायता में वृद्धि कर रहा है। जापान और अमेरिका तथा यूरोपीय समुदाय के बीच व्यापारिक और आर्थिक तनाव भी बढ़ रहे हैं, और इसकी सीमित बाजार और अनुचित ढंग से विदेशी प्रतिद्वंद्वियों को बाहर रखने की नीति की जो आलोचना हुई है, उसके कारण जापान ने इस डर से विकासशील देशों में पूंजी निवेश शुरू कर दिया है कि कहीं उनके बाजारों से उसे बाहर न रखा जाए।

बोध प्रश्न 2

1) जापान ने तेज आर्थिक वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए क्या कदम उठाए? 15 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS

Call us @7428092240

2) जापान की "तेल आघात" पर क्या प्रतिक्रिया रही? 5 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....

3) आज की दुनिया में आप जापान की भूमिका को किस रूप में लेते हैं? 10 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

26.6 सारांश

द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की हार हुई और मित्र शक्तियों ने उस पर आधिपत्य कर लिया, लेकिन वास्तव में आधिपत्य करने वाली प्रमुख शक्ति अमेरिका थी। अमेरिका ने स्कैप के माध्यम से जापान को सुधारने और उसे एक विस्तारवादी ताकत न बनने देने के लिए उपाय किए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने जापान की राजनीति और समाज को जनतांत्रिक बनाने के लिए कदम उठाए और संविधान को फिर से लिखा।

लेकिन, कोरियाई युद्ध छिड़ने और अमेरिका के नीतिगत उद्देश्यों के कारण अमेरिका ने जापान को एशिया में अपना एक मजबूत मित्र बनाने की दिशा में काम किया। इसलिए, उसने सुधार कार्यों को वापस लेना शुरू कर दिया और रूढ़िवादियों के साथ काम करके एक मजबूत और स्थिर समाज और एक प्रबल मित्र बनाना सुनिश्चित किया।

सान फ्रांसिस्को की शांति संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद जापान ने अपनी अर्थव्यवस्था को फिर से बनाने का काम शुरू किया और विश्व के मामलों में कोई भूमिका नहीं निभाई। आर्थिक वृद्धि पर पूरा ध्यान देना इसलिए संभव हुआ क्योंकि अमेरिका ने जापान की सुरक्षा की व्यवस्था की। प्रतिरक्षा और सेना पर तो कोई धन व्यय होना नहीं था, इसलिए स्वाभाविक था कि प्रतिरक्षा पर भारी व्यय करने वाले अन्य राष्ट्रों के मुकाबले जापान में आर्थिक विकास कहीं तेजी से होता, जिन नीतियों को अपनाया गया उनके अनुसार एक सुरक्षित किंतु प्रतिस्पर्धा पूर्ण बाजार का निर्माण हुआ, और सरकार ने उद्योग के साथ मिलकर उन उद्योगों का पता लगाया जो जापान को एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उभारने के लिए आवश्यक थे, उन्होंने इन उद्योगों को पनपाया भी। कुछ जगह विफलता भी मिली। लेकिन, व्यवस्था लचीली और समायोजक थी जिसके चलते प्रौद्योगिकी का शुद्ध आयातक जापान 1980 के दशक तक उन्नत प्रौद्योगिकी का निर्यात कर रहा था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापानी राजनीति की विशेषता एक ही पार्टी एल डी पी का वर्चस्व रहा, जिसकी शक्ति और लंबा काल ठोस ग्रामीण समर्थन और व्यापारियों और नौकरशाही के साथ घनिष्ठ संबंधों की देन रहा। इन गुटों के साथ मिलकर उसने जापान को उच्च वृद्धि की ओर पहुंचाया और कोई भी इस व्यवस्था के लिए खतरा खड़ा नहीं करना चाहता था। समाजवादी और क्रांतिकारी गुट सक्रिय रहते हुए भी राजनीतिक दृष्टि से हाशिये पर ही रहे।

जापान में इस समय बहस चल रही है और वह अपनी भावी प्राथमिकताएं तय करने का प्रयास कर रहा है। वह दुनिया के मामलों में कोई भूमिका निभाने के लिए विकसित कर रहा है। इसका प्रभाव इस पर भी पड़ेगा कि वह किस प्रकार के समाज का निर्माण करता है। क्या जापानी समाज और भी मुक्त होगा और एक बेहतर सामाजिक वातावरण बनाने पर जोर देगा या अधिक आरामदेह जीवन शैली उच्च उत्पादकता और आर्थिक मजबूती को खतरे में डाल देगी? ये वे सवाल हैं जिन पर बहस चल रही है। जापान की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका के संबंध में भी यही स्थित है। क्या जापान अमेरिकी गठबंधन को अपनी विदेश नीति का आधार बनाकर काम करता रह सकता है या उसके लिए दुनिया के मामलों में कहीं अधिक स्वाधीन भूमिका अपनाने की आवश्यकता है? यह भूमिका क्या होगी? क्या अपने विशाल आर्थिक संसाधनों के साथ जापान तीसरी दुनिया के देशों के विकास कार्यक्रम में कोई भूमिका निभा सकता है या उसकी रुचि केवल एकीकृत बाजार बनाकर अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर अपनी शक्ति सुनिश्चित करने में है? शेष विश्व के साथ जापान का भविष्य घनिष्ठता से जुड़ा है और जापान ने तोकुगावा काल के उन वर्षों से एक लंबी यात्रा तय की है, जब वह दुनिया से बिल्कुल कटा हुआ था।

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अमेरिकी आधिपत्य अधिकारी चाहते थे :

   क) अमेरिका में जापान की पैठ को रोकना ।

   ख) जापान में एक जनतांत्रिक और जिम्मेदार सरकार की स्थापना करना।

   ग) सैन्यवाद के ढांचे को समाप्त करना, देखिए 26.3 ।

2) अपने उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल कीजिए:

   क) जापान की औद्योगिक क्षमता को कम करने के लिए स्कैप के विभिन्न प्रयास।

   ख) जैबात्सू को भंग करना।

   ग) व्यापक भूमि सुधार आदि, देखिए 26.3.2।

3) देखिए 26.3.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 26.4.1 और 26.4.2

2) अपने उत्तर के लिए 26.5 को आधार बनाइए और जापान की ऊर्जा के उपभोग में कटौती की नीतियों को उसमें शामिल कीजिए।

3) देखिए 26.5 का अंतिम अंश।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र

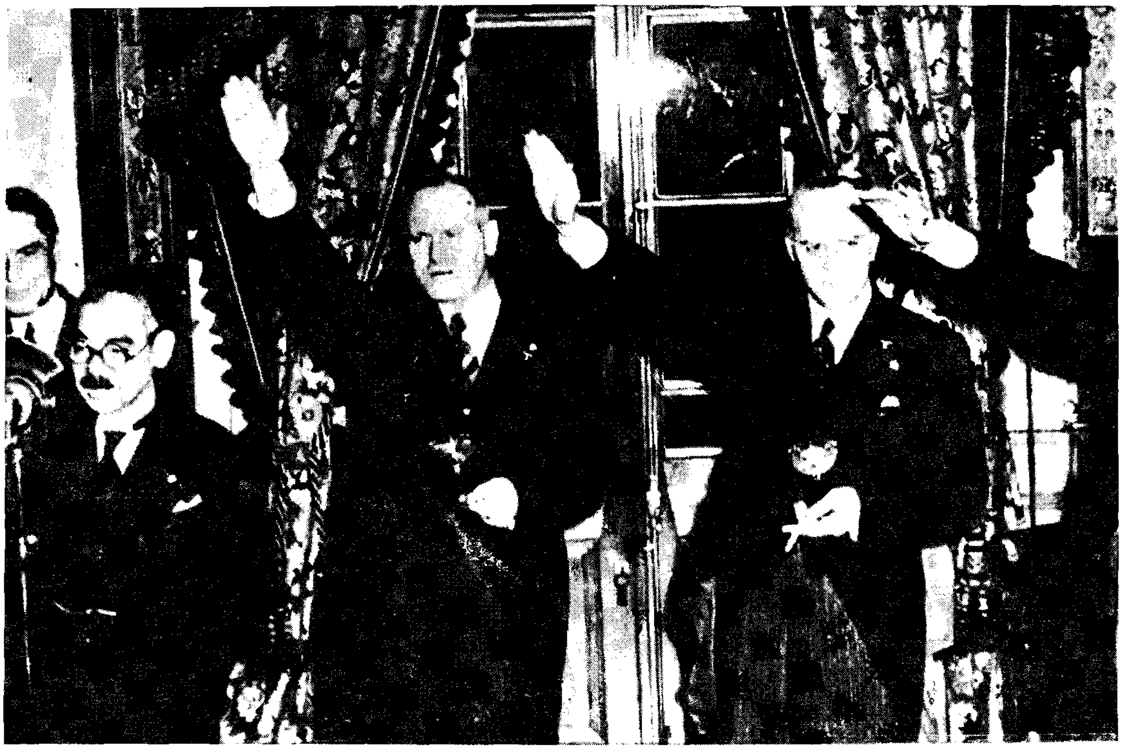

1. जापान एक्सिस शिविर में शामिल। विदेश मंत्री मातसुओको द्वारा त्रिपक्षीय संधि पर हस्ताक्षर किए जाने का ऐलान। उनके बाँये ओर चश्मा पहने खडे हैं जनरल यूजेन ओह।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रधानमंत्री जनरल हिदकी तोजो

3. गुआडाल नहर पर हुए युद्ध में पच्चीस हजार जापानियों की मौत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

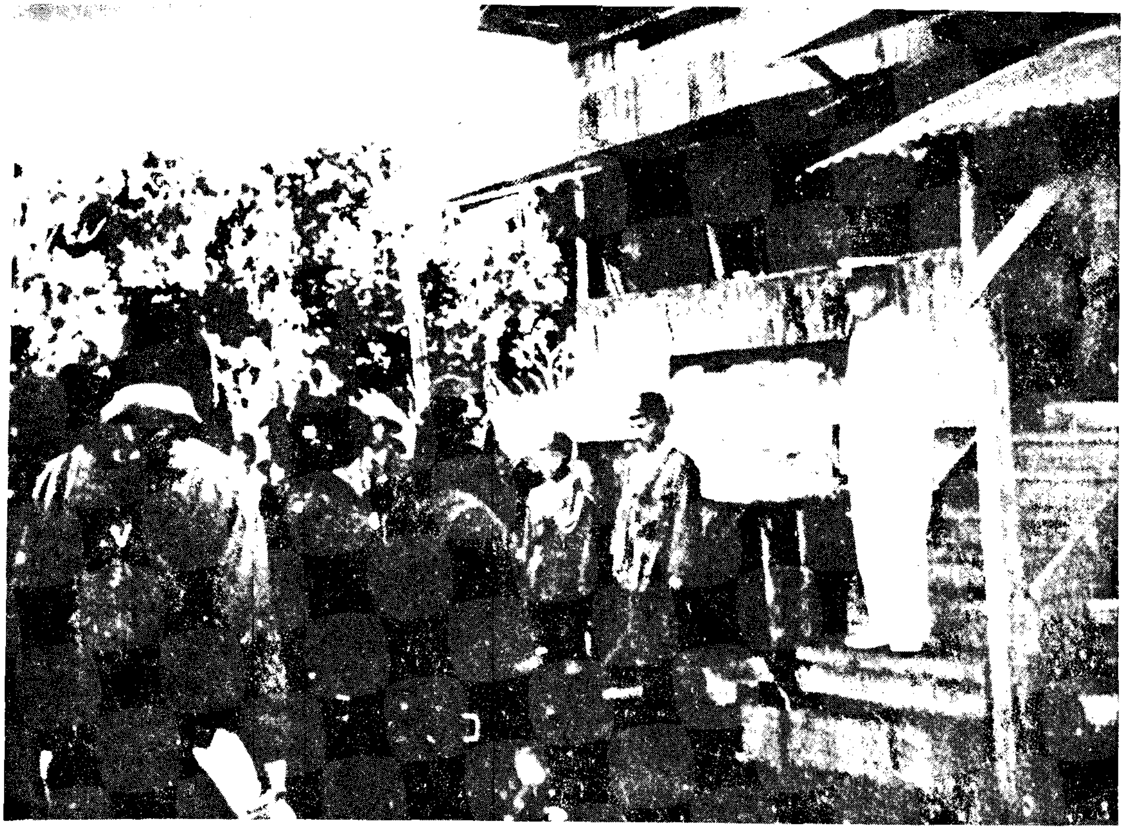

4. गुआडाल नहर पर स्थापित दुश्मन के अड्डे पर बम-वर्षा का निर्देश देते हुए एडमिरल थामा मोटो

5. तेहरान में तीन महारथियों स्तालिन, रूज़वेल्ट और चर्चिल की प्रथम बैठक

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6. महान् पूर्वी एशियाई सम्मेलन टोकियो में सम्पन्न हुआ। तोजो ने इसकी अध्यक्षता की।

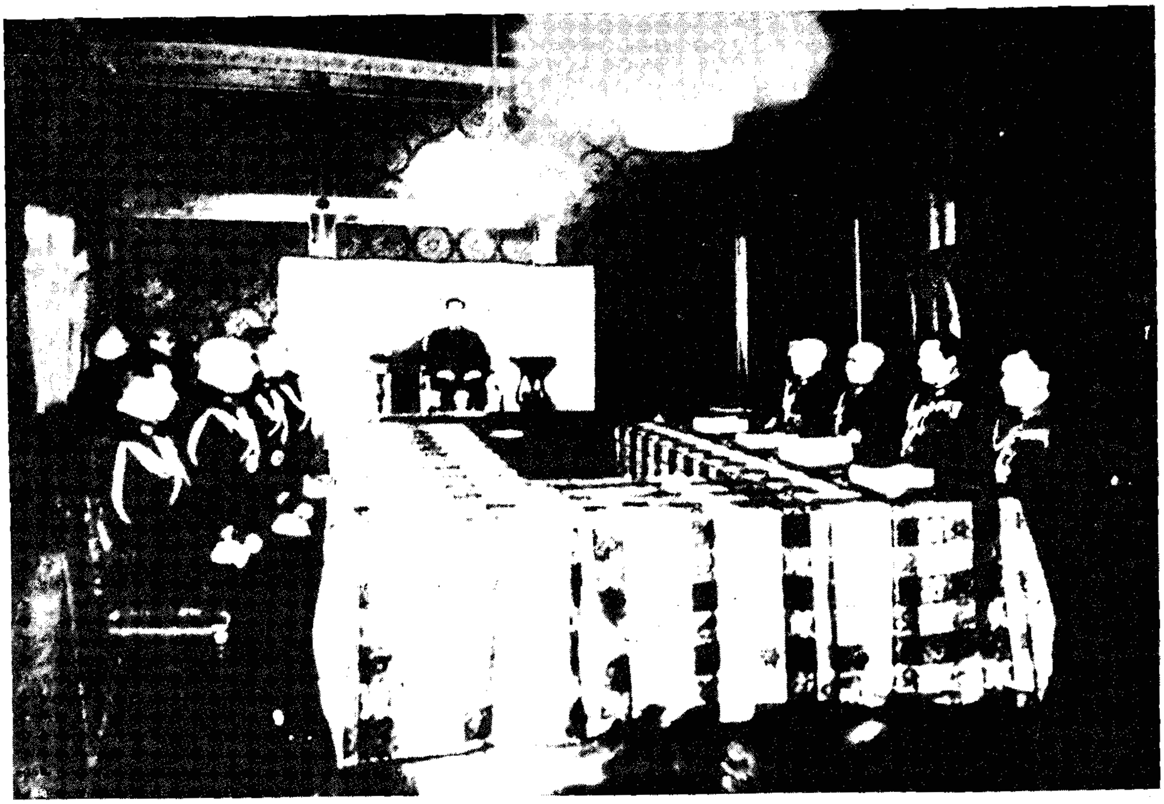

7. सर्वोच्च कमान राजमहल में सम्राट से मुलाकात करते हुए

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

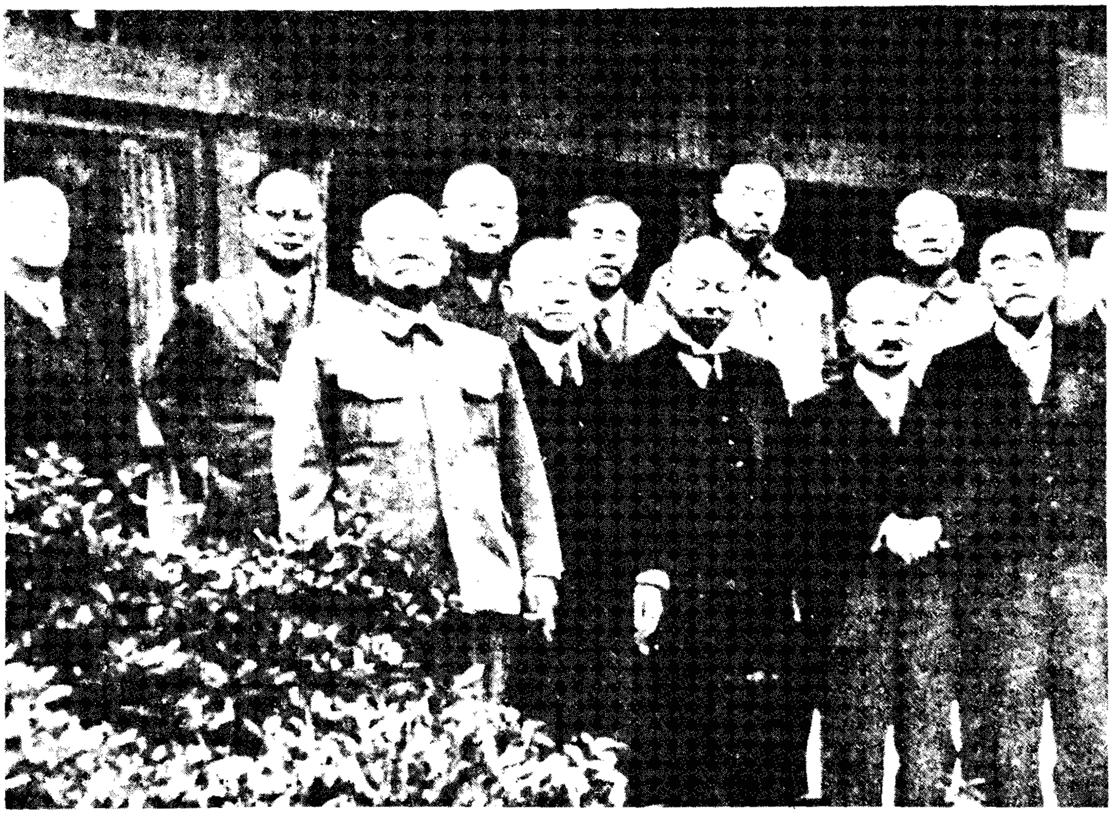

8. मुशी पार्टी के सदस्य 'शीघ्र 'शांति स्थापना का प्रयत्न करते हुए

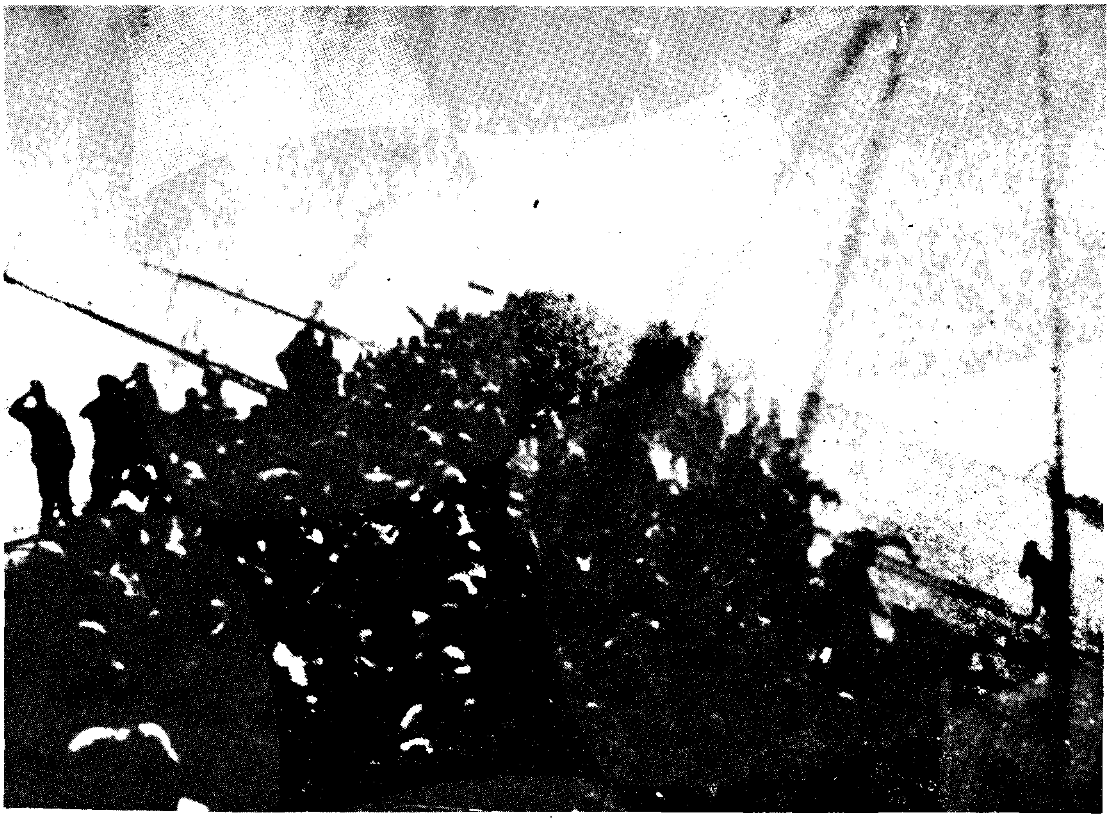

9. डूबता जापानी जहाज

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

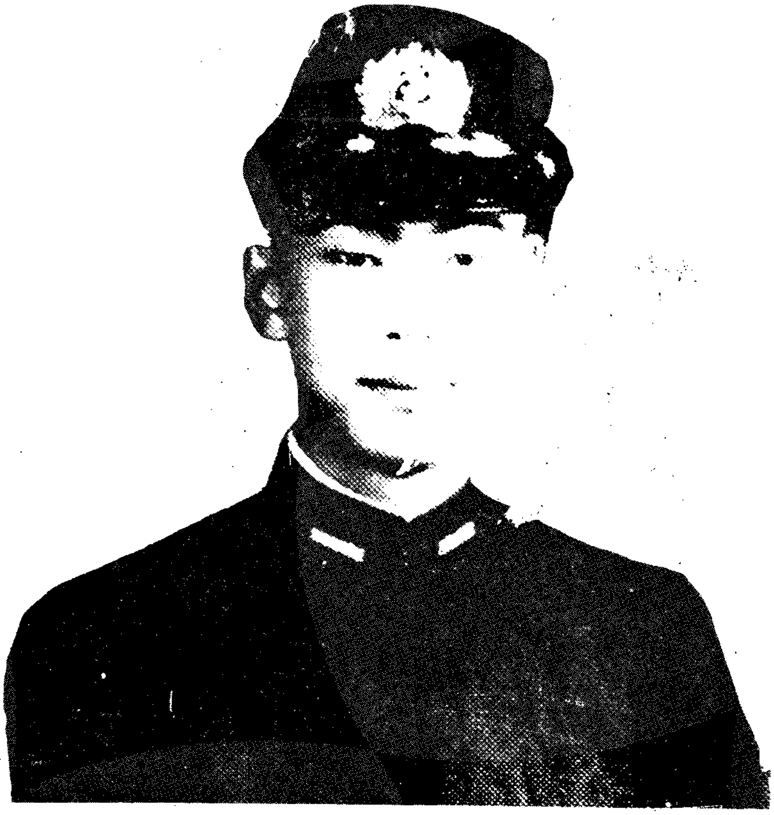

10. युद्ध में बचा मात्र एक व्यक्ति औसाइ तोशिहिको ओहनो

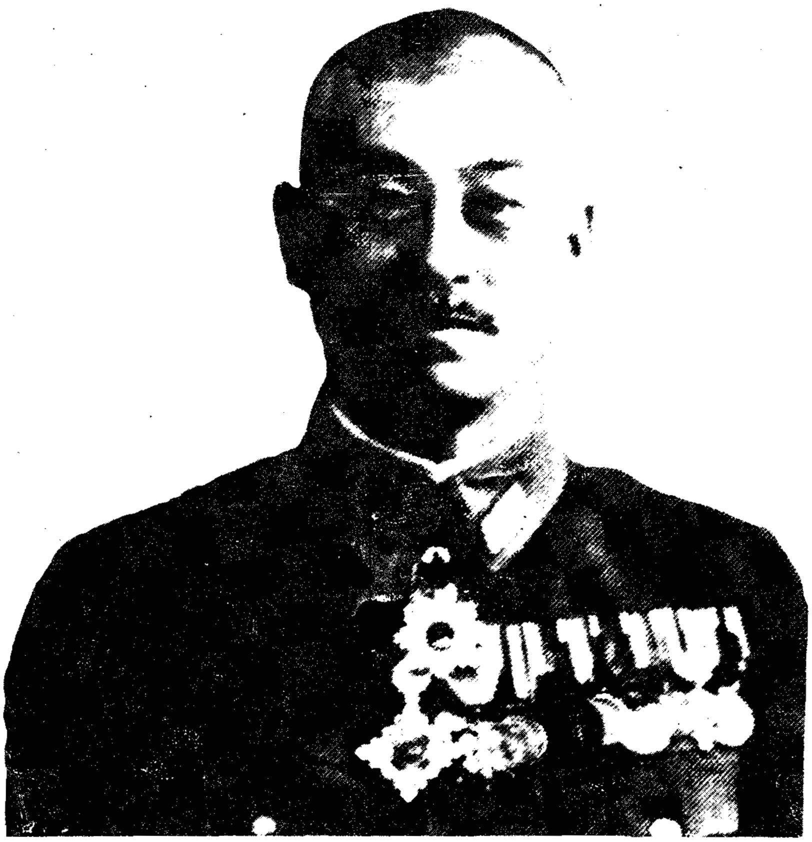

11. ओकिनावा का सेनाध्यक्ष जनरल मितसरू युशीजिमा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

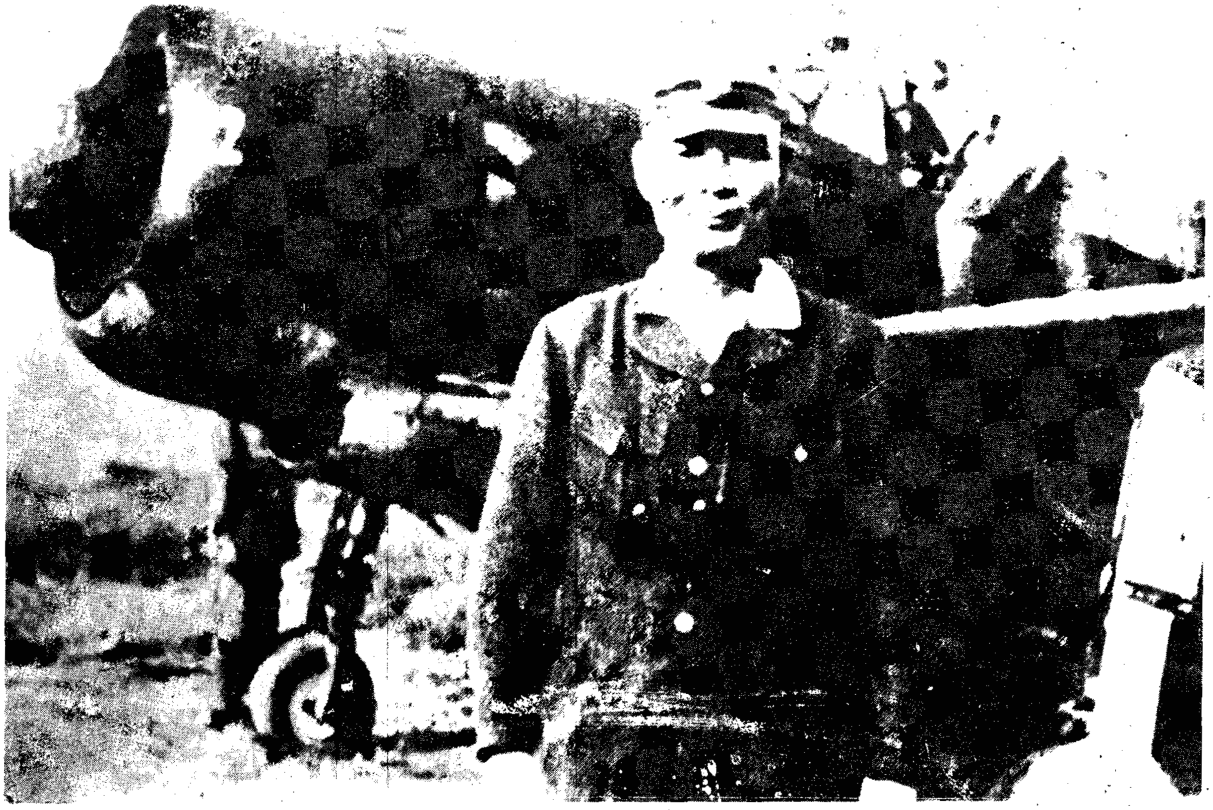

12. नौसैनिक कामिकाजे इकाइयों का अध्यक्ष एडमिरल मातोमे उगाकी, जो आत्मसमर्पण के दिन गायब हो गया था।

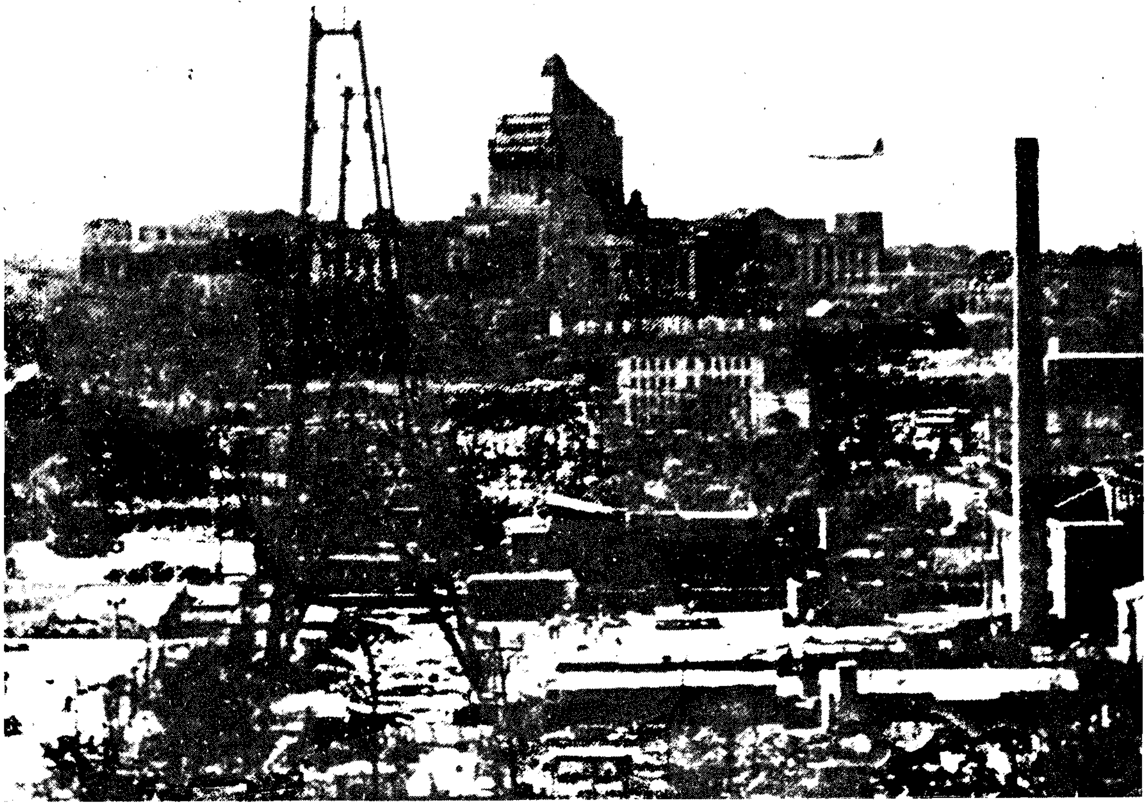

13. डायट भवन के ऊपर उड़ता एयरक्राफ्ट डिफेंसलैस टोकियो, बी-29

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14. 10 मार्च 1945, को टोकियो में हुई बम-वर्षा के परिणामस्वरूप बिखरा मलवा

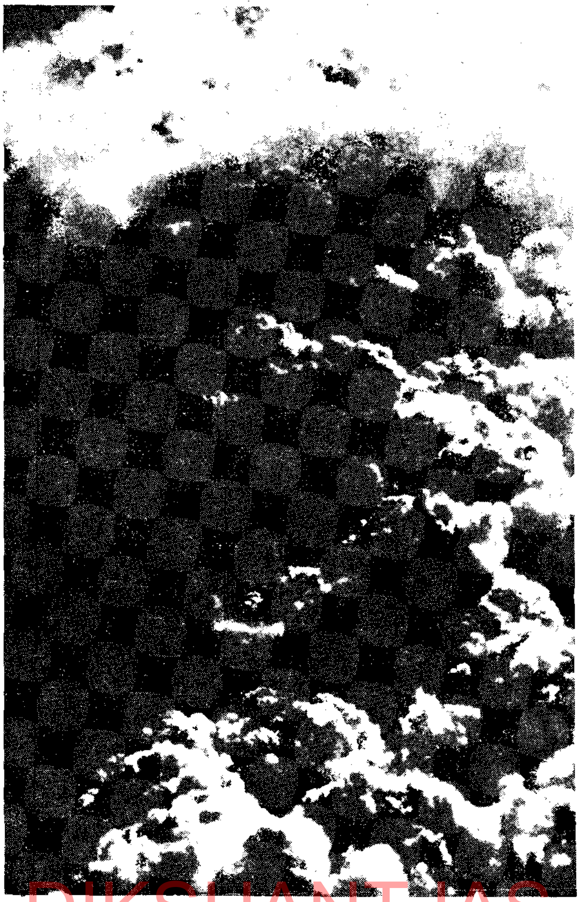

DIKSHANT IAS

15. हिरोशिमा में बम विस्फोट का ज़मीन के दो मील ऊपर से लिया गया चित्र

Call us @7428092240

16. हिरोशिमा में एक हज़ार व्यक्तियों की जानें गयीं।

17. युद्ध की मार से बरबाद नागासाकी; बरबादी का हृदयविदारक दृश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18. ध्वस्त राजमहल। राजमहल के विभिन्न भागों को अंको के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

19. थल सेनाध्यक्ष, जनरल योशिजीरो उमेज़ू

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20. युद्ध मंत्री जनरल कोरेशिका अनामी

21. विद्रोह का नेता मेजर केन्जी हाताना‍का

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

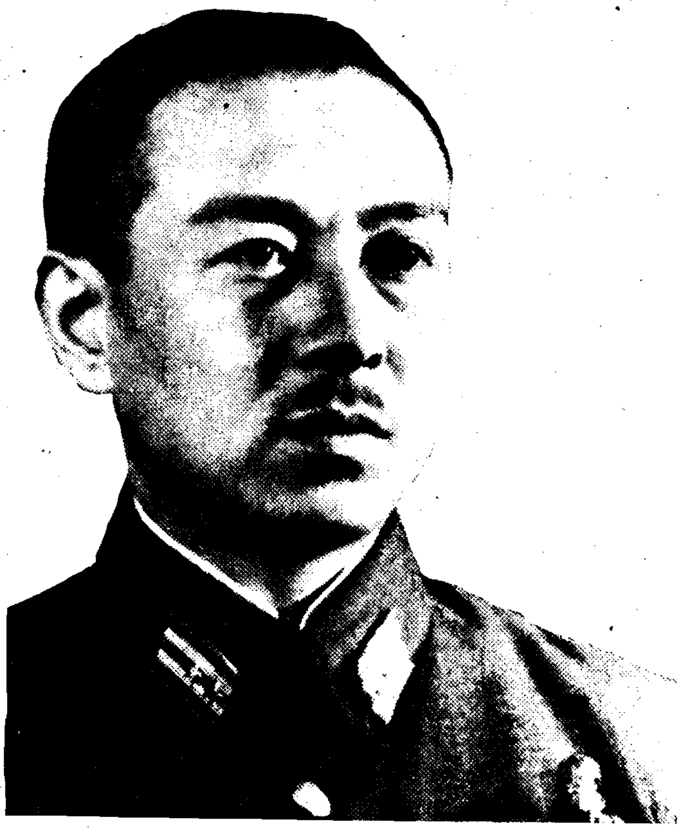

22. विद्रोह का प्रमुख पदाधिकारी कर्नल मासाहिको ताकेशिता

23. 15 अगस्त, 1945 को आत्मसमर्पण की उद्घोषणा को क्रन्दन और खामोशी के साथ सुनते हुए जापानी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24. मिसौरी में आत्मसमर्पण। विदेश मंत्री शिगेओनित्सु और सेनाध्यक्ष उमेज़ू जापानी प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करते हुए।

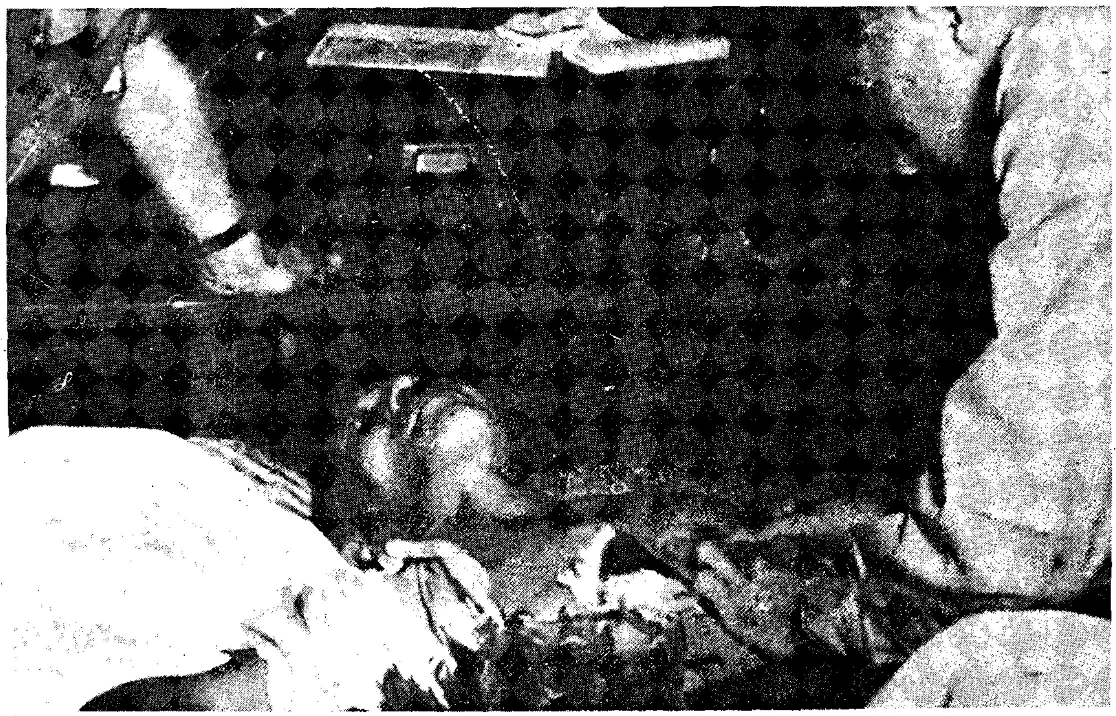

25. हिरासत में लिए जाने के पूर्व भूतपूर्व प्रधानमंत्री हिदेकी तोजो द्वारा आत्महत्या का असफल प्रयास।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26. पश्चिम पर एशिया की श्रेष्ठता को दर्शाता हुआ 1943 का एक जापानी विज्ञापन

इकाई 27 क्रांति के पश्चात् के घटनाक्रम, 1911-1919

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 राजनीतिक अस्थिरता
27.3 युआन काल के पश्चात् की घटनाएँ
27.4 युद्ध सामंत और युद्ध सामंतवाद
27.4.1 सेनाएँ, गुट और राज्यतंत्र
27.4.2 युद्ध
27.4.3 युद्ध सामंत और विदेशी ताकतें
27.4.4 पीकिंग का दृष्टिकोण
27.5 युद्ध सामंतवाद और चीनी समाज
27.6 क्वोमिंतांग का उदय
27.7 चार मई की घटना
27.8 सारांश
27.9 शब्दावली
27.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह समझा सकेंगे कि क्यों 1911 की क्रांति चीन में एक बेहतर राजनीतिक व्यवस्था कायम करने में विफल रही,
- चीन में सैन्यवाद के उदय के लिए उत्तरदायी कारणों को जान सकेंगे,
- क्वोमिंतांग के एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरने के बारे में, और इसके एक जनाधार वाली पार्टी न बन पाने के बारे में जान सकेंगे, और
- चार मई के आंदोलन की व्युत्पत्ति और इसके क्रांतिकारी चरित्र को समझ सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

चीन में 1911 में वंशीय शासन का अंत हो गया। इतिहासकारों ने इस घटना को क्रांति कहा है। राजनीति के क्षेत्र में, राजतंत्र का अंत एक महत्वपूर्ण घटना ही थी, लेकिन जहां तक समूची चीनी जनता का सवाल है, 1911 की क्रांति का कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा। फिर भी, 1911-1919 के दौर में अनेक ऐसी घटनाएँ और घटनाक्रम हुए जिनका दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा। यह दौर राजनीतिक कलह, अस्थिरता और फूट का दौर रहा जिसकी परिणति युद्ध सामंतों के उदय में हुई। इन युद्ध सामंतों के उदय से चीनी राष्ट्र की एकता के लिए खतरा पैदा हो गया। तथाकथित गणतंत्र के प्रारंभिक वर्षों में संवैधानिक जनतंत्र की दिशा में कुछ प्रयास भी हुए, लेकिन वे सफल नहीं हुए। जिस क्वोमिंतांग ने अपनी गुप्त संगठन वाली विशेषताओं को त्याग दिया था और मांचू शासन का तख्ता पलटने में सक्रिय भागीदारी की थी, उसे अनेक परीक्षाओं और कठिनाइयों से गुजरना पड़ा। आने वाले वर्षों में वह एक मजबूत राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरी। जो भी हो, 1911-1919 के दौर की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन की शुरुआत (इस पर इकाई 28 में विस्तार से चर्चा की गयी है)। बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में चलने वाले इस आंदोलन की शुरुआत 1915 के आसपास हुई और यह मई चार के आंदोलन तक अपने चरम पर पहुँच गया। इसके परिणामस्वरूप चीनी साम्यवादी पार्टी का

(1921 में) जन्म हुआ। इन आंतरिक घटनाक्रमों के अलावा, चीन की सीमा के बाहर की दो घटनाओं ने उस पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला :

1) पहला यूरोप में प्रथम विश्व युद्ध का छिड़ना, जिसमें जर्मनी की हार हुई और जापान ने चीन में जर्मनी के पहले के अधिपत्य पर अपना दावा कर दिया। (हम इकाई 21 में इक्कीस मांगों का विवेचन कर ही चुके हैं।)

2) दूसरा, रूस में अक्टूबर क्रांति का सफल होना। बोल्शेविक क्रांति ने चीन को काफी प्रेरणा दी। सोवियत राज्य ने पहले की कुछ असमान संधियों को स्वेच्छा से त्याग दिया। इसके फलस्वरूप सोवियत लोग तुरंत ही चीनियों के चहेते हो गये, और इस तरह सोवियत-चीनी सहयोग के एक लंबे दौर की शुरुआत हुई। सामान्य तौर पर कहा जाए तो, 1911-19 के दौर ने चीनी जनता के साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ने के निश्चय को दृढ़ कर दिया। इसके फलस्वरूप एक दृढ़निश्चयी और लोचदार राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

इस इकाई में चीन के युद्ध सामंतवाद के दौर की भी चर्चा की गयी है, और क्वोमिंतांग के उदय और विस्तार और चार मई की घटना का भी विवेचन किया गया है।

27.2 राजनीतिक अस्थिरता

जनवरी 1, 1912 को नानकिंग में चीनी गणतंत्र की नयी सरकार कायम हुई। सन यात सेन इसका अंतरिम राष्ट्रपति बना। दूसरी ओर मांचू सेनाओं का भूतपूर्व सेनापति युआन शिकाइ था। युआन शिकाइ ने नव सेना का गठन किया था, लेकिन 1808 में वह मांचू दरबार की कृपापात्रों की सूची से बाहर कर दिया गया था। वह चीन का शासक बनने की महत्वाकांक्षा पाल रहा था। मांचू दरबार ने अभी औपचारिक तौर पर त्यागपत्र तो दिया नहीं था, इसलिए पर्याप्त सैनिक समर्थन रखने वाले युआन ने नानकिंग सरकार के साथ सौदेबाजी और युक्ति की। 12 फरवरी को मांचू दरबार ने गद्दी छोड़ दी और सन यात सेन ने युआन के पक्ष में त्याग पत्र दे दिया। गणतंत्र सरकार पीकिंग आ गयी और युआन शिकाइ को इसका अंतरिम राष्ट्रपति चुन लिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन यात सेन ने अपना पद छोड़ने से पहले एक नया अंतरिम संविधान पारित करवा लिया। इस संविधान में अधिकार विधेयक और मंत्रिमंडलीय सरकार का प्रावधान रखा गया। इसका अभिप्राय यह था कि राष्ट्रपति युआन को एक मंत्रिमंडल का गठन करना होगा जो विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होगा। सन यात सेन के साथी क्रांतिकारी इस सभा में बहुमत में थे। इसके पीछे विचार यह था कि मंत्रिमंडल युआन की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं पर रोक का काम करे। इस तरह, पीकिंग के गणतंत्रीय शासन ने। अप्रैल, 1912 को काम करना शुरू कर दिया। सिद्धांत में, यह शासन 1928 तक चला। लेकिन वास्तव में देखा जाये तो, यह गणतंत्रीय व्यवस्था का उपहास था।

युआन शिकाइ ने पद संभालने के तुरंत बाद तांग शाओ यी का नाम नये-नये लागू हुए अंतरिम संविधान के अनुसार मंत्रिमंडल के नेता, अर्थात् प्रधानमंत्री पद के लिए प्रस्तावित कर दिया। तांग युआन का एक पुराना साथी भी था और क्वोमिंतांग क्रांतिकारियों के निकट भी था। तांग ने मंत्रिमंडल के लिए जिन मंत्रियों के नाम का प्रस्ताव रखा उन्हें सभा ने सहमति दे दी। यह एक अच्छी शुरुआत दिखायी दी और यह आशा बनी कि सन यात सेन के क्रांतिकारियों और उत्तर के (सेना समेत) पुराने तत्वों, इन दोनों गुटों के बीच कारगर एकता कायम हो जाएगी। लेकिन हमें यह याद रखना होगा कि युआन शिकाइ की महत्वाकांक्षाओं का सीधा टकराव संवैधानिक शक्ति के साथ था जहां शक्ति या सत्ता कई व्यक्तियों में बंटी होती है।

युआन के समर्थकों में मांचू दरबार के उच्चाधिकारी, पूर्ववर्ती दौर के सुधारवादी और उसकी अपनी सेना और नागरिक अनुचर शामिल थे। उसने जिस नव सेना का गठन किया था, उसके सेनापतियों का भी पूरा समर्थन उसे प्राप्त था। उसकी तुलना में तांग शाओ यी के समर्थन का आधार कहीं कमजोर था। मंत्रिमंडल के गठन के लगभग तुरंत बाद, युआन ने नियुक्तियों और नीतियों के मामलों पर तांग शाओ यी के साथ असहमति जतानी शुरू कर दी। युआन का असहयोगी रवैया इतना असहनीय हो चला कि तांग ने क्षुब्ध होकर तीन महीने के अंदर ही मंत्रिमंडल छोड़ दिया। उसके बाद जो मंत्रिमंडल बने उनमें अधिकतर

युआन के अनुयायी और नौकरशाही [illegible] साथ कोई शक्ति परीक्षण नहीं चाहती थी इसलिए वह न चाहते हुए भी मंत्रिमंडल को अपना समर्थन देती रही।

सन् 1912-13 की सर्दियों में संसद के चुनाव हुए। क्वोमिंतांग के रूप में पुनर्गठित क्रांतिकारियों के लिए यह एक अवसर था शांतिपूर्ण ढंग से युआन के प्रभाव को समाप्त कर देने का। जैसी कि अपेक्षा थी, वे संसद के दोनों सदनों में बहुमत लेकर विजयी हुए। और, उनका संसदीय नेता, सुंग चियाओजेन, मंत्रिमंडल के नेतृत्व के लिए पूरी तौर पर तैयार था। 10 मार्च, 1913 को शंघाई रेलवे स्टेशन पर पीकिंग के लिए रेलगाड़ी पर सवार होते समय उसकी हत्या कर दी गयी। पूरा देश सकते में आ गया। युआन ने सामान्य ढंग से हत्या की जांच के आदेश दे दिये। उसी समय युआन विदेशी बैंकरों से ऋण लेने का प्रयास कर रहा था, जो चीन की ढहती अर्थव्यवस्था के लिए निर्णायक था। जांच में राष्ट्रपति युआन का हत्या में सीधे शामिल होना पाया गया। जिस दिन जांच के निष्कर्ष सार्वजनिक किये गये, उसी दिन युआन ने यह ऐलान किया कि विदेशी बैंकर अति वांछित ऋण देने को सहमत थे। इससे कुछ लोगों का ध्यान तो जरूर उधर से हट गया, लेकिन इसके कारण क्वोमिंतांग और युआन शिकाइ के रास्ते हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो गये। युआन ने मनमानी करनी शुरू कर दी। वह अक्सर संसद की भी अवहेलना कर देता। यहां तक कि पुनर्गठन ऋण कहलाने वाले विदेशी ऋण के लिए बातचीत भी संसद की सहमति के बिना कर ली गयी। जो भी हो, युआन के लिए तो ऋण की मंजूरी का यही मतलब निकला कि उसकी सरकार को विदेशी ताकतों की अंतिम मान्यता प्राप्त हो गयी। उसके अपराध का उसे कोई दंड नहीं मिला। साम्राज्यवादी ताकतें भी, स्पष्ट कारणों से किसी लोकप्रिय नेता की तुलना में एक तानाशाह और चालबाज को अधिक पसंद करती थीं।

सुंग की हत्या से पहले, क्वोमिंतांग के नेताओं में युआन के प्रति रवैये को लेकर एकता नहीं थी। लेकिन, इस जघन्य अपराध ने उन सबको युआन की निंदा के लिए एक सूत्र में बांध दिया। जुलाई 1913 में, कुछ दक्षिणी प्रांतों में शासन कर रहे क्वोमिंतांग गवर्नरों ने विद्रोह कर दिया। विदेशी मान्यता से साहस लेकर युआन ने क्वोमिंतांग का विरोध कर दिया, इससे जुड़े सैनिक गवर्नरों को हटा दिया, उनके विद्रोह को दबा दिया, राजनीतिक संगठन के रूप में क्वोमिंतांग को भंग कर दिया, संसद को निलंबित कर दिया और फिर प्रांतीय सभाओं और मुख्य परिषदों को समाप्त कर दिया। उसने अपने आपको आजीवन राष्ट्रपति घोषित कर दिया और यह भी ऐलान कर दिया कि वह राजतंत्र की बहाली करेगा और अपने खुद के वंश का सूत्रपात करेगा। युआन ने 1914 में एक नया अंतरिम संविधान लागू करवा लिया। इस संविधान के तहत उसका शासन सर्वोच्च और कानून के दायरे से मुक्त हो गया। इस संविधान का अंतिम लक्ष्य चीन में राजतंत्र की बहाली और युआन को नया सम्राट बनाना था। जिस समय चीन में यह सब कुछ हो रहा था, जापान ने उसके सामने अपनी कुख्यात इक्कीस मांगें रख दीं। इसीलिए, यह माना जाता है कि युआन ने जो चालें चलीं थीं उनमें जापान के साथ उसकी सांठगांठ थी (देखिए इकाई-21)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जो भी हो, युआन की योजनाओं ने (लयांग ची चाओं के नेतृत्व में) नरमपंथी प्रगतिशीलों और क्रांतिकारियों को एक कर दिया। पूरे देश में युआन के खिलाफ एक अभियान छेड़ दिया गया। इस अभियान का नारा था "गणतंत्र बचाओ"। प्रांतों ने पीकिंग शासन से अपनी स्वाधीनता की घोषणा करनी शुरू कर दी, और क्वोमिंतांग के सेनापतियों और प्रगतिशीलों के नेतृत्व में राजतंत्र विरोधी अभियान शुरू हो गये। आंदोलन इतना प्रचंड था कि युआन शिकाइ को मार्च 1916 तक अपनी तमाम राजाज्ञाओं को वापस लेना पड़ा। वह अपने राष्ट्रपति पद के कामों को इस तरह करता रहा मानो कुछ हुआ ही न हो। चीनी इतिहास का युआन शिकाइ अध्याय जून 1916 में उसकी स्वाभाविक मृत्यु के साथ समाप्त हो गया।

27.3 युआन काल के पश्चात् की घटनाएँ

युआन की मृत्यु होने पर, उप राष्ट्रपति ली युआन हांग को राष्ट्रपति बना दिया गया और 1912 के अंतरिम संविधान को फिर से लागू करने के प्रयास किये गये। 1916 और 1917 के वर्षों में संविधान में जबरदस्त फूट पड़ी। एक ओर तो वे लोग थे जिनका क्वोमिंतांग के साथ गठबंधन था, और वे और प्रगतिशील एक-दूसरे के विरोधी थे। दूसरी ओर राष्ट्रपति

ली और प्रधानमंत्री तुआन ची जुई के बीच गंभीर मतभेद थे। उनके बीच इन मुद्दों को लेकर मतभेद थे कि चीन किस तरह का संविधान अपनाये और उसे जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा करने में मित्र ताकतों के साथ शामिल होना चाहिए या नहीं। विवाद उस बिंदु पर पहुँच गया कि राष्ट्रपति ली ने प्रधानमंत्री तुआन को निकाल दिया क्योंकि संसद में बहुमत उसके खिलाफ था। तुआन भी नव सेना की देन और उत्तरी सेना का एक शीर्ष नेता था। अपने निकाले जाने के विरुद्ध, बदले की कार्यवाही के तौर पर उसने उत्तरी सैन्यवादियों को इस बात के लिए उकसाया कि वे राष्ट्रपति और संसद की निंदा करें। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार सचमुच ठप्प हो गयी। ली युआन हांग उस मांचू वंश का सैनिक था जिसका तख्ता पलटा जा चुका था। वह इस स्थिति से निपटने में असमर्थ था, इसलिए उसने दखल के लिए चांग शुन को बुलाया। चांग की सेनाओं ने पीकिंग में प्रवेश किया। ली यानहांग को सलाह दी गयी कि वह संसद को भंग कर दे। 1 जुलाई, 1917 को चांग ने तख्ता पलट करके मांचू वंश की बहाली कर दी। लेकिन वह सैनिक दृष्टि से मजबूत नहीं था, और तुआन ची जुई ने गणतंत्र का झंडा उठाकर उसका सामना किया। पीकिंग और उसके आसपास के सैनिक बलों के भारी समर्थन के बूते पर तुआन बहाल मांचू वंश समाप्त करने में सफल रहा। उसने विजयी होकर पीकिंग में प्रवेश किया और राष्ट्रपति ली के पास उसे दुबारा प्रधानमंत्री नियुक्त करने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया। तुआन ने ली को राष्ट्रपति नहीं रहने दिया और उसकी जगह उप राष्ट्रपति फेंग क्वो-चांग ने ले ली। पूर्ववर्ती नव सेना में, तुआन और फेंग का स्थान केवल युआन शिकाइ से नीचे था और वे कट्टर शत्रु थे। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के रूप में उनका टकराव और भी गंभीर हो गया। इस तरह चीनी इतिहास की सबसे दुर्भाग्यशाली घटना की शुरुआत हुई। यह घटना थी युद्ध सामंतवाद। उत्तरी सैन्यवादियों के बीच आपसी मारामारी का यह दौर कई वर्षों तक चलता रहा जिसमें चीन का भारी नुकसान हुआ और उसकी एकता को खतरा पैदा हो गया।

27.4 युद्ध सामंत और युद्ध सामंतवाद

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पीकिंग में, तुआन और फेंग की गणतंत्रीय सरकार ने नये कानूनों के तहत एक नयी संसद का चुनाव कराया जिसकी बैठक अगस्त 1918 में हुई। इसे आगे चल कर किराये के राजनीतिक गुट आनफू के कारण, आनफू संसद के नाम से जाना गया। आनफू संसद ने, संविधान के प्रति प्रतिबद्धता दिखाते हुए, अपने एक वर्ष के काल, 1918-1919 में कुछ उपाय किये। उसने एक संवैधानिक आयोग की नियुक्ति की जिसने 12 अगस्त, 1919 को एक नये संविधान प्रारूप को अपनाया।

कैंटन, अर्थात् दक्षिण चीन में एक अलग सरकार चल रही थी, क्योंकि दक्षिण ने युआन शिकाइ के खिलाफ विद्रोह कर दिया था। यह सरकार भी अस्थिर थी। कभी वह सन यात सेन के नियंत्रण में रही तो कभी सैनिक नेताओं के अधीन। कुल मिलाकर उत्तर और दक्षिण दोनों जगहों में मनमुटाव और कलह और भयंकर अव्यवस्था समान थी। राजनीतिक स्थिति से क्षुब्ध होकर सन यात सेन के कैंटन छोड़ देने के बाद उत्तर और दक्षिण के बीच 1919 के अंतिम महीनों में, शांति के लिए बातचीत का दौर शुरू हुआ। यह दौर काफी समय तक चला, लेकिन 1928 तक न तो शांति ही कायम हुई और न ही एकता। उस वर्ष च्यांग काई शेक की क्वोमिंतांग सेना ने सैनिक दृष्टि से चीन में एकता कायम कर दी। लेकिन विभिन्न युद्ध सामंती गुटों में राजनीतिक संघर्ष और विभिन्न सैनिक सत्ता केन्द्रों के बीच आपसी मारामारी लगातार चलती रही। ऊपर जिन नामों का उल्लेख किया गया है, उनके अलावा कुछ प्रमुख युद्ध सामंत थे: त्साओ कुम और व्रू पे फू, शिती चांग और चांग त्सोलिन।

इस दौर के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि युआन शिकाइ और दूसरे सैनिक नेताओं में मौलिक कल्पना की कमी थी। छद्म गणतंत्र कायम करने के प्रयास बार-बार विफल हुए और चीनी जनता के लिए उसका कोई अर्थ नहीं निकला। उनके लिए न तो इसमें राजनीतिक स्थिरता ही मिली और न ही भौतिक सुख-समृद्धि। चरित्रहीन सैनिक राजनीतिज्ञों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए केवल अपने व्यक्तिगत हितों को ही साधा, जो कि राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल थे।

युद्ध सामंतवाद का असली संस्थापक, युआन शिकाइ, 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में शक्तिशाली होकर उभरा था। वह यह समय था जब मांचू सरकार के लिए सेना को एक

करने की जिम्मेवारी उसके ऊपर थी। पहले भी, कमजोर होते साम्राज्य ने अपने शत्रुओं से लड़ने के लिए निजी सेनाएँ संगठित करने की छूट दी हुई थी। अंत में साम्राज्य के लिए यह आत्मघाती सिद्ध हुआ, क्योंकि युआन की नवसेना उसके खिलाफ हो गयी। इसका परिणाम यह भी हुआ कि सेना चीनी राजनीति में गहराई से शामिल हो गयी और यह प्रवृत्ति बाद के दौर में भी बरकरार रही। क्वोमिंतांग और साम्यवादी पार्टी दोनों के लिए एक मजबूत सैनिक समर्थन के अभाव में राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना असंभव था।

जो भी हो कुछ युद्ध सामंतों ने सत्ता हथियाने के बाद सुधारक बनने का प्रयास किया। उन्होंने जनता को कुछ आर्थिक लाभ दिलाने के प्रयास किये। लेकिन, इससे पहले कि वे कुछ कर पाते, वे सत्ता संघर्ष के पचड़े में फंस गये। बड़े युद्ध सामंतों का वर्णन करते हुए, जॉन फेयर बैंक ने टिप्पणी की है कि:

> "एक अर्थ में बड़े युद्ध सामंत राजनीतिक शक्ति के गंभीर विघटन के प्रतीक थे। उन्होंने एक ऐसे नितांत खंडित समाज के शीर्ष पर बैठने का प्रयास किया जिसमें स्थानीय गुंडे, डाकू, सरदार और छोटे युद्ध सामंत सभी एक बदतर होती राजनीतिक अव्यवस्था के प्रतीक थे।"

युद्ध नेतागीरी की दुर्भाग्यशाली घटना और उसकी राजनीति को दो कोणों से देखा जा सकता है:

i) प्रांतों के दृष्टिकोण से यह प्रादेशिक सेनाओं का अध्ययन है और

ii) केंद्र के कोण से देखने पर पीकिंग के वर्तमान राजनीतिक और सैनिक संघर्षों का परीक्षण आवश्यक हो जाता है।

इन दो दृष्टिकोणों से हमें चीनी इतिहास में युद्ध सामंतवाद के स्थान का मूल्यांकन करने में मदद मिलती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आसान शब्दों में कहें तो, युद्ध सामंत वह व्यक्ति होता था जिसके पास एक निजी सेना होती थी, जिसका किसी क्षेत्र पर कब्जा या कब्जे का प्रयास होता था, और वह कमोबेश स्वाधीन रहकर कार्य करता था। युद्ध सामंत के लिए प्रचलित चीनी शब्द **"चन-फा"** का अर्थ होता है कि एक ऐसा स्वार्थी सेनापति जिसमें सामाजिक चेतना अथवा राष्ट्रीय भावना नहीं के बराबर होती है। कुछ लोगों का यह तर्क है कि उस समय के सैनिक नेताओं में जो विविध व्यक्तित्व पाये जाते थे, उनके लिए "प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय सैन्यवादी" शब्द कहीं अधिक तटस्थ है। अन्य लोगों का तर्क यह है कि "युद्ध सामंत" कहीं अधिक उपयुक्त शब्द है क्योंकि इसमें हिंसा और नागरिक प्राधिकार हड़प लेने के अर्थ निहित हैं। जो भी हो, युद्ध सामंत की पहचान उसके लक्ष्यों से नहीं, इस बात से होती थी कि वह किस प्रकार का अधिकार चलाता था। उनके युद्ध सामंत क्योंकि किसी प्रांत के सैनिक गवर्नर थे, इसलिए **"फू-चुन"** शब्द का इस्तेमाल युद्ध सामंत अथवा प्रादेशिक सैन्यवादी के पर्याय के रूप में किया जाता है।

युद्ध सामंतों में विविधता थी और उनके चरित्र और नीतियों का जो सामान्यीकरण किया जाता है, उनमें से अधिकांश की अपनी सीमाएँ हैं. युआन शिकाइ की मृत्यु के बाद के पहले दो या तीन वर्षों में जो युद्ध सामंत प्रमुख थे, वे चिंग सैनिक स्थापनाओं में वरिष्ठ अधिकारी रह चुके थे। इन सामंतों का चिंतन और उनके मूल्य कन्फ्यूशियसी सांचे में ढले थे। तुआन ची जुई, फेंग क्वो-चुंग और फांग शू इसी श्रेणी के युद्ध सामंत थे। 1920 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक, युद्ध सामंतों की एक दूसरी पीढ़ी उभर कर सामने आने लगी थी। इनमें से अनेक अत्यंत साधारण पृष्ठभूमि से थे। सैकड़ों युद्ध सामंतों में से, बहुत कम के विषय में ही हमारे पास जानकारी है, जिसके बल पर ही हम उनकी विशेषताओं के बारे में कोई गहन अध्ययन कर सकते हैं। लेकिन, उन सबके पास निजी सेनाएँ थीं और उनका किसी क्षेत्र पर कब्जा या कब्जे का प्रयास था।

27.4.1 सेनाएँ, गुट और राज्यतंत्र

युद्ध सामंतों की सेनाओं के पास संगठन की स्वायत्तता होती थी जिसके कारण दूसरे सेनापतियों को वे विरासत में अक्षुण्ण मिल जाती थी। वे किसी एक व्यक्ति के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा से बंधी नहीं थी। वास्तव में तो, राजनीतिक लाभ के लिए किसी सेनापति के निकटतम समर्थक भी उसे किसी भी समय छोड़ सकते थे। फिर भी, "निजी सेना" का जुमला एक दो संबंधित कारणों से उपयुक्त है:

i) पहला, सेना के उपयोग के विषय में निर्णय खुद सेनापति का चलता था, उसके वरिष्ठ अधिकारियों का नहीं। वाहिनी (ब्रिगेड) का ऐसा सेनापति सामान्य तौर पर युद्ध सामंत नहीं होता था जो अपनी वाहिनी को कर्तव्यपूर्वक वहां ले जाता था जहां उसके वरिष्ठ अधिकारी आदेश देते थे। युद्ध सामंत वह होता था जो अपने स्तर पर इस बात का निर्णय लेता था कि वह अपनी वाहिनी के साथ क्या करेगा, या क्या नहीं करेगा। दिशा हमेशा स्पष्ट नहीं थी, लेकिन अंतर वास्तविक थे। इस तरह, सेना इसलिए निजी सेना होती थी क्योंकि सैनिकों की नियुक्ति उनका सेनापति स्वाधीन होकर करता था और उन्हें उसके निजी आदेश पर चलना होता था, और उनका इस्तेमाल उसके वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ भी किया जा सकता था।

ii) दूसरा, कोई सेनापति उस स्थिति में इस तरह का स्वाधीन अधिकार अपने पास संभवतः अधिक रखता था जहां उसके और उसके कुछ महत्वपूर्ण अधिकारियों के बीच स्नेह, निष्ठा या कर्तव्य के निजी संबंध उनके सांगठनिक संबंधों से ऊपर निकल जाते थे।

शुरुआती दौर में सैनिक अनुशासन चीनी सेना की विशेषता तो रही, लेकिन बाद में दूसरे सैन्यवादियों के साथ टकराव के प्रत्येक जगह मौजूद खतरे के सामने और कमजोर सरकारी संस्थाओं और उनकी अपनी कार्यवाहियों की संदिग्ध वैधता के संदर्भ में युद्ध सामंतों ने अपनी सेनाओं पर अपने प्राधिकार को मजबूत करने का प्रयास किया। इस प्रयास में उन्होंने चीनी परंपरा में लंबे समय से पवित्र माने गये व्यक्तिगत संबंधों का लाभ उठाया। युद्ध सामंतों ने इस तरह के जिन संबंधों का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए किया उनमें शिक्षक-छात्र के पारिवारिक संबंध और एक ही विद्यालय से पढ़ाई पूरी करने वालों के बीच के संबंध, विशेषकर एक ही कक्षा में पढ़े छात्रों के बीच संबंध और व्यक्तियों के बीच स्थापित संबंध शामिल थे। युद्ध सामंतों ने तो इस प्रकार के व्यक्तिगत संबंधों का इस्तेमाल अपने अधिकारियों में निष्ठा का भाव पैदा करने के लिए किया और उनके मातहतों के अक्सर अपने खुद के मातहतों के साथ इसी प्रकार के संबंध होते थे। कुछ सेनापतियों ने इन द्वैतीयक (या दूसरे स्तर पर पायी जाने वाली) निष्ठाओं को कम से कम करने और तमाम स्वामिभक्ति को अपने पर केंद्रित करने का प्रयास किया। लेकिन इन निष्ठाओं को समाप्त करना कठिन काम था। इस दूसरे स्तर पर पायी जाने वाली निष्ठा ने सैनिक संगठन में कमजोरी का रूप ले लिया था। होता यह था कि जब कोई मातहत सेना से छूट कर अलग होता था तो वह अपने साथ अपने अनुयायियों और उनके आदमियों को भी ले जाता था। इसलिए, एक सेना से टूट कर दूसरी सेना में मिल जाने के निमंत्रण युद्ध सामंतों की राजनीति की एक अहम चाल बन गए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन सामंतों की सेनाओं के सैनिक अधिकांश वे किसान थे जिन्होंने घोर गरीबी भोगी थी। 1916 में, इन सेनाओं में लगभग पांच लाख लोग थे और 1928 तक इनकी संख्या बढ़ कर 20 लाख से भी ऊपर हो गयी। अनेक लोगों के लिए सेना एक ऐसा शरणस्थल था जहां वे जिंदा रह सकते थे। दूसरे लोग इसे एक गरीब अनपढ़ आदमी के लिए ऊँचा उठने का अवसर मानते थे। कुछ स्थितियों में, जहां सेनापति अपनी सेना को नियमित वेतन नहीं दे पाते थे, वहां सैनिक आशा रखते थे कि वे लूटपाट के जरिए अपना मेहनताना निकाल लेंगे। लड़ाई एक तरह की भर्ती भी होती थी, क्योंकि अक्सर जीतने वाला युद्ध नेता पराजित सेना को अपनी सेना में मिला लेता था। इन सेनाओं ने चीनी सेना को बहुत बदनामी दिलवायी। उन्हें प्लेग, दुष्ट, विनाशकारी, निर्दयी के रूप में देखा जाता था।

क्षेत्रीय कब्जे के बिना एक स्वाधीन सेना बनाये रखना कठिन काम था। क्षेत्र पर कब्जा होने से युद्ध सामंत को एक सुरक्षित अड्डा और राजस्व सामग्री और आदमी मिल जाते थे। बिना क्षेत्रीय अधिकार वाला सेनापति किसी और के अधिकार क्षेत्र में एक असुरक्षित अतिथि होता था। उसे एक अधीनस्थ परिस्थिति के साथ नियंत्रण अथवा क्षेत्र पर अधिकार के लिए लड़ना होता था। क्षेत्रीय नियंत्रण होने से एक मनमाने से मनमाने युद्ध सामंत को भी वैधता मिल जाती थी। इसमें शासन और प्रशासन की जिम्मेदारी भी शामिल होती थी। युद्ध सामंत की सरकार के चरित्र और क्षमता में अत्यंत विविधता होती थी। कुछ सरकारों में प्रगतिशीलता देखने को मिलती थी तो दूसरी सरकारें कट्टर रूढ़िवादी होती थीं, सभी सरकारों में सेना का स्थान सबसे प्रमुख होता था, इसलिए नागरिक या गैर-सैनिक अधिकारी सैनिक गवर्नर के अधीन होते थे।

युद्ध सामंतों की सरकारों की गहन चिंता का विषय होता था युद्ध सामंत और उसके मुख्य मातहतों की निजी श्रीवृद्धि के लिए और सेना को हथियार, रसद और वेतन उपलब्ध कराने

के लिए कोष जुटाना। सरकार अक्सर सभी स्तरों पर युद्धों और सैनिकों के तेजी से बदलने से अव्यवस्थित रहती थी और अनेक युद्ध सामंत अपने क्षेत्रीय आधिपत्यों को अस्थायी मानते थे, इसलिए उनके लिए राजस्व जुटाने के स्थापित तरीकों पर हमेशा निर्भर करना संभव नहीं था। जिस तरह भी संभव होता था, वे आक्रामकता और कल्पना के सहारे धन और संसाधन जुटाने का प्रयास करते थे। राजस्व का बुनियादी स्रोत भूमि कर था जिसे तमाम प्रथाओं और रीतियों को ताक पर धर कर जमा किया जाता था। वे महत्वपूर्ण वस्तुओं पर सरकार का एकाधिकार भी जमाते थे। वे रेल मार्गों पर कब्जा करते और उन्हें खुद चलाते थे, नमक पर पूरक कर लगाते थे, और इधर से उधर ले जाये जाने वाली वस्तुओं पर कर लगाते थे। अफीम की बिक्री पर रोक लगाने के नाम पर, भारी कर वसूले जाते थे। व्यापारियों का आम करों के अलावा और भी तरीकों से दोहन किया जाता था। कोष जमा करने के इन प्रयासों के बावजूद प्रांतीय सरकारें अक्सर दिवालियेपन की कगार पर रहती थीं। सरकारी खर्चों के लिए बहुत ही कम धन रहता था। कारण आसान था: अधिकांश धन सैनिक सामंतों की निजी संपत्ति बनाने या सेना के रख-रखाव में इस्तेमाल हो जाता था।

प्रमुख युद्ध सामंत गुटों के सदस्य होते थे। ये गुट समान व्यक्तिगत हितों से आपस में उसी तरह बंधे होते थे जैसे राजनीतिक घटक एक-दूसरे से बंधे रहते हैं। लेकिन युद्ध सामंतों के गुटों का जुड़ाव ढीली-ढीली संबद्धता वाले गुटों से संबद्ध होने वाले लोग बुनियादी तौर पर अपना-अपना लाभ देखकर उनसे जुड़ते थे। लेकिन व्यक्तिगत साथ और बंधन की भी भूमिका होती थी, जो विशेषकर मजबूत एकता वाले गुटों में देखने को मिलती थी। महत्वपूर्ण संबंध प्रत्येक गुट के सदस्य और उसके नेता के बीच होता था। गुट के सदस्यों के बीच के व्यक्तिगत, स्वाभाविक संबंध कमजोर या अनुपस्थित हो सकते थे। गुट के सदस्यों और नेता के बीच के व्यक्तिगत संबंध ठीक वैसे ही होते थे जिनका उल्लेख पहले युद्ध सामंत की सेनाओं के पूरक संबंधों के रूप में किया जा चुका है, अर्थात्, पारिवारिक संबंध, शिक्षक-छात्र और संरक्षक-संरक्षित संबंध, समान प्रांतीय या स्थानीय मूल के संबंध. मित्रता, अकादमी या स्कूल के संबंध।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

गुट युद्ध सामंतों के गुटों के अंदर भी बन जाते थे। उदाहरण के लिए, चीली गुट दो गुटों में बंट गया: एक वू पेई-फू के अधीन और दूसरा जाओ कुन के अधीन। जाओ गुट फिर से विघटित हो गया। इन गुटों में इस बात को लेकर तू-तू मैं-मैं होती रही कि कौन किस पद पर रहेगा और किसके पास कौन सा राजस्व रहेगा। गुट फेंगटीयुन गुटों में भी रहे, जो आगे चलकर "नये" और "पुराने" गुटों के नाम से जाने गये, क्योंकि इन गुटों में आधुनिक सैनिक प्रशिक्षण पाये युवा अधिकारियों और चिंग सेना की सेवा में रह चुके अधिकारियों के बीच स्पष्ट मतभेद थे।

27.4.2 युद्ध

स्थानीय प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तरों पर वास्तव में सैंकड़ों हथियार बंद छोटी और लंबे समय की, झड़पें हुई। अनेक युद्ध तो प्रांत या गांव जैसे किसी प्रशासनिक क्षेत्र पर कब्जे के लिए छेड़े गये। दूसरे युद्ध प्रशासनिक क्षेत्रों के पार स्थानीय या प्रादेशिक आर्थिक तंत्रों के कब्जे के लिए लड़े गये। बड़े गुटों के बीच हुए युद्धों की ओर लोगों का ध्यान कहीं अधिक रहा क्योंकि ऐसे युद्ध ही इस बात का निर्धारण करते थे कि पीकिंग की राष्ट्रीय सरकार पर किसका प्रभुत्व रहेगा। होता यह था कि जब एक गुट एक वचन देता कि वह अपनी शक्ति बढ़ाकर दूसरे सैन्यवादियों को रोके रखेगा और एक शुद्ध केंद्र-केंद्रित नियंत्रण बनायेगा, तभी दूसरे प्रमुख युद्ध सामंत अस्थायी तौर पर अपनी ताकत संयुक्त करके उस गुट को गिरा देते। इस तरह, 1920 में चीली और फेंगतीयुन गुटों ने आपस में सहयोग करके पीकिंग सरकार में आनस्वे गुट की शक्ति को समाप्त कर दिया, और अधिकांश प्रांतों को विजेताओं के हवाले कर दिया।

वैसे तो प्रत्येक युद्ध में एक स्पष्ट विजेता उभर कर सामने आया, फिर भी अधिक गहन अर्थ में ये युद्ध अधूरे ही रहे, क्योंकि किसी भी गुट के पास सरकार की राजनीतिक शक्ति का विकास करने के लिए कोई लंबे समय की योजना नहीं थी। प्रत्येक युद्ध सामंत का प्रमुख लक्ष्य अपना अलग और व्यक्तिगत था: अर्थात् अपनी शक्ति को अधिक से अधिक करना। प्रत्येक व्यक्ति इसलिए किसी गुट का सदस्य नहीं था कि वह उस गुट के लक्ष्यों में अपना योगदान देना चाहता था, बल्कि इसलिए कि वह ऐसी स्थिति में अपना योगदान देना चाहता था, जिसमें उसका अपना व्यक्तिगत लाभ हो। किसी गुट के नेता के लिए यह तो

संभव था कि वह देश को एकता के सूत्र में बांधने की आशा करे, लेकिन वह एक दल पर अकेला खड़ा होता था। प्रत्येक गुट के नेता की एकता को लेकर न केवल एक सरल धारणा होती थी, बल्कि उसके लक्ष्य की प्राप्ति उसके शत्रुओं और समर्थकों दोनों के लिए खतरा भी बनी रहती थी। इसका कारण यह था कि उस युद्ध सामंत के सत्ता के सपनों के पूरा होने का अर्थ होता था उनके हाथ से स्वाधीनता का छिनना, जो कि युद्ध सामंतों के रूप में उनकी स्थिति का मूल था। युद्ध सामंतों के गुटों के लक्ष्यों का अस्थायी और कम समय का होना इस दौर की अत्यधिक अस्थिरता का एक प्रमुख कारण था। सैनिक मुठभेड़ों के रूप में कुछ बड़े युद्ध बहुत कम समय के थे, लेकिन युद्ध सामंतवाद के युग की आम प्रवृत्ति यह रही कि इस दौर में बड़ी-बड़ी सेनाएँ कहीं बड़े लंबे समय के और खून-खराबे वाले युद्धों में लगी रहीं।

27.4.3 युद्ध सामंत और विदेशी ताकतें

युद्ध सामतवाद से फैली अव्यवस्था और पीकिंग सरकार की स्थायी कमजोरी का परिणाम यह हुआ कि चीन विदेशी दबावों और अतिक्रमणों के प्रति विशेष रूप से असुरक्षित हो गया। लेकिन साथ ही साथ, इस व्यापक अव्यवस्था के कारण विदेशी गतिविधियाँ सीमित रहीं और विदेशी उद्यमों के हाथों चीन के आर्थिक शोषण में बाधा पड़ी। युद्ध सामंतों ने समय-समय पर विदेशी फर्मों पर कराधान को मनमाने ढंग से बढ़ा दिया। सिपाहियों और लुटेरों ने विदेशी जान-माल को नुकसान पहुंचाया। उदाहरण के लिए, सात वर्षों की अवधि में एक ही जिले में 153 अमेरिकी व्यक्तियों या फर्मों को लूट लिया गया। लूटमार और युद्ध ने सामान्य व्यापार और व्यापारिक गतिविधियों को छिन्न-भिन्न कर दिया।

विदेशियों ने इन स्थितियों का जवाब धमकी और कुंठा में दिया। विदेशी प्रतिनिधियों ने पीकिंग स्थित चीनी सरकार के आगे लगातार विरोध प्रकट किया। लेकिन केंद्रीय अधिकारी अपनी कमजोरी के कारण कोई प्रभावी कार्यवाही नहीं कर सके। विदेशी ताकतों को अक्सर विशिष्ट स्थानीय मामलों को लेकर स्थानीय या प्रादेशिक सैनिक नेताओं के साथ संपर्क करने को बाध्य होना पड़ता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विदेशी जिस व्यवस्था की शिकायत करते थे, अक्सर उस अव्यवस्था में उनका अपना भी योगदान होता था। संपन्न विदेशी सिपाहियों ने चीनी युद्धों में सचमुच भूमिका निभायी। उदाहरण के लिए, एक अंग्रेज एक युद्ध सामंत के शस्त्रागार का संचालन करता था। और एक और युद्ध सामंत के लिए तीन अमेरिकी विमान चालकों ने कुछ महीनों तक बमवर्षक विमान उड़ायें। कहीं अधिक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह था कि चीनियों की बंदूकों के लिए तृप्त न होने वाली मांग का जवाब विदेशियों ने कानूनी पाबंदियों के बावजूद चीन में हथियारों का आयात करके दिया। शस्त्र व्यापारियों ने हथियार खरीदने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के हाथों हथियार बेच डाले। उन्होंने यह भी चिंता नहीं की कि इसके राजनीतिक परिणाम क्या हो सकते थे। कुछ विदेशी सरकारों ने वास्तव में कुछ चुने हुए नेताओं को प्रायोजित किया। उदाहरण के लिए युद्ध सामंतवाद के इस पूरे दौर में जापान चीनी सैन्यवादियों के साथ स्पष्ट तौर पर शामिल रहा।

सनु 1916 में जापानी सरकार ने आनवे गुट के नेता तुआन जी हुई को पूरा समर्थन देने की नीति चलायी। इसका उद्देश्य चीन और जापान के बीच वित्तीय बंधन और राजनीतिक और आर्थिक सहयोग के निकट संबंध स्थापित करना था। आगामी दो वर्षों के दौरान जापान ने युआन को 15 करोड़ येन से भी अधिक दिए। यह राशि प्रकट तौर पर तो राष्ट्रीय विकास के लिए दी गयी थी, लेकिन युआन ने इसका इस्तेमाल व्यापक तौर पर अपने ही राजनीतिक और सैनिक उद्देश्यों के लिए किया। दोनों सरकारों के बीच एक सैनिक समझौता भी हुआ जिसके तहत जापान को चीन को सहायता और सलाहकार देने थे, जिससे चीन प्रथम विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की मदद के लिए युद्ध भागीदारी सेना का गठन करता। यह सेना कभी यूरोप नहीं गयी, बल्कि उसने युआन की सैनिक शक्ति का विस्तार करने का काम किया। इससे जापान को चीन का राजनीतिक और आर्थिक अतिक्रमण करने में बहुत मदद मिली।

27.4.4 पीकिंग का दृष्टिकोण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पीकिंग स्थित राष्ट्रीय सरकार युद्ध सामंतवाद युग के 12 वर्षों में भयंकर रूप से अस्थिर रही। सात व्यक्तियों ने इस बीच राज्याध्यक्ष का पद संभाला। उनमें से एक तो दो बार इस पद पर रहा। इस तरह, वास्तव में आठ

शासनाध्यक्ष सत्तारूढ़ रहे। विद्वानों की गणना के अनुसार, चौबीस मंत्रिमंडल, पाँच संसदें या राष्ट्रीय सभाएँ और कम से कम चार योगदान या बुनियादी कानून इस बीच रहे। व्यक्तियों, अधिकारियों और कानूनी और राजनीतिक बदलावों की इस भरमार के कारण पीकिंग की राजनीति का कोई स्पष्ट तर्कसंगत विवरण देना कठिन हो जाता है। युआन की मृत्यु के बाद, तुआन सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में उभर कर सामने आया था। वह युआन की सरकार में भी प्रधानमंत्री रह चुका था। उसे गणतंत्रवादियों का कोई समर्थन प्राप्त नहीं था। गणतंत्रवादी तुआन का विरोध करने की गरज से दूसरे सैन्यवादियों के साथ हो लिए थे। तुआन ने अपनी ओर से अपने आपको एक मजबूत स्थिति में रखने के लिए अपने सैनिक आधार को और भी शक्तिशाली बना लिया। यह तनाव 1917 में विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से चीन की भागेदारी के मुद्दे को लेकर चरम पर पहुँच गया। 1917 और 1920 के बीच एक के बाद एक सैनिक गुट उभरे, जिससे चीनी समाज ध्वंस के कगार पर पहुँच गया।

बोध प्रश्न 1

1) लगभग 10 पंक्तियों में 1911-1916 के दौरान चीन में राजनीतिक अस्थिरता के कारणों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही (✓) है, और कौन-सा गलत (✗)? निशान लगाइए।

i) चीनी गणतंत्र की स्थापना नानकिंग में 1 जनवरी, 1912 को हुई।

ii) युआन शिकाइ का युद्ध सामंतवाद से कोई लेना-देना नहीं था।

iii) जापान ने युआन शिकाइ का समर्थन किया।

iv) युद्ध सामंत अपने हित साधने से ज्यादा जनता के कल्याण में रुचिशील थे।

3) लगभग 10 पंक्तियों में युद्ध सामंतों की सेनाओं के गठन में योगदान देने वाले कारकों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

27.5 युद्ध सामंतवाद और चीनी समाज

पिछले अनुच्छेद में हम देख चुके हैं कि अपने बीच चीन का बंटवारा कर लेने वाले युद्ध सामंत योग्यताओं और सामाजिक रवैयों के मामले में एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे। इसलिए जिन स्थितियों का पोषण उन्होंने किया वे भी विभिन्न स्थानों और अवधियों में भिन्न-भिन्न रहीं, क्योंकि एक के बाद दूसरा सेनापति स्थानीय या प्रादेशिक स्तर पर पदासीन होता रहा। युद्ध सामंतों के शोषण के विशिष्ट स्वरूपों के बारे में, या उसके हाथों बनी मिल्कियतों के बारे में, कोई भी वक्तव्य किसी एक अवधि में समचे चीन पर लागू नहीं होता। फिर भी यह कहना सही है कि युद्ध सामंत लाखों चीनियों के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आतंक और शोषण का कारण रहे। धन के लिए युद्ध सामंतों की लोलुपता तृप्त न होने वाली थी। तभी तो सैन्यवादियों ने जनता पर अतिशय व्यापक कर लगाये। उन्होंने बड़े पैमाने पर बेकार नोट भी छापे और लोगों को इन्हें स्वीकार करने को मजबूर किया, जिससे व्यापारिक लेन-देन केवल एक प्रकार का संपत्तिहरण होकर रह गये। सैनिक और दूसरे अनुत्पादक उद्देश्यों में अंधाधुंध धन निकल जाने से व्यवस्थित आर्थिक गतिविधि और नियोजन में बाधा पड़ी जिससे निश्चित तौर पर चीन का आर्थिक विकास अवरुद्ध हुआ।

युद्ध सामंतवाद अकाल का कारण भी बना। कुछ प्रांतों में इन सामंतों ने नकदी फसल के तौर पर अफीम की जबरन खेती करवायी जिससे खाद्य फसलें उगाने वाली भूमि कम पड़ गयी। उन्होंने सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण सुविधाओं के लिए आरक्षित सरकारी कोष को कम कर दिया जिसके कारण कुछ विनाशकारी बाढ़ें आयीं। सैनिकों ने बोझा ढोने वाले पशुओं को अपने कब्जे में कर लिया जिससे सीधा आर्थिक नुकसान तो हुआ ही, खेती की उत्पादकता भी कम हो गयी। युद्ध सामंतों के दौर में उत्तर चीन में पड़े भयंकर अकाल स्पष्ट तौर पर युद्ध नेताओं के कुशासन की देन थे। अनेक क्षेत्रों में, झुंड के झुंड अनियंत्रित और अनुशासनहीन सिपाही देहातों में घूमते और किसानों को अपना शिकार बनाते थे। ये वे क्षेत्र थे, जहां संगठित सेनाओं की कार्यवाहियाँ कम गंभीर थीं। हजारों लुटेरे और सैनिक देहात पर निर्भर करते थे। लूट, डकैती और हिंसा आम बात हो गयी थी। विजेता सैनिकों, और भागते सैनिकों को भी, जहां मौका मिलता, वे लूटमार करते थे। युद्धों में अक्सर नागरिकों के जान-माल की बर्बादी होती, सरकारी नौकरियां उपेक्षित या अनुपस्थित रहतीं, और भ्रष्टाचार अव्यवस्था और शोषण आम हो गये थे। उस दौर के विप्लव में हजारों व्यक्तियों को अपने घरबार छोड़ कर देश के दूसरे हिस्सों में चला जाना पड़ा। कहा जाता है कि युद्ध सामंतों के कारण चीन में "इस शताब्दी का एक सबसे बड़ा आंतरिक पलायन" हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युद्ध सामंतवाद ने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के सबसे शक्तिशाली राजनीतिक आंदोलन, चीनी राष्ट्रवाद, के रूप को प्रभावित किया। राष्ट्रवाद आंशिक तौर पर युद्ध सामंतों द्वारा पोषित फूट और अंतर्राष्ट्रीय असुरक्षा का जवाब था। इसके अलावा, अनेक सामंतों ने अपनी कार्यवाहियों को वैधता देने की गरज से राष्ट्रभक्तिपूर्ण और राष्ट्रवादी नारों का उपयोग एक साधन के रूप में किया। युद्ध सामंतों का वास्तविक उद्देश्य जो भी रहा हो, इस तरह उन्होंने इस विचार का पोषण किया कि चीनियों को राष्ट्रीय स्थितियों, राष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा करने के प्रति चिंतित होना चाहिए।

लेकिन युद्ध सामंतों की गतिविधियों ने चीनी राष्ट्रवाद में एक मजबूत सैनिक आयाम बनाने में भी मदद की। युद्ध सामंत खुद तो एक राष्ट्रीय राजनीतिक शक्ति बना नहीं पाये, फिर भी उन्होंने गैर-सैनिक गुटों को तो ऐसा करने से रोका ही। इस तरह से उन्होंने चीनी राजनीति का और अधिक सैन्यीकरण नहीं होने दिया। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, क्वोमिंतांग को युद्ध सामंतों से होड़ करने के लिए एक शक्तिशाली सेना बनानी पड़ी थी, और इस प्रक्रिया में सेना पार्टी पर हावी हो गयी। साम्यवादियों ने भी अपने अस्तित्व में आने के कुछ वर्षों के भीतर ही, क्वोमिंतांग और दूसरे विपक्षियों से होड़ करने के लिए एक मजबूत सेना बनाने की आवश्यकता को महसूस कर लिया था।

जो भी हो अंतिम विश्लेषण में यही बात सामने आती है कि यह सैन्यीकरण न तो गहन था और न ही स्थायी। युद्ध सामंतवाद के दो प्रकट रूप से परस्पर विरोधी तथ्य सामने आये :

i) आधुनिक चीन में राजनीतिक शक्ति को सैनिक शक्ति से अलग नहीं किया जा सकता, और

ii) सैनिक शक्ति अपने आप में राजनीतिक शक्ति के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, जैसा कि युद्ध सामंतों की विफलता दिखाती है।

राष्ट्रवाद पर भी सभी ने जोर दिया। किसी भी युद्ध सामंत ने कभी किसी नये राज्य की घोषणा नहीं की, न ही यह संकेत दिया कि उसकी पृथकता स्थायी थी। युद्ध सामंतों ने अपने सार्वजनिक वक्तव्यों में नागरिक या गैर-सैनिक शासन की मजबूत परंपरा को भी माना। साथ ही, उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि नागरिक शासन सैनिक शासन से श्रेष्ठ न हो। एक इतिहासकार, जेम्स शेरीडन, ने टिप्पणी दी है कि :

> .... युद्ध सामंतों के योगदान से चीनी राजनीति के अस्थायी सैन्यीकरण के बावजूद, चीन में सत्ता के संघर्ष में अंतिम विजेता साम्यवादी पार्टी इस बुनियादी सिद्धांत को लेकर चली कि पार्टी को बंदूक पर नियंत्रण रखना चाहिए।

इसी तरह युद्ध सामंतों की प्रादेशिक शक्ति ने चीन में प्रादेशिक विभाजन को मजबूत करने के लिए कुछ नहीं किया। प्रदेशों का एकताबद्ध चीन में एक सामान्य अस्तित्व था, इस तथ्य से यह अर्थ निकलता है कि युद्ध सामंतों का क्षेत्रवाद उतनी विनाशकारी शक्ति नहीं थी जितनी कि वह अन्यथा हो सकती थी। राष्ट्रीय एकता की बहाली के लिए क्षेत्रवाद को नहीं बल्कि क्षेत्रवाद पर पलने वाली स्वाधीन सैनिक शक्ति को नष्ट करना आवश्यक था।

अधिकांश युद्ध सामंत पारंपरिक मूल्यों से मजबूती से जुड़े रूढ़िवादी व्यक्ति थे। विरोधाभास यह रहा कि उन्होंने जिस फूट और अव्यवस्था का पोषण किया, उन्हीं के कारण बौद्धिक अनेकता को पनपने का सुअवसर मिला। विश्वविद्यालयों, पत्रिका प्रकाशन, उद्योगों और चीन के बौद्धिक जीवन के दूसरे अभिकरणों पर दक्षता के साथ नियंत्रण करने की क्षमता न तो केंद्र सरकार में थी, न ही प्रांतीय युद्ध सामंतों में। उन वर्षों में चीनी बुद्धिजीवी, आंशिक तौर पर युद्ध सामंतवाद के जवाब में, उस गहन विचार-विमर्श में लगे थे कि चीन को किन तरीकों से आधुनिक और मजबूत बनाया जा सकता था। 1921 में साम्यवादी पार्टी की स्थापना और 1924 में क्वोमिंतांग का पुनर्गठन आंशिक तौर पर इस बौद्धिक उत्कर्ष की देन थे। इस तरह, एक ओर तो युद्ध सामंतवाद के वर्ष बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक एकता की कमजोर स्थिति के प्रतीक थे, और दूसरी ओर, वे बौद्धिक और साहित्यिक उपलब्धि के चरम का भी प्रतीक थे। उस विप्लव और खून खराबे वाले युग में से आंशिक तौर पर युद्ध सामंतों के जवाब में वे बौद्धिक और सामाजिक आंदोलन से प्रभावित हुए जिनकी परिणति चीन के पुनरेकीकरण और कायाकल्प में हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही (✓) हैं, और कौन-से गलत (×)? निशान लगाइए।

   i) युद्ध सामंतवाद से बनी स्थितियाँ पूरे चीन में एक सी थीं।

   ii) युद्ध सामंतों ने अपने खुद ।

   iii) युद्ध सामंतों ने अपने खुद के हितों को साधने के लिए राष्ट्रभक्तिपूर्ण नारों का इस्तेमाल किया।

   iv) युद्ध सामंतों के दौर में राजनीतिक शक्ति को सैनिक शक्ति के बिना व्यक्त किया जा सकता था।

2) लगभग 15 पंक्तियों में चीनी समाज पर युद्ध सामंतवाद के प्रभाव का विवेचन करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

....

....

....

....

....

....

27.6 क्वोमिंतांग का उदय

अपने जन्म से ही, क्वोमिंतांग का इतिहास उसके नेताओं के व्यक्तित्वों का परस्पर प्रभाव रहा है। पहले सन यात सेन और हवांग शिंग और फिर च्यांग काई शेक। यन यात सेन और हवांग शिंग ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत गुप्त संगठनों के नेताओं के रूप में की, जिनका 1905 में तुंग मेंग हुई में विलय हो गया। उसके बाद से सन यात सेन मृत्यु पर्यन्त उस संगठन का निर्विवाद नेता रहा। सन यात सेन की मृत्यु 1925 में हुई। तुंग मेंग हुई के नेतृत्व में मांचू विरोधी आंदोलन आगे बढ़ा तो अनेक अवसरवादी और स्वार्थी लोग इसमें शामिल हो गये। इसी तरह, यह महसूस करने वाले अनेक उच्चाधिकारियों और परंपरावादी विद्वानों ने भी विजेता पक्ष में शामिल हो जाने का निर्णय ले लिया कि मांचुओं के प्रति निष्ठावान रहने में कोई लाभ नहीं था। इस कारण तुंग मेंग हुई के लिए प्रगति और विकास की कोई एक समान नीति बनाना कठिन हो गया। सन यात सेन के युआन शिकाई के पक्ष में राष्ट्रपति पद छोड़ने और कुछ समय के लिए राजनीतिक रूप से सक्रिय न रहने का भी क्वोमिंतांग के संगठन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। हवांग शिंग भी निष्क्रिय रहा, उसने अपनी सेना को इस आशा से भंग कर दिया कि दूसरे सैनिक नेता भी ऐसा ही करेंगे। यह चीन का दुर्भाग्य रहा कि इस उदाहरणीय आचरण का अनुसरण नहीं किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सुंग जियाओरेन के राजनीतिक विचार सन और हवांग से भिन्न थे। सुंग चीन में मंत्रिमंडलीय ढंग की सरकार स्थापित करने और उसकी उपलब्धियों में क्वोमिंतांग को एक निर्णायक भूमिका देने को कृतसंकल्प था। सुंग स्वार्थी व्यक्ति नहीं, बल्कि उत्साही आदर्शवादी और प्रखर बुद्धि का था। उसकी आस्था संसदीय जनतंत्र, मंत्रिमंडलीय सरकार और दलीय प्रणाली में थी। उसकी आशा यह थी कि केवल इसी तरह की प्रणाली के माध्यम से चीन प्रगति कर सकता और स्थिर हो सकता था, और सैनिकों को नागरिक राजनीति से बाहर करने का यह सबसे अच्छा तरीका था। संवैधानिक व्यवस्था में पार्टी को एक प्रभावी माध्यम बनाने की गरज से सन ने अगस्त, 1912 में संगठन को फिर से दिशा दी। इस नये संगठन में तुंग मेंग हुई को केंद्र में रखा गया और दूसरी नवोदित छोटी पार्टियाँ उसमें शामिल हो गयीं। 1912-13 के चुनाव क्वोमिंतांग के लिए भी और व्यक्तिगत तौर पर सुंग जिय़ाओरेन के लिए भी सफलदायी रहे। वह सरकार का गठन करने को तैयार था। युवान शिकाई ने सुंग की सफलता से भयभीत होकर संसद बुलाये जाने से पहले ही उसकी हत्या करवा दी।

क्वोमिंतांग के नेताओं ने समझ लिया कि सुंग की हत्या और पुनर्गठन ऋण का इस्तेमाल युआन की शक्ति को मजबूत करने के लिए किया जाएगा। उन्हें अपना राजनीतिक भविष्य अंधकारमय लगा। उन्होंने इस बात को समझा कि 1911 की क्रांति का अंत तब तक नहीं होता जब तक युआन के हाथों सत्ता थी। इसी स्थिति में 1913 की दूसरी क्रांति हुई। लेकिन उस समय तक क्वोमिंतांग अपने आपको व्यापक जनाधार से काट चुकी थी। युआन शिकाई को साम्राज्यवादियों का समर्थन प्राप्त था। उसी वर्ष नवम्बर में, युआन ने क्वोमिंतांग को भंग करके उसे अवैध घोषित कर दिया। उसके तमाम समर्पित सदस्य भूमिगत हो गये।

एक भूमिगत संगठन के रूप में उसने अपना नाम चीनी क्रांतिकारी पार्टी (क्वोमिंतांग) रख लिया। संगठन के नेता, सन यात सेन का राजनीतिक दर्शन पार्टी की विचारधारा रही। सन ने तीन जन सिद्धांतों और तीन शासकीय चरणों पर जोर दिया।

तीन जन सिद्धांतों में थे :

- जनता का राष्ट्रवाद

- जनता का जनतंत्र, और
- जनता और आजीविका।

शासकीय चरणों में सरकार की उसकी अवधारणा का अभिप्राय यह था कि चीन को चरणों में एक प्रकार की सरकार से दूसरी उच्चतर प्रकार की सरकार की ओर बढ़ना चाहिए :

- पहले प्रकार की सरकार सैनिक सरकार होगी,
- दूसरे चरण में चीन को क्वोमिंतांग के राजनीतिक संरक्षण में रहना था, और
- अंत में चीन में संवैधानिक सरकार होगी।

सन ने सबसे पहले 1905 में इन विचारों को व्यक्त किया था। ये विचार चीनी क्रांतिकारी पार्टी की अधिकारिक विचारधारा हो गये (देखिए इकाई 21)।

इस पार्टी के सदस्यों से सन ने निष्ठा और उंगलियों के निशान की मांग की। सदस्यों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया :

i) संस्थापक सदस्य,

ii) सक्रिय सदस्य, और

iii) साधारण सदस्य।

सन के निकटतम साथी, हवांग शिंग ने प्रकट तौर पर इस तरह के सदस्यों के स्तरीकरण और उनके उंगलियों के निशान लेने पर आपत्ति की। मतभेद बढ़े और वे अलग हो गए। हवांग शिंग के स्थान पर क्रांतिकारी विश्वसनीयता वाले सैनिक गवर्नर चेन ची में को सन का मुख्य सहायक नियुक्त किया गया। लेकिन यह पार्टी एक जनाधार वाला संगठन नहीं बन सका, क्योंकि अनेक लोग इसे किसी गुप्त संगठन से बिल्कुल भी भिन्न नहीं मानते थे। पहले जिन कुछ बुद्धिजीवियों ने सन के साथ अपने आपको झोंक दिया था, उन्होंने अब इस पार्टी में शामिल होने से मना कर दिया। इसके स्थान पर उन्होंने यूरोपीय मामलों की अनुसंधान समिति का गठन कर लिया। तथाकथित तौर पर यह एक विवेचन गुट था, लेकिन वास्तव में इसने एक राजनीतिक दल की तरह काम किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चीनी क्रांतिकारी पार्टी के खाते में बहुत कम उपलब्धियाँ थीं। एक विफल विद्रोह के अलावा, इसकी एकमात्र दूसरी भूमिका युआन शिकाई के खिलाफ अभियान में रही। कुल मिलाकर यह पार्टी जनता के नेतृत्व संभालने में विफल रही, और उभरते सैनिक कुलीनों के खिलाफ किसी जन आंदोलन का नेतृत्व करने की स्थिति में नहीं थी।

राजनीतिक परिदृश्य से युआन शिकाई के गायब हो जाने के बाद क्वोमिंतांग के तत्व विभिन्न गुटों और धड़ों में बंट गये। 1916-17 में, क्वोमिंतांग के पूर्ववर्ती सदस्य दक्षिण से वाम की ओर इस तरह गुटों में बंट गये : राजनीतिक अध्ययन समिति, श्रेष्ठ मित्र समिति, राजनीति सभा और जन मित्र समिति। राजनीतिक अध्ययन समिति उत्तरी सैन्यवादियों के साथ सौदेबाजी करना चाहती थी। जन मित्र समिति के अधिकांश सदस्य सन के अनुयायी और क्रांतिकारी पार्टी के सदस्य थे और वे तुआन ची जुई के कट्टर विरोधी थे। इन वर्षों के दौरान कैंटन स्थित दक्षिणी सरकार पुराने संविधान और पुरानी संसद की बहाली पर जोर देती रही। राजनीतिक अध्ययन समिति दक्षिणी सैन्यवादियों के गठबंधन में तो रही ही, लेकिन उसके उत्तरी सैन्यवादियों से भी संबंध रहे। इसके कारण सन यात सेन को अंतहीन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

सन् 1917 के अंतिम महीनों में पीकिंग में फेंग ग्वाओजांग के राष्ट्रपति का पद संभालने के बाद संसद के क्वोमिंतांग गुटों ने कैंटन में एक विशेष सत्र शुरू किया और सन को प्रधान सेनापति चुन लिया। पीकिंग सरकार के साथ शांति के इच्छुक राजनीतिक अध्ययन समिति और जन मित्र समिति ने प्रधान सेनापति के पद को समाप्त कर दिया और उसे ऐसा पद दे दिया जिसमें बहुत अधिकार नहीं थे। सन ने अगस्त, 1919 में त्याग पत्र दे दिया। सन यात सेन के इस अनुभव ने उसके मन में न केवल अपने कुछ पूववर्ती अनुयायियों के प्रति, बल्कि दलगत राजनीति और संसदीय प्रणाली के प्रति भी तिरस्कार का भाव पैदा कर दिया। वह भिन्न ढंग से सोचने लगा। एक ओर तो वह कैंटन में एक मजबूत क्रांतिकारी अड्डा कायम करने को कृत संकल्प था, जिसके लिए उसने दूसरे सैनिक गुटों के साथ गठबंधन किया। दूसरी ओर, वह एक भिन्न युग की नयी चुनौतियों का जवाब देने में सक्षम एक संगठन, कायाकल्पित क्वोमिंतांग के विचार पर चिंतन करने लगा। उसने नयी सोवियत

सरकार के दूतों के साथ परामर्श शुरू कर दिया। उसके चिंतन में इस बदलाव के परिणामस्वरूप 1924 में, सोवियत साम्यवादी पार्टी की तर्ज पर क्वोमिंतांग का पुनर्गठन हुआ।

बोध प्रश्न 3

1) लगभग 15 पंक्तियों में चीन की राजनीति में क्वोमिंतांग की भूमिका का विवेचन कीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) सन यात-सेन के मोहभंग के क्या कारण थे? 5 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

27.7 चार मई की घटना

इकाई 21 में हमने चार मई के आंदोलन का उल्लेख किया था। यहाँ हम इस घटना से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर चर्चा कर रहे हैं। वैसे इस आंदोलन के सांस्कृतिक आयामों पर इकाई 28 में चर्चा की जाएगी। युआन शिकाई की मर्यादाहीन महत्वाकांक्षाएँ, युद्ध सामंतों का उदय और राजनीतिक स्तरीकरण 1911 की क्रांति के दुखद परिणाम रहे। इसी दौर में चीन में संस्कृति, दर्शन, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव भी देखने में आया। चार मई की घटना को चीन की "सांस्कृतिक क्रांति", "साहित्यिक क्रांति", "चीन का पुनर्जागरण", "ज्ञानोदय" और "पुनरुत्थान" आदि भी कहा जाता है। यह कोई एक रूप या सुसंगठित आंदोलन नहीं था, बल्कि अनेक गतिविधियों का सम्मिश्रण था। इस आंदोलन में विविध विचार काम कर रहे थे, लेकिन वे सभी एक समेकित घटना के अंग प्रतीत होते थे। वास्तव में, अधिकांश इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि चीनी क्रांति की शुरुआत चार मई की घटना से होती है। हमें 1919 की चार मई की घटना और चार मई का आंदोलन कही जाने वाली घटना में भेद करना होगा। जो आंदोलन 1915 के आसपास शुरू हुआ था, उसे बाद में 1919 की घटना के बाद यह नाम दे दिया गया था।

जैसा कि हम इकाई 21 में विवेचन कर चुके हैं, चार मई की घटना एक विशाल प्रदर्शन था। इस प्रदर्शन का आयोजन पीकिंग विश्वविद्यालय और कुछ दूसरी उच्च शिक्षा संस्थाओं के छात्रों ने 1919 में उस तारीख को तियानान मेन चौक पर किया था। ये छात्र वर्साय की उस संभावी संधि का विरोध कर रहे थे जिस पर प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर पेरिस में बातचीत हो रही थी। चीन में इस आशय की खबरें पहुँच रही थीं कि जापान ने यह मांग की थी कि जर्मनी ने असमान संधि व्यवस्था के तहत शांतुंग पर जो कब्जा कर लिया था उस पर क्षेत्रातीत अधिकारों का स्वतः जापान को हस्तांतरण हो जाना चाहिए। इन खबरों में इस बात का संकेत भी मिलता था कि इंग्लैंड और फ्रांस जैसी दूसरी साम्राज्यवादी ताकतें जापान की मांग पूरी करने की इच्छुक थीं। एक बार फिर चीनियों की राष्ट्रवादी भावनाओं को ठेस पहुँची। पीकिंग का युद्ध सामंतों का शासन तो शांतुंग संबंधी संधि पर हस्ताक्षर करने को तैयार था, लेकिन जनता ने साम्राज्यवादी भावनाओं को खुलकर व्यक्त किया और छात्रों ने आंदोलन में सबसे सक्रिय हिस्सा लिया। चार मई की जिस घटना में छात्रों की राजनीतिक सक्रियता चरम पर पहुँच गयी थी उसका विस्तार से विवरण देने से पहले उस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है जिसमें राष्ट्रवाद के पक्ष में साम्राज्यवाद के खिलाफ इतना बड़ा अभूतपूर्व छात्र आंदोलन उठ सका।

चीन में 1911 की क्रांति एक स्थिर और स्वच्छ राजनीतिक व्यवस्था का विकास करने में विफल रही। चीन की अव्यवस्थित और भ्रष्ट अंदरूनी राजनीति और उसकी संप्रभुता पर सतत साम्राज्यवादी अतिक्रमण के फलस्वरूप राष्ट्रभक्त शक्तियाँ एक बार फिर एकजुट हो गयीं। लेकिन चीन में सामाजिक और वैचारिक परिवेश वैसा ही बना रहा जैसा वह 1911 से पहले के दौर में था।

एक सुविदित तथ्य यह था कि पीकिंग स्थित युद्ध सामंत सरकार में जापान समर्थक तत्व थे। 1915 की जापानी इक्कीस मांगों को देखते हुए यह खतरे की घंटी थी। विभिन्न गुटों ने पेरिस शांति सम्मेलन में ताकतों के बीच चल रही गुप्त कूटनीति का विरोध किया। 1918 में, छात्रों और सौदागरों की ओर से सरकार को एक याचिका दी गयी जिसमें शांतुंग पर जर्मनी के पूर्व आधिपत्य को जापान को स्थानांतरित करने के मुद्दे पर गहन चिंता व्यक्त की गयी। जब चीन में इस आशय की खबर पहुँची कि पेरिस सम्मेलन में चीन के प्रस्तावों को ठुकरा दिया गया था तो, इससे प्रचंड साम्राज्यवाद विरोधी भावनाएँ भड़क उठीं। चीनियों के मन सभी ताकतों के प्रति संदेह से भर गये। कुछ ही दिनों के अंतराल में कई समितियाँ उठ खड़ी हुईं। 1 मई, 1919 और 3 मई 1918 के बीच पीकिंग विश्वविद्यालय के छात्रों ने परिसर में सभाएँ की जो भाववेश से भरी थीं। छात्रों में यह महसूस किया गया कि उन्हें कार्यवाही करनी होगी, नहीं तो चीन की अधीनता का कभी अंत नहीं होगा। 4 मई को दोपहर बाद एक अभूतपूर्व स्तर का विशाल प्रदर्शन तियानान मेन (स्वर्गीय शांति का द्वार) चौक पर किया गया। पीकिंग विश्वविद्यालय और तेरह और कॉलेजों के हजारों छात्रों ने कई घंटों तक सड़कों पर जलूस निकाला। यह प्रदर्शन, कुल मिलाकर शांतिपूर्ण रहा। वैसे लड़ाकू छात्रों के एक गुट ने कुछ नागरिक और सैनिक अधिकारियों पर हमला किया। इन अधिकारियों के विषय में यह विश्वास किया जाता था कि उनकी भावनाएँ जापान समर्थक थीं। जनता के इस विरोध और आग्रह के जवाब में, चीन प्रतिनिधि मंडल ने पेरिस में चल रही बातचीत का बहिष्कार कर दिया और त्यागपत्र दे दिया। लेकिन यह काम 28 जून को ही हो सका।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चार मई और 28 जून, 1919 के बीच बड़ी संख्या में जन सभाएँ और विचार-विमर्श हुए। छात्र जलूस निकालने और नये बुद्धिजीवियों को संगठित करने और दूसरे गुटों के साथ गठबंधन का प्रयास करने में लगे थे। सड़कों पर प्रदर्शन एक महीने और चले। सरकार ने पीकिंग विश्वविद्यालय को बंद करना और छात्रों को भड़काने के अपराध में जाई युआपे को बर्खास्त करना चाहा। सरकार जनता के समर्थन का सही आकलन नहीं कर पायी, जिसके बल पर छात्रों के प्रदर्शन दूसरे शहरों तक फैल गये। एक पीकिंग छात्र संघ गठित हो गया और बाद में मजदूर वर्ग की पूरी भागेदारी के साथ बड़े शहरों में आम हड़ताल की गयी। छात्रों ने सौदागरों, उद्योगपतियों और मजदूरों के साथ गठबंधन किए। आंदोलन, हड़तालें और प्रदर्शन हुए जिसके परिणामस्वरूप सरकार ने व्यापक गिरफ्तारियाँ और सख्त कार्यवाही की। चीनी प्रतिनिधि मंडल का वर्साय की संधि का हिस्सा बनने से मना करना व्यापक विरोध प्रदर्शनों की पहली सफलता थी। आने वाले दौर में हमें विभिन्न सामाजिक गुटों के बीच घनिष्ठतर संपर्क और नये बुद्धिजीवी, सामाजिक और राजनीतिक संगठनों का उदय देखने को मिलता है। इस तरह, चार मई की घटना राष्ट्रवादी और वर्गीय हितों की एक सम्मिलित अभिव्यक्ति थी। 1919 की घटनाओं के बाद भी राष्ट्र का सांस्कृतिक

रूपांतरण और भी अधिक ताकत और तेजी के साथ चलता रहा। 1939 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक के काल को चीनी इतिहास में चार मई का युग कहा जाता है, क्योंकि तब तक नये विचार दृष्टिकोण और मतों की निरंतर अभिव्यक्ति और परीक्षण चल रहा था। सोवियत संघ में समाजवाद की जीत और निरंकुश जार शासन का तख्ता पलटने से चीन में अनेक युवा बुद्धिजीवियों को प्रेरणा मिली। तुरंत इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बहसें और विचार-विमर्श हुए कि क्या समाजवाद चीन की समस्याओं का समाधान था। लगभग उसी समय अंग्रेज दार्शनिक, बर्ट्रेंड रसेल चीन की व्याख्यान यात्रा पर था। बर्ट्रेंड रसेल ने चीन के लिए एक उदारवादी राजनीतिक व्यवस्था की वकालत की, क्योंकि उसके विचार में बोल्शेविकों का रास्ता अप्रासंगिक था। इससे और बहसें उठ खड़ी हुईं। पहले चीनियों को मार्क्स का जो लेखन उपलब्ध नहीं था, वह अब लोकप्रिय हो रहा था। विविध लेखों के अनुवाद भी उपलब्ध होने लगे थे। प्रमुख बुद्धिजीवियों में ली ता चाओ और चेन तु शू मार्क्सवाद की ओर झुके, जबकि हू शी और दूसरे बुद्धिजीवियों ने उदारवाद का समर्थन किया। मार्क्सवादी गुट ने अंत में 1921 में, चीनी साम्यवादी पार्टी का गठन किया। इसलिए यह कहना सही है कि चीन में साम्यवाद चार मई के आंदोलन का सीधा परिणाम था।

बोध प्रश्न 4

1) लगभग 10 पंक्तियों में चार मई की घटना का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) लगभग 5 पंक्तियों में चीन पर अक्टूबर क्रांति के प्रभावों को गिनाइए।

....

....

....

....

....

27.8 सारांश

सन् 1911 और 1919 के बीच के दौर में चीनी समाज में दूरगामी बदलाव हुए। 1911 में शाही व्यवस्था के अंत का परिणाम तुरंत एक बेहतर राजनीतिक व्यवस्था के रूप में सामने नहीं आया। एक ओर, सैन्यवाद, सत्तावाद, धड़ेबाजी और सत्ता संघर्ष राजनीतिक परिदृष्य में हावी रहे। दूसरी ओर, और भी अधिक निर्लज्ज और पाशविक किस्म के साम्राज्यवाद ने चीन से उसकी बची-खुची गरिमा भी छीन लेने का प्रयास किया। दूसरे शब्दों में, इस दौर में जापानी साम्राज्यवाद की उन्नति देखने को मिली। युद्ध सामंतवाद व्याप्त था और कोई एक सरकार नहीं थी। लेकिन एक सकारात्मक पक्ष यह भी था कि नये विचारों और संगठनों का उदय हुआ जिन्होंने चीन को इस निराशाजनक स्थिति से बाहर निकाला।

27.9 शब्दावली

सैन्यवादी : इस शब्द का इस्तेमाल युद्ध सामंतों के लिए होता है।

युद्ध सामंत : निजी सेनाओं वाले प्रादेशिक फौजी।

27.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर भाग 27.2 के आधार पर लिखिए।
2) i) ✓ ii) ✗ iii) ✓ iv) ✓
3) अपना उत्तर उपभाग 27.4.1 के आधार पर लिखिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) ✗ ii) ✓ iii) ✓ iv) ✗
2) अपना उत्तर भाग 27.5 के आधार पर लिखिए।

बोध प्रश्न 3

1) अपना उत्तर भाग 27.6 के आधार पर लिखिए।
2) अपने उत्तर में क्वोमिंतांग के अंदर गुटबाजी, आंतरिक लड़ाई, दृष्टिकोण के अंतर आदि को शामिल कीजिए। देखिए भाग 27.6 का अंतिम अंश।

DIKSHANT IAS

बोध प्रश्न 4

Call us @7428092240

1) देखिए भाग 27.7
2) देखिए भाग 27.7 का अंतिम अंश।

इकाई 28 सांस्कृतिक आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 नया दौर
28.3 कन्फ्यूशियसवाद और परम्परागत चीनी समाज
28.4 1911 की क्रांति और "नयी संस्कृति"
28.4.1 दार्शनिक और उनके विचार
28.4.2 छात्र समुदाय
28.4.3 न्यू यूथ (New Youth)
28.4.4 परम्परा पर आक्रमण : बुद्धिजीवियों के प्रयास
28.5 चार मई की घटना के परिणाम
28.6 सारांश
28.7 शब्दावली
28.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- चीन पर कन्फ्यूशियसवादी दर्शन के प्रभाव का जिक्र कर सकेंगे,
- 1911 के बाद "नयी संस्कृति" के आगमन के कारणों का उल्लेख कर सकेंगे,
- नये सांस्कृतिक आंदोलन के तत्वों का मूल्यांकन कर सकेंगे, और
- चीनी सांस्कृतिक क्रांति के बुद्धिजीवियों की भूमिका को आंक सकेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

28.1 प्रस्तावना

इकाई 4 (खंड 1) में हमने कन्फ्यूशियस और उसके सिद्धांतों की चर्चा की थी। इस सिलसिले में हमने क्लासिकल और मध्ययुगीन चीन पर कन्फ्यूशियाई दर्शन के प्रभाव का भी जिक्र किया था। कन्फ्यूशियस के दर्शन से चीन वासी 2000 वर्षों से अधिक से परिचित थे और उसे व्यवहृत कर रहे थे। पर कुछ कारणों से ऐसे नये विचार सामने आये, जिनके कारण चीनी समाज पर कन्फ्यूशियाई दर्शन की न केवल पकड़ ढीली हुई, बल्कि उन्होंने इस दर्शन के मूल आधार पर ही आघात किए। चीन का साम्राज्यवादी शोषण, आधुनिकीकरण की जरूरत और राजनीतिक सुधारों की आवश्यकता ने इस प्रकार के विचारों के उदय के लिए आधार भूमि प्रदान की। आरंभ में कन्फ्यूशियाई दर्शन के घेरे में रहकर ही सुधार की कोशिश की गयी; केवल ताइपिंग विद्रोह में इसे चुनौती दी गयी और इसका खुला उल्लंघन किया गया। इन सभी बिंदुओं पर पिछली इकाइयों में विचार किया जा चुका है।

इस इकाई में हम 1911 की क्रांति के तुरंत बाद चीन में पनपने वाली नयी संस्कृति के उदय पर विचार-विमर्श करेंगे। 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में इस नयी संस्कृति की नींव रखी जा चुकी थी। इस इकाई में बुद्धिजीवियों, छात्रों, विश्वविद्यालय व्यवस्था आदि की भूमिका पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

28.2 नया दौर

किसी साम्राज्य का अंत फिर विद्रोह और अव्यवस्था आदि बातें चीनीवासियों के लिए नयी न थीं। उनके पूर्वजों ने समय-समय पर अव्यवस्था के कई दौर देखे थे। पर उन्होंने न केवल

इस अवस्था भरे माहौल पर विजय हासिल की, बल्कि कभी-कभी उन्नति की ओर भी अग्रसर हुए। चीनवासियों के लिए साम्राज्यों की उलट-पुलट इतिहास की एक आम बात थी। पर 1911 में चिंग साम्राज्य का पतन अपने आप में भिन्न था। इसके बाद बादशाहियत खत्म हो गई। चीनवासियों के अनुसार राजा "स्वर्ग पुत्र" के रूप में सर्वोच्च शासक होता था और स्वर्ग का आशीर्वाद बने रहने तक उसकी सत्ता अक्षुण्ण बनी रहती थी। जब स्वर्ग की नजरें किसी राजा और साम्राज्य से कुपित हो जाती थीं, फिर नया राजा और साम्राज्य उसकी जगह ले लेता था। राजशाही के अंत के बाद चीन की अन्य संस्थाएँ भी बिखरी। परिवार, कुल, वंश, श्रेणी, गाँव आदि कुछ ऐसी संस्थाएँ उस समय विराजमान थीं, जिनके कारण समाज स्वनिर्भर और स्वनियंत्रित इकाई था। राजशाही के अंत के बाद सारी संस्थाएँ चरमराने लगीं। नारी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, कल-कारखानों और शहरों का उदय, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में नयी शिक्षा व्यवस्था के उदय से एक ओर परंपरागत चीनी समाज टूटने लगा और दूसरी तरफ आधुनिक युग का आगमन हुआ। सत्ता सैनिकों ने हथिया ली थी, अतः राजनीतिक क्षेत्र में प्रजातांत्रिक शासन की नयी अवधारणा को पनपने का मौका नहीं मिला, पर संस्कृति आंदोलन अपनी गति पर था। चीन में बदलाव और विकास का जोर इतना ज्यादा था कि सांस्कृतिक बदलाव अवश्यंभावी हो गया। इस बदलाव और विकास का प्रभाव कहीं न कहीं तो पड़ना ही था। हाँ, राजनीति और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में न पड़ कर यह प्रभाव संस्कृति के क्षेत्र में पड़ा। इस सांस्कृतिक क्रांति की मुख्य विशिष्टता यह थी कि इसने कन्फ्यूशियसवाद को चुनौती दी। कन्फ्यूशियस के दर्शन का चीनवासियों के जीवन पर गहरा प्रभाव था और वे 2000 वर्षों से इसका पालन करते आ रहे थे। एक बार समाज के मूलाधार दर्शन पर चोट हुई कि सारी ऊपरी संरचनाएँ भरभराकर ढहने लगीं।

राजशाही वंश आधारित बादशाहत समाप्त होने के बाद भी कन्फ्यूशियसवाद सुरक्षित और अक्षुण्ण रहा। यह ध्यान रखना चाहिए कि राजतंत्र कन्फ्यूसियस के दर्शन से भी पुराना था। कन्फ्यूशियस के बनाए नियम और चलन अभी भी समाज में विद्यमान थे। इन नियमों और परंपराओं के माध्यम से समाज में "सौहार्द" कायम किया गया था, समाज में कई स्तर थे कुछ निचले तबके के लोग थे, कुछ ऊँचे तबके के लोग। निचले तबके के लोगों की स्थिति श्रेष्ठ थी। इस प्रकार की व्यवस्था और विचार से आगे के विकास का मार्ग अवरुद्ध होता था। उन्नीसवीं शताब्दी के मांचू दरबार के सुधारवादी लोगों और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों के सुधारकों ने कन्फ्यूशियस के बनाए गये ढाँचे के अंदर रहकर ही चीन को बदलने की कोशिश की। इस कारण से चीनी समाज पर इन बदलावों का जमकर प्रभाव नहीं पड़ सका। ये बदलाव ज्यादातर दिखावटी थे। वस्तुतः कन्फ्यूशियाई रूढ़िवादिता को चुनौती दिए बिना क्रांतिकारी बदलाव संभव नहीं था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

28.3 कन्फ्यूशियसवाद और परंपरागत चीनी समाज

कन्फ्यूशियस दर्शन से चीन के जीवन का प्रत्येक अंश प्रभावित था और तथाकथित आधुनिक युग भी इससे अछूता न था। कन्फ्यूशियस के विचारों और विश्वासों पर हम पहले ही (इकाई 4) में बातचीत कर चुके हैं। यहाँ हम एक बार फिर उनका उल्लेख करेंगे। पर यहाँ संदर्भ अलग होगा। यहाँ हम उन कारणों के संदर्भ में इन सिद्धांतों का उल्लेख करेंगे, जिसके कारण इन्हें नकारा गया और नयी संस्कृति का जन्म हुआ।

कन्फ्यूशियाई दर्शन में युवा की अपेक्षा बुजुर्ग को, वर्तमान की अपेक्षा भूत को, शासित की अपेक्षा शासक को, व्यक्ति की अपेक्षा समाज को तरजीह देने की प्रथा थी। इस स्तरीकरण के आधार पर सामाजिक सौहार्द और व्यवस्था को कायम किया जा सकता था। अगर एक बार यह क्रम टूटा हो समाज का सौहार्द नष्ट हो जाएगा, समाज बिखर जाएगा, व्यवस्था और स्थायित्व का स्थान अव्यवस्था ले लेगी और समाज का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा। अतः कन्फ्यूशियसवाद यथास्थिति बनाए रखने का समर्थक और किसी भी प्रकार के बदलाव का विरोधी था। वस्तुतः यह एक अनुचित और कट्टरपंथी दर्शन था। इस दर्शन को कभी भी धर्म के रूप में नहीं देखा गया पर इसके कुछ तत्व धार्मिक नियमों से भी अधिक कट्टर थे। यह धर्म नहीं था, अतः यह बौद्ध, इसाई और चीन के किसी भी लोक धर्म के साथ जी सकता था।

राजनीति और सरकार में कन्फ्यूशियसवाद ने "नैतिक शासक" के विचार को प्रतिपादित किया। अगर शासक खुद नैतिक सिद्धांतों का पालन नहीं करेगा, तो वह अपनी प्रजा को

कैसे संभाल सकेगा? राजनीतिक व्यवस्था का संबंध अलौकिक दुनिया से जुड़ा हुआ था और राजा "स्वर्ग पुत्र" था, अतः राजा को नैतिक और पवित्र होना था। राजा की आज्ञा मानना प्रजा का कर्तव्य था, राजा अपनी प्रजा पर शासन करने के लिए जन्मा है और यह उसका नैतिक अधिकार था।

कन्फ्यूशियाई सोच के अनुसार स्त्री पूर्णतः पुरुष को समर्पित थी और युवा बुजुर्गों के प्रति नतमस्तक थे। आयु और लिंग पर आधारित यह भेदभाव समाज में इस प्रकार घुलमिल गया था, कि कोई इसके बारे में सोचता तक नहीं था। समाज में स्त्री की कोई भूमिका नहीं थी, घर में वह माँ और पत्नी मात्र थी। बच्चा जनना और उसका पालन करना उसका सामाजिक कर्तव्य था। चीनी नारियों का सदियों से शोषण और दमन होता आ रहा था, उन्हें शिक्षा प्राप्ति का अधिकार नहीं था, वे सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकती थीं, किसी भी चीज पर उनका अधिकार नहीं था। यहाँ तक कि दक्षिणी चीन की स्त्रियों की स्थिति भी संकीर्णवादी उत्तरी चीन की स्थितियों से बहुत बेहतर न थी जबकि दक्षिणी चीन की स्त्रियाँ कृषि कार्य में पूरा हाथ बँटाती थीं। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी सामाजिक कुप्रथाएँ भी प्रचलित थीं, जिनके कारण स्त्रियों का जीवन नारकीय हो गया था, जैसे पैर छेदने की प्रथा, दुल्हन को बेचा जाना और बाल विवाह।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया युवा भी शोषित के दर्जे में आते थे। यह व्यवस्था बुजुर्गों के प्रति युवाओं के पूर्ण समर्पण की माँग करती थी। कन्फ्यूशियस के सिद्धांत के अनुसार पिता की मृत्यु के बाद भी पुत्र का कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि उसे अपना सम्मान समय-समय विभिन्न अनुष्ठानों और पूजा-अंर्चना के माध्यम से व्यक्त करना पड़ता है। इस व्यवस्था ने चीन के युवाओं को एक हद तक दब्बू, कायर और कमजोर बना दिया था। इससे उनके व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता था। पारिवारिक व्यवस्था में भी शोषण के कुछ औजार निहित थे, जो व्यक्ति के स्वतंत्र विकास में बाधा उत्पन्न करते थे।

चीन की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित थी। शताब्दियों से शिक्षा दीक्षा कुछ मुट्ठी भर कुलीन लोगों का विशेषाधिकार माना गया था। शिक्षा का एक ही मुख्य उद्देश्य था। इसके जरिए बादशाह के दरबार के लिए अधिकारी विद्वानों का निर्माण करना था ताकि चीन देश को लगातार नियंत्रण में रखा जा सके। शिक्षा का दायरा भी बहुत सीमित था। इसमें आरंभिक काल में लिखी कुछ श्रेष्ठ पुस्तकों का ही अध्ययन कराया जाता था। एक शिक्षित व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि उसे प्राचीन ग्रंथ की बातें कंठाग्र हों। बेहतर स्मरण शक्ति वाला व्यक्ति अधिक विद्वान माना जाता था। पदाधिकारियों की नियुक्ति नागरिक सेवा परीक्षा के माध्यम से होती थी। इसमें भी स्मरण शक्ति की ही परीक्षा ली जाती थी और इसे ज्ञान का पर्याय माना जाता था। परम्परागत चीनी शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि लिखित भाषा साहित्यिक या प्राचीन चीनी (**वेन ऐन**) भाषा थी, जो बोलचाल की भाषा (**बड हुआ**) से बिल्कुल अलग थी। इस भाषा पर कई वर्षों के अध्ययन के बाद ही अधिकार हो पाता था। शिक्षा के प्रसार में यह सबसे बड़ी बाधा थी, क्योंकि मेहनतकश लोगों के पास शिक्षा के लिए इतना समय देना असंभव प्रायः था। केवल अमीर लोग ही इसका लाभ उठा सकते थे। पदानुक्रम और असमानता पर आधारित कन्फ्यूशियाई सिद्धांत ने शिक्षा व्यवस्था के इस रूप को समर्थन दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक बात ध्यान देने की है कि गरीब ही कन्फ्यूशियसवाद का शिकार होते थे, शक्तिशाली लोग अक्सर इसका उल्लंघन करते थे। इसीलिए यह व्यवस्था इतने दिनों तक चल पाई। कहने का तात्पर्य है कि शासक वर्ग ने इस सिद्धांत का अपने हित के लिए उपयोग किया। पर इसके बावजूद यह चीन के सामाजिक परिवर्तनों को रोक नहीं सका। यह उसे संघर्ष और हिंसा से दूर रखने में भी बहुत दिनों तक कामयाब न रह सका।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वक्तव्यों में कौन सही या गलत हैं? (✓) और (×) का निशान लगाइए।

   i) सांस्कृतिक क्रांति ने कन्फ्यूशियसवाद को चुनौती दी।

   ii) क्रांतिकारी परिवर्तनों के लिए कन्फ्यूशियाई कट्टरपंथी को चुनौती देने की कोई जरूरत नहीं थी।

   iii) कन्फ्यूशियसवाद ने नारी मुक्ति की वकालत की।

   iv) शक्तिशाली वर्ग ने कमजोर वर्ग पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए कन्फ्यूशियसवाद का उपयोग किया।

2) कन्फ्यूशियसवाद के दौरान नारी की स्थिति पर 5 पंक्तियों में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

28.4 1911 की क्रांति और "नयी संस्कृति"

मांचू शासन ने 1905 में अपने शासन के अंतिम दिनों में, सुधार कार्यक्रमों के तहत नागरिक सेवा परीक्षाओं को समाप्त कर दिया। इसके स्थान पर भर्ती की कोई नयी कारगर व्यवस्था कायम न की जा सकी। प्रशासनिक तौर पर, चीन और भी कमजोर हो गया। एक तरफ साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, दूसरी ओर पीकिंग सरकार राजनीतिक उठा पटक, षडयंत्रों और सत्ता के झगड़े में फँसती जा रही थी। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तौर पर चीन पिछड़ा रह गया। यह इतिहास का एक सत्य है कि किसी भी देश के लोग अधिक समय तक निष्क्रिय दबे हुए और शोषित नहीं रह सकते हैं। परिवर्तन का दौर आना अवश्यंभावी है और चीन में भी ऐसा हुआ। बुद्धिजीवियों, छात्रों और शिक्षकों ने लोगों को जागरूक किया और चीन को बदलाव के पथ पर अग्रसर किया। इससे चीन का भला हुआ। प्राथमिक तौर पर यह बौद्धिक क्रांति थी। चारों ओर राष्ट्रीयता, जनतंत्र, उदारवादविज्ञान, समाजवाद और साम्यवाद की बातें होने लगीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अक्तूबर, 1911 की चीनी क्रांति को "दिखावटी" माना जाता है, क्योंकि इससे कोई सामाजिक बदलाव नहीं आया, सामाजिक क्रांति की तो बात ही छोड़ दीजिए। पर वास्तविकता यह है कि इस क्रांति के कारण निम्नलिखित परिवर्तन हुए :

- सार्वभौम राजतंत्र और इसे वैधानिक बनाने वाली पारसत्ता के सिद्धांत की समाप्ति
- पूरे समाज में, समाज के स्थानीय स्तर तक शक्ति और सत्ता का बिखराव और इस पर सैनिकों का अधिकार
- कई स्तरों पर उस समाज की नैतिक सत्ता का ह्रास
- नये और पुराने स्थानीय शक्तिशाली और धनवान लोगों के मन में असुरक्षा का भाव
- अपने वैधता के आधार को स्थापित करने में नये गणतंत्र की असफलता।

1911 के काफी पहले ये सारी प्रवृत्तियाँ अंदर ही अंदर पनप रही थीं। केवल नागरिक सेवा परीक्षा व्यवस्था समाप्त करने से ही "शिक्षितों" की सामाजिक भूमिका पर काफी असर पड़ा। क्यांग सू-वेइ, येन फू, लिओग और अन्य लोगों के क्रांतिकारी सिद्धांत राजतंत्र की दैवी शक्ति पर पहले ही कुठाराघात कर चुके थे। निस्संदेह चीनी समाज के वस्तुनिष्ठ अध्ययन से कई स्थितियाँ उभर कर सामने आएँगी और कुछ सकारात्मक विकासों का भी पता चलेगा। हालाँकि अधिकांश चीनी बुद्धिजीवियों की नजर में यह पतन, बिखराव, भ्रष्टाचार और क्रूरता का काल था।

28.4.1 दार्शनिक और उनके विचार

येन फू और कांग-यू-वी जैसे सुधार-दार्शनिक अब दृढ़ता से यह महसूस करने लगे कि किसी भी समाज पर बदलाव थोपा नहीं जा सकता है और चीन में हो रहे बदलाव के इस चरण में गणतांत्रिक क्रांति एक गलत कदम था। लिंआग चि-चाओ ने क्रांति और राजतंत्र के पतन को इतिहास की मांग के रूप में स्वीकार किया। आरंभ में वह "गणतांत्रिक" निरंकुशता का कट्टर समर्थक था और उसका मानना था कि इसके माध्यम से आधुनिकता का आगमन हो सकता है। इसी तरह कांग का भी मानना था कि इस स्थिति में राजतंत्र के प्रतीक ही बिखरी हुई केंद्रीय सत्ता को जोड़ सकते हैं। इन तीन विचारकों में एक मूलभूत समानता यह थी कि ये तीनों ही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बात कर रहे थे। हालांकि कांग ने

मानना था कि बिखराव की इस स्थिति को रोकने के लिए चीन को न्यूनतम आधारभूत विश्वास की जरूरत थी, जिसे सभी अपना सकें। इस परिस्थिति में येन फू ने "कन्फ्यूशियसवाद के लिए समाज" नामक निवेदन पत्र पर हस्ताक्षर किया, जिसके अनुसार कन्फ्यूशियाई दर्शन को राज्य-धर्म का दर्जा दिया जाना था। उसने तर्क दिया कि चीन अभी भी "पितृसत्तात्मक" समाज से "सैनिक" समाज तक पहुँचने की ड्यौढ़ी पर खड़ा है और अभी भी इसे पितृसत्तात्मक विश्वास की जरूरत है।

सक्रिय क्रांतिकारी अलग ढंग से सोच रहे थे। उन्होंने भी यह दिखा दिया कि उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता बहुत सुदृढ़ नहीं थी। जल्द ही वे सेनाध्यक्षों के युग की घृणित राजनीति में लिप्त हो गये। सन यात सेन ने सक्रिय रूप से राजनीतिक शक्ति के लिए एक आधार बनाने का प्रयास किया। जिन लोगों की राष्ट्रीयता का आधार प्राथमिकत: मांचू-विरोधी था, या "राष्ट्रीय तत्व" में जिन लोगों का विश्वास था, ने तुरंत महसूस किया कि भ्रष्ट मांचू साम्राज्य को निकाल बाहर करने के बाद हान प्रजाति अपने आप पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित नहीं हो गयी। जो लोग राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए रखने के प्रति आग्रही थे, वे भी यह महसूस करने लगे कि इसे राजनीतिक तरीकों से नहीं सुरक्षित रखा जा सकता है। इसने साहित्य और परंपरागत विद्वता में संस्कृति की अवधारणा को समेटने की कोशिश की। इन्होंने चार मई के आंदोलन के दौरान साहित्यिक और भाषिक आन्दोलनों का जम कर विरोध किया।

28.4.2 छात्र समुदाय

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों से विदेशों में रहने और पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई। इनमें से कइयों ने जापान और पश्चिम में शिक्षा ग्रहण की थी। कई युवा बुद्धिजीवी जापान के मेजी पुनरुद्धार आन्दोलन से प्रभावित थे। उनमें से बहुतों का यह मानना था कि चीन को रोगमुक्त करने के लिए विज्ञान और तकनीक अचूक दवा है। इसके अतिरिक्त चीनी परिदृश्य पर युवा, शिक्षित, राजनीतिक रूप से जागरूक, सामाजिक तौर पर सजग थे। जापान द्वारा लादी गई 'इक्कीस मांगों' ने इन लोगों के अहं और आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाई, इनके बीच राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ और इन्होंने अपने को इसी रूप में व्यक्त किया। युआन शिकाइ द्वारा राजतंत्र को पुनर्स्थापित करने के प्रयत्न ने भी उनको परेशान किया। ये संख्या में कम थे, पर इनकी विचारशीलता प्रबल थी। इन्होंने चार मई के आंदोलन का नेतृत्व किया। इनका स्तर साम्राज्य विरोधी था और विज्ञान, जनतंत्र तथा समाजवाद इनके प्रमुख स्तंभ थे। चीनी छात्रों ने कई विदेशी छात्र-संघों से भी सम्पर्क स्थापित किया। राष्ट्रप्रेम ऐसा था, जो उन्हें एक दूसरे से जोड़ता था। स्वदेश लौटने के बाद अधिकांश छात्र साम्राज्य विरोधी आन्दोलन में सक्रिय हो गये। समाज में कामगार समुदाय ही काफी छोटा था, क्योंकि उद्योग आदि काफी कम थे, इनमें भी छात्र देशभक्तों की संख्या ही अधिक थी। युद्ध छिड़ने के बाद बुर्जुआ वर्ग ने भी साम्राज्यवाद के निषेधात्मक पक्ष को महसूस किया और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को समर्थन देने लगे। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन की शक्तियों ने पीकिंग विश्वविद्यालय में स्वरूप ग्रहण किया और विभिन्न साहित्यिक और बौद्धिक गतिविधियों से भी इसको गति मिली।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आइए, पीकिंग विश्वविद्यालय (**बेदा**) के बारे में भी कुछ बातचीत कर ली जाए। इसकी स्थापना 1895 में हुई, आरंभ में इसकी भूमिका निषेधात्मक थी। इसके संकाय सदस्यों में वरिष्ठ पदाधिकारी शामिल थे और छात्र मुख्य रूप से अमीर घरानों से सम्बद्ध थे। नागरिक सेवा परीक्षा में उत्तीर्ण होना इन छात्रों का एकमात्र उद्देश्य था। सही ज्ञान की प्राप्ति का महत्व दूसरे नबंर पर था। संकाय सदस्यों की वरीयता उनकी विद्वता या शिक्षण क्षमता पर नहीं बल्कि मांचू दरबार में उनकी हैसियतों पर आधारित होती थी। विश्वविद्यालय अपनी बेहतर शिक्षा के कारण नहीं बल्कि अपनी कुख्याति के कारण मशहूर था।

सी यूआन-पी को बेदा के सुधार का पूरा श्रेय जाता है। उन्होंने फ्रांस और जर्मनी में शिक्षा ग्रहण की थी और काफी कम उम्र में नागरिक सेवा परीक्षा पास कर ली थी। वे दो संस्कृतियों के अनुभव से सम्पन्न थे। उन्होंने नागरिक सेवा छोड़ दी और 1912 में सन यात सेन की सरकार में क्रांतिकारियों के साथ जा खड़े हुए। लेकिन युआन शिकाइ के अध्यक्ष बनने पर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। कुछ वर्ष बाद सरकार ने उनसे पीकिंग

निवेदन को स्वीकार कर लिया। सी मूलतः एक शिक्षाविद् थे। इस संस्थान के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य किए, जिसके कारण उन्हें चीनी पुनर्जागरण का जनक कहा जाता है। उन्होंने विद्वान लोगों को संकाय में शामिल किया, सरकारी दबाव से अकादमिक माहौल को मुक्त किया, अकादमिक स्वतंत्रता की वकालत की, विश्वविद्यालय में छात्रों और शिक्षकों को रहमी और स्वतंत्र बहस का मंच प्रदान किया। जिन लोगों को उन्होंने विभिन्न विद्यापीठों में शामिल किया उनमें ची तुमि न, हू शि और लि ता चाओ प्रमुख थे। बाद में इनमें से दो चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य बने। सी के सुधार के बाद पीकिंग विश्वविद्यालय में न केवल शिक्षा के स्तर पर सुधार हुआ बल्कि यहाँ परम्परागत शिक्षाविदों और आधुनिक विद्वानों को बहस करने का एक मुक्त मंच प्राप्त हुआ। इनके बीच से विचारकों का एक ऐसा दल सामने आया, जिसका छात्रों ने जमकर समर्थन किया। इस दल ने चीन की रूढ़िवादिता को चुनौती दी और आधुनिक युग का मार्ग प्रशस्त किया। इतिहासकार बियांको के अनुसार :

> "चार मई का आन्दोलन एक युवा आन्दोलन था, जिसमें नवयुवक शिक्षक और उनके छात्र समर्थकों ने युवाशक्ति के बल पर युवाओं की विचारधाराओं को अपने समाज पर आरोपित किया।"

पीकिंग विश्वविद्यालय के अलावा नये सांस्कृतिक आन्दोलन भी उभरे और न्यू यूथ (New Youth) नामक पत्रिका के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार-प्रसार किया।

28.4.3 न्यू यूथ (New Youth)

सिन चिंग-निवन (न्यू यूथ) का प्रकाशन बुद्धिजीवी और साहित्यिक क्रांति का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम था। "साहित्यिक क्रांति" इस बुद्धिजीवी बदलाव का एक उल्लेखनीय आयाम था, आरंभ में यह मात्र लेखकों और प्रकाशकों का प्रयास था। जनवरी, 1917 में हू शि ने प्रस्ताव रखा कि अब से सभी प्रकार का लेखन क्लासिकल चीनी भाषा में न किया जाकर बोलचाल की भाषा में किया जाएगा। वस्तुतः शिक्षा के क्षेत्र में यह एक क्रांति थी, जिसने शिक्षा का मार्ग सबके लिए सुलभ कर दिया। जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त भाषा ही जीवंत हो सकती है, हू शि के इस प्रस्ताव का कई विद्वानों ने समर्थन किया, इस प्रस्ताव के पीछे एक सामाजिक उद्देश्य निहित था। लोगों की पहुँच साहित्य तक सुलभ हुई, अब हू शि ने कहा कि साहित्य को आम लोगों की जिंदगी का बयान करना चाहिए। उसने यह महसूस किया कि यह साहित्यिक आन्दोलन नयी भाषा, नये शिल्प और नये विधान तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार भारी भरकम और क्लिष्ट साहित्यिक परम्परा का तिरस्कार किया गया और उसके स्थान पर लोकप्रिय साहित्य के सृजन की बात सामने रखी गयी, ऐसा साहित्य जो सरल हो, समझ में आने वाला हो और अर्थपूर्ण हो। हू शि की अवधारणा का कुछ विरोध हुआ; पर वातावरण उसके अनुकूल था, अतः उसके विचारों का खूब प्रचार हुआ। 1920 तक सभी लेखकों ने देशी भाषा को ग्रहण कर लिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

न्यू यूथ (नव युवा) ने सबसे पहले हू शि के विचार प्रकाशित किए। इस पत्रिका की शुरुआत 1915 में शंघाई में हुई थी। इसके सम्पादक ची-तु-सिम ने औपचारिक तौर पर इस अवधारणा को समर्थन प्रदान किया था। ची ने सम्पादकीय मंडल में व्यवस्था विरोधी कई विद्वानों को शामिल कर लिया। चीनी शिक्षित समुदाय के मानस पटल को साफ करने में इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण भूमिका अपनाई। यह पत्रिका उस समय प्रकाशित हुई, जब बारंबार प्रेस की स्वतंत्रता को कठोर कानूनों से बाधित किया जाता था। इसके अलावा इस पत्रिका को वित्तीय संकट भी झेलना पड़ता था। इससे बीच-बीच में पत्रिका का प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ता था। इसके बावजूद, न्यू यूथ छात्रों के बीच प्रेरणा का स्रोत बना रहा, जो इसके प्रत्येक सम्पादकीय को श्रद्धा के साथ ग्रहण करते थे। सभी दृष्टियों से यह पत्रिका क्रांतिकारी थी। एक उदाहरण यह है कि ची के छह सिद्धांत नवयुवकों के लिए ब्रहम वाक्य थे। उन्होंने कहा था "स्वतंत्र बनो, दब्बू नहीं, प्रगतिशील बनो, रूढ़िवादी नहीं, वाचाल बनो, मूक नहीं, विश्ववादी बनो, संकीर्ण नहीं, व्यावहारिक बनो, रूपवादी नहीं, वैज्ञानिक बनो, कल्पनाशील नहीं।"

अपने नाम के अनुरूप इस प्रभावशाली पत्रिका ने नये युवा के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। इसने सभी चीनी युवाओं को अपने पूर्वजों की सीमा का अतिक्रमण करने को कहा और वैज्ञानिक प्रगतिशील और स्वतंत्र चिंतन का मार्ग अपनाने को कहा। इसने नये स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे और नये विचारों से ओत-प्रोत युवा विद्यार्थियों को मर्यादित किया।

पश्चिमी, नये और पुराने विचारों की समझ थी और वे विचारों के मुक्त आदान-प्रदान के कायल थे। वे जानते थे कि 1911 की क्रांति ने चीन को प्राचीन तंत्र से ऊपरी तौर पर ही मुक्त कराया था और अभी भी चीन साम्राज्यवादी शक्तियों के कब्जे में फँसा हुआ था। दुर्बल और लगातार क्षीण होती हुई रूढ़ परम्परा को वे एक सुलभ विकल्प देने की कोशिश कर रहे थे। वे ची के इस कथन से सहमत थे कि विज्ञान और प्रजातंत्र के सहारे ही चीन को बचाया जा सकता था। "राजनीति में गणतंत्रीय सरकार और विचार क्षेत्र में विज्ञान ही आधुनिक सभ्यता की सम्पदा है।" न्यू यूथ के माध्यम से ही ची ने कन्फ्यूशियसवाद पर आक्रमण किया और पत्रिका ने अपने आरंभिक दिनों में फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शों (स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व) का प्रचार किया। (बाद में ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा के अनुयायी हो गये, 1921 में चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रथम महासचिव बने।)

न्यू यूथ का नवयुवकों पर इस हद तक प्रभाव था कि छात्र और युवा बुद्धिजीवी प्रत्येक मुद्दे पर इस पत्रिका की राय की प्रतीक्षा करते रहते थे और इसे उत्सुकतापूर्वक पढ़ते थे। दूसरे शब्दों में इस पत्रिका ने **गोस्पेल** की भूमिका निभाई। विभिन्न मुद्दों पर इस पत्रिका में बहस और विचार-विमर्श हुआ। इस पत्रिका में मुद्दों पर जीवंत बहस हुआ करती थी और धीरे-धीरे यह युवा, देशभक्त और सामाजिक तौर पर जागरूक युवा शक्ति की वाणी बन गयी।

28.4.4 परम्परा पर आक्रमण : बुद्धिजीवियों के प्रयास

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नये सांस्कृतिक आन्दोलन को समग्र रूप में देखने से यह पता चलता है कि यह मूलतः सम्पूर्ण सांस्कृतिक विरासत पर एक आक्रमण था। ची द्वारा चीनी नवयुवकों को किया गया यह संबोधन "स्वतंत्र बनो दब्बू नहीं, प्रगतिशील बनो रूढ़िवादी नहीं, आक्रमक बनो निष्क्रिय नहीं" केवल कन्फ्यूशियाई सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर ही सीधा आघात नहीं था बल्कि सम्पूर्ण परम्परा पर आक्रमण था, जिसमें "कन्फ्यूशियसवाद, ताओवाद और बौद्ध धर्म के तीन उपदेश" भी शामिल थे। लोगों में व्याप्त अंधविश्वासों की तो बात ही छोड़िए।

हालांकि डार्विन के विकासवादी सामाजिक सिद्धांत की भाषा का उपयोग किया गया था, पर "पुराने समाज" और "पुरानी संस्कृति" को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा गया था, जिन्होंने देश की आत्मा को कुचल डाला था। क्रांति से यह बात साफ हो चुकी थी कि समाज में व्याप्त कुरीतियों को छोड़े बिना सम्पूर्ण परम्परागत राजनीतिक संरचना को हटाया नहीं जा सकता था। पुरानी परम्परा में न केवल संघर्ष करने की क्षमता थी, बल्कि यह अपने को पुनःस्थापित भी कर सकती थी। युआन शिकाइ द्वारा राजतंत्र की स्थापना का प्रयास इसका एक प्रमुख उदाहरण था। अतः अब एक ही उद्देश्य सामने था, देश की चेतना और सोच में आमूल परिवर्तन। "नये सांस्कृतिक" नेताओं का यह मानना था कि किसी भी प्रकार की राजनीतिक कार्यवाही या संस्थागत सुधार के पहले इस काम को पूरा करना जरूरी है। 1917 में अमेरिका से लौटने के बाद युवा हू शि ने स्पष्ट रूप से कहा कि बीस वर्षों तक हमें राजनीति की बातें नहीं करनी है। वस्तुतः ये विचार सम्पूर्ण नये सांस्कृतिक दल की आम विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे। उनकी मुख्य संस्था के नाम से ही पता चलता है कि उनके लक्ष्यीभूत श्रोता शिक्षा प्राप्त नवयुवक थे, जो पुराने और सड़े हुए समाज से पूरी तरह प्रभावित नहीं थे।

यहाँ भी हम न्यू यूथ के दृष्टिकोण और मुख्य चिंतकों के सोचने में थोड़ा फर्क पाते हैं। अपनी दुविधाओं पर विजय पाकर इन चिंतकों ने भी बदलते समाज में सचेतन विचारों की भूमिका पर बल दिया। हालांकि उनके इस शैक्षिक दृष्टिकोण को भी समर्थन मिला कि मांचू सुधार आंदोलन के दौरान परिवर्तन की शुरुआत हो चुकी थी या समाज के संस्थागत ढाँचों में इसकी शुरुआत होने वाली थी। नये सांस्कृतिक दल के विश्लेषण ने 1919 के पहले ही उन्हें यह मानने के लिए मजबूर कर दिया था कि सम्पूर्ण माहौल को बदले बिना समाज को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था।

1919 के पहले नये सांस्कृतिक आन्दोलन का एक आयाम यह उभर कर सामने आया कि राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों के बीच एक स्पष्ट रेखा खींच दी। भविष्य में भी यह अंतर जारी रहा। यह अलगाव 1905 में परीक्षा व्यवस्था की समाप्ति में स्पष्ट हो चुका

बुद्धिजीवियों ने राजनीतिक जीवन में हिस्सा लिया। इसके बावजूद बुद्धिजीवियों खासकर शिक्षक और साहित्यकार, ने अपनी एक अवधारणा बना ली थी कि उन्हें स्वायत्तता का अधिकार हासिल था। यह मानसिकता 1949 के बाद भी कायम रही।

"नये साहित्य" का उदय नये सांस्कृतिक आन्दोलन का एक प्रमुख और उल्लेखनीय आयाम था। यहाँ भी हम देखते हैं कि साहित्य प्रमुख रूप से मनुष्य के स्वायत्त सोच का परिणाम था। हालांकि कविता और ललित साहित्य, साहित्य की प्राचीन और उच्च संस्कृति का अंग थे। पर आदर्श रूप में वे कभी भी अपने अंदर की खोज से अलग नहीं हुए। ऐसे बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं जिनमें "साहित्यिक" रूझान तो है, पर उन्होंने कभी भी अपने को साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं प्रदान की हो। इसके अलावा कथा-कहानी-उपन्यास लिखना उच्च सांस्कृतिक गतिविधि का अंग नहीं माना जाता था। लियांग ची-चाओ ने कथा-कहानी को समर्थ साहित्यिक विधा के रूप में विकसित करने की वकालत की ताकि उसके माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक विचारों को फैलाया जा सके। लूशुन और उनके छोटे भाई 1911 से पहले ही जापान में रहकर चीनी जनता की आवाज को साहित्यिक अभिव्यक्ति दे रहे थे। पर नये सांस्कृतिक आन्दोलन के प्रयासों से ही नये देशी साहित्य को सम्मान प्राप्त हो सका। नयी संस्कृति ने कथा-कहानी विधा को एक सम्मानजनक दर्जा प्रदान किया और उसकी अपेक्षा थी कि यह विधा जीवन से जुड़े और आम आदमी के जीवन का मार्गदर्शन करे। चीन में पनप रहे इस नये साहित्य का एक सामाजिक नैतिक उद्देश्य भी था। इस नैतिक उद्देश्य से सभी लेखकों को नहीं बाँधा जा सकता था और कुछ लेखक ऐसे भी थे जो शुद्ध साहित्यिक स्तर पर इस नैतिकता से नहीं बंधे थे, पर अंततः वे भी समाज के ही प्रवक्ता थे।

यहाँ तक कि कुओ मो-जो, यू-ता-फ और अन्य लोगों का रोमानी सृजनात्मक समूह, जो "कला के लिए कला" में विश्वास रखता था, भी "अकलात्मक" प्रयासों से प्रभावित हुए। 1919 के पहले ही परम्परागत जीवन के बंधनों से मुक्त होने की आकांक्षा ने रोमानी धारा को जन्म दिया जिसमें व्यक्ति के महत्व और अस्मिता की बातें होने लगी थीं। 1911 के बाद के वर्षों में राजनीतिक मुक्ति की बात नाटकीय ढंग से क्षीण होने लगी, युवा बुद्धिजीवी व्यक्तिगत मुक्ति की बात करने लगे, वे उस जगत से अपने को अलग करने लगे, परम्परागत मूल्यों में उनका विश्वास नहीं रहा। नयी संस्कृति के उदय में इन तत्वों ने काफी मदद की। एक प्रकार से उदारवादी और रोमानी दोनों सन्दर्भों में "व्यक्तिवाद" का प्रभाव मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन पर पड़ा। पुराने लोगों के गले से यह बात नहीं उतरती थी, जो अभी भी परम्परागत कन्फ्यूशियाई पारिवारिक मूल्यों के दायरे में जी रहे थे। कुछ समय के लिए ही सही, व्यक्तिवाद सामाजिक-राजनीतिक उद्देश्य से पूरी तरह जुड़ा प्रतीत नहीं होता था। हू शि द्वारा प्रायोजित न्यू यूथ के इब्सेन अंक में इब्सेन के नाटक "गुड़िया घर" (यह एक नर्वीजियन नाटक है, जिसमें परिवार और समाज में नारी मुक्ति का समर्थन किया गया है।) का अनुवाद इस चिंता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति थी। इसी प्रकार "सृजनात्मक समाज" रोमानी संसार में आनंद विभोर था, इसके लेखक अपनी अतृप्त भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहे थे और "कला के लिए कला" ही उनका मुख्य सरोकार था। लिओ ली के शब्दों में "फ्रांसीसी प्रतीकात्मक अवधारणा से काफी दूर जिसमें कहा गया है कि कला केवल जीवन का पुनर्निर्माण नहीं करती बल्कि कला एक नया संसार बनाती है जिसमें कलाकार जाकर शरण ले सकता है और अपना अलग तर्क निर्मित कर सकता है तथा अपने को जीवन से जोड़ भी सकता है।"

DIKSHANT IAS
Call us @ 7428092240

नये संस्कृति आंदोलन में परम्परा और विरासत की "उच्चतर आलोचना" की शुरुआत हुई। शि आदि विद्वानों ने परम्परागत विरासत को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा। विभिन्न परम्पराओं और धर्मग्रंथों की प्रासंगिकता और प्रामाणिकता पर चीनी विद्वान काफी अर्से से वाद-विवाद करते आ रहे थे और विभिन्न मत प्रकट करने की परम्परा थी। चिंग साम्राज्य के इम्पिरिकल रिसर्च स्कूल के भाषाशास्त्रियों ने श्रेष्ठ ग्रंथों की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की थी। लेकिन इस बात में सन्देह है कि बीसवीं शताब्दी के उनके अनुयायियों ने शुद्ध आलोचना पद्धति अपनायी।

कांग-यू-वी, जो किसी भी दृष्टिकोण से आलोचक नहीं था, ने कन्फ्यूशियसवाद की अपनी नयी व्याख्या की स्थापना के लिए शताब्दी के आरम्भ में कुछ पुराने धर्मग्रंथों की रूढ़िवादिता पर योजनाबद्ध तरीके से आक्रमण किया।

हू शि के अनुसार "राष्ट्रीय विरासत को पुनर्व्यवस्थित" करने के आंदोलन के पीछे एक गहरा वैचारिक उद्देश्य निहित था। लारेंस श्निदर के शब्दों में, "रूढ़िवादी इतिहासों की

प्रामाणिकता को खंडित करने और धर्म ग्रंथों के ऐतिहासिक आधारों को खंडित करने के लिए विज्ञान के औजारों का उपयोग करना होगा।" परम्परा की जकड़ी हुई रूढ़ियों को दूर करने का एक अच्छा तरीका यह होता है कि उन तथ्यों और मिथकों की प्रामाणिकता को नेस्तनाबूद कर दिया जाए, जो उस परम्परा को आधार प्रदान करते हैं। अंत में यह कह देना आवश्यक है कि "राष्ट्रीय अध्ययन" के कई विद्वानों ने भी परम्परा का अध्ययन करने के लिए और ऐतिहासिक अध्ययन की आलोचनात्मक व्याख्या करने के लिए कट्टरपंथियों और परम्परागत तरीकों का इस्तेमाल किया यहाँ तक कि "नव-परम्परावादी" विद्वानों के पास भी हू शि की मूर्तिभंजक दृष्टि नहीं थी।

"नयी संस्कृति" के मूर्तिभंजक विद्वानों के उद्देश्य पूर्णतः विध्वंसक नहीं थे। हालांकि भविष्य के निर्माण के लिए वे समकालीन पश्चिमी देशों को "मॉडल" के रूप में देख रहे थे, पर एक चीनी राष्ट्रवादी होने के नाते से अपने को अपने अतीत से काट कर नहीं देख सकते थे। चीनी परम्परा में वे उन प्रगतिशील तत्वों को खोज रहे थे, जिसके आधार पर आधुनिकता की नींव रखी जा सके। हू शि के अमेरिकी शिक्षक जॉन देवे ने वैज्ञानिक पद्धति की बात करते हुए कहा था कि आधुनिक युग का जन्म अतीत के गर्भ में होता है। हू शि और अन्य लोगों ने परम्परा में उन तत्वों की खोज की जिससे आधुनिकता का सूत्रपात किया जा सकता था। हू शि ने अपनी "वैज्ञानिक" पद्धति के तहत चीन के आरम्भिक विचारकों में तर्कपद्धति की खोज की, अतीत के समृद्ध और प्रगतिशील देशी साहित्य को महत्व दिया, जो मरणासन्न रूपवादी संभ्रांत साहित्य से कहीं अधिक लोकोपयोगी और श्रेष्ठ था। इसे लोकप्रियतावादी पद्धति के तहत संभ्रांत "उच्च संस्कृति" को अवमानना मिली और उसे शोषक बताया गया और लोक साहित्य को प्रगतिशील और आधुनिक गुणों से सम्पन्न माना गया। लोक साहित्य का अध्ययन किया जाने लगा। हू शि नये साहित्य और नये विद्वानों को साथ लेकर चलना चाहता था, अतः अतीत के देशी साहित्य की छानबीन करते समय उसने दोनों के हितों का ध्यान रखा। सभी प्रकार के साहित्यिक प्रयास (गंभीर या मनोरंजक साहित्य दोनों) नये सांस्कृतिक आंदोलन में घुलमिल गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस आंदोलन के अग्रणी नेताओं में कुछ आम सहमति थी, पर जब हम एक दूसरे की तुलना करने बैठते हैं, तो हू शिह ची तू शुम और लू-शून के विचारों में काफी अंतर पाते हैं। 1911 के पूर्व एक युवा छात्र के रूप में हू शि येन फू और लिआंग चि-चाओ के डार्विनवादी सामाजिक सिद्धांतों में रुचि रखता था और उससे प्रभावित था। उस पर संयुक्त राष्ट्र और जॉन देवे के दर्शन का काफी प्रभाव था। उसने ची के प्रसिद्ध सिद्धांत "विज्ञान और प्रजातंत्र" की अपने ढंग से व्याख्या की थी। इसे वह आधुनिकीकरण का अपरिवर्तनीय मूल मंत्र मानता था। येन फू की विज्ञान की अवधारणा को एक रूप देने का एक प्रयास था। हू शि ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में अमेरिका में प्रजातंत्र को फलते-फूलते देखा था। उसने भी देवे के प्रजातंत्र संबंधी विचारों को स्वीकार किया था।

जॉन देवे के दर्शन में विज्ञान और प्रजातंत्र एक-दूसरे में अनुस्यूत थे। उसने सभी प्रकार की समस्याओं के लिए विज्ञान के कार्य-कारण संबंध का अनुमोदन किया, जिसके चलते पूर्व स्थापित सभी प्रकार की ईश्वरीय मान्यताएँ और धारणाएँ ध्वस्त हो गयीं, चाहे वह धर्म का क्षेत्र हो, या राजनीति या आध्यात्मिक। इस प्रकार इनके स्वतंत्रता के दावे के लिए एक ठोस आधार प्रस्तुत कर दिया। यदि सब लोग मिल जुलकर विज्ञान का सहारा लें और मानवीय तथा सांस्कृतिक समस्याओं के हल के लिए इसकी सहायता लें, तो अंधविश्वासों और ईश्वरी मान्यताओं से मुक्ति मिल सकती है। विज्ञान ने प्रकृति को काफी सुलझे हुए ढंग से देखा परखा है। उससे मनुष्य की समस्याओं का समाधान भी ढूँढा जा सकता है और स्वतंत्रता और समानता जैसे तत्वों को यथार्थ रूप दिया जा सकता है। शिक्षा के माध्यम से लोगों में वैज्ञानिक पद्धति विकसित करनी होगी ताकि लोगों में विश्लेषण क्षमता पैदा हो और अपनी समस्याओं पर लोग सामूहिक तौर पर सोच विचार कर सकें, अपने हितों को पहचान सकें। हालांकि देवे के "राजनीतिक प्रजातंत्र" और संविधानवाद की तीखी आलोचना हुई, पर इस बात में कोई संदेह नहीं है कि उसका सम्पूर्ण दृष्टिकोण यह था कि संवैधानिक प्रजातंत्र को लोग एक नियम के तहत निश्चित रूप से मान्यता प्रदान करेंगे। शि ने देवे के सिद्धांत के मुताबिक विज्ञान को एक पद्धति के रूप में अपनाया, पर एक दार्शनिक के रूप में किए गये उसके सूक्ष्म ज्ञानात्मक मुद्दों को उसने पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया। उसने देवे के सिद्धांत में से व्यावहारिक बातें ग्रहण कीं और उसे सरल रूप में प्रस्तुत किया। इस मामले में उसने काफी हद तक येन फू और लिआंग की परम्परा का पालन किया, हालांकि उसका प्राकृतिकवाद में विचार ताओवादी-बौद्ध मत से काफी अलग था। देवे ने सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं और "मात्र राजनीतिक" की अवधारणा पर

विचार करते समय वैज्ञानिक शोध और शिक्षा पर बल दिया। इससे प्रभावित होकर हू शि ने चीन के अव्यवस्थित और गैर-जिम्मेदाराना राजनीतिक संघर्षों को चीन के सही विकास के लिए अप्रासंगिक मान लिया।

देवे का वैज्ञानिक खोज और शिक्षा पर जोर सम्पूर्ण सांस्कृतिक आंदोलन के अनुकूल था, जिसमें सम्पूर्ण समाज के चेतन को बदलने की बात की जा रही थी। अतः 1917 में जब हू शि चीन लौटा, तो वह स्वाभाविक रूप से इस आन्दोलन से जुड़ गया। इस आन्दोलन के बृहद शैक्षिक उद्देश्यों को सामने रखकर ही उसने भाषा सुधार में गहरी दिलचस्पी दिखाई। नये साहित्य में उसकी दिलचस्पी ने उसके साहित्य प्रेम को उजागर किया। साथ ही साथ इस विश्वास को बड़ी शिद्दत के साथ व्यक्त किया कि साहित्य नये विचारों के प्रचार-प्रसार का समर्थ वाहक होता है। शि के सम्पूर्ण जीवन को देखने से पता चलता है कि उसे साहित्य और ज्ञान में बड़ी रुचि थी और उसका मानना था कि "राष्ट्रीय विरासत का पुर्नसंगठन" एक नाजुक सांस्कृतिक कार्य है। इसका यह मतलब नहीं है कि उसने अपने लेखन में सामाजिक और राजनीतिक सवालों को उठाया ही नहीं। पर वह अपने लेखन के माध्यम से राजनीतिक कार्यकलापों को प्रभावित न कर सका। अतः उसने सांस्कृतिक विरासत के क्षेत्र में "वैज्ञानिक खोज" का ज्यादातर प्रयोग किया। वस्तुतः ची-तू-शिम ने ही "विज्ञान और प्रजातंत्र" का नुस्खा सामने रखा था। लेकिन सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर पता चलता है कि इन दोनों मामलों में हू शि से उसके विचार भिन्न थे। उसके तेवर हू से अलग थे। वह आवेश पूर्ण और अविवेकी स्वभाव का था। उस पर भी पश्चिमी प्रभाव था, पर यह प्रभाव आंग्ल-अमेरिकी न होकर फ्रांसीसी था। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य था। विज्ञान के प्रति उसकी दृष्टि डार्विन के सिद्धांत के अनुरूप थी। विज्ञान एक ऐसा हथियार था जिससे परम्परागत मूल्यों को ध्वस्त किया जा सकता था। चीन में उसके इस विकासवादी सिद्धांत को पूर्णतः नजरअंदाज कर दिया गया। इससे उसे काफी दुःख हुआ। हालांकि हू शि की तरह वह भी मूलतः "वैज्ञानिक" नियत्ववाद को बुद्धिजीवी संभ्रांतों की शक्ति में गहरे विश्वास के साथ जोड़ने में कामयाब हो गया था। ची की विचारधारा में विज्ञान व्यवहारमूलक पद्धति का स्थान ग्रहण नहीं कर सका। बाद में उसने बिना किसी भाव परिवर्तन के विज्ञान का प्रयोग डार्विनवाद के लिए न करके मार्क्सवाद के लिए करना शुरू कर दिया।

DIKSHANT IAS

Call us @7428092240

अपनी वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा के कारण हू शि राष्ट्र के सम्पूर्ण क्रांतिकारी बदलाव की बात नहीं पचा पाया। ची फ्रांसीसी क्रांति को आधुनिक प्रजातंत्र का शीर्षस्तंभ मानता था। उसने क्रांतिकारी बदलाव की अपील को अपेक्षाकृत अधिक सहजता से ग्रहण किया, हालांकि 1919 के पूर्व उसका पूरा दृष्टिकोण राजनीति विरोधी था और वह भी "सांस्कृतिक" दृष्टिकोण का समर्थक था। हालांकि दोनों ने दो वर्ष (1917-19) एक साथ मिलकर काम किया और इस बीच व्यक्तिवाद और प्रजातंत्र के तत्व संबंधी उनकी विचारधारा में काफी समानता रही।

लू शुन चीन के सर्वप्रमुख साहित्यिक प्रतिभा के रूप में उभर कर सामने आया। उसकी विचारधारा अपने आप में विशिष्ट थी। अपने सम्पूर्ण जीवन काल में वह तामसी शक्तियों से लड़ता रहा। अपने युगकाल में वह विकासवादी सिद्धांत से प्रभावित था, पर जल्दी ही (1917 के पहले ही) उसके मन में इसके प्रति शंकाएँ उठने लगी थीं। अपने व्यक्तिगत अनुभवों, भ्रष्टाचार के प्रति उसकी घृणा, चीनी जनसमुदाय की "दास मानसिकता" आदि के कारण 1911 के पहले ही विकासवादी सिद्धांत से उसका विश्वास उठने लगा था। नित्शे के लेखन को उसने पढ़ा था, और उसका उस पर प्रभाव भी पड़ा, पर वह नित्शेवादी नहीं हो गया। हाँ, उसे वहाँ से कुछ प्रतीक मिले जो मानव की "दासता प्रवृत्ति" से लड़ने में सक्षम थे। कुछ समय के लिए वह नित्शवादी-बाइरोनिक काव्य नायक के सपने में खोया था, जो मनुष्य को अंधविश्वासों से मुक्त कराता था। येन फू के प्रभाव के बावजूद लू शून ने पश्चिमी तकनीकी विचारधारा से अपने को अलग रखा। उसने पश्चिमी साहित्य के उस यथार्थवाद से भी अपने को दूर रखा, जहाँ मनुष्य के नैतिक जीवन पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाता था।

1911 के बाद की घटनाओं ने लू शून को निराश किया। नित्शवादी साहित्यिक नायक समाज को बदल सकता है, उसकी यह धारणा तेजी से बिखर गयी। चीन के बुरे अतीत और वर्तमान के प्रति उसका पूरा दृष्टिकोण "नयी संस्कृति" के अन्य विद्वानों की अपेक्षा निराशाजनक था। समकालीन चीन की क्रूरता, भ्रष्टाचार और दिखावटीपन परम्परागत मूल्यों के ह्रास को प्रतिबिंबित नहीं करता था, बल्कि वस्तुतः उन विध्वंसक मूल्यों का प्रदर्शन था। उन्होंने अपनी कहानी "पागल की डायरी" में लिखा है कि चीनी समाज

"आदमखोर" हो गया है, यह इसका मात्र यथार्थ नहीं है, बाकि इसके आदर्श भी आदमखोर हैं। यहाँ तक कि 1911 के पहले के युवा क्रांतिकारी भी इस दुःस्वप्न से पीड़ित थे। लू शून ने नये सांस्कृतिक आन्दोलन के उद्देश्य को देखते हुए एक बार फिर कलम उठाई, पर इसका प्रभाव बहुत सीमित सिद्ध हुआ।

लू शून के "सम्पूर्ण अस्वीकार" के बावजूद उनकी साहित्यिक कल्पनाशीघ्र बेजोड़ थी। लू शून बराबर चीन के अतीत के गैर परम्परावादी रूझानों से अभिभूत रहे।

उनका अतीत हू शि के अतीत से बिल्कुल भिन्न था। यह दक्षिणी प्रदेश का नव-ताओवादी बोहेमियन अतीत था, जिसमें लोकतत्व और कुछ खास व्यक्तिगत मूल्यों को तरजीह दी गयी थी। पर इनमें से कोई भी लू शून को परम्परा के सम्पूर्ण अस्वीकार से विचलित न कर सका।

बोध प्रश्न 2

1) नयी संस्कृति के विकास में छात्रों की भूमिका का उल्लेख 10 पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) बेदा (पेकिंग विश्वविद्यालय) में किए गये सुधारों का 5 पंक्तियों में उल्लेख कीजिए।

....
....
....
....
....

3) "विज्ञान और प्रजातंत्र" नुस्खे पर 10 पंक्तियों में विचार-विमर्श कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

4) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही या गलत है? (✓) और (×) का निशान लगाइए।

i) न्यू यूथ पत्रिका ने नये सांस्कृतिक आंदोलन का प्रचार-प्रसार किया।

ii) नये सांस्कृतिक आंदोलन के दौरान देशी साहित्य की खोज की गयी।

iii) जान देवे हू-शि का शिक्षक था।

iv) लू शून एक साहित्यकार था।

28.5 चार मई की घटना के परिणाम

यह नया सांस्कृतिक आंदोलन चार मई के आंदोलन के रूप में प्रस्फुटित हुआ या यूं कहें कि यह आन्दोलन उसमें समाहित हो गया। इस दौरान बहुत से सिद्धांत असंख्य पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आये। चार मई के आंदोलन ने जनता के छिपे हुए आक्रोश को व्यक्त कर दिया। इसमें नयी संस्कृति की अवधारणाएँ खासकर सांस्कृतिक विरासत के पूर्ण अस्वीकार की बात सामने आयी।

इन घटनाओं का मुख्य परिणाम यह हुआ कि चीन की समस्या का शुद्ध रूप में सांस्कृतिक विश्लेषण किया गया। चार मई की घटना एक राजनीतिक घटना थी, यह विदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ एक जबरदस्त राजनीतिक कार्यवाई थी। कुछ समय के लिए यह एक प्रकार का जनान्दोलन भी था, हालांकि इसमें छात्र और शहरी लोग ही शामिल थे। अभी तक नये सांस्कृतिक नेता चीन की घरेलू समस्याओं से ही जूझ रहे थे। अपने डार्विनवादी सामाजिक अवधारणा के कारण वे यह न समझ सके कि चीन की इस स्थिति का एक प्राथमिक कारण साम्राज्यवादी शक्तियों का हस्तक्षेप भी है। हालांकि राष्ट्रवादी दबावों और छात्रों के जोर से कुछ बुद्धिजीवियों को चीन के राजनीतिक अंधेरेपन से मुक्त कराने के लिए अल्प समय के लिए अपना सांस्कृतिक प्रयास छोड़ देना पड़ा।

यहाँ तक कि हू शि जैसे गैर राजनीतिक व्यक्ति को भी अपना तरीका बदलना पड़ा। इससे उसके सोच में तत्कालीन बदलाव आया। उसे यह लगने लगा कि बुद्धिजीवियों का सांस्कृतिक परिवर्तन पूर्ण हो चुका है और अब सामाजिक परिवर्तनों के माध्यम से इसका संक्रमण राजनीति में होने वाला है। 1919 में जॉन देवे खुद चीन में उपस्थित था। उसने इस आशा को प्रोत्साहित किया। उसने अपने सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि छात्र जनसमुदाय के बीच शिक्षा का प्रसार कर रहे हैं, सामाजिक और धार्मिक कार्य कर रहे हैं तथा आपस में बौद्धिक विचार-विमर्श कर रहे हैं। हू शि ने "जन शिक्षा, नारी मुक्ति, विद्यालय सुधार" की बात की। यह मान लिया गया कि ये सभी उद्देश्य पूरे हो जाएंगें। ऐसा मानते वक्त 1919 में सैन्य शासन की राजनीतिक शक्ति को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया। हालांकि 1922 में हू शि ने एक पत्रिका निकाली, हिंदी में जिसका नाम होगा "कोशिश"। यह खुले रूप में एक राजनीतिक पत्रिका थी। इसी समय हू शि को इस बात का दुखद अनुभव हुआ कि राजनीतिक शक्तियों के पास इतनी ताकत होती है कि वह व्यक्ति के बोलने की स्वतन्त्रता और कार्य करने की स्वतंत्रता को कुचल सकता है। वह राजनीतिक कार्यवाई की पृष्ठभूमि में निहित "मुद्दों" से भी परिचित हो गया था। उसकी राजनीतिक कार्यवाई उदारवादी थी। उसने सरकार के निरंकुश कार्यकलापों के खिलाफ "नागरिक अधिकारों" का आह्वान किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हू शि ने अपने राजनीतिक प्रस्तावों के तहत "अच्छे आदमियों" की सरकार और "योजनाबद्ध तरीके से काम करने वाली सरकार" की माँग की। उसकी सबसे बड़ी समस्या यह थी कि चीन की तत्कालीन परिस्थिति में विज्ञान और प्रजातंत्र में कैसे तालमेल स्थापित किया जाए। उसका विश्वास था कि कुछ वैज्ञानिक मानसिकता वाले लोग (जो "अच्छे" और कम संख्या में थे) आएंगे और सत्ता हासिल करेंगे। साम्यवादियों और राष्ट्रवादियों की तरह हू भी अपने को बुद्धिजीवी संभ्रांत मानने को मजबूर था। सेनाध्यक्षों की सरकार (हू पेइ फू) के साथ उन्होंने काम करने के सपने देखे थे। यह अल्पजीवी साबित हुई। इसके तुरंत बाद हू शि अपने सांस्कृतिक क्षेत्र में आ गया।

सन यात सेन और उनके साथियों ने राष्ट्रवादी राजनीतिक रुख का सबसे ज्यादा फायदा उठाया। यह माहौल चार मई के आंदोलन के दौरान बना था। इस माहौल के कारण सारे वैचारिक मतभेद सिमट गये। 1911 से लेकर 1919 तक का काल ऊर्जाहीन था। इस दौरान सन यात सेन ने मजबूत केंद्रीय सरकार की स्थापना के अपने उद्देश्य को अंजाम देने की कोशिश की। अपनी इस कार्य पद्धति में उसने कभी भी चीन की संस्कृति में "नयी संस्कृति" के योगदान को स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक कि 1911 के पहले भी उसका यह सोचना था कि अतीत की उपलब्धियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और उसके

सामने यह बिल्कुल स्पष्ट था कि किस चीज को तरजीह देनी है, किस चीज को नहीं। 1911 के बाद के वर्षों में एक प्रकार की कड़वाहट फैली, इस दौरान उसने चीन में एक अनुशासित और एकीकृत दल संगठित करने की समस्या पर काम किया। यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी संवैधानिक प्रजातंत्र पर उसका विश्वास कम होने लगा। अतः सन यात सेन और उसके अनुयायी अगर अक्तूबर क्रांति में लेनिन के पार्टी संगठन और सैन्य शक्ति से निबटने के सोवियत तरीके की ओर तुरंत आकर्षित हुए और रुचि दिखाई, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसके कुछ अनुयायियों ने पश्चिमी प्रवृत्ति को समझने के लिए साम्राज्यवाद संबंधी लेनिनवादी सिद्धांत को तेजी से अपनाया।

चार मई के आंदोलन के काल में रूसी क्रांति और इसके सिद्धांतों ने चीन में अपना काफी प्रभाव स्थापित किया और इससे इस आंदोलन के सैद्धांतिक और दार्शनिक सोच में एक और आयाम जुड़ा। चीन में लेनिनवादी सिद्धांत क्रमशः लोकप्रिय होता गया। साम्यवादियों के रूप में बुद्धिजीवियों का एक ऐसा दल सामने आया जो एक नयी और वैज्ञानिक संस्कृति का प्रसार करना चाहते थे। उनका अंतिम उद्देश्य जन संगठन था। जन संगठन राजनीतिक और सैनिक शक्ति प्राप्त करने का भी एक साधन था। यह स्वतः स्पष्ट है कि 1919 के पहले "नयी संस्कृति" में कहीं भी राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जन संगठन की बात नहीं की गयी थी, हालांकि जन शिक्षा की बात यह "संस्कृति" करती थी।

बोध प्रश्न 3

1) राजनीतिक शक्ति के प्रति हू शि के दृष्टिकोण पर विचार कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) चीनी बुद्धिजीवियों द्वारा स्वीकार्य लेनिनवादी विचारों का उल्लेख 5 पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....
....

28.6 सारांश

1911 में चिंग साम्राज्य के पतन और 1919 के चार मई के आंदोलन के बीच एक तरफ राजनीतिक कड़वाहट, आर्थिक अस्थिरता और सामाजिक तनाव फैला हुआ था तो दूसरी तरफ इस अस्थिरता और अव्यवस्था के बीच "नयी संस्कृति" का जन्म हो रहा था। इस निषेधात्मक घटना के दौरान ही लोगों को चीन के बेहतर भविष्य के लिए "नयी संस्कृति" के निर्माण की जरूरत महसूस हुई। इन सुधार आंदोलनों, बहसों, वाद-विवादों और परस्पर विरोधी सरकारों के माध्यम से चीन के "चीनत्व" की मूल्यवत्ता और प्रासंगिकता पर लगातार विचार होता रहा। इस काल में इन बहसों के जरिए कुछ विचारों को मूर्त रूप में ढाला जा सका। राष्ट्रीयता की यह नयी अनुप्राणक अवधारणा और साम्यवाद जैसी विचार

पद्धति इसी प्रक्रिया में उभर कर सामने आये। "विज्ञान और प्रजातंत्र" इस कार्य की सोच पद्धति के आधार बन गये। इस नयी संस्कृति के प्रचार-प्रसार में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अतीत का बहिष्कार एक बारगी या बिना कुछ सोचे समझे नहीं कर दिया गया, बल्कि इसके पीछे बुद्धिजीवियों का विद्वतापूर्ण सार्थक प्रयत्न था। यह सही है कि जन शिक्षा "नयी संस्कृति" का प्रमुख अंग था, पर इसका पूरा जोर बुद्धिजीवी संभ्रांत लोगों पर था। चीनी सांस्कृतिक क्रांति के दौरान नारी मुक्ति, युवा शक्ति, राजनीतिक मुक्ति और सामाजिक उत्थान की बात की गयी। यह बहुतत्ववादी सांस्कृतिक अकादमिक आंदोलन था, जिसने चीन में जड़ जमाए कन्फ्यूशियाई सिद्धांत को जमकर झकझोर दिया।

आधे दशक पहले ताइपिंगों ने कन्फ्यूशियसवाद को चुनौती दी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दिनों में सौ दिनों के सुधारकों ने वास्तविक कन्फ्यूशियसवाद की स्थापना की आड़ में कन्फ्यूशियसवाद के तत्वों पर आघात किया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद मुख्य रूप से जापान और फ्रांस से लौटे विद्यार्थियों ने कन्फ्यूशियसवाद का खंडन करना शुरू किया। धीरे-धीरे यह विचार अपेक्षाकृत विशाल शिक्षित समुदाय में फैला। सब लोगों ने यह स्वीकार कर लिया कि आधुनिकता का स्वागत करने के लिए कन्फ्यूशियसवाद को हटाना जरूरी था। चीन के युवा बुद्धिजीवियों का एक लोकप्रिय नारा था "हम श्रीमान विज्ञान और श्रीमान प्रजातंत्र को चाहते हैं, और श्रीमान कन्फ्यूशियस और उनके दल का बहिष्कार करते हैं।" पहली बार हजार वर्षों से जड़ जमाए इस पुराने सिद्धांत को चुनौती दी गयी और उसे पेकिंग की गलियों में बिखेर दिया गया।

28.7 शब्दावली

मूर्तिभंजक : स्थापित मान्यताओं पर आघात।

भाषा विज्ञान : भाषा के विकास का अध्ययन।

व्यवहारवाद : किसी भी विषय पर व्यावहारिक दृष्टि से सोचना।

रोमानीपन : साहित्य की रोमानी प्रकृति।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

28.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) 1) ✓ 2) × 3) × 4) ✓

2) उन्हें आदमी के मातहत के रूप में देखा जाता था। माँ और पत्नी के रूप में ही समाज ने उन्हें मान्यता दी थी। देखिए भाग 28.3

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में विदेशों में पढ़े छात्रों के दृष्टिकोण का उल्लेख होना चाहिए, चीन को आधुनिकीकृत करने वाले विचारों का भी उल्लेख कीजिए, यह भी बताइए कि उन्होंने अपने विचारों को कैसे व्यवहारिक अंजाम दिया। देखिए उपभाग 28.4.2

2) उपभाग 28.4.2 में बताए गये सीयूआन पी के सुधारों का उल्लेख कीजिए।

3) इस नारे में चीन के बुद्धिजीवियों के बीच आधुनिकीकरण के विचार प्रसारित करने की प्रवृत्ति छिपी हुई है। उपभाग 28.4.4 पढ़िए और यह बताने की कोशिश कीजिए कि किसने यह नारा उछाला और परंपरागत कन्फ्यूशियाई व्यवस्था को झकझोरने में इसकी भूमिका का उल्लेख कीजिए।

4) i) ✓ ii) ✕ iii) ✓ iv) ✓

बोध प्रश्न 3

1) भाग 28.5 के आधार पर अपना उत्तर लिखिए।

2) लेनिन के दल संगठन पर विचार और साम्राज्यवादी संबंधी सिद्धांत देखिए। देखें भाग 28.5

इकाई 29 विदेशी पूंजी निवेश और नव वर्ग का उदय

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 कुछ टिप्पणियाँ
29.3 चीन में विदेशी पूंजी
29.4 चीनी बूर्जुआ वर्ग का उदय
29.5 चीनी बूर्जुआ वर्ग और 1911 की क्रांति
29.6 युआन शिकाइ के काल में बूर्जुआ वर्ग
29.7 बूर्जुआ वर्ग : 1916-1919
29.8 शहरी समाज का उदय
29.9 सारांश
29.10 शब्दावली
29.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

29.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- चीन में विदेशी पूंजी के महत्व को समझा पाएंगे,
- सन् 1911 की क्रांति में बूर्जुआ वर्ग की भूमिका के बारे में जान पाएंगे,
- राष्ट्रपति युआन शिकाइ के काल में व्यापारी वर्ग की स्थिति को समझ पाएंगे, और
- यह स्पष्ट कर पाएंगे कि किस तरह प्रथम विश्व युद्ध ने चीनी बूर्जुआ वर्ग के विकास को सुगम किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

29.1 प्रस्तावना

इस इकाई की शुरुआत चीनी अर्थव्यवस्था में विदेशी पूंजी की भूमिका से होती है। इस इकाई में हमने चीन में बूर्जुआ वर्ग के उदय पर चर्चा की है और यह बताया है कि 1911 की क्रांति में बूर्जुआ वर्ग की क्या भूमिका थी और युआन शिकाइ के शासन के प्रति उनका रवैया क्या रहा। एक ओर तो बूर्जुआ वर्ग ने स्वदेशी उद्योग और व्यापार के विकास में योगदान किया और दूसरी ओर नव संस्कृति आंदोलन के विकास में। उन्होंने शहरी केंद्रों और एक स्पष्ट शहरी संस्कृति के विकास में भी योगदान किया। इस इकाई में हमने इन पहलुओं पर भी विचार किया है।

29.2 कुछ टिप्पणियाँ

पारंपरिक चीनी समाज में मुख्य तौर पर किसान और कुलीन लोग थे। इसके अतिरिक्त सामंत वर्ग और सौदागरों का एक छोटा वर्ग भी था। सौदागर आवश्यक तौर पर शासक वर्ग का अंग नहीं थे। शासक वर्ग की सत्ता जमींदारी, लोक सेवा परीक्षा में उत्तीर्ण होने और प्रशासनिक ढांचे में व्यक्ति की स्थिति पर आधारित थी। सौदागरों का मुख्य काम व्यापारिक गतिविधियों में सक्रियता थी। चीन में औद्योगीकरण उस तरह नहीं आया, जिस तरह यूरोप और जापान में। जमींदारी का स्वरूप कुछ ऐसा था कि खेतिहरों को और अधिक मुनाफे के लिए अपनी बचत को औद्योगिक विकास में लगाने की आवश्यकता नहीं होती थी। चीन औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा ही रहा और इसलिए आधुनिक प्रौद्योगिकी की

मांग भी सीमित ही रही। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विदेशी ताकतों का सीधे-सीधे दखल होने के बाद से चीन में कुछ बदलाव आया। चीन के आकार और उसकी आबादी को देखते हुए, विदेशी व्यापार और पूंजी निवेश की भूमिका चीन की अर्थव्यवस्था में अपेक्षाकृत कम रही। हाँ, इसके राजनीतिक परिणाम अवश्य निर्णायक रहे। अपने लेख "चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण" में माओ त्से-तुंग ने चीनी समाज में अन्य वर्गों के साथ दो स्पष्ट सामाजिक वर्गों का होना बताया है– कम्प्रेडर बूर्जुआ वर्ग और राष्ट्रीय बूर्जुआ वर्ग। उसके विचार में, इन दोनों वर्गों का भेद 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चीन में चले क्रांतिकारी संघर्ष में उनकी भूमिका से स्पष्ट होता है। राष्ट्रीय बूर्जुआ बुनियादी तौर पर क्रांति और साम्राज्यवाद विरोध के पक्ष में थे। कम्प्रेडर वर्ग साम्राज्यवाद का साथ देने वाला था, इसलिए वह अराष्ट्रभक्त और प्रति क्रांतिकारी या क्रांति-विरोधी था। कुछ विद्वान माओ के इस भेद को कृत्रिम मानते हैं। वे समूचे बूर्जुआ वर्ग को पूरी तौर पर विदेशी पूंजी निवेश और व्यापार पर आश्रित मानते हैं। यह मानना सच्चाई के अधिक निकट होगा कि ये दो अलग वर्ग नहीं थे, बल्कि दो राजनीतिक श्रेणियाँ थीं– राष्ट्रवादी और प्रतिक्रियावादी। महत्वपूर्ण बात वैसे यह है कि यह एक स्पष्ट राजनीतिक वर्ग था और इसने क्रांतिकारी संघर्ष में कोई सार्थक भूमिका नहीं निभाई।

29.3 चीन में विदेशी पूंजी

चीनी अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में जापानी और पश्चिमी प्रभाव देखा जा सकता था। सामान्य तौर पर, अधिकांश चीनी अर्थव्यवस्था विदेशियों की पहुँच से बाहर रही। विश्वसनीय आकलनों के अनुसार, 1914 में चीन में विदेशी पूंजी निवेश 16,100 लाख अमेरिकी डालर था, जबकि 1902 में यह 7330 लाख डालर था। 1914 में चीन की आबादी को 43 करोड़ रखा जाए तो प्रति व्यक्ति यह राशि लगभग 3.75 अमेरिकी डालर आती है। उसी काल में दूसरे उपनिवेशों में जो विदेशी पूंजी-निवेश था उसकी तुलना में यह बहुत ही कम था। 1930 के दशक में भी, चीन में निजी विदेशी पूंजी निवेश उसके कुल राष्ट्रीय उत्पाद का एक प्रतिशत भी नहीं था। बाद के वर्षों में विदेशी पूंजी निवेश बढ़ा, इसका एक कारण कीमतों का बढ़ना था और एक कारण यह था कि विदेशियों ने अपने मुनाफों को फिर से चीन में ही लगा दिया। बार-बार इस तरह निवेश और पुनर्निवेश करने का ही परिणाम था कि एक छोटी-सी एजेंसी के रूप में शुरुआत करने वाली जार्डिन, मार्थसन एवं कंपनी ने एक शताब्दी के अरसे में अपने आपको चीन की सबसे बड़ी विदेशी कंपनी बना लिया, जिसकी पूंजी कई संधिगत बंदरगाहों में कई उद्योगों और वित्तीय हितों में लगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428192240

विदेशी पूंजी का सीधा निवेश निम्न क्षेत्रों में हुआ :

- आयात और निर्यात,
- व्यापार,
- रेलपथ,
- निर्माण (उत्पादन),
- जायदाद,
- बैंकिंग और वित्त,
- नौ-परिवहन,
- उत्खनन, और
- संचार।

इससे इस तथ्य का पता चलता है कि अनेक अन्य देशों की तरह चीन में उत्खनन अथवा बागान की खेती जैसे निर्यातोन्मुख उद्योगों में बहुत कम विदेशी पूंजी लगी।

विदेशी पूंजी सबसे अधिक संधिगत बंदरगाहों, विशेषकर शंघाई, में लगी। इसलिए इन्हीं स्थानों में, और इन्हीं स्थानों के आसपास, शहरी बूर्जुआ के नए वर्ग का जन्म हुआ। यह सही है कि विदेशी स्वामित्व वाले उद्यमों और चीनी उद्यमों में विदेशी पूंजी निवेश के

कंपनियाँ इस स्थिति में थीं ही नहीं कि विदेशी कंपनियों के साथ होड़ कर सकें। विदेशी कंपनियों के पास अधिक पूंजी, बेहतर प्रौद्योगिकी और प्रबंध तंत्र था, और इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्हें क्षेत्रीयता के विशेषाधिकार और चीनी करों से छूट मिली हुई थी, और उन्हें चीनी नौकरशाही की समकों के प्रभाव में यहीं आना होता था।

29.4 चीनी बूर्जुआ वर्ग का उदय

यहाँ बूर्जुआ वर्ग शब्द का प्रयोग अधिक संकुचित अर्थ में किया गया है। बूर्जुआ वर्ग को हम एक ऐसे वर्ग के रूप में लेते हैं, जिसमें उद्यमी, आधुनिक ढंग के व्यापारी, पूंजी लगाने वाले और उद्योगपति आते हैं। इसमें आम "मध्यम वर्ग" को शामिल नहीं किया गया है, जिसमें व्यावसायिक लोग, बुद्धिजीवी और जमींदार आते हैं।

सन् 1911 की क्रांति ने बूर्जुआ वर्ग को चीन के आर्थिक और सामाजिक जीवन में बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित कर दिया। 18वीं शताब्दी से, आबादी में होने वाले बदलावों के कारण, चीन में शहरीकरण की गति में तेज़ी आई। इससे उन व्यापारियों और सौदागरों की संख्या भी बढ़ी, जो खाद्यान्न जैसी आवश्यक वस्तुओं को गांवों से खरीद कर उन्हें कस्बों और शहरों में बेचते थे। अफीम युद्ध के बाद से चीन में पश्चिमी ताकतों का हस्तक्षेप और भी उग्र हो जाने पर चीन के तटवर्ती क्षेत्र में जबरदस्त आर्थिक बदलाव देखने में आए। इनमें से कई संधिगत बंदरगाह थे। हावी शहरी वर्गों—सौदागरों और उच्चाधिकारियों—को इसमें मुनाफे का अवसर दिखाई दिया। सौदागरों के पास पूंजी थी, उद्यम संबंधी कौशल था और नए-नए कामों में हाथ डालने की इच्छा थी। उदाहरण के लिए, तीन वर्षों (1895-98) के अरसे में सौदागरों ने कोई 50 उद्यमों में एक करोड़ 20 लाख युआन से भी अधिक राशि लगा दी थी। यह राशि पिछले बीस वर्षों में लगाई गई पूंजी से भी अधिक थी। मन्दारिनों (Mandarins) की प्रशासन और सार्वजनिक कोश तक पहुँच थी, और उनमें जिम्मेदारी का बोध था। कुलीनों और सौदागरों के इन दो वर्गों में जब असाधारण सहयोग और राजनीतिक विलयन हुआ तो, चीनी बूर्जुआ का जन्म हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सन् 1911 की क्रांति ने मन्दारिनों की स्थिति को कमज़ोर कर दिया था। स्पष्ट था, व्यापारिक प्रयास, राजनीतिक सत्ता नहीं तो आर्थिक स्थिति प्राप्त करने का एक अच्छा विकल्प बन गया। लेकिन 1914 में प्रथम विश्व युद्ध छिड़ना चीनी बूर्जुआ वर्ग के विकास में एक निर्णायक मोड़ बन गया। यह नया वर्ग अब हरकत में आ गया, क्योंकि विदेशी होड़ हट जाने से उसके लिए चीन में और विदेश में भी नए बाज़ार खुल गए थे। व्यापार के फैलने और विविध होने से व्यापार के नए मार्ग खुले। हम देखते हैं कि बैंकर और उद्योगपति चीन की शहरी अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभाने लगे। युद्धकाल और प्रारंभिक युद्धोत्तर वर्षों को चीनी बूर्जुआ वर्ग का स्वर्ण युग कहा जाता है। 1927 इस वर्ग के लिए एक और मोड़ था जब चीन के उत्तर में नौकरशाही सैनिक नियंत्रण के कारण एक मुक्त पूंजीवादी व्यवस्था का विकास अवरुद्ध हो गया।

29.5 चीनी बूर्जुआ वर्ग और 1911 की क्रांति

हमने बूर्जुआ वर्ग की आधुनिक व्यापार से बंधे वर्ग के रूप में जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि 1911 की क्रांति में उसकी भूमिका केवल द्वैतीयक या दूसरे स्थान पर ही थी। इस क्रांति की सफलता के बाद बूर्जुआ वर्ग ने इस स्थिति का लाभ उठाने का प्रयास तो अवश्य किया। उनके बुनियादी हितों को सम्मान मिल भी गया, लेकिन वे स्थानीय स्तर के अतिरिक्त और किसी स्तर पर राजनीतिक सत्ता नहीं हथिया पाए।

सन् 1911 में चीनी राजतंत्र का पतन करने वाला वूचंग विद्रोह था तो एक सैनिक प्रयास, लेकिन उसे सौदागरों का समर्थन प्राप्त था। चैंबर ऑफ कॉमर्स ने लुटेरों और आगजनों से सुरक्षा के बदले में विद्रोहियों को भारी ऋण दिया। सौदागरों ने समाज-विरोधियों की तलाश करने के लिए एक सेना का भी गठन किया। एक बहुत मजबूत बूर्जुआ वर्ग को जन्म देने वाले शहर शंघाई में इस वर्ग और क्रांतिकारियों के बीच सहयोग ने क्रांति के सफल होने में एक निर्णायक भूमिका निभाई। व्यापारी वर्ग ने **दुंग मेंग वी** (क्रांतिकारी

गठबंधन) के साथ संपर्क स्थापित किया, जो बाद में कुओमिंतांग बन गया। सैनिकों और व्यापारियों के बीच सहयोग का शंघाई का अनुभव अपवाद था। फिर भी, चीन के अधिकांश भागों में उभरते व्यापारी वर्ग ने गणतंत्रवाद को चुना और राजतंत्र का विरोध किया। बूर्जुआ वर्ग ने विद्रोहों में पहल तो नहीं की, फिर भी उसने क्रांति का सहानुभूति और विश्वास के साथ स्वागत किया।

बूर्जुआ वर्ग की इस महत्वपूर्ण भूमिका को कथित "वैचारिक अतिसंकल्प" की घटना के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। इस नए वर्ग का उदय जनतंत्र, मुक्ति और राष्ट्रवाद के विचार के साथ-साथ हुआ। ये विचार पश्चिम की देन थे। 18वीं और 19वीं शताब्दियों में जब ये विचार यूरोप में सामने आए तो उभरते बूर्जुआ वर्ग ने उन्हें अपना लिया था। चिंग-विरोधी विपक्ष के नेताओं ने जनतंत्र, संविधानवाद और राष्ट्रवाद के जिन विचारों का प्रचार किया, वे बूर्जुआ वर्ग आकांक्षाओं के अनुरूप थे, इसलिए उन्होंने विपक्षी दलों और संगठनों का समर्थन किया।

क्रांति के तुरंत बाद केंद्रीय सत्ता के अभाव और लोक अधिकारियों की स्थिति खराब हो जाने के कारण स्थिति यह बन गई कि शहरी कुलीनों को बार-बार शहरों का दैनिक प्रशासन अपने हाथों में लेना पड़ा। नागरिक उत्तरदायित्व के कन्फ्यूशियसवादी बोध से प्रेरित होकर उन्होंने सामूहिक रूप से अपने आपको शहरी आबादी की सेवा में लगा दिया, सौदागरों का ध्येय अपने लिए सत्ता हथियाना नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना और समुद्री डाकुओं, लुटेरों, अनुशासनहीन सिपाहियों और गुप्त संगठनों से निपटना था। चैम्बर ऑफ कॉमर्स का काम था—सिपाहियों को वेतन देना, डाकुओं को देश छोड़ने को घूस देना, सेनाओं को भंग करना और प्रतिद्वंद्वी सेनापतियों के बीच विवादों में मध्यस्थता करना। सौदागर वर्ग की राजनीतिक भूमिका सीमित स्तर की थी। उनका प्रयास व्यवस्था को बदलना नहीं था, बल्कि इसकी दोषपूर्ण कार्य-प्रणाली को सुधारने का प्रयास कर इसका अंग बनना था। वे सीधे तौर पर उन राजनीतिक जिम्मेदारियों को लेने को तैयार नहीं थे, जिनसे वे परंपरा से हमेशा अलग रहे थे। इसलिए उनका इसमें शामिल होना केवल कुछ समय के लिए ही हो सकता था। अपनी सीमित राजनीतिक भूमिका और सीधे-सीधे नियंत्रण न होने के कारण उन्हें अनेक जोखिमों का सामना करना पड़ा। स्थानीय सत्ताधारी बहुधा सौदागरों के विरोधी हो जाते थे, उनपर कर लगा देते थे, उन्हें धमकाते थे और उनका अपहरण भी कर लेते थे। उनके पास वित्तीय अधिकार होने के बावजूद, वे उन अधिकारियों के पहले शिकार बने जिन्हें स्थापित करने में उन्होंने मदद की थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सामान्य तौर पर चीनी प्रांतों में सौदागरों के अधिकार केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के नौकरशाही अधिकारों का स्थान नहीं ले सकते थे। वे बस इतना कर सकते थे कि विनाशकारी अराजकता को सीमित कर दें, जो शाही व्यवस्था का एक मात्र विकल्प दिखाई देता था।

शंघाई का बूर्जुआ वर्ग विश्व बंधुत्व में सबसे अधिक आस्था रखने वाला और सबसे अधिक आधुनिक था। उसने एक प्रभुत्वशाली राजनीतिक शक्ति बनने के लिए ज़ोर लगाया। उनकी इच्छा थी कि वे चीन के आंतरिक क्षेत्रों के साथ व्यापार बढ़ाए और तटवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित न रहें। इसलिए वे राष्ट्रीय एकता चाहते थे। शंघाई के बूर्जुआ वर्ग ने सन यात सेन के गणतंत्रीय कार्यक्रम को अपनाया और उसके आधुनिकीकरण के अभियान में शामिल हो गए। शंघाई के सौदागरों ने भारी ऋण देकर सन यात सेन को जनवरी 1, 1912 को नानकिंग में चीनी गणराज्य स्थापित करने में मदद की। पाँच वर्षों बाद घोषित अपने घोषणा-पत्र में सन यात सेन ने वचन दिया: "हम ...... अपनी वाणिज्यिक और उत्खनन संहिताओं को ...... संशोधित करेंगे, व्यापार और वाणिज्य पर लगे प्रतिबंध समाप्त करेंगे।" इनमें, सौदागरों के लाभ के कई उपायों की घोषणा की गई थी। लेकिन, नानकिंग सरकार केवल तीन महीने सत्ता में रही, इसलिए वह कुछ भी लागू नहीं कर पाई। बूर्जुआ वर्ग न तो सीधे-सीधे सत्ता हथिया पाए और न ही अपने प्रतिनिधि डॉ. सन यात सेन और उसके कुओमिंतांग के हाथ से सत्ता के जाने को रोक पाए। हाँ, उन्होंने अपनी शक्ति का आभास अवश्य करवा दिया। उन्होंने प्रांतों में व्यापार के सामान्य रूप से चलते रहते और कुछ अंश तक कानून और व्यवस्था बनाए रखने में मदद दी थी। नानकिंग सरकार को उनके समर्थन के कारण वह नहीं घट पाया जो नहीं घटना चाहिए था—अर्थात् मांचू वंश की वापसी। वे ऐसे राजनीतिक ढांचे नहीं खड़े कर पाए जो उनके अपने विकास के लिए आवश्यक थे। प्रांतों में उनका सामाजिक आधार इतना कमज़ोर था कि उनके लिए कुलीनों से अलग अपनी पहचान बनाना संभव नहीं था। वे चीन के उस

ग्रामीण समाज तक पहुँचने में असफल रहे जो शताब्दियों से एक नौकरशाही अधिकारवादी परंपरा का अभ्यस्त रहा था।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तर ढूँढिए :

   i) चीनी बूर्जुआ वर्ग ने अपने आपको .... के बाद ही मज़बूत किया।

      क) सन् 1911 की क्रांति

      ख) प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत

      ग) कुओमिंतांग के गठन

      घ) लेनिन की मृत्यु

2) चीनी बूर्जुआ वर्ग का एक सामाजिक शक्ति के रूप में किस तरह उदय हुआ? लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) अपने संकुचित अर्थ में प्रयुक्त "बूर्जुआ" शब्द में .... आ जाते हैं।

   क) बुद्धिजीवी

   ख) सामाजिक कार्यकर्ता

   ग) उद्यमी

   घ) ज़मींदार

4) लगभग 5 पंक्तियों में चीन में सौदागर वर्ग की चर्चा करें।

....

....

....

....

....

29.6 युआन शिकाइ के काल में बूर्जुआ वर्ग

युआन शिकाइ के चीनी गणराज्य का राष्ट्रपति बनने के बाद, चीनी बूर्जुआ वर्ग के लिए अवनति का एक दौर प्रारंभ हुआ। कई महीनों की अव्यवस्था के बाद, व्यापारी वर्ग में शांति और सुरक्षा की वापसी के लिए चिंता हुई। कुछ संकोच के साथ युआन शिकाइ के साथ इन लोगों के खड़े होने से इस नए राजनीतिक समीकरण की शुरुआत हुई। क्रांतिकारी गणतंत्रवादियों के साथ उनके संबंध शिथिल पड़ने लगे। शंघाई में दुस्साहसी सेना ने जनरल चैम्बर ऑफ कॉमर्स पर उस समय गद्दारी का आरोप लगाया जब उनके सेनापति को अप्रैल 1912 में अंतर्राष्ट्रीय बस्ती में गिरफ्तार कर लिया गया। बूर्जुआ वर्ग का रूझान

नए और नरमपंथी राजनीतिक दलों की ओर हो गया, जिन्होंने मई 1912 में अपना पुनर्गठन करके रिपब्लिकन पार्टी बना ली। 1912-13 के राष्ट्रीय चुनावों में नरमपंथियों ने शंघाई में इस पार्टी का समर्थन किया। युआन शिकाइ ने सौदागरों को हर्जाना और आश्वासन दिये, उसने शंघाई के व्यापारी वर्ग के साथ नानकिंग सरकार के आनुबंधिक दायित्वों को मान्यता दी, और हानतो के उन सौदागरों को हर्जाना देने का वायदा किया, जिनकी दुकानें अक्तूबर, 1911 के विप्लव में नष्ट हो गई थीं। अक्तूबर, 1912 में, युआन ने बूर्जुआ वर्ग का समर्थन प्राप्त करने की गरज से कई सुधारों की भी घोषणा की। इन सुधारों में पारगमन कर पर रोक, निर्यात करों में कटौती, मुद्रा का एकीकरण, और औद्योगिक विकास की एक नीति शामिल थी।

सन् 1912 के प्रारंभिक कुछ महीनों की स्थिरता या जड़ता के बाद, जब व्यापार फिर चालू हो गया तो बूर्जुआ वर्ग राजनीतिक गतिविधि से अलग हो गए। भरपूर फसल और विश्व बाज़ार में चाँदी की कीमत बढ़ने के कारण, विदेश व्यापार में अपेक्षाकृत बेहतरी की स्थिति आई। यह संपन्नता उद्योग के क्षेत्र तक पहुँची। शंघाई में, 1912 में, नए संयंत्रों की विद्युत की मांग को पूरा करने के लिए औद्योगिक विद्युत की आपूर्ति को चार गुना बढ़ाना आवश्यक हो गया, ऐसा विशेषकर चावल मिलों के मामले में हुआ, जो काफी संख्या में बन रही थीं, और कपड़ा मिलों के मामले में, जो अपनी क्षमता बढ़ा रही थीं। इस काल में मिल-व्यापार में तेज़ी से वृद्धि हुई। कल-कारखानों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। हांगयांग की जिन झोंका-भट्टियों को 1911 के विद्रोह के दौरान छोड़ दिया गया था, उन्हें पूरी तौर पर चीनी दलों ने फिर से चालू किया। उत्खनन उद्योग में पूर्वेक्षण और खान के कार्यों का विस्तार हो रहा था। शंघाई शहर की ट्रामपथ व्यवस्था के निर्माण की योजना बनाने और उसे पूरा करने का काम कुछ ही महीनों में बिना किसी बाहरी मदद के कर लिया गया। यह सारा काम कोई एक दर्जन प्रांतीय या राष्ट्रीय संगठनों ने किया, जिनका गठन 1912 के दौरान उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए किया गया था।

इस सुधरती स्थिति में व्यापारी वर्ग को सबसे अधिक भय इस बात का था कि कहीं सैनिक और राजनीतिक अव्यवस्था की स्थिति फिर से न बन जाए। मार्च 22, 1913 में सुंग च्याओ-जेन की हत्या से शंघाई के सौदागरों में मानसिक अशांति फैल गई। लेकिन वे युआन शिकाइ की गद्दारी से इतना परेशान नहीं हुए थे (यह सुविदित था कि हत्या की योजना उसी ने बनाई थी), जितना सन यात सेन की बैरपूर्ण प्रतिक्रिया से। समूची राजनीतिक स्थिति में अनिश्चितता के इस दौर में, बूर्जुआ वर्ग को एक नए संकट के उभरने का भय था, जिससे सुधरा हुआ वातावरण बिगड़ सकता था। क्रांतिकारी प्रयोग से निराशा, एक व्यवस्थित शासन के आकर्षण और आर्थिक विस्तार से जगी नई आशाएँ, इन सबने मिलकर उन्हें एक कपटपूर्ण तटस्थता अपनाने को बाध्य कर दिया। 1913 के ग्रीष्म के संकट ने उन्हें अपना मन बना लेने को विवश कर दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब युआन और सन यात सेन के बीच संघर्ष हुआ तो, दक्षिणी प्रांतों के सैनिक नेताओं ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। विद्रोही सेना सड़कों पर आ गई तो शंघाई को भी आंदोलन में आना पड़ा। सौदागर विद्रोहियों के साथ खुली शत्रुता और उनके अपने हितों के लिए आवश्यक अवसरवाद के विकल्पों के बीच झूलते रहे। जनरल चैम्बर ऑफ कॉमर्स ने स्वाधीनता की घोषणा का समर्थन करने या विद्रोही सेनापति के मांगे धन की आपूर्ति करने से इंकार कर दिया। उन्होंने यह घोषणा कर दी कि शंघाई को लड़ाई का मैदान नहीं बनने दिया जाएगा।

कैंटन में, जुलाई 21 को शहर की स्वाधीनता की घोषणा करने वाले राज्यपाल को सौदागर या तो विरुद्ध मिले या निष्क्रिय। यांगज़ी नदी के सभी प्रमुख बंदरगाहों में, सौदागरों ने वही सतर्कता, वही छिपी शत्रुता या विरोध का रवैया दिखाया। न्यूनाधिक सफलता के साथ स्थानीय चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स (व्यापार मंडलों) ने अपनी शक्ति को अपने शहर को बचाए रखने, विद्रोही सिपाहियों को घूस देकर वहां से चले जाने को तैयार करने और उत्तरवासियों की शांतिपूर्ण वापसी के लिए रास्ता तैयार करने में लगा दिया। नानकिंग में जहाँ सौदागरों ने दक्षिणवासियों को बहुत अधिक धन दिया था, ये प्रयास व्यर्थ गए, अब उन्हें उत्तरी सेना के प्रवेश और उसके बाद सितम्बर 13, 1913 के दौरान हुई लूटमार में अपनी बर्बादी दिखाई दी। 1913 की इस "दूसरी क्रांति" के प्रति बूर्जुआ वर्ग का विरोधपूर्ण रवैया केवल बहुत ही सतर्कतापूर्ण ढंग में ही व्यक्त हुआ, विशेषकर उन प्रांतों में जिन्होंने स्वाधीनता की घोषणा कर दी थी। व्यापार मंडलों ने स्पष्ट तौर पर कोई विरोध नहीं जताया, उन्होंने बहुत अधिक दबाव न पड़ने की स्थिति में बस अपनी ओर से आर्थिक सहयोग देने से इंकार

कर दिया। कुछ भी हो, संघर्ष का परिणाम मुख्य तौर पर सैनिक नेताओं, और उनकी सेना की योग्यता और संख्या पर निर्भर रहा। यहाँ युआन शिकाइ की श्रेष्ठता लगभग प्रारंभ से ही स्पष्ट थी। बूर्जुआ वर्ग के इस कथित विरोध या पृथकता का 1913 में कोई निर्णायक महत्व नहीं था। व्यावहारिक दृष्टि से बूर्जुआ वर्ग एक दूसरे दर्जे की शक्ति भर रहे।

सन् 1913 का विद्रोह विफल होने से भारी कर लगे और दुकानें नष्ट हुईं। इससे बूर्जुआ वर्ग को अपने अल्पकालीन हितों की रक्षा को बाध्य होना पड़ा। युआन शिकाइ ने सौदागरों को प्रोत्साहित किया कि वे अपनी पारंपरिक सामाजिक पृथकता और राजनीतिक निष्क्रियता वाली स्थिति में आ जाएं। जीत जाने के बाद, उसने क्रांतिकारी विपक्ष को समाप्त करने के लिए क्रांतिकारी विपक्षी नेताओं को देश-निकाले को विवश कर दिया और पहले नवम्बर, 1913 में कुओमिंतांग और फिर उसी वर्ष दिसम्बर में संसद को भंग करने के आदेश जारी किए। उसने 1911 के पहले और बाद में स्थानीय कुलीनों के लाभ के लिए निचले स्तर पर गठित तमाम प्रतिनिधि संस्थाओं पर भी प्रहार किया। फरवरी, 1914 में उसने प्रांतीय और स्थानीय सभाओं को समाप्त कर दिया, जिन्हें 1912-13 के जाड़ों में एक अत्यधिक परिवर्धित मतदाता-समूह अर्थात् वयस्क पुरुषों की जनसंख्या के लगभग 25 प्रतिशत, के आधार पर अभी पुनर्जीवित किया ही गया था। क्रांति के बाद से इन स्थानीय सभाओं ने अनेक प्रशासनिक, वित्तीय और सैनिक कामों को अपने हाथों में ले लिया, जो आम तौर पर राज्य की नौकरशाही के लिए आरक्षित थे।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने उस समय बड़ी तादाद में विकसित होने वाले उद्योगपतियों, शिक्षकों, दस्तकारों और महिलाओं के संगठनों के लिए मंचों और प्रवक्ताओं का काम किया। इन संगठनों के माध्यम से समाज का एक पूरा वर्ग राष्ट्र की राजनीतिक जीवन-धारा में शामिल हो गया, जिसमें कुलीन, बुद्धिजीवी और छोटे सौदागर थे। ये सभाएँ चीनी की राजनीतिक परंपरा में मुक्ति के एक अंश का प्रतीक थीं। पहली बार लोगों को स्थानीय हितों और सामाजिक समूहों या वर्गों का बचाव देखने को मिला जिन्हें पहले के शासक वर्गों ने बंद या अनदेखा कर रखा था। इस तरह, युआन के दृष्टिकोण से वे उसकी अपनी व्यक्तिगत शक्ति और राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने की राह में खतरे का प्रतीक थे, जिसकी बराबरी वह एक मज़बूत प्रशासनिक केंद्रीकरण से करता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शंघाई के सौदागरों के लिए यह एक असाधारण अनुभव का अंत था। इस चीनी शहर की नगरपालिका में, शहरी कुलीन वर्ग अपनी प्रबंधन की क्षमता, आधुनिकीकरण के रूझान, जनतांत्रिक प्रक्रियाओं की अपनी क्षतिपूर्ति और प्रमुख राष्ट्रीय समस्याओं में अपनी रुचि का प्रमाण देने में सफल रहा था। शंघाई के व्यापारी हलकों को फिर कभी यह स्थानीय प्रशासन और राजनीतिक स्वायत्तता नहीं मिली। युआन ने पहले की नगर पालिका के स्थान पर लोक निर्माण, पुलिस और करों का जो तंत्र बनाया था वह कट्टर तौर पर स्थानीय अधिकारियों के अधीन बना रहा। 1914 में पारित एक कानून ने व्यापार मंडलों पर सरकारी नियंत्रण को मज़बूत कर दिया, जिससे सरकार व्यापारी समुदाय को उनकी राजनीतिक अभिव्यक्ति के साधन से वंचित करने में कामयाब रही। पहल से वंचित हो जाने पर, सौदागरों की उन महान आदर्शों में रुचि समाप्त होने लगी जिनसे उन्हें शताब्दी के प्रारंभ से ही प्रेरणा मिलती रही थी। उन्होंने चीन में स्वयं आधुनिकीकरण का जो अभियान चलाया था उसे देश-व्यापी स्वीकृति न मिल पाने की स्थिति में, वे अपने अल्पकालिक हितों की रक्षा में लग गए। एक सैनिक-नौकरशाही शासन के मुकाबले में होने के नाते, उन्होंने विदेशियों की उपस्थिति के साये में अपने भौगोलिक और सामाजिक आधार की स्वायत्तता को मज़बूत करने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय बस्ती में उन्होंने बहुधा विदेशी पुलिस से सुरक्षा की मांग की।

युआन शिकाइ के राष्ट्रपतित्व में एक नया तत्व विशेष था, वह था व्यापारिक विधान को पूरा करके, वित्तीय और आर्थिक व्यवस्था को स्थिर करके, और निजी उद्यम को प्रोत्साहित करके आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने का संकल्प। कृषि एवं व्यापार मंत्री ने व्यापारिक उद्यम और निगमों के पंजीकरण, और निगम स्थापनाओं पर कानून पारित करवाए, उसने कपास और गन्ने की खेती के लिए नमूना केंद्र स्थापित किए और बांट और माप के मानकीकरण की योजना बनाई। फरवरी, 1914 में युआन शिकाइ डालर की स्थापना की गई, जो आर्थिक एकीकरण की दिशा में पहला कदम था। व्यापार को प्रोत्साहित करने और बढ़ावा देने की यह इच्छा सभी बूर्जुआ वर्ग को कोई भी अधिकार देने से इंकार करने के बहुत विपरीत थी। इस संदर्भ में युआन नौकरशाही के आधुनिकीकरण की ओर लौटा, जिसका वह स्वयं चिंग वंश के अंतिम वर्षों में एक प्रबल समर्थक और प्रतिनिधि रहा था। युआन अब एक तानाशाह था, उसकी सत्ता का आधार सेना और मन्दारिनों में था। उसे

सौदागरों को फुसलाने की क्या आवश्यकता थी? इसलिए उसकी आर्थिक नीतियों में बूर्जुआ वर्ग का समर्थन करने, उन्हें सहारा देने, के किसी वचन की तलाश करना सही न होगा। युआन के शासन के कोई चार वर्षों में संधिगत बंदरगाहों वाले क्षेत्रों को मिली संपन्नता का श्रेय इसे देना भी गलत होगा। वास्तव में, प्रथम विश्व युद्ध के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में जो बदलाव आया वही वह निर्णायक शक्ति थी जिसने चीन के उभरते नए वर्ग को उसके कथित "स्वर्णिम युग" में पहुँचाया।

29.7 बूर्जुआ वर्ग : 1916-1919

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारंभ में, चीन में व्यापारियों की एक नई पीढ़ी के उदय के साथ, राष्ट्रीय पूंजीवाद पूरे ज़ोर पर था। व्यापारियों की यह पीढ़ी औद्योगिक उत्पादन और वेतनभोगी कर्मचारी दल के शोषण से सीधे-सीधे जुड़ी थी। शहरी अर्थव्यवस्था में इस उछाल का कारण वह क्रांति नहीं थी, जिसे सैन्यवादियों ने अपने हाथों में ले लिया था, बल्कि वह आर्थिक चमत्कार था, जो प्रथम विश्व युद्ध के कारण हुआ था।

उन्नीसवीं शताब्दी की असमान संधियों ने चीनी बाज़ार को जिस सुरक्षा से वंचित कर दिया था, उसका एक अंश युद्ध के कारण उसे वापस मिल गया। युद्धरत ताकतें अपनी ही कलह में इतनी उलझी थीं कि उन्होंने चीन की ओर से मुंह फेर लिया। चीनी व्यापार से यूरोपीय ताकतों के हट जाने से उनका स्थान लेने वाले राष्ट्रीय उद्योगों के लिए अनुकूल स्थिति अवश्य बनी, लेकिन इसने जापानी और अमेरिकी हितों के विस्तार को भी प्रोत्साहित किया, जो बाद के वर्षों में अपना समय आने पर बड़े टकरावों के स्रोत बने।

युद्ध के कारण विश्व में अलौह धातुओं और वनस्पति तेलों जैसे प्राथमिक उत्पादनों और नई सामग्रियों की मांग बढ़ गई। प्राथमिक उत्पादनों का प्रमुख वितरण होने के नाते, चीन इस मांग को पूरा करने की अच्छी स्थिति में था। इसके अतिरिक्त, पश्चिमी ताकतों के चाँदी की मुद्रा वाले, चीन और भारत जैसे देशों में खरीद में वृद्धि होने से चाँदी की अंतर्राष्ट्रीय कीमत में वृद्धि की स्थिति बनी। इस तरह, ताएल एक सुदृढ़ मुद्रा बन गई। कुछ ही वर्षों में विश्व बाज़ार में इसकी क्रय (खरीद) शक्ति तिगुनी हो गई। विदेशी ऋणों का भार कम हो गया, जिससे शोचनीय चीनी अर्थव्यवस्था को कुछ राहत मिली, लेकिन आयात और विशेषकर औद्योगिक उपकरणों के आयात सुगम नहीं हुए। इसका कारण सीधा-साधा था कि यदि विश्व युद्ध ने चीनी अर्थव्यवस्था को विकास के अवसर दिए थे तो, इन अवसरों को प्राप्त कर इनका लाभ केवल एक ऐसी अविकसित अर्थव्यवस्था के संकुचित ढांचे में उठाया जा सकता था, जो एक पंगु अर्ध-उपनिवेशीय व्यवस्था की गतिशीलता पर निर्भर थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

युद्धरत राज्यों को व्यापारिक बेड़ों की आवश्यकता होने, विश्व व्यापार में कमी होने, और उसके परिणामस्वरूप भाड़ों में वृद्धि होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अवरुद्ध हो गया। विनिमय संबंधी नियंत्रणों, और 1917 में फ्रांस और इंग्लैंड के रेशम और चाय पर रोक लगा देने से चीनी उत्पादनों की निकासी के परंपरागत मार्ग छिन गए। और, यूरोपीय ताकतों के युद्ध-उद्योगों को प्राथमिकता देने का चीन को उपकरण की आपूर्ति पर उलटा प्रभाव पड़ा। ऐसे समय में, जबकि विदेशी होड़ कम होने से राष्ट्रीय उद्योगों में उछाल आ रहा था, इन उद्योगों के लिए आवश्यक मशीनरी प्राप्त करना बहुत कठिन हो गया। प्रथम विश्व युद्ध तक चीन विकास के उस स्तर पर नहीं पहुँचा था कि वह विदेशी ताकतों की उद्योगों से अपेक्षाकृत वापसी का पूरा लाभ उठा पाता। विश्व युद्ध से जो कठिनाइयाँ सामने आयीं उनमें वास्तविक घाटे नहीं, बल्कि लाभ की कमी शामिल थी। चीनी अर्थव्यवस्था के आधुनिक क्षेत्र के लिए युद्ध के वर्ष सम्पन्नता का दौर थे। शांति की बहाली के बाद जाकर ही व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए "स्वर्णिम युग" आया।

वर्ष 1919 में चीनी अर्थव्यवस्था का आधुनिक क्षेत्र विश्व युद्ध और बहाल शांति के लाभ उठाने लगा। प्राथमिक उत्पादनों की मांग में तेज़ी आ गई। युद्ध की आवश्यकताओं का स्थान पुनर्निर्माण की आवश्यकताएँ ले रही थीं। शंघाई में, 1913 में, निर्यातों का मूल्य पिछले वर्ष की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक था। निर्यातों में उछाल और भी उल्लेखनीय रही, क्योंकि चाँदी का मूल्य लगातार बढ़ता रहा और इसके साथ-साथ ताएल की विनिमय दर भी। यूरोपीय खरीदारों की आवश्यकता इतनी अधिक थी कि वे ऊँची कीमतें देने को तैयार थे। जहाज़ी माल की और अधिक उपलब्धता और युद्ध-उद्योगों के फिर से परिवर्तन

के कारण चीनी उद्योगपतियों के लिए अपनी आपूर्तियों के लिए पश्चिमी बाज़ारों को लौटाना संभव हुआ। केवल एक वर्ष में, 1918 से 1919 तक, उदाहरण के लिए, उनकी वस्त्र सामग्री की खरीद 18 लाख ताएल से बढ़कर 39 लाख ताएल हो गई।

सन् 1917 तक एक मामूली विस्तार के बाद, विदेशी व्यापार का मूल्य 1918 में 10,400 लाख ताएल से बढ़कर 1923 में 16,700 ताएल हो गया। प्रगति का पैमाना निर्यातों की वृद्धि और विविधता हो गई। आयातों में कम तेज़ी से वृद्धि हुई, लेकिन उन्हें काफी पुनर्संरचना से गुजरना पड़ा। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता उत्पादनों, विशेषकर सूती सामग्रियों में, जिनके निर्माण का विकास चीन में हो रहा था, (वाहनों, फर्नीचर आदि जैसे) टिकाऊ सामान के पक्ष में गिरावट आई। आयातों और निर्यातों में वृद्धि की इस असमानत ने व्यापार संतुलन की बहाली में योगदान किया। 1919 में घाटा केवल एक करोड़ 60 लाख ताएल से अधिक नहीं गया। चीनी विदेशी व्यापार का स्वरूप एक "अविकसित" अर्थव्यवस्था का रहा, लेकिन यह व्यापार अब एक आश्रित अर्थव्यवस्था का व्यापार नहीं रह गया था, बल्कि इसका संबंध एक आधुनिक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि के पहले चरण से था।

बाज़ार में मांग बढ़वे के कारण, स्वदेशी और विदेशी दोनों उत्पादनों में वृद्धि हुई। परंपरागत और आधुनिक, दोनों क्षेत्र नई आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे। 1919 तक आधुनिक उद्योगों के उछाल को रोकने या अवरुद्ध करने के लिए उत्तरदायी जहाज़ी माल और उपकरण की कमी ने दस्तकारी क्षेत्र को प्रभावित नहीं किया था। 1915-16 से लेकर करघों की संख्या उत्तरी और मध्यवर्ती प्रांतों में बढ़ रही थी। उत्पादन की खपत स्वदेशी बाज़ार में थी। शहरी कार्यशालाएँ स्थापित की गईं और व्यापारिक पूंजीवाद प्रमुख शहरी केंद्रों के पास के समूचे ग्रामीण क्षेत्र में फैल गया। बुनाई, तैयार वस्त्र, होजियरी, कांच का सामान, माचिस और तेल उत्पादन में केवल उत्पादन के पुराने तरीकों की वापसी शामिल नहीं थी। बल्कि इस दस्तकारी उद्योग में बहुधा उन्नत तकनीकों और औद्योगिक मूल के कच्चे माल (धागे, रासायनिक उत्पादन) का उपयोग होता था, और जिसे हम एक "संक्रमणकालीन" आधुनिकीकरण कह सकते हैं, उसे अपनाने का प्रयास होता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तटवर्ती शहरों में आधुनिक व्यापार की उछाल एक अपेक्षाकृत सामान्य विस्तार के केवल एक पक्ष को बताती है, वैसे यह बेशक सबसे उल्लेखनीय पक्ष है। 1912 से 1920 तक आधुनिक उद्योगों की वृद्धि दर 13.8 प्रतिशत तक पहुँच गई थी। इसका प्रमुख उदाहरण सूती धागा था। खाद्य उद्योगों में भी उछाल आया, जैसा कि कई आटा मिलों के खुलने और विदेशी स्वामित्व वाली तेल मिलों की फिर से खरीद होने से स्पष्ट होता है, लेकिन यह वृद्धि और विकास भारी उद्योगों तक नहीं पहुँच पाया। दक्षिणी प्रांतों में अलौह धातुओं (विशेषकर सुरमा और रांगा) के दोहन की अप्रत्याशित संपन्नता का आधार विशुद्ध रूप से अंतर्राष्ट्रीय सट्टेबाजी थी, और यह उसी के साथ गायब भी हो गई। आधुनिक कोयला और लौह खानें 75 से 100 प्रतिशत तक विदेशी हितों के नियंत्रण में रहीं। सबसे उल्लेखनीय प्रगति मशीन-निर्माण उद्योग में हुई। शंघाई और उसके आसपास के क्षेत्रों को इस विस्तार का मुख्य रूप से लाभ मिला, इसका प्रभाव त्येनत्सिन और कुछ कम अंश में कैंटन और वूहान पर भी पड़ा।

इस समूचे वृद्धि काल में व्यापार और उत्पादन की वृद्धि को साख बढ़ने ने संभाला और कीमतों और मुनाफा बढ़ने ने बढ़ावा दिया। विदेशी व्यापार में बाधा डालने वाले विदेशी बैंकों की स्थिति में गिरावट आने से स्थानीय बाज़ार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उनका वित्त प्रबंध हमेशा चीनी नियंत्रण में रहा। इसके विपरीत, इस स्थानीय या स्वदेशी बाज़ार ने महत्वपूर्ण संसाधनों को राष्ट्रीय व्यापार के लिए उपलब्ध कराया। उसने इस दिशा में सामंतों और कम्प्रेडरों की पूंजी को उपलब्ध कराया, जो अब तक सुरक्षा या ब्याज के कारण मुख्य रूप से विदेशी कार्यकलापों में ही पूंजी लगाते रहे थे। आधुनिक चीनी बैंकों का उदय प्रथम विश्व युद्ध से होता है। केवल वर्ष 1918 और 1919 में ही 96 नए बैंक खोले गए थे। वैसे, इनमें से अधिकांश बैंकों के घनिष्ठ संबंध लोक अधिकारियों से थे। ऐसा चीन के सरकारी बैंक और बैंक ऑफ कम्यूनिकेशन के साथ, कुछ दर्जन प्रांतीय बैंकों के साथ, और अनेक अन्य राजनीतिक बैंकों के साथ था, जिनके संस्थापक सरकारी हलकों से थे या उनके उच्च अधिकारियों के साथ घनिष्ठ संबंध थे। इन तमाम प्रतिष्ठानों की गतिविधि राज्य कोशों और ऋणों की देखभाल तक सीमित थी। कोई एक दर्जन आधुनिक बैंकों का संचालन विशुद्ध रूप से व्यापारिक स्तर पर हो रहा था। इनमें से अधिकांश बैंक शंघाई में थे। राष्ट्रीय व्यापार को वित्त देने में उनकी भागीदारी में बाज़ार का प्राचीन, अप्रासंगिक ढांचा बाधा बना रहा।

व्यापार को वित्त देने के लिए, आधुनिक बैंकों को इस तरह पुराने ढंग के बैंकों की तरह ही ऋण देने का सहारा लेना पड़ता। फिर भी, आधुनिक बैंक अपने ग्राहकों से संपत्ति गिरवी रखने या सामान जमा कराने के रूप में गारंटी या जमानतें मांगते थे। इससे उन्हें पुराने ढंग की बैंकों की तुलना में हानि हुई, क्योंकि पुराने ढंग के बैंक परंपरागत नियमों पर चलते थे, जिनका आधार व्यक्तिगत संबंध थे, और ये बैंक "भरोसे पर" ऋण देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक बैंकिंग क्षेत्र का आकार विशाल होने के बावजूद, असली व्यापारिक बैंक पुराने ढंग के बैंक ही रहे।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान थोक कीमतें 20 प्रतिशत से 44 प्रतिशत तक बढ़ गई। बढ़ती औद्योगिक कीमतों की तुलना में कृषि उत्पादनों की कीमतों में स्थिरता थी। परंपरागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था में यह स्थिरता ग्रामीण समाज के अपेक्षाकृत संतुलन का संकेत थी। कृषि उत्पादनों की कीमतों में स्थिरता और औद्योगिक कीमतों में वृद्धि संपन्नता के चिन्ह थे। इस संपन्नता का सबसे अधिक लाभ व्यापारिक क्षेत्र को मिला। सबसे महत्वपूर्ण कंपनियों ने अपने मुनाफे बीस गुना तक, और कुछ ने तो पचास गुना तक बढ़ा दिए। लाभांश 30 से 40 प्रतिशत तक पहुँच गए, और कुछ जगह तो 90 प्रतिशत तक। व्यापारियों को होने वाले लाभ इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि वे अपने लाभों का साझा अपने कर्मचारियों के साथ कभी नहीं करते थे। दस्तकारों का वेतन और मज़दूरों की दिहाड़ी कैंटन में केवल 6.9 प्रतिशत बढ़ी, और शंघाई में 10 से 20 प्रतिशत। इस भौतिक संपन्नता ने चीन के तटवर्ती क्षेत्रों में नए सामाजिक वर्ग के गठन में मदद की। यह एक शहरी, उच्च मध्यम वर्ग था, जो पश्चिमी प्रभावों के प्रति अत्यधिक उन्मुक्त था।

29.8 शहरी समाज का उदय

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आर्थिक वृद्धि के कारण तेजी से शहरीकरण हुआ। शहरी आबादी की वार्षिक वृद्धि दर कुल आबादी की वृद्धि दर से बहुत अधिक ऊँची थी। यह स्थिति शंघाई में विशेष कर स्पष्ट थी, जहाँ दस वर्षों में चीनी आबादी तिगुनी हो गई। त्येन सिन और ज़िंगताओ जैसे दूसरे संधिगत बंदरगाहों में भी आबादी में वृद्धि हुई।

आंतरिक शहरों में विस्तार तेजी से लेकिन कम उल्लेखनीय रहा। उदाहरण के लिए, ज़िनान में 1914-19 के बीच वृद्धि दर तीन प्रतिशत रही, जबकि समूचे प्रांत की आबादी की वृद्धि दर केवल एक प्रतिशत रही। इस तेज शहरीकरण का कारण न तो अकाल ही था और न ही नागरिक अशांति का बढ़ना, क्योंकि इस दौर में ये स्थितियाँ नहीं बनीं थीं। इसका बुनियादी कारण ग्रामीण समाज का विकास के नए केंद्रों के प्रति आकर्षण था। गांवों में जिनके पास जीविका का साधन नहीं था, ऐसे गरीब किसान कसबों और शहरों में आजीविका की तलाश में आए। उन्होंने मिलों और कार्यशालाओं या कारखानों में काम ढूंढा। ये बंदरगाहों में सामान ढोने वाले, कुली और रिक्शा-चालक बन गए। अनेक संपन्न ग्रामीण भी शहरों, विशेषकर प्रांतों की राजधानियों में स्थानीय प्रशासन या स्वायत्तशासी संगठनों में नौकरी की संभावनाएँ टटोलने आ गए। दूसरों ने शहरी जीवन को इसलिए चुना क्योंकि यहाँ उनके बच्चों के लिए आधुनिक शिक्षा की गारंटी थी, जोकि अपने आप में एक अत्यधिक वांछित विशेषाधिकार था।

शहरी क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार हुआ। उपनगरों ने पुराने शहर की दीवारों के फाटकों से होकर शहर के मध्य भाग से संपर्क बनाना शुरू कर दिया। कैंटन और चांगशा समेत अनेक शहरों में नए आवासों का निर्माण सुलभ करने के लिए शहर की दीवारों को गिरा दिया गया। (चीन में, प्राचीन समय से ही शहरों को दीवारों से घेरकर रखा जाता था) अधिकांश नए निर्माण आवास के लिए हुए, लेकिन भव्य व्यापारिक इमारतें भी बनीं। अनेक दुकानें, डिपार्टमेंटल स्टोर और मंडियां भी बनकर तैयार हुईं। कार्यशालाएँ, गोदाम और भंडारगृह इस सीमा तक बने कि नगरपालिका द्वारा अधिकृत निर्माण का मूल्य 1915 और 1920 के बीच 20 लाख ताएल से एक करोड़ 10 लाख ताएल तक बढ़ गया।

इन विकसित होते शहरी केंद्रों में आबादी बढ़ती चली गई और सामाजिक वर्गीकरण और भी जटिल और स्पष्ट हो गए। आधुनिक बूर्जुआ वर्ग और मज़दूर सर्वहारा वर्ग का उदय हुआ और शहरी कुलीनों में एक वर्ग की पहचान आधुनिक बुद्धिजीवी के रूप में बन गई। सामान्य दृष्टिकोण से, चीनी समाज में होने वाले ये बदलाव गौण रहे, क्योंकि इन्होंने चीन के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर कोई गहरा असर नहीं डाला। जो शहरी

बूर्जुआ वर्ग उभरे उन्होंने अपने आपको उन आर्थिक; सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में लगाया जो ग्रामीण कुलीनों की गतिविधियों से बहुत भिन्न थीं; लेकिन वे भू-संपत्ति में अपने हित और लोक अधिकारियों के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों, दोनों के माध्यम से पुराने शासन के ढांचों से जुड़े रहे। 1911 की क्रांति ने उन्हें प्रसिद्धि और महत्ता दी थी। उनके नेता हमेशा अग्रिम पंक्ति में रहे। औद्योगीकरण के प्रणेताओं की आर्थिक सफलता का कारण असाधारण व्यक्तिगत गुण थे, जिनमें से अधिकांश उन्होंने संधिगत बंदरगाहों में विदेशियों के साथ अपने संपर्कों से प्राप्त किए थे। इन्हीं के कारण वे आधुनिक प्रौद्योगिकी और प्रबंध के महत्व को भी समझ पाए थे।

लेकिन, अधिकांश शहरी कुलीनों की अपनी अलग पहचान उनके राजनीतिक रुझान और सामाजिक भूमिका के कारण अधिक बनी, आधुनिक व्यापार में उनकी भागीदारी के कारण कम। 1911 के बाद, नौकरशाही संस्थाओं को नए अधिकारी तंत्र ने अपने हाथों में ले लिया। यह अधिकारी तंत्र उस संगठन की देन था, जिसमें प्रांतीय सभाओं, व्यापार मंडलों, शैक्षिक और कृषि संगठनों जैसे स्थानीय हितों का प्रतिनिधित्व था। यह सही है कि इसका टकराव युआन शिकाइ के केंद्रीकरण के प्रयासों, और क्षेत्रीय स्तर पर सैन्यवादियों की विरोधी महत्वाकांक्षाओं से हुआ। फिर भी, शहरी कुलीनों की शक्ति में बढ़ोत्तरी हुई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि नौकर तंत्र की नियुक्ति स्थानीय स्तर पर की जा रही थी। शहरी कुलीन वर्ग लोक अधिकारियों के हस्तक्षेप से, विदेशियों के अतिक्रमण से, और बाशिंदों के दावों से, अपने हितों की रक्षा करने में कामयाब रहा। इस तरह पुराने शासन का यह बूर्जुआ वर्ग चीनी समाज में एक स्थायी शक्ति के रूप में उभरा।

इस शहरी कुलीन वर्ग से न केवल वह व्यापारी वर्ग उभरा, जो औद्योगिक वृद्धि, उन्मुक्त उद्यम और आर्थिक तर्कसंगतता के प्रति प्रतिबद्ध था, बल्कि एक ऐसा आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग भी उभरा, जो उसी समय साथ-साथ आकार ले रहा था। ज़ाई युआन पे, हू शी और चेन तू शू जैसे व्यक्ति इसी कोटि के थे। उनकी अधिकांश शिक्षा विदेशों में हुई थी। अनेक व्यापारियों की तरह ही, वे भी युद्ध छिड़ने पर नए कौशल विचार और देशभक्तिपूर्ण उत्साह लेकर चीन लौटे थे। वे भी पुराने समाज से दूर हो गए थे और उन्होंने भी उन बंधनों को तोड़ दिया था, जिसके ज़रिए राज्य ने साहित्यकारों में से अधिकारी बना दिए थे और राजनीति को रूढ़िवादिता से जोड़ दिया था। साथ ही, उन्होंने व्यक्तित्व के लिए सम्मान पर आधारित एक नए स्वरूप की शिक्षा का भी प्रचार किया। इस बुद्धिजीवी वर्ग की उपस्थिति से नए बूर्जुआ वर्ग को काफी राहत मिली। इन दोनों वर्गों की एकजुटता से दोनों ही वर्ग मज़बूत हुए। शिक्षा को सुगम बनाने वाली कई परियोजनाओं की स्थापना व्यापारियों ने की। इसके बदले में बुद्धिजीवियों ने होनहार व्यापारियों को तकनीकी, प्रबंधन संबंधी और सामान्य शिक्षा प्रदान की। शिक्षा और तकनीकी कौशल और आधुनिक शिक्षा के बिना बूर्जुआ वर्ग अपना विस्तार नहीं कर सकते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसलिए, जब 1919 की चार मई की घटना के बाद से चार मई का आंदोलन तमाम चीनी शहरों में फैला तो सौदागर वर्ग और नए व्यापारी समुदाय ने उन छात्रों और बुद्धिजीवियों का साथ दिया, जो इस आंदोलन के मशाल वाहक या नेता थे। ये दोनों वर्ग राष्ट्रभक्ति से प्रेरित थे और वे जापानी साम्राज्यवाद और चीनी सरकार में जापानी साम्राज्यवाद के पिट्ठुओं के विरोध में एक दूसरे के और भी निकट आ गए। बुनियादी तौर पर क्योंकि दोनों ही वर्गों की पृष्ठभूमि एक ही थी, इसलिए उनका आपसी सहयोग और भी सुदृढ़ हुआ।

बोध प्रश्न 2

सही उत्तर बताइए :

1) अठारहवीं शताब्दी से चीन में शहरीकरण का कारण क्या रहा?

क) राष्ट्रवाद

ख) व्यापार

ग) जलवायु में परिवर्तन

घ) जनसंख्यात्मक परिवर्तन

2) उद्योगों और बूर्जुआ गतिविधियों में वृद्धि चीन के किस शहर में सबसे अधिक हुई?

क) पीकिंग

ख) नानकिंग

ग) शंघाई

घ) तराई

3) चीन में हुए शहरीकरण पर लगभग 10 पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

29.9 सारांश

चीन में विदेशी पूंजी निवेश की प्रकृति सीमित होते हुए भी, उसका प्रभाव औद्योगीकरण पर पड़ा। विदेशी पूंजी अधिकतर संधिगत बंदरगाहों के क्षेत्रों में लगी थी और इन्हीं स्थानों में और उनके आसपास के क्षेत्रों में नए चीनी बूर्जुआ वर्ग का उदय हुआ।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

साम्राज्यिक चीन में सौदागर वैधानिक अयोग्यताओं और सामाजिक स्थिति का अभाव, इन दोनों के शिकार रहे थे। यहां तक कि अत्यधिक संपन्न सौदागरों की स्थिति भी भयानक थी, क्योंकि उनकी संपत्ति किसी भी समय जब्त की जा सकती थी। स्थितियों को अपने पक्ष में रखने के लिए सौदागर वर्ग को हमेशा अधिकारियों के साथ व्यक्तिगत मित्रता बनाने का प्रयास करना पड़ता था। वे बहुधा अपने पुत्रों को इसलिए शिक्षा दिलाते थे कि वे लोक सेवा परीक्षा उत्तीर्ण करें और कुलीन वर्ग का हिस्सा बन जाएं। इससे एक मज़बूत, स्वाधीन सौदागर समुदाय सामने आया। संधिगत बंदरगाहों के मुक्त होने से सौदागरों को नए अवसर मिले। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में कुलीन वर्ग की स्थिति लोक सेवा परीक्षा समाप्त कर दिए जाने के कारण विशेषकर नष्ट हो गई, जिससे, पहले कि कुलीन वर्ग को व्यापार में नए अवसर दिखाई पड़े। सौदागर वर्ग और कुलीन वर्ग के विलय से एक नया वर्ग, बूर्जुआ वर्ग, उभर कर सामने आया।

सन् 1911 की क्रांति में बूर्जुआ वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण, लेकिन हमेशा दोहरी रही। उन्होंने आवश्यक रूप से क्रांतिकारियों की विचारधारा के समर्थक न होते हुए भी उनका आर्थिक दृष्टि से साथ दिया। क्रांति के बाद के पहले दो वर्षों में, शासक बूर्जुआ वर्ग कानून और व्यवस्था के रख-रखाव को लेकर अत्यधिक चिंतित रहा, क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि उनका व्यापार हानिकर ढंग से प्रभावित हो। पहले, युआन शिकाइ ने सौदागरों को रियायतें दीं और उन्हें हर्जाना देने का वचन दिया, जिन्हें व्यापार में 1911 की घटनाओं के कारण हानि हुई थी। लेकिन वह कानून-व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति, और एक अस्थिर और अविवेकी राजनीतिक व्यवस्था के भय को कभी दूर नहीं कर पाया। अपने व्यापार को चालू रखने की खातिर उन्हें युआन को स्वीकृति देनी ही पड़ी, क्योंकि उसकी सैनिक शक्ति 1913 के सत्ता संघर्षों में महत्वपूर्ण रही थी। जैसे ही युआन को सैनिक तौर पर अपने शत्रुओं को समाप्त कर अपनी शक्ति मजबूत करने में कामयाबी मिली, उसने नई बनी उन प्रतिनिधि संस्थाओं को नष्ट करना शुरू कर दिया, जो अनेक औद्योगिक और अन्य संगठनों के लिए मंच का काम कर रही थीं।

बूर्जुआ वर्ग की वृद्धि को प्रोत्साहन देने वाला प्रथम विश्व युद्ध था। विदेशी होड़ कम हुई तो, चीनी उद्यमियों ने नए उद्यमों को अपने हाथों में ले लिया। कपड़ा मिलों, चीनी मिलों, आदि का तेजी से विस्तार हुआ। प्रार्थमिक उत्पादनों और दूसरे कच्चे मालों की मांग बढ़ गई। फिर भी इस उछाल ने चीनियों को वास्तव में औद्योगिक दृष्टि से उन्नत होने में

मदद नहीं की क्योंकि अर्ध-उपनिवेशीय अर्थव्यवस्था उस भारी मशीनरी का आयात करने में सक्षम नहीं थीं। जिसके जरिए व्यापक स्तर पर औद्योगीकरण को सुगम किया जा सकता था।

व्यापार और समृद्धि में वृद्धि के साथ, शहरीकरण भी हुआ। शहरों की आबादी बढ़ी। बूर्जुआ वर्ग और मज़दूरों के वर्ग बिल्कुल स्पष्ट हो गए। बेशक, नया सामाजिक गठन और चीन की समूची सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर उसका प्रभाव बहुत सीमित रहा। चीन एक ग्रामीण किसान समाज ही बना रहा।

शहरीकरण, उद्यम और समृद्धि ने इस नए बूर्जुआ वर्ग से दो नए सामाजिक वर्ग बना दिए—पहला, शहरी गणमान्य व्यक्ति जिन्होंने प्रशासन के कामों को संभाला, और दूसरा, बुद्धिजीवी। ये दोनों वर्ग विचारधारा के बंधनों से आपस में बंधे रहे। यह विचारधारा थी : व्यक्तिवाद में आस्था, उन्मुक्त बाज़ार व्यवस्था, प्रतिपादन और सृजनात्मकता। इस नए बूर्जुआ वर्ग की एकता का अपेक्षाकृत बड़ा कारण रहा राष्ट्रभक्ति का बोध और वर्गीय एकजुटता। इसलिए, चार मई के आंदोलन में, उन्होंने साथ-साथ संघर्ष किया।

29.10 शब्दावली

मन्दारिन : चीनी साम्राज्य के तहत उच्चाधिकारी।

बूर्जुआ वर्ग : कुलीन तंत्र या अत्यधिक धनी और मज़दूर वर्ग या सर्वहारा के बीच का सामाजिक वर्ग, मध्यम वर्ग। मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, पूंजीपतियों का सामाजिक वर्ग।

कम्प्रेडर : पूर्ववर्ती चीन में एक स्थानीय एजेंट जो विदेशी व्यापार के लिए नियुक्त होता था, और जिसके पास स्वदेशी मज़दूरों का प्रभार होता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूंजी निवेश : आय या मुनाफा कमाने के उद्देश्य से व्यापार आदि में धन लगाना।

पूर्वेक्षण : किसी खनिज की तलाश करना (इसका संबंध उत्खनन से है)।

29.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ख

2) चीन में 1911 की क्रांति के बाद बूर्जुआ वर्ग ने अपनी उपस्थिति का आभास कराया। शहरीकरण और आर्थिक गतिविधियों ने चीन में बूर्जुआ वर्ग के एक मज़बूत शक्ति के रूप में उदय होने के लिए पर्याप्त सामाजिक आधार तैयार कर दिया। देखिए भाग 29.3

3) ग

4) चीन के राजनीतिक मामलों में सौदागर वर्ग की भूमिका सीमित रही। वे व्यवस्था का अंग बन गए। उनका शामिल होना कुछ ही समय के लिए था। देखिए भाग 29.4

बोध प्रश्न 2

1) घ

2) ग

3) व्यापार और वाणिज्य के विकास ने चीन के शहरी केंद्रों के लोगों को काफी बढ़ावा दिया। आर्थिक उछाल चीन में शहरीकरण के उदय का प्रमुख कारण थी।

इकाई 30 राष्ट्रवाद का उदय

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 पृष्ठभूमि
30.3 राष्ट्रवाद का उत्थान
30.3.1 साम्राज्यवाद का प्रतिरोध
30.3.2 राष्ट्रवाद और राष्ट्र-निर्माण
30.3.3 मांचू-विरोधी भावनाएँ
30.4 राष्ट्रवाद : क्रांति के उपरांत के प्रारंभिक वर्ष
30.4.1 शांतुंग समस्या और चार मई का आंदोलन
30.4.2 बौद्धिक प्रतिक्रिया और जन-विरोध
30.4.3 युद्ध सामंतवाद और चीन की एकता को खतरा
30.4.4 चीनी राष्ट्रवाद के अतिरिक्त प्रभाव
30.5 सारांश
30.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह व्याख्या कर पाएंगे कि :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- चीन में आधुनिक राष्ट्रवाद की भावना का उदय किस प्रकार हुआ,
- बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के चीनी राष्ट्रवाद के क्या तत्व थे,
- चीन में राष्ट्रवादी और राष्ट्रभक्तिपूर्ण आंदोलन भड़काने में जापानी साम्राज्यवाद ने क्या भूमिका निभाई, और
- इस पुनरूद्धारित राष्ट्रवाद के क्या परिणाम रहे।

30.1 प्रस्तावना

इस इकाई में चीन में राष्ट्रवाद के विकास में योगदान करने वाले कारकों की व्याख्या की गई है। हम पहले के खंडों में इस बात पर चर्चा कर ही चुके हैं कि चीन ने साम्राज्यवादी ताकतों के हाथों किस तरह संकट झेले। इसके परिणामस्वरूप विदेश-विरोधी और मांचू-विरोधी भावनाएँ उभरीं। इससे राष्ट्रवादी भावनाओं को मज़बूती मिली। मांचू शासन को 1911 की क्रांति में उखाड़ फेंका गया। लेकिन विदेशियों के हाथों होने वाले शोषण की समस्या और प्रतिद्वंद्वी गुट और सत्ता के लिए होने वाले संघर्ष अब भी बने हुए थे। इसी स्थिति में राष्ट्रवादी भावनाओं ने एक निश्चित आकार लेना शुरू किया और वे और भी मज़बूत हो गईं। इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर चर्चा की गई है।

30.2 पृष्ठभूमि

"राष्ट्रवाद" का विचार या "राष्ट्रत्व" अथवा "राष्ट्र-राज्य" की अवधारणाओं ने चीनी जनता की चिंतन प्रक्रिया में अपना स्थान यूरोप की अपेक्षा कहीं बाद में बनाया। वास्तव में, पश्चिम के साथ चीनियों का परिचय बढ़ने के साथ ये विचार और अवधारणाएँ स्पष्ट और निश्चित हो गईं। शताब्दियों तक विश्व में अपने स्थान को लेकर अथवा कथित चीनी विश्व व्यवस्था के विषय में चीनियों का दृष्टिकोण शेष विश्व के दृष्टिकोण से मेल नहीं

खाता था। फिर भी, यह दृष्टिकोण शताब्दियों तक अक्षुण्ण बना रहा क्योंकि चीनी लोग शेष विश्व से कट कर रहते थे। व्यापार के अतिरिक्त चीनियों ने भौगोलिक रूप से दूर देशों के साथ और कोई व्यवहार नहीं रखा। अपने परिक्षेत्र में आने वाले समाजों के साथ चीनी राज्य का संबंध केवल "नज़राने" या कर का था। इस व्यवस्था के तहत छोटे राज्य चीनी सम्राट को नज़राने के तौर पर तमाम किस्म के उपहार देते थे, जिसके बदले में चीनी साम्राज्य उन पर आधिपत्य नहीं करता था। चीनी दृष्टिकोण से यह और सब पर चीनी साम्राज्य और सम्राट की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति थी।

परंपरा से चीनी लोग विश्व को जिस रूप में देखते थे, उसमें चीन, अर्थात् **चुंग-कुओ** या मध्यवर्ती राज्य और चीन के परिक्षेत्र में आने वाले दूसरे खानाबदोश आते थे। दूसरे शब्दों में, और अनेक सभ्य प्रजातियों की तरह, चीनी भी यह विश्वास करते थे कि वे पृथ्वी और मानव आवास के केंद्र थे। सम्राट "स्वर्ग का पुत्र" था, जो न केवल चीनी जनता से बल्कि चीनी भूमि के आसपास रहने वाले तमाम लोगों से भी श्रेष्ठ था। एक स्पष्ट सीमा वाले राष्ट्र-राज्य की धारणा चीनियों के लिए तब जाकर अस्तित्व में आई, जब अंतर्राष्ट्रीय कानून की पश्चिम की अवधारणाओं को उन पर लागू किया गया, बल्कि थोपा गया। पश्चिमी प्रभाव के परिणामस्वरूप चीन को जो आघात झेलने पड़े, उनमें से एक विश्व व्यवस्था के विषय में उनके विचारों का पूरी तौर पर बदलना भी था। चीनियों को एक स्पष्ट सीमा वाले, स्वाधीन राज्य की यूरोपीय धारणा को स्वीकार करना ही पड़ा।

चीन को प्रारंभ में यूरोपीय विश्व व्यवस्था को स्वीकार करने में जो कठिनाई हुई, उसे देखते हुए जॉन किंग फेअर बैंक, जैसे अनेक विद्वानों ने चीन को चीन-केंद्रित राष्ट्र की संज्ञा दे दी। इसका अर्थ यह हुआ कि चीनी एक ओर विदेश-भय के शिकार थे और दूसरी ओर स्वयं को अन्य देशी और सभ्यताओं से श्रेष्ठ समझते थे। लेकिन, इस दृष्टिकोण को दूसरे विद्वानों ने चुनौती दी है। इसके विपक्ष में प्रमाण देते हुए ये विद्वान कहते हैं कि यदि चीनी लोग इतने ही अंध-राष्ट्रभक्त थे जो उन्होंने बौद्ध धर्म को कैसे अपना लिया और कैसे अपने अनुकूल ढाल लिया, जबकि यह एक विदेशी धर्म था। भारत और चीन के बीच पारंपरिक संबंधों में चीनियों के चीन-केंद्रित होने का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बहस को एक तरफ रख दिया जाए तो यह बात सामने आती है कि चीनी राष्ट्रत्व की भावना ने चीनी राष्ट्र को तब अपनी जद में लिया जब 1840 के अफीम युद्ध में इंगलैंड के हाथों उसकी हार हो गई। राष्ट्रवाद उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक चीन के राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण तत्व बन गया था। आगे के अनुच्छेदों में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि चीन में राष्ट्रवाद का उदय कैसे हुआ, इसने अपने आपको किस प्रकार अभिव्यक्त किया और इसका प्रसार होने के क्या परिणाम हुए। पृष्ठभूमि के तौर पर प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी के चीनी इतिहास के जाने-माने विद्वान अमेरिकी चीनविद् मैरी सी. राइट के निष्कर्षों को भी लिया गया है।

30.3 राष्ट्रवाद का उत्थान

चीन में राष्ट्रवाद के तीन विभिन्न लेकिन परस्पर संबंधित तत्व रहे :

i) पहले, राष्ट्रवाद का अर्थ होता था साम्राज्यवाद का विरोध और उससे संघर्ष करना।

ii) दूसरे, राष्ट्रवाद एक ऐसे मज़बूत, आधुनिक और केंद्र-केंद्रित राष्ट्र-राज्य की मांग करता था जो न केवल साम्राज्यवाद को पीछे धकेल दे, बल्कि देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में उसकी नई आकांक्षाओं को आगे भी बढ़ाए।

iii) तीसरे, राष्ट्रवाद का अर्थ होता था मांचू (चिंग) वंश को उखाड़ फेंकना।

इन तीन तत्वों में से, साम्राज्यवाद का विरोध निश्चित रूप से सबसे महत्वपूर्ण था।

30.3.1 साम्राज्यवाद का प्रतिरोध

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में, "प्रभुसत्ता के अधिकारों की बहाली" प्रत्येक प्रबुद्ध चीनी का आदर्श वाक्य बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक "राष्ट्रीय प्रभुसत्ता" और "प्रभसत्ता के अधिकार" जैसे पश्चिमी शब्द सरकरी दस्तावेज़ों में आ गए थे। कुछ ही

वर्षों में वे चीनी शब्द भंडार के अभिन्न अंग बन गए। अफीम युद्ध के समय से, चीन पर बाहरी आक्रमण होते रहे। प्रत्येक युद्ध का अंत एक असमान संधि के साथ हुआ। चीन को विजेता ताकतों को हर्जाने, विशेषाधिकार और क्षेत्रीय रियायतें तक देनी पड़ीं। 1894-95 के चीन-जापान युद्ध ने चीन की कमज़ोरी का पूरा पर्दाफाश कर दिया, वह किसी को किसी बात के लिए भी इंकार नहीं कर सका। इस युद्ध का तुरंतगामी परिणाम "रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" के रूप में सामने आया। बॉक्सर विद्रोह को कुचलने के आठ राष्ट्रों के अभियान के बाद चीन में कुछ साम्राज्यवादी ताकतों की निरंकुश लूटमार देखने में आती है। चीन के अतिक्रमण रोक पाने में असमर्थ होने के बावजूद, इस समय देश को मजबूत करने और तमाम हाथ से निकली चीज़ों को फिर से अपने हाथ में लेने के बारे में चीन में कहीं अधिक दृढ़ संकल्प की स्थिति थी। अवमानना या मान-हानि की स्थिति के साठ वर्षों का हिसाब तो चुकता होना ही था।

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में चीनी अधिकारियों ने अंग्रेजों पर रोक लगाने के लिए तिब्बत पर केवल आधिपत्य का ही नहीं बल्कि अपनी प्रभुसत्ता या सर्वसत्ता का भी दावा पेश किया। रूस ने मंचूरिया पर कब्ज़ा कर लिया था, लेकिन 1905 में जापान के हाथों हार जाने के बाद इसकी ताकत कम पड़ गई। चीनियों ने समय नहीं गंवाया। उन्होंने मंचूरिया में प्रवास की गति बढ़ा दी और वहां प्रशासनिक तंत्र की फिर से संरचना की। उनका ध्येय जापान के विस्तार को रोकना था। रूस ने क्योंकि अपना ध्यान अब मंगोलिया पर लगा लिया था, चीन ने इसकी प्रतिक्रिया में अपने इस अधीनस्थ राज्य पर पूरी प्रभुसत्ता जमा दी। यह उसने इस प्रकार किया :

- मंगोलिया में चीनियों के प्रवास को बढ़ावा देकर,
- स्थानीय अधिकारियों को रूसी प्रभाव को समाप्त करने का आदेश देकर,
- योग्य और आधुनिक मानसिकता वाले अधिकारियों के अधीन एक चीनी किस्म का प्रशासन कायम करके, और
- चीनी छावनी की सेनाओं को बाहर भेजकर।

DIKSHANT IAS

चीनी सरकार ने ये उपाय इस व्यापक भय के कारण किए थे कि चीन का बंटवारा होने की आशंका थी।

Call us @7428092240

आम जनता में भी पश्चिम और जापान के मंसूबों की तीखी प्रतिक्रिया हुई। स्थानीय और राष्ट्रीय समाचार-पत्रों में इन मुद्दों पर चर्चा हुई। अनेक जगहों पर प्रदर्शन और सभाओं के माध्यम से विदेशी ताकतों के मंसूबों की निंदा की गई। गानों और नाटकों के माध्यम से भारत में अंग्रेज़ों और हिंद-चीन में फ्रांसीसियों के अत्याचारों को दिखाया गया। इस तरह के गानों और नाटकों की प्रस्तुतियाँ दक्षिण चीन में आम हो गईं। इश्तिहारों और दूसरे प्रचार माध्यमों से चीनी राष्ट्रवाद के संदेश का प्रसार किया गया।

अधिक जबरदस्त विरोध "बहिष्कार अधिनियम" के विरोध में 1905 का अमेरिका-विरोधी बहिष्कार और 1908 में **तात्सू मारु** कांड को लेकर होने वाला जापान-विरोधी बहिष्कार थे। इन बहिष्कारों ने यह दिखा दिया कि चीनी सौदागर और मज़दूर अपने राष्ट्रवादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भौतिक त्याग करने को भी तैयार थे। विशेष विदेशी अधिकारों और क्षेत्रीयता की समाप्ति क्रांतिकारियों, सुधारकों और मांचू सरकार की मांग थी।

30.3.2 राष्ट्रवाद और राष्ट्र-निर्माण

राष्ट्रवाद केवल साम्राज्यवाद का विरोध ही नहीं था, बल्कि इसमें प्रांतवाद और क्षेत्रवाद पर विजय भी निहित थी। पतनशील मांचू शासन ने जो सुधार के प्रयास किए उनके एक अंग के रूप में चीन में सुकियांग को छोड़कर और सभी जगहों पर प्रांतीय सभाएं कायम कीं गईं। ये सभाएँ वाद-विवाद और विचार-विमर्श का मंच बन गईं और इन्होंने राष्ट्रभक्त लोगों को एक जगह पर लाने का काम किया। एक जाने-माने लेखक के अनुसार, इस प्रांतवाद ने "राष्ट्रवाद के उदय को सुगम बनाया"। अनेक स्थानीय मुद्दों पर जो विचार-विमर्श चला उससे साम्राज्यवाद के प्रतिरोध से संबंधित मुद्दों की ओर ध्यान देने की स्थिति बनी। उदाहरण के लिए, क्वांगतुंग प्रांत के स्वशासन संघ ने जब एक अंग्रेज़ी नदी गश्ती दल के आने पर आपत्ति की तो उससे समूची संधि व्यवस्था को चुनौती देने की स्थिति बनी। इसी तरह, स्थानीय सौदागरों की अपने व्यापार को फैलाने की इच्छा ने एक

समान राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग को जन्म दिया। राष्ट्रवादी भावना ने राष्ट्र-निर्माण की आवश्यकता को जन्म दिया, जिससे यह मांग बनी कि चीन एक एकीकृत, मज़बूत राष्ट्र बन जाए।

30.3.3 मांचू-विरोधी भावनाएँ

सन् 1644 से चीन पर राज करने वाला चिंग वंश प्रजाति या नस्ल की दृष्टि से उन हान चीनियों से भिन्न था जो देश की आबादी का 4 प्रतिशत थे। चिंग वंश के लोग मंचूरिया प्रांत की मांचू प्रजाति के थे जो कि संख्या की दृष्टि से नगण्य थे। वंश कमज़ोर होने लगा तो वंश-विरोधी भावनाएँ जातीय अर्थों में अभिव्यक्त की जाने लगीं, जबकि क्रांतिकारी राष्ट्रवाद ने चीन को अपनी जद में लिया तो इसका एक तत्व था विदेशी मांचू राज के प्रति चीनी जातीय विरोध, क्योंकि वह घरेलू नीतियों में तो प्रतिक्रियावादी था और विदेशी मामलों में कायरतापूर्ण। अनेक हान चीनियों का विश्वास था कि देश पर क्योंकि एक गैर-हान वंश राज कर रहा था इसलिए उसमें हान लोगों की इच्छा और जुनून नहीं था, इसलिए वह इतनी दयनीयता के साथ आधिपत्य स्वीकार कर लेता था।

यह कहना सही न होगा कि मांचू शासक दूसरों से पूरी तौर पर कटे रहे। इसके विपरीत, चिंग दरबार में बड़ी संख्या में हान चीनी शामिल थे और साम्राज्यवाद को दूर-दराज के क्षेत्रों से जोड़ने वाली देश की लोक सेवा में हान चीनियों का बोलबाला था। चीन पर कथित चीनी मांचू कुलीन वर्ग का राज था। इस गुट में प्रतिक्रियावादी भी थे और सुधारक भी और प्रचंड साम्राज्यवाद विरोधी भी थे तो समझौतावादी भी। लेकिन, आम विश्वास यह भी था कि सम्राट व्यवस्था अपने आप में अपर्याप्त थी, इसलिए जातीय मुद्दे पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर नहीं ही देना चाहिए। एक साधारण-सी मांचू-विरोधी भावना थी तो लेकिन यह कुछ छोटे भौगोलिक क्षेत्रों और क्रांतिकारी संगठनों की उन शाखाओं में ही अधिक मुखर थी जो सामाजिक विप्लव की मांग नहीं करते थे। इसी तरह, कुछ गुप्त संघों (Secret Societies) और समुद्र पारीय चीनी समुदायों ने यह नारा लगाया : "मांचुओं को उखाड़ फेंको, चीनियों को वापस लाओ"।

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

मांचू-विरोधी भावना की तीव्रता अलग-अलग समय और अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न रही। अनेक मामलों में इस नकारात्मक धारणा का उदय पहले राष्ट्रत्व की अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक भावना में रूपांतरित होने के लिए हुआ। एक बात निश्चित है कि मांचू-विरोध ने चीनियों को इतना एकजुट नहीं किया, जितना कि साम्राज्यवाद-विरोध ने।

बोध प्रश्न 1

1) चीनी विश्व व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? लगभग 10 पंक्तियों में समझाइए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) चीन में राष्ट्रवाद का क्या अर्थ होता था? लगभग 10 पंक्तियों में इसकी विभिन्न विवेचनाएँ लिखिये।

....
....
....

30.4 राष्ट्रवाद : क्रांति के उपरांत के प्रारंभिक वर्ष

सन् 1911 में चिंग वंश के पतन के साथ ही चीनी राष्ट्रवाद का मांचू-विरोधी तत्व स्पष्ट तौर पर निरर्थक हो गया। लेकिन उसके दो और तत्व– साम्राज्यवाद विरोध और राष्ट्र-निर्माण की इच्छा– और भी प्रमुख हो गए। उत्तर-चिंग काल के प्रारंभिक वर्षों में चीन में दो प्रमुख राजनीतिक शक्तियाँ थीं :

- एक तो थे सैन्यवादी; युआन शिकाइ राजनीति में सक्रिय, सेना का प्रमुख व्यक्ति था, और
- दूसरे वह गुप्त संघ (Secret Society) था जो बाद में राजनीतिक दल–**कुओमिंतांग** बन गया।

इन दो संगठित राजनीतिक गुटों के अतिरिक्त कुछ क्रांतिकारी संगठन भी थे, जिनका राष्ट्र की राजनीति में कोई प्रभाव नहीं था और अनेक आधुनिक बुद्धिजीवी थे। वे पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित होते हुए भी घोर राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रवाद की इस लहर को सत्ता में बैठे लोग अनदेखा नहीं कर सके, विशेष तौर पर 1916 से अर्थात् युआन शिकाइ की मृत्यु के बाद के दौर में यही स्थिति रही। 1917 आते-आते चीन विश्व युद्ध में कूद चुका था और उसे ये आशाजनक संकेत मिल चुके थे कि यदि युद्ध में उसके पक्ष की विजय हुई तो उसे बड़े राष्ट्रीय लाभ दिए जाएंगे। जर्मन मंत्री रीश (Reinsch) के साथ शुरुआती दौर की सौदेबाज़ी में न केवल ऋणों के बारे में, बल्कि बॉक्सर विद्रोह से संबंधित हर्जानों के बारे में भी विचार-विमर्श हुआ। जापान के साथ भी बातचीत का स्वरूप इस प्रकार का रखा गया कि लाभ चीन को ही मिले। इसमें मंचूरिया और बाहरी मंगोलिया में चीन की अपनी स्थिति को फिर से दावे के साथ रखने की इच्छा भी शामिल थी। दूसरा लक्ष्य शायद यह था कि युद्ध में मित्र राष्ट्रों के साथी जापान की ओर से आने वाले दबावों को ढील दी जाए। चीन की स्पष्ट इच्छा यह थी कि राष्ट्रों के समुदाय में उसे बराबरी का दर्जा दिया जाए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

30.4.1 शांतुंग समस्या और चार मई का आंदोलन

विश्व युद्ध के बाद चीन की सबसे पहली अपेक्षा यह थी कि पहले जर्मनी और ऑस्ट्रिया का "असमान संधियों" के तहत जो अधिकार और विशेषाधिकार दिए गए थे उन्हें वह वापस ले लेगा। विशेष तौर पर, वह चाहता था कि जर्मनी के "प्रभाव क्षेत्र" शांतुंग पर अपनी सर्वसत्ता बहाल कर ले। 1898 के पट्टे के अनुसार शांतुंग में जर्मनी के अधिकार 99 वर्षों के लिये थे। प्रभुसत्ता अस्थाई तौर पर जर्मनी को दी तो हुई थी लेकिन उस पर चीन का अधिकार आरक्षित था। इसलिए तर्क की कसौटी पर कोई भी उत्तराधिकारी ताकत जर्मनी से अधिक अधिकारों को हासिल नहीं कर सकती थी। इसके अतिरिक्त, मूल समझौते में यह उल्लेख था कि जर्मनी अपने पट्टे का अधिकार किसी और ताकत के हाथ में नहीं दे सकता, और जर्मनी द्वारा इस अधिकार को छोड़े जाने की स्थिति में सारे अधिकार कानूनन प्रभुसत्ताधारी शक्ति चीन को ही वापस हो जाएंगे।

जापान ने जब युआन शिकाइ की सरकार पर इक्कीस मांगे थोपीं तो इस कानूनी स्थिति में एक नया तत्व शामिल हो गया; एक औपचारिक संधि में चीन ने यह वचन दिया था कि जर्मनी और जापान के बीच शांतुंग में जर्मनी के अधिकारों के निपटारे को लेकर जो भी सहमति होगी उसे चीन स्वीकार करेगा। चीनियों ने इसका विरोध किया कि यह समझौता चीन पर जबरन थोपा गया था और इसलिए यह आवश्यक नहीं था कि उसे माना ही जाए। अंतर्राष्ट्रीय कानून में, यह समझौता बिल्कुल भी वैध नहीं था, यद्यपि 1915 में

अमेरिकी विदेश मंत्री ब्रायन ने यह इशारा कर दिया था कि अमेरिका जापान के विरूद्ध चीन के साथ था। राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने भी अपने भाषणों में कह दिया था कि शांति के लिए होने वाली बातचीत में क्षेत्र से संबंधित समझौतों में आबादियों के हितों को ध्यान में रखा जाएगा और यह केवल शत्रु ताकतों के बीच कोरा समायोजन या समझौता नहीं होगा। स्वाभाविक था, चीन ने यह आशा बांधी कि शांति सम्मेलन में अमेरिका शांतुंग प्रायद्वीप की बहाली के चीन के दावे का समर्थन करेगा। जब 1919 में पेरिस में शांति सम्मेलन शुरू हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अंत में वर्साय की संधि हुई तो जापानियों को यह विश्वास हो चला कि शांतुंग की प्रभुसत्ता उनके हाथों में दे दी जाएगी। उन्होंने यह माना कि शांतुंग की स्थिति की पुष्टि केवल 1915 के चीन-जापान समझौते ने ही नहीं, बल्कि 1917 के अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी और इतालवी समझौते ने भी कर दी थी।

जनवरी के अंतिम दिनों में शांतुंग की समस्या सामने आई। जापानी इस प्रायद्वीप की मांग कर रहे थे और चीन उसे नकार रहा था। जापानी प्रतिनिधिमंडल ने सम्मेलन में फ्रांस, इंगलैंड और इटली की ओर से जापान को गुप्त रूप से दिए गए वचनों के प्रमाण रखे और इससे भी अधिक महत्व के वे दस्तावेज़ रखे जिनमें चीनी सरकार ने जापान को गुप्त आश्वासन दिए थे। पीकिंग सरकार ने एक ऐसे गुप्त समझौते पर हस्ताक्षर किए थे, जिससे इस बात की पुष्टि होती थी कि चीन को शांतुंग प्रांत में दो नए रेल पथों की वित्त व्यवस्था, निर्माण और संयुक्त कार्यों के जापान के प्रस्ताव मंजूर थे। इसका परिणाम यह हुआ कि इन गुप्त समझौतों और वचनों की बात सामने आते ही चीनियों का पक्ष शुरुआती दौर में ही कमज़ोर और पूर्वग्रह से ग्रस्त पड़ गया।

अप्रैल में, जब बातचीत चल रही थी, चीन ने सम्मेलन में दो स्मरण पत्र पेश किए। एक में मई 1915 की संधि और जापान के साथ उससे संबंधित समझौते को रद्द करने की मांग थी। दूसरे में ये प्रस्ताव थे :

1) प्रभाव या हित-क्षेत्रों को छोड़ना,
2) विदेशी सेनाओं और पुलिस की वापसी,
3) विदेशी डाकघरों और तार एजेंसियों को हटाना,
4) क्षेत्रातीत अधिकार क्षेत्र की समाप्ति,
5) पट्टे वाले क्षेत्रों को छोड़ना,
6) चीन को विदेशी रियायती क्षेत्रों और बस्तियों की वापसी, और
7) चीन को शुल्क दरों की स्वायत्ता वापस करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरे शब्दों में, चीन अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से यह मांग कर रहा था कि असमान संधियों को यदि पूरी तौर पर समाप्त नहीं किया जाता तो कम से कम उन्हें सरल किया जाए। लेकिन सम्मेलन ने इन दोनों ही स्मरण पत्रों को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि ये उसके संदर्भ नियमों के बाहर थे। फिर भी, इन मांगों में चीन में उठी राष्ट्रवाद की तेज़ लहर से बनने वाली चीनी गरिमा की चिंता दिखाई देती थी।

अप्रैल 19, 1919 को जब अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, इटली और जापान के विदेश मंत्रियों की परिषद् के सामने शांतुंग का मसला लाया गया तो अमेरिकी प्रतिनिधि मंडल ने यह सुझाव दिया कि शांतुंग के अधिकार पहले इन पाँचों ताकतों के हाथों में दिए जाएं, और ये ताकतें अंत में इन अधिकारों को चीन को वापस कर देंगी। जापान ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया। इंगलैंड, फ्रांस और इटली जापान का समर्थन करने को वचनबद्ध थे। अमेरिका भी अपने सुझाव पर जम नहीं पाया। इसका एक कारण यह था कि वह यूरोपीय मित्र राष्ट्रों से टकराव नहीं चाहता था, और एक कारण यह था कि वह इंगलैंड और इटली के साथ साइबेरिया में फंसा था। अंत में निर्णय यह हुआ कि शांतुंग में जर्मनी के पास जो भी अधिकार हैं, वे सब जापान को दे दिए जाएं। यह एक ओर तो चीन के लिए लज्जा की बात थी, पर इससे चीन में राष्ट्रवादी भावनाओं को मज़बूती मिली।

30.4.2 बौद्धिक प्रतिक्रिया और जन-विरोध

इक्कीस मांगों के बाद से चीन के बौद्धिक वातावरण में काफी बदलाव आया। 1915 से नए विचारों और विश्वासों की आंधी-सी बड़े शहरी केंद्रों में आई, इन पर हमने इकाई 28 में चर्चा की है।

नए बौद्धिक वातावरण ने एक बड़ी घटना की पृष्ठभूमि तैयार की। जब से पेरिस में जनवरी में शांतुंग का मुद्दा उठा था, मुखर और राजनीतिक रूप से जागरूक जनता ने इस मामले में बहुत दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। शांतुंग को लेकर हुई सौदेबाजी में एक न्यायोचित शांति समझौते का उल्लंघन हुआ था, इसमें चीनी युवाओं की नई राष्ट्रवादी भावना का भी दमन हुआ था। अप्रैल 30, 1919 को पेरिस में जो निर्णय लिया गया उससे चीन में एक विस्फोटक स्थिति बनी रही जिसे चार मई के आंदोलन के नाम से जाना गया। इस आंदोलन का नेतृत्व छात्रों और बुद्धिजीवियों के हाथों में था। इस पर इकाई 27 और इकाई 28 में चर्चा की गई है।

चार मई को, दोपहर के थोड़ी देर बाद, तेरह संस्थाओं के कोई तीन हज़ार छात्र तियानान मेन चौक पर जमा हुए। वहाँ से उन्होंने स्थानीय पुलिस की चेतावनी के बावजूद लिगेशन (दूतावास) भवनों की ओर कूच कर दिया। संतरियों ने उन्हें अंदर जाने नहीं दिया। छात्र फिर दूसरी ओर मुड़ गए। उनका नारा था "चलो गद्दार के घर"। गद्दार से उनका आशय प्रधानमंत्री थान ची जुई और उसके भ्रष्ट और सिद्धांतहीन साथियों से था। छात्रों ने उनमें से कई के आवास पर हमले किए। उन्होंने उनमें से एक के घर को आग लगा दी और एक को निर्ममता से पीटा। एक और अधिकारी अपनी जान बचाकर दूतावास में घुस गया था, उसने उसी दिन त्यागपत्र दे दिया।

इस घटना ने विरोध के एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन के उत्प्रेरक का काम किया। यह आंदोलन एक लंबे समय से फूटने की तैयारी में था। इसके तुरंत बाद अनेक छात्रों ने प्रदर्शनों, हड़तालों, कामबंद और एक जापान-विरोधी बहिष्कार आंदोलन का आयोजन शुरू कर दिया। इसमें सौदागरों, व्यापारियों और चीनी समाज के निम्न मध्यम वर्ग के लोगों ने छात्रों का साथ दिया। उन्होंने मिल कर यह मांग की कि पेरिस गए चीनी प्रतिनिधिमंडल को यह निर्देश दिया जाए कि वह शांति संधि पर हस्ताक्षर न करे। सरकार ने जुलूसों, भाषणों और संबंधित साहित्य के वितरण पर रोक लगा दी, लेकिन वह इस लहर को रोक नहीं पाई। तीन जून को पीकिंग में एक विराट प्रदर्शन हुआ, जिसमें एक हज़ार छात्रों को गिरफ्तार किया गया। पाँच जून को छात्रों ने तीन अधिकारियों को निकालने की मांग की, जो कथित तौर पर जापान समर्थक थे। अगले दिन गिरफ्तार छात्रों को रिहा कर दिया गया। शासन ने तीन दोषी अधिकारियों को भी निकाल दिया, और 12 जून को पूरे मंत्रिमंडल ने त्यागपत्र दे दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पेरिस में शांति संधि पर हस्ताक्षर करने का दिन जैसे-जैसे पास आता गया, चीनी प्रतिनिधिमंडल के पास कोई सही या स्पष्ट निर्देश नहीं रह गए। सम्मेलन ने उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि संधि में संशोधन के साथ हस्ताक्षर किए जाएं। अंत में, जब 28 जून को वर्साय की संधि सम्पन्न हुई तो अब तक बिना किसी आधिकारिक निर्देश वाले प्रतिनिधिमंडल ने अपने आपको अलग रखा। 10 जुलाई को जाकर ही, जब चीन की सरकार ने चीन की स्थिति के प्रति विश्व की सहानुभूति और देश के अंदर विरोध की मजबूती का आकलन कर लिया तो अपने-अपने प्रतिनिधिमंडल को इस आशय के आदेश जारी किए कि वह संधि पर हस्ताक्षर न करे।

जून 1919 की अशांतिपूर्ण घटनाओं के फलस्वरूप पूरे चीन में अनेक संगठन बन गए, जिसकी अधिकांश प्रेरणा पीकिंग विश्वविद्यालय ने दी। जून के मध्य में शंघाई में एक चीनी छात्र संघ की स्थापना हो गई। एक और गुट "नव युवा समाज" था, जिसमें पीकिंग के शैक्षिक वर्ग के सदस्य थे। शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों से राष्ट्रवाद की जो भावना प्रधान बनी हुई थी उसे चार मई के आंदोलन से जबरदस्त गति मिली। इसीलिए, इस आंदोलन को आधुनिक चीनी राष्ट्रवाद के उदय का श्रेय जाता है।

चार मई के आंदोलन के बाद से राष्ट्रवाद ने पुराने किस्म के "समुद्री शैतानों" और "झबरों (या बाल वालों)" (चीनियों द्वारा विद्रोहियों की पहचान) पर केंद्रित, विदेशवाद से नाता तोड़ लिया। अब यह आधुनिक राष्ट्रवाद की एक नई भावना की शुरूआत थी जिसका रूझान विदेशी-विरोधी से साम्राज्यवाद विरोधी की ओर था। अधिकांश एशियाई देशों में ये आवाज़ें उठने लगीं कि यूरोप और अमेरिका "गैर-श्वेतों" के प्रति भेदभाव को छोड़ें और राष्ट्रों की समानता और उन राष्ट्रों के नागरिकों के साथ समानता के व्यवहार के सिद्धांत को स्वीकार करें। हम पहले (इकाई 27 में) चीन की एकता पर, युद्ध सामंतवाद के खतरे पर भी चर्चा कर चुके हैं।

30.4.3 युद्ध सामंतवाद और चीन की एकता को खतरा

युआन शिकाइ की मृत्यु के बाद चीन में अस्थिरता और राजनीतिक फूट की स्थिति प्रबल रही। कई वर्षों तक दक्षिण चीन की अलग सरकार थी। पीकिंग सरकार के साथ उसे एक करने के प्रयास सफल नहीं हुए। युद्ध सामंतों के कई गुट अलग-अलग समयों पर पीकिंग सरकार पर हावी रहे। कुछ और प्रांत और प्रांतों के हिस्से भी जब-जब युद्ध सामंतों के कब्जे में रहे (देखिए इकाई 27)। इस आंतरिक कलह ने चीन की एकता को गंभीर रूप से खतरे में डाल दिया। दिलचस्प बात यह है कि सैन्यवादियों समेत ऐसे लोग जिनका राजनीतिक क्षेत्र में प्रभाव था हमेशा चीन के एकीकरण का समर्थन करते थे, जबकि उनमें से कोई भी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी निजी सत्ता को छोड़ने को तैयार नहीं था। क्षेत्रवाद और प्रांतवाद चीनी राष्ट्रवाद की राह का रोड़ा बन गये। उदाहरण के लिए, एक युद्ध सामंत ने तो यह नारा तक दे दिया कि ''क्वांगतुंग क्वांगतुंगवासियों के लिए'' हो। लेकिन पिछले भागों में चर्चित राष्ट्रवाद की धाराओं ने चीन को बंटवारे के संकट से बचा लिया।

30.4.4 चीनी राष्ट्रवाद के अतिरिक्त प्रभाव

चार मई की घटना चार मई का आंदोलन बन गई, क्योंकि शर्म, आक्रोश और चिढ़ से क्रांति की प्रेरक शक्ति और संभावना का जन्म हुआ। यह आंदोलन एक उत्प्रेरक था, जिसने व्यापक स्तर के संगठन को एक जगह इकट्ठा किया जिनमें छात्र, मज़दूर, सौदागर और संघ शामिल थे। उस अर्थ में यह आंदोलन राष्ट्रवाद की अखंडता को प्रतिबिम्बित करने वाला था। इसने तमाम चीनी बुद्धिजीवियों को नव संस्कृति दी, और इसने पश्चिम के तिरस्कार को भी बढ़ावा दिया। प्रथम विश्व युद्ध और उसके परिणामस्वरूप बनी स्थितियों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि चीन को अपने आपको सांस्कृतिक रूप से अब और निम्न समझने की आवश्यकता नहीं थी। यदि नैतिक सिद्धांतों के लिए ज़ोर-शोर के साथ लड़े जाने वाले युद्ध से अनैतिक प्रस्ताव निकल कर आने थे तो पश्चिम को चीन की समस्याएँ बताने के लिए अपने खोखलेपन को भी दिखाना होता। लियांग ची जैसे लेखकों ने अपने लेखन के माध्यम से चीन के प्राचीन गौरव का निर्माण किया। यह चीनी राष्ट्रवाद की एक और पुरजोर अभिव्यक्ति थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अपने ''चीनीपन'' में चीनियों के इस नवीकृत गौरव बोध के अतिरिक्त, पश्चिम से नाता तोड़ने के कहीं अधिक प्रासंगिक कारण थे। यह इतिहास का संयोग रहा कि फिर से उठी इस चीनी क्रांति का संपर्क नई रूसी क्रांति से हुआ। वैसे तो चीन में विद्यमान पश्चिमी अधिकारियों का रवैया चार मई की क्रांति के प्रति कुछ अर्थों में सहानुभूतिपूर्ण रहा था, फिर भी पश्चिमी व्यापारियों ने इसे नए बोल्शेविकवाद की ही एक धारा माना। 1919 में, अंतर्राष्ट्रीय बस्ती के अधिकारियों ने अपने क्षेत्र से आंदोलन को साफ कर दिया। जनतंत्र का उपदेश देने वाले और उसके समर्थक होने का दावा करने वालों की इस कार्यवाही ने चीनियों के मन में और भी शंका भर दी और वे सोवियतों के और निकट आ गए। मार्च 1913 में, सोवियतों ने चीन में रूसी अधिकारों और विशेषाधिकारों को छोड़ दिया। इससे चीनियों का नए सोवियत राज्य के प्रति बहुत अनुकूल रवैया बन गया। शुरूआत में कई चीनी बुद्धिजीवियों की बोल्शेविक सिद्धांत में दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन वे यह मानते थे, कि साम्यवाद के रूप में रूस के हाथ में एक ऐसा हथियार आ गया था, जिससे वह सैन्यवाद और साम्राज्यवाद का मुकाबला कर सकता था। इस तरह, मार्क्सवाद-लेनिनवाद में कुछ चीनियों को अंत में अपनी राष्ट्रवादी आकांक्षाओं की पूर्ति दिखाई दी। बाद में जब काफी बुद्धिजीवियों ने मार्क्सवाद को अपना लिया तो राष्ट्रवाद इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व बना रहा।

फ्रांस से न केवल आदर्शवादी स्वच्छंदतावादी क्रांति और मानवाधिकारों को लेकर लौटने वाले छात्र ही आए, बल्कि दसियों हज़ार ऐसे मज़दूर स्वयंसेवी भी आए, जिन्होंने युद्ध में भाग लिया था। ये लोग मज़दूर वर्ग की पृष्ठभूमि से नहीं थे, बल्कि कम सम्पन्न परिवारों के छात्र थे। फ्रांस में उन्होंने जिस नस्लीय भेदभाव, भाषायी कठिनाइयों, कठोर व्यवहार और कम वेतन का अनुभव लिया था उससे उन्हें एकता और संगठन के मूल्य का सबक मिल गया था। नव संस्कृति आंदोलन तो छिन्न-भिन्न हो गया, लेकिन इसने जिस राष्ट्रवाद को जन्म दिया था, वह मज़बूत होता चला गया।

बोध प्रश्न 2

1) उत्तर क्रांति काल के प्रारंभिक दौर में राष्ट्रवाद के दौर का संक्षिप्त विवरण दीजिए। उत्तर 15 पंक्तियों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) चीनी राष्ट्रवाद के क्या प्रभाव हुए? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

30.5 सारांश

विदेशी ताकतों के हाथों अपमान और अधीनता झेलने के बाद, चीन में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में आधुनिक राष्ट्रवाद का उदय हुआ। साम्राज्यवाद विरोध, मांचूवाद विरोध और एक मज़बूत राष्ट्र की इच्छा—इन तीन कारकों ने राष्ट्रवाद के उदय को प्रेरित किया, लेकिन इन तीनों कारकों में साम्राज्यवाद विरोध का पहला कारक सबसे निर्णायक या महत्वपूर्ण था।

सन् 1911 और 1919 के बीच का जो दौर था, उसमें एक नवीकृत राष्ट्रवादी भावना दिखाई पड़ने लगी, जो जापान की इक्कीस मांगों के जवाब में थी। चीन जब पश्चिमी साम्राज्यवाद से निपटने का रास्ता निकालने के लिए घोर संघर्ष कर रहा था, उस समय चीन के संसाधनों के लिए भूखे जापान के एक पूर्वी साम्राज्यवादी ताकत के रूप में उदय ने तमाम चिंतनशील व्यक्तियों को झकझोर दिया। राष्ट्रवाद नई ऊँचाइयाँ छूने लगा। परंपरा से, पूर्वी एशियाई परिदृश्य में, जापान चीन का शिष्य था, जिसने उससे दर्शन, धर्म और लिपि जैसी अनेक बातें सीखीं और उधार ली थीं। चीनियों के लिए यह अभूतपूर्व आघात था कि 1894 से जापान का आक्रमक रवैया और भी तीव्र होता जा रहा था।

प्रारंभिक चिंगोत्तर काल में राष्ट्रवाद ने सभी वर्गों को प्रभावित किया। सौदागर, बुद्धिजीवी, छात्र और सेना सभी बाहरी शत्रु से लड़ने को एक हो गए। प्रथम विश्व युद्ध के विजेताओं ने पेरिस शांति सम्मेलन में शांतुंग मसले को जिस तरह से लिया, उससे एक आक्रामक और अदम्य राष्ट्रवादी भावना भड़क उठी। 1915 से जो बौद्धिक उबाल बन रहा था उसने युवाओं में एक सजग राष्ट्रवाद की भावना पैदा कर दी थी। चार मई की घटना चार मई का आंदोलन बन गया। इस व्यापक आंदोलन में प्रगाढ़ राष्ट्रवादी भावनाओं वाले सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलू शामिल हुए। अंत में, पेरिए गए चीनी प्रतिनिधिमंडल ने संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए। उसके बाद से चीन अपनी इस मांग से कभी नहीं मुकरा कि प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों के समुदाय में उसके साथ समानता का व्यवहार किया जाए या उसे समान दर्जा दिया जाए।

30.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर में **चुंग-कुओ** की इस अवधारणा को शामिल करें कि सम्राट "स्वर्ग का पुत्र" था, इत्यादि। देखिए भाग 30.1

2) इसकी तीन विवेचनाएँ हैं :

   i) साम्राज्यवाद का विरोध,

   ii) एक मज़बूत, आधुनिक राष्ट्र-राज्य का निर्माण; और

   iii) मांचू वंश को उखाड़ फेंकना। देखिए भाग 30.2

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 30.3

2) अपना उत्तर उपभाग 30.4.3 के आधार पर लिखिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

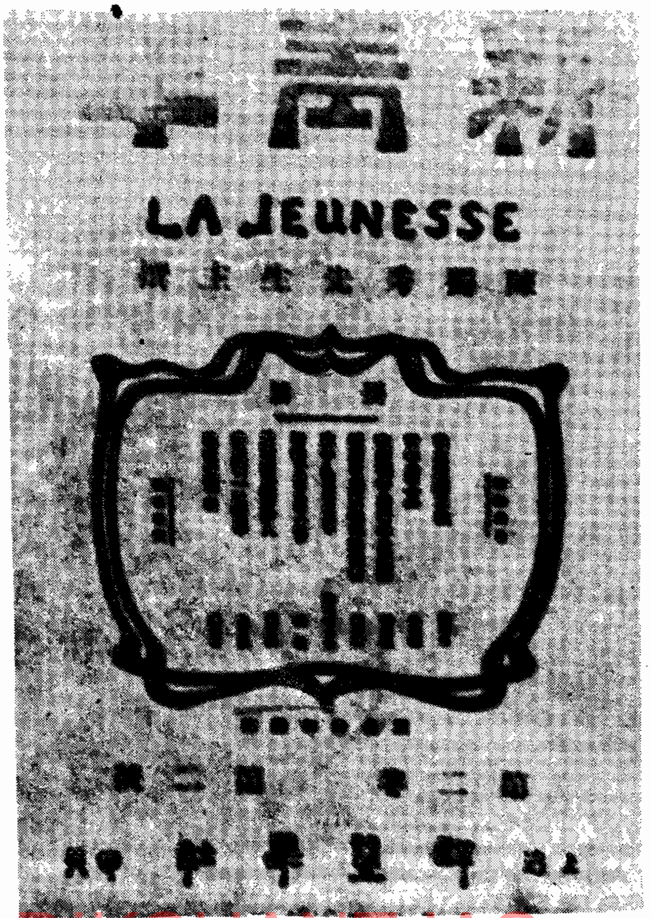

1. न्यू यूथ पत्रिका का कवर पृष्ठ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2. लू-शुन

3. हू-शी

4. हुयान शींग

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

फैंग यू शीयांग

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6. पु-यी

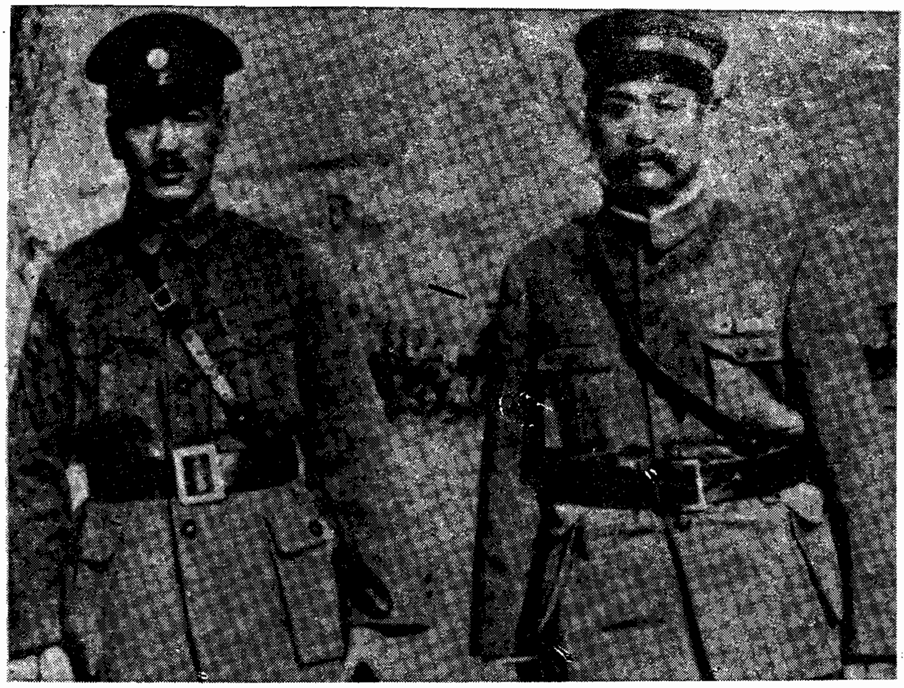

7. चआग-काइ-शेक और येन-शी-शान

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नक्शा-1 4 मई आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र

इकाई 31 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.सी.) का निर्माण

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 चीन में मार्क्सवाद का उदय
 31.2.1 अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि
 31.2.2 राजनीतिक वातावरण
 31.2.3 सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां
31.3 कम्युनिस्ट पार्टी : 1921
31.4 प्रारम्भिक विचार
31.5 प्रारम्भिक गतिविधियां
31.6 सारांश
31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

31.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.सी.) के विषय में जान पायेंगे,
- सी.पी.सी. के प्रारम्भिक विचारों और
- गतिविधियों को समझ पाएंगे, और,
- उन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे जिनके अधीन सी.पी.सी. ने कार्य किया।

31.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता के लिये भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की भांति चीनी क्रान्ति एक ऐसा लम्बा सतत् संघर्ष था जिसके अन्दर हजारों लोगों ने अपने जीवन की आहुति दी। चीनी क्रान्ति ने 1949 में निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त किया।

- इसने अपने देश को साम्राज्यवादी नियन्त्रण से मुक्त किया, और
- इसने अपनी जनता को चीन के शासक वर्गों के शोषण से मुक्ति प्रदान करने में सफलता प्राप्त की।

क्रान्ति की सफलता में परिणति के कारण सम्पूर्ण पुराना तन्त्र धराशयी हो गया। अब एक ऐसी नवीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण हुआ जिसको अधिक न्यायोचित समझा गया और वह जनता के हित में थी। यद्यपि उत्तर क्रान्ति काल में भी पुराने विचारों के विरुद्ध संघर्ष सतत् तौर पर चलता रहा फिर भी क्रान्ति ने चीनी जनता की मानसिकता में एक क्रान्तिकारी रूपांतरण किया। इस रूपांतरण में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने महत्वपूर्ण तथा अग्रिम भूमिका अदा की। इसी कारणवश यहां पर इस तथ्य पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिये कि 1921 में गठित चीनी साम्यवादी दल ने मात्र 28 वर्षों

में क्रान्ति को पूर्ण कर सरकार गठित की। इस क्रान्ति के महत्वपूर्ण नेतागण माओ त्सु-तुंग, चाऊ-ऐन-लाई, चु-तेह, ली शाओ ची, और चीन में प्रथम मार्क्सवादी महिला शियांग चींग-ची थे। इन सभी के अतिरिक्त पार्टी के ऐसे हजारों सक्रिय सदस्य थे जो पार्टी-तन्त्र का आधार थे और जो चीन के मज़दूर और किसान थे। इस तरह से चीन के साम्यवादी दल के विचारों तथा क्रान्तिकारी आंदोलन में उसके द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण योगदान की जानकारी प्राप्त करना महत्वपूर्ण होगा।

इस इकाई में उन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है जिनके बीच मार्क्सवादी विचारों का उद्भव एवं विकास हुआ, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का प्रारम्भ एवं उनके प्रारम्भिक विचारों का विकास हुआ। इन्हीं परिस्थितियों में चीन की मेहनतकश जनता को संगठित करने के प्रयास किये गये। इस इकाई में शिक्षित लोगों, बुद्धिजीवियों तथा छात्रों पर सी.पी.सी. के प्रभाव की भी विवेचना की गई है। चीन के साम्यवादी दल ने चीन की जनता को नई राजनीतिक चेतना प्रदान की और उनके संघर्षों को नयी दिशा प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण योगदान किया और 1923 तक क्रान्तिकारी आंदोलन के चरित्र को एक स्वरूप प्रदान करने में भी अपनी भूमिका अदा की। 1923 में मजदूर आंदोलन का दमन करने के लिये जो चक्र चला उसने चीन के साम्यवादी दल के इतिहास के प्रथम दौर का समापन किया। सी.पी.सी. की इस प्रथम पराजय के कारणों का विश्लेषण करते हुए यह इकाई साम्यवादी दल के उपरोक्त सभी आयामों का विवेचन करेगी।

31.2 चीन में मार्क्सवाद का उदय

चीन में मार्क्सवाद का उदय अचानक ही नहीं हुआ था। चीन के बुद्धिजीवियों के बीच राष्ट्रवाद, उदारवाद एवं लोकतन्त्र के लिये लम्बी बहसें हुई थीं (देखें इकाई-30)। लेकिन बौद्धिक गतिविधियों तथा राजनीतिक कार्यशैली एवं मज़दूरों के व्यापक हितों के स्वरूप को मार्क्सवाद के द्वारा निर्धारित किया जाना भी इस समय शुरू हो चुका था। एक गहन संघर्ष के बाद चीन के मार्क्सवादियों ने ची... समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के अपने लक्ष्य तथा मज़दूर वर्ग के आंदोलनों के बीच एक अटूट संबंध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1921 तक 90 प्रतिशत चीन की जनता अशिक्षित थीं और इस वजह से विचारों का प्रसार काफी कम था। चीन के मज़दूरों एवं कृषकों को इस तरह के विचारों का कोई विशेष बोध न हो सका।

प्रारम्भिक क्रान्तिकारी उच्च मध्यम वर्गों से आये थे। इससे पूर्व की इकाइयों में हम देख चुके हैं कि चीन में राष्ट्रवादी तथा साम्राज्यवाद विरोधी विचारों के उद्भव में विभिन्न कारकों ने कैसे योगदान किया।

राष्ट्रवादी विचारधारा के तहत विद्यमान धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था की कड़ी आलोचना की गई और इस विद्यमान व्यवस्था को आधुनिक एवं स्वतन्त्र चीन के विकास में एक अवरोध समझा गया (देखें इकाई-28)। इस पुरानी व्यवस्था की आलोचना पश्चिमी लोकतन्त्रवादी समर्थकों के द्वारा की गई। इस तरह के बुद्धिजीवी पश्चिमी लोकतन्त्र को आधुनिक एवं शक्तिशाली विज्ञान तथा संस्कृति से परिपूर्ण मानते थे।

मज़दूर एवं कृषक जिन भयंकर परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे उनके फलस्वरूप उनकी स्वयं की परेशानियां काफी गम्भीर थीं। अपने स्वयं के संघर्षों के द्वारा उन्हें भी नये प्रकार के अनुभव हुए थे। जहां एक ओर चीनी बुद्धिजीवी उनको राजनीतिक तौर पर शिक्षित करने का प्रयास कर रहे थे वहीं दूसरी ओर श्रमिकों एवं कृषकों के संघर्षों ने चीन के बुद्धिजीवियों के लिये नवीन दृष्टिकोणों को उजागर किया। यह दो तरह की प्रक्रिया थी और यह बड़ी ही निर्णायक भी थी क्योंकि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप चीनी बुद्धिजीवियों तथा लोकतन्त्र, नयी संस्कृति और स्वतन्त्र चीन के लिये व्यवसायिक वर्गों तथा समाज में निहित स्वार्थों को चुनौती देने वाले मेहनतकशों के राजनीतिक संघर्षों के बीच की दूरी कम हुई। वास्तव में यह प्रक्रिया राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं सामाजिक मुक्ति के लक्ष्यों का संयुक्त रूप से प्रतिनिधित्व करती थी। इस प्रक्रिया के चलते ये दोनों उस सामाजिक शक्ति के रूप में रूपांतरित हो गई जिसके कारण वह उच्च राजनीतिक कार्यवाही करने में सक्षम हो सकी। इस तरह सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके कारण वे समाज को संगठित करने के लिये समाजवादी प्रारूप को अपनाने की ओर अग्रसर हुए।

1920 के वर्षों में चीनी समाज में जो नवीन विचार उदित हो रहे थे और मेहनतकश जनता का जो संघर्ष चल रहा था उनको एक-दूसरे से नवीन चेतना ने जोड़ा और इनको संगठित स्वरूप 1921 में चीन के

साम्यवादी दल के गठन ने प्रदान किया। चीन के साम्यवादी दल का गठन इस नयी चेतना की अभिव्यक्ति थी। यह चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन के भीतर उदित होने वाली वामपंथी लहर का आधार बन गई। वामपंथी गुट ने सम्पूर्ण व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का निश्चय किया और समाजवाद के निर्माण को अपना एक व्यापक लक्ष्य बना लिया।

31.2.1 अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि

जिस अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में चीन का क्रान्तिकारी आंदोलन विकसित हुआ उसने चीन में मार्क्सवादी विचारों के प्रसार एवं स्वीकृति में महत्वपूर्ण योगदान किया। चीन की अर्थव्यवस्था के औपनिवेशीकरण के कारण जो असंतोष उत्पन्न हुआ वह समय-समय पर विभिन्न स्वरूपों में व्यक्त हुआ। भारत, रूस तथा बाद में दक्षिण अमरीका एवं अफ्रीका के पिछड़े देशों के समाजों की तुलना जिस समय पश्चिम के विकसित देशों के साथ की गई तब इन पिछड़े देशों में गहन बौद्धिक बहस चली और इस तरह के बौद्धिक विवादों का आधार यह था कि क्या अपने समाजों के पिछड़ेपन की विशेषताओं का परित्याग कर पश्चिम के विकसित समाजों की विशेषताओं को ग्रहण किया जाये या फिर अपने समाजों की श्रेष्ठतम विशेषताओं को पुनर्स्थापित कर पश्चिम की दमनकारी एवं "भ्रष्ट" व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष किया जाये। चीन के अन्दर भी इन दो शीर्षकों के इर्द-गिर्द वाद-विवाद होता रहा (देखें इकाई-28)। चीन में मार्क्सवादियों ने नये एवं आधुनिक चीन का निर्माण करने की अवधारणा के द्वारा पश्चिमी तथा जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के मार्ग का अनुसरण किया। इस तरह एक मार्ग स्वीकृत किया गया जो चीन की जनता के व्यापक हिस्सों के लिये दोनों तर्कों के दृष्टिकोण से हितकारी था।

चीन में इन विचारों को निम्न दो अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने और अधिक स्वीकार्य बना दिया—

1) पेरिस के शांति सम्मेलन में शांतुंग प्रस्ताव के माध्यम से शांतुंग में जर्मनी के विशेषाधिकारों को चीन को हस्तांतरित करने के बजाय जापान को हस्तांतरित कर दिया गया और इसके कारण चीन की जनता का पश्चिम से व्यापक तौर पर मोह भंग हुआ। चीन की जनता को पश्चिमी लोकतन्त्र पाखंडी एवं झूठा लगने लगा और इस भावना का स्पष्ट तौर पर रूपांतरण पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध हुआ। लेनिन की साम्राज्यवाद तथा क्रान्ति की अवधारणा ने चीनी बुद्धिजीवी वर्ग को और भी प्रभावित किया।
2) रूस में बोलशेविक क्रान्ति की सफलता ने भी चीन के बुद्धिजीवी वर्ग को समान रूप से आकर्षित किया। रूस एक ऐसे पिछड़े हुए देश का स्पष्ट प्रमाण था जिसने न केवल अपनी पुरानी जर्जर व्यवस्था को उखाड़ फेंका था बल्कि पश्चिमी साम्राज्यवाद को भी पराजित कर दिया था। अब मार्क्सवाद ने स्वयं को राजनीतिक कार्यवाही के लिये एक व्यवहारिक दर्शन के रूप में साबित कर दिया। इस तरह से मार्क्सवाद ने चीनी बुद्धिजीवी वर्ग को एक ऐसा दर्शन उपलब्ध कराया जिसके द्वारा वह "चीनी अतीत एवं वर्तमान के पश्चिमी प्रभुत्व — दोनों प्रकार की परम्पराओं का परित्याग कर सका"। इस तरह चीन के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में मार्क्सवाद एक शक्तिशाली स्रोत बन गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15 जुलाई, 1919 को रूस की नयी बोलशेविक सरकार ने चीनी जनता एवं चीनी सरकार को सम्बोधित करते हुए घोषणा की कि वह चीन के उन सभी क्षेत्रों पर अपने विशेषाधिकारों का परित्याग बगैर किसी हर्जाने के करती है जिन पर रूस के ज़ार ने अधिकार कर लिया था। रूस की नयी सरकार की यह घोषणा शांतुंग प्रस्ताव तथा इक्कीस मांगों के ठीक विपरीत थी।

ठीक भारत की भांति चीन एवं अन्य औपनिवेशिक देशों में सोवियत संघ का समर्थन पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध करने वाले देश के रूप में बढ़ने लगा और पूर्व में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों तथा पश्चिम के समाजवादी संघर्षों के बीच आपसी हितों की पहचान को मान्यता दी जाने लगी। यह वही स्थिति थी जिसके लेनिन एवं चीनी मार्क्सवादी चेन तू-शू पक्षधर थे।

31.2.2 राजनीतिक वातावरण

चीन में राजनीतिक वातावरण को मार्क्सवाद की ओर रूपांतरित करने में 4 मई, 1919 के आंदोलन ने अति महत्वपूर्ण योगदान किया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक चेन तू-शू तथा ली-ता-चाओ भी चार मई आंदोलन के नेता थे। लगभग आगामी पचास वर्षों तक चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व चार मई आंदोलन में भाग लेने वालों की पीढ़ी से आता रहा और इनमें चाऊ-ऐन-लाई तथा माओ त्से-तुंग प्रमुख थे। पार्टी के साधारण सदस्यों की एक बड़ी संख्या ने भी इस आंदोलन में अपना प्रथम क्रान्तिकारी राजनीतिक अनुभव प्राप्त किया था।

कन्फ्यूशियसवाद का विरोध, नयी शिक्षा का प्रसार, प्रेस तथा जन साहित्य में विशाल वृद्धि, प्रकाशन संस्थाओं, औषधि एवं आधुनिक न्यायालयों ने चार मई आंदोलन के दौरान आधुनिक विचारों के संवाहक बनने में महत्वपूर्ण योगदान किया। चीन की सामाजिक व्यवस्था में जो कुछ दमनात्मक था उसकी मूल आलोचना की गई थी और विज्ञान, लोकतन्त्र तथा साम्राज्यवाद विरोध में जो कुछ सकारात्मक था उन सभी का चीन के मार्क्सवादियों ने उचित समर्थन किया। इस सम्पूर्ण धरोहर को समाजवाद के उन विचारों के साथ मिश्रित कर दिया गया जिनके लिये मज़दूर वर्ग ने आंदोलन में अपना दावा किया। कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, एंगेल्स की पुस्तक परिवार, निजी सम्पत्ति एवं राज्य का उदय, समाजवाद, उपयोगितावाद एवं विज्ञान जैसे मार्क्सवादी साहित्य का रूपांतरण 1919 के पहले ही चीन में पहुंच चुका था। ऐसे लोग जो जापानी या अन्य कुछ पश्चिमी भाषाओं का ज्ञान रखते थे वे और अधिक अध्ययन कर सकते थे और इस तरह पहले से ही समाजवादी विचारों के लिये चीन के बुद्धिजीवी वर्ग में कुछ सहानुभूति विद्यमान थी। लेकिन यह पश्चिमी उत्तरकालीन-युद्ध समझौतों एवं रूसी क्रान्ति के प्रति एक प्रतिक्रिया ही थी कि चार मई के आंदोलन ने एक ऐसी दिशा को सुनिश्चित किया जिससे मार्क्सवादियों का प्रभाव बढ़ने लगा और 1919 तथा 1920 के वर्षों में तेजी से उनके विचारों का प्रसार हुआ। चार मई के आंदोलन के दौरान बुद्धिजीवी वर्ग का मज़दूर वर्ग के साथ घनिष्ठ सक्रिय सहयोग होने के कारण भी मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव बढ़ा। पीकिंग विश्वविद्यालय में ऐसे अनेक अध्ययन केन्द्रों का गठन हुआ जो समाजवाद के अध्ययन के प्रति समर्पित थे। ऐसी अनेक पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होने लगा जो रूसी क्रान्ति तथा साम्राज्यवाद की बोलशेविक आलोचना से प्रभावित थी।

चार मई आंदोलन के दौरान चीन के अन्दर प्रथम आम हड़ताल हुई। 1919-21 के वर्षों के दौरान हड़तालों में बुद्धिजीवी वर्ग ने मेहनतकशों के साथ सक्रिय भाग लिया। वामपंथी बुद्धिजीवियों की अग्रणीय पत्रिका न्यू यूथ के अपने मई 1920 के सम्पूर्ण अंक में मज़दूरों की समस्याओं के विषय में लिखा। मई दिवस के आयोजनों में प्राध्यापकों, विद्यार्थियों एवं मज़दूरों ने भाग लिया। इस आंदोलन का अगला पड़ाव इस अंतःक्रिया को एक संगठित स्वरूप प्रदान करना था और यह कार्य उस समय सम्पन्न हुआ जबकि 1921 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

31.2.3 सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां

लगभग पूरे चीन में मेहनतकशों की दरिद्र जीवन दशा ने ऐसा सामाजिक वातावरण तैयार किया जिसमें मार्क्सवाद का उदय हुआ।

दरिद्रता, गंदगी एवं शीघ्र मृत्यु देश के ग्रामीण अंचलों में 50 करोड़ जनता के जीवन का अंग थी। जिस समाज में चीन की जनता का अधिकतम भाग रहने के लिये बाध्य था उसकी निम्न विशेषतायें थीं—

- अपने बच्चों को मजबूरन बेचना,
- बुरे समय में घास एवं पेड़ों की छाल को खाना, और
- अपनी क्षमताओं के बाहर राजस्व एवं करों की अदायगी करना।

जहां एक ओर यह सभी घटित हो रहा था वहीं पर एक छोटा प्रबुद्ध वर्ग विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करता था। चीन के ग्रामीण क्षेत्रों के तेजी से होने वाले व्यापारीकरण एवं धन आपूर्ति (बाजार तथा धन अर्थव्यवस्था का उदय) के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से जुड़ गई। लेकिन इसके कारणवंश किसानों का शोषण और बढ़ गया। अनाज व्यापारी, महाजन, तथा प्रशासनिक अधिकारी जैसे सभी लोग जमींदारों के बीच से आये थे और वे सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर छा गये।

ग्रामीण चीन पर किये गये सभी अध्ययनों से स्पष्ट है कि 20वीं सदी में चीन के एक कृषक का जीवन 18वीं सदी की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन हो गया था। आधुनिक युग में उसके जीवन स्तर में भारी गिरावट आयी। जनसंख्या की वृद्धि के कारण भूमि पर अधिक दबाव पड़ा। भूमि का स्वामित्व और सीमित हो जाने तथा अनाज के दामों में कमी होने के फलस्वरूप और अधिक किसान देहाड़ी मज़दूरों में बदल गये। बेरोजगारी के व्यापक तौर पर फैल जाने से मज़दूरी में भी गिरावट आयी। दरिद्रता, शोषण तथा युद्धों से ग्रसित किसान के लिये विद्यमान सामाजिक व्यवस्था के क्रान्तिकारी रूपांतरण के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं था।

1920 के वर्षों में कृषि समस्या या किसान-भूमि समस्या एक महत्वपूर्ण सामाजिक सवाल बन गया। इस समय जमींदार व्यवस्था पर हमले लगातार बढ़ते जा रहे थे। 20वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में जो तूफान उत्पन्न हुआ उसने जमींदारों की स्थिति को काफी कमजोर बना दिया था। अब चीन का ग्रामीण क्षेत्र क्रान्तिकारी आंदोलनों की एक उर्वरक भूमि हो गई थी। अब वामपंथी बुद्धिजीवियों का यह कार्य था कि अपनी योजना के साथ ग्रामीण क्रान्तिकारियों को सूत्रबद्ध करें। एक अच्छी बात यह थी कि चीनी समाज का मुख्य भाग जनसंख्या के दृष्टिकोण के किसान ही थे। अब यह स्पष्ट था कि किसानों के जीवन एवं चेतना में रूपांतरण के बगैर चीन में कोई आधुनिक परिवर्तन सम्भव न था। लेकिन 1921 में भी किसानों का राजनीतिक क्षितिज काफी सीमित था। दूसरी ओर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को अभी किसानों के जबरदस्त हुए उभारों का भी अवलोकन करना था। यह केवल 1925 के बाद ही किया जा सका और इसी के बाद से चीन के कम्युनिस्ट आंदोलन ने किसानों से अपनी भारी शक्ति को प्राप्त किया।

मज़दूर वर्ग यद्यपि संख्या में कम था, लेकिन वह एक राजनीतिक शक्ति बन गया था क्योंकि बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र उन्हीं स्थानों पर थे जो चीन के मुख्य राजनीतिक केन्द्र थे। उच्च मज़दूरी एवं अन्य भागों के लिये मज़दूरों के संघर्ष प्रतिदिन के जीवन से जुड़े थे और इसी के कारण वे राजनीतिक अधिकारियों एवं फैक्ट्री मालिकों के बीच अपने हितों की पहचान करने में सफल हुए। इसलिये उनका राजनीतिक अधिकारियों के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ।

उनकी हड़तालों का पुलिस के द्वारा बर्बरता पूर्ण दमन किया गया। पुलिस सीधे-सीधे राज्य का एक हथियार थी। मजदूरों की एक बड़ी संख्या विदेशी कारखानों में कार्यरत थी। इसके कारण वे प्रत्यक्ष तौर पर साम्राज्यवाद के विरोधी बन गये। इसलिये साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रवादी संघर्ष तथा चीन की मेहनतकश जनता की चीनी शासक वर्गों से सामाजिक मुक्ति के संघर्ष की जटिलताओं का सामना उनको चीन में मजदूर आंदोलन के प्रारम्भिक चरण में ही करना पड़ा। औद्योगीकरण के प्रारम्भिक चरण में बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों के केन्द्रीकरण के कारणवश एक फैक्ट्री में मजदूरों का भी केन्द्रीकरण हुआ और इसके कारण एक कारखाना मालिक के विरोध में मजदूरों की भी बड़ी तादाद एकत्रित हो गई। इससे मजदूर वर्ग का अपनी समस्याओं का संयुक्त तौर पर सम्मान करना सम्भव हो पाया और उनके बीच एकता भी कायम हुई तथा प्रारम्भिक चरण में ही उनके बीच वर्ग चेतना का उद्‌भव होना सम्भव हो पाया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चार मई आंदोलन, प्रेस के विकास, सार्वजनिक सभाओं, नयी संस्कृति के विचारों एवं साहित्य के प्रसार तथा 1919-21 की घटनाओं में हिस्सेदारी के कारण शहरी क्षेत्रों में जो नया राजनीतिक वातावरण उत्पन्न हुआ उसने मजदूर वर्ग के सम्मुख एक नये परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया। मई 1919 में अध्यापक गण पीकिंग में मजदूरों के साथ हड़ताल में शामिल हुए यद्यपि उनको महीनों का वेतन न मिला था और ऊंची कीमतों के कारण उनका जीवन अधिक कठोर हो रहा था। 1920 में मजदूरों ने जापान-विरोधी बहिष्कार में भाग लिया। 1921 तक युद्ध के बाद फ्रांस से 28000 शिक्षित मजदूर वापस लौट चुके थे। उन्होंने चार मई आंदोलन को क्रान्तिकारी बनाने में सहायता की। इस तरह की परिस्थितियों में कम्युनिस्ट गुटों एवं इन मजदूरों ने एक दूसरे को अपने स्वाभाविक सहयोगियों के रूप में पाया। इस गठबंधन की अन्तिम परिणति चीन में एक कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के रूप में हुई।

बोध प्रश्न 1

1) उन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की विवेचना कीजिये जिनके कारण चीन में साम्यवादी विचारों का प्रसार हुआ। उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

2) 1919-20 के दौरान चीन में कैसा राजनीतिक वातावरण था? उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

31.3 कम्युनिस्ट पार्टी : 1921

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4 मई आंदोलन के दौरान गठित अध्ययन केन्द्र चीन के बुद्धिजीवियों के बीच संगठित आधार पर मार्क्सवादी विचारों के प्रसार का प्रथम प्रयास थे। 1920 की गर्मियों से चीन के विभिन्न भागों में कम्युनिस्ट राजनीतिक संगठनों की स्थापना के कार्य का प्रारम्भ किया गया और इस तरह का प्रथम संगठन शंघाई में अस्तित्व में आया। चेन तू-शू ने शंघाई गुट की स्थापना की थी तथा उसने न्यू यूथ नाम के गुट के औपचारिक पत्र का प्रकाशन भी शुरू किया। इस गुट ने "कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल" के साथ अपना संपर्क कायम किया और रूस का कम्युनिस्ट ग्रेजोर वॉयतिस्की इसके प्रतिनिधि के तौर पर चीन आया। अप्रैल, 1921 में इश्कुत्सुक में चीनी कॉमिंटर्न के कार्यालय की स्थापना की गई।

1920 के बसंत में ली ता-चाओ के नेतृत्व मे पीकिंग में कम्युनिस्ट गुटों की स्थापना हुई और शीघ्र ही उनका गठन अन्य नगरों में भी किया गया। अगस्त 1920 से शंघाई गुट ने *दि वर्ल्ड ऑफ लेबर* नाम के साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया और जनवरी 1921 तक इसके 23 अंकों का प्रकाशन हो गया। पीकिंग से ली ता-चाओ ने *दि वॉयस ऑफ लेबर* प्रकाशित किया और कैन्टन गुट ने *दि वर्कस* तथा *डी मेन एट वर्क* को निकालना शुरू किया। इन सभी पत्रिकाओं में मार्क्सवादी सिद्धान्तों तथा चीनी मज़दूर वर्ग की समस्याओं के विषय में विवेचन किया गया। चाऊ-ऐन-लाई तथा माओ त्से-तुंग ने हुनान में अध्ययन केन्द्र को संगठित किया। बहुत से चीनी कम्युनिस्ट फ्रांस में सक्रिय थे। इन गतिविधियों के कारण अधिक से अधिक बुद्धिजीवी एवं विद्यार्थीगण कम्युनिस्टों के इर्द-गिर्द एकत्रित होने लगे।

पुलिस से छुपकर जुलाई 1921 में शंघाई में बालिका छात्रावास में इन गुटों की एक बैठक हुई। पुलिस को इस बैठक का आभास हो गया और फिर बैठक के स्थान को चैकियांग में एक पर्यटक स्थल पर एक नाव में रखा गया। इसको चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का प्रथम सम्मेलन कहा गया।

12 प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया और वे 57 गुटों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के एक प्रतिनिधि ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन के द्वारा चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के गठन का निर्णय किया गया। पुलिस द्वारा उन दिनों कम्युनिस्ट गुटों का जबरदस्त दमन किया जा रहा था। अतः चेन तू-शू एवं ली ता-चाओ ने पार्टी सम्मेलन न कह कर पार्टी के संस्थापकों का सम्मेलन घोषित किया। चेन तू-शू पार्टी का प्रथम महासचिव बना।

इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय धटनाक्रम, विकसित होते मजदूर आंदोलन, राजनीतिक वातावरण का बढ़ता पैनापन और एक क्रान्तिकारी विचारधारा तथा क्रान्तिकारी दल के विकास की अन्तिम परिणति चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

(सी.पी.सी.) के गठन के रूप में हुई। इस प्रकार चीन के राजनीतिक दृश्य में पूर्ण रूप से एक नये तत्व का समावेश हुआ।

31.4 प्रारम्भिक विचार

सी.पी.सी. ने अपनी प्रेरणा को रूस की अक्तूबर क्रान्ति से प्राप्त किया था तथा यह स्वयं भी मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारों पर आधारित थी और पार्टी की "क्रान्तिकारी" भूमिका में विश्वास करती थी। मेहनतकश जनता के आंदोलनों विशेषकर मज़दूर वर्ग या सर्वहारा की अग्रिम भूमिका को निर्णायक समझा गया।

जैसा कि पहले भी कहा गया कि बुद्धिजीवी वर्ग के सभी भागों पर अक्तूबर क्रान्ति का प्रभाव पड़ा था। लेकिन चीन के मार्क्सवादियों ने इसकी सफलता की सम्भावना को न केवल एक पिछड़े देश में समझा था बल्कि वे यह भी मान रहे थे कि इसके द्वारा वे पश्चिमी साम्राज्यवाद को उखाड़ने की सम्भावना को देख रहे थे। 1917 की क्रान्ति के बाद रूस ने जिस सामाजिक-राजनीतिक ढांचे को अपनाया था वे स्वयं भी अपने समाज के लिये उसी प्रारूप को अपनाना चाहते थे। वे अपने देश में जो कुछ निर्मित करना चाहते थे यह उनका एक सुस्पष्ट प्रारूप था अर्थात् वे एक ऐसा समाज बनाना चाहते थे जो वर्ग विहीन (वर्ग शोषण से मुक्त) होगा और जिसके अन्तर्गत –

- निजी सम्पत्ति जो कि वर्ग दमन का मूल कारण थी – तुरन्त नष्ट हो जायेगी, और
- राजनीतिक तन्त्र का दिशा-निर्देशन मेहनतकश जनता के हितों के द्वारा होगा (अर्थात समाजवाद)।

जैसा कि मार्क्स ने लिखा था और जो रूसी क्रान्ति ने साबित किया था उसी के अनुरूप उनका विश्वास था कि इस तरह का परिवर्तन क्रान्ति के द्वारा किया जा सकता था। मार्क्स के विचारों पर आधारित क्रान्ति को केवल वर्ग युद्ध या वर्ग संघर्ष के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था। उनका विचार था कि शासक वर्गों तथा मेहनतकश जनता के हितों के बीच निश्चित टकराव था (अर्थात् उनके बीच आन्तरिक संघर्ष निहित था)। ऐसा होने का यह कारण था क्योंकि शासक वर्गों के लाभ एवं विलासिता निश्चय ही मेहनतकशों के श्रम का फल थे और इसके लिये मेहनतकश जनता को पूर्ण अदायगी नहीं की जाती थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इससे आगे मार्क्स के विचारों पर आधारित उन्होंने यह भी समझा कि मेहनतकश वर्ग सबसे अधिक क्रान्तिकारी सामाजिक शक्ति है और सर्वहारा वर्ग की अग्रिम भूमिका होती है क्योंकि "इसके पास अपनी गुलामी को खोने के अलावा कुछ नहीं है"। क्योंकि यह केवल मेहनतकश वर्ग ही है जो अपने श्रम के द्वारा सम्पूर्ण आमदनी को पैदा करता है, लेकिन उसके पास कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है यही एक मात्र ऐसा वर्ग है जिसका निजी सम्पत्ति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में कोई अधिकार नहीं है। यह स्वाभाविक ही था कि मेहनतकश जनता का अधिक हित समाजवाद में निहित था और यह एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसके अन्तर्गत वह अपने श्रम के सम्पूर्ण परिणाम का उपभोग कर सकेगा। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक था कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग को संगठित करती और इसने अपनी भूमिका को मेहनतकश जनता को राजनीतिक तौर पर शिक्षित करने के लिये निर्धारित किया क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी मेहनतकश वर्ग के अधिक विकसित हिस्सों का प्रतिनिधित्व करती थी।

इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये सी.पी.सी. की परिवर्तन एवं सामाजिक रूपांतरण की अवधारणा कुओमिन तांग के अधीन राष्ट्रवादियों से कहीं अधिक विकसित थी। साम्यवादियों के लिये केवल पश्चिमी साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकना पर्याप्त न था बल्कि चीन में युद्ध सामंतों के प्रभुत्व को भी समाप्त करना आवश्यक था। उनके लक्ष्य कहीं अधिक सामाजिक एवं आर्थिक समानता के पक्षधर थे।

लेनिन की अवधारणा साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरमपराकाष्ठा तथा रूसी क्रान्ति के अनुभव ने चीन के साम्यवादियों को बहुत अधिक प्रभावित किया और उनको यह विश्वास हो गया कि रूस में पूंजीवाद का अपेक्षाकृत कमजोर आधार था और इसी कारण उनके देश में पूंजीवाद व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की अधिक सम्भावनायें थीं। इसी के साथ-साथ वे यह अनुमान लगाने में भी सफल हुए कि रूस की भांति उनको भी अपने स्वयं के देश में युद्ध सामंतों की व्यवस्था का सफाया करना होगा। इसको कृषक वर्ग तथा राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग (मध्यम वर्ग) के साथ गठबंधन करने ही किया जा सकता था तथा इन वर्गों के हित भी

सामन्तवाद का विरोध करने में ही निहित थे। दूसरे शब्दों में चीन की क्रान्ति का प्रथम चरण रूस की क्रान्ति की भांति न होगा। पहले लोकतन्त्र को विकसित करने की आवश्यकता थी। लेकिन इस स्थिति को भी मेहनतकश वर्ग के द्वारा किसानों के गठबंधन के साथ सम्पन्न किया जाना था क्योंकि पूंजीपति वर्ग भी कमजोर था।

हमें यहां पर इस तथ्य को भी याद रखना चाहिये कि इन विचारों को रूसी क्रान्ति के सफल अनुभवों के आधार पर अंधाधुंध तरीके से स्वीकार नहीं किया गया था। उन्होंने अपने मार्क्सवादी विचारों तथा रूसी क्रान्ति के अनुभवों की शिक्षाओं को चीन की परिस्थितियों में लागू करने का प्रयास किया। ऐसा अपने स्वयं के राजनीतिक अनुभवों के परिवेश में किया गया था। 1923 तक भी वे चीनी समाज की जटिलताओं को समझने का प्रयास करते रहे। इन जटिल परिस्थितियों में सुस्पष्ट स्थिति मज़दूर वर्ग का जबरदस्त उफान था। इसी कारणवश इन वर्षों में उन्होंने स्वयं को मज़दूर वर्ग के आंदोलन को विकसित करने में प्राथमिक तौर पर व्यस्त रखा।

31.5 प्रारम्भिक गतिविधियां

चीन में 1920 में 46 मज़दूर हड़तालें हुईं और 1921 में 50। यह मुख्यतः कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयास ही थे कि मज़दूर वर्ग में राजनीतिक चेतना पैदा हो गई थी। अध्ययन केन्द्रों तथा मज़दूरों के लिये पत्रिकाओं के अलावा कम्युनिस्ट गुटों ने मज़दूरों की विशाल सभाओं को सम्बोधित किया। इन प्रयासों में निम्न प्रयास भी शामिल थे –

DIKSHANT IAS

- शंघाई मैटल मैकेनिक्स यूनियन की स्थापना
- हुनान वर्किंग मैन्स एसोसियेशन के साथ सम्पर्क
- चैंग-सिन-तेन में रेलवे मैन्स यूनियन का गठन।

Call us @7428092240

मज़दूरों के लिये बहुत से शाम के समय चलने वाले स्कूलों को संगठित किया। इस सन्दर्भ में माओ तथा उनकी पत्नी के द्वारा चांगसा में चलाये गये शैक्षिक आंदोलन का उदाहरण दिया जा सकता है। अगस्त 1921 में एक स्व-चालित कालिज का प्रारम्भ किया गया। 1922 तक 30,000 से लेकर 40,000 तक की मज़दूरों की संख्या को इस तरह की गतिविधियों में शामिल कर लिया गया था। अन्यान के खान मज़दूरों के बीच माओ त्से-तुंग ने 7 खान मज़दूरों की एक पार्टी इकाई की स्थापना की। इस पार्टी इकाई ने उन खान मज़दूरों के मध्य एक यूनियन स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

कैन्टन में छपाई, तम्बाकू तथा कपड़ा उद्योगों में मज़दूरों को संगठित करने के उद्देश्य से श्रमिक आंदोलन के लिये एक कमेटी की स्थापना की गई। प्रथम चीनी मज़दूर यूनियन का सम्मेलन 1 मई, 1922 को हुआ। चीन के इतिहास में पहली बार अगस्त 1922 में महिलाओं के द्वारा पूडोंग के रेशम कताई मिल में महिला मज़दूरों की एक व्यापक हड़ताल हुई।

इस तरह की गतिविधियों का युद्ध सामंतों ने विरोध किया और इनका पूरी बर्बरता के साथ दमन हुआ। यूनियनों को बन्द कर दिया गया, हड़तालों में बाधा उत्पन्न की गई, तालाबंदी को घोषित कर दिया गया और मज़दूरों की व्यापक स्तर पर हत्या की गई। इस तरह से कम्युनिस्ट गतिविधियों तथा मज़दूर वर्ग के आंदोलन के प्रथम बहादुराना चरण का अन्त हुआ। यद्यपि मज़दूरों की ये सभी हड़तालें सफल न हुई थीं फिर भी सी.पी.सी. ने मज़दूर वर्ग के मध्य राजनीतिक चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

मज़दूर वर्ग की इस असफलता का कारण यह था कि मज़दूर वर्ग स्वयं ही इन युद्ध सामंतों की तथा इनकी सरकारों की पूरी ताकत के अनुरूप तैयार न था। मज़दूरों को सहयोगियों की आवश्यकता थी। इसलिये कम्युनिस्टों ने किसानों को संगठित करने के अपने प्रथम प्रयास किये, लेकिन ऐसा केवल कैन्टन में किया गया। यद्यपि वे अभी तक एक ऐसे मज़दूर किसान गठबंधन को प्राप्त करने में सफल न हो सके थे जो मजबूत मज़दूर तथा किसान आंदोलनों पर आधारित होगा। राष्ट्रवादी पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद तथा युद्ध सामंतों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए स्वयं को संगठित तौर पर सी.पी.सी. की गतिविधियों के साथ संबंधित न

किया था। वे अलग से कार्यरत थे और अव्यवस्थित भी। यह एक ऐसा समय था जबकि सी.पी.सी. एवं कुओ मिन तांग दोनों की अपनी राजनीतिक शिक्षा को प्राप्त करते हुए निम्नलिखित बातों को सीखना था –

- स्वयं को पुनः संगठित करना,
- चीन में स्वयं को एक ऐसे मजबूत गठबंधन में संगठित करना जिसके अन्दर सभी प्रगतिशील सामाजिक शक्तियां शामिल हों, और
- सामान्य शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष करने की एक संयुक्त नीति को तैयार करना।

बोध प्रश्न 2

1) अपने गठन के काल में सी.पी.सी. के क्या विचार थे? उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) लगभग 10 पंक्तियों में सी.पी.सी. की प्रारम्भिक गतिविधियों की विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

31.6 सारांश

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का गठन 1921 में हुआ और उसने चीन की जनता को एक नयी विचारधारा उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान किया। चार मई आंदोलन को मार्क्सवादी विचारों को संगठित तौर पर प्रसारित करने का प्रथम प्रयास माना जा सकता है। चार मई आंदोलन के साथ ही छापाखाने, सार्वजनिक सभाओं तथा नवीन साहित्य आदि का भी प्रसार हुआ और इसने विचारों के विकास में भी योगदान किया। मज़दूर वर्ग में राजनीतिक चेतना की वृद्धि करने के लिये सी.पी.सी. उत्तरदायी थी। मज़दूर वर्ग तथा पी.पी.सी के प्रथम क्रान्तिकारी आंदोलन का अन्त बर्बर दमन के कारण हुआ।

31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर का आधार उपभाग 3.2.2 को बनायें।
2) आपका उत्तर उपभाग 3.2.3 पर आधारित होना चाहिये।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर का आधार भाग 3.5 होना चाहिये।
2) आप अपने उत्तर का आधार भाग 3.5 को बनाये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 32 संयुक्त मोर्चा

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य
32.1 प्रस्तावना
32.2 संयुक्त मोर्चे का गठन
32.2.1 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी
32.2.2 क्वोमिंतांग
32.3 वार्ताएं
32.4 संयुक्त मोर्चे की प्रकृति
32.5 उपलब्धियां और सफलताएं
32.6 जन आंदोलन और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी
32.7 विघटन और दमन
32.8 विघटन के कारण
32.9 सारांश
32.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- यह जान पायेंगे कि चीन में संयुक्त मोर्चे का विचार क्यों बना,
- संयुक्त मोर्चे के गठन के लिये उत्तरदायी कारकों को समझ सकेंगे,
- संयुक्त मोर्चे के दौर में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- यह जान सकेंगे कि क्वोमिनतांग चीनी राष्ट्रीय आंदोलन में किस प्रकार एक मजबूत सामाजिक शक्ति के रूप में उभरा, और
- संयुक्त मोर्चे की उपलब्धियों और असफलताओं के विषय में जान सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

"संयुक्त मोर्चे" का शाब्दिक अर्थ होता है गठबंधन। कम्युनिस्ट शब्दावली में उसका प्रयोग उस रणनीति के लिये किया जाता है जहाँ कम्युनिस्ट पार्टी किसी समान उद्देश्य के लिये अथवा किसी समान शत्रु के विरुद्ध दूसरे राजनीतिक दलों अथवा समूहों के साथ गठबंधन कर लेती है। कम्युनिस्ट पार्टियों ने इस रणनीति का प्रयोग तब-तब किया है जब-जब उन्हें लगा है कि वे अकेले अपने बूते पर संघर्ष को आगे नहीं बढ़ा सकते और दूसरे ऐसे समूह अथवा दल हैं जो उनके समूचे कार्यक्रम से सहमत न होते हुए भी उनके कुछ ऐसे उद्देश्यों से सहमति रखते हैं जो कहीं अधिक आसन्न है। इस तरह, संयुक्त मोर्चे का आधार एक समान न्यूनतम कार्यक्रम होता है। फिर भी, किसी "संयुक्त मोर्चे" का अर्थ कम्युनिस्ट पार्टियों का दूसरे समूहों के साथ विलय हो जाना नहीं होता। इसका कारण यह है कि उनके कुछ व्यापकतर लक्ष्य भिन्न होते हैं। वे यह मानते हैं कि उनके आसन्न लक्ष्य पूरे हो जाने के बाद, हो सकता है दूसरे समूह (अथवा, गुट) और आगे संघर्ष न चलाना चाहें। वास्तव में तो यह भी हो सकता है कि वे एक-दूसरे से ही लड़ चलें। संयुक्त मोर्चे का उद्देश्य समान संघर्षों के दौरान जनता के बीच अपना स्वाधीन प्रभाव कायम करना भी होता है। इसका कारण यह है कि न्यूनतम समान लक्ष्य पूरे होने के बाद जनता उनके प्रभाव में बनी रहेगी और अधिक व्यापक लक्ष्यों के लिये संघर्ष को जारी रखना चाहेगी।

चीन में पहला संयुक्त मोर्चा 1924-1927 के दौर में रहा। इस दौर में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने क्वोमिनतांग के साथ मिल कर एक संयुक्त मोर्चे का गठन किया जिसका उद्देश्य:

- साम्राज्यवादी पश्चिमी ताकतों और जापान द्वारा निरूपित उपनिवेशवाद, और
- चीन के युद्ध नेताओं द्वारा निरूपित सामंतवाद का अंत करना था।

इस तरह, चीन में 1924 से 1927 तक संयुक्त मोर्चे की रणनीति के समान ध्येय थे राष्ट्रीय मुक्ति और चीन में एक जनतांत्रिक सामाजिक और राजनीतिक ढांचे की स्थापना।

यह संयुक्त मोर्चा 1927 तक ही चल पाया। इसका अंत कम्युनिस्टों और मज़दूर वर्ग के विरुद्ध दमन के साथ हुआ। इस बार दमन (1923 की तरह) केवल युद्ध सामंतों ने नहीं किया, बल्कि उसके अपने पूर्ववर्ती मित्र क्वोमिनतांग ने किया, और इसमें उसकी सहायता चीन में विद्यमान साम्राज्यवादी शक्तियों और युद्ध सामंतों ने की।

इस इकाई में हम निम्नलिखित पर चर्चा करेंगे:

- सबसे पहले, संयुक्त मोर्चे की नीति बनने के कारण, अर्थात् चीन में ऐसी कौन-सी स्थितियां थीं जिनके कारण क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करने का निर्णय लेना पड़ा,
- दूसरे, वे अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव जिन्होंने इस नीति को आकार दिया, संयुक्त मोर्चे की प्रकृति और उसकी उपलब्धियां,
- तीसरे, संयुक्त मोर्चे की रणनीति और चीन में मज़दूर और किसान आंदोलनों की प्रगति के बीच संबंध, राष्ट्रीय शक्तियों और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की उपलब्धियां, और
- अंत में, संयुक्त मोर्चे के कारण और चीनी क्रांतिकारी आंदोलन के भीतर की समस्याएं और उसके अंतर्विरोध।

DIKSHANT IAS

इसके अतिरिक्त, इस इकाई में यह भी चर्चा की जायेगी कि इस प्रयोग से कौन सी समस्याएं उठीं, और चीनी क्रांतिकारी नेताओं ने उन समस्याओं का किस प्रकार समाधान किया।

Call us @7428092240

32.2 संयुक्त मोर्चे का गठन

चीन में संयुक्त मोर्चे का गठन सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में विश्व की सभी कम्युनिस्ट पार्टियों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन कम्युनिस्ट इंटरनेशनल, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्वोमिनतांग की पहल पर हुआ। इसके गठन के कारण आंशिक रूप से वैचारिक और आंशिक रूप से व्यावहारिक थे। जैसा कि आप इकाई 31 में पढ़ चुके हैं, प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् के वर्षों में निम्नलिखित तथ्य देखने में आये:

- चीन में सोवियत रूस के लिये अत्यधिक सहानुभूति का बनना,
- चीनी बुद्धिजीवी वर्ग का आमूल परिवर्तन, और
- मज़दूर और किसान आंदोलनों और मार्क्सवाद का उदय।

पश्चिमी ताकतों से पूर्ण मोह भंग की स्थिति थी। सोवियत संघ के कम्युनिस्टों ने तमाम विशेषाधिकारों और प्रादेशिक क्षेत्रों पर दावों को छोड़ने में पहल की थी। इनमें चीन में पूर्ववर्ती ज़ार शासन के नियंत्रण वाला मंचूरियाई रेलमार्ग भी था। इसलिये, यह स्वाभाविक था कि चीन के प्रमुख राजनीतिक गुट सोवियत सरकार और वहां की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मैत्री संबंध स्थापित करते।

इसलिये, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त, क्वोमिनतांग ने भी सोवियत संघ के साथ सीधे और मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये

इसमें [illegible] सरकार, वहां की कम्युनिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का दृढ़ मत था कि [illegible] कम्युनिस्ट पार्टी ही नहीं, बल्कि क्वोमिनतांग भी एक प्रगतिशील और क्रांतिकारी राजनीतिक [illegible] यह समझ इस विश्लेषण पर आधारित थी कि राष्ट्रीय मुक्ति के लिये संघर्ष कर रही उपनिवेशी

और अर्ध-उपनिवेशी देशों की तमाम राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों को विश्व की राजनीति में एक सकारात्मक भूमिका निभानी थी। वे यह मानते थे कि साम्राज्यवाद के विरोध में खड़े होने वाले तमाम राजनीतिक गुट नवोदित समाजवादी देश रूस के समान शत्रु के विरुद्ध विश्व व्यापी संघर्ष में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। इन गुटों में शेष यूरोप के मज़दूर और कम्युनिस्ट आंदोलन, और भारत और चीन जैसे उपनिवेशी और अर्ध-उपनिवेशी देशों के मज़दूर और कम्युनिस्ट आंदोलन शामिल थे। इसलिये, सोवियतों और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के मन में यह एक आदर्श स्थिति थी कि वे अवसर मिलते ही समान शत्रु के विरुद्ध आपस में सहयोग करें।

मार्क्सवाद के विचारों पर आधारित कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का भी दूसरे देशों में क्रांतियों को बढ़ावा देने में लाभ था, क्योंकि ये क्रांतियां आवश्यक रूप से चीन अथवा भारत की जनता के एक बड़े वर्ग के हितों का वहां के निहित स्वार्थों के हितों के विरुद्ध प्रतिनिधित्व करती। चीन में उन्होंने देखा कि केवल मज़दूर और किसान ही नहीं बल्कि बूर्जुआ और मध्यम वर्ग भी युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध थे। वहां युद्ध सामंतवाद का यह विरोध इसलिये था क्योंकि युद्ध सामंत चीन में सामंतवाद का मुख्य आधार थे। उनका सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव न केवल किसानों के हितों के विरुद्ध ज़मीदारों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था, बल्कि यह चीन में आधुनिकीकरण और पूंजीवाद के विकास में भी बाधक था। बूर्जुआ वर्ग के हित आधुनिक चीन के विकास में निहित थे, इसलिये ये युद्ध सामंतों के विरुद्ध थे। उनके हितों का प्रतिनिधि युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वाला क्वोमिनतांग था। चीनी बूर्जुआ वर्ग के स्वार्थ साम्राज्यवाद का विरोध करने में भी निहित थे क्योंकि साम्राज्यवाद भी चीन में उन्नत पूंजीवाद के विकास में बाधक था। पश्चिमी ताकतें सारे लाभ खींच ले जाती थीं और चीनी बूर्जुआ उनसे होड़ करने की स्थिति में नहीं थे। इसलिये क्वोमिनतांग ने पश्चिमी ताकतों का विरोध किया (देखिये इकाई-30)।

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने भी इस स्थिति को महसूस किया, और उसने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त क्वोमिनतांग के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किये। क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों के साथ इस मैत्रीपूर्ण सहयोग के बूते पर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्वोमिनतांग के संयुक्त मोर्चे के गठन की पहल में मध्यस्थ का काम कर सकी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

32.2.1 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर संयुक्त मोर्चे के गठन को लेकर कुछ मतभेद थे। फिर भी विश्व राजनीति पर जोर देने की आवश्यकता को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने स्वीकार किया। वास्तव में, चीन में कम्युनिस्ट आंदोलन का उदय राष्ट्रवाद के विकास और जनतंत्र के लिये चलाने वाले आंदोलन के संदर्भ में हुआ था। इसलिये, राष्ट्रीय मुक्ति चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का एक प्राथमिक लक्ष्य था। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं को यह एहसास हो गया था कि चीन को साम्राज्यवादी ताकतों के चंगुल से मुक्त कराये बिना न तो जनतंत्र आ सकता है और न ही जनता के जीवन को बेहतर बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, समय-समय पर इन ताकतों और सामंतों के बीच राजनीतिक समझौता भी रहा। इसलिये, राष्ट्रीय मुक्ति को चीन में सामाजिक मुक्ति के लिये चलने वाले संघर्ष से अलग नहीं किया जा सकता था।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने देखा कि क्वोमिनतांग साम्राज्यवाद और युद्ध सामंतवाद दोनों के विरुद्ध था। इसके नेताओं ने यह भी महसूस किया कि 1924 में चीन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अपेक्षा क्वोमिनतांग कहीं अधिक मजबूत शक्ति थी। उसके पास:

- चीनी जनता का कहीं व्यापक आधार और समर्थन था,
- सदस्यों के रूप में कहीं अधिक बुद्धिजीवी और व्यावसायिक लोग थे,
- प्रशासन सेनाओं के भीतर कहीं अधिक प्रभाव था, और
- कहीं अधिक कोश और सैनिक साज-सामान था।

इसलिये, क्वोमिनतांग समान शत्रु, के विरुद्ध संघर्ष में एक उपयोगी मित्र हो सकता था। चाहे वह मजदूरों और किसानों की दैनिक मांगों का प्रतिनिधित्व न करता हो। इसके अतिरिक्त, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं की क्वोमिनतांग के नेता, सन यात सेन, के विषय में अच्छी राय थी। उनके सामने आसन्न राजनीतिक कामों के संदर्भ में, वे इस बात से सहमत थे कि मतभेद की अपेक्षा सहयोग के लिये कहीं अधिक संभावना थी। उन्होंने यह भी महसूस किया कि इस सहयोग का अर्थ आवश्यक रूप से यह नहीं था

कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी अपनी गतिविधियों को समान कामों तक ही सीमित रखे। इसलिये, उन्होंने इस स्पष्ट समझ के साथ संयुक्त मोर्चे के पक्ष में निर्णय लिया कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय मुक्ति के लिये और सामंतों के विरुद्ध क्वोमिनतांग के साथ मिल कर लड़ने के साथ-साथ स्वाधीन मांगों को बनाये रखेगी।

इस प्रकार, संयुक्त मोर्चा शत्रुओं को अलग-अलग करने के वास्ते चीनी जनता के व्यापकतम वर्ग को एकजुट करने का एक मात्र तरीका था।

32.2.2 क्वोमिनतांग

सन् 1911 की क्रांति के बाद के दशक में जो गणतंत्रवाद का प्रयोग हुआ उससे चीन में न तो आर्थिक स्थिरता ही आई और न ही राजनीतिक। गणतंत्रीय सरकार के राजनीतिक रूप से बेअसर होने के कारण सन यात सेन को साम्राज्यवादियों और युद्ध सामंतों से लड़ने के नये तरीके निकालने के बारे में सोचना पड़ा। वामपंथ और मज़दूर आंदोलन की उठती लहर ने राष्ट्रवादी मुक्ति के लिये होने वाले संघर्ष को नये मोड़ पर खड़ा कर दिया। उसका अर्थ यह होता था कि राष्ट्रवादी शक्तियों के सामाजिक आधार को और भी व्यापक करके उनमें चीन के मज़दूरों और किसानों को शामिल किया जा सकता था।

सन यात सेन की अपनी प्रभावकारिता, बढ़ते साम्यवादी आंदोलन और मज़दूर आंदोलन में उसके प्रभाव ने मिल कर सन यात सेन के सामने दो बातें स्पष्ट कर दीं:

1) यह अनिवार्य था कि क्वोमिनतांग को फिर से संगठित किया जाये।
2) साम्राज्यवादियों और युद्ध सामंतों से अकेले अपने दम पर और आगे लड़ना संभव नहीं था।

सन यात सेन को लगा कि इसका जवाब बस एक ऐसा पुनर्गठित क्वोमिनतांग था जिसमें चीनी जनता के सभी तबकों के समर्थन को लिया जाये। इसके लिये कम्युनिस्टों के साथ एक संयुक्त मोर्चा बनाना और सोवियत रूस की मित्रतापूर्ण सहायता लेना अनिवार्य था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

32.3 वार्ताएं

सन् 1921 के बसंत में उच्च अभिकर्ता एच मैरिंग, ने कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रतिनिधि के रूप में सन यात सेन से मुलाकात की। यह संयुक्त मोर्चे के लिये होने वाली वार्ताओं की शुरुआत साबित हुई। उसके बाद, इस मसले पर जनवरी 1922 में मास्को में हुए कम्युनिस्ट पार्टियों के एक सम्मेलन में, और उसके बाद अगस्त 1922 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति में विचार किया गया। उसी महीने में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का एक और प्रतिनिधि, एडोल्फ जौफ, सोवियत-क्वोमिनतांग-चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सहयोग का आधार तैयार करने के लिये चीन आया। लंबी बातचीत के बाद, एडोल्फ जौफ, ने सन यात सेन को इस बात के लिये तैयार कर लिया कि वह सोवियत रूस के साथ गठबंधन और क्वोमिनतांग में साम्यवादियों के प्रवेश की नीति को अपनाये। इस नीति का अनुमोदन 53 राष्ट्रवादी नेताओं ने 4 सितम्बर, 1922 को शंघाई में हुए एक सम्मेलन में किया। यह नीति संयुक्त मोर्चे की नीति के लिये, और क्वोमिनतांग के पुनर्गठन के लिये भी, आदर्श बन गयी। दूसरी ओर जून 1923 में कैंटन में आयोजित चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के तीसरे राष्ट्रीय सम्मेलन में क्वोमिनतांग के साथ एक संयुक्त मोर्चा बनाने के बारे में औपचारिक निर्णय ले लिया गया।

जून 1924 में, क्वोमिनतांग ने कैंटन में अपना पहला राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। ली ता-चाओ, माओ त्से-तुंग और अन्य साम्यवादी नेताओं ने भी इस बैठक में भाग लिया। इस सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित किया गया कि कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को उनकी व्यक्तिगत हैसियत में क्वोमिनतांग में प्रवेश दिया जाये। इसमें एक नये पार्टी कार्यक्रम और संविधान को अपनाया गया। इसमें क्वोमिनतांग के पुनर्गठन से संबंधित कुछ ठोस उपायों पर भी निर्णय लिया गया। क्वोमिनतांग के पहले राष्ट्रीय सम्मेलन के घोषणापत्र को भी नहीं अपनाया गया। सन यात सेन ने घोषणापत्र में अपने तीन सिद्धांतों की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की। सम्मेलन ने अपने तीन सिद्धांत इस प्रकार रखे:

- सोवियत संघ के साथ मित्रतापूर्ण संबंध,
- चीन में मज़दूर और किसान आंदोलनों का विकास, और

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सहयोग।

इस तरह, राष्ट्रीय मुक्ति और जनतंत्र के लिये संयुक्त मोर्चा 1924 में क्वोमिनतांग के इस पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में अस्तित्व में आया। मैटिंग ने 1921 से लेकर 1924 तक की तमाम वार्ताओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

32.4 संयुक्त मोर्चे की प्रकृति

संयुक्त मोर्चे की नीति की पहली और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी क्वोमिनतांग का एक ऐसे क्रांतिकारी संगठन के रूप में उदय जो चीन में राष्ट्रीय मुक्ति के पक्ष में और युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व करने में सक्षम था। क्वोमिनतांग में साम्यवादियों के प्रवेश का अर्थ यह होता था कि असंख्य अति समर्पित क्रांतिकारियों की क्षमताओं और अनुभव को राष्ट्रवादी संघर्ष में जोत लिया गया था। क्वोमिनतांग की स्थायी समिति (प्रिसिडियम) के लिये चुने गये पांच सदस्यों में एक साम्यवादी, ली ता-चाओ, भी था। केंद्रीय समिति के लिये चुने गये 24 सदस्यों में पांच वामपंथी थे और तीन कम्युनिस्ट। बहुमत में न होते हुए भी, वामपंथी और साम्यवादी नीतिगत निर्णय लेने के संदर्भ में कहीं अधिक प्रभावशाली थे। इसके परिणामस्वरूप क्वोमिनतांग के भीतर एक मजबूत वामपंथ का उदय हुआ। अर्थात् अपने समूचे रूप में क्वोमिनतांग अपनी नीतियों और मज़दूर और किसान आंदोलन को समर्थन देने में इतना अधिक क्रांतिकारी हो गया जितना वह 1924 से पहले के वर्षों में कभी नहीं रहा था।

तीन सिद्धांतों को जो नयी व्याख्या दी गयी उससे भी यही संकेत मिलता है।

i) राष्ट्रवाद में साम्राज्यवाद विरोधी तत्व अब और भी मजबूत हो गया जिसमें एक स्वाधीन संघर्ष पर जोर दिया गया और चीन के भीतर तमाम राष्ट्रवादियों के लिये पूरी समानता की वकालत की गयी।

ii) जनतंत्र के नये सिद्धांत में इस बात पर जोर दिया गया कि न केवल विशेषाधिकार प्राप्त और शिक्षित व्यक्तियों को, बल्कि तमाम कामगारों को और सामंतवाद और साम्राज्यवाद का विरोध करने वाले तमाम व्यक्तियों और संगठनों को भी, जनतांत्रिक अधिकार दिये जायें। व्यवहार में, इसमें भाषण की स्वतंत्रता का अधिकार और बेहतर जीवन के लिये संगठन और संघर्ष करने का अधिकार आते थे।

iii) सभी के लिये आजीविका के संबंध में, इसमें भूमिस्वामित्व के समानीकरण, खेतिहरों को भूमि, पूंजी का नियंत्रण, और मज़दूरों के रहन-सहन की स्थितियों में सुधार जैसी सामंत-विरोधी मांगें शामिल थीं। व्यवहार में, इसका अर्थ होता था चंद पूंजीवादियों और ज़मीदारों के हाथों में राष्ट्रीय संपदा के नियंत्रण का विरोध करना।

क्वोमिनतांग के नेतृत्व वाले संयुक्त मोर्चे ने एक जनतांत्रिक संयुक्त सरकार की स्थापना की दिशा में काम करने के लिये राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग और मज़दूरों और किसानों के गठबंधन की मांग की। यह वास्तव में, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में रेखांकित आसन्न कामों को पूरा करने की दिशा में उठाया गया कदम ही था। इसका अर्थ यह भी होता था कि चीन के किसी भी राजनीतिक गुट द्वारा प्रस्तुत इस सबसे क्रांतिकारी कार्यक्रम को संयुक्त मोर्चे की नीतियों के ढांचे के भीतर कार्यान्वित किया जा रहा था।

बोध प्रश्न 1

1) संयुक्त मोर्चे के गठन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के क्या उद्देश्य थे? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) संयुक्त मोर्चा किस वर्ष अस्तित्व में आया?

   क) 1922

   ख) 1924

   ग) 1923

   घ) 1926

3) लगभग दस पंक्तियों में संयुक्त मोर्चे की प्रकृति की विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

32.5 उपलब्धियां और सफलताएं

संयुक्त मोर्चा नीति की पहली सफलता तो उसी समय सामने आ गयी थी जब बातचीत अभी चल रही थी। सनयात सेन ने कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन से मार्च 1923 में क्वीनतुंग में एक क्रांतिकारी सरकार का गठन किया। सोवियतों ने क्वोमिनतांग को फिर से संगठित करने में मदद देने के लिए माइकेल बोरोदिन को और सेना के प्रशिक्षण में मदद के लिए जनरल गालेन को भेजा, उनके साथ 40 अन्य सलाहकार भी आये। अगस्त 1923 में, एक युवा जनरल, च्यांग काई शेक, को सोवियत सैनिक प्रणाली का अध्ययन करने के लिये सोवियत संघ भेजा गया। सोवियतों की मदद से, सन यात सेन को कैंटन के निकट वाम्पो सैनिक अकादमी स्थापित करने में भी सफलता मिली। राष्ट्रवादी सेना का गठन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, क्योंकि इससे कुछ युद्ध सामंतों की सेनाओं के विरुद्ध पहली महत्वपूर्ण जीत हासिल हो सकी। कैंटन अड्डे पर कब्जे का काम 1925 तक पूरा हो गया। राष्ट्रवादी सरकार को अक्तूबर 1926 में वूहान ले जाया गया और क्वोमिनतांग के सैनिकों ने चीन के एकीकरण के लिये एक सैनिक अभियान शुरू कर दिया। इसे उत्तरी अभियान के नाम से जाना गया। कुछ ही समय में क्वोमिनतांग ने आधे चीन पर नियंत्रण कर लिया। इसके परिणामस्वरूप क्रांतिकारी सेनाओं के नियंत्रण के क्षेत्र में संयुक्त मोर्चे के दौर में तेजी से विस्तार हुआ, दोनों पार्टियां भी साम्राज्यवाद – विशेषकर जापान और इंग्लैंड के साम्राज्यवाद का मिल जुल कर कड़ा प्रतिरोध करने में समर्थ रही।

संयुक्त मोर्चे की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी 1925-26 के दौरान जनप्रिय आंदोलनों के विकास को बढ़ावा देने में उसकी निर्णायक भूमिका, 1925 के 13 मई के आंदोलन ने विशेषकर पूरे चीन में अनेक हड़तालों, बहिष्कारों और साम्राज्यवाद विरोधी प्रदर्शनों को जन्म दिया। इसे शंघाई की अंतर्राष्ट्रीय बस्ती की

एक प्रमुख भूमिका निभायी। कुछ विद्वानों के अनुसार, इस आंदोलन ने चीनी राजनीतिक जीवन में इतना आमूल परिवर्तन कर दिया कि इसे एक सच्चे क्रांतिकार दौर की शुरुआत करने वाला कहा जा सकता है। अंग्रेजी व्यापार इस आंदोलन के दौरान मज़दूर वर्ग के कार्यों के कारण ठप्प पड़ गया। इस क्षेत्र पर नियंत्रण रखने वाले क्वोमिनतांग ने हड़ताली मज़दूरों का समर्थन किया और उनके लिये धन की व्यवस्था की। धाम संघों, शंघाई वाणिज्य मंडल और (लघु व्यापार के प्रतिनिधि) नुक्कड़ व्यापारियों के संघों और शंघाई के महासंघ ने साम्यवादियों के इस आह्वान का जवाब दिया कि वे विरोध जताने के लिये खुल कर सामने आ जायें। इस व्यापक विविधता में सयुंक्त मोर्चे की राजनीतिक प्रकृति और संयुक्त मोर्चे की सफलता परिलक्षित हुई। आंदोलन का समर्थन करने वाले सौदागरों और व्यापारियों को विदेशी कारखानों में काम बंद हो जाने से आर्थिक लाभ हुआ क्योंकि इन कारखानों से उनकी होड़ थी। शंघाई के अलावा, युद्ध सामंतों के नियंत्रण वाले तमाम क्षेत्रों में एकजुटता की हड़तालें हुईं : विदेशी कंपनियों पर धावे बोले गये, विदेशी सामान का बहिष्कार किया गया, और राजनीतिक आंदोलन हुए। चीनी जनता के विभिन्न तबकों की एकता इन क्षेत्रों में उसी तरह व्यक्त हुई जिस तरह से शंघाई में हुई थी।

32.6 जन आंदोलन और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

क्रांतिकारी आंदोलन के विकास ने मज़दूरों में जागृति को भी जन्म दिया। कैंटन की नयी सरकार ने आधिकारिक तौर पर मज़दूरों के संघर्ष का समर्थन किया। अनेक नये मज़दूर संघ अस्तित्व में आये; बड़े शहरों में जन आंदोलन हुए; राजनीतिक मांगें आम हो गयी; किसान संघों की संख्या भी बढ़ी — ऐसा विशेषकर हुनान, पुर्वी क्वानतुंग और पश्चिमी क्यांगसी में कैंटन सरकार के नियंत्रण वाले क्षेत्रों में हुआ। लगान कम कराने के लिये संपत्ति स्वामियों के विरुद्ध एक आर्थिक संघर्ष छेड़ने के अलावा, किसानों ने अनाज के वितरण पर नियंत्रण का दावा भी पेश किया, कर देने से इंकार कर दिया और जमींदारों की सामाजिक और राजनीतिक सत्ता को भी चुनौती दी। सशस्त्र सेनाओं का गठन भी किया गया। क्वोमिनतांग ने एक किसान आंदोलन प्रशिक्षण संस्थान का प्रयोजन किया जहां माओ त्से-तुंग शिक्षक था। किसान आंदोलन के 1926 में आयोजित पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में दस लाख से भी अधिक सदस्यों का प्रतिनिधित्व हुआ। युद्ध सामंतों के गढ़, उत्तर, में भी किसान आंदोलन की प्रगति देखने में आयी। जून 1927 तक पूरे देश में कुल मिलाकर किसान संघों के लगभग 9,150,000 सदस्य थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन जनप्रिय आंदोलनों को आयोजित करने में क्योंकि कम्युनिस्ट ही सबसे अधिक सक्रिय थे इसलिए 1921-27 के बीच के दौर में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य संख्या और उसकी राजनीतिक शक्ति में भी जबरदस्त वृद्धि देखने में आयी। 1925 के 13 मई के आंदोलन के परिणामस्वरूप उसकी सदस्य संख्या छह महीनों में दस गुनी बढ़ गयी। नवम्बर 1925 में यह संख्या 10,000 हो गयी, जबकि उस वर्ष के प्रारंभिक महीनों में यह केवल 1,000 थी, जुलाई 1926 तक सदस्य संख्या बढ़ कर 30,000 हो गयी और 1927 के प्रारंभिक महीनों में यह 58,000 हो गयी। युवा कम्युनिस्ट लीग का गठन भी बदल गया। 1925 से पहले, 90 प्रतिशत सदस्य छात्र हुआ करते थे, लेकिन नवम्बर 1926 तक केवल 35 प्रतिशत छात्र रह गये।

अधिक संख्या मज़दूरों की हो गयी। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की जनता को लामबंद करने की क्षमता में भी जबरदस्त वृद्धि हुई, जब च्यांग काई शेक की क्रांतिकारी सेना ने अपना अभियान छेड़ा तो चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने ही उस सैनिक अभियान को एक ठोस जनाधार और राजनीतिक शक्ति देने के लिये 1,200,000 मज़दूरों और 800,000 किसानों को संगठित किया।

सोवियत लाल सेना के स्वरूप पर, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने क्रांतिकारी सेना में राजनीतिक कार्य की व्यवस्था लागू की, इस अभियान की अंततः सफलता में यह एक महत्वपूर्ण कारक था। क्रांतिकारी सेना अपने उत्तरी अभियान में जहां-जहां से निकली, उसे मज़दूरों और किसानों का सक्रिय समर्थन मिला। जब सेना ने कूच किया तो कैंटन-मेंगकांग हड़ताल में हिस्सा ले चुके मज़दूरों ने परिवहन, प्रचार और चिकित्सा एककों का आयोजन किया, हज़ारों लोगों ने सेना के साथ प्रयाण भी किया। हुनान और हुपे में भी मज़दूरों और किसानों ने इन प्रांतों पर कब्जे को संभव करने में काफी साथ दिया।

संयुक्त मोर्चे के दौरान क्रांतिकारी विकास अपने शीर्ष पर शंघाई के साहसिक मज़दूर विद्रोह में पहुंचा। मज़दूर विद्रोहों की शृंखला में यह तीसरा विद्रोह था जिसकी शुरुआत 21 मार्च 1927 को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में एक आम हड़ताल के आह्वान के साथ हुई। अगले दिन तक शहर क्रांतिकारियों के हाथों में था; और यह काम जनरल च्यांग काई शेक की सेना के शहर में घुसने या एक भी गोली चलने से पहले हो चुका था।

मज़दूरों ने रेलगाड़ियों को रोक दिया था, पानी और बिजली की आपूर्ति काट दी थी, पुलिस मुख्यालय, दूरभाष और तारघर पर कब्जा कर लिया था। समूचे मज़दूर वर्ग के समर्थन के बूते पर चीन के सबसे बड़े व्यापारिक और आद्यौगिक शहर को ठप्प कर दिया गया था। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने शंघाई के नागरिकों की एक विशाल रैली आयोजित की और शंघाई जनता की सरकार का निर्वाचन किया। अंततः, 24 मार्च, 1927 को नानकिंग को मुक्त करा लिया गया।

32.7 विघटन और दमन

संयुक्त मोर्चे के ढांचे के भीतर क्रांतिकारी आंदोलन के इस शीर्ष के परिणामस्वरूप 24 मार्च, 1927 को खुद मोर्चे का ही विघटन हो गया, इंगलैंड, अमेरिका, जापान और फ्रांस के युद्धपोतों ने नानकिंग पर बमबारी करके 2,000 सिपाहियों और नागरिकों को या तो मार दिया या घायल कर दिया। यह घटना चीनी क्रांति को कुचलने के लिए साम्राज्यवादी देशों के व्यापक स्तर के और संकल्पित हस्तक्षेप की शुरुआत की द्योतक थी।

दूसरी ओर, इस जनप्रिय आंदोलन के आगे बढ़ने के साथ-साथ, एक दक्षिणपंथी, प्रतिक्रियावादी शाखा भी क्वोमिनतांग के भीतर उभर आयी थी जो इन आंदोलनों के विरुद्ध थी। सन यात सेन की 1925 में मृत्यु हो चुकी थी, उसकी मृत्यु के बाद च्यांग काई शेक क्वोमिनतांग के सबसे महत्वपूर्ण नेता के रूप में उभरा। च्यांग काई शेक सेना का प्रधान सेनापति भी था, इसलिये उसकी राजनीतिक स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। उसने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और जनप्रिय आंदोलनों के विरोधियों का साथ देने का निर्णय लिया और दक्षिणपंथी शाखा का नेतृत्व संभाल लिया। 12 अप्रैल 1927 को उसने शंघाई के मज़दूर संघों पर अचानक हमला करवा दिया। मज़दूरों के हथियार जब्त कर लिये गये और हज़ारों की संख्या में उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। इसके बाद दूसरे क्षेत्रों में भी उसी प्रकार की पाशविक घटनाएं हुईं। हड़तालों पर पाबंदी लगा दी गयी, किसान संघों को समाप्त कर दिया गया, साम्यवादियों की धर-पकड़ शुरू हो गयी, पीकिंग स्थित सोवियत दूतावास पर हमला किया गया और सोवियत सलाहकारों को निकाल बाहर किया गया। 15 जुलाई, 1927 को, क्वोमिततांग ने क्वोमिनतांग से साम्यवादियों के औपचारिक निष्कासन की घोषणा कर दी। साम्यवादियों को पाशविक बल के आगे बाध्य होकर भूमिगत होना पड़ा। निहत्थी क्रांतिकारी सेनाएं इस मार-काट का जवाब नहीं दे पायीं। एक बार फिर साम्राज्यवादी शक्तियों और चीन के सामंती और पूंजीवादी तबकों के बीच एक राजनीतिक और आर्थिक सांठगांठ कायम हो गयी। क्वोमिनतांग के भीतर इस सांठगांठ की प्रतीक "दक्षिणपंथी शाखा" चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के लिये बहुत अधिक शक्तिशाली साबित हुई।

32.8 विघटन के कारण

संयुक्त मोर्चे के टूटने और इस चरण पर क्रांतिकारी सेनाओं के पराजित होने के कारण संयुक्त मोर्चे के अपने अनुभवों और उसके भीतर चलने वाली होड़ में निहित थे, संयुक्त मोर्चे की एक धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले क्वोमिनतांग के सदस्यों में केवल छोटे बूर्जुआ (निम्न मध्यम और मध्यम वर्ग) ही नहीं बल्कि जमींदार, शहरी सौदागर और वित्तदाता वर्ग के लोग भी शामिल थे जो क्रांतिकारी सेनाओं के बनाये क्रांतिकारी कार्यक्रम के विरुद्ध थे क्योंकि इस कार्यक्रम का अर्थ होता था विद्यमान सामाजिक व्यवस्था में बदलाव। वास्तव में, संयुक्त मोर्चे की आर्थिक सफलता से उन हताश तत्वों के छिपे विरोध सामने आ गये जिन्हें राष्ट्रीय एकीकरण के कार्यक्रम ने अस्थायी तौर पर एक कर रखा था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि संयुक्त मोर्चा कोई स्थिर गठबंधन नहीं था। इसके अलग-अलग घटक युद्ध सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एकजुट होते हुए भी सामाजिक मुद्दों पर अलग-अलग दृष्टिकोण रखते थे। इससे पहले संयुक्त मोर्चे में वामपंथी और साम्यवादी घटक मजबूत और विकासशील थे, लेकिन वे इतने मजबूत नहीं थे कि किसी आमूल सामाजिक बदलाव को सुनिश्चित कर सकते। जमीदारों और उद्योगपतियों के लिये मज़दूर और किसान साम्राज्यवादियों से उनको कम से कम अपने विशेषाधिकारों के लिये तो कोई खतरा नहीं था। इसलिये, जब मज़दूरों और किसानों के आंदोलनों ने जोर पकड़ा तो, उसी अनुपात में चीन के विशेषाधिकार प्राप्त तबकों का प्रतिनिधित्व करने वाली दक्षिणपंथी शाखा चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और मज़दूरों और किसानों के विरोध में साम्राज्यवादियों और युद्ध सामंतों के शिकंजे में आ गयी।

क्रांतिकारी आंदोलन के मुख्य आधार, बड़े शहर, अद्यमान संधियों की व्यवस्था के भी मुख्य आधार थे, क्रांति का विरोध भी शहरों में बहुत तगड़ा था। च्यांग काई शेक को समर्थन देने वाली सशस्त्र सेनाओं और सामाजिक सेनाओं का भी जमाव यहीं था। मज़दूरों की हड़तालों की सफलता ने ही चीनी बूर्जुआ वर्ग को अपने 1924 के गठबंधन की उपादेयता पर संदेह प्रकट करने को बाध्य कर दिया। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि 1924 के कार्यक्रम के पीछे चलने वाले राष्ट्रवादी आंदोलन ने उन सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के स्तंभों पर खुल कर प्रहार किया जिन पर विदेशी प्रभुत्व टिका हुआ था।

विघटन का कारण बनने वाला एक निर्णायक मुद्दा कृषि का मसला भी था, सामंतवाद के विरुद्ध ग्रामीण अंचलों में होने वाला संघर्ष एक कटु वर्ग संघर्ष था। जमीदारों ने किसान आंदोलन पर प्रहार करने में कोई देरी नहीं की और क्वोमिनतांग की अफसर कोर के वे तबके भी जल्दी ही उनके साथ हो लिये जो उसी सामाजिक वर्ग से थे, वे कृषि सुधारों के विरोध में खुल कर सामने आ गये। मज़दूरों और किसानों के विरोध करने या संघ बनाने के अधिकारों पर पाबंदी लगाने के लिये कानून लागू कर दिये। क्वोमिनतांग भी अब राजनीतिक जनतंत्र की पोषक नहीं रह गयी। कामगारों के आंदोलनों की संभावी शक्ति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ अपने संबंधों का इस्तेमाल करके, क्वोमिनतांग अब राजनीतिक दृष्टि से एक मजबूत स्थिति में था। उसके नियंत्रण में अच्छा खासा क्षेत्र था और सामंतों से मुक्त पश्चिमी ताकतों के साथ उसके संबंध भी थे। उसे लगा कि वह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी मज़दूरों और किसानों के बिना भी अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता था। क्वोमिनतांग भविष्य के घटनाक्रम को जो दिशा देना चाहता था उसमें सामाजिक व्यवस्था को बदलना शामिल नहीं था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क्वोमिनतांग के हाथों जनतांत्रिक शक्तियों पर प्रहार के साथ ही पहले संयुक्त मोर्चे का अंत हो गया। चीनी क्रांति को तो एक जबरदस्त धक्का लगा, लेकिन संघर्ष का यह अनुभव कीमती रहा। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को कई राजनीतिक सबक सीखने को मिले। असफलता के कारणों पर व्यापक बहस हुई और उनका विश्लेषण भी किया गया। सच में तो खुद असफलता ने ही क्रांतिकारी शक्तियों के पुनर्गठन और क्रांति के लिये एक नयी नीति के निर्माण की प्रक्रिया को गति दी।

बोध प्रश्न 2

1) लगभग 10 पंक्तियों में "संयुक्त मोर्चे" की उपलब्धियों की विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) संयुक्त मोर्चे का विघटन किस वर्ष हुआ?
   क) 1925
   ख) 1926
   ग) 1927
   घ) 1928

3) लगभग 10 पंक्तियों में संयुक्त मोर्चे की विफलता के कारणों का विवेचन कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

32.9 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संयुक्त मोर्चे का एक सामाजिक शक्ति के रूप में उदय उसके घटकों की रणनीति अधिक थी, वैचारिक गठबंधन कम। मज़दूर आंदोलन और बूर्जुआ वर्ग के बीच क्वोमिनतांग की पहल पर होने वाले संयुक्त प्रयासों का ध्येय एक ही था — और वह था युद्ध सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करना। इस तरह, संयुक्त मोर्चा साम्राज्यवादी शक्तियों और युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध, साम्राज्यवादियों और राष्ट्रवादियों का एक गठबंधन था।

राष्ट्रीय मुक्ति और एक जनतांत्रिक राज्यतंत्र की स्थापना इस संयुक्त रणनीति के महत्वपूर्ण तत्व थे, इस संयुक्त मोर्चे ने शुरुआत में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्वोमिनतांग दोनों गुटों के हितों को साधा। लेकिन, आगे चल कर चीन में अनेक और भी बड़े जनप्रिय आंदोलनों के विकास ने वास्तव में इस मोर्चे की बुनियाद को ही हिला कर रख दिया और इसके पीछे के समान उद्देश्य को भंग कर दिया। 1925-26 के बीच उठने वाले जनप्रिय आंदोलन कैंटन में क्रांतिकारी आधार की मजबूती से जुड़ गये और दक्षिणी सेनाओं ने युद्ध सामंतों के विरुद्ध जो विरोधात्मक रवैया दिखाया उससे इस गठबंधन के सांगठनिक ढाँचे का संकट और भी गहरा हो गया। क्रांतिकारी लहर की जीत ने दक्षिणपंथी शाखा की शक्तियों में असंतोष भर दिया। इस तरह, भीतर एक विघटन हुआ जो बाहर 1927 में वूहान सरकार के पतन के रूप में सामने आया, वास्तव में यह संयुक्त मोर्चे के पूरे सांगठनिक ढांचे के लिये ही घातक साबित हुआ। क्वोमिनतांग ने मज़दूरों, किसानों और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति एक दमनकारी नीति अपनायी।

32.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इस चरण में, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय मुक्ति था, कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रवाद के विकास के साथ और भी मजबूत हो कर उभरी। वे एक जनतांत्रिक आंदोलन के पोषक थे। देखिये उपभाग 32.2.1

2) ख

3) संयुक्त मोर्चे का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था युद्ध सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरोधी एक क्रांतिकारी संगठन के रूप में क्वोमिनतांग का उदय। पांच सदस्य प्रधान परिषद् के लिये चुने गयें और 24 का निर्वाचन केंद्रीय समिति के लिये हुआ। देखिये भाग 32.4

बोध प्रश्न 2

1) साम्राज्यवादी शक्तियों और युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चे के संघर्ष को अत्यधिक सफलता मिली। चीन में राष्ट्रवादी सेना का गठन एक अच्छी-खासी उपलब्धि थी क्योंकि इसने युद्ध सामंती शक्तियों से लड़ने में मदद की। देखिये भाग 32.5.
2) ग
3) कटु अनुभव और राजनीतिक दबाव ने संयुक्त मोर्चे की विफलता के लिये पर्याप्त कारण जुटा दिये। संगठन की एक धारा ने संयुक्त मोर्चे के क्रांतिकारी कार्यक्रमों के प्रति अपनी असंतुष्टि प्रदर्शित की। देखिये भाग 32.8

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 33 क्यागसी सोवियत अनुभव

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 पृष्ठभूमि
33.3 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा एक नयी रणनीति का विकास
33.4 उनके प्रारंभिक उपाय और क्रांतिकारी कार्य
33.5 क्यांगसी सोवियत गणतंत्र
33.6 क्यांगसी अड्डे में नया राजनीतिक संगठन
33.7 लाल सेना की भूमिका
33.8 राजनीतिक चेतना और सामाजिक प्रगति
33.9 शहरी वातावरण
33.10 पराजय
33.11 सारांश
33.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह समझ सकेंगे कि:

- क्यांगसी सोवियत ने क्या नीतियां अपनायी और ये नीतियां क्वोमिनतांग की नीतियों से किस प्रकार भिन्न थी,
- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने नेतृत्व में एक देशव्यापी किसान आंदोलन चलाने के लिये क्या रणनीति अपनायी,
- किस प्रकार क्वोमिनतांग और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच होने वाला संघर्ष दो अलग-अलग समाजों के निर्माण के लिये होने वाला संघर्ष था,
- क्यांगसी सोवियत ने एक जनतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था कायम करने के लिये क्या प्रयास किये, और
- क्यांगसी सोवियत की विफलता के क्या कारण थे।

33.1 प्रस्तावना

जिस ढंग से 1927 में संयुक्त मोर्चे का विघटन हुआ उससे यह बिल्कुल सुनिश्चित हो गया था कि आने वाले वर्षों में चीनी राजनीति का विकास दो बिल्कुल अलग-अलग और स्पष्ट धाराओं में होगा। संयुक्त मोर्चे के दौर में क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों ही राजनीतिक बदलाव और सामाजिक रूपांतरण के पक्ष में थे। विघटन के बाद, नानकिंग स्थित चीनी सरकार का प्रतिनिधि, क्वोमिनतांग, स्थापित व्यवस्था का एक माध्यम बन गया, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी क्रांतिकारी बदलाव के लिए संघर्ष करती रही, अमूल कृषि सुधार इस बदलाव का प्रमुख आधार था, इसके अतिरिक्त उसने एक रणनीति अपनायी जिसमें उन विशिष्ट क्षेत्रों या अड्डों पर नियंत्रण शामिल था जहां उसकी नीतियों को लागू किया जा सकता था। इसलिये, व्यवहारिक दृष्टि से जैसा स्वाभाविक था, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नियंत्रण वाले क्षेत्रों का सामाजिक इतिहास नानकिंग स्थित क्वोमिनतांग के नियंत्रण वाले क्षेत्रों से भिन्न था। 1947 में समूचे चीन के साम्राज्यवादी प्रभुत्व से मुक्त हो जाने तक यही स्थिति रही। मुक्ति संघर्ष के विभिन्न चरणों में चीन में साम्यवादी आंदोलन का भी विकास होता रहा। राष्ट्रीय मुक्ति और साम्यवादी विजय दो जुड़वां उपलब्धियां थीं, और साम्यवादियों ने जैसा सोचा था उसी के अनुसार सामाजिक रूपांतरण राष्ट्रीय मुक्ति के साथ-साथ

ही आया। 1928 से 1932 तक साम्यवादियों के नियंत्रण में रहने वाला एक लाल "अड्डा" या क्षेत्र था क्यांगसी सोवियत। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों के क्रियान्वयन की दिशा में होने वाला यह पहला प्रयोग था। चीनी जनता को इससे जो राजनीतिक अनुभव हासिल हुआ और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने इससे जो सबक सीखे उनके कारण इसका अपना महत्व है।

इस इकाई में हम क्यांगसी सोवियत अड्डे के निर्माण की पृष्ठभूमि पर विचार करेंगे, जिसमें निम्नलिखित बातें शामिल हैं:

- क्वोमिनतांग के साथ पहले संयुक्त मोर्चे से चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को मिले सबक,
- मज़दूर और किसान आंदोलन, और
- चीनी बूर्जुआ वर्ग की स्थिति में सापेक्ष बदलाव।

इस संदर्भ में इस इकाई में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर इस अनुभव को लेकर चलने वाली बहस पर भी विचार किया गया है। इस बात पर भी विचार किया गया है कि इन बहसों ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के राजनीतिक दृष्टिकोण में आने वाले बदलाव में किस प्रकार योगदान दिया।

इस इकाई में इस बात पर महत्व दिया गया है कि क्यांगसी सोवियत की नीतियां क्या थीं और वे क्वोमिनतांग के नियंत्रण वाले क्षेत्रों में क्वोमिनतांग की नीतियों से किस प्रकार भिन्न थीं।

इस इकाई में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों में विद्यमान जनप्रिय तत्वों की विवेचना भी की गयी है। इसके साथ क्यांगसी सोवियत अनुभव के सामाजिक आधार के अंतर को भी रेखांकित किया गया है। क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच चलने वाले संघर्ष में दो विभिन्न प्रकार के समाजों के निर्माण के लिए था, अर्थात् एक ऐसा चीन जो:

DIKSHANT IAS

- स्थापित व्यवस्था को जैसा का तैसा रखते हुए एकीकृत, स्वतंत्र और स्वाधीन होगा, और दूसरा
- स्थापित व्यवस्था में पांव जमाये निहित स्वार्थों के विरुद्ध विरोध कर देगा।

Call us @7428092240

क्यांगसी सोवियत इनमें से दूसरे विकल्प का प्रतीक था। इस इकाई में उसकी पराजय के विषय में और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने भविष्य के लिये जो सबक सीखे उनकी भी चर्चा की गयी है।

33.2 पृष्ठभूमि

1927 में वूहान की वामपंथी सरकार की सत्ता ढह गयी परन्तु सैन्यवादियों की सत्ता उत्तरी चीन में जैसी की तैसी बनी रही। फरवरी 1928 में दूसरे उत्तरी अभियान के बाद जाकर ही क्वोमिनतांग अपना नियंत्रण बना पाया, पीकिंग का नाम बदल कर बीजिंग रख दिया गया, और केंन्द्रीय सरकार नानकिंग में कायम कर दी गयी। क्वोमिनतांग का राजनीतिक और सामाजिक रूप काफी बदल गया। 50 प्रतिशत सैनिकों के अतिरिक्त उसमें 21 प्रतिशत अधिकारी थे और 10 प्रतिशत भूस्वामी। संगठन के भीतर जनतांत्रिक कार्यप्रणाली समाप्त हो गयी। क्षेत्रों पर इसका नियंत्रण सैनिक शक्ति, और चीन स्थित पश्चिमी राजनीतिक और सैनिक तंत्र और युद्ध सामंतों जैसी क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियों के साथ समझौते पर आधारित था। जहां तक विचारों का सवाल है, च्यांग काई शेक खुले आम पारंपरिक कन्फ्यूशियसी गुटों के पक्ष में बोल रहा था। जिसका सीधा मतलब यह था कि वर्तमान स्थापित व्यवस्था समाज में जारी रहे। इस समय सन यात सेन के बुनियादी सिद्धांतों की व्याख्या संयुक्त मोर्चे के दौर की तुलना में कहीं अधिक रूढ़िवादी ढंग से हो रही थी, और फासीवादी इटली को अनुसरणीय उदाहरण माना जा रहा था।

अब मुख्य शत्रु साम्यवादियों को समझा जा रहा था क्योंकि मज़दूरों और किसानों के आंदोलन को बेदर्दी के साथ दबाया गया। उदाहरण के लिये:

- जनवरी और अगस्त 1928 के बीच एक लाख मज़दूर और किसान मार डाले गये,
- मज़दूरों ने संयुक्त मोर्चे के दौर में जो आर्थिक लाभ और जनतांत्रिक अधिकार हासिल किये थे वे उनसे छीन लिये गये,

- उनके पारिश्रमिक में जबरदस्त कटौती कर दी गयी,
- काम के घंटे बढ़ा दिये गये और काम की स्थितियाँ बदतर हो गयीं, और
- साम्यवादियों के नेतृत्व वाले श्रमिक संघों पर पाश्विक प्रहार किये गये और उन्हें भूमिगत हो जाने को बाध्य कर दिया गया।

इस दमन के बावजूद मज़दूरों की हड़तालें चलती रहीं। लेकिन, वे केवल आर्थिक मुद्दों तक सीमित, असंगठित और व्यापक तौर पर रक्षात्मक ढंग की रही। संयुक्त मोर्चे के दौर की तुलना में, उनकी गतिविधियां दबी दबी सी रही।

यही हाल किसानों का भी रहा। क्वांगतुग, हूनान, हूये और क्यांगसी के किसान आंदोलन पहले ही एक जनव्यापी आंदोलन और सशस्त्र संघर्ष का रूप धारण कर चुके थे, कुछ क्षेत्रों में अब किसानों ने अपनी सरकारें कायम करने की कोशिश भी की, लेकिन जमींदारों के संगठित आतंक का दबाव बने रहने के कारण आंदोलन बहुत आगे नहीं बढ़ पा रहा था। इसके अतिरिक्त चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्रांतिकारी शक्तियों की शक्ति विभिन्न जनपदों में अलग-अलग होने के कारण किसान आंदोलन का विकास प्रत्येक जगह समान रूप से नहीं हो रहा था।

साम्यवादियों के दमन के बावजूद, क्वोमिनतांग का शासन भी अस्थिर ही था। गृह युद्ध और स्थानीय संघर्ष की स्थिति निरंतर बनी रही। प्रथम विश्व युद्ध के बाद विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों ने जो समझौते किये थे उनमें बाजारों की विकट समस्याओं के कारण पहले ही तनाव बना हुआ था। पूर्व, विशेषकर चीन, का बाजार किसी एक विदेशी ताकत के नियंत्रण में नहीं था, और वह 1927 के बाद विभिन्न ताकतों के बीच झगड़े तेज होने का कारण बना। चीनी युद्ध सांमत और क्वोमिनतांग इन झगड़ों में पड़े बिना नहीं रह पाये, अगस्त 1927 और 1930 के बीच, छह बड़े गृह युद्ध लड़े गये। च्यांग काई शेक अंततः विजेता के रूप में उभरा क्योंकि उसके पास अधिक श्रेष्ठ सेना और अमेरिका का समर्थन था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लेकिन चीन के स्वाभाविक हितों का समझौता करने वाली ये राजनीतिक शक्तियाँ जनता से पूरी तौर पर अलग-थलग पड़ गयी थीं। उनके शासन और चीनी जनता के हितों के बीच के अंतर्विरोध प्रतिदिन प्रखर होते जा रहे थे, संयुक्त मोर्चे ने राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों का जो पुनर्गठबंधन किया था उसमें एक नये ध्रुवीकरण की स्थिति बन रही थी। यह नया ध्रुवीकरण क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच, साम्राज्यवादी शक्तियों और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वाले मज़दूरों और किसानों के बीच विकट राजनीतिक संघर्ष के रूप में परिलक्षित हो रहा था। जिन साम्यवादियों की धर-पकड़ हुई, जिन्हें सजा दी गयी और जिन्हें एक संगठन के रूप में भूमिगत होना पड़ा, वे ही साम्यवादी अब मज़दूर वर्ग और शहरों से कट गये थे। उन्हे दूर-दराज के और पहाड़ी देहातों में शरण लेने को बाध्य कर दिया गया। इसी पृष्ठभूमि में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी शक्ति वापस अर्जित की. संघर्ष के तरीकों को बदला और उसके बाद सोवियत ''लाल'' अड्डे को कायम किया।

33.3 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा एक नयी रणनीति का विकास

सन् 1927 में कैंटन और शंघाई में मज़दूर वर्ग के विद्रोहों की पराजय के बाद, और संयुक्त मोर्चे के विघटन के साथ, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने यह निष्कर्ष लिया कि किसान के बीच किया गया काम अत्यधिक फलदायी साबित हुआ था। हूनान और क्वोमिनतांग की सफलताओं को अपना आधार बनाते हुए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने ''किसान क्रांति'' की नयी रणनीति को अपनाया। उसका सोचना था किः

- रूस के विपरीत, चीन की क्रांति देहातों से शहरों की ओर जायेगी, शहरों से देहातों की ओर नहीं,
- दूसरी साम्यवादी पार्टियों के विप्रीत, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा पार्टी न होकर किसानों की पार्टी होगी, और
- चीन में राष्ट्रीय मुक्ति और सामाजिक रूपांतरण का आधार किसानी राष्ट्रवाद होगा।

संक्षेप में, यह नयी रणनीति चीन में किसान को क्रांति की अग्रणी शक्ति के रूप में स्वीकार करती थी। उस संबंध में यह तर्क दिया जाता है कि संयुक्त मोर्चा ''मास्को अनदायी'' था (क्योंकि यह सोवियत नेतृत्व और

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की सलाह पर था) और नयी रणनीति "मास्को अनुदायी" नीति से अलग होने की प्रतीक थी। यह क्रांति का एक विशिष्ट "चीनी मार्ग" था। किसान वर्ग पर माओ त्से-तुंग के लेखों, विशेषकर 1926 में लिखित "हूनान में किसान आंदोलन पर रपट", को इस नयी नीति का आधार बताया जाता है।

फिर भी, स्थिति इतनी सरल नहीं थी। पहले तो, प्रत्येक नया क्रांतिकारी संघर्ष किसी पूर्ववर्ती संघर्ष की नकल नहीं हो सकता, और 1927 से पहले चीनी साम्यवादी या सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी भी ऐसा नहीं सोचते थे। इसके अतिरिक्त, "मास्को अनुयायी नीति" या "चीनी मार्ग" जैसा कोई स्पष्ट विभाजन भी नहीं था। चीनी साम्यवादी जिन सवालों या मसलों पर बहस करते थे वे वही मसले थे जिन पर रूसी साम्यवादियों ने अपने संघर्ष के दौरान बहस की थी। इनमें से कुछ मसले इन मुद्दों से संबंधित थे:

- अंतर्राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था या ढांचे में उनके देश की भूमिका और स्थान,
- उनके देशों में राज्य का वर्ग चरित्र
- देश में विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों का यह संबंध और संतुलन,
- पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा उनके समाजों का पिछड़ापन,
- उनके क्रांतिकारी आंदोलन पर उसके विभिन्न चरणों में इस पिछड़ेपन के परिणाम, और
- इस मुद्दे पर उनके विचार-विमर्शों में किसान मज़दूर गठबंधन का मसला एक महत्वपूर्ण पहलू होना।

जब चीनी साम्यवादी (या सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी भी) चीन में क्रांतिकारी बदलाव के लिये अपने कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करते थे तो रूसी अनुभव की भिन्नताओं और समानताओं पर गौर करते थे — ठीक वैसे ही जैसे रूसी साम्यवादियों ने उससे पहले अपनी क्रांति करते समय रूस और पश्चिमी यूरोपीय देशों के बीच भिन्नताओं और समानताओं पर गौर किया था। या, ठीक वैसे ही, जैसे जर्मनी में पूंजीवादी विकास के अध्येताओं ने इंगलैंड और जर्मनी में आर्थिक विकास के बीच भिन्नताओं और समानताओं पर गौर किया था। जैसे इंगलैंड पूंजीवादी विकास का अध्ययन करने के लिए एक पक्का आदर्श था, ठीक उसी तरह सोवियत रूस सफलतापूर्वक समाजवादी क्रांति करने वाला पहला और एकमात्र देश था। इसलिए, वह उन सभी के लिये एक आदर्श था जिनका अंतिम लक्ष्य अपने देशों में समाजवाद का निर्माण करना था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चीनी साम्यवादियों ने यह तो गौर किया ही कि रूसी अनुभव की तरह उनके देश का सामान्य पिछड़ापन एक कमजोर बूर्जुआ वर्ग का कारण बना, साथ ही उन्होंने यह देखा कि उनके पास साथ देने वाला सोवियत संघ जैसा एक विशाल देश था जबकि रूस अपनी क्रांति के समय अकेला ही था। उन्होंने यह भी देखा कि रूस तो अपनी क्रांति से पहले एक साम्राज्यवादी देश था, जबकि चीन एक उपनिवेश था। इन दो महत्वपूर्ण कारकों ने क्रांति की उनकी रणनीति में नये आयाम जोड़े।

फिर भी, चीनी साम्यवादियों ने क्वोमिनतांग के साथ संयुक्त मोर्चे के अपने अनुभव से जो सबक लिये वे उनकी राजनीतिक गतिविधि की भावी दिशा तय करने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारक रहे।

उन्होंने यह महसूस किया कि क्रांति के पहले-जनतांत्रिक-चरण, अर्थात् राष्ट्रीय एकीकरण और जनतंत्र के लिये होने वाले संघर्ष, का नेतृत्व वर्ग के हाथों में ही होना चाहिये, माओ त्से तुंग ने हूनान आंदोलन पर अपनी रपट में किसान वर्ग के निर्णायक, और पूरी तौर पर आवश्यक, रूप से इसमें शामिल होने की बात कही। साथ ही माओ ने उन अनेक सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक और धार्मिक बेड़ियों को भी रेखांकित किया जो किसानों को अंधकार और पिछड़ेपन से जकड़े हुए थीं। माओ ने भी यह समझ लिया था कि बेहद दमन के बावजूद मज़दूर वर्ग के पास अपने राजनीतिक पिछड़ेपन को दूर करने के कहीं आसान अवसर थे, क्योंकि उनके पास शहरों में संगठन के लिये नये विचारों और अवसरों के संपर्क में आने के लिये कहीं अनुकूल स्थितियाँ थीं।

इसलिये, यह मान लेना गलत होगा कि माओ किसान वर्ग के अग्रणी शक्ति होने की बात सोचता था, चीनी साम्यवादी भी यह महसूस करते थे कि जहां तक समाजवाद के उनके अंतिम लक्ष्य का संबंध था, किसान वर्ग निजी संपत्ति की समाप्ति के लिये होने वाले किसी भी आंदोलन में नेतृत्वकारी भूमिका नहीं ले सकता था। उसका बहुत अधिक दांव पर था। और उद्योग के क्षेत्र में निजी संपत्ति की समाप्ति करने में जितना समय और संघर्ष लगता था, उससे कहीं लंबा समय और संघर्ष संपत्ति के समूहीकरण की समूची प्रक्रिया में लगने वाला था। ऐसा इसलिये था क्योंकि मज़दूर वर्ग का संपत्ति पर कोई दावा नहीं था। उसका दावा तो

केवल उसकी मेहनत के पूरे फल पर था। इसलिये, जब चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने किसान वर्ग की ओर अपना ध्यान मोड़ा तो, वह अपनी पहले की अपेक्षा में केवल भूल-सुधार कर रही थी : हूनान के प्रयोगों के समय तक चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने केवल मज़दूर वर्ग पर ही ध्यान केंद्रित किया था।

संयुक्त मोर्चे के दौर के बाद के समय में जो किसान वर्ग पर जोर दिया गया उसका आधार वास्तव में खुद संयुक्त मोर्चे के अनुभव से आने वाली मान्यता थी, यह बात महसूस की गयी किः

- अकेला मज़दूर वर्ग इतना मज़बूत नहीं था कि वह ज़नतांत्रिक क्रांति कर पाता, और
- बूर्जुआ वर्ग की डांवाडोल स्थिति को देखते हुए मज़दूर-किसान गठबंधन जनतंत्र और सामजिक रूपांतरण की एक मात्र बुनियाद थी — जैसा कि रूस में हुआ था।

वास्तव में, चीन में सामंतवाद-विरोधी कामों में जमींदारी के विरूद्ध, और कृषि सुधार के पक्ष में, होने वाले संघर्ष की जो स्थिति थी उसमें क्रांति की जीत केवल तभी संभव हो सकी जब किसानों को क्रांतिकारी गठबंधन के एक भिन्न घटक के रूप में मिलाया जा सका।

यह भी महसूस किया गया कि अब के बाद क्रांतिकारी संघर्ष एक सशस्त्र संघर्ष होना चाहिये। क्रांतिकारियों को 1927 में इसलिये पराजय का मुंह देखना पड़ा था क्योंकि उनके पास अपनी सशस्त्र सेनाएं नहीं थीं, क्रांतिकारियों के शत्रु वर्ग में अब केवल पुराने युद्धनेता ही नहीं थे बल्कि क्वोमिनतांग के सैनिक भी थे, इसलिये अगर इस शत्रु को पराजित करना था तो यह महत्वपूर्ण था कि एक नयी जन सेना का गठन किया जाये। इसका गठन मज़दूरों और किसानों में से ही किया जा सकता था, लेकिन प्राथमिक तौर पर किसानों में से, जो चीन में बहुसंख्यक थे, वास्तव में, कृषि सुधार की गतिशीलता के लिये किसान वर्ग पर निर्भरता आवश्यक थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसके अतिरिक्त, चीन के अभी तक विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों और युद्धनेताओं के प्रभाव क्षेत्रों में बंटे होने के कारण, भौगोलिक क्षेत्रों, और इन क्षेत्रों में शत्रुओं के अलग-थलग होने, के संदर्भों में यह संघर्ष अक्सर स्थानीय रंग ले लेता था। राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल केवल स्थानीय स्तर पर और विभिन्न स्थानों में इन संघर्षों के सफल या असफल होने कि स्थितियों में ही हो सकता था। इस तरह के संघर्ष की तार्किकता को देखते हुए, हड़ताल की जगह छापामार युद्ध राजनीतिक कार्यवाही का प्रमुख रूप हो गया।

इसके परिणामस्वरूप विभिन्न कथित "लाल अड्डों", "सोवियत अड्डों" "मुक्त क्षेत्रों" और "क्रांतिकारी अड्डों", की स्थापना हो गयी। पहले लाल अड्डे दक्षिण में, दो या तीन प्रांतों की सीमाओं के भीतर दूर-दराज के और लगभग अगम्य क्षेत्रों में कायम हुए। पहले पहल तो, इन अड्डों को केवल सरकारी नियंत्रण के क्षेत्रों से दूर रह कर एक कार्यसाधन, जीवित रहने और शक्ति फिर से प्राप्त करने के एक साधन के रूप में देखा गया। लेकिन बाद में इसने एक नीति का रूप ले लिया जिसने अंततः 1949 में समूचे चीन का साम्यवादियों के नियंत्रण में आना संभव कर दिया।

संघर्ष के इन नये तरीकों पर रातों रात सहमति नहीं बन गयी। ये तरीके तो 1924-1927 के दौरान होने वाले मज़दूरों और किसानों के आदोंलनों के, और पराजय के कारणों के क्रमबद्ध विश्लेषण का परिणाम थे। साम्यवादियों को देहातों और शहरों में वर्ग संबंधों का कहीं अधिक व्यापक विश्लेषण करना पड़ा। उन्हें निम्नलिखित बातें भी सीखनी पड़ीं:

- बूर्जुआ वर्ग के विभिन्न तबकों में भेद करना,
- अपनी नीतियों के लिये कहीं अधिक व्यापक समर्थन बनाना,
- व्यापक समर्थन को ध्यान में रखते हुए नीतियां बनाना, इत्यादि।

उन्होंने निम्न बिदुंओं पर व्यापक बहस की:

- मज़दूर वर्ग और किसान वर्ग के बीच गठबंधन का ठीक-ठीक क्या रूप होना चाहिये,
- शहरों और देहातों में अपनाये जाने वाले संघर्ष के विभिन्न रूप, और
- विभिन्न चरणों में मज़दूर वर्ग और किसान वर्ग का सापेक्ष महत्व।

33.4 उनके प्रारंभिक उपाय और क्रांतिकारी कार्य

1927 में क्वोमिनतांग द्वारा मज़दूरों और किसानों के दबाए जाने के उपरान्त माओ ने अक्तूबर 1927 में चिंग कांगशान पर्वतों में एक क्षीण सेना की सहायता से पहला क्रांतिकारी अड्डा स्थापित किया। क्रांतिकारी सेना का पुनर्गठन "मज़दूरों और किसानों की प्रथम डिविजन" के रूप में किया गया।

इस सेना के अन्तर्गत कुछ शहरों में हो रहे दमन से बचे मज़दूर, कुछ युवा खान मज़दूर, रेल कर्मचारी, स्थानीय किसान और कुछ ऐसे सैनिक शामिल थे जो क्वोमिनतांग सेना को छोड़ आए थे।

यह सेना एक नये किस्म की सेना थी और भाड़े के सैनिकों से भिन्न थी। इस का समर्थन ऐसे लड़ाकू किसानों के द्वारा किया जाता था जिनकी सहायता से सेना एवं आम जनता के बीच सम्पर्क बनाये रखा जा सका। नयी सेना को एक ऐसे सिद्धान्त के अनुसार संगठित किया गया जिसके अन्तर्गत आम जनता को सेना का मूल आधार एवं समर्थक बनना था। इसी ने ही "लाल क्षेत्रों" के राजनीतिक तन्त्र के मूलभूत आधार का निर्माण किया था। सूचना, भोजन की आपूर्ति, स्वच्छता बनाये रखना तथा घायलों की देखभाल करना जैसे आदि कार्यों को स्थानीय जनता के द्वारा ही किया जाता था। भूमि वितरण के जिन उपायों को अपनाया गया उनके फलस्वरूप किसानों का समर्थन प्राप्त हो सका। इस तरह के अनुभव के कारण सैनिकों एवं कृषकों के बीच राजनीतिक चेतना और अधिक सुदृढ़ हुई और इस प्रक्रिया के कारण जहाँ एक ओर चीनी जनता के बीच नवीन विचारों तथा अधिक विकसित परिकल्पना को लागू करने में मदद मिली वहीं इन दोनों को सामाजिक रूपांतरण करने एवं साम्यवादियों के प्रभाव क्षेत्रों को बढ़ाने के लिये भी शामिल किया जा सका। इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सशस्त्र विद्रोह को किसान आंदोलन के साथ एकीकृत करने में सहायता मिली। इसको साकार करने में चू-तेह ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लाल क्षेत्रों की स्थापना के लिये चार कार्यों को निर्णायक माना गया था:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- कृषि क्रांति को,
- पीपुल्स आर्मी को शक्तिशाली बनाने को,
- मज़दूर एवं किसान सरकार की स्थापना करने को, और
- कंम्युनिस्ट पार्टी के प्रसार को।

इन सभी कार्यों को पूरा करने का काम चिंग क्यांगशान पहाड़ियों के क्षेत्र में किया गया। रूसी मॉडल के अनुरूप मज़दूरों एवं किसानों के सोवियतों का गठन किया गया। इसके अतंर्गत:

- एक जनसभा में मज़दूरों एवं किसानों की सरकार का चुनाव किया गया और सभी भूमि का अधिग्रहण कर उसे पुनः वितरित किया गया,
- मज़दूरों तथा किसानों की एक सशस्त्र सेना का गठन किया,
- राजनीतिक शिक्षा व्यवस्था की गई, और
- पार्टी संगठन का निर्माण भी किया गया।

इस तरह पीछे हटने के समय को क्रांतिकारी तैयारियां एवं आक्रमण के चरण में रूपांतरित कर दिया गया।

अभी भी कम्युनिस्टों पर कड़ा दबाव बना हुआ था। 1928-29 की सर्दियों के उपरान्त क्रांतिकारियों को चिंग कांगशान की पहाड़ियों को छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। क्वोमिनतांग (के.एम.टी.) सेना ने नाकेबन्दी करके पीछे हटती सेना के लिये आवश्यक खाद्य सामग्री की आपूर्ति में रूकावट डालकर गम्भीर समस्या पैदा की। लाल सेना ने ऐसे क्षेत्रों की ओर कूच कियां जहाँ पर पहले से ही किसान आंदोलन विकसित थे और जिससे उनको मजबूत सामाजिक समर्थन उपलब्ध हो सकता था। 1930 की गर्मियों तक इस तरह के 15 क्षेत्र केन्द्रीय चीन में स्थापित हो चुके थे। चीन की सरकार के लिये इन दूर-दराज के क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना कोई सरल कार्य न था और ये क्षेत्र बड़ी शक्तियों के सैनिक एवं वित्तीय प्रभावों से मुक्त थे। इन सभी में क्यांगसी क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण था और चीन का प्रथम सोवियत गणतन्त्र बना।

33.5 क्यांगसी सोवियत गणतन्त्र

इस तरह के प्रयोग के लिये क्यांगसी क्षेत्र का चुनाव अचानक ही नहीं किया गया था। क्यांगसी की अर्थव्यवस्था सामन्ती थी और जमीदारों की सशस्त्र सेनायें अन्य किसी दक्षिणी प्रांत की अपेक्षा काफी कमजोर थीं। यह अपेक्षाकृत किसी तरह के साम्राज्यवादी प्रभाव से मुक्त था और किसी भी क्षेत्र की तुलना में यहां का किसान आंदोलन काफी व्यापक था।

इस नये सोवियत गणतन्त्र का गठन नवम्बर 1931 में किया गया और माओ त्से-तुंग इसका अध्यक्ष बना। इसको "सर्वहारा तथा किसानों की जनवादी डिक्टेटरशिप" कहकर परिभाषित किया गया। इसके अस्तित्व का मूलभूत आधार कृषि क्रान्ति थी।

क्यांगसी सोवियत की कृषि नीति का आधार किसानों का वह वर्गीकरण था जिसका विश्लेषण माओ ने अपने हुनान प्रांत के अध्ययन में किया था। माओ के "चीन में लाल राजनीतिक शक्ति कैसे विद्यमान है" "चिंगकांग के पर्वतों में संघर्ष" और "एक चिंगारी क्रान्ति की आग को प्रज्जवलित कर सकती है" जैसे लेखों में चीनी कृषि क्रान्ति, इसकी वर्ग संरचना, तथा इस रणनीति का विश्लेषण किया गया था जिसका अनुसरण चीन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने किया।

ग्रामीण-चीन की वर्ग सरंचना का विश्लेषण करते हुए माओ ने स्पष्ट किया कि क्रान्ति के मुख्य शत्रु जमींदार थे क्योंकि कृषि की सामन्ती व्यवस्था तथा सामन्ती सम्पति व्यवस्था को बनाये रखने के लिये वे प्रत्यक्ष तौर पर दावेदार थे। ये ग्रामीण परिवारों के मात्र 10 प्रतिशत थे और इनके पास आधे से कुछ अधिक भूमि थी तथा ये ही अधिकतर ऐसे ग्रामीण थे जो खेती नहीं करते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग्रामीण मज़दूरों के साथ-साथ किसानों को धनी, मध्यम एवं गरीब किसानों की श्रेणी में रखा जा सकता था।

- धनी किसान ऐसे किसान थे जो कृषि कार्यों की व्यस्तता के समय परिवार से बाहर के लोगों को मजदूरी पर रखते थे और उनके पास औसतन मध्यम किसान की अपेक्षा कुछ अधिक भूमि होती थी।
- मध्यम किसान वे थे जो सामान्य वर्ष में अपनी आवश्यकताओं को किसी को मज़दूरी पर रखकर या फिर दूसरे के यहाँ पर कार्य को करके पूरा करते थे।
- गरीब किसान परिवार वे थे जो अपने भरण-पोषण के लिए एक या एक से अधिक सदस्य की मज़दूरी पर निर्भर करते थे और ऐसे किसानों के पास मध्यम किसानों की अपेक्षा कम भूमि होती थी।

गरीब किसान सामान्यतः कर्ज के बोझ से दबे होते थे जबकि मध्यम किसानों पर मौसमी कर्ज होता था और धनी किसानों पर अस्लामी था कभी-कभी कर्ज होता था। इस तरह ये ऐसी विशेषताएं थीं जिनके आधार पर क्यांगसी प्रयोग के दौरान कम्युनिस्टों ने अपनी कृषि नीति का निर्धारण किया। इसी विशेषता के आधार पर उन्होंने गरीब किसानों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया और उन्होंने ही कम्युनिस्टों के प्रति सबसे अधिक उत्साह दिखाया तथा ये गरीब किसान ही चीनी क्रान्ति की आधारशिला बने।

नवम्बर 1931 में चीनी सोवियतों के प्रथम सम्मेलन में कृषि कानून का निर्माण एंव उसको पारित किया गया। इससे उन नीतियों में बदलाव दिखायी पड़ता है जिनका अनुसरण 1926-28 के वर्षों में उस समय किया गया था जबकि माओ त्से तुंग ने जमींदारों सहित धनी किसानों की भूमि पूर्ण रूपेण तथा "समझौता विहीन" अधिग्रहण करने का आह्वान किया था। कुओमिनतांग के साथ संयुक्त मोर्चे के भंग हो जाने एवं पूंजीपति वर्ग के द्वारा इसके साथ सहयोग करने के कारण, माओ ने यह महसूस किया कि कम्युनिस्टों के इस अलगाव की भरपाई धनी किसानों के साथ सहयोग करने से पूरी की जा सकती थी और इस सहयोग को इस वास्तविकता के साथ प्राप्त किया गया कि निर्धन किसानों ने आंदोलन को मुख्य आधार उपलब्ध कराया था। किसानों ने एक वर्ग के रूप में क्रान्तिकारी भूमिका का निर्वाह किया जो पूंजीपति वर्ग नहीं कर सकता था।

1931 के कृषि कानून द्वारा केवल जमींदारों की भूमि का अधिग्रहण किया जा सका। इस भूमि अधिग्रहण को बगैर किसी मुआवजे के किया गया। ये सोवियत किसानों एवं सैनिकों के निर्वाचित संगठन थे और उन्होंने निर्धन तथा मध्यम किसानों को अधिग्रहीत की गई भूमि का वितरण किया।

भूमि का पुनर्वितरण समान वितरण के आधार पर किया गया और इस वितरण का आधार किसान परिवार के सदस्यों तथा श्रम पर आधारित था। जो भूमि मंदिर एवं अन्य इस तरह की धार्मिक संस्थाओं से संबंधित थी उसको भी किसानों के बीच वितरित किया गया। धनी किसान को इस शर्त पर कुछ भूमि प्रदान की गई कि वह इस भूमि पर कार्य बिना किसी मज़दूर के करेगा और क्रन्तिकारियों के विरुद्ध होने वाली किसी भी तरह की गतिविधि में भाग नहीं लेगा। ऐसे धनी किसानों के लिये राहत की व्यवस्था की गई जो अपनी अधिग्रहित की गई भूमि को वापस खरीदना चाहते थे या ऐसे मध्यम किसानों के लिये भी जो अपनी जोत को और बढ़ाना चाहते थे। अन्ततः यदि किसानों का बहुमत इसको स्वीकार कर लेता है तब समान वितरण के नये कृषि सुधार को लागू किया जा सकता था।

यह महसूस किया गया कि ऐसा मध्यम किसान जो दूसरों का शोषण नहीं करता – वह भूमि के पुनर्वितरण की प्रक्रिया में विशेष रुचि रखता था क्योंकि इससे उसे कुछ और भूमि प्राप्त होने की सम्भावना थी। क्योंकि इस किसान का शोषण एवं दमन साम्राज्यवादी शक्तियों, जमींदारों एवं पूंजीपतियों के द्वारा किया जाता था इसलिये इस वर्ग को राजनीतिक तौर पर शिक्षित करने पर बल दिया गया जिससे वह जनवादी क्रान्ति की शक्तियों का समर्थन करने लगे। यही कारण था कि कृषि क्रान्ति की नीति के अन्तर्गत मध्यम किसानों के साथ एकता करने पर बल दिया गया। इसके अतिरिक्त जब भूमि के पुनर्वितरण को पूरा कर दिया जायेगा तब ग्रामीण अंचलों में वह भी साधारण जनता का एक भाग हो जायेगा। इस तरह की कृषि क्रांति से यह लाभ होगा कि यह मध्यम किसानों के हितों का उल्लंघन न कर सकेगी। धनी किसान दूसरों का शोषण करते थे परन्तु जमींदारों की तुलना में उनके पास न केवल कम भूमि थी बल्कि उनका राजनीतिक एवं सामाजिक प्रभाव भी बहुत कम था। उनका जो कुछ मजबूत सम्पर्क एवं प्रभाव था वह केवल गाँव के किसानों तक ही सीमित था न कि राज्य के ढांचे पर। इस नीति के द्वारा तथा धनी किसानों की शक्ति को सीमित करने, तथा धनी किसान अर्थव्यवस्था को उखाड़ने की अपेक्षा उसको निष्कासन का अवसर प्रदान किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी के साथ-साथ हमें यह भी याद रखना चाहिये कि जिस समय चीन के साम्यवादी जमींदारों को समाप्त करने या जमींदारी अर्थव्यवस्था को उखाड़ फेंकने की बात करते थे तब उनका यह तात्पर्य न था कि वे उनकी हत्या करना या उनकी भू-सम्पत्ति को नष्ट करना एवं लूटना चाहते थे। इससे केवल उनका यह तात्पर्य उनकी भूमि की अर्थव्यवस्था के आधार को परिवर्तित करने से था। इस भूमि का अधिग्रहण करके और उसे नये स्वामियों को प्रदान कर नयी अर्थव्यवस्था के नियमों के आधार पर उत्पादन के लिये उपयोग करना था अर्थात् मध्यम तथा निर्धन किसान इसके स्वामी होंगे और वे इस पर स्वयं अपने श्रम से कार्य करेंगे। जो बहुत से जमींदार हिंसा के दौरान मारे गये वे बदनाम किस्म के थे या फिर उस समय जबकि उन्होंने क्रांतिकारी प्रक्रिया का विरोध किया। वास्तव में बहुत बड़ी संख्या में निर्धन किसान एवं साम्यवादी सामाजिक रूपांतरण के लिये हुए संघर्ष के दौरान मारे गये।

संक्षेप में, सामाजिक संबंधों के दृष्टिकोण से ग्रामीण अंचलों में इस कृषि नीति का लक्ष्य स्वयं को निर्धन किसानों तथा खेतिहर मज़दूरों के समर्थन मध्यम किसानों के साथ एकताबद्ध करने, तथा शक्तिविहीन जमींदारों की अनुपस्थिति में धनी किसानों को नये शोषकों के रूप में उदित होने से रोकने की मजबूत नीति पर आधारित था। कृषि परिवर्तनों की सम्पूर्ण प्रक्रिया ग्रामीण अंचलों में स्वामित्व के प्रतिमान का रूपांतरण निहित होने के कारण यह एक वर्ग संघर्ष का स्वरूप ही था। इन परिवर्तनों के कारण निर्धन एवं मध्यम किसानों को अधिक भूमि प्राप्त हुई जिससे कि वे ग्रामीण अंचलों में महत्वपूर्ण कारक हो गये। निर्धन किसानों को अधिक भूमि प्राप्त हुई क्योंकि इन परिवर्तनों से पूर्व उनके पास काफी कम भूमि थी। अब वे सम्पत्ति विहीन न थे। अब उनके पास आमदनी को बढ़ाने एवं उत्पादन करने के स्रोत थे और न ही अब वे शोषित-पीड़ित थे। उन्होंने सम्पूर्ण प्रक्रिया में भाग लिया था जिसके कारण ग्रामीण अंचलों के राजनीतिक संगठन तथा प्रशासन में उनका महत्वपूर्ण स्थान हो गया था और यह पूर्ण रूप से एक नया अनुभव था।

कृषि क्रांति का लक्ष्य उत्पादन में वृद्धि करना भी था। वास्तव में स्वामित्व के संबंधों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पादन की प्रक्रिया में भी एक निर्णायक बदलाव आया। इसको निम्न प्रकार से रेखांकित किया जा सकता है :

- उत्पादन के पिछड़े एवं सामन्ती तरीकों से भूमि की विशाल मात्रा को अलग करके,
- कड़े परिश्रम तथा उत्पादन में वृद्धि करने के लिये सम्पूर्ण किसान वर्ग को प्रोत्साहित करके, और

- किसानों के बीच बाजार को बढ़ाकर जिससे कि उनको कृषि उत्पादनों के बेहतर दाम प्राप्त हो और इस कारण से उनकी खरीदने की शक्ति अधिक हो जाये।

लेकिन इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये बहुत दिनों तक क्यांगसी में सोवियत गणतन्त्र को बनाये न रखा जा सका। परन्तु जब तक इसका अस्तित्व बना रहा तब तक इसने यह सुनिश्चित किया कि किसान अपने श्रम का पूरा फल प्राप्त कर सकते थे और कृषि परिवर्तनों से पूर्व के सभी कर्जों को इसने खारिज कर दिया था।

33.6 क्यांगसी अड्डे में नया राजनीतिक संगठन

न केवल क्यांगसी अड्डे में अपितु सभी लाल क्षेत्रों में कृषि सुधार का महत्वपूर्ण पक्ष खेतिहर मज़दूरों की यूनियनों तथा अन्य दूसरे संगठनों को संगठित करना था। इन जन संगठनों तथा यूनियनों ने कृषि सुधार को लागू करने में सक्रिय तौर पर भाग लिया। उन्होंने स्थानीय सोवियतों के साम्यवादी अधिकारियों तथा पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ क्षेत्र में कार्य किया था। भूमि का एक बार अधिग्रहण करने के पश्चात उसको श्रेणीबद्ध किया गया और फिर उसको वितरित कर दिया गया। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया खुली एवं सार्वजनिक थी। किसानों तथा सैनिकों को उन सोवियतों के लिए निर्वाचित किया गया जिसने मज़दूरों एवं किसानों की नई सरकार के लिये संगठनात्मक ढांचा तैयार किया। जो मध्यम वर्गीय किसान जिला तथा कस्बों के स्तरों की स्थानीय सरकारों में कार्य कर रहे थे उनकी संख्या 40 प्रतिशत थी। कस्बों के स्तर पर मुख्य कार्यकर्ता निर्धन किसान एवं मज़दूर थे। वे नयी सरकार की मुख्य आधारशिला भी थे। इस तरह राजनीतिक लाभ ने आर्थिक लाभ को बढ़ाया क्योंकि अब उन्होंने उस राजनीतिक शक्ति को प्राप्त कर लिया था जिसने उनको अपने स्वयं के भविष्य को निश्चित करने तथा निर्णय करने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) "लाल आधार" को स्थापित करने के लिये कौन-कौन से मुख्य कार्यों को किया गया। पांच पंक्तियों में विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

2) क्यांगसी सोवियत के दौरान स्थापित किये गये कृषि कानून की विवेचना 10 पंक्तियों में कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) धनी, मध्यम तथा निर्धन किसानों पर कृषि नीति का क्या प्रभाव हुआ। इसका उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

33.7 लाल सेना की भूमिका

नवीन भूमि नीति तथा क्यांगसी एवं अन्य लाल आधारों के बने रहने की सफलता के लिये संघर्ष के तरीकों हेतु छापामार युद्ध प्रणाली को अपनाना निर्णायक था। जैसा कि पहले भी बताया गया कि संयुक्त मोर्चे में आये विघटन एवं आगामी राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ऐसा करना आवश्यक हो गया था। इन अड्डों की स्थापना संगठित किसानों के द्वारा किये गये सशस्त्र संघर्ष का परिणाम थी। क्यांगसी सोवियत गणतंत्र के सम्पूर्ण निर्माण की प्रक्रिया में लाल सेना ने इस संघर्ष में एक औजार की भूमिका निभाई। सेना का राजनीतिकरण पार्टी के कृषि क्रांति के कार्यक्रम को लागू करने के लिये किया गया। सेना के अन्दर राजनीतिक कार्य की व्यवस्था को मजबूत किया गया। इस तरह से लाल सेना का कार्य केवल युद्ध करना न था अपितु इसने, राजनीतिक शिक्षा एवं प्रचार कार्य के अतिरिक्त जनता को संगठित करने, तथा कृषि क्रांति को लागू करने में निर्णायक भूमिका अदा की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सैनिकों के लिये भी निम्नलिखित कुछ महत्वपूर्ण नियम थे:

- आज्ञाओं का पालन करना,
- जनता से कुछ न लेना,
- अधिकार में किये गये सभी सामानों को अधिकारियों को वापस करना,
- फसल की कटाई को नुकसान न पहुँचाना, और
- महिलाओं को कष्ट न देना तथा कैदियों के साथ दुर्व्यवहार न करना।

उनको यह स्पष्ट तौर पर समझा दिया गया कि:

- लाल सेना युद्ध के वास्ते युद्ध नहीं करती अपितु उसका कार्य जनता के लिये, जनता को सशस्त्र करना एवं क्रांतिकारी शक्ति को स्थापित करने में जनता की मदद करना है।

इस तरह लाल सेना क्वोमिनतांग की सेना से काफी भिन्न थी। यह सना तकनीकी एवं हथियारों के दृष्टिकोण से अधिक मजबूत न थी किन्तु यह गरीब चीनी जनता के पक्ष में एवं आम जनता के निकट सम्पर्क में थी। [illegible] सहित लाल रक्षकों को स्थानीय जनता से भर्ती किया गया था और इन लाल रक्षकों ने सैनिकों के कार्यों को स्थानीय इकाइयों [illegible] लड़ाकू तंत्र के साथ जोड़ने में योगदान किया। युद्ध की छापामार प्रणाली को स्थानीय समर्थन के द्वारा ही सफल बनाया जा सकता था। इसलिए लाल सेना की यह भूमिका जनता के बीच अपनी ताकत को आम जनता के बीच इस तरह विस्तृत करने में बहुत अधिक महत्वपूर्ण थी जिससे कि जनता को सामन्ती जमींदारों एवं साम्राज्यवादियों के विरुद्ध युद्ध के लिए एक पार्टी बनाया जा सके। शत्रु पर आक्रमण करने में इस की शक्ति को केन्द्रित करने के लिये स्थानीय जनता ने

खाद्य सामग्री, संचार तथा घायलों की देखभाल करने जैसे सहायक कार्यों को पूर्ण करने में सहायता उपलब्ध करायी। पश्चिम के दो डॉक्टरों डॉ. ऐगनेज स्मेडलेई तथा डॉ. नोर्मन बेथ्यून और भारत के डॉ. कोटनीस ने उन मेडिकल इकाइयों को निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में लाल सेना को संघर्ष करने में सहायता प्रदान की।

33.8 राजनीतिक चेतना और सामाजिक प्रगति

इस विशाल संगठनात्मक ढांचे के अन्तर्गत विद्यमान लाल सेना, सोवियतों, खेतिहर मज़दूरों की यूनियनों, मेडिकल इकाइयों एवं किसान संगठनों ने नयी जनवादी सरकार के आधार स्तंभों को गठित किया। उन्होंने राजनीतिक शक्ति के नये अवयवों को बनाया। जमींदार साम्राज्यवादियों की शक्ति के समर्थन का मुख्य आधार थे और उनकी राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति को तहस-नहस कर दिया गया तथा उनके स्थान पर जनवादी संगठनों के प्रभुत्व की स्थापना हुई। इस प्रक्रिया ने जनता के विश्वास एवं राजनीतिक चेतना में वृद्धि की। राजनीतिक अध्ययन केन्द्रों को संचालित किया गया। इन अध्ययन केन्द्रों के द्वारा लोगों को यह ज्ञान हुआ कि उनका समाज कैसा था और उन्होंने यह भी महसूस किया कि वे ही स्वयं अपने भविष्य के निर्माता हैं। इस तरह से हुनान में उन्होंने निम्नलिखित कार्यों को किया:

- संघर्ष के दौरान काला बाजार एवं कीमतों में वृद्धि को रोकने के लिये कदम उठाये,
- जुआ एवं डकैती पर प्रतिबंध लगाया,
- उपभोक्ता बाजारों एवं ऋण-सहकारी समितियों को स्थापित किया,
- वंशीय प्रभुत्व तथा धार्मिक संस्थाओं के द्वारा किये जाने वाले दमन एवं शोषण जैसी सामाजिक बुराइयों का विरोध किया,
- महिलाओं की एकता के प्रश्न को उठाया जिससे सम्पूर्ण रूपांतरण की प्रक्रिया समान तौर पर हिस्सेदार हो गई, और
- किसानों के पढ़ने एवं लिखने के लिये रात्रि स्कूलों को खोला।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

डॉ. नोर्मन बेथ्यून की मेडिकल इकाई में किसानों ने प्रथम बार एक प्राणी के रक्त को दूसरे में प्रवाहित करने में सफलता का प्रदर्शन किया और उन्होंने यह भी सीख लिया कि इसका क्या तात्पर्य था। इसी प्रकार से नये-नये अनुभवों ने उनके पिछड़े मस्तिष्क के बंधनों को तोड़ नये दृश्यों के लिये मार्ग को प्रशस्त किया। सभी कुछ रातों-रात बदलने वाला न था और इस तरह के मार्ग पर चलकर बहुत सी गलतियां भी हुईं। फिर भी उस विशाल जन समुदाय के लिये चीजों में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो चुका था जो अभी तक विश्व की नयी प्रगति से अनभिज्ञ था।

इस प्रकार राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कार्यों को इस तरह से एकताबद्ध किया गया कि चीन के ग्रामीण अंचलों की जनता के सबसे पिछड़े हिस्से भी इस सम्पूर्ण रूपांतरण का एक भाग बन गये। सबसे अधिक पिछड़े इलाके संगठन एवं सरकार की दृष्टि में क्रांतिकारी एवं राजनीतिक तौर पर सबसे अधिक विकसित हो गये। इस संघर्षों का नेतृत्व करने में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस दौरान विशेष रूप से माओ त्से-तुंग लोकप्रिय एवं सम्मानीय नेता हो गया।

33.9 शहरी वातावरण

अगर मज़दूर वर्ग के आंदोलन की सफलता के दृष्टिकोण से विचार किया जाये तब हम देखते हैं कि इन वर्षों में शहरों में कोई विशेष प्रगति न हुई थी। परन्तु ग्रामीण अंचलों में किये गये प्रयोगों ने राजनीतिक नैतिक व्यवस्था, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की विचारधारा एवं मज़दूर आंदोलन को प्रभावित किया। यद्यपि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी में गहरे मतभेद एवं विभाजन थे, लेकिन लाल क्षेत्रों मे माओ की सफलता ने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को एक नवीन दिशा प्रदान की। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी में निम्न दो प्रकार के दृष्टिकोणों की प्रमुखता थी:

1) प्रथम वे थे जिन्होंने शहरों में क्रांतिकारी आंदोलन को कुछ अधिक बढा-चढ़ाकर समझा तथा उन शक्तियों की ताकत को कम करके देखा जो क्रांतिकारी शक्तियों का विरोध कर रहे थे, और
2) दूसरे वे थे जिन्होंने कृषि क्रांति की उपलब्धियों को कम करके देखा तथा प्रति क्रांतिकारी शक्तियों की ताकत को कहीं अधिक समझा। लेकिन माओ त्से तुंग की रणनीति की शुद्धता को मान्यता प्रदान की गई और प्रशंसा भी।

साम्यवादियों ने स्वय अपने लिए क्यांगसी एवं अन्य लाल क्षेत्रों में जन समर्थन को प्राप्त किया। प्रथम जनवादी सरकार के दृष्टांत से उन्होंने यह समझा कि जहां एक ओर यह कृषि क्रांति का प्रतिनिधित्व करती थी, वहीं पर दूसरी ओर इसका निर्देशन वर्ग संघर्ष के सिद्धांतों एवं समाजवादी विचारधारा के द्वारा किया गया था। इस सच्चाई का श्रेय चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को ही जाता है कि यह क्रांति इस चरण में स्वयं किसानों पर आधारित थी फिर भी यह आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों के दृष्टिकोण से शुद्ध तौर पर कृषिवाद या अति लोकप्रियवाद का शिकार न बन पायी।

कुल मिलाकर यह एक ऐसी जागरूकता थी जिसकी अभिव्यक्ति राष्ट्रवाद के उभार के तौर पर हुई। जापानी आक्रमण ने चीनी समाज के सभी भागों में सक्रिय विरोध की एक प्रतिक्रिया को जन्म दिया। यद्यपि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने इन जापान-विरोधी आंदोलनों में व्यापक स्तर पर भाग न लिया था और न ही उनका नेतृत्व कर पायी थी फिर भी उसने इन आंदोलनों की क्षमता को रेखांकित किया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने सामन्तवाद, साम्राज्यवाद एवं बड़े पूंजीपतियों के विरुद्ध सम्भावित व्यापक आधार को सुदृढ़ करने की नीति का अनुसरण किया किन्तु सामन्त एवं बड़े पूंजीपति साम्यवादियों का विरोध करने के लिए साम्राज्यवादियों के साथ मिल गये। इसलिए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने छोटे व्यापारियों एवं उद्योगपतियों का विरोध न करने का निश्चय किया। उसने व्यर्थ के करों एवं शुल्कों को समाप्त करने की मांग की और इस तरह से बड़े पूंजीपतियों एवं साम्राज्यवादियों के विरुद्ध उनके समर्थन को सुनिश्चित कर लिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह समय शहरी वातावरण में साहित्यिक गतिविधियों के उभार के लिए महत्वपूर्ण था। सजीव रचनाओं ने समय की सामाजिक वास्तविकताओं को अभिव्यक्त किया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयासों के कारण 1930 में गठित चीनी वामपंथी लेखकों का संगठन सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। इन लेखकों ने साहित्य एवं समाज के एक प्रगतिशील दृष्टिकोण को सामने रखा और राष्ट्रवादी सरकार की जनविरोधी नीतियों के कारण उनकी आलोचना की। अपने बहुत से प्रकाशनों के द्वारा शहरों में बौद्धिक वातावरण को रूपांतरित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। सबसे अधिक महत्वपर्ण लेखक लू सून (1881-1936) था। उसने अपनी रचनाओं में पुरानी एवं विद्यमान व्यवस्था के पतन एवं अन्याय की आलोचना की और उसने परम्परागत जीवन के ढोंग तथा क्रूरता पर भी आक्रमण किया।

बहुत से महिला संगठन भी इन वर्षों में सक्रिय हो गये थे। ये संगठन केवल महिलाओं की समस्याओं तक सीमित न थे अपितु सम्पूर्ण समाज एवं परिवर्तन की प्रक्रिया पर भी उन्होंने अपना ध्यान केन्द्रित किया।

33.10 पराजय

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने जो परिवर्तन किये उनसे यह स्वाभाविक ही था कि उनको चीन के शासक वर्गों ने पसन्द नहीं किया। क्वोमिनतांग ने पूर्णतः एक भिन्न प्रकार की नीति का अनुसरण किया और उसने कम्युनिस्टों का अथक विरोध भी किया। क्वोमिनतांग का समर्थन जमींदारों के द्वारा किया गया था। 1930-1934 के बीच क्वोमिनतांग ने च्यांग काई शेक के नेतृत्व में जमींदारों के द्वारा समर्थित कम्युनिस्टों के विरुद्ध उखाड़ फेंकने वाले पांच अभियानों को चलाया गया। पांचवां अभियान क्यांगसी क्षेत्र के विरुद्ध संचालित किया गया। महीनों तक घेरेबन्दी एवं अवरोधक तरीकों का अनुसरण करते रहने के कारण सोवियत गणतंत्र के लिये असहाय स्थिति पैदा हो गई। अन्ततः अगस्त 1934 में, स्थिति भयंकर तौर पर खराब हो गई और क्यांगसी क्षेत्र का परित्याग कर देना पड़ा। कम्युनिस्टों ने अवरोधों को चीरकर अपने मार्ग को बनाया और इस तरह महान अभियान का प्रारंभ हुआ (देखें इकाई 34)।

बोध प्रश्न 2

1) लाल सेना ने क्यांगसी गणतंत्र को बनाने में कैसे मदद की? इसकी विवेचना लगभग 10 पंक्तियों में करें।

2) लाल सेना की विशेषताओं की 5 पंक्तियों में विवेचना कीजिये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

33.11 सारांश

1927 में संयुक्त मोर्चे के नाम से जाने गये क्वोमिनतांग-कम्युनिस्ट गठबंधन के टूट जाने से चीन के कम्युनिस्ट आंदोलन के अन्दर अनिश्चय, भटकाव एवं संगठनात्मक संकट पैदा हो गया था। पार्टी संगठन टूट के कगार पर था। इसके नेतागण ऐसे सैद्धान्तिक ढांचे की तलाश में थे जिससे कि वे राष्ट्रीय मुक्ति के आंदोलनों का संचालन, पार्टी ढांचे का पुनर्गठन तथा जनता एवं पार्टी के बीच की दूरी को कम कर सके। चीन इस समय जिस संकट का सामना कर रहा था उसका समाधान सोवियत मॉडल में ही दिखाई देता था।

क्यांगसी सोवियत निस्सन्देह इस सैद्धांतिक ढांचे का एक बड़ा प्रयोग था। उत्तर संयुक्त मोर्चे के वर्षों में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की नीति सर्वहारा की चिन्ता एवं शहरी चीन के परित्याग के बीच के असमंजस्य की नीति थी। यह स्पष्ट है कि संयुक्त मोर्चे की असफलता के बाद शहरी चीन के अन्दर कम्युनिस्टों की नीतियों के पूर्ण केन्द्रण में काफी सीमा तक कमी आयी। क्यांगसी सोवियत को मुख्य तौर पर चीन के ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित किया गया। माओ त्से तुंग जैसे महत्वपूर्ण कम्युनिस्ट नेताओं ने नगर से ग्रामीण क्षेत्रों तथा सर्वहारा के साथ संगठनात्मक कार्य से किसानों के लिये कृषि क्रांति की ओर बढ़ना शुरू किया।

33.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक जनतान्त्रिक व्यवस्था कृषि विकास, किसानों एवं सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना करना। देखें भाग 33.4
2) कांग्रेस के द्वारा कृषि कानून को पारित किया गया। यह संयुक्त मोर्चे के काल से काफी भिन्न था। 1931 के कृषि कानून ने भूमि के अधिग्रहण करने के अधिकार को प्रदान किया। देखें भाग 33.5।
3) देश के अन्दर खेतिहर मजदूरों की यूनियनों एवं संगठन का विकास शुरू हुआ। बड़े-बड़े लाल आधारों में कृषि सुधारों को लागू करने के वे मुख्य संवाहक बन गये। इन सभी जन संगठनों ने एक साथ मिलकर सक्रिय रूप से कार्य किया। देखें भाग 33.6

बोध प्रश्न 2

1) संघर्ष के एक महत्वपूर्ण तरीके के रूप में छापामार युद्ध को अपनाया जाना लाल सेना में एक लोकप्रिय तरीका हो गया। इसके द्वारा काफी बड़ी सीमा तक किसानों को संगठित किया जा सका। इसने जनता को संगठित करने तथा कृषि सुधारों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। देखें भाग 33.7
2) लाल सेना की मुख्य विशेषता कड़ा अनुशासन, जनता से कुछ न ग्रहण करना, तथा बन्दी बनाये गये लोगों के साथ दुरव्यंवहार न करना था। देखें भाग 33.7

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 34 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और जापान के साथ युद्ध

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 महान अभियान (लौंग मार्च) की पृष्ठभूमि
34.3 येनान की सामरिक नीति
  34.3.1 जापानी आक्रमण
  34.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति
  34.3.3 आर्थिक कारण
  34.3.4 जापान का सामाजिक एवं राजनीतिक विरोध
34.4 व्यवहार में संयुक्त मोर्चा
34.5 येनान क्षेत्र : विरोध करने के स्वरूप
34.6 लाल क्षेत्र : नये प्रकार का समाज
34.7 अन्तिम चरण
34.8 सारांश
34.9 शब्दावली
34.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

34.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्तः

- आपको साम्यवादियों के लौंग मार्च (महान अभियान) से जुड़ी विशेष घटनाओं की जानकारी होगी,
- साम्यवादियों द्वारा जापानी साम्राज्यवादियों के आक्रमण के सक्रिय विरोध को समझने का अवसर प्राप्त होगा,
- द्वितीय संयुक्त मोर्चे के दौरान साम्यवादियों द्वारा अपनायी गयी बहुत सी सामरिक नीतियों का ज्ञान भी होगा, और
- आपको यह भी ज्ञात होगा कि साम्यवादियों ने अपने अधीन क्षेत्रों के शासन का संचालन कैसे किया।

34.1 प्रस्तावना

जापान के साथ हुए युद्ध का समय दूसरे संयुक्त मोर्चे का समय भी था। प्रथम संयुक्त मोर्चे की भांति ही दूसरे संयुक्त मोर्चे का गठन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के साथ-साथ चीन के आन्तरिक राजनीतिक अनुभव की गतिशीलता के कारण हुआ था। आपको इस पर आश्चर्य होगा कि जबकि प्रथम संयुक्त मोर्चा असफल हो गया था तब जापान के विरुद्ध युद्ध में दूसरे संयुक्त मोर्चे का गठन क्यों किया गया? हम देख चुके हैं कि चीन के साम्यवादी दल का सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यक्रम न केवल क्योमिंनटांग से भिन्न था अपितु उसका विरोधी भी। इस तरह कुछ इस प्रकार की परिस्थितियां थीं कि चीन के साम्यवादी दल को जापान के विरुद्ध युद्ध करने को प्राथमिकता देनी पड़ी और यहां तक कि उसे इस लक्ष्य के लिये क्योमिंनटांग के साथ फिर एक संयुक्त मोर्चा बनाना पड़ा।

जहां एक ओर इस प्रकार की विशेष अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां थीं वहीं राष्ट्रीय स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की

थी। इस इकाई में हम इन परिस्थितियों का उल्लेख करेंगे और उसी के साथ हम जापान के विरुद्ध युद्ध में चीन के साम्यवादी दल की भूमिका को भी समझने का प्रयास करेंगे। इस इकाई में जापान के विरुद्ध लड़े गये युद्ध की प्रकृति पर भी प्रकाश डाला गया है। चीन के साम्यवादी दल क्योमिंनटांग के संबधों के लिए इसका क्या अर्थ था। उसका चीन के मजदूरों एवं किसानों के साथ कैसा संबंध था—इन सभी पक्षों की भी इस इकाई में विवेचना की गई है।

साम्यवादियों के दृष्टिकोण से चीन में दूसरा संयुक्त मोर्चा सफल रहा था क्योंकि इसने क्रान्ति की सफलता, चीन के एकीकरण और स्वतन्त्रता के लिये एक पृष्ठभूमि तैयार की। चीन के अन्दर राजनीतिक तथा सामाजिक शक्तियों के एक ऐसे सह-संबंध का उद्भव हुआ जिसके अन्तर्गत मजदूर वर्ग एवं किसान एक निर्णायक शक्ति बने और चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन में साम्यवादी भी एक प्रधान राजनीतिक शक्ति बने। अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच के दृश्य के साथ-साथ इस इकाई में उपरोक्त सभी पक्षों की विवेचना की गई है। उस समय की अन्र्राष्ट्रीय स्थिति चीन के साम्यवादी दल तथा क्योमिंनटांग के संबंधों तथा जापान के विरुद्ध उनके युद्ध का एक अविभाज्य अंग थी। इसलिये सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी शक्तियों को अलग-अलग करने के लिये व्यापक लोकप्रिय मोर्चों का निर्माण करने का निर्णय केवल चीन के लिये अपनायी गई विशेष सामरिक नीति न थी। अपितु इसको राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने या जर्मन फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये सभी देशों में अपनाया गया। इस समय में लगभग सम्पूर्ण चीन पर अधिकार करने वाला जापान भी जर्मनी के साथ था परन्तु इग्लैंड और फ्रांस उनके संग न थे। इसलिये इस समय चीन में जो दूसरा संयुक्त मोर्चा बनाया गया वह जापान के विरुद्ध निर्देशित था।

चीन के क्रान्तिकारी संघर्ष के बहुत से पक्षों की विवेचना के साथ-साथ इस इकाई में इस पर भी बल दिया गया है कि ऐसे लोग जो विश्व भर में शोषण के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं वे एक दूसरे से अपृथक तौर पर जुड़े हैं। ठीक इसी तरह से बेहतर जीवन के लिये संघर्ष में लक्ष्य एवं कार्य की एकता ही अधिक सफलता की ओर ले जाती है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञान हो जायेगा कि विश्व भर में फासीवाद के विरुद्ध होने वाले संघर्ष में हिस्सा लेने से चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन के हित और इस क्रान्तिकारी आंदोलन का मुख्य रूप से गठन करने वाले मजदूर एवं किसानों के हित किस प्रकार आगे बढ़े।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

34.2 महान अभियान (लौंग मार्च) की पृष्ठभूमि

इकाई-33 में उद्धत किये गये महान अभियान (लौंग मार्च) का प्रारम्भ उस समय हुआ जबकि साम्यवादियों को अपने क्यांगसी क्षेत्र को छोड़ने के लिये बाध्य किया गया। क्योमिंनटांग सेनाओं द्वारा प्रतिदिन की गई हवाई बमबारी एवं मशीन गनों से हजारों किसानों की हत्या कर दी गई। ताकत के बल पर किये गये जन विस्थापन तथा बड़े स्तर पर आम फांसियों के द्वारा सम्पूर्ण क्षेत्र को आबादी विहीन कर दिया गया। केवल लाल सेना के ही 60,000 सैनिक मारे गये। लाल सेना के मुख्य भाग को सुरक्षित तौर पर बाहर निकालने के लिये हजारों किसान समर्थकों ने अपनी अन्तिम सांस तक संघर्ष किया और इन लाल समर्थकों की अपार वीरता की स्मृति को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने सदैव याद रखा है।

महान अभियान के वापस लौटते सदस्यों में केवल मुख्य सेना न थी अपितु उनके साथ हजारों गरीब किसान भी थे। वास्तव में इस अभियान में बूढ़े, जवान, पुरुष एवं स्त्री, बच्चे, साम्यवादी सभी शामिल थे। कुछ ऐसे हथियार और बारूद जिनको वे इस महान प्रस्थान के दौरान ले नहीं जा सकते थे, मार्ग के साथ-साथ दबा दिये गये। ऐसा इस आशा के साथ किया गया कि एक दिन बेहतर परिस्थितियों में संघर्ष के जारी रहते उनका उपयोग किया जा सकेगा। इस अभियान के दौरान इसमें भाग लेने वाले आधे लोग एवं आधी सामग्री नष्ट हो गये थे।

पराजित एवं अस्त-व्यस्त सेना के लिये यह अभियान शानदार वीरता का कार्य था। रास्ते भर उनको प्रकृति की कठोरताओं के साथ-साथ क्योमिंनटांग की सशस्त्र सेनाओं तथा युद्ध सामन्तों के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। इस विशाल अभियान के दौरान उन्होंने ग्यारह प्रांतों, दूर-दराज के इलाकों, अगम्य पर्वतों की

शृंखलाओं तथा चौबीस बड़ी नदियों को पार किया। इस महान अभियान का प्रारम्भ 16 अक्तूबर, 1934 को हुआ था और इसका अन्त 1937 में येनान के ऊँचे-नीचे क्षेत्रों में 800 मील की दूरी को तय करने के साथ हुआ। केवल 30,000 लोगों से कम ही इस यात्रा को पूरी कर पाये। केवल 30 के करीब ही महिलायें जीवित बचीं। मृत्यु पाने वालों में माओ त्सु तुंग की पत्नी भी थी। जो लोग येनान के शेंसी क्षेत्र में पहुँचे थे वे विश्वसनीय एवं अनुशासित कठोर कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने एक ऐसी शक्ति का गठन किया जो भविष्य के चीनी सोवियत गणतन्त्र का निर्माण करने वाली थी। उनमें माओ, चु-तेह, लिनपिओ तथा चाऊ ऐनलाई प्रमुख थे।

यह महान अभियान चीन के इतिहास में अत्याधिक महत्वपूर्ण और सबसे अधिक साहसिक घटना है। जिस समय इसका विवरण कुछ पृष्ठों में ही किया जाता है तब शायद यह अधिक वीरता का कार्य प्रतीत नहीं होता। लेकिन इसकी महानतम उपलब्धि को तभी पहचाना जा सकता है जब आप हजारों लोगों के एक साथ प्रस्थान करते हुए उस दृश्य की कल्पना करें जिसमें उन्होंने स्वयं की पर्याप्त हथियारों के बिना रक्षा की और न उनके पास पर्याप्त भोजन तथा दवाई थी। यद्यपि उनको कुछ सामग्री अपने समर्थकों द्वारा दूर-दराज के इलाकों को पार करते समय प्राप्त अवश्य होती थी। इस सन्दर्भ में आप यह भी कल्पना कर सकते हैं कि लम्बे, मुश्किलों से भरपूर रास्तों को पार करते समय हजारों लोगों, सैकड़ों बूढ़े एवं बीमार लोगों की देखभाल करना कोई सरल कार्य न था। माओ सहित कई अन्य ने अपने नजदीकी एवं प्रिय लोगों को खो दिया था। वे अपने साथ जिस एक मात्र वस्तु को लेकर गये वह दुर्जय राजनीतिक इच्छा एवं शक्ति थी और उसको उन्होंने, इस उच्चतम लक्ष्य से प्राप्त किया था जिसके लिये वे संघर्ष कर रहे थे। वे जानते थे कि वे एक ऐसे नये चीन के लिये संघर्ष कर रहे हैं जो शोषित-पीड़ित तथा निर्धन लाखों लोगों के लिये बेहतर जीवन को सुनिश्चित करेगा।

जिस किसी भी इतिहासकार या संवाददाता ने चीन के इतिहास पर जो कुछ भी लिखा है उन सभी ने इस महान यात्रा में भाग लेने वालों के प्रति भरपूर सम्मान व्यक्त किया है। ऐसे संवाददाता जो इस महान अभियान के साथ-साथ कुछ दूरी पर चल रहे थे और उनको समाचार पत्रों को इसके विषय में समाचार भेजने थे—वे सभी आजीवन इसके समर्थक हो गये।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

> ऐग्निज स्मेडली, ऐडगर स्नो, डॉ. नोमेंन तथा बेथने ने महान अभियान का बड़ा सजीव एवं स्पष्ट विवरण किया है और इनसे हमें ऐसे लोगों के जीवन की जानकारी प्राप्त होती है जिनके विषय में कोई ज्ञान न होता। जब कभी भी आपको उनको पढ़ने का अवसर मिले आप अवश्य ही उनको पढ़ें।

जिस समय महान अभियान का प्रारम्भ किया गया था तब ऐसा प्रतीत होता था कि सम्पूर्ण चीन पर च्यांग काई शेक का नियन्त्रण है। लेकिन साम्यवादियों के द्वारा क्यांगसी एवं दक्षिण चीन में स्थित अन्य लाल क्षेत्रों को छोड़ना साम्यवाद की विजय के लिये एक निर्णायक घटना साबित हुई। अपनी मुश्किल एवं लम्बी यात्रा के अन्त में अन्ततः साम्यवादियों ने क्योमिनटांग की सेनाओं के विरुद्ध एक वास्तविक शक्तिशाली आधार को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इस तरह से क्रान्ति को बचाने के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया यद्यपि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उनको अपने हजारों कार्यकर्त्ताओं के जीवन का बलिदान कर भारी मूल्य चुकाना पड़ा।

इस महान अभियान से तीन ऐसे कारक संबंधित हैं जिनके कारणवश साम्यवादी क्रान्ति को जीवित रहने में मदद प्राप्त हुई :

i) लौंग मार्च ने "साम्यवादियों एवं जनवादी मुक्ति सेना" (People's Liberation Army) की साहसिक एवं सच्चे राष्ट्रवादी के रूप में सम्मान में वृद्धि करने में योगदान किया। क्योमिंटांग लगातार यह दावा करती रही कि साम्यवादियों को हमेशा के लिये पराजित कर दिया गया है। वे ऐसा प्रचार इसलिये कर पाये कि उनका प्रेस एवं सार्वजनिक प्रचार माध्यमों पर नियन्त्रण था। इसके परिणामस्वरूप अधिकतर लोग यह न जान सके कि चीन के दूर-दराज के क्षेत्रों में क्या घटित हो रहा था। इसके बावजूद भी स्नो तथा स्मेडली के समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों के द्वारा पश्चिमी दुनिया को समाचारें प्राप्त होती रहीं और पूरी दुनिया की जनतान्त्रिक शक्तियों ने धन एवं औषधि जैसी

आवश्यक चीजों का योगदान किया जिससे कि दूर-दराज के क्षेत्रों में मेडिकल इकाइयों को स्थापित करने में सहायता मिली। यद्यपि इस तरह की सहायता सागर में एक बूंद की भांति थी किन्तु इसने स्वयं चीन के अन्दर साम्यवादियों के सम्मान को बढ़ाने में बड़ी मदद की। यह लौंग मार्च गीतों एवं किंवदन्तियों का शीर्षक बन गया और साम्यवादी नये चेतनाशील चीन के स्वीकृत नेता हो गये।

ii) लौंग मार्च की बदौलत चीन के साम्यवादी आंदोलन में एक नयी एकता स्थापित हुई। इसके साथ ही पार्टी पर माओ का नेतृत्व सुदृढ़ हो गया। जिस समय शत्रु के क्षेत्रों में आगे तक बढ़ना सम्भव न था तब मार्च के साथ-साथ छोटी-छोटी सभाओं का उपयोग राजनीतिक शिक्षा एवं नेतृत्व की राजनीतिक सभाओं के लिये किया गया। तत्कालिक वास्तविकताओं के अनुभवों की रोशनी में साम्यवादियों ने परस्पर विद्यमान मतभेदों को भी पूर्ण रूपेण मजबूती से इस अवधि में दूर कर लिया।

iii) साम्यवादियों का मानवीय एवं शारीरिक स्तर पर जो भी अनुभव रहा हो लेकिन लौंग मार्च के द्वारा उनको हजारों की संख्या में समर्पित कार्यकर्ता प्राप्त हुए। यह स्वयं में कठोर शारीरिक एवं राजनीतिक शिक्षा का प्रशिक्षण था। इसके द्वारा उनका चीन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों एवं वहां की जनता के साथ भी सम्पर्क हुआ।

जिस समय साम्यवादियों ने उत्तरी शांशी और येनान में अपना सशक्त अड्डा बनाया तो एक ओर उन्होंने अपने विचारों को मार्ग में विशाल जनसमुदाय के मध्य प्रसारित किया और दूसरी ओर उन्होंने चीनी किसानों, उनके दृष्टिकोण एवं आदतों के विषय में भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। इस समय हुनान या क्यागंसी वाली स्थिति की अपेक्षा साम्यवादी राजनीतिक तौर पर कहीं अधिक समझदार हो चुके थे। संक्षेप में लौंग मार्च ने साम्यवादियों को शत्रु के विरुद्ध अन्तिम आक्रमण करने तथा अपनी सम्भावित विजय प्राप्त करने के लिये तैयार किया। दूसरी तरफ क्योमिंनटांग के सैन्य बलों की तुलना में जनवादी मुक्ति सेना द्वारा जनता के साथ किये गये व्यवहार में जमीन आसमान का अन्तर था। जनता ने व्यवहार के इस अन्तर को पहचान साम्यवादी सेना को अपनी सेना माना। इस प्रकार सम्पूर्ण चीनी जनता ने साम्यवादियों को अपने नेताओं के तौर पर स्वीकार कर लिया। मार्च के दौरान उन्होंने अपने लाल समर्थकों एवं साथियों की संख्या को काफी बढ़ाया और यहाँ तक कि अपनी मुख्य सेना के लिये नयी भर्ती भी की। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि चीन के सभी क्षेत्रों की निर्धन जनता युद्ध सामन्तों एवं क्योमिंनटांग के द्वारा शोषित की जाती थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

34.3 येनान की सामरिक नीति

जिन कारणों से साम्यवादियों ने क्यांगसी क्षेत्र का चुनाव किया था उन्हीं कारणों से उन्होंने येनान का नये क्षेत्र के रूप मे चुनाव किया। इसको स्पष्ट करते हुए एडगर स्नो ने लिखा "येनान रक्षा के लिये आदर्श तौर पर एकीकृत था। यह चट्टानों की ऊँची पहाड़ियों से घिरा था और जहां चट्टानों की प्रबल दीवारें ऊपर की ओर जाती हैं।"

पहले की ही भांति इस बार भी मुक्ति क्षेत्रों को सशस्त्र संघर्ष, किसानों के हितों के अनुरुप भूमि स्वामित्व में परिवर्तन और स्थानीय स्तर पर छापामार युद्ध के आधार पर स्थापित किया गया। इन क्षेत्रों को ऐसे स्थान पर बनाया गया जहां पर सरकारी सेनाओं के लिये पहुंचना आसान न था। लेकिन अब संघर्ष के इस चरण में साम्यवादियों का मुख्य शत्रु क्योमिंनटांग न होकर जापान हो गया। आप इकाई 33 में पढ़ चुके हैं कि किस तरह से जापानी साम्राज्यवादियों ने चीन पर आक्रमण किया था। इस पक्ष के विषय में व्यवहारिक स्तर पर सोचा जाये तब हम देखते है कि महले जिन लोगों को शत्रु के पक्ष में समझा जाता था अब उनमें से बहुतों को जापान विरोधी संघर्ष में शामिल किया जा सकता था। इसलिये पहले के चीनी सोवियत गणतन्त्रों की तुलना में इस बार के साम्यवादी नियन्त्रण के क्षेत्रों के सामाजिक आधार में व्यापक वृद्धि हुई थी।

सामाजिक रूपांतरण की एक ऐसी सामरिक नीति, जिसके द्वारा सामाजिक आधार में वृद्धि को सुनिश्चित किया जा सकता था, इस स्तर पर अपनायी जानी अति आवश्यक थी। ऐसा इस तथ्य को भी ध्यान में रखकर किया गया कि इस बार चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को एक विभाजित एवं भ्रष्ट दुश्मन का सामना नहीं करना था। जापानी साम्राज्यवादियों की अनुशासित एवं शक्तिशाली सशस्त्र सेनायें क्योमिंनटांग की सेनाओं से बिल्कुल भिन्न थी। क्योमिंनटांग को ऐसे युद्ध सरदारों पर निर्भर रहना पड़ता था जो एक दूसरे के

विपरीत थे। अब यह ऐसा गृह युद्ध न था जिसमें कि क्योमिंनटांग बगैर किसी प्रकार के सामाजिक रूपांतरण के एकता का प्रयास कर रहा था और कुछ युद्ध सरदार नियन्त्रण के स्वतन्त्र साधनों में रुचि रखते थे। क्योमिंनटांग और चीन के मज़दूरों तथा किसानों के बीच जो युद्ध हुआ उसमें निहित जटिलताओं के कारण साम्यवादियों ने युद्ध के विषय में एक विशेष प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया था किन्तु अब परिवर्तित राजनीतिक सन्दर्भ में उसका कोई औचित्य न रह गया था।

इसलिये येनान की सामरिक नीति जापानी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संयुक्त मोर्चे की तत्कालिक सामरिक नीति थी। इस नीति के साथ-साथ सामाजिक रूपांतरण की नीति को भी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनाया क्योंकि उसको इस समय क्यांगसी दौर की अपेक्षा एक व्यापक आधार प्राप्त होने वाला था। वास्तव में उनकी सामरिक नीति के ये दोनों पक्ष एक-दूसरे के साथ अंतर्संबंधित एवं एकीकृत थे।

34.3.1 जापानी आक्रमण

प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के बावजूद पूंजीवादी विश्व 1929 तक भयंकर आर्थिक संकट में फंस गया। आगामी तीन वर्षों में यह संकट और भी भयावह हो गया। जापान एवं जर्मनी को इन अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों से कोई लाभ न हुआ था और इस आर्थिक संकट ने उनको जबरदस्त ढंग से प्रभावित किया। इन देशों में विश्व के "नये" विभाजन की मांग की गई। जापान के साम्राज्यवादियों ने देखा कि आक्रमण नीति ही इसका एक मात्र समाधान है। जापान ने नौ देशों की संधि की धाराओं के विरुद्ध अभियान चलाकर चीन से यूरोपीय शक्तियों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका को बाहर करने का प्रयास किया। इसके बदले वह चीन को अपना उसी प्रकार का उपनिवेश बनाना चाहता था जैसा कि ब्रिटेन का उपनिवेश भारत था। उन्होंने अपना पहला आक्रमण 18 सितम्बर, 1931 को किया। 1933 तक उनके प्रभाव में संपूर्ण उत्तरी चीन का मैदान आ गया, 1935 तक उन्होंने आन्तरिक मंगोलिया पर अधिकार कर लिया और 1937 तक वे चीन में सर्वोच्च शक्ति बन गये। इस समय में मारको पोलो ब्रिज पीकिंग से दक्षिण की ओर की एक मामूली सी घटना को बहाना बनाकर जापान ने युद्ध घोषित किये बगैर सम्पूर्ण चीन पर धावा बोल दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापानियों ने जिस बर्बरता से सर्वनाश किया वह रोंगटे खड़ा कर देने वाला था। इस सन्दर्भ में नानकिंग की सरकार के पतन का वह दृष्टांत दिया जा सकता है जबकि जापानी सेनाओं ने तीन लाख लोगों को मौत के घाट उतार दिया था। यांग्तसी क्षेत्र में शरणार्थियों को मशीन गनों की गोलियों से भून डाला गया। ठीक इसी प्रकार से चीन के अन्य भागों में जान एवं माल का व्यापक नुकसान किया गया।

यूरोपीय शक्तियां पहले से ही जर्मनी के साथ युद्ध में फंसी थी। जर्मनी उनके लिए तत्कालिक खतरा था और इस कारण वे कोई हस्तक्षेप न कर सकीं। संयुक्त राज्य अमेरीका उस समय तक तटस्थ बना रहा जब तक कि जापान ने 1941 में पर्ल हार्बर पर आक्रमण न कर दिया। चीन में क्योमिंनटांग की सरकार भी पश्चिमी शक्तियों के प्रति समझौतावादी नीति का अनुसरण कर रही थी और उसने भी 1941 में पर्ल हार्बर पर जापान के आक्रमण तथा हांगकांग एवं सिंगापुर के पतन तक जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा न की। जापानियों का चीन पर लगभग स्वतन्त्र शासन कायम हो गया। चीन के अधिकारियों की अयोग्यता के कारण हजारों लोगों की जानें बिना किसी कारण के चली गई। भय के कारण उन्होंने हिनान की राजधानी चांगलिसा में आग लगा दी और वहाँ के निवासियों के साथ-साथ 8 लाख शरणार्थी मारे गये। जापानियों के आगे बढ़ने को धीमा करने के लिये उन्होंने पीली नदी के बांध को तोड़ दिया जिससे हजारों लोगों की जानें चली गई। इस प्रकार जापान के विरुद्ध संघर्ष चीन के लिये जीवित रहने का प्रश्न बन गया। चीन के इतिहास में इस राजनीतिक मोड़ पर साम्यवादियों के लिये जापान के विरुद्ध संघर्ष करना प्राथमिक कार्य हो गया।

34.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

इस लक्ष्य के लिये न केवल चीन के अन्दर व्यापक सम्भावित मोर्चे को गठित किया गया अपितु उन अन्य देशों के साथ भी गठबंधन किया गया जो जापान के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू हो जाने से फासीवादी शक्तियों—जर्मनी, इटली एवं जापान के विरुद्ध व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय मोर्चे का गठन किया गया। इस व्यापक मोर्चे में ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ और 1941 के बाद, संयुक्त राज्य अमेरिका शामिल थे। वे स्वयं को मित्र राष्ट्र कहते थे। राष्ट्रीय मुक्ति की सामाजिक शक्तियां भी इस

व्यापक मोर्चे में शामिल हो गई। भारत के लिये चुनाव सरल एवं पूर्णतः स्पष्ट था क्योंकि मित्र राष्ट्र जापान के विरुद्ध संघर्षरत थे। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के लिये भी इसके साथ गहरे प्रश्न जुड़े थे। जर्मनी, इटली एवं जापान के विरुद्ध लोकप्रिय मोर्चा लोकतन्त्र तथा प्रथम समाजवादी राज्य सोवियत संघ के जीवित बने रहने के लिये हो रहे संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते थे। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपनी स्वयं की सफलता के लिये इन दोनों परिस्थितियों को आवश्यक मानती थी। इसलिये फासीवाद की विजय के अर्थ को जापान के हाथों होने वाली चीन की पराजय समझा गया और यदि फासीवाद की ताकतें पराजित हो जाती हैं तब चीन की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित माना गया। संक्षेप में उन्होंने विश्व राजनीतिक स्थिति और उसमें अपनी स्वयं की भूमिका तथा स्थान को ठीक उसी प्रकार से समझ लिया जैसा कि भारतीय नेताओं ने समझा था। परन्तु यह एक समान घटनाक्रम नहीं है कि उपनिवेशवाद के समाप्त होने की प्रक्रिया, भारत की स्वतन्त्रता एवं चीनी क्रान्ति दूसरे विश्व युद्ध में फासीवादी ताकतों की पराजय के कारण हुई।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी तथा क्योमिनटांग जिस अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे के भाग थे, उसके निर्माण की प्रक्रिया लम्बी एवं दुःखदायी थी। चीन में जापानी आक्रमण का प्रारम्भ 1931 में हुआ और 1934 तक उसने विस्फोटक स्थिति ग्रहण कर ली। इस समय तक पश्चिमी शक्तियां प्राथमिक तौर पर सोवियत संघ का विरोध करना अपने हित में समझती थीं। चीन के अन्दर भी उनके अपने आर्थिक निवेश एवं नियन्त्रण के क्षेत्र थे। जिस समय जापान ने उनको चीन से बाहर निकालना शुरू किया और जर्मनी ने उनको यूरोप एवं विश्व के अन्य भागों में चुनौती देनी प्रारम्भ की तभी उन्होंने जर्मनी एवं जापान का गम्भीरता पूर्वक विरोध प्रारम्भ किया। जैसा कि पहले उद्धृत किया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका 1941 में ही युद्ध में शामिल हुआ। लेकिन इस समय तक चीन में जापान के विरुद्ध संयुक्त विरोध आंदोलन विकसित हो चुका था।

34.3.3 आर्थिक कारण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान एवं यूरोपीय शक्तियों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच बढ़ते संघर्षों का आधार चीन के अन्दर उनके आर्थिक विरोधों में निहित था। चीन की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर पूर्ण रूप से साम्राज्यवादी नियन्त्रण था। सन् 1937 में चीन की रेलवे में 90.7 प्रतिशत विदेशी पूंजी लगी थी। चीन के कोयला उत्पादन का 55.7 प्रतिशत, यांग्त्सी नदी में चलने वाले मालवाहक जहाजों का 18.9 प्रतिशत तथा विद्युत उत्पादन का 55 प्रतिशत विदेशी कम्पनियों के हाथों में था। सम्पूर्ण लोहा उत्पादन जापानियों के अधीन था। 1936 में चीन के सूत कातने वाले कारखानों का 46.2 प्रतिशत तथा कपड़ा मिलों का 56.4 प्रतिशत विदेशी पूंजी के अधीन था। बैंक नोटों को जारी करने की सुविधा भी विदेशी बैंकों के पास थी। उनका चुंगी तथा नमक पर भी नियन्त्रण था। इस प्रकार साम्राज्यवादी पूंजी ने चीन का आर्थिक शोषण उसी तरह से किया जैसा कि भारत का किया जा रहा था।

यदि 1930 के आंकड़ों के साथ तुलना की जाये तब 1936 तक ब्रिटेन के द्वारा किये गये निवेश में कोई वृद्धि न हुई थी। अमेरीकी निवेश की गई पूंजी में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यद्यपि इसका सम्पूर्ण धन कोई विशेष न था। इन वर्षों में चीन के अन्दर जापान द्वारा की गई निवेश पूंजी में 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह वृद्धि चीन में निवेश की गई विदेशी पूंजी की आधी थी। जापान ने विशेष रूप से उत्तरी-पूर्वी चीन के बाजार, भूमि, कारखानों, खानों, कच्चे औद्योगिक माल और संचार एवं परिवहन पर अपनी इजारेदारी कायम कर ली थी। इन सबका परिणाम यह हुआ कि चीन के उद्योगपतियों एवं व्यापारियों को जहाँ एक ओर चीन के अन्दर ही औद्योगिक लाभ में भारी नुकसान उठाना पड़ा वहीं उनको विदेशी व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भी भारी नुकसान हुआ। चीन के तीन बड़े कपड़ा उद्योगों के केन्द्रों पर भी जापान का नियन्त्रण था।

इन सभी आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आंदोलन के सामाजिक आधार को व्यापक करने की सम्भावनायें काफी प्रबल थीं। इसी कारणवश जापान को प्रमुख निशाना बनाना आवश्यक हो गया था।

34.3.4 जापान का सामाजिक एवं राजनीतिक विरोध

जापान के आक्रमण का विरोध तत्काल शुरू हो गया था। 1932 में क्यांगसी सोवियतों ने मंचूरिया पर जापान द्वारा किये गये आक्रमण के विरुद्ध जापान युद्ध की घोषणा कर दी थी। यद्यपि यह प्रतीकात्मक विरोध से अधिक कुछ न था। लेकिन नगरों की जनता में जापानियों का विरोध करने की जबरदस्त प्रवृत्ति

बढ़ रही थी। नगरों में जन मत को सक्रिय करने एवं जापानी सामान के बहिष्कार को संगठित करने में बुद्धिजीवियों ने अग्रिम भूमिका अदा की। छात्र आंदोलन भी राष्ट्रीय विरोध आंदोलन के रूप में विकसित हो गया। 1931 के बसंत में हाई स्कूल तथा विश्वविद्यालय के 15000 छात्र राजधानी की सड़कों पर सैनिक अभ्यास करते और सरकार को बातचीत करने से रोकने तथा जापान पर युद्ध घोषित करने के लिये दबाव डालने हेतु प्रदर्शन करते देखे गये। इन आंदोलनों की अपार शक्ति को पुर्नसंगठित करते हुए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने सम्पूर्ण देश से अपील की कि वे जापान के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये साम्यवादियों के साथ आ जायें। इस कार्य को 1935 में लौंग मार्च के प्रारम्भ करने से काफी समय पहले तथा अपने येनान अड्डे पर पहुँचने से पूर्व ही पूरा कर लिया गया था। चीनी संयुक्त मोर्चे की सामरिक नीति यूरोप में फासीवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे के समरूप थी और इसका जन्म पहले ही हो चुका था। यद्यपि इसको अपना स्वरूप ग्रहण करने तथा लागू करने में कुछ और अधिक समय लगा।

क्योमिंनटांग सरकार ने 1941 तक जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं की और वह साम्यवादियों को अपना प्रमुख शत्रु मानती रही। लेकिन इन सबके बावजूद चीनी जनता के बीच जापान विरोधी बढ़ती भावनाओं ने 1935 में उसे बाध्य कर लिया। विद्यार्थी, बुद्धिजीवी, व्यवसायिक लोग और इनके साथ-साथ श्रमिक जनता भी विशेषकर चीन के पूर्वी भाग में बसने वाले लोग, काफी जोर से आवाज उठा रहे थे। उत्तरी चीन में जापान के हमलों के कारण व्यापक विद्यार्थी विद्रोह फूट पड़ा। अब इस विद्यार्थी आंदोलन को नौ दिसम्बर के आंदोलन (1935) के नाम से जाना जाता है। चीन की राजधानी पीकिंग में विशाल प्रदर्शन हुए। जापान शेष चीन से पांच प्रांतों को अलग करना चाहता था परन्तु विद्यार्थियों के इस आंदोलन ने इस योजना को पूरा होने से रोकने के लिये महत्वपूर्ण योगदान किया। बहुत से नगरों में व्यापारियों एवं कुलियों ने जापानी सामान के विरुद्ध बहिष्कार आंदोलन भी प्रारम्भ किया।

अन्त में मई 1936 में विद्यार्थियों की पहल कदमी पर **पान-चीन फेडरेशन ऑफ एसोशियेशन फॉर नेशनल सालवेशन** का गठन किया गया। यह शीघ्र ही शक्तिशाली राष्ट्रीय आंदोलन के लिये संगठित केन्द्र बन गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रतिष्ठित एसोशियशन से निर्देशकों के रूप में बहुत से वकील, पत्रकार एवं प्राध्यापक जुड़े थे और उन्होंने गृह युद्ध को समाप्त करने तथा जापान का संयुक्त विरोध करने का आहवान किया। इस आहवान को प्रभावी बनाने का यह तात्पर्य था कि नये संयुक्त मोर्चे की चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा कामिंटर्न की नीति को मान लिया जाना। चीन के पूर्वी नगरों में इस फेडरेशन ने साम्यवादियों के साथ सहयोग किया।

ये संगठन एवं आंदोलन जहाँ एक ओर जापान के विरुद्ध थे वहीं ये चीनी सरकार की समझौतावादी नीति एवं जापान के प्रति कमजोर नीति का भी विरोध करते थे। इस राजनीतिक पृष्ठभूमि में "सियान की घटना" हो गई जिसका बड़ा ही महत्व है। 12 दिसम्बर, 1936 को च्यिांग काई शेक का उसके एक जनरल के द्वारा अपहरण कर लिया गया। उस समय च्यिांग काई शेक सियान के दौरे पर था। चीनी सेना अपने देश की जनता के साथ युद्ध करने से खुश न थी चाहे वे साम्यवादी क्यों न रहे हों। सैनिकों ने उसके सम्मुख निम्नलिखित आठ मांगें रखीं:

1) नानकिंग की सरकार को पुनः संगठित किया जाये और ऐसे सभी दलों को उसमें शामिल किया जाये जो राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सामूहिक उतरदायित्व में भाग लें।
2) गृह युद्ध को तुरन्त समाप्त किया जाये और जापान के विरुद्ध सशस्त्र विरोध की नीति को अपनाया जाये।
3) शंघाई में जापान के विरुद्ध आंदोलन के नेताओं को रिहा किया जाये।
4) सभी राजनीतिक बंदियों को माफी दी जाये।
5) जनता को सभा करने की स्वतंत्रता की गारन्टी दी जाये।
6) जनता के देश भक्ति संगठन बनाने तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के अधिकारों को सुरक्षित बनाया जाये।
7) डॉ. सन यात सेन की इच्छाओं को प्रभावी बनाया जाये।
8) तत्काल एक राष्ट्रीय मुक्ति सम्मेलन बुलाया जाये।

इस कार्यक्रम को लागू करने के निम्नलिखित तरीकों पर जोर दिया गया:

- जापान के विरुद्ध सम्पूर्ण चीनियों का एक संयुक्त मोर्चा बने,

- साम्यवादियों के दमन को तुरन्त खत्म किया जाये, और
- व्यापक राजनीतिक सुधार किये जायें।

क्योमिंनटांग की समझौतावादी नीति ने लोगों को यह सोचने के लिये बाध्य कर दिया कि अपनी भावनाओं के प्रति उत्तरदायी एक लोकतान्त्रिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता थी। राष्ट्रवाद एवं क्रान्ति के बीच की कड़ी चीनी जनता की चेतना में पैदा हो चुकी थी। यह महसूस किया जाने लगा कि राजनीतिक सुधार एवं अभिव्यक्ति तथा जनता की संगठित राजनीतिक इच्छा की स्वतन्त्रता के बगैर जापान का संयुक्त तौर पर विरोध नहीं किया जा सकता था। अब चीनी राष्ट्र को स्वतन्त्र राजनीतिक इच्छा तथा सामाजिक रूपांतरण की स्पष्ट घोषणा से अलग करके नहीं रखा जा सकता था।

1931 से 1937 तक आम जनता के मत की अभिव्यक्ति ने इस कड़ी को चीनी जनता के मस्तिष्क एवं राजनीतिक व्यवहार मे स्थापित करने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया। क्यांगसी काल में नगरों में जनता कोई विशेष राजनीतिक गतिविधियां न चला पायी थी लेकिन इस समय वे चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन के साथ जुड़ गयी थी। अब दक्षिण में स्थित क्यांगसी तथा अन्य लाल क्षेत्रों के गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र हटकर उत्तर के उन क्षेत्रों में आ गया जहाँ पर जापान का आक्रमण एवं अधिकार था।

''आठ मांगों'' के साथ-साथ फेडरेशन ऑफ एसोसियशन ऑफ नेशनल सालवेशन के द्वारा प्रस्तुत किये गये कार्यक्रम चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की तत्कालिक मांगों के साथ सांमजस्य रखते थे। चीनी लाल सेना, सोवियत सरकार तथा चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने क्योमिंनटांग से जापान के विरुद्ध जनता के संयुक्त मोर्चे में शामिल होने की अपील की। च्यिांग काई शेक को मुक्त कर दिया गया। पिछले छः वर्षों में घटित राजनीतिक घटनाक्रम के दबाव में च्यांग काई शेक को निम्न बातों के लिए बाध्य होना पड़ाः

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की वैधता,
- साम्यवादियों के दमन का अन्त, और
- उनके साथ सामूहिक तौर पर कार्य करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उसने कुछ राजनीतिक सुधारों का भी वायदा किया। इस प्रकार चीन में एक बार फिर दूसरे संयुक्त मोर्चे के गठन ने सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों के पुनः गठबंधन को सम्भव बनाया। लेकिन यह पहले संयुक्त मोर्चे से काफी भिन्न था।

बोध प्रश्न 1

1) लौंग मार्च (महान अभियान) के महत्व की 10 पंक्तियों में विवेचना करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत है? उन पर (✓) या (×) का चिन्ह लगायें।

i) च्यांग काई शेक ने लौंग मार्च (महान अभियान) का समर्थन किया।

ii) साम्यवादियों के द्वारा येनान का नये क्षेत्र के रूप में चुनाव किया गया।

iii) क्यांगसी सोवियतों ने जापान के हमले का स्वागत किया।

iv) सियान में च्यांग काई शेक का गर्म जोशी के साथ स्वागत किया गया।

3) चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने दूसरे संयुक्त मोर्चे का गठन क्यों किया? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

34.4 व्यवहार में संयुक्त मोर्चा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जापान के विरुद्ध चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा क्योमिंनटांग का संयुक्त मोर्चा लगातार सरलता से कार्य नहीं कर पाया। व्यवहारिक तौर पर इसका तात्पर्य यह भी था कि जिस समय तक जापानी चीन की भूमि पर बने रहेंगे तब तक के लिये साम्यवादियों ने क्योमिंनटांग को शक्ति के बल पर सत्ताच्युत करने का इरादा त्याग दिया था। लेकिन यह एक समस्या पूर्ण विषय था। बहुत सी व्यवहारिक मुश्किलों एवं सामाजिक तनावों का निपटारा किया जाना था क्योंकि संयुक्त मोर्चे के दौरान क्योमिंनटांग ने अपनी इन नीतियों में संशोधन नहीं किया था जबकि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी इन नीतियों में संशोधन कर लिया था। दूसरे साम्यवादियों ने अपनी सशस्त्र सेनाओं को बनाये रखा था जबकि वे नेशनल आर्मी (राष्ट्रीय सेना) के भी सदस्य बने हुए थे। इस प्रकार साम्यवादी ''आठवीं मार्चिगं आर्मी'' एवं ''न्यू फोर्थ आर्मी'' के सभी भाग बन गये इसमें क्योमिंनटांग के सैनिक अधिकारी भी थे।

प्रारम्भ में चियांग काई शेक ने जापानियों के विरुद्ध एक कड़ा रुख अपनाया। 13 अगस्त, 1937 को उसने शंघाई बन्दरगाह पर जापानी नौ सेना के विरुद्ध अपनी श्रेष्ठतम सेना को कार्यवाही के लिये नियुक्त किया। इस समय जापानियों ने महसूस किया कि अब उन्हें सम्पूर्ण चीनी जनता की अपार शक्ति के विरुद्ध मुकाबला करना था और इसी कारणवश उन्होंने भी अपने सम्पूर्ण संसाधनों को गतिशील करने का निश्चय किया। चीनियों के पास इतने श्रेष्ठ हथियार न थे जितने जापानी सेना के पास फिर भी चीनी सेना ने एक-एक इंच भूमि के लिये साहस के साथ संघर्ष किया। इसके परिणामस्वरूप चीनियों की हजारों की संख्या में हत्या हुई। शंघाई में हुआ यह संघर्ष सैनिक दृष्टिकोण से निरर्थक साबित हुआ लेकिन राजनीतिक दृष्टिकोण से इसके द्वारा किये गये साहस एवं वीरता का प्रदर्शन महत्वपूर्ण था। इस लड़ाई की कहानियां जब देश के दूसरे क्षेत्रों में गईं तब उसने देशभक्ति की भावनाओं को प्रज्जवलित किया।

जिन पत्रकारों ने इस लड़ाई के विषय में अपनी रिपोर्ट भेजी उन्होंने लिखा ''1937-1938 की सर्दियों में चीन में अद्भुत कार्य हुआ।'' नानकिंग की पराजय के पश्चात सरकार को हंकाओ में स्थानांतरित कर दिया गया। इस समय उद्देश्य के प्रति पूर्ण एकता थी और ऐसा प्रतीत होता था कि सम्पूर्ण चीन आगे बढ़ रहा था। युद्ध सामंतों की सेनाओं ने दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम से युद्ध में शामिल होने के लिये प्रस्थान किया। साम्यवादी कार्यकर्त्ता, जापानी सेना के विरूद्ध बहादुरी से लड़े। युद्ध में जबरदस्त तरीके से भाग लेने के लिये हंकाओ में सरकार एवं साम्यवादियों ने एक साथ बैठकर योजनायें तैयार कीं। साम्यवादी सेना की एक

अन्य इकाई का गठन किया गया। अप्रैल 1938 में पहली बार जापान के इतिहास में उसकी सेना को चीन में पराजित होना पड़ा।

लेकिन ऐसा मात्र एक ही युद्ध में हो सका और इस एक मात्र विजय के उपरान्त चीन का एक के बाद दूसरा क्षेत्र जापान की आर्थिक एवं सैन्य सर्वोच्चता के सम्मुख घुटने टेकता चला गया। उन्होंने जिस चीज की इच्छा की वही उनके आंचल में आ गई, बड़े-बड़े बन्दरगाहों, औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्रों, तीन मुख्य नदियों के मुहानों पर तथा राजधानी—इन सभी पर जापानियों का अधिकार हो गया।

परन्तु इस घटनाक्रम पर क्योमिंनटांग एवं साम्यवादियों के विचार भिन्न-भिन्न थे। इसके फलस्वरूप जापान के विरूद्ध संघर्ष करने के लिये सामरिक नीति में दो भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण उत्पन्न हो गये—प्रथम था ठहराव तथा दूसरा जनवादी युद्ध। च्यांग काई शेक का मानना था कि जिस समय तक अन्तर्राष्ट्रीय सहायता प्राप्त नहीं हो जाती तब तक संघर्ष को रोक देना चाहिये और यह सहायता 1941 तक पश्चिमी शक्तियों से प्राप्त न हो सकी (इसका पहले भी उल्लेख किया जा चुका है)। च्यांग काई शेक की अवधारणा का यह अर्थ निकलता था कि संघर्ष को कुछ समय के लिये रोक दिया जाये। लेकिन साम्यवादियों ने अपने लाल क्षेत्र येनान से जापान के विरूद्ध संघर्ष को जारी रखा।

1938 तक च्यांग काई शेक को यह स्पष्ट होने लगा था कि साम्यवादी अपने छापामार युद्ध के द्वारा जापानियों के विरूद्ध जनता को बेहतर ढंग से संगठित कर रहे थे। इस कारण वे जनता की सहानुभूति भी जीत रहे थे। संयुक्त मोर्चे के अन्दर अब तनाव गहरे हो गये और च्यांग काई शेक ने अपने पहले की नीति के अनुसार लाल क्षेत्रों की नाकेबन्दी को पुनः प्रारम्भ कर दिया। 1939 के बसंत में उसकी सेनाओं ने साम्यवादियों के विरूद्ध पहले हुनान, फिर हुबई तथा हेबई में कार्यवाही की। नवम्बर में उसकी सेनाओं ने येनान के दक्षिणी भाग को लाल प्रभाव से अलग कर दिया। जनवरी 1941 में साम्यवादियों के मुख्यालय पर आक्रमण किया गया और उनके बहुत से नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया या उनकी हत्या कर दी गयी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1941 में 50 करोड़ की अमेरीकी वित्तीय सहायता, चीन को दी गई और वह क्योमिंनटांग को प्राप्त हुई। अब च्यांग काई शेक साम्यवादियों के विरूद्ध संघर्ष करने पर अधिक आतुर था। 1944 के प्रारम्भ में जापान का दूसरा प्रहार प्रारम्भ हो गया। जापानी सेनाओं ने एक सप्ताह के अन्दर ही क्योमिंनटांग की सेनाओं को पराजित कर दिया। दक्षिण-पश्चिम की ओर होने वाली अपनी आगामी विजयों में उन्होंने शेष रहे अमेरीकी अड्डों को भी नष्ट कर दिया। युद्ध की स्थिति में भी च्यांग काई शेक साम्यवादियों की भांति जनवादी छापामार युद्ध प्रणाली को अपनाने में असफल रहा। वास्तविकता यह है कि 1938 में ही क्योमिंनटांग का जापान के विरूद्ध संघर्ष मृतप्राय हो चुका था।

34.5 येनान क्षेत्रः विरोध करने के स्वरूप

जुलाई 1939 में माओ त्से-तुंग का लेख "जापानी आक्रमण का सामना करने के लिये नीतियां, उपाय, तथा दृष्टिकोण" के नाम से प्रकाशित हुआ। अपने इस लेख में माओ ने बताया कि साम्यवादी नीति पूर्ण विरोध की नीति है और इसकी विशेषता यह है कि इस विरोध के लिये वह जनता के विश्वास पर आश्रित है। युद्ध स्वयं में कोई अन्त न था बल्कि साम्यवादियों का मानना था कि जनता को लामबन्द करना अति अनिवार्य था। यह एक स्वतन्त्र एवं समानता पर आधारित नये चीन का निर्माण करने की दिशा में एक साधन था। यही कारण था कि जहाँ एक ओर साम्यवादियों ने स्वतन्त्र रूप से छापामार युद्ध को जारी रखा वही उन्होंने दुश्मन द्वारा जीते गये क्षेत्रों में जापान विरोधी अड्डों को स्थापित करने की आवश्यकता पर भी बल दिया।

युद्ध के इस चरण में साम्यवादियों की आठवीं रूट आर्मी तथा न्यू फोर्थ आर्मी ने संघर्षपूर्ण युद्ध लड़ा और उसने उत्तर तथा केन्द्रीय चीन में बहुत से जापान विरोधी अड्डों की स्थापना की। 1938 की सर्दियों से 1940 के अन्त तक इन अड्डों में वृद्धि होती रही। इन क्षेत्रों में जापान विरोधी स्थानीय जनशासन की

स्थापना हुई। साम्यवादियों द्वारा अपनी सेनाओं को शत्रु के इलाके के पीछे भेजने के कारणवश ही केवल इन क्षेत्रों की स्थापना न हो पाई थी अपितु इसके अन्य कारण भी थे। जापान अधिकृत इलाकों में किसान आत्म रक्षा समूह, स्वायत्त छापामार, विद्यार्थियों के समूह और क्योमिनटांग के असन्तुष्ट समूह जैसे संघर्षकारी दूसरे समूह स्वतः प्रकट होने लगे। ये दोनों प्रकार के प्रयास एक दूसरे के पूरक थे। इस तरह की युद्ध प्रणाली की अन्तिम परिणति बहुत से लाल अड्डों की स्थापना के रूप में होने के कारण सेना तथा नागरिकों के बीच का अन्तर लुप्त हो गया। सैन्य संगठन स्थायी सेना से लेकर क्षेत्रीय लड़ाकुओं, ग्रामीण रक्षा समूहों, तथा ऐसे किसानों तक फैला हुआ था जो अपने कृषि कार्यों को छोड़े बगैर अक्सर सैनिक कार्यवाहियों में भाग लेते थे। किसानों का समर्थन नये सिपाहियों की भर्ती कराने, सूचना देने, तथा परिवहन सुविधा, खाद्य सामग्री एवं आपात काल के दौरान अन्य प्रकार की सहायता उपलब्ध कराने में निर्णायक साबित हुआ।

सैनिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों के बीच का विभेद भी समाप्त हो गया क्योंकि ये लाल क्षेत्र चीनियों द्वारा नियन्त्रित जापानियों का विरोध करने वाले केन्द्रों में परिवर्तित हो गये। दूसरी ओर ये ऐसे क्षेत्र थे जहाँ पर चीनी जनता की पहलकदमी पर स्वतन्त्र एवं नवीन चीन का निर्माण हो रहा था। ऐसा इसलिये सम्भव हो पाया क्योंकि चीन की जनता स्वयं इस युद्ध को लड़ रही थी।

जब च्यांग काई शेक ने संघर्ष को रोक दिया तब जापानी आक्रमण का भार पूर्णतः साम्यवादियों एवं लाल क्षेत्रों पर हो गया। जापानियों ने चीन के घरों एवं तैयार फसलों को नष्ट करने का अपना अनवरत अभियान जारी रखा। लेकिन जापानियों के द्वारा किये गये बर्बरता पूर्ण अत्याचार के फलस्वरूप चीन में साम्यवादियों का समर्थन लगातार बढ़ता रहा और जापान के विरूद्ध लाल क्षेत्र उनके एक मात्र शरण स्थल बन गये। ऐसे राष्ट्रों की सरकारें जो जापान विरोधी थीं चीन के अन्दर केवल क्योमिंनटांग का समर्थन कर रही थीं। इसलिये अमेरीकी सहायता या युद्ध के अन्त में जापान पर बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय दबाव से क्योमिंनटांग को ही लाभ पहुंचा। इन राष्ट्रों के द्वारा साम्यवादियों को अपना शत्रु माना गया। इन परिस्थितियों में लाल क्षेत्र पूर्णतः अलगाव की स्थिति में थे और वे केवल चीन की मेहनतकश जनता की शक्ति की बदौलत ही बने रह सके। इन लाल क्षेत्रों के बगैर चीन में न तो जापान के विरुद्ध समझौता विहीन संघर्ष किया जा सकता था और न ही स्वतन्त्र एवं संयुक्त चीन का अस्तित्व कायम हो पाता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

34.6 लाल क्षेत्रः नये प्रकार का समाज

यद्यपि लाल क्षेत्र अठारह जगहों में फैले हुए थे लेकिन इन क्षेत्रों में किये गये सामाजिक रूपांतरण के प्रयोग को येनान सामरिक नीति या येनान प्रारूप के नाम से जाना जाता है। येनान सामरिक नीति के पीछे जो विचार था उसको निम्न पंक्तियों के द्वारा स्पष्ट तौर पर समझा जा सकता हैः "यदि आप एक ऐसे किसान को अपना साथी बनाते हैं जबकि उसको अपने काम के दिनों के दौरान सदैव धोखा दिया गया हो, उसकी पिटाई की गई हो और उसको लात मारी जाये, और आप उसके साथ मानवीय व्यवहार करें, उसके मत को जानें, उसको स्थानीय सरकार के लिये मत डालने दें, उसको स्वयं को अपने क्षेत्र की पुलिस का गठन करने दें, उसको अपने करों का स्वयं निर्धारण करने दें, तब किसान एक ऐसा आदमी बन जाता है जो कुछ प्राप्त करने के लिये संघर्ष करता है। वह इसकी सुरक्षा के लिये किसी भी शत्रु के विरूद्ध संघर्ष करेगा चाहे यह शत्रु जापानी हो या फिर चीनी।"

यही वह महत्वपूर्ण नीति थी जिसको साम्यवादियों ने लाल क्षेत्रों में अपनाया। इन क्षेत्रों के लिये इस योजना को 1940 में माओ त्से-तुंग द्वारा लिखित "नये लोकतन्त्र पर" नामक पुस्तिका में देखा जा सकता है। लेकिन इसका प्रयोग इससे पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। जापानियों एवं चीन में उनके जमींदार सहयोगियों के विरूद्ध सम्पूर्ण चीनी जनता के संयुक्त मोर्चे का प्रारम्भ हो जाने के कारण आवश्यकताओं के अनुरूप भूमि नीति का स्थान लगान कम करने की उदार नीति ने ले लिया। भूमि लगान में 25 प्रतिशत तक की कमी की गई। अपनी इस नीति के द्वारा साम्यवादियों ने ऐसे धनी, मध्यम एवं गरीब किसानों के बहुमत का समर्थन प्राप्त किया जो खेती करने वाली भूमि पर काश्तकार थे। उनकी नीति का दूसरा पक्ष ब्याज की दरों में कमी करना था और उसको उन्होंने 10 प्रतिशत वार्षिक दर से तय कर दिया। इससे उनका और समर्थन बढ़ा। तीसरा पक्ष एक प्रगतिशील कर नीति को लागू करना था जिसका अर्थ यह था कि धनी जमींदारों पर

अधिक कर और निर्धनों पर कम कर। यह भी किसानों के पक्ष में किया गया सराहनीय कदम था क्योंकि उनको अपनी आमदनी की तुलना में बहुत अधिक कर अदा करना होता था। इस परिवर्तन का भी स्वागत किया गया। दक्षिण या केन्द्रीय चीन की अपेक्षा उत्तरी चीन के येनान क्षेत्र में बड़े भूस्वामी कम थे। भूमि अधिग्रहण की नीति को छोड़ दिये जाने का मतलब यह नहीं था कि वे मजबूत एवं शक्तिशाली बने रहे।

इन सुधारों के साथ-साथ उत्पादन को बढ़ाने के लिये भी उपाय किये गये। यह महसूस किया गया कि यदि जनता के रहन-सहन के स्तर को सुधारना है तो उत्पादन में भी वृद्धि करनी होगी। पार्टी, सरकार एवं सेना ने उत्पादन में वृद्धि करने के लिये जनता की मदद करने हेतु अपने प्रयासों को तेज किया। जापान विरोधी युद्ध के दौरान सेना एवं सरकारी संस्थाओं ने शैंसी-कांसू-सीमा क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के लिये दो अभियानों का संचालन किया। प्रथम का उद्देश्य (1938 में) रहन-सहन की परिस्थितियों को सुधारना था और दूसरे का लक्ष्य (1941 में) आत्म निर्भरता था। शत्रु की सीमाओं में बने लाल क्षेत्रों में गहन उत्पादन अभियान का प्रारम्भ 1942 में किया गया। 1943 तक इसने एक व्यापक आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस अभियान को मुक्त क्षेत्रों में बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। उत्पादन के क्षेत्र तथा अनाज उत्पादन में भी व्यापक वृद्धि हुई।

उत्पादन वृद्धि तथा उत्पादन संगठन की प्रणाली में सुधार सहित राजनीतिक शिक्षा के नये स्वरूपों को लागू करने के लिये किसानों को पारस्परिक सहयोग दलों एवं सहकारी समितियों के रूप में संगठित किया गया। इस सहयोग में जो सिद्धांत निहित था वह स्वतः कार्य करने एवं पारस्परिक लाभ पर आधारित था। इस प्रकार किसानों ने सामूहिक श्रम तथा औजारों के सामूहिक इस्तेमाल के माध्यम से एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया के नये स्वरूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। जिन तरीकों को अपनाया गया वे उदार एवं स्थानीय परिस्थिति के अनुरूप थे। सहकारी इकाइयों का आकार भिन्न प्रकार का था। उत्पादन इकाई का निर्माण एक गाँव के स्तर पर या एक गाँव के भाग के रूप में किया गया था जिससे कि एक प्रशासनिक इकाई की अपेक्षा वह स्थानीय लोगों के लिये सुविधाजनक एवं उनकी इच्छाओं के अनुरूप हो। आमदनी जो स्वाभाविक तौर पर एक महत्वपूर्ण मामला है, उसका निर्धारण किसी द्वारा खेत पर किये गये श्रम तथा उसके द्वारा खेती में निवेश की गई पूंजी के आधार पर किया गया इस तरह जो जितना अधिक श्रम करता उसको उतना ही अधिक प्राप्त होता। इस प्रकार सहकारी समितियों की व्यवस्था के द्वारा इस निर्णायक राजनीतिक मोड़ पर किसानों के बीच उत्पन्न होने वाली ईर्ष्या एवं विरोधाभास जैसी कमजोरियों को अलग रखा जा सका। इस प्रकार सामूहिक प्रयासों को लागू करते हुए भी व्यक्तिगत किसान पर आधारित अर्थव्यवस्था को बनाए रखा गया। इससे किसान को बिना भूमि पर उसके स्वामित्व को चुनौती मिले सहयोग की प्रेरणा मिली। ये प्रयोग ग्रामीण स्तर पर किसानों के आर्थिक जीवन में लोकप्रिय सहयोग के नये स्वरूपों एवं नयी संगठनात्मक संरचनाओं का प्रतिनिधित्व करते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

औद्योगिक सहकारिताओं को विकसित करने का हस्तशिल्पकारी के क्षेत्र में गांव के स्तर पर ही प्रयास किया गया। उन्होंने स्वयं के लिये कृषि यन्त्रों, कपड़ा, कागज़ आदि वस्तुओं का उत्पादन किया।

तेल शोधन, लोहा ढालने, मशीन बनाने, युद्ध सामग्री की मरम्मत करने, कपड़ा, जीवन उपयोगी वस्तुओं आदि का उत्पादन पूरे युद्ध काल में जारी रहा।

आर्थिक मोर्चे पर शत्रु से संघर्ष करने के लिये शत्रु द्वारा नियन्त्रित किये गये क्षेत्रों के साथ व्यापार करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अनाज, कपास, लोहा तथा चमड़े के निर्यात को प्रतिबंधित कर दिया गया जबकि नमक, दियासिलाई, कपड़ा, बिजली के समान, सैन्य सामग्री एवं अन्य दूसरी आवश्यक वस्तुओं के आयात को बढ़ाया गया।

आर्थिक मोर्चे पर किये गये इन प्रयासों के कारण जापानियों द्वारा किये गए सर्वनाश, लूट एवं नाकेबन्दी का सफलतापूर्वक सामना किया जा सका। इसने लाल क्षेत्रों की रक्षा करने में मदद की और आर्थिक आत्म-निर्भरता को प्रोत्साहित किया। इस नीति के कारण ही स्थानीय आबादी से कर के रूप में लिये जाने वाले अनाज की मात्रा में कमी आयी नये प्रयोगों के लिये मजबूत आधार पैदा करने में भी इससे मदद मिली जिनका आगे चल कर साम्यवादी शासन ने अनुसरण किया।

आर्थिक संगठन के इन परिवर्तनों ने नये लोकतन्त्र के ढांचे को निर्मित करने के लिये दृढ़ आधारशिला के रूप में कार्य किया। लाल क्षेत्रों में स्थानीय स्तर पर राजनीतिक शक्ति का विभाजन, पार्टी, जनता के जन

संगठनों तथा जनवादी मुक्ति सेना के बीच कियां गया। राज्य का वित्त, उत्पादन, शिक्षा तथा सामान्य प्रशासन जैसी सार्वजनिक सेवाओं पर नियत्रंण था। राज्य स्वयं में एक विकेन्द्रीकृत संस्था थी। राज्य के अधिकारीगण सक्रिय तौर पर उत्पादन की प्रक्रिया से जुड़े थे। नेतृत्व संगठनों के कार्य के बीच जो समय बचता था उसमें माओ त्से-तुंग स्वयं अपनी गुफा के आस-पास टमाटर एवं तम्बाकू का उत्पादन करता था। पार्टी का कार्य नये लोकतन्त्रीय ढांचे का निर्माण करने के लिये जनता के बीच सम्पर्क कायम करना एवं उसे राजनीतिक तौर पर गतिशील करना था। युवकों, महिलाओं, तथा किसान एवं मज़दूरों के जन संगठनों ने उत्पादन की देखरेख करने सहित जनता की राजनीतिक चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। जैसा कि हम पहले ही सेना के विषय में उद्धृत कर चुके हैं, उसने युद्ध करने के साथ-साथ अन्य कई महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्यों को भी पूरा किया। इस सम्पूर्ण प्रयोग को "जनवादी लाइन" के नाम से जाना गया था क्योंकि इन नीतियों के अनुसरण के साथ-साथ जनता की पहलकदमी को बहुत सी गतिविधियों में शामिल किया गया था।

नये लोकतान्त्रिक ढांचे का आधार ग्रामीण, जिला एवं क्षेत्रीय—सभी स्तरों पर स्वतन्त्र तथा सार्वभौमिक चुनाव था। वे सभी जिनकी आयु अठारह वर्ष से अधिक थी सभी संस्थाओं के चुनाव में भाग ले सकते थे। लेकिन यह सुनिश्चित किया गया था कि निर्वाचित लोगों में 1/3 साम्यवादी, 1/3 स्वतन्त्र वामपंथी सदस्य, तथा 1/3 वे उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक सदस्य हो सकते थे जो कभी क्योमिंनटांग के सदस्य भी रहे हों। इस प्रकार संयुक्त मोर्चे को एक राजनीतिक स्वरूप प्रदान करने के लिये मेहनतकश मध्यम एवं निर्धन किसानों के गठबंधन, छोटे पूंजीपतियों, बुद्धिजीवियों एवं "राष्ट्रीय पूंजीपतियों" को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। संक्षेप में जापान के विरूद्ध दूसरे संयुक्त मोर्चे में उन सभी लोगों का स्वागत किया गया जो जापानी साम्राज्यवाद एवं सामन्तवाद का विरोध करना चाहते थे।

चुनावी प्रक्रिया एवं प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त सहकारिताओं के आर्थिक निर्णयों में, गाँव आत्म रक्षा लड़ाकू दस्तों में तथा नयी भूमि नीति को लागू करने में सभी सदस्यों की भागेदारी को सुनिश्चित करके लोकतन्त्र को अधिक व्यापक एवं गहन बनाया गया। साधारण व्यक्तिगत आत्म अभिव्यक्ति की अपेक्षा लोकतन्त्र ने स्वयं ही उच्च सम्पर्क ग्रहण करना शुरू कर दिया। इस प्रकार जापानियों के विरूद्ध सामूहिक संघर्ष को प्रभावशाली ढंग से संगठित करने के लिये यह एक साधन बन गया। लाल क्षेत्रों की लगभग सम्पूर्ण आबादी ने नये लोकतान्त्रिक शासन का समर्थन किया यद्यपि वह, जापानियों के विरूद्ध युद्ध के बहुत से तरीकों से फंसी हुई थी। लाल क्षेत्रों का ग्रामीण अंचलों में स्थित होने के कारण स्वाभाविक था कि नये शासन का मुख्य सामाजिक आधार किसान ही थे किन्तु इसमें मेहनतकशों, बुद्धिजीवियों एवं राष्ट्रीय पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर देने से केवल भूमि सुधार की अपेक्षा व्यापक कार्यों के लिये नीति गत ढांचे को तैयार करने को भी सुनिश्चित कर दिया गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

महिलाओं को लामबन्द करने के लिये भी विशेष प्रयास किये गये। महिला संगठनों को नयी नीति के ढांचे के साथ तथा उनके समय की मांगों के साथ जोड़ते हुए केवल बल प्रयोग के द्वारा किये जाने वाले विवाहों, माता-पिता, तथा ससुराल एवं पति के सहायक के रूप में कार्य करने, या राजनीतिक एवं सामाजिक मांगों जैसी समस्याओं को हल करने तक सीमित न रखा गया। उन्होंने महिलाओं को कृषि कार्यों तथा सहकारिताओं में भाग लेने के लिये गतिशील बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। यद्यपि इन स्थानीय समितियों में राजनीतिक नेतृत्व के लिये मात्र 8 प्रतिशत महिलाएं ही चुनी गईं फिर भी उनकी मुक्ति के कार्य का प्रारम्भ हो चुका था।

34.7 अन्तिम चरण

1941 में संकटात्मक स्थिति पैदा हो गई। मुक्त किये गये लाल क्षेत्रों में नये प्रकार की सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन रचना कर दिये जाने से सम्पूर्ण जनता के समर्थन को प्राप्त कर लिया गया था। लेकिन इस समय में जापानी आक्रमणों में और तेजी आ गई और लाल सेना की नाकेबन्दी एक बार फिर पूर्णतः कर ली गई। क्योमिंनटांग के साथ भी संबंध पूर्ण रूप से समाप्त हो गये थे। जापानियों ने "सभी की हत्या एवं सभी कुछ लूट लो" की नीति का अनुसरण किया। वास्तव में यह वर्ष साम्यवादियों के लिये

कठिनाइयों वाला था। 1941 में पर्ल हार्बर पर बमबारी किये जाने के बाद अमेरीकियों तथा अंग्रेज़ों ने चीन के अन्दर जापानियों पर अपना दबाव बढ़ाना शुरू कर दिया। लेकिन वे अपने हितों को आगे बढ़ा रहे थे। साम्यवादी अमेरीका तथा ब्रिटेन को जापान के स्थान पर लाने का समर्थन नहीं करते थे। लेकिन क्योमिंनटांग ने उनका विरोध नहीं किया। इसलिये युद्ध की इन परिस्थितियों में चीन के अन्दर अमेरीका एवं ब्रिटेन के प्रवेश करने से केवल क्योमिंनटांग को लाभ मिला। क्योमिंनटांग भी 1941 तक पुनः साम्यवादियों का विरोध करने लगा था। इसी कारणवश 1941 के बाद मुक्त किये गये क्षेत्रों पर दबाव बढ़ने लगा।

1941 से 1943 तक जापानियों ने अधिकृत क्षेत्रों तथा मुक्त लाल क्षेत्रों के आस-पास जबरदस्त किले बन्दी की। इन नये जबरदस्त आक्रमणों के कारण हजारों लोगों का कत्लेआम किया गया और फसल एवं गाँवों को नष्ट कर दिया गया। मुक्त क्षेत्रों मे जनसंख्या में तेजी से कमी हुई और स्थायी सेना की संख्या 1942 में 300,000 मात्र रह गई।

इस प्रबल धारा के प्रवाह को 1944 में ही बदला जा सका। किसानों के लड़ाकू दस्तों का विस्तार किया गया। अब संघर्ष एक निर्णायक मोड़ की ओर बढ़ रहा था। 1944-45 में संघर्ष का विस्तार किया गया। साम्यवादी क्षेत्रों का विस्तार शांटूंग, शैंसी, जियांगूस, हुनान की सीमाओं, हुबई एवं हेनान क्षेत्रों में किया गया। शत्रु द्वारा अधिकृत नगरों एवं गाँव में जापान विरोधी आंदोलन और अधिक व्यापक एवं गहरा हो गया। उत्तर, केन्द्रीय तथा दक्षिण चीन के शत्रु क्षेत्रों में स्थापित की गई सरकारों को उखाड़ फेंका गया परन्तु इन क्षेत्रों मे शत्रु द्वारा जबरदस्त लूटपाट भी की गई थी। अप्रैल 1945 तक पीपुल्स आर्मी की संख्या 910,000 तक, छापामारों की संख्या 2,00,000 तक तथा आत्म-सुरक्षा दस्तों की संख्या 10,000,000 सदस्यों तक हो गयी। 19 मुक्त क्षेत्रों की स्थापना की गई जिनका क्षेत्रफल 950,000 वर्ग किलो मीटर था तथा जनसंख्या 95,500,000 तक थी। मुक्त क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण सामरिक स्थिति वाले क्षेत्र थे। जापानियों द्वारा अधिकृत किये गये अधिकतर क्षेत्रों, सम्पर्क लाइनों को जनवादी सेनाओं के द्वारा घेर लिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी बीच 7 मई, 1945 को जर्मनी के आत्मसमर्पण की संधि पर हस्ताक्षर हो गये। जर्मनी के द्वारा बिना किसी शर्त के पूर्ण आत्मसमर्पण कर देने से जापान बड़ी ही अजीब स्थिति में आ गया और उसका सैनिक तौर पर पूर्णतः अलगाव भी हो गया। फिर भी जापान ने चीन में अपने अभियान को जारी रखा। 14 अप्रैल, 1945 को चीन एवं सोवियत संघ के बीच मित्रता एवं गठबंधन की संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि का तात्पर्य यह था कि दोनों देश उस समय तक मित्र राष्ट्रों का समर्थन करते रहेंगे जब तक कि जापान की अन्तिम पराजय नहीं हो पाती। 8 अगस्त, 1945 को सोवियत संघ ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

इसका अनुसरण करते हुए लाल सेना ने भी जापान के विरूद्ध नये आक्रमणों को शुरू किया। दो माह के अन्दर ही पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने जापानियों से 315,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र, जिसकी जनसंख्या 18,712,000 थी और 190 शहरों को मुक्त करा लिया। मुक्त क्षेत्रों का पुनः विस्तार होनें लगा।

2 सितम्बर, 1945 को अमेरीका द्वारा हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरा दिये जाने से जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया।

इस प्रकार चीनी जनता के द्वारा जापान के विरूद्ध लड़े गये लम्बे एवं वीरता पूर्ण संघर्ष का अन्त हुआ। हजारों लोगों ने नये सिद्धान्त पर आधारित अपनी देश की मुक्ति के लिये अपने जीवन, अपने रोजगारों तथा जीवन के अपने परम्परागत मार्ग को बलिदान कर दिया। बाह्य शत्रु को पराजित कर स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली गई। मुक्त किये गये क्षेत्रों में नये जीवन को रचा गया और इन नये क्षेत्रों ने उनको युद्ध में विजय प्राप्त करने में मदद की यद्यपि इनकी क्योमिंनटांग एवं उसके सहयोगियों से अभी रक्षा भी की जानी थी। इसका विवरण अर्थात चीनी क्रान्ति की सफलता का विवरण आगामी इकाई में किया जायेगा।

बोध प्रश्न 2

1) साम्यवादियों ने महिलाओं को लामबन्द करने के लिये जो प्रयास किये उनका 5 पंक्तियों मे विवरण दें।

....

....

....

....

....

2) युद्ध में अमेरिका के शामिल होने पर चीन पर जो प्रभाव हुआ उसकी विवेचना लगभग 5 पंक्तियों में कीजिये।

....

....

....

....

....

3) लाल क्षेत्रों की कार्य शैली की लगभग 15 पंक्तियों में विवेचना कीजिये।

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

34.8 सारांश

साम्यवादियों के लिये महान अभियान (लौंग मार्च) एक महान अनुभव था। लगातार पराजयों के बावजूद अन्ततः उन्होंने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया और जनता में उनका समर्थन बढ़ा। जैसे ही चीन में जापान

का आक्रमण शुरू हुआ वैसे ही तत्काल साम्यवादियों ने विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि क्योमिंनटांग के साथ संयुक्त मोर्चे का गठन किया गया था लेकिन इस समय में भी साम्यवादियों ने अपने प्रभाव क्षेत्रों में अपनी क्रान्तिकारी नीतियों एवं सुधारों को जारी रखा। लाल क्षेत्रों में ऐसे नये समाज की रचना की गई जिसने जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र को रूपातंरित कर दिया। पीपुल्स लिबरेशन आर्मी एवं अन्य साम्यवादी संगठनों ने जापानियों का विरोध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

34.9 शब्दावली

राष्ट्रीय पूंजीपतिः ऐसे पूंजीपति जिन्होने जापान के विरूद्ध युद्ध का समर्थन किया।

लौंग मार्च (महान अभियान)ः लौंग मार्च अग्रेंज़ी भाषा का शब्द है और इसका प्रयोग क्यांगसी सोवियत को 1934 में लाल सेनाओं ने खाली करने के बाद जो प्रस्थान किया उसके लिये किया जाता है।

34.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर का आधार भाग 34.2 को बनायें।
2) i) × ii) ✓ iii) × iv) ×
3) अपने उत्तर का आधार उपभाग 34.3.4 को बनायें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर के लिये भाग 34.6 को देखें और उसके अन्दर सामाजिक सुधार उपायों, राजनीतिक शिक्षा तथा भागेदारी को शामिल करें।
2) संयुक्त राज्य अमेरिका ने साम्यवादियों का विरोध किया और क्योमिंनटांग का समर्थन उसके युद्ध में शामिल होने पर चीन के द्वारा जापान का विरोध करने की शक्ति बढ़ी, लेकिन इसने साम्यवादियों के विरूद्ध क्योमिंनटांग को भी ताकत प्रदान की। देखें भाग 34.7
3) अपने उत्तर का आधार भाग 34.6 को बनायें।

इकाई 35 चीन की क्रांति

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य
35.1 प्रस्तावना
35.2 कुछ टिप्पणियाँ
35.3 युद्धोपरांत स्थिति और राजनीतिक शक्तियाँ
35.4 गृह युद्ध का प्रारंभ
35.5 क्योमिंनटांग के आक्रमण और उसकी पराजयः 1946-47
35.6 साम्यवादी विजय (1948-49)
35.7 नई सत्ता की कठिनाइयाँ
35.8 राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढांचा
 35.8.1 भूमि सुधार
 35.8.2 उद्योग
 35.8.3 सामाजिक परिवर्तन
35.9 चीन की क्रांति की महत्ता
35.10 सारांश
35.11 शब्दावली
35.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

35.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आपः
- चीन में द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त क्रियाशील राजनीतिक शक्तियों के बारे में जान सकेंगे,
- चीन के गृह युद्ध के बारे में जान सकेंगे,
- क्योमिंनटांग की पराजय के कारणों को जान सकेंगे,
- साम्यवादी शासन के सम्मुख उत्पन्न कठिनाइयों से परिचित हो सकेंगे,
- नई सत्ता द्वारा अपनाए गए आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक ढाँचे को समझ सकेंगे, और
- चीन की क्रांति के महत्व का मूल्यांकन कर सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

यह इकाई 1945 से 1949 के मध्य के घटनाक्रम का वर्णन करती है। यानी जापान द्वारा आत्मसमर्पण से लेकर उस समय तक जबकि चीन में जन गणतंत्र की स्थापना की गई। ये ऐसे चार वर्ष थे जिस दौरान क्योमिंनटांग और साम्यवादी सेनाओं के मध्य जमकर युद्ध हुआ। यह गृह युद्ध साम्यवादियों की विजय के साथ समाप्त हुआ। इस प्रकार चीन में जनतंत्र पर आधारित एक नवीन शासन की स्थापना हुई। इस घटनाक्रम के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए यह इकाई नई सत्ता के सम्मुख उत्पन्न समस्याओं का भी जिक्र करती है। इसके साथ-साथ नई सत्ता द्वारा अपनाए गए आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक ढांचों की भी चर्चा की गई है।

35.2 कुछ टिप्पणियां

चार वर्षों से कम की अवधि में नानकिंग में स्थित क्योमिंनटांग सरकार का धीरे-धीरे परंतु पूर्ण पतन हो गया। उसकी पराजय का कारण मात्र लड़ाइयों में हार या विश्व युद्ध के उपरांत चीन की अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन में उसका सक्षम न होना ही नहीं था। वास्तव में क्योमिंनटांग की इस राष्ट्रवादी सरकार ने किसी भी प्रकार के राजनीतिक या सामाजिक परिवर्तनों को प्रारंभ करने या अपनाने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था। इसके विपरीत साम्यवादियों द्वारा मुक्त कराए गए क्षेत्रों में चीनी जनता ने एक नए जीवन का आभास क्यांगसी व येनान के काल में किया था। अब चीनी जनता पुनः क्योमिंनटांग के प्रतिक्रियावादी शासन के अधीन लौटने को तैयार नहीं थी। इस प्रकार जनता की इच्छाओं को पूर्ण करने की असमर्थता भी क्योमिंनटांग की पराजय का उतना ही बड़ा कारण था जितना कि सैनिक मुठभेड़ों में उसकी हार। लेनिन ने एक बार यह संकेत किया था कि:

> "इतिहास में महान परिवर्तन तभी होते हैं जबकि बड़ी संख्या में लोग पुराने तौर-तरीके से जीने की इच्छा नहीं रखते और जब लोगों का एक ऐसा भाग जिसका पुराने तौर-तरीके में स्वार्थ है परंतु वह उन्हें बनाए रखने में असमर्थ होता है।"

चीन में वास्तव में 1945-49 के दौरान एक ऐसा ही ऐतिहासिक मोड़ देखने को मिलता है।

जापान की पराजय और चीन के राष्ट्रवाद की विजय के उपरान्त जो गृह युद्ध चीन में छिड़ा वह मात्र इस बात का फैसला करने के लिए नहीं था कि चीन में भावी शासक कौन होंगे। वस्तुतः इससे चीन के करोड़ों लोगों के भविष्य का निर्णय होना था। यानि कि उनकी राजनीतिक व सामाजिक स्थिति या प्रतिदिन का जीवन किस प्रकार का होगा। अतः हमारे लिए यहाँ केवल यही जानना महत्वपूर्ण नहीं है कि क्योमिंनटांग की हार क्यों हुई वरन् उतना ही महत्वपूर्ण यह जानना है कि साम्यवादी क्यों और कैसे जीते। संक्षेप में, हमें यही नहीं देखना चाहिए कि चीन के लोग किसके विरुद्ध लड़े वरन् यह भी कि वे किस बात के लिए लड़े। वास्तव में साम्यवादियों ने जो सकारात्मक विकल्प प्रस्तुत किया था वह एक ऐसे समाज की रूपरेखा थी जिसमें एक प्रजातंत्र और सामाजिक न्याय के लिए स्थान था। यह चीन के लोगों के लिए एक नई बात थी या जिसका कुछ-कुछ अनुभव उन्हें साम्यवादियों द्वारा "मुक्त क्षेत्रों" में छोटी अवधि तक चलाई गई व्यवस्था में हो चुका था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहाँ पर यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि साम्यवादियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जो युद्ध चीन के लोग कर रहे थे, वह वास्तव में उनकी अपनी लड़ाई थी। यह केवल एक गृह युद्ध था, सैनिक मुठभेड़ न होकर एक क्रांतिकारी दौर था। इस दौरे में हिस्सा लेकर चीन की जनता न केवल अपने में बदलाव ला रही थी बल्कि संपूर्ण चीन के समाज को बदल रही थी। चीन की क्रांति को समझने के लिए आगे के खंडों में हम इन सामाजिक प्रक्रियाओं की चर्चा करेंगे।

क्रांति का अर्थ केवल सरकार के बदलने से ही नहीं है। क्रांति के अंतर्गत विद्यमान सामाजिक ढांचे की स्थापना शामिल है। अतः चीन में जो सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों के संबंधों में बदलाव आया उनकी दृष्टि से क्रांतिकारी प्रक्रिया का अध्ययन करना महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार जन प्रजातंत्र की स्थापना के लिए जो आंदोलन हुआ उसको भी समझ लेना आवश्यक है।

1949 की चीन क्रांति ठीक उस प्रकार की सामाजिक क्रांति नहीं थी जो कि 1917 में रूस में हुई थी। स्वयं चीनी साम्यवादियों ने 1949 की विजय को जिन आयामों से देखा वे थे:

- कि यह सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम थी,
- कि यह किसान संघर्षों की जीत थी, और
- इसके द्वारा एक ऐसे राष्ट्र की एकता पुनःस्थापित हुई थी जो कि अनेक वर्षों से परस्पर विरोधी शक्तियों द्वारा बाँट दिया गया था। साम्यवादियों ने इसे एक ऐसी जनतांत्रिक क्रांति बताया जिसके द्वारा साम्यवादी, जो कि समाजवाद स्थापित करना चाहते थे, सत्ता में आए।

1 अक्तूबर 1949 को चीन के साम्यवादी दल के चेयरमैन माओ त्सु-तुंग ने चीन के जनवादी गणतंत्र की स्थापना की घोषणा की थी। परंतु लाल (साम्यवादी) सेना की वास्तविक विजय का तिथीकरण इतना आसान

नहीं है। उत्तरी चीन के कई क्षेत्र तो 1936 में ही मुक्त करा लिए गए थे परंतु दक्षिण के कई क्षेत्र तो 1950 तक जाकर ही मुक्त कराए गए। अतः 1949 की विजय वास्तव में 1945 से 1951 तक के काल की प्रतीक है जिस दौरान जनवादी सरकार ने धीरे-धीरे संपूर्ण चीन में अपना नियंत्रण स्थापित किया। परंतु 1 अक्तूबर 1949 के दिन की प्रतीकात्मक महत्ता है। इस दिन चीन की जनता ने अपने भाग्य का निर्णय करने की सत्ता अपने हाथ में ली। एक के बाद एक तीव्रता से ऐसे कानून लागू किए गए जिन्होंने परम्परागत शोषक नीतियों को समाप्त कर दिया। प्रत्येक व्यक्ति के लिए ये स्वतंत्रता के पैगाम थे जबकि पहली व्यवस्था में सबने कष्ट भोगे थे। ये कानून और संविधान चीन में नई सरकार और संगठन के आधार बने।

35.3 युद्धोपरांत स्थिति और राजनीतिक शक्तियाँ

दूसरे विश्व युद्ध के नतीजे साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए निराशाजनक थे। यद्यपि इटली, जर्मनी और जापान की हार हुई थी परंतु अब ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका जैसी विजेता शक्तियां भी उपनिवेशों में अपने विशेषाधिकारों को बनाए रखने में समर्थ नहीं थीं। वास्तव में रूस की विजय, पूर्वी यूरोप में जनवादी सरकारों की स्थापना और सशक्त राष्ट्रीय आंदोलनों ने एशिया में उपनिवेशवाद को समाप्त करने की प्रक्रिया का आधार बना दिया था। चीन से न केवल जापान बल्कि यूरोपीय शक्तियों को भी पीछे हटना पड़ा था। वास्तव में विश्व युद्ध की समाप्ति पर एक सशक्त साम्यवादी गुट के उभरने से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संतुलन परिवर्तित हुआ। समाजवाद व राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन बल पकड़ रहे थे। अतः युद्धोपरांत अंतर्राष्ट्रीय स्थिति इस हद तक चीन की जनता के पक्ष में थी कि वह विदेशी ताकतों और उन चीनी शक्तियों को जो कि विदेशियों से साठगांठ करती थीं, चुनौती दे, संघर्ष कर सके। यद्यपि जापानी आत्मसमर्पण के बाद चीन में आंतरिक शक्ति संतुलन क्योमिंनटांग के पक्ष में दिखाई पड़ रहा था परंतु इसके बावजूद अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में चीनी साम्यवादियों के लिए फ़ायदे की स्थिति थी। जापान विरोधी संघर्ष के दौरान उन क्षेत्रों का जो कि मुक्त लाल क्षेत्र समझे जाते थे, विस्तार हुआ था। परंतु 1945 के अंत तक चीन की अधिकांश भूमि पर क्योमिंनटांग का ही नियंत्रण था। सभी अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों ने क्योमिंनटांग को ही मान्यता दी थी। चीन के साम्यवादियों को विश्व शक्तियों के मध्य अभी इस बात की मान्यता हासिल करनी थी कि उन्हें चीन की जनता में व्यापक समर्थन हासिल है। साम्यवादियों के मुकाबले क्योमिंनटांग अभी भी निम्न कारणों से आगे था:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- उसके पास व्यापक वित्तीय साधन थे,
- उसके पास अधिक सैन्य सामग्री थी,
- प्रशासन, आवागमन के साधनों और अखबारों पर उसका नियंत्रण था और इसके साथ-साथ उसे चीनी समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों का सहयोग भी प्राप्त था।

उस समय के कुछ युद्ध पत्रकारों की रिपोर्ट से ऐसा स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इस सबके बावजूद भी क्योमिंनटांग साम्यवादियों का सफाया नहीं कर पाया। वास्तव में स्थिति फरवरी 1917 के रूस से कुछ मिलती-जुलती थी। वहाँ पर उस काल में दोहरी सत्ता मौजूद थी। एक उन लोगों की जिनके हाथों में सत्ता की बागडोर थी और दूसरे वे लोग जिनकी ताकत जनप्रिय सहयोग पर आधारित थी। क्यांगसी और येनान काल में जो भूमि नीति अपनाई गई थी और जो प्रजातांत्रिक प्रयोग मुक्त क्षेत्रों में किए गए थे उनसे समाज में चीन के साम्यवादियों का लोकप्रिय आधार बना था। इसके द्वारा एक ऐसा समर्थन बना था जिससे राजनीतिक सत्ता की लड़ाई के परिणाम को पहले से नहीं बताया जा सकता था। जबकि क्योमिंनटांग के पास 1945 में बेजोड़ श्रेष्ठता मौजूद थी।

ऐसा नहीं था कि चीन के किसानों को मुक्त क्षेत्रों में सोवियत शासन प्रणाली से शिकायतें नहीं थीं या वे उसके आलोचक नहीं थे, या शहरों में निवासी समाजवादी भविष्य को पसन्द करते थे। परंतु इसमें कोई दो राय नहीं कि वे साम्यवादियों के साथ अपने अनुभव को क्योमिंनटांग के साथ हुए अनुभवों से अधिक पसंद कर रहे थे। किसान विशेषतौर से क्यांगसी और येनान सोवियतों की व्याख्या "अपनी सरकार" कह कर करते थे और उन्हें पुराने दिनों के अनुभव से अच्छा मानते थे। वास्तव में साम्यवादियों के लोकप्रिय आधार

का एक प्रमुख कारण यह भी था कि "मुक्त क्षेत्रों" में पुलिस का कार्य किसान संगठनों द्वारा किया जाता था और स्थानीय स्वरक्षा में गाँव के किसान, दस्तकार और क्रांतिकारी शामिल थे।

दूसरी तरफ क्योमिंनटांग नियंत्रित क्षेत्रों में जन उत्साह न के बराबर था और सर्वत्र निराशा का माहौल था। सरकारी और सैनिक तंत्र में ऊपर से लेकर नीचे तक भ्रष्टाचार फैला था। इसके अतिरिक्त दूर-दराज के क्षेत्रों में केंद्रीय सरकार की पकड़ ढीली होती जा रही थी सरकार को अपनी अफसरशाही और सेना के लिए भोजन एकत्र करने में भी कठिनाई हो रही थी। किसानों में जबरन भर्ती, करों और कई अन्य लादी जाने वाली ज्यादतियों को लेकर रोष बढ़ रहा था। वेतन भोगी लोग मूल्य वृद्धि को लेकर आर्थिक संकट में थे और बुद्धिजीवी भी असंतुष्ट थे। अत्याधिक राजनीतिक नियंत्रण और दमन के कारण बुद्धिजीवी तेजस्विता और नेतृत्व में भी कमी आई थी।

वास्तव में साम्यवादी और क्योमिंनटांग के नियंत्रण वाले क्षेत्रों में जो परस्पर विरोधाभासी स्थिति मौजूद थी उसने उस सामाजिक वातावरण और पृष्ठभूमि को जन्म दिया जिसके अंतर्गत साम्यवादियों और क्योमिंनटांग के मध्य संघर्ष लड़ा गया। जापान की पराजय से यद्यपि राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम सफल रहा था परंतु अब इसने चीन में विद्यमान आंतरिक विरोधाभासों के संघर्ष का रूप ले लिया। यानि कि चीन और जापान के मध्य के विरोधाभास ने अब एक ऐसे विरोधाभास का रूप लिया जिसमें चीन की जनता का प्रतिनिधित्व साम्यवादी दल के हाथ में था और जमींदारों और बड़े बूर्जुआ वर्ग का नेतृत्व क्योमिंनटांग ने सम्भाल रखा था। अमरीका इस समय क्योमिंनटांग की मदद कर रहा था। जापानियों पर विजय के बाद अब चीन की जनता ने अपना मुख्य लक्ष्य आंतरिक शोषकों से मुक्ति पाना बनाया। इस प्रकार चीन के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में वर्ग संघर्ष मुख्य विरोध का रूप लेकर आंतरिक स्थिति पर छाया रहा। राजनीति के क्षेत्र में प्रजातंत्र और सामाजिक मुक्ति मुख्य मुद्दे बने। गृह युद्ध के विस्तार के साथ-साथ यह स्पष्ट हो गया कि इन मुद्दों की पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा क्योमिंनटांग है। अतः संघर्ष में जनता की हिस्सेदारी भी बढ़ती गई। इस संघर्ष में नियंत्रण के क्षेत्रों का आकार इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि नियंत्रित क्षेत्रों में जीवन का तरीका। और राजनीतिक शक्तियों के संबंधों में हो रहे परिवर्तनों में साम्यवादियों के पक्ष में यही बात निर्णायक बनी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद चीन में राजनीतिक ताकतों की स्थिति की चर्चा 15 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही या गलत हैं? (✓) या (×) का निशान लगाइए।

i) मुक्त क्षेत्रों के किसान पुराने समय की स्थिति में लौटना चाहते थे।

ii) क्रांति में केवल सरकार में ही बदलाव आता है।
iii) 1945-49 के दौरान क्योमिंनटांग के पास साम्यवादियों के मुकाबले अधिक साधन थे।
iv) चीन के गृह युद्ध में अमरीका क्योमिंनटांग का समर्थन कर रहा था।

35.4 गृह युद्ध का प्रारम्भ

चीन में जापान के आत्मसमर्पण के बाद सैन्य सामग्री, सम्पत्ति और क्षेत्र आदि पर अधिकार स्थापित करने के लिए छीना-झपटी प्रारंभ हो गई। चीनी सेना के अध्यक्ष ने चीन में जापानी कमांडर को यह आदेश भेजा कि वह अपने 1,090,000 सैनिकों और सैन्य सामग्री को युद्ध क्षेत्रों के केवल चीनी कमांडरों के सम्मुख ही समर्पित करे। यद्यपि साम्यवादी जापान के विरुद्ध संघर्ष में बराबर के हिस्सेदार थे। चीनी सेना के सभी कमांडर क्योमिंनटांग के अधिकारी थे।

इस प्रकार इस आदेश के परिणामस्वरूप साम्यवादी जापानी सैन्य टुकड़ियों का समर्पण लेने से वंचित कर दिए गए। इसी समय च्यांग काई शेक ने साम्यवादी सेना की टुकड़ियों को तार द्वारा अपने स्थानों पर रहने का आदेश दिया और उन्हें जापानी शस्त्रों को जब्त करने से भी मना कर दिया।

साम्यवादी यह समझ गए कि क्योमिंनटांग इस नीति के द्वारा चीन में एकमात्र राजनीतिक शक्ति बनना चाहता है। अतः माओ-त्सु-तुंग ने तुरंत लाल सेना की टुकड़ियों को अंदरूनी मंगोलिया, मंचूरिया और उत्तरी व दक्षिण शैंशी की ओर कूच के आदेश दिए। उन्हें दुश्मन की सेनाओं पर हमला करने और उनका आत्मसमर्पण लेने को तैयार रहने के लिए भी कहा गया। चू-तेह के नेतृत्व में लाल सेना ने ऐसा ही किया। क्योमिंनटांग सरकार ने इस पर साम्यवादियों को जनता का शत्रु बताया। इसके जवाब में माओ ने क्योमिंनटांग पर यह आरोप लगाया कि उसने चीन की जनता के विरुद्ध युद्ध छेड़ा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तत्काल युद्ध मंचूरिया को लेकर हुआ परंतु साम्यवादी वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने में कामयाब रहे। ऐसा तब हुआ जबकि लाल सेना में 1 लाख से भी कम सैनिक थे जबकि क्योमिंनटांग की सेना में 3 लाख से अधिक सैनिक थे। अमरीका की यह धारणा थी कि चीन में गृह युद्ध उसके स्वार्थों के विरुद्ध जाएगा अतः उसने दोनों के मध्य मध्यस्थता का प्रयास किया। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने शांति स्थापना के लिए अपने विशेष दूत जनरल जोर्ज सी मार्शल को भेजा। च्यांग काई शेक मंचूरिया पर पूर्ण नियंत्रण से कम पर सुलह के लिए तैयार नहीं था जबकि वहाँ साम्यवादियों का कब्जा था। यह स्वाभाविक ही था कि साम्यवादियों ने इसे नहीं माना। 1946 आते-आते समझौते की समस्त संभावनाएं समाप्त हो गईं और गृह युद्ध पूरे जोर शोर से प्रारंभ हो गया।

इस बीच मुद्रास्फीति और बढ़ती हुई कीमतों के कारण क्योमिंनटांग क्षेत्रों में ही गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। जबकि "मुक्त क्षेत्रों" में साम्यवादियों ने गद्दारों के विरुद्ध अभियान छेड़ा। उदाहरण के लिए ज़िन जमींदारों ने जापानी सेनाओं का साथ दिया था, गाँव की सभाओं में उनकी भर्त्सना की गई। 1946 में पहले से ही जारी किए गए एक निर्देश के आधार पर लगान और ब्याज की दर में कमी करने के लिए एक जन आंदोलन चलाया गया। इसके साथ-साथ गरीब व मध्यम श्रेणी के किसानों के ऋण माफ कर दिए गए। मई 1946 में, "भूमि जोतने वाले की" का नारा लोकप्रिय हुआ। जमींदारों पर भारी कर लगाए गए। इस प्रकार क्योमिंनटांग व मुक्त क्षेत्रों में हो रहे घटनाक्रम के कारण वर्ग संघर्ष (कृषि क्रांति के द्वारा) गृह युद्ध का एक प्रमुख मुद्दा, समझौता वार्ता के विफल होने से पहले ही बन चुका था। यद्यपि चीन की जनता युद्ध से परेशान थी तथापि इस मुद्दे को लेकर वह एक बार फिर युद्ध को तैयार थी। वास्तव में इस बार का युद्ध उनके अपने अधिकारों और जीविका की रक्षा को लेकर था।

35.5 क्योमिंनटांग के आक्रमण और उसकी पराजय: 1946-47

जून 1946 में क्योमिंनटांग ने दो लाख सैनिकों की सहायता से उत्तरी व मध्य चीन के बड़े साम्यवादी अड्डों पर हमले किए। इसके कारण साम्यवादियों को मध्य मैदानों और यांगसी क्षेत्र से पीछे हटना पड़ा। मार्च 1947 तक येनान जो कि लौंग मार्च के बाद सबसे बड़ा साम्यवादी अड्डा था, क्योमिंनटांग के कब्जे में आ गया।

परंतु क्योमिंनटांग की यह विजय भ्रामक थी। साम्यवादी अभी अपनी ताकत को एकजुट कर रहे थे और सीधे टकराव से बच रहे थे। इसीलिए उन्होंने आक्रामक रवैया नहीं अपनाया। न ही अभी उन्होंने अपने क्षेत्रों को बचाने का प्रयास किया। वास्तव में उन्होंने गुरिल्ला युद्ध की नीति अपनाई जिसमें यकायक आक्रमण कर पुनः सुरक्षा की स्थिति में आ जाना शामिल था। इस प्रकार की नीति के कारण उन्हें बहुत कम नुकसान उठाना पड़ा। दूसरी तरफ क्योमिंनटांग को अपनी सेना का एक बड़ा भाग साम्यवादियों से जीते गए क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए रखना पड़ा। उनके सामने कोई और रास्ता भी नहीं था क्योंकि इन क्षेत्रों की जनता साम्यवादियों की एक नवीन जीवन देने की नीति के कारण उनके पक्ष में थी और क्योमिंनटांग की विरोधी थी। इस प्रकार साम्यवादी अपनी सुविधा और साधनों के अनुसार अपनी मनमर्जी का रणक्षेत्र चुनते थे और अपनी समस्त शक्ति से उन क्षेत्रों में आक्रमण करते थे जहाँ क्योमिंनटांग की स्थिति कमजोर थी।

1947 के बसंत में पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने लिन-पिआओ के नेतृत्व में लगातार ऐसे आक्रमण किए कि शहरों में केंद्रित क्योमिंनटांग की सेनाएं हैरान हो उलझन में पड़ गईं। शहरों को छोड़ समस्त मंचूरिया को साम्यवादियों ने जीत लिया। फरवरी 1947 में साम्यवादी दल की केंद्रित समिति ने क्योमिंनटांग की राष्ट्रवादी सरकार को उखाड़ फेंकने का नारा दिया। 1947 के अंत तक साम्यवादी हिंबई, शानटूंग और शान्शी क्षेत्रों में पुनः अपना नियंत्रण करने में सफल रहे। उन्होंने फरवरी 1947 तक 56, मई में 90 और सितम्बर में 97 क्योमिंनटांग की सैन्य टुकड़ियों को हराया। इस प्रकार क्योमिंनटांग की लगभग एक चौथाई सेना पराजित हो गई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क्योमिंनटांग को इस समय सैनिक कठिनाइयों के साथ-साथ अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में अमरीका से सांठ-गाँठ के परिणामस्वरूप आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा। जापान ने आत्मसमर्पण के उपरान्त समस्त औद्योगिक सामग्री, बैंक व्यवस्था और वित्तीय संस्थाएं साम्यवादियों को न सौंपकर क्योमिंनटांग के हाथों में दी थी। इस सब संपत्ति का मूल्य लगभग 1800 लाख अमरीकी डॉलर था और इस पर बड़े पूंजीपतियों के छोटे से गुट का नियंत्रण था। वास्तव में चीन के चार बड़े पूंजीपति परिवार 70 से 80 प्रतिशत औद्योगिक पूंजी के मालिक थे। जापानियों ने चीनी जनता की जो भूमि और अन्य सम्पति जब्त की थी उस पर भी अब क्योमिंनटांग का अधिकार था। इन चार बड़े परिवारों और उनके सहयोगियों ने, जो कि क्योमिंनटांग को नियंत्रित करते थे, एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था का निर्माण करने के स्थान पर राष्ट्रवादी सरकार को साम्यवादियों के विरूद्ध अमरीकी सहायता के बदले में चीन की अर्थव्यवस्था को अमरीकियों को गिरवी रखने को बाध्य किया। अमरीकियों को साम्यवाद विरोधी ताकत को सहयोग देने में कोई एतराज न था। इसके अतिरिक्त उन्हें सोवियत रूस के विरूद्ध एक अड्डा भी मिल जाता।

नवम्बर 1946 में गृह युद्ध के दौरान ही क्योमिंनटांग ने चीन-अमरीका वाणिज्य और जहाजरानी संधि पर हस्ताक्षर कर चीन के बाजार अमरीकी उत्पादों के लिए खोल दिए थे। इस प्रकार चीन के विदेश व्यापार में अमरीका को एक निर्णायक स्थान मिल गया था। उदाहरण के लिए चीन के 51 प्रतिशत आयात और 57 प्रतिशत निर्यात पर अमरीकी नियंत्रण था। जबकि 1936 में ये आँकड़े 22 और 19 प्रतिशत ही थे। कई उद्यमों में प्रबंध और प्रशिक्षण का कार्य अमरीकी नियंत्रण में रख दिया गया। अमरीकियों ने कई कारखाने भी लगाए और अनेक सुविधाएं या तो प्राप्त की या उन्हें दे दी गईं।क्योमिंनटांग के प्रशासन का पूर्ण लाभ उठाते हुए अमरीकियों ने करों से अपने को बचाया, कच्चे माल पर एकाधिकार स्थापित किया और बाजार व यातायात सुविधाओं पर अपना नियंत्रण स्थापित किया।

इस सबका अर्थ था चीनी अर्थव्यवस्था का अमरीकी पूंजी द्वारा उपनिवेशीकरण। इस से चीन के राष्ट्रीय उद्योगों और वाणिज्य का विकास पूर्णतया रुक गया। परंतु यह स्थिति चीन के बुर्जुवा वर्ग और उद्यमियों के एक बड़े वर्ग के हितों के विरूद्ध थी। और गृह युद्ध की स्थिति में इसका नतीजा यह निकला कि व्यापारिक

और औद्योगिक बुर्जुवा वर्ग की एक बड़ी संख्या साम्यवादियों के साथ सहयोग करने को तैयार थी। अर्थात् अब साम्यवादियों के पक्ष में सामाजिक ताकतों का पुनः मिलन संभव था।

मूल्यों में असीमित वृद्धि ने क्योमिंनटांग क्षेत्रों में भयंकर सामाजिक व आर्थिक संकट उत्पन्न किया। मूल्य सूचकांक जो 1937 में 100 था 1947 में बढ़कर 210 हो गया। अंतः चीनी जनता निराशाजनक स्थिति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन स्वीकार करने को तैयार थी। उसने यह भी महसूस किया कि जापानियों को देश से बाहर खदेड़ने के लिए जो कुर्बानियां दी गई थीं क्योमिंनटांग देश को फिर से एक विदेशी सत्ता (अमरीका) के हाथों में बेचकर उन्हें बेकार बना रहा था। विदेशी शासन से जो स्वतंत्रता उन्होंने हासिल की थी उसका धीरे-धीरे हनन हो रहा था। ऐसी स्थिति में जनता को केवल साम्यवादी ही संघर्षरत दिखाई दिए।

क्योमिंनटांग के विरुद्ध उसके स्वयं नियंत्रित क्षेत्रों में और उनके बाहर समाज के लगभग सभी तबकों में असंतोष फैल रहा था। कभी-कभी इसका नेतृत्व भूमिगत साम्यवादी कर रहे थे। परंतु अक्सर यह अपने आप ही क्योमिंनटांग की नीतियों के कारण उभरता रहा। सितम्बर 1946 से कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का नारा "चीन छोड़ो" लोकप्रिय हो उठा था। शीघ्र ही एक ऐसा जन आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसके समर्थकों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे तब तक आंदोलन जारी रखेंगे जब तक कि अम रिका चीन नहीं छोड़ जाते। अलग-अलग इलाकों में इस आंदोलन ने अलग-अलग रूप लिए। उदाहरण के लिए, एक दिसम्बर 1947 के दिन शंघाई में छोटे-छोटे स्टॉल (दुकान) लगाने वालों ने संघर्ष छेड़ा। कारण कुछ यूँ था कि शंघाई में लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ सड़क के किनारे लगे छोटे स्टॉलों से लेते थे और वहाँ अनेक स्टॉल वाले दुकानदार थे। क्योमिंनटांग सरकार ने अपने बड़े व्यापारी समर्थकों का बाजार पर एकाधिकार स्थापित कराने की दृष्टि से सड़क किनारे की छोटी दुकानों को बन्द करने के आदेश दिए। इससे इन छोटे दुकानदारों के लिए रोजी-रोटी की समस्या खड़ी हो गई। जब उन्होंने इस आदेश का विरोध किया तो उन्हें क्रूरतापूर्वक दबाया गया। क्योंकि शंघाई क्योमिंनटांग और अमरीकी गठबंधन का प्रमुख केंद्र था इस घटना के विरुद्ध समस्त चीन में रोष फैला। एक अन्य हादसे में पीकिंग विश्वविद्यालय की एक छात्रा का अमरीकी सैनिक द्वारा बलात्कार किया गया। इसके विरोध में सारे चीन में 5 लाख से अधिक युवाओं ने स्कूलों व विश्वविद्यालयों में हड़ताल की और प्रदर्शन भी किए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मई 1947 में एक "नवीन चार मई आंदोलन" के प्रारंभ करने की घोषणा की गई। इसका उद्देश्य क्योमिंनटांग की समस्त नीतियों का विरोध करना था। आंदोलन का कठोरता से दमन किया गया। सैकड़ों युवा घायल हुए और दो महीने में 13000 से अधिक गिरफ्तार किए गए। परंतु इस दमन से देशभक्त प्रजातांत्रिक आंदोलन को बढ़ावा ही मिला। शीघ्र ही यह आंदोलन नागरिक अधिकारों की रक्षा के आंदोलन के रूप में आगे बढ़ा।

एक लम्बी अवधि की निष्क्रियता के बाद श्रमिक आंदोलन भी फिर से उभरने लगा। मई 1947 में शंघाई के श्रमिकों ने भूख और महगांई के विरुद्ध हड़तालें की। यांगसी के निचले क्षेत्रों में "चावल दंगे" (Rice riots) भड़क उठे। नतीजन परिवर्तन विरोधी पुरातनपंथियों के विरूद्ध एक बार फिर शहरों में भी संघर्ष छिड़ गया।

गांवों में, क्योमिंनटांग के क्षेत्रों में किसान आंदोलन ने तीव्रता पकड़ी। दंगों और प्रदर्शनों के साथ किसानों ने कर और लगाव देने से इंकार कर दिया। उन्हें इकट्ठा करने वाले अधिकारियों पर हमले किए गए। ताइवान में भी क्योमिंनटांग के शासन का विरोध हुआ।

सरकार ने इस सब का जवाब पाशिवक शक्ति के इस्तेमाल के रूप में दिया। कवि वेन-ई-टयो की, जो कि प्रजातंत्र के संघर्ष से जुड़े थे, हत्या कर दी गई। मई 1947 में हड़तालों और प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगाए गए। यहाँ तक कि दस से अधिक व्यक्तियों को एक साथ अर्जी देने का भी अधिकार नहीं था। इस प्रकार शांतिपूर्वक विरोध करने के रास्ते भी बंद कर दिए गए। जो लोग क्योमिंनटांग और साम्यवादियों के मध्य खड़े थे उनके लिए क्योमिंनटांग की दमनकारी नीति को देखते हुए अब साम्यवादियों के साथ जाने के कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

क्योंकि "मुक्त क्षेत्रों" में साम्यवादियों को किसानों का समर्थन प्राप्त था, इसलिए वे क्योमिंनटांग के दमन से बचे रहे। इन क्षेत्रों में साम्यवादी दल ने अपनी स्थिति अक्तूबर 1947 के कृषि सुधार कानून के द्वारा और मजबूत की। इसके द्वारा जमींदारों की भूमि जब्त कर ली गई। धनी किसानों को एक निर्धारित सीमा से ज्यादा भूमि दे देनी पड़ी। वास्तव में इस कानून का उद्देश्य जमींदारों के वर्ग को समाप्त करना था न कि व्यक्तिगत रूप से उनकी हत्या करना। जमींदारों और धनी किसानों, बड़े जमींदारों और छोटे जमींदारों, साधारण जमींदारों और उत्पीड़न करने वाले जमींदारों के मध्य स्पष्ट भेद किया जाता था। प्रत्येक श्रेणी के साथ कृषि कानून के ढाँचे के आधार पर व्यवहार किया जाता था। परंतु इस कानून का आधारभूत सिद्धांत "भूमि जोतने वालों की" ही था।

ध्यान देने की बात यह है कि इन सुधारों को प्रशासनिक तौर पर ऊपर से नहीं लादा गया। कृषि परिवर्तन के आंदोलन की वास्तविक ताकत गरीब और मध्यम श्रेणी के किसान थे। भूमि का वितरण निम्न तरीके से किया जाता था:

समस्त सार्वजनिक भूमि और जमींदारों की भूमि पर स्थानीय किसान सभा कब्जा कर लेती थी। उसके बाद समस्त भूमि को प्रति व्यक्ति दर के हिसाब से बांटा जाता था। समस्त इलाके की जोतों के आकार को भी पुनः समायोजित किया जाता था। इसमें यह ध्यान रखा जाता था कि इलाके के प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादकता या आकार के हिसाब से बराबर की जोत मिले।

एक साल के भीतर 100 लाख से अधिक किसानों को "मुक्त क्षेत्रों" में भूमि प्राप्त हो गई थी। साम्यवादी दल ने किसानों को स्वैच्छिक तौर पर सहकारिता आंदोलन में भी भाग लेने को प्रेरित किया। कृषि के तरीकों में सुधार और उत्पादकता में बढ़ोतरी लाने के लिए ऐसा किया गया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 1947 में जो विजय साम्यवादियों ने हासिल की, वह केवल सैनिक तरीकों से ही नहीं मिली थी। क्योमिंनटांग और मुक्त क्षेत्रों में जो अलग-अलग रूप वर्ग संघर्ष ने लिए उनसे जहाँ एक ओर क्योमिंनटांग की स्थिति कमजोर हुई तो दूसरी तरफ समस्त चीन में साम्यवादी दल की स्थिति सुदृढ़ हुई। भूमि मिलने के साथ किसान गृह युद्ध में उत्साहपूर्वक साम्यवादियों की ओर कूद पड़े। क्योमिंनटांग के सैनिकों की संख्या निरंतर गिर रही थी। युद्ध प्रारंभ होने के समय यह संख्या 4,300,000 थी जो कि जुलाई 1947 में 3,700,000 रह गई। उधर पीपुल्स लिबरेशन आर्मी जो पहले 1,200,000 थी अब लगभग 2,000,000 हो गई। युद्ध स्थिति में भी एक आधारभूत परिवर्तन आया था। पिछले 20 वर्षों से चीन में क्रांतिकारी सेना सुरक्षात्मक युद्ध ही लड़ती आई थी, परंतु अब पहली बार उसने आक्रामक स्थिति हासिल की थी। लिबरेशन आर्मी क्योमिंनटांग क्षेत्रों में दूर तक जा पहुंची माओ-त्सु-तुंग ने इस अवस्था को "युद्ध में बदलाव लाने वाला मोड़" बताया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

35.6 साम्यवादी विजय (1948-49)

1948 की बसंत ऋतु तक साम्यवादियों ने पीली नदी के रास्ते में तकरीबन सभी शहरों में प्रवेश पा लिया था। येनान पर भी (जो कि जापान के विरूद्ध युद्ध में उनका प्रमुख अड्डा रहा था और 1946 में उसे उन्हें छोड़ना पड़ा था) पुनः अधिकार स्थापित कर लिया गया। आगे के तीन प्रमुख अभियानों में उन्होंने क्योमिंनटांग की सेनाओं को पूर्णतया पराजित किया:

- पहला मुख्य अभियान पूर्वी चीन में था। 16 सितम्बर, 1948 के दिन शानटुंग प्रांत की राजधानी त्सीनान पर हमला किया गया। आठ दिन के संघर्ष के बाद उसे क्योमिंनटांग से स्वतंत्र करा लिया गया।
- 12 सितम्बर से 2 नवम्बर 1948 तक पीपुल्स आर्मी ने उत्तरपूर्व में जो अभियान चलाया उसके परिणामस्वरूप शैनयांग और समस्त उत्तर-पूर्वी चीन मुक्त करा लिया गया। यह एक महत्वपूर्ण इलाका था क्योंकि चीन के औद्योगिक नगर और सबसे उत्पादक क्षेत्र यहीं थे।
- 7 नवम्बर 1948 और 18 जनवरी 1949 के मध्य पीपुल्स आर्मी ने हुआई नदी के उत्तर का इलाका मुक्त करा लिया और उसके दक्षिण का भी बड़ा भाग अपने नियंत्रण में ले लिया।

5 दिसम्बर 1948 से 1जनवंरी 1949 के मध्य एक अन्य अभियान में पी.एल.ए. ने पीकिंग को भी मुक्त करा लिया। इस समय च्यांग काई शेक ने बातचीत का दिखावा किया परंतु वह अपनी सेनाओं के पुनर्गठित करने को वक्त चाहता था। साम्यवादियों को उसका यह खेल स्पष्ट हो गया। अतः अप्रैल 1949 में उन्होंने संपूर्ण देश को मुक्त कराने के लिए एक नया अभियान शुरू किया। लगभग 20 वर्ष से चले आ रहे क्योमिंनटांग के मुख्यालय नानकिंग को जीतने में सिर्फ तीन दिन लगे। नानकिंग के मुक्त होने का अर्थ था क्योमिंनटांग के शासन की समाप्ति जिसके बाद चीन की समस्त मुख्य भूमि साम्यवादियों के अधिकार में आ गई। अब च्यांग काई शेक अपने कुछ सैनिकों के साथ ताइवान भागने को बाध्य हुआ। चीन के पश्चिमी प्रांतों में शासन कर रहे स्वतंत्र युद्ध मामलों में अपने हथियार डाल दिए और साम्यवादी शासन को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार साम्यवादियों की गृह युद्ध में विजय हुई। इस प्रकार चीन की जनता की पहली बार अपनी सरकार सारे देश में बनी।

जैसा कि पहले भी होता आया था, क्योमिंनटांग द्वारा जन सहयोग खोना और साम्यवादियों को जन सहयोग प्राप्त होना इस निर्णायक विजय का महत्वपूर्ण कारण था। वास्तव में मूल्य वृद्धि को रोकने में क्योमिंनटांग की असमर्थता और उत्पादन का रुकना क्योमिंनटांग को जनता से दूर ले गये थे।

उधर 1948-49 के मध्य साम्यवादियों ने एक लचीली कृषि नीति अपनाकर जनता के एक बड़े हिस्से का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। प्रारंभ में एक उदार नीति अपनाई गई। उदाहरण के लिए धनी किसानों को इस समय नहीं छेड़ा गया और न ही कोई ऐसा कदम उठाया गया जो मध्यम वर्ग और बुर्जुवा वर्ग के हितों के विरूद्ध था। इस प्रकार ये वर्ग भी उनसे खफा नहीं हुए। इस समय प्रयत्न यह था कि समस्त प्रजातांत्रिक शक्तियों को एक साथ रखा जाए। इसमें कई गैर साम्यवादी और साम्यवादियों विरोधी अन्य गुट भी शामिल थे। इन सबके संयुक्त प्रयासों से राष्ट्र का पुनर्गठन किया जाना था। इस प्रकार की नीति को माओ ने अपने पर्चे "ऑन द पीपुल्स डेमोक्रेटिक डिक्टेटरशिप" के द्वारा सामने रखा था और "मुक्त क्षेत्रों" में इसे लागू कर दिया गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार विजय हासिल होने से पहले ही नए राज्य के ढाँचों के निर्माण की परिस्थिति बना दी गई थी। इसका आधार अन्य प्रजातांत्रिक गुटों के साथ गठबंधन कर एक ऐसे "समान कार्यक्रम" का अपनाया जाना था जो चीन की जनता की महत्वकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता था। 1 अक्तूबर 1949 के दिन चीन के जनवादी गणतंत्र की औपचारिक रूप से घोषणा कर दी गई।

35.7 नई सत्ता की कठिनाइयाँ

नई सत्ता के लिए अभी भी कई परेशानियाँ थीं। विश्व की अन्य शक्तियां उसे मान्यता देने को तैयार नहीं थीं। अमरीका ताइवान में च्यांग काई शेक की सरकार को ही चीन की सरकार के रूप में मान्यता दिए हुए था। अन्य शक्तियों का रवैया हिचकिचाहटपूर्ण था—कुछ का मान्यता का दिखावा करना और कुछ का शांत रहना। साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र में चीन की सीट नहीं दी गई। सोवियत रूस को छोड़कर, जो कि एक समाजवादी देश था, अन्य देशों का रवैया शत्रुतापूर्ण ही था। वास्तव में चीन की इस नई सत्ता में उन्हें साम्राज्यवादियों द्वारा समर्पित शक्तियों की हार और समाजवाद की विजय दिखाई पड़ी। और वे सैद्धांतिक तौर पर समाजवाद के विरोधी थे। प्रजातंत्र की बात अब वे भूल गए और इस तथ्य को भी अनदेखा कर दिया कि नई सत्ता को व्यापक जन समर्थन प्राप्त था। अमरीका ने तो वास्तव में अगले 20 वर्षों तक साम्यवादी चीन को मान्यता नहीं दी।

नई सत्ता के सम्मुख अन्य समस्याएँ थीं:

- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का पूर्णतया तहस नहस होना,
- तेजी से बढ़ रही मुद्रास्फीति,
- नष्ट-भ्रष्ट और बिगड़ी हुई संचार व्यवस्था,
- विदेशी व्यापार का न होना,
- ऐसे उद्योग जिनमें कोई उत्पादन नहीं हो रहा था, और
- कई क्षेत्रों में अकाल का खतरा।

इसके अतिरिक्त चीन की आधुनिक भाप से चलने वाली नौकाओं और जहाजों में से कुछ भी नहीं बचा था। ये यांगसी नदी पर आवागमन और व्यापार के मुख्य साधन थे और विदेशी मिलकियत के अधीन थे।

इन सबकों देखते हुए कई प्रेक्षकों की यह धारणा थी कि साम्यवादी शासन अधिक समय तक नहीं चल पाएगा। लेकिन वे यह नहीं समझ पाए कि नई सत्ता के पक्ष में एक बहुत महत्वपूर्ण बात थी उसके पीछे चीन की जनता का समर्थन और सहयोग। चीन की जनता नई सत्ता को अपने देश के इतिहास और अपने व्यक्तिगत जीवन में एक नए सवेरे के रूप में देख रही थी। बहुत कम को यह मालूम था कि साम्यवाद क्या है परंतु सब इससे परिचित थे कि वे एक नवीन समाज का निर्माण कर रहे हैं। गरीब से गरीब व्यक्ति समाज को उसकी जरूरत और उसमें अपने नए स्थान को महसूस कर रहा था। अनेक वर्षों के बाद पहली बार सारा देश संगठित और शांतिपूर्ण था।

संचार व्यवस्था को तेजी से ठीक किया जा रहा था। कुछ आलोचकों ने यह आरोप लगाया कि इस कार्य में लगे मजदूरों को मजदूरी नहीं दी गई। परंतु वे यह भूल जाते हैं कि यह एक जन कार्य था और जनता ने मिल-जुलकर इस कार्य को संभाला था। उसके खान-पान की व्यवस्था पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने की और उनसे वही वर्ताव किया जाता था जैसा सैनिकों से। 1949 के जाड़े में शहरों में भोजन की कोई कमी नहीं हुई। यांगसी नदी के रास्ते से छोटी-छोटी नावों में खाद्य सामग्री 1400 मील ऊपर ले जाई गई। जिस प्रकार 1917 में सोवियत रूस ने विदेशी राज्यों द्वारा लगाई गई आर्थिक रूकावटों के बावजूद अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफलता प्राप्त की थी, ठीक उसी प्रकार चीन की जनता ने भी की।

सेना को अब और कोई लड़ाई नहीं लड़नी थी। अतः सैनिकों को शहरों में टूटी हुई इमारतों के पुनर्निर्माण का कार्य सौंपा गया। एक नई मुद्रा लागू की गई। 1951 के मध्य तक, यानि कि विजय के दो वर्षों में ही, मुद्रास्फीति पर अंकुश लगा दिया गया और अर्थव्यवस्था में कुछ स्थायित्व आया।

DIKSHANT IAS

इस नए स्थायित्व के आधार पर चीन के साम्यवादी दल ने अब अपने कियांगसी और येनान के अनुभवों को सारे देश मे लागू करने का प्रयास किया।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) क्योमिंनटांग की पराजय में सहयोगी कारकों की लगभग 10 पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) साम्यवादियों का सामाजिक आधार क्या था? 5 पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

3) नई सत्ता को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनकी चर्चा 10 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

35.8 राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढाँचा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1948 में माओ के सुझाव पर साम्यवादी दल द्वारा मई दिवस पर अपनाए गए नारों में यह घोषणा की गई थी कि:

> "समस्त प्रजातांत्रिक दल, जन संगठन और जन नेताओं को तुरंत एक राजनीतिक सलाह सम्मेलन बुलाना चाहिए जिसमें इस बात पर विचार किया जाए कि किस प्रकार एक जन सम्मेलन बुलाकर जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनाई जाए।"

इस प्रकार की सरकार की रूपरेखा का ब्यौरा माओ ने अपने निबंध "**ऑन द पीपुल्स डेमोक्रेटिक डिक्टेटरशिप**" में दिया था। इसमें जिस राजनीतिक ढांचे की बात माओ ने की थी उसमें देश के राजनीतिक आर्थिक जीवन में चीन की जनता के बहुत व्यापक भाग द्वारा हिस्सा लिए जाने की बात कही गई थी। वास्तव में जमींदारों और प्रतिक्रियावादियों की शक्ति को गिराने के लिए जनता की समस्त शक्ति को लगाया जाना था।

साम्यवादी विजय द्वारा चीन में गणतंत्र की घोषणा के साथ ही इस प्रकार की सरकार बनाई गई। इस गठबंधन में 14 दल या गुट शामिल थे। सरकार में और प्रांतों में उपराज्यपालों के रूप में अनेक गैर-साम्यवादी भी इसमें शामिल थे। यह राजनीतिक ढांचा इस बात का प्रतीक था कि नई सत्ता को व्यापक समर्थन प्राप्त है। सामाजिक गठबंधन की दृष्टि से यह एक प्रकार का संयुक्त मोर्चा था जिसमें मजदूर, किसान और बूर्जुवा वर्ग शामिल था। माओ को जनवादी गणतंत्र का चेयरमैन बनाया गया।

35.8.1 भूमि सुधार

सबसे पहले लागू की गई महत्वपूर्ण नीतियों में भूमि सुधार की नीति थी। इसमें दो बातें थीं:

- समस्त भूमि गाँव या जिला स्तर पर जहां तक हो सके बराबर रूप में बांटी जानी थी, और
- भूतपूर्व जमींदारों को एक छोटा हिस्सा ही दिया जाना था और वह भी तब जबकि वे स्वयं उस पर कार्य करने को तैयार हों।

नवीन राजनीतिक ढांचे के विस्तृत आधार को देखते हुए कृषि नीति भी उदार ही रखी गई थी जिससे कि गांवों में अधिकांश वर्गों का समर्थन बना रहे। इस दृष्टि से गृह युद्ध के दौरान अपनाई गई नीति से यह नीति अधिक उदार थी। वास्तव मे इसके द्वारा गांवों के आर्थिक विकास में तीव्रता लाने का प्रयास किया

गया था । साथ ही साथ सामाजिक और आर्थिक संबंधों को भी एक नया मोड़ दिया जाना था ।

1950 में जो कृषि कानून पारित किया गया उसमें 1947 के कानून की अपेक्षा गांवों में जमींदारों की जमीन और संपत्ति का विभाजन बिना किसी मुआवज़े के किया गया । परंतु इस बार उन्हें शहरों में अपनी संपत्ति और व्यापार बनाए रखने की छूट दे दी गई । इसी प्रकार 1947 की अपेक्षा धनी किसानों को उनकी जोत बरकरार रखने की छूट इसलिए दी गई कि उनकी उत्पादन क्षमता अधिक थी और शहरों में चावल पहुंचाया जाना था । लेकिन यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये लचीले तरीके केवल नए मुक्त क्षेत्रों में ही लागू किए गए जहां पर कि पहली बार भूमि सुधार लागू किए जा रहे थे । पुराने मुक्त क्षेत्रों मे 1947 के तरीके (जिनकी चर्चा हम इकाई 4 में कर चुके हैं) लागू रहे ।

जमींदारों की संपत्ति गरीब और मध्यम श्रेणी के किसानों के बीच बांटी गई । भाड़े की खेती समाप्त कर दी गई । इसमें जमींदारों को नकदी में या फसल के हिस्से के तौर में लाभ मिलता था । इस सुधार का अर्थ यह था कि देश की कुल कृषि उपज का जो 1/4 भाग जो पहले जमींदारों की जेब में जाता था अब बन्द हो गया । बेगार और जमींदारों द्वारा ऐसे जाने वाले अन्य चढ़ावे भी खत्म कर दिए गए । इस सुधार से लगभग 300 लाख किसानों को लाभ हुआ । परंतु धनी किसान अपनी उत्तम उत्पादकता की जमीनें अपने पास रखने में सफल रहे । इस कानून ने किसान सभाओं (जो कि इन परिवर्तनों को लागू करने के लिए बनाई गई थीं) की शक्तियों की भी व्याख्या की । जहां मतभेद थे उनका फैसला करने के लिए जन अदालतें बनाई गईं ।

इस प्रकार जन आंदोलनों और किसान सभाओं की स्थापना ने जमींदारों की राजनीतिक शक्ति भी खत्म कर दी । इससे किसानों में अत्यधिक आत्मविश्वास आया । चीन के सभी क्षेत्रों में अत्याचारी जमींदारों पर जन मुकदमे चलाए गए । कई जमींदारों को उनके अपराध के अनुसार सजाएं सुनाई गईं । इसमें नजरबंध किए जाने से लेकर माफी मंगवाना तक शामिल था । कुछ जमींदारों के साथ क्रूर व्यवहार भी किया गया और यह काल जमींदारों के लिए मानसिक व राजनीतिक तनाव का काल रहा । परंतु यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ-जहाँ किसानों ने कानून अपने हाथ में लिया और जमींदारों को सबक सिखाया उन किसानों का एक लम्बी अवधि तक बर्बरता के साथ जमींदारों द्वारा शोषण किया गया था । परंतु जमींदारों से बदला कुछ ही घटनाओं में लिया गया और यह उस काल का सामान्य कानून नहीं था ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि सुधारों ने गांवों के सामाजिक जीवन में गतिशीलता लाने में भी सहयोग दिया । वहां किसान सभाओं के द्वारा साक्षरता और स्वास्थ्य अभियान चलाए गए । इसके अतिरिक्त लोगों के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए स्त्री और युवा संगठनों ने भी प्रयास किए जिससे सभी इनमें हिस्सा ले सकें ।

35.8.2 उद्योग

उद्योग और उनका प्रबंध बूर्जुवा वर्ग के हाथों में था । साम्यवादियों का इसमें कोई दखल न था । अतः 1950 के कानून द्वारा उन्होंने इस क्षेत्र में अपनी गतिविधियों को श्रमिक संघ बनाने, मूल्य नियंत्रण, आवश्यक वस्तुओं के वितरण और राजकीय आदेशों को लागू करवाने तक सीमित रखा । साम्यवादी दल द्वारा अनेक उद्योगों, शहरों और प्रांतों में श्रमिक संगठन बनाए गए । ये संगठन श्रमिकों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ साक्षरता अभियान में भी कार्यरत थे । राज्य के निर्देशन में निजी अर्थव्यवस्था का विकास जारी रहा और व्यक्ति मुनाफा भी कमा सकते थे । भ्रष्टाचार, घूसखोरी और संसाधनों की बर्बादी, जैसी बुराइयों के विरूद्ध जो कि उत्पादन को प्रभावित करती थी व्यापक आंदोलन छेड़ा गया । यातायात के साधनों, व्यापार और वित्त व्यवस्था को भी ठीक किया गया ।

35.8.3 सामाजिक परिवर्तन

1950 के विवाह कानून ने सामाजिक संबंधों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । इसका उद्देश्य स्त्रियों को समान अधिकार दिलवाना था । शादी को एक ऐसे बंधन का दर्जा दिया गया जो परस्पर समानता और स्वतंत्र सहमति पर आधारित था । इससे [illegible] की स्थिति में व्यापक सुधार आया । स्त्रियां उत्पादन कार्य में सक्रिय भूमिका अदा कर सामाजिक [illegible] को संभालने लगीं । वास्तव में वे नए चीन की सक्रिय नागरिक बनीं । विवाह कानून में [illegible] व्यवस्था थी । छोटी बच्चियों की हत्या (Female

लगातार लोगों ने अपने बच्चे बेचे थे परंतु अब ऐसा करना अवैध घोषित कर दिया गया। कई स्त्रियों ने, जिनके विवाह उनकी मर्जी के खिलाफ हुए थे, तलाक प्राप्त करना चाहा और स्त्री संगठनों ने प्रत्येक रूप से इसमें उनकी मदद की। वैश्यावृत्ति को अपराध घोषित किया गया और वैश्याओं को एक नया जीवन प्रारंभ करने के लिए स्वास्थ्य सुविधायें और भावात्मक सहयोग दिया गया।

अफीम और अन्य नशीले पदार्थों का धंधा करने वालों से कड़ा व्यवहार किया गया। अफीमचियों के उपचार की व्यवस्था की गई और उन्हें नशे के दुष्प्रभावों से परिचित कराया गया। सार्वजनिक स्थानों पर जुआ खेलना वर्जित किया गया। वास्तव में समस्त अवैध गतिविधियों का सामना करते वक्त शासन ने मनुष्यों की मर्यादा के सिद्धांत की रक्षा की।

नई सत्ता के सम्मुख एक अन्य कठिनाई थी देश का सांस्कृतिक पिछड़ापन। माओ ने यह कहा था कि "किसानों को शिक्षित करना एक गहन समस्या है।" इससे निपटने के लिए व्यापक पैमाने पर गांवों में, कारखानों में और शहर की गरीब जनता के मध्य साक्षरता अभियान छेड़े गए। नतीजन 1949-1952 के मध्य तीन वर्षों में ही विद्यार्थियों की संख्या दुगुनी हो गई। उदाहरण के लिए प्राइमरी स्कूलों में यह 24 से 51 लाख और सैकेंडरी स्कूलों मे 1 से $2\frac{1}{2}$ लाख हो गई।

इन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों को लागू करने के लिए जो संगठनात्मक ताना बुना गया वह देश के पिछड़े से पिछड़े इलाकों तक पहुंचाया गया। गृह युद्ध के प्रारंभ के समय साम्यवादी दल की सदस्य संख्या लगभग12 लाख हो गई। इसी प्रकार दल से संबंधित जन संगठनों का भी समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विस्तार हुआ। जैसे, श्रमिक संगठन, स्त्री संगठन, युवा दल, बुद्धिजीवियों के संगठन, सोवियत संघ और अन्य साम्यवादी देशों से मित्रता क्लब आदि। ये सभी संगठन काफी सक्रिय थे और समाज में अपने अपने क्षेत्रों की समस्याओं के प्रति जागरूक थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन संगठनों ने निम्नलिखित कार्यों में सहयोग दिया:

- उस समय की महत्वपूर्ण नीतियों के साथ जनता को जोड़ना.
- जनता को सक्रिय बनाना, और
- नई विचारधारा और मूल्यों को सुदृढ़ करने के लिए जन सभाओं, विचार मंचों, जन यात्राओं, पोस्टर लगाना आदि के रूप में अभियान चलाना।

इस प्रकार एक ऐसे जनवादी शासन की सामाजिक, राजनीतिक व वैचारिक नींव रखी गई जिससे धीरे-धीरे समाजवादी समाज का निर्माण किया जा सके।

1952 में जन संगठन और सदस्यता	
जन संगठन	सदस्यता (लाख में)
स्त्री संगठन	760
डेमोक्रेटिक यूथ संगठन	70
फेडरेशन ऑफ स्टूडेंट्स	16
श्रमिक संघ	60

35.9 चीन की क्रांति की महत्ता

चीन की सफल क्रांति की महत्ता और विश्वव्यापी प्रभाव को आंकने के लिए हमें उसे एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना होगा। जनसंख्या और क्षेत्र, दोनों ही दृष्टि से चीन 1949 में विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्र था। उसका क्षेत्रफल 9 लाख वर्ग किलोमीटर तक और 1939 के आँकड़ों के अनुसार जनसंख्या 41 करोड़ थी। इस प्रकार चीन की सफल क्रांति और जनवादी गणतंत्र की स्थापना के द्वारा विश्व की एक बड़ी जनसंख्या के जीवन में बदलाव आया। अतः यह घटना केवल चीन ही नहीं वरन् समस्त मानव जाति के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण थी।

सामान्यतः इतिहासकारों की यह धारणा रही है कि आधुनिक विचारों का उद्भव पाश्चात्य जगत में हुआ और इन्होंने पिछड़े समाजों की जनता के चिन्तन को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन विचारों में स्वतंत्रता, समानता, भातृत्व, प्रजातंत्र और लोकप्रिय संप्रभुता आते हैं। यहां यह समझना आवश्यक है कि ये विचार हवा में ही लागू नहीं हो सकते। वास्तव में पिछड़े समाजों में हो रहे बदलाव ही एक ऐसा वातावरण तैयार करते हैं जिनमें नवीन विचार जड़ पकड़ सकें । चीन में भी यही हुआ। इसके अतिरिक्त रूस (1917) और चीन (1949) की सफल क्रांतियों ने यह साबित कर दिया कि प्रजातंत्र और समानता तभी वास्तविक रूप ले सकते हैं जबकिः

- आर्थिक समता हो,
- भूख से मुक्ति हो, और
- उत्पादन का संगठन इस प्रकार किया जाए कि वह विश्व के उत्पाद और संपत्ति का उत्पादन करने वालों के हित में हो।

इसी प्रकार प्रजातंत्र एक राजनीतिक ढांचे के रूप में तभी वास्तविक हो सकता है, जबकिः

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- उसमें मेहनतकश गरीबों (जो कि जनसंख्या का बड़ा भाग है) की सुनवाई हो,
- उसकी नीतियां गरीब जनता के हित में हों, और
- सरकार को चलाने में गरीब जनता की भागीदारी हो।

1949 की क्रांति ने चीन में एक इसी प्रकार के समाज और राजनीति की नींव रखी। ऐसा करके उसने अविकसित देशों की जनता को ही नहीं वरन् पाश्चात्य जगत के उन तबकों को भी प्रेरित किया जो सामाजिक न्याय व समता के लिए संघर्षरत थे। चीन की क्रांति ने यह साबित कर दिया कि प्रगतिशील विचार और तौर-तरीके केवल पाश्चात्य जगत में ही जन्म नहीं लेते।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि चीन की क्रांति उपनिवेशवाद को समाप्त करने के रास्ते में एक महान कदम था। क्रांति से पूर्व चीन का प्रायः विश्व की सभी साम्राज्यवादी ताकतों ने शोषण किया था। वहां की समस्त संपत्ति और उत्पादन का गठन इन ताकतों के लाभ के लिए ही किया जाता था। पाश्चात्य शक्तियों और जापान द्वारा लादी गई असमान संधियों के अधीन चीन की जनता एक अभावपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही थी। इसके साथ-साथ जनता सामंतवाद और युद्ध सामन्तवाद की भी भयंकर रूप से शिकार थी। गरीब किसान भूख और गरीबी के कारण मरते रहते थे। परंतु चीन की क्रांति ने न केवल सामंतवाद का ही अंत किया वरन् चीन की धरती पर साम्राज्यवादियों के सामाजिक आधार को भी नष्ट कर दिया। चीन की जनता ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक गैर-समझौतावादी संघर्ष छेड़कर पाश्चात्य शक्तियों के मुंह पर तमाचा मारा। परिणामस्वरूप राजनीतिक संतुलन का झुकाव समाजवाद और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ओर हुआ। इससे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे अन्य एशियाई देशों की जनता को भी प्रेरणा मिली।

चीन की क्रांति ने किसानों के राजनीतिक सामर्थ्य को दर्शाकर पिछड़े समाजों में क्रांतिकारी बदलाव में किसानों की भूमिका की एक रूपरेखा भी प्रस्तुत की। पिछड़े देशों में साम्यवादी आंदोलन ने चीन के इस अनुभव से लाभ उठाया। प्रायः सभी एशियाई देशों के साम्यवादी दलों ने चीन की जनवादी प्रजातांत्रिक क्रांति के सिद्धांत को अपने कार्यक्रम में शामिल किया। वास्तव में चीन की क्रांति ने वहाँ की जनता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन में बदलाव लाकर विश्व स्तर पर उन्हें एक प्रमुख भूमिका अदा करने का अवसर दिया।

बोध प्रश्न 3

1) नए शासन द्वारा जो भूमि सुधार लागू किए गए उनके मुख्य पहलुओं की चर्चा लगभग 15 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) लगभग 10 पंक्तियों में चीन की क्रांति की महत्ता बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

35.10 सारांश

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर चीन में गृह युद्ध छिड़ गया। अमरीका की सहायता से च्यांग काई शेक के नेतृत्व में क्योमिंनटांग ने साम्यवादियों पर आक्रमण किये परंतु साम्यवादियों को चीन की जनता से व्यापक सहयोग मिला। इसका कारण यह था कि उन्होंने जनहित की नीतियां अपनाई थीं और सामंतवाद और पूंजीवाद द्वारा किए जा रहे शोषण का विरोध किया। गृह युद्ध में साम्यवादियों की विजय हुई। यद्यपि क्योमिंनटांग के पास व्यापक साधन थे परंतु प्रतिक्रियावादी नीतियों के कारण वह जनता में अपना समर्थन न बना पाया।

साम्यवादियों ने एक नवीन शासन की स्थापना की जिसे प्रारंभ में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परंतु व्यापक भूमि सुधार और अपने सदस्यों के संगठित प्रयासों के द्वारा साम्यवादी धीरे-धीरे इन कठिनाइयों को दूर करने में सफल रहे। चीन की क्रांति का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा। उसकी महत्ता को अनेक देशों में संघर्ष कर रही जनता ने एक आदर्श के रूप में स्वीकार किया।

35.11 शब्दावली

राष्ट्रीय सरकार: यहाँ इसका प्रयोग क्योमिंनटांग और साम्यवादी दल में अंतर दर्शाने के लिए किया गया है। क्योमिंनटांग राष्ट्रवाद का दावा करता था जबकि साम्यवादी दल की आस्था साम्यवादी क्रांति में थी।

मुक्त क्षेत्र: वे क्षेत्र जिन पर साम्यवादियों ने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था, उनके द्वारा मुक्त क्षेत्र कहे जाते थे।

35.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर के लिए भाग 35.3 देखें।
2) i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) भाग 35.5 देखकर अपना उत्तर लिखें।
2) किसान, मजदूर, कारीगर आदि। देखें भाग 35.4
3) भाग 35.7 देखें।

बोध प्रश्न 3

1) अपना उत्तर उपभाग 38.8.1 पर आधारित करें।
2) अपना उत्तर भाग 38.9 पर आधारित करें।

चित्र

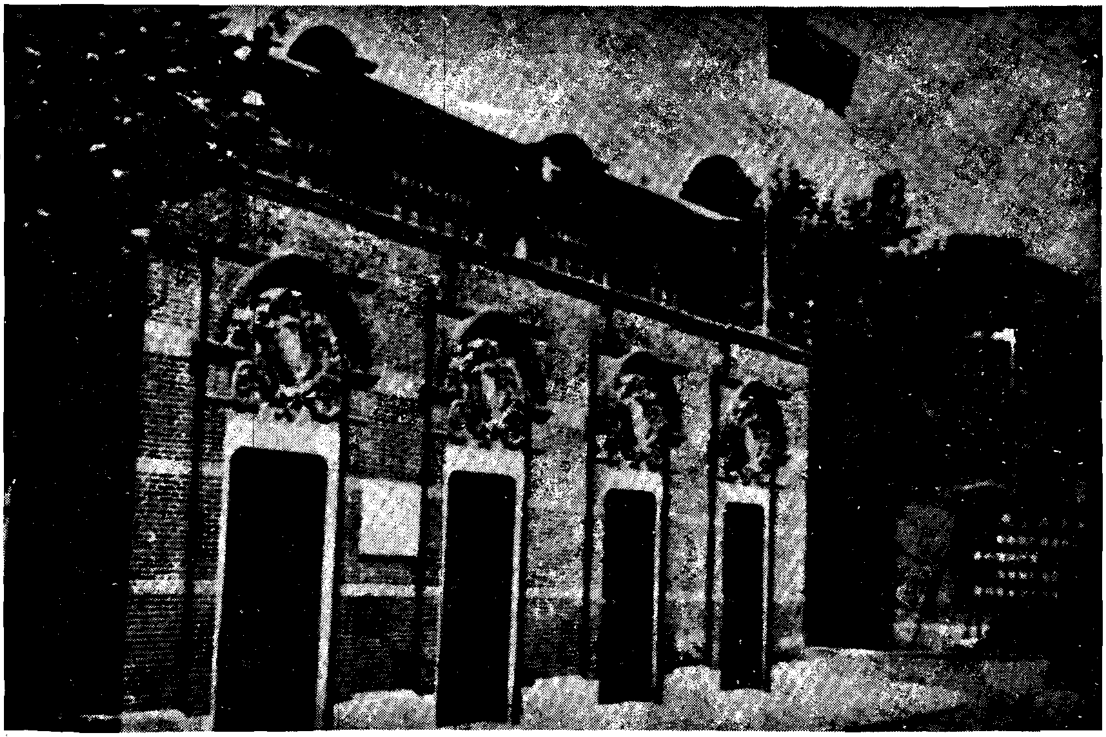

1 वह इमारत जहाँ शंघाई में साम्यवादी दल की पहली बैठक हुई। (जुलाई 1921)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ली-ता-चाओ

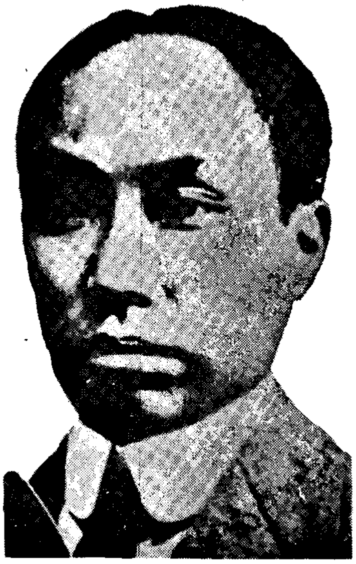

3 चेन-तू-शू

4 युवा अवस्था में माओ

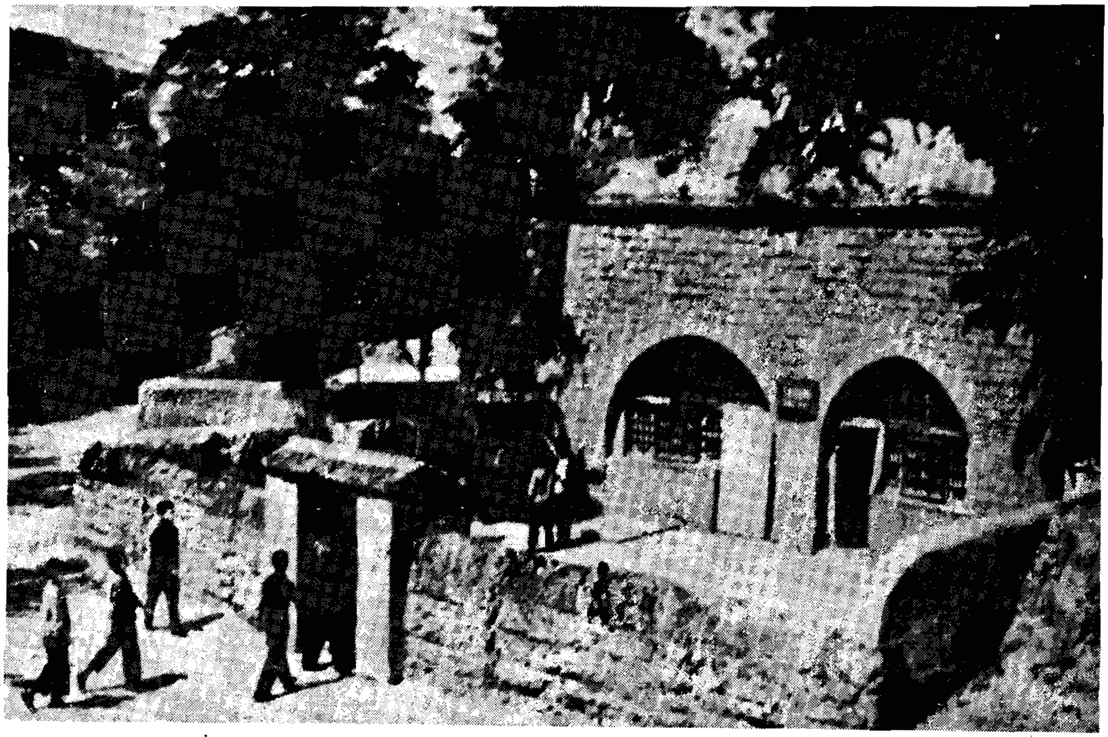

5 येनान में माओ के निवास की गुफा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6 जापानी सेना के विरुद्ध लाल सेना के समर्थक लट्ठों में बारुद भरकर ले जाते हुए (1938)

7 माओ द्वारा चीन में जनवादी गणतंत्र की स्थापना की घोषणा (1 अक्तूबर, 1949)

8 लिन-पियो

9 चाओ-एन-लाई

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

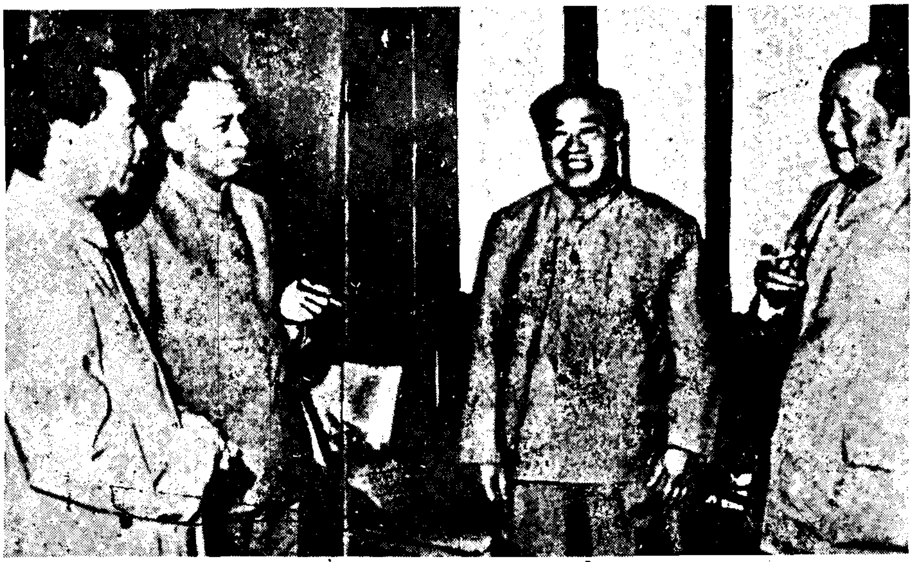

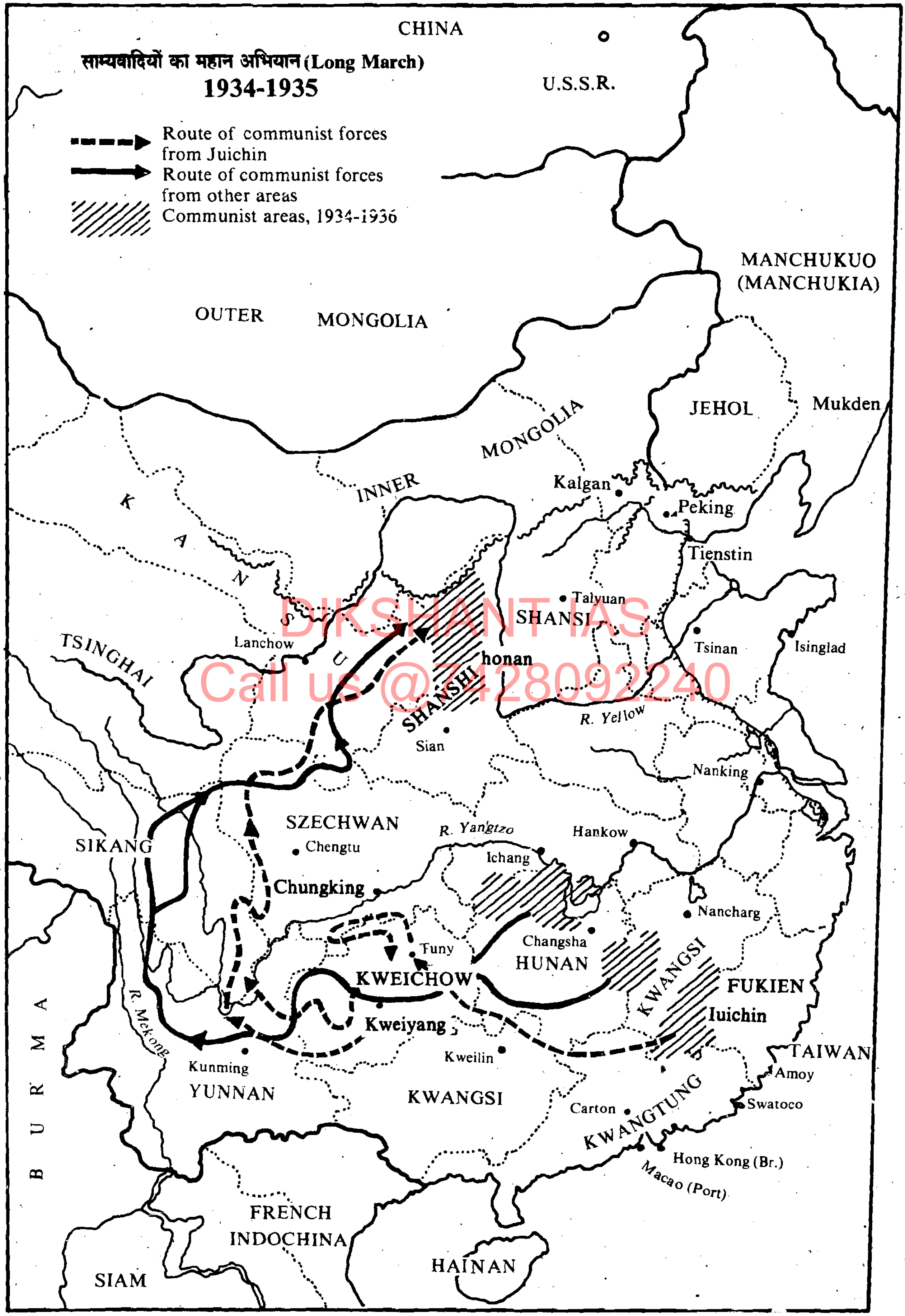

मानचित्र-1

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मानचित्र-2